In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्यगुणविज्ञानम्

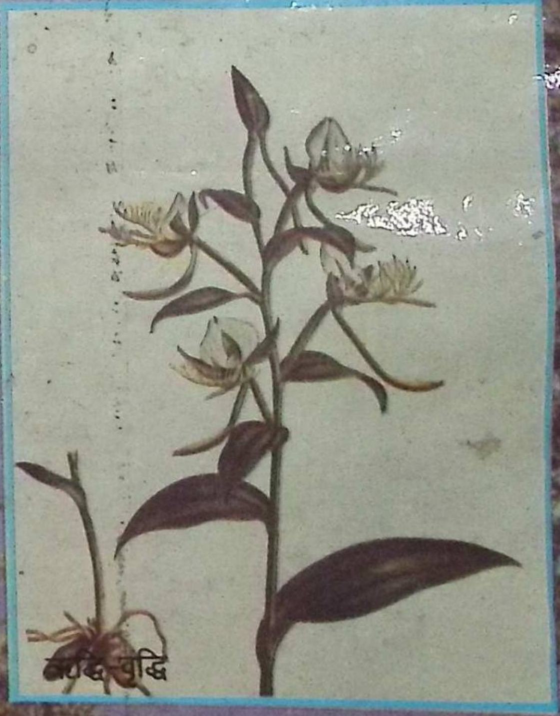

डा० मायाराम उनियाल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संक्षिप्त परिचय :

डॉ० मायाराम उनियाल

डॉ. मायाराम उनियाल, सहायक निदेशक (आयुर्वेद) केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद् (केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय भारत सरकार) एश-१०, ग्रीन पार्क एक्सटेन्शन मार्केट, नई, दिल्ली।

जन्म तिथि- ३-५-१९४०, ग्राम -दोणी, टिहरीगढ़वाल, (उ० प्र०)

शैक्षणिक योग्यता - १. ए. एम. बी.एस. (आयुर्वेदाचार्य, ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज, हरिद्वार से १९६२ में प्रथम श्रेणी में कायचिकित्सा एवं द्रव्य गुण में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण।

२. आयुर्वेद भास्कर १९५६, गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, ज्वालापुर (उ०प्र०)

३. मानद उपाधि - वनौषधि विद्यापति (श्रीलंका) (श्रीलंका स्वास्थ्य मंत्रालय के आई०एस०एम० विभाग द्वारा)

आयुर्वेद पुनर्वसु, (भारत)। आयुर्वेद महासम्मेलन, हरियाणा प्रान्त द्वारा

४. शोध कार्य : - लगभग ३० वर्षों का अनुभव। १९६२ से अनु० अधिकारी के पद पर एवं १९८९ से सहायक निदेशक के पद पर कार्यरत, द्रव्यगुण विज्ञान पर अनुसंधान एवं भारत के विभिन्न क्षेत्रों में वनौषधि सर्वेक्षण कार्य का अनुभव।

५. शोध-पत्र : लगभग ३०० शोध पत्रों का भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में हिन्दी एवं अंग्रेजी में प्रकाशन।

६. प्रकाशन – १. उत्तराखण्ड वनौषधिदर्शिका सचित्र, केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान परिषद् (भारत सरकार) नई दिल्ली द्वारा।

७. अष्टांग संग्रह की वनस्पतियाँ, श्री बैधनाथ आयुर्वेद भवन लि०, पटना।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्यगुण विज्ञानम्

(सचित्र)

भूमिका

आचार्य मुकन्दीलाल द्विवेदी

लेखक

डॉ. मायाराम उनियाल शास्त्री, वनस्पति विशेषज्ञ,
वनौषाधिविद्यापति (श्रीलंका)
सहायक निदेशक (आयुर्वेद)

बी, 98, अवन्तिका, रोहिणी, सेक्टर 1 नई दिल्ली - 110083

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.
बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन रोड,
पटना - 800 001

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रकाशक :-

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.
बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन रोड, पटना - 1

प्रथम संस्करण 1991
प्रतियाँ - 1500
सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य :-

- 100/- एक सौ रु. मात्र छात्र संस्करण
- 250/- दो सौ पचास रु. मात्र पुस्तकालय संस्करण

मुद्रक :-

पावन प्रकाशन प्रेस (प्रा.) लि.
कंकड़बाग रोड, पटना - 800 020.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुण्यश्लोक पं. रामदयाल जोशी
की पावन स्मृति में
प्रकाशित प्रस्तुत
ग्रंथ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

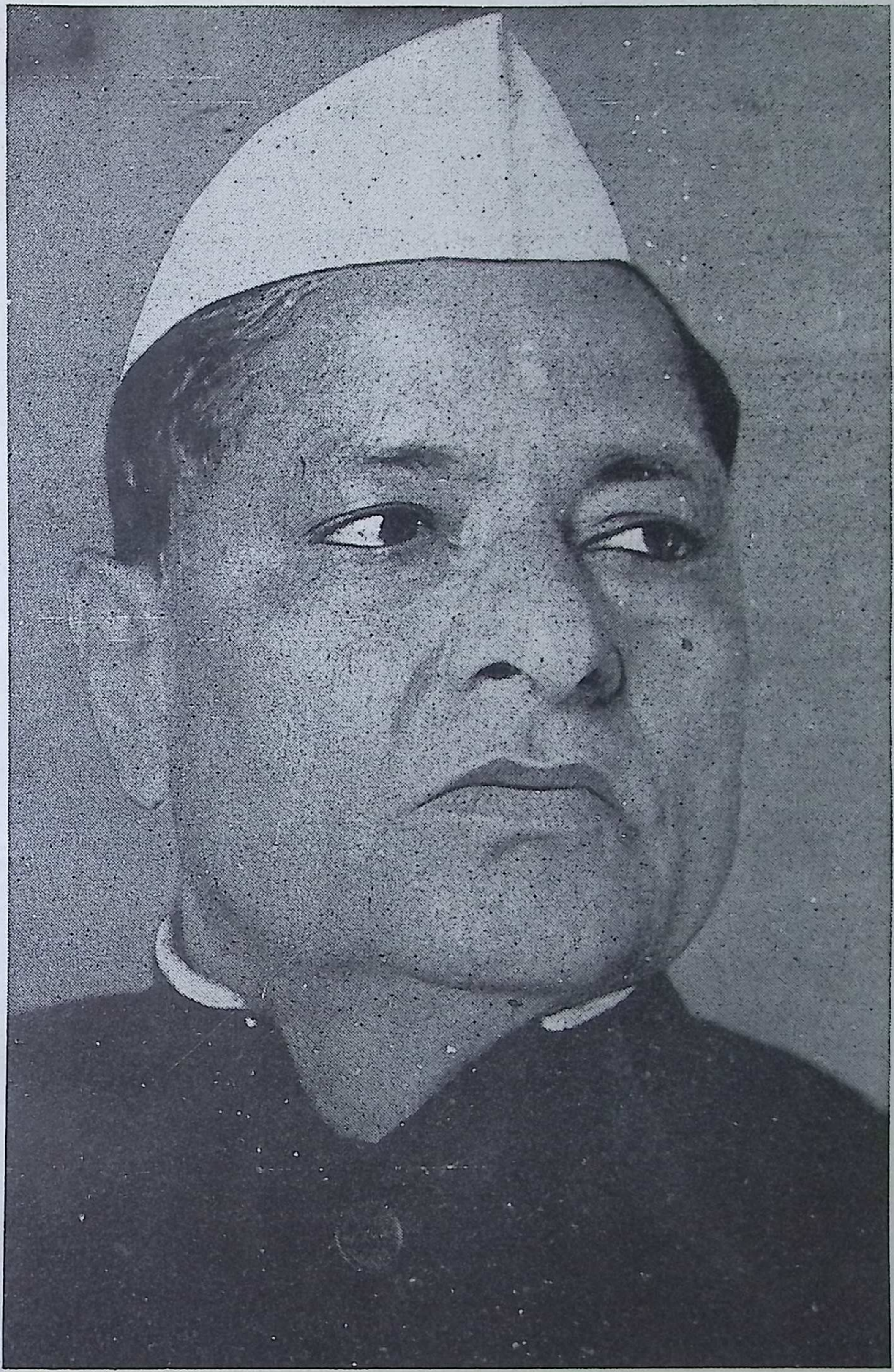

पण्डित रामदयालजी जोशी

।। श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन लि० के संस्थापक एवं प्रथम प्रबंध निदेशक ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समर्पण :

दिवङ्गत पुण्यश्लोक पूज्य पिता पं. नीलकंठ शर्मा शास्त्री जी की
पुण्यस्मृति में सादर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संदर्भ तालिका

क्रम संख्या

1. भूमिका — पृष्ठसंख्या V

2. प्राक्कथन — VI

खण्ड I

3. द्रव्यगुण विज्ञान का सामान्य परिचय एवं वर्गीकरण ... 1-7
4. चरकोक्त एवं सुश्रुत वर्ग तालिका ... 7-14
5. द्रव्यों का प्राचीन एवं आधुनिक वर्गीकरण ... 15-16
6. आयुर्वेदीय सिद्धान्त से द्रव्यों का नामकरण एवं पहिचान एवं संदिग्धता और सन्दर्भ ... 16-28

खण्ड II

7. औल्द्भिज द्रव्यों का वानस्पतिक स्वरूप एवं पहिचान और संदर्भ स्थल ... 29-453

खण्ड III

8. जाङ्गम द्रव्याणां सामान्य परिचयं सहित गुण कर्मज्ञानं च, एवं सन्दर्भ स्थल ... 454-472
9. जलवर्ग, दुग्धवर्ग, लवणवर्ग, धान्यवर्ग द्रव्यों का क्रियात्मक द्रव्यपरिचय (फारमेकोग्नासी) एवं सन्दर्भ स्थल ... 473-553
10. द्रव्यों के नाम के आधार पर औषध योगों की तालिका ... 540-547
11. कुलानुसार औषध द्रव्यों की संस्कृत एवं वौटेनिकल नामों की तालिका ... XV – XXXI
12. अकारादि क्रम से द्रव्यों की संस्कृत अनुक्रमणिका ... XXXI – XXXVIII
13. प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों की सामान्य तालिका ... XXXIX – XXXXII
14. संदर्भ ग्रन्थः XXXXII – XXXXV

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राक्कथनः

बनौषधियाँ आयुर्वेद शास्त्र की आधार शिलायें हैं। इस शास्त्र के अन्तर्गत द्रव्यगुण सम्बन्धी "रस, गुण, वीर्य, विपाक–प्रभाव नामक व्यापक सिद्धान्त की स्थापना का द्रव्यों के गुणधर्मों पर आधारित होना निश्चित सा प्रतीत होता है। द्रव्यों की भलिभाँति पहिचान कर रोगियों के लिये औषध निर्माण की प्रथा चिकित्सकों में विद्यमान थी। चिकित्सकों को आयुर्वेद द्रव्यगुण शास्त्र के कर्माभ्यास का भलिभांति ज्ञान आयुर्वेद महाविद्यालयों में गुरु शिष्य परम्परा से किया जाता रहा है। इसलिये द्रव्यगुण विज्ञान चिकित्साशास्त्र का एक प्रधान अङ्ग है। निघण्टु शास्त्र के ज्ञान के बिना सिद्धहस्त चिकित्सक सम्भव नहीं है। अतः द्रव्यों के गुण कर्मों के साथ–2 बनौषधियों का सामान्य परिचय, प्रकृतिविज्ञान , संग्रह–संरक्षणज्ञान, प्रभाव, संयोग, मात्रा, आमयिकप्रयोग आदि के परिचय को बताने वाला विशाल द्रव्यगुण शास्त्र है। भारतीय महर्षियों ने जनकल्याणार्थ हेतु ज्ञान लिङ्गज्ञान एवं औषधि ज्ञान का निर्माण किया है। औषधिविज्ञान से द्रव्यगुण विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना सुश्रुत ने माना है। विद्वानों की राय है कि आदि-मानव के विचार हमें सबसे पहिले ऋग्वेद में लिपिबद्ध रूप में मिलते हैं। अथर्ववेद में जड़ी–बूटियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। ज्यों–ज्यों विज्ञान की जानकारी बढ़ने लगी त्यो–त्यों इस विषय की आवश्यकतायें बढ़ती गईं, और धीरे–धीरे उपरोक्त विज्ञान स्वतन्त्र अष्टांगङ्ग आयुर्वेद कहलाने लगा। आयुर्वेद के प्रवर्तक ब्रह्मा, इन्द्र, दक्ष, अश्विनीकुमार, आदि देवता हैं। जहाँ तक द्रव्यगुण विज्ञान का विषय है वह वैदिक काल से आरम्भ होकर संहिताकाल, यथा–चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, अष्ठांगहृदय, अष्ठांगसंग्रह, काश्यपसंहिता, हारितसंहिता, भेलसंहिता, शारंगर्ड्धरसंहिता, एवं इन संहिताकारों के टीकाकारों चक्रपाणी, डल्हण, गंगाधर, अरुणदन्त, आस्ठय, जेज्जट, हेमान्द्री, इन्दु, भट्टारहरीश्चन्द्र, शिवदाससेन आदि टीकाओं में विकीर्ण रूप से रहा है। इसी प्रकार निघण्टु ग्रन्थों में कैय्यदेव निघण्टु, धन्वन्तरिनिघण्टु, राजनिघण्टु, मदनपालनिघण्टु, शालिग्रामनिघण्टु, भावप्रकाशनिघण्टु, निघण्टुरत्नाकर, अमरकोष वनौषधिवर्ग, अग्निपुराण, रामायण, महाभारत, ज्योतिष–कर्मकाण्ड, संस्कृत साहित्य आदि ग्रन्थों में द्रव्यों का संग्रह मिलता है। विगत चार सौ वर्षों के बाद द्रव्यगुण विज्ञान में आधुनिक समन्वयात्मक दृष्ठी से भी श्री भगीरथ स्वामी, आचार्य यादव जी त्रिविक्रम, वैद्य बापालाल जी, ठा० बलवन्त सिंह जी आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी एवं आचार्य प्रियवर्त शर्मा आदि कतिपय विद्वानों ने आधुनिक वनस्पति शास्त्र के आधार पर द्रव्यगुणविज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ प्रकाशित किये। इस प्रकार उक्त इतिहास के अध्ययन से विदित होता है कि संहिताकाल एवं निघण्टुग्रन्थों के टीकाकारों एवं लेखकों में द्रव्यों के प्रयोग में कतिपय स्थलों में मतैक्य न होने पर एवं पहिचान के अभाव से संदिग्धता का सूत्रपात हुआ है। द्रव्यों के प्रत्यक्ष कर्माभ्यास के अभाव से भी बनौषधि द्रव्यों के पहिचान करने में भी कठिनाई आई है।

लेखक ने द्रव्यों के प्रत्यक्ष कर्माभ्यास हेतु कश्मीर हिमालय से लेकर लेह–लद्दाख, उत्तराखण्ड–हिमालय, हिमाचलप्रदेश, सिक्किम, भुटान, अरुणाचलप्रदेश, आसाम, विन्ध्याचल, बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, श्रीलंका, बैक्ङाक आदि बनक्षेत्रों का सर्वेक्षण केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसन्धान परिषद् भारत सरकार नई दिल्ली एवं श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.० पटना के सहयोग से किया, जिसके फलस्वरुप "प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्यगुणविज्ञानम्" सचित्र पुस्तक लिखने का प्रयास किया है। प्रस्तुत पुस्तक में छात्रोपयोगी द्रव्यगुणविषयक साम्ग्री का साङ्गोपांग वर्णन किया गया है, जिस में द्रव्यों के संस्कृत पर्यायवाची नाम, वोटेनिकलनाम, कुल, वानस्पतिक स्वरूप, प्रयोज्यअंग, प्राप्तिस्थान एवं औषधयोगों का उल्लेख है। पुस्तक लेखन में पूर्ववर्ती आचार्यो की यशस्वी कृतियाँ मेरे लिये मार्गदर्शक रही हैं। मुख्यरूप से ठा० बलवन्त सिंह जी द्वारा विरचित कृति भेजिटेबिलड्रग्स् इन बृद्धत्रयी, वैद्य बापालाल द्वारा लिखित निघण्टु आदर्श आदि एवं कतिपय द्रव्यगुणशास्त्र के लेखकों की कृतियों के सन्दर्भ स्थलों का पर्याप्त मार्गदर्शन मिला है। एततर्थ मैं सभी सम्माननीय रचनाकारों का हृदय से आभारी हूँ।

पुस्तक के भूमिका लेखन हेतु पूज्य गुरुवर्य आचार्य मुकन्दीलाल द्विवेदी के प्रति हार्दिक रूप से कृतज्ञ हूँ। जिनका कि सतत स्नेह एवं मार्गदर्शन मिला है। पुस्तक प्रकाशन और प्रोत्साहन के प्रेरणा हेतु मैं डॉ० विवेकानन्द पाण्डेय, निदेशक केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसन्धान परिषद् (भारत सरकार) नई दिल्ली का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। द्रव्यगुण अनुसन्धान विषयक जिज्ञासा के मूल-स्त्रोत स्वर्गीय डॉ० सी० द्वारकौनाथ भू० पू० आयुर्वेदसलाहकार स्वदेशी चिकित्सा पद्धति भारत सरकार नई दिल्ली, स्वर्गीय ठा० बलवन्तसिंह, भू० पू० प्राध्यापक आयुर्वेद महाविद्यालय बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी एवं पुण्यश्लोक पंडित रामनारायण शर्मा वैद्य झांसी का हृदय से उपकृत हूँ।

पुस्तक प्रकाशन के लिये श्री बनवारी लाल शर्मा प्रबन्ध निदेशक श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० पटना का विशेष रुप से कृतज्ञ हूँ जिनकी सतत प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से यह साम्ग्री प्रकाशित की जा सकी है। श्री शर्मा जी ने पुस्तक का प्रकाशन बड़ी तत्परता एवं सुरुचिपूर्वक करवाया है। पुस्तक लेखन एवं मुद्रण कार्य में त्रुटियों का रहना सम्भव है। अतः लेखक मुद्रण एवं लेखन दोष के लिये पाठकों से विनम्र भाव से क्षमा चाहता है। यदि यह प्रयास आयुर्वेद विज्ञान प्रसार तथा आयुर्वेद महाविद्यालयों के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ तो मैं स्वयं को सफल समझूंगा।

दिनांक 1.1.91

विदुषांमनुचर

वैद्य मायाराम उनियाल

1. बी, 98, अवन्तिका, रोहिणी
   सेक्टर I, नई दिल्ली 110083
2. आर्यनगर चौक, रुड़की रोड, ज्वालापुर
   पिन कोड नं. 249407 (हरिद्वार) उ० प्र०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भूमिका

आयुर्वेद संसार का न केवल प्राचीनतम चिकित्सा–विज्ञान है (अपितु जीवन का विज्ञान भी है।) अत-एव स्वस्थ एवम् आतुर दोनों के लिये उपादेय त्रिसूत्रात्मक, शाश्वत एवम् पवित्र आयुर्वेद के ज्ञान की परम्परा विकसित हुई। जैसाकि चरकसंहिताकार ने भी निर्देश किया है—

हेतुलिंगौषधंज्ञानं स्वस्थातुर–परायणम्।
त्रिसूत्रं श्वाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः ।।

इस सूत्राय में से हेतु के द्वारा उन कारणों का बोध होता है जिनके द्वारा शरीरस्थ दोषों का संचय, प्रकोप आदि होकर विकार उत्पन्न होते हैं। शरीरस्थ दोषों के संचय, प्रकोप, प्रसर स्थान-संश्रय, व्यक्ति तथा भेदावस्था में जो लक्षण शरीर में उत्पन्न होते हैं उसे लिंग सूत्र कहते हैं। शरीर को स्वस्थ रखने और शारीरिक विकृति को दूर कर शरीर में दोषों की साम्यावस्था वाले कार्य औषध द्वारा ही होता है। अतः तीनों सूत्रों में से औषध का महत्त्व विशेष है। औषध शब्द में आहार और विहार भी समाविष्ट है।

आयुर्वेद में औद्‌भिज, जांगम (प्राणिज) तथा पार्थिव सभी प्रकार के औषध द्रव्यों का प्रयोग होता है किन्तु औद्‌भिज द्रव्यों का विशेष रूप से प्रयोग होता है। इन्हें चरक ने वनस्पति, वानस्पत्य, औषधि तथा वीरुध इन चार श्रेणियों में विभाजित किया है। इस विषय का विस्तृत वर्णन जिस शास्त्र में किया जाता है उसे आजकल द्रव्यगुण विज्ञान कहते हैं।

द्रव्यगुण शास्त्र में सभी द्रव्यों को पांच भौतिक माना गया है (सर्व द्रव्यं पांच भौतिकमस्मिनर्थे)। पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवम् आकाश के न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाने पर द्रव्यों को पार्थिव, आप्य, तैजस् वायव्य तथा आकाशीय कहा जाता है। इसी प्रकार इन पंचमहाभूतों के परस्पर मिलने से द्रव्यों में मधुर, अम्ल लवण, कटु, तिक्त तथा कषाय रस उत्पन्न होते हैं, इन्हीं के आधार पर प्रायः इनकी कार्मुकता निश्चित होती है और दोषों अर्थात् वात, पित्त, कफ इन शरीर दोषों के क्षय और वृद्धि भी इसी आधार पर होती है। अतः आयुर्वेदीय चिकित्सा के लिये द्रव्यगुण विज्ञान का महत्त्व स्पष्ट है।

इसीलिये आयुर्वेद के अध्ययन–अध्यापन का द्रव्यगुण एक विशिष्ट और अनिवार्य विषय है। और आयुर्वेद के चिकित्सक के लिये इसका ज्ञान अत्यावश्यक है। प्राचीन समय में इसे निघण्टु भी कहा जाता था और इसी आधार पर यह कहा जाता था किः—

निघण्टुना बिनावैद्यो विद्वान् व्याकरणंविना ।
बिना वाणेन धानुष्कस्त्रयो हास्यस्य भाजनम् ।।

अर्थात् वह वैद्य, वैद्य नहीं जिसे कि निघष्टु का ज्ञान न हो। निघण्टु का अर्थ कोश भी है। यहां द्रव्यों के कोश से तात्पर्य है। यद्यपि धवन्तरि-निघण्टु, राजनिघण्टु, मदनपालनिघण्टु कैधदेवनिघण्टु, भावप्रकाश निघण्टु, आदि कतिपय निघष्टु अद्यावधि उपलब्ध हैं किन्तु उनमें जिस प्रकार का वर्णन है, उसे सर्वसाधारण के लिये विशेष कर छात्रों के लिये समझना कठिन है। विगत कुछ वर्षों में कुछ विद्वानों ने द्रव्यगुण विषय पर कुछ उपयोगी पुस्तकें लिखी हैं फिर भी इस विषय पर उपयुक्त पुस्तकों की मांग बराबर बनी हुई है। अतः डॉ० मायाराम जी उनियाल द्वारा लिखित प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन सामयिक आवश्यकता की पूर्ति की ओर एक प्रशंसनीय प्रयास है। डॉ० उनियाल इस विषय के न केवल अधिकारी विद्वान् हैं अपितु उन्होंने स्वयं दुर्गम पर्वतांचलों का भी अनेक बार औषधान्वेषण के लिये भ्रमण किया है और अनेक संशोधनात्मक लेख लिखे हैं तथा ग्रन्थों का भी बहुमूल्य मार्गदर्शन किया है। अतः उनके द्वारा द्रव्यों के सम्बन्ध में निवद्ध सूचना अधिक प्रामाणिक मानी जा सकती है।

प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन तथा अर्वाचीन उपलब्ध सामग्री के साथ द्रव्यों का वर्गीकरण दिया गया है तथा प्रत्येक द्रव्य के संस्कृत तथा हिन्दी नाम के साथ वैज्ञानिक वानस्पतिक नाम (Botanical Name) भी दिया गया है। द्रव्यों के पर्यायों के आधार पर तथा वानस्पतिक रूप ज्ञान के आधार पर वर्णन से द्रव्य के पहचान करने में सहायता मिलेगी। साथ ही उनके प्राप्ति स्थान, प्रयोज्य अंग मिलावट, गुण कर्मादि तथा रोगानुसार प्रयोग एवम् उनके विशेष योगों का वर्णन पुस्तक की विशेषता है। पुस्तक प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्य-गुण विज्ञानम् केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद् द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार लिखी गई है। अतः आयुर्वेद महाविद्यालयों के छात्रों के लिये तो विशेषरूप से यह उपयोगी सिद्ध होगी ही किन्तु अन्वेषकों, चिकित्सकों एवम् आयुर्वेद के अन्य विद्वानों एवम् सर्वसाधारण के लिये भी यह आवश्यक उपादेय सिद्ध होगी, ऐसी मेरी धारणा है। ऐसी उपयोगी पुस्तक के प्रणयन के लिये डॉ० मायाराम जी उनियाल धन्यवाद के पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि आयुर्वेद जगत् में इस पुस्तक का यथोचित स्वागत होगा।

मुकुन्दी लाल द्विवेदी
भूतपूर्व कुलपति–गुजरात आयुर्वेद
विश्वविद्यालय, जामनगर
सम्प्रति–निदेशक,
श्री मूलचन्द खैराती राम अस्पताल
तथा आयुर्वेदिक शोध संस्थान
लाजपतनगर, नई दिल्ली

नई दिल्ली
1 जनवरी 1989

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बनवारी लाल शर्मा
एम. बी. ए. (कोलम्बिया)
प्रबन्ध निदेशक,
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.

बैद्यनाथ भवन रोड,
पटना - ८०० ००१

२ अक्तूबर १९९१

।। शुभ-संदेश ।।

डॉ. मायाराम उनियाल जी को मैं बहुत करीब से तकरीबन एक दशक से जानता हूँ। वैसे तो श्री बैद्यनाथ प्रतिष्ठान से इनका सम्बन्ध तीन दशकों से है। समय-समय पर **सचित्र आयुर्वेद** में प्रकाशित इनके मौलिक एवं वैज्ञानिक आलेख तथा इनके प्रकाशित कतिपय मानक ग्रंथ इनकी विद्वता के पुष्ट प्रमाण हैं। हिमालय की तलहटी से लेकर देश-विदेश की छोटी-बड़ी पहाड़ियों की दुर्गम यात्राएं करके वनौषधियों के अनुसंधान में जो इनका योगदान है, वह आयुर्वेद के इतिहास में सदैव उल्लेखनीय रहेगा। यह मेरा अपना विश्वास है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि सफलता की रेखाएं उन मनुष्यों के ललाट पर अंकित हैं, जिनके हृदय में नवीन आविष्कारों की आंधी हरहराया करती है, जो कर्म क्षेत्र में कमर कस कर खड़े होने की ताकत रखते हैं, जिनकी मानसिक शक्तियां, तेजस्वी, अटल और प्रतापी होती हैं। ऐसे ही व्यक्तित्व और प्रतिभा के धनी डॉ. मायाराम उनियाल जी ने लेह, लद्दाख, सिक्किम, भूटान, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, असम, उड़ीसा, श्रीलंका, बैंकॉक, आदि के वन क्षेत्रों का सर्वेक्षण करके वनौषधियों की गुणवत्ता को ध्यान में रखकर उनकी हिन्दी, संस्कृत एवं लैटिन भाषा में नामावली तैयार की है, जो सचमुच प्रशंसनीय और उल्लेखनीय है। ऐसे सद्ग्रंथ सामयिक, नश्वर, देश विशेष और काल विशेष न होकर प्रत्युत् शाश्वत, अविनश्वर, सब कालों और देशों के लिए सामान्य रूप से उपयोगी और व्यवहार्य हैं। अस्तु -

ऐसे विद्वान, आयुर्वेद विशेषज्ञ, वनौषधि अनुसंधान क्षेत्र में उद्यमी, साहसी, पराक्रमी, धैर्यवान, विवेकवान, गवेषक का हम सम्मान करते हैं, अभिनन्दन करते हैं और हार्दिक शुभकामना व्यक्त करते हैं कि ये स्वस्थ, सानन्द और दीर्घायु रहकर समाज और राष्ट्र की सतत् सेवा करते रहें और अपने ज्ञान-विज्ञान और अनुसंधान से आयुर्वेद साहित्य के उन्नयन में सदैव अग्रसर रहें। साथ ही सद्यः प्रकाशित इनके मानक ग्रंथ **प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्यगुण विज्ञानम्** का आयुर्वेद जगत में भरपूर सम्मान हो तथा इससे आयुर्वेद के अध्येता लाभान्वित हों। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ पुनः साधुवाद ।

भवदीय

ह./-
बनवारी लाल शर्मा
प्रबन्ध निदेशक,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुलानुसार औषध द्रव्यों की संस्कृत एवं वौटेनिकल तालिका

वत्सनाभादिवर्ग :—	*RANUNCULACEAE.*	...	29
1. वत्सनाभ	*Aconitum ferox* Stapf.	...	31
2. मीठाविष	*Aconitum falconeri* Stapf.	...	32
3. मीठा मोहरूविष	*Aconitum deinorrhizum* Stapf.	...	32
* " "	*Aconitum balfourii* Stapf.	...	32
4. श्रृंगीविष	*Aconitum Chasmanthum* Stapf.	...	32
5. अतिविषा	*Aconitum heterophyllum* wall.	...	29
6. प्रतिविषा	*Aconitum Palmatum* D. Don.	...	31
" "	*Aconitum Violaceum* Jacq.	...	31
7. ममीरा	*Coptis teeta* D.Don.	...	34
8. निर्विषा	*Delphinium denudatum* wall.	...	33
9. उपकुञ्चिका	*Nigella sativa* Linn.	...	37
10. काण्डीर	*Ranunculus sceleratus* Linn.	...	38
11. पीतमूला (ममीरी)	*Thalictrum foliolosum* Dc.	...	36
भव्यादि वर्ग :—	*DILLENIACEAE.*	...	39
12. भव्य	*Dillenia indica* Linn.	...	39
चम्पकादि वर्ग :—	*MAGNOLIACEAE.*	...	40
13. चम्पक	*Mechelia champaca* Linn.	...	40
14. सीताफल	*Annona squamosa* L.	...	41
गुडूच्यादि वर्ग :—	*MENISPERMACEAE.*	...	42
15. पाठा	*Cissampelos pareira* Linn.	...	43
16. छिलहिण्ट	*Cocculus hirsutus* (L.) Diels.	...	45
17. राजपाठा	*Stephania glabra* (Roxb.) Miers.	...	44
18. गुडूची	*Tinospora cordifolia* (willd.) Miers.	...	42
	T. Malabarica (Lam.) Miers	...	42
दारुहरिद्रादिवर्ग :—	*BERBERIDACEAE.*	...	46
19. दारुहरिद्रा	*Berberis aristata* Dc.	...	46
	B. lycium Royle.	...	46
	B. asiatica Roxb ex Dc.	...	46
20. बन्यकर्कटी (गिरिपर्पट)	*Podophyllum hexandrum* Royle.	...	47
कमलादिवर्ग :—	*NYMPHAEACEAE.*	...	48
21. कमल	*Nelumbo nucifera* Gaertn.	...	48
22. कुमुद	*Nymphea alba* Linn.	...	50
23. उत्पल (नीलोत्पल)	*Nymphea stellata* willed.	...	50
24. मखान्न (मखाना)	*Euryale ferox* salisb.	...	50
अहिफेनादि वर्ग :—	*PAPAVERACEAE.*	...	51

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

25. अहिफेन	*Papaver somniferum* Linn.	...	53
26. स्वर्णक्षीरी (सत्यानासी)	*Argemone Maxicana* Linn.	...	51
पर्पटादिवर्ग :—	*FUMARIACEAE.*	...	54
27. पर्पटक	*Fumaria parviflora* Lam.	...	54
	Fumaria indica pugsley.	...	54
राजिकादि वर्ग :—	*CRUCIFERAE.*	...	55
28. चन्द्रसूर	*Lepidium sativum* Linn.	...	56
29. तौंदरी	*Lepidium iberis* Linn.	...	56
30. खूबकला	*Sisymbrium Irio Linn.*	...	57
31. मूलक	*Raphanus sativus Linn.*	...	58
32. राजिका	(A) *Brassica iuncea* (Linn) czern.	...	58
”	(B) *Brassica integrifolia* o. e.		
40. सर्षप	(A) *Brassica campestris* var. sarson Parin	...	60
(रक्त)	(B) *B. Nigra* (L.) Koch.		
वरुणादि वर्ग :—	*CAPPARIDACEAE.*	...	61
41. वरुण	*Crataeva nurvala* Buch-Ham.	...	61
42. हिंस्त्रा	*Capparis sepiaria* Linn.	...	62
43. करीर	*Capparis decidua* Edgew.	...	63
44. हुलहुल (तिलपर्णी)	*Gynandropsis gynandra* (Linn.) Briquet.	...	64
बन्पशादिवर्ग :—	*VIOLACEAE.*	...	65
45. वनप्सिका	*Viola serpens* wall.	...	65
	Viola Odorata Linn.	...	65
तुवरकादि वर्ग :—	*FALCOURTIACEAE.*	...	66
46. तुवरक	*Hydnocarpus laurifolia* (Dennst) Sleu.	...	66
	Syn. H. Wightiana Blunce.	...	66
47. चालमोगरा	*Gynocardia Odorata* R. Br.	...	66
48. प्राचीनामलक	*Flacourtia Jangomas* (Lour) Racusch.	...	67
49. विकङ्क्त	*Flacourtia indica* Merr.	...	67
विकङ्कगत	*Syn. F. ramontchi* (L.) Herit.	...	67
	Gymnosporia spinosa (Forsk) Fiori (Celastraceae) NPA.	...	68
लोणिकादिवर्ग :—	*PORTULACEAE.*	...	68
50. लोणिका	*Portulacea oleracea* Linn.	...	68
नागकेशरादि वर्ग :—	*GUTTIFEREAE.*	...	69
51. नागकेशर	*Mesua ferrea* Linn.	...	69
52. नागकेशर लाल (सुरपुन्नाग)	*Ochrocarpus longifolius* Benth.	...	69
53. पुन्नाग	*Calophyllum inophyllum* Linn.	...	70
54. अम्लवेतस	*Garcinia pedunculata* Roxb.	...	71
55. वृक्षाम्ल	*Garcinia indica* Chois.	...	72
शालादि वर्ग :—	*DIPTEROCARPEAE.*	...	72

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

56. शाल	*Shorea robusta* Gaertn.	...	72
57. सर्ज	*Vateria Indica* Linn.	...	74
58. अश्वकर्ण (गर्जन)	*Dipterocarpus alatus* Roxb.	...	74
59. अजकर्ण	*Dipterocarpus turbinatus* Gaertn.	...	74
कार्पासादिवर्ग :—	*MALVACEAE*	...	75
60. कार्पास	*Gossypium herbaceum* Linn.	...	75
61. लताकस्तूरी	*Hibiscus abelmoschus* Linn.	...	77
62. जपा	*Hibiscus rosa-sinensis* Linn.	...	78
63. पारीष	*Thespesia populnea* Soland	...	78
64. वनकार्पास	*Thespesia lampas*	...	80
	Syn. *Hibiscus lampas* Cav.	...	79
शाल्मल्यादिवर्ग :—	*BOMBACACEAE.*	...	84
65. शाल्मली	*Salmalia malabarica* schott Q Endl.	...	84
	Syn. *Bombax malabaricum* Dc.		
66. गोरक्ष	*Adansonia digitata* Linn.	...	85
67. खत्मी	*Althaea officinalis Linn.*	...	80
68. बला	*Sida cordifolia* Linn.	...	80
	S. acuta Burm	...	80
	S. Spinasa Linn	...	81
	S. rhombifolia Linn.	...	81
69. अतिबला	*Abutilon indicum* (L) Sw.	...	83
70. भूमिबला	*Sida veronicaefolia* Lam.	...	82
मुचुकुन्दादिवर्ग :—	*STERCULIACEAE.*	...	86
71. मुचुकुन्द	*Pterospermum suberifolium* Lam.	...	86
72. पिशाचकार्पास (उलटकम्बल)	*Abroma augusta* Linn. f.	...	87
73. आवर्तनी	*Helicteres isora* Linn.	...	88
धन्वनादि वर्ग :—	*TILIACEAE.*	...	89
74. नागबला (गुलशकरी)	*Grewia populifolia* vahl.	...	89
	Grewia hirsuta vahl.	...	89
75. धन्वनः (धामन)	*Grewia tiliaefolia* vahl.	...	90
76. परुषक	*Grewia asiatoca* Linn.	...	91
77. चञ्चु	*Corchorus aestuans* Linn.	...	92
78. महाञ्चु	*Corchorus Olitorius* linn.	...	92
	C. Capsularis Linn.	...	92
रुद्राक्षवर्ग :—	*ELEOCARPACEAE.*	...	92
79. रुद्राक्ष	*Elacocarpus ganitrus* Roxb.	...	92
अतस्यादिवर्ग :—	*LINACEAE.*	...	93
80. अतसी	*Linum usitatissimum* Linn.	...	93
गोक्षुरादि वर्ग :—	*ZYGOPHYLLACEAE.*	...	94
81. गोक्षुर (लघु)	*Tribulus terrestris* Linn.	...	94
82. धन्वयास (धमासा)	*Fagonia cretica* Linn.	...	95

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	Syn. *F arabica* Linn.		
चागेर्यादिवर्ग :—	*OXALIDACEAE.*	...	96
83. चागेरी	*Oxalis acetasella* Linn.	...	96
,,	*Oxalis corniculate* Linn.	...	97
84. कर्मरंग (कमरख)	*Avrrhoa carambola* Linn.		
निम्बुकादिवर्ग :—	*RUTACEAE.*	...	98
85. निम्बूक	*Citrus aurantefolia* (Chris.)	...	99
	Swingle, *C medica* var. acida.	...	
86. बीजपूरक	*Citrus medica* Linn.	...	98
	Syn. *C . medica* var. medica proper	...	100
87. कपित्थ	*Feronia limonia* (L) Swingle	...	101
88. हरमल	*Peganum harmala* Linn.	...	103
89. सुदाव	*Ruta graveolens* Linn.	...	103
90. तेजोहवा (तेजवल)	*Zanthoxylum alatum* Roxb.	...	104
	Z. budrunga wall		
	Syn. Z. *rhetsa* Dc.		
विल्व	Aegle Marmelos	...	100
ईङ्गवादिवर्ग :—	*SIMARUBACEAE.*	...	105
91. ईङ्गुदी	*Balanites aegyptiaea* (L) Delib.	...	105
	Syn. *B. roxburghii* planch		
92. अरलु	*Ailanthus excelsa* Roxb.	...	106
93. कड़वी, भारंगी	*Picrasma Quassioides* Benn.	...	107
गुग्गुल्वादिवर्ग :—	*BURSERACEAE.*	...	108
94. गुग्गुलू	*Commiphora mukul* (Hookex Sto.) Engl.	...	108
	Syn. *Balsamodendron mukul* Hook		
95. बोल	*Commiphora myrrha* (Nees) Engl.	...	110
	Syn. *Balsamodendron myrrha* T. Nees.		
96. शल्लकी	*Boswellia serrata* Roxb.	...	111
निम्बादि वर्ग :—	*MELIACEAE.*	...	112
97. निम्ब	*Azadirachta indica* A. Juss.	...	112
	Syn. *Melia azadirachta* Linn.	...	114
98. महानिम्ब	Melia azedarch Linn.		
99. मांसरोहिणी	*Soymida febrifuga* A. Suss.	...	115
ज्योतिष्मत्यादिवर्ग :—	*CELASTRACEAE.*	...	116
100. ज्योतिष्मती	*Celastrus paniculata* willd.	...	101
कृष्ण-मोक्षक (मुष्कक)	*Elaeodendron glaucum* pers.	...	
102. मुष्कक (श्वेत)	*Schrebera swietenicides* Roxb.		
103. बदरादि वर्ग	*RHAMNACEAE.*	...	118
104. उन्नाव (बदर)	*Zizyphus sativa* Gaertn	...	118
	Syn. Z. Vulgaris Lam.	...	118

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

105. बदर	*Zizyphus jujuba* Lam.	...	118
द्राक्षादि वर्ग :—	*VITACEAE.*	...	119
106. द्राक्षा	*Vites vinifera* Linn.	...	119
107. अस्थिसंहार	*Cissus quandrangularis* L. Syn. *vitis quadrangularis* wall.	...	120
अरिष्ठकादिवर्ग :—	*SAPINDACEAE.*	...	121
108. अरिष्ठक	*Sapindus trifoliatus* Linn.	...	121
,,	*Sapindus mukorossi* Gaertn.	...	121
109. काकादनी	*Cardiaspermum halicacabum* L.	...	122
110. कोशाम्र	*Schleichera oleosa* (Lour) Merr. Sun. *S. Trijuga* willd.	...	122
*** *आम्रादिवर्ग* :—	*ANACARDIACEAE.*	...	123
111. आम्रः	*Mangifera indica* Linn.	...	123
112. आम्रातक	*Spondias pinnata* kurz. Syn. *S. mangifera* willd.	...	124
113. भल्लातक	*Semecarpus anacardium*, L.f.	...	125
114. कर्कटश्रृंगी	*Pistacia integerrima* Stew ex Brandis.	...	126
	Rhus succednea Linn.	...	126
115. तिन्तिडीक	*Rhus parviflora* Roxb.	...	127
116. प्रियाल (चिरौंजी)	*Buchanania lanzan* spreny. Syn. *B. latifolia* Roxb.	...	128
117. रूमीमस्तगी	*Pistacia lentiscus* Linn.	...	129
शोभाज्जनादिवर्ग :—	*MORINGACEAE.*	...	130
118. शिग्रु	*Moringa oleifera* Lam. Syn. M. pterygosperma Garten.	...	130
119. कटुशिग्रु	*Moringa concanensis* Nimmo.		
अंक्ङ्गोलादिवर्ग :—	*ALANGIACEAE.*	...	131
120. अंकोल Syn. *S. lamarekii* Thwa.	*Alangium salviifolium* (Linn f.) Wang.	...	131
शिम्बी वर्ग :— (पलाशादिवर्ग)	*PAPILIONACEAE*	...	132
121. पलाश	*Butea monosperma* (Lam.) Kantze Syn.*B. frondosa* Koen. exRoxb.	...	132
122 अपराजिता	*Clitoria ternatea* Linn.	...	134
123. मुद्गपर्णी	*Phaseolus teilobus* Ait.	...	135
124. माषपर्णी	*Phaseolus radiatus* Linn.	...	136
,,	*Teramnus labialis* spreng.	...	136
125. शालपर्णी	*Desmadium gangeticum* DC.	...	136
126. पृश्निपर्णी	*Uraria picta* Desv.	...	137
,,	*Uraria Lagopoides* DC.	...	138

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

127. गुञ्जा	*Abrus Precatorius* Linn.	...	138
128. यष्ठिमधु	*Glycyrrhiza glabra*	...	139
129. कपिकच्छु	*Mucuna prurita* Hook. Syn. *M. Pruriens* Bak.	...	140
130. शिंशपा	*Dalbergia sissoo* Roxb.	...	141
131. बीजक	Pterocarpus *Marsupium* Roxb.	...	142
132. रक्तचन्दन	*Pterocarpus santalinus* linn.	...	143
133. तिनिश	*Ougenia dalbergioides* Benth.	...	145
134. करञ्ज	*Pongamia pinnata* (Linn.) Merr	...	145
135. नीली	*Indigofera tinctoria* linn.	...	146
136. अगस्त्य	*Sesbunia grandiflora* (Linn) Pers.	...	148
137. जयन्ती	*Sesbania sesban* (Linn.) Merr. Syn. *S. aegyptiaca* Poir.	...	149
138. यवासा	*Alhagi pseudalhagi* (Bieb.) Desu. Syn. *A. maurorum* Fisch.	...	150
139. पारिभद्र	*Erythrina Variegata* Linn. Var-Orientalis Merril Syn. *E. Indica* Lam.	...	150
140. वाकुची	*Psoralea corylifolia* Linn.	...	151
141. विदारीकन्द	*Pueraria tuberosa* DC.	...	152] 489
142. कुलत्थ	*Dolichos Biflorus* Linn.	...	153
143. मेथिका	*Trigonella foenum-graecum* 1 Limn	...	154
144. शणपुष्पी	*Crotalaria juncea* Linn.	...	155
	Crotalria Verrucosa Linn.	...	154
145. शरपुंखा	*Tephrosia purpurea* (Linn) Pers. *T. Villosa* Pers.	...	156
146. मुद्ग (मूंग)	*Phaseolus aureus* Roxle.	...	488
147. माष (उड़द)	*Phaseolus mungo* Linn.	...	488
148. मसूर	*Ervum lens* Linn.	...	488
149. आढकी (अरहर)	*Cajuns indicus* L.	...	489
150. चणक (चना)	*Cicerarietinum* Linn.	...	489
151. त्रिपुट (खेसारी)	*Lathyrus sativus* Linn.	...	490
152. कलाय (मटर)	*Pisum sativum* Linn.	...	489
पूतिकरन्जादिवर्ग :—	*CAESALPINIACEAE.*	...	157
153. पूतिकरज्ज	*Caesalpinia crista* Linn. Syn. *C. bonducella* flening.	...	157
154. पतंग	*Haematoxylon campechianim* Linn.	...	158
	or/*Caesalpinia sappan* Linn.	...	159
155. चक्षुष्या	*Cassia absus* Linn.	...	160
156. आरग्वधः	*Cassia fistula* Linn.		
157. कासमर्द	*Cassia occidentalis* Linn.	...	161
158. चक्रमर्द	*Cassia tora* Linn. Syn. *C. obtusifolia* Linn.	...	162
159. काञ्चनार	*Bauhinia variegata* Linn.	...	163
160. कर्बुदार (कोविदार)	*Bauhinia purpurea* Linn.	...	164
161. अश्मन्तक	*Baulinia malabarica* Raxb. B. *racemosa.*	...	164

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

162. अशोक	*Saraea Indica* Linn	...	165
163. अम्लिका (इमली)	*Tamarindus indica* Linn.	...	166
164. आवर्तिनी	*Cassia auriculata* Linn.	...	166
165. मार्कण्डिका (सनाय)	*Cassia angustiflia* vahl.	...	165
बब्बूलादि वर्ग	*MIMOSACEAE.*	...	168
166. बब्बूल	*Acacia arobica* willd.	...	169
167. खदिर	*Acacia Catechu* willd.	...	171
168. इरिमेद	*Acacia leucophloea* willd.	...	
169. शिरीष	*Albizzia lebbeck* Benth.	...	173
170. किणिंही	*Albizzia procera* (Roxb) Benth.	...	173
171. शमी	*Prosopis spicigera* Linn.	...	173
172. वीरतरू	*Dichrostachys cinerea* W & A.	...	174
173. लज्जालू	*Mimosa Pudica* Linn.	...	174
174. शिकाकाई	*Acacia Concinna* DC.	...	174
पद्मकादिवर्ग :—	*ROSACEAE.*	...	176
175. पद्मक	*Prunus cerasoides* D. Don. Syn. *P. puddum* Roxb ex wall	...	176
176. बाताम	*Prunus amygdalus* Batsch. Syn. *P. Communis* Arcang	...	177
177. तरुणी	*Rosa Centifolia* Linn. *Rosa damascena* Mill.		
*** पाषाणभेदादि वर्ग :—	*SAXIFRAGACEAE*	...	179
178. पाषाणभेद	*Bergenia ligulata* (wall) Engl. Syn. *Saxifraga ligulata* wall.		
पर्णबीजादिवर्ग :—	*CRASSULACEAE.*	...	180
179. पर्णबीज	*Kalanchoe Pinnata* pers. Syn. *Bryophyllum Calycynym* Salisb.	...	180
तुरुष्कादिवर्ग :—	*HAMAMELIDACEAE.*	...	181
180. सिल्हक (तुरुष्क) सिल्कक	*Altingia excelsa Noronha.*	...	
हरीतक्यादिवर्ग :—	*COMBRETACEAE.*	...	180
181. हरीतकी	*Terminalia Chebula* Retz.	...	182
182. विभीतक	*Terminalia belerica* Roxb.	...	184
183. अर्जुन	*Terminalia arjuna* W. of A.		
184. असन	*Terminalia tomentosa* W. of A.	...	185
185. धवः	*Anogeissus latifolia* wall.	...	186
लवंगादिवर्ग :—	*MYRTACEAE.*	...	187
186. लवंग	*Syzygium aromaticum (*Linn.) merr of per. Syn. *Caryophyllus aromatocus* Linn.	...	187
187. जम्बु	*Syzygium cumini (*Linn.) skeels	...	188

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	Syn. *Eugenia jambolana* Lam.	...	
188. समुद्रफल (हिज्जल)	*Barringtonia acutangula* (Linn.) Gaertn.	...	189
189. तैलपर्णी (नीलगिरी)	*Eucalyptus globulus* Labill.	...	190
दाड़िमादिवर्ग :—	*PUNICACEAE.*	...	193
190. दाडिम	*Punica granutum* Linn.	...	193
धातक्यादिवर्ग :—	*LYTHRACEAE.*	...	191
191. धातकी	*Woodforda fruticosa* Kurz.	...	191
192. मदयन्तिका	*Lawsonia inermis* Linn.	...	192
	Syn. *L. alba* Lam.		
श्रृंगाटकादिवर्ग :—	*ONAGRACEAE.*	...	194
193. श्रृंगाटक	*Trapa bispinosa* Roxb.	...	194
सपृचर्कादिवर्ग :—	*SAMYDACEAE.*	...	195
194. सपृचक्रा	*Casearia esculenta* Roxb.	...	195
195. चिल्हक (हपुषा)	*Casearia tomentosa* Roxb.	...	195
एरण्डकर्कटी वर्ग :—	*CARICACEAE.*	...	195
196. एरण्डकर्कटी	*Carica papaya* Linn.	...	196
कोशातक्यादिवर्ग :—	*CUCURBITACEAE.*	...	196
197. कूष्माण्ड	*Benincasa hispida* (Thumb) Cong.	...	196
198. इन्द्रवारुणी	*Citrullus colocynthis* Schrad.	...	197
199. पटोल	*Trichosanthes dioica* Roxb.	...	198
200. वन्यपटोल	*Trichosanthes cucumerina* Linn.	...	199
201. महाकाल (विशाला)	*Trichosanthes bracheata* (Kan) Voigh.	...	198
	Syn. *T. Palmata* Roxb.		
202. कटुतुम्बी	*Lagenaria siceraria* Standl.	...	200
	Syn. *L. Vulgaris* seringe.		
203. (जीमुतक) देवदाली	*Luffa echinata* Roxb.	...	201
204. कोषातकी	*Luffa acutangula* (Linn.) Roxb.	...	202
	Var- *L. amara* clarke.		
205. कारवेल्लक	*Momordica charantia* Linn.	...	203
206. धामार्गव	*Luffa cylindrica* (Linn) M. Rome.	...	202
	Syn. *L. aegyptiaca* Mill ex Hook. f.	...	203
207. बिम्बी	*Coceinia indica* W. of A.	...	205
208. त्रपुष	*Cucumis sativus* Linn.	...	204
209. शिवलिङ्गी	*Bryonopsis laciniosa* (Linn.) Naud.	...	205
	Syn. *Bryonia laciniosa* Linn.		
जीरकादिवर्ग :—	*UMBELLIFERAE.*	...	206
210. जीरक (श्वेत)	*Cuminum cyminum* Linn.	...	206
211. जीरक (कृष्ण)	*Carum bulbocastanum* Koch.	...	208
212. (श्याह जीरा)	*Carum carvi* Linn.	...	208

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

213. यवानी	*Trachyspermum ammi* (Linn) sprague.	...	209
	Syn. *Carum copticum* Benth. Q. Hook.		
	I.roxburghianum (DC) sprague		
214. अजमोदा	*Apium graveolens* Linn.	...	210
215. शताह्वां (शतपुष्पा)	*Anethum sowa* Kurz.	...	211
	Syn. *Peucedanum graveslens* Linn.	...	213
216. मिश्रेया (सौंफ)	*Foeniculum vulgare* Mill.	...	214
217. धान्यक	*Coriandrum sativum* Linn.	...	215
218. मण्डूकपर्णी	*Centella asiatica* (Linn) urban.		
	Syn. Hydrocotyle asiatica Linn.		
219. हिंगु	*Ferula foetida* Regle.	...	216
220. चोरक	*Angelica glauca* Edgw.	...	218
221. कठचोरा	*Angelica archangelica* Linn.	...	218
222. गर्जर	*Daucus Carota* Linn.	...	219
	Var- *D. sativa* DC.		
223. भूतकेशी	*Selinium Vaginatum* C. B. cl.	...	220
224. मुरामांसी	*Selinium wallichianum* (DC) Raiz of Saxena.	...	220
	Syn. *S. Vaginatum* C.B.		
मंजिष्ठादिवर्ग :—	*RUBIACEAE.*	...	221
225. नाड़ीहिंगु (डिकामाली)	*Gardenia Gummifera* Linn. f.	...	221
226. मंजीष्ठा	*Rubia Cordifolia* Linn.	...	222
227. मदनफल	*Randia dumetorum* Lam.	...	223
228. गन्धप्रसारिणी	*Paederia foetida* Linn.	...	224
229. कदम्ब	*Anthocephalus Indicus* A. Rich.	...	226
	Syn. *A. cadamba* Mig.		
230. हरिद्रु	*Adina cordifolia* (Roxb) Benth.	...	227
जटामांस्यादिवर्ग :—	*VALERIANACEAE.*	...	227
231. जटामांसी	*Nardostachys Jatamansi* DC.	...	227
232. तगर	*Valeriana Wallichii* DC.	...	229
भृंगराजादिवर्ग :—	*COMPOSITAE.*	...	229
233. भृंगराज	*Eclipta alba* Hassk.	...	230
234. कुष्ठ	*Saussurea lappa* C. B. cl.	...	232
235. पुष्करमूल	*Inula racemosa* Hook f.	...	232
236. सहदेवी	*Vernonia cinerea* Less.		
237. अरण्यजीरक	*Centratherum anthelminticum* (willd) Kuntze.	...	235
	Syn. *Vernonia anthelmintica* willd	...	235
238. दमनक	*Artemisia Vulgaris* Linn.	...	235
239. रास्ना	*Pluchea lanceolata* Oliver of Hiern	...	236
240. आकरभ (अकरकरा)	*Anacyclus pyrethrum* DC.	...	237
241. गोरखमुण्डी	*Sphaeranthus indicus* Linn.	...	238
242. दुग्धफनी	*Taraxacum officinale* weber.	...	239
243. आयापान	*Eupatorium triplinerue* Vahl.	...	240
244. झण्डू	*Tagetes erecta* Linn.	...	240
245. मयूरशिखा	*Elephantopus scaber* Linn.	...	241

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

246. कासनी	*Cichorium intybus* Linn.	...	241
247. छिक्किका	*Centipedaminima* (Linn) A.B. Syn. *C. orbicularis* Lour.	...	242
चित्रकादिवर्ग :—	*PLUMBAGINACEAE.*	...	243
248. चित्रक	*Plumbago zeyeanica* Linn.	...	243
249. विडंगादिवर्ग	*MYRSINACEAE*	...	245
250. विडंग	*Embelia ribes* Burm. f.	...	245
मधूकादिवर्ग :—	*SAPOTACEAE.*	...	246
251. मधुक	*Madhuca indica* J. F. Gmel. Syn. *Bassia latifolia* Roxb.	...	246
252. बकुल	*Mimusops elengi* Linn.	...	247
253. राजादन	*M. hexandra.*	...	247
254. लोध्रादिवर्ग	*STYRACEAE.*	...	248
255. लोध्र	*Symplocos recemora* Roxb.	...	248
256. पट्टिका लोध्र	*Symplocos paniculata* wall. Syn. *S. crataegoides* Buch Haen.	...	249
तिन्दुकादिवर्ग :—	*EBENACEAE.*	...	250
257. तिन्दुक	*Diospyrous peregnina* Guske. Syn. *D. embryopteris* pers.	...	250
258. पील्वादिवर्ग	*SALVADORACEAE.*	...	251
259. पीलू (बड़ा)	*Salvadora persica* Linn.	...	251
260. पीलू (छोटा)	*S. Oleoides* Dcne.		
जात्यादिवर्ग :—	*OLEACEAE.*	...	252
261. जाति (जाती)	*Jasminum Officinale* Linn. Var. *J. grondiflorum* Boiby.	...	252
262. यूथिका	*Josminum auriculatum* Vahl.	...	253
263. पारिजात	*Nyctanthes arbortristis* Linn.	...	253
264. मुश्कक- श्वेत	*Schrebera swietenioides* Roxb.	...	254
कुटजादिवर्ग :—	*APOCYNACEAE.*	...	255
265. कुटज	*Holarrhena antidysenterica* wall.	...	255
266. सप्तपर्ण	*Alstonia scholaris* R. Br.	...	256
267. करवीर	*Nerium indicum* Mill. Syn. *N. oddorum* Soland.	...	257
268. सर्पगन्धा	*Rauwolfia serpentina* Benth. ex. Kurg.	...	258
269. करमर्दक	*Carissa carandas* Linn.	...	259
अर्कादिवर्ग :—	*ASCLEPIADACEAE.*	...	259
270. अर्कद्वय रक्तार्क	*Calortopis procera* (Ait.) R. Br.	...	260
271. श्वेतार्क	*Calotropis gigantea* (Linn) R. Br.	...	260
272. सारिवाश्वेत	*Hemidesmus indicus* R. Br.	...	261
273. सारिवा- कृष्ण	*Cryptolepis buchanani* Roem.	...	262
274. जीवन्ती	*Leptadenia reticulata* W. of A.	...	262

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

275. गुड़मार (मेषश्रृंगी)	*Gymnema sylvestre* R. Br. ...	264
276. मूर्वा	*Marsdenia tenacissima.* w.of A ...	264
277. विषतिन्दुकादिवर्ग	*LONGANIACEAE.* ...	266
278. कुपीलू	*Strychnos nuxvomica* Linn. ...	266
279. कतक	*Strychnos potatorum* Linn. f. ...	267
किरातादिवर्ग :—	*GENTIACEAE.* ...	268
280. किराततिक्त	*Swertia chirata* Buch-Ham. ...	268
281. त्रायमाण	*Swertia purpurascens* wall. ...	269
	Gentiana Kurroo Royale. ...	269
श्लेष्मातकादिवर्ग :—	*BORAGINACEAE.* ...	271
282. श्लेष्मातक	*Cordia Dichotama* Fomtt. f. C. myxa Roxb. ...	271
283. अधःपुष्पी	*Triccodesma indicum* R. Br. ...	271
गाजवान	*Onosma bracteatum* wall. ...	272
त्रिवृतादिवर्ग :—	CONVOLVULACEAE. ...	273
285. त्रिवृत्	*Operculina turpetwum* (Linn.) Silva. Syn. *Ipomoeaturpethum* R. Br. ...	273
286. वृद्धदारुक	*Ipomoea petaloidea* Chois. ...	274
287. शंखपुष्पी (श्वेत)	*Convolvus pluricaulis* Chais. ...	275
288. शुंखपुष्पी (नील)	*Evolvulus alsinoides* Linn. ...	276
289. कृष्णबीज	*Ipomoea hederacea* (L.) Jacq. ...	276
290. (आखुकर्णी)	*Ipomea reniformis* chois. ...	277
291. अमरवल्ली	*Cuscuta reflexa* Roxb. ...	278
कण्टकार्यादिवर्ग :—	*SOLANACEAE.* ...	279
292. कण्टकारी	*Solanum xanthocarpum* Schrad. ...	279
293. वृहती	*Solanum indicum* Linn. ...	280
294. काकमाची	*Solanum nigrum* Linn. ...	281
295. अश्वगन्धा	*Withania somnifera* dunal. ...	282
296. धत्तूर (श्वेत)	*Datura Metal* Linn. ...	283
297. धत्तूर (कृष्ण)	*Datura stramonium* Linn. ...	284
298. पारषीकयवानी	*Hyoscyamus niger* Linn. ...	284
	H. muticus. ...	285
299. सूची (बैलाडोना)	*Atropa acuminata* Royle. ...	286
	A. belladonna L. ...	286
300. ताम्रपर्ण (तम्बाकू)	*Nicotiana tabecum* Linn. ...	287
301. कटुवीरा	*Capsium frutescens* Linn. ...	287
	Syn. *C. minimum* Roxb.	

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	तिक्तादिवर्ग :—	*SCROPHULARIACEAE.* ...	287
302	कुटकी	*Picrorhiza Kurroa* Royle. ex Benth. ...	287
303.	ब्राह्मी	*Bacopa monnieri* (Linn) Pennell ...	289
		Syn. *B. monniera* wettst.	
304.	हृत्पत्री	*Digitalis lanata* Ehrh. ...	290
		Digitalis purpurea Linn. ...	290
	श्योनाकादिवर्ग :—	*BIGNONIACEAE.* ...	290
305.	श्योनाक	*Oroxylum indicum* Vent. ...	291
306.	पाटला	*Stereospermum suaveolens* DC. ...	292
		S. tetragonum DC.	
307.	रोहीतक	*Tecomella undulata* (G. Don) Seen. ...	293
	"	*Amoora rohituka* W. of. A. (Meliaceae)	
	तिलादिवर्गः—	*PEDALIACEAE.* ...	294
308.	तिल	*Sesamum indicum* Linn. ...	294
		Syn. *S. Orientale* Linn.	
309.	गोक्षुर (बड़ा)	*Pedalium Murex* Linn. ...	295
	वासादिवर्गः—	*ACANTHACEAE.* ...	296
310.	आटरुषक	*Adhatoda Vasica* Nees. ...	296
311.	इक्षुरक	*Asteracantha longifolia* Nees. ...	297
312.	कालमेघ	*Andrographis Paniculata* Nees. ...	298
313.	उटंगन	*Blepharis edulis* Pers. ...	299
	सैरेयकादिवर्ग :—	*FRICACEAE.* ...	299
314.	कुरुवक	*Rhododendron arboreum* Sm. ...	300
315.	सैरेयक	*R. anthopogon* D. Don. ...	300
	"	*R. lepidotum* wall ...	300
	"	*R. Campanlatum* D. Don. ...	300
	निर्गुण्डयादिवर्ग :—	*VERBENACEAE.* ...	300
316.	निर्गुण्डी	*Vitex negundo* Linn. ...	301
317.	प्रियंगु	*Callicarpa macrophylla* Vahl. ...	302
318.	अग्निमंथद्वय	*Premna latifolia* ...	303
		Premma integrifolia Linn.	
		Clerodendrum phlomidis Linn.f. ...	303
319.	भारंगी	*Clerodendrum serratum* (Linn) Moon. ...	304
320.	भाण्डीर	*Clerodendrum infortunatum* Linn. ...	305
321.	गम्भारी	*Gmelina arborea* Linn. ...	305
322.	शाक	*Tectona grandis* Linn. f. ...	306
	तुलस्यादिवर्ग :—	*LABIATAE.* ...	306
323.	तुलसी	*Ocimum sanctum* Linn. ...	307
	"	*Ocimum gratissimum* ...	307
324.	तुलसीभेद	*Ocimum basilicum*	
		Ocimum amensicanum ...	308
325.	पूतिहा	*Mentha arvensis* Linn ...	308
	"	*Mentho longifolia* Huds. ...	308
326.	वन्यवानी	*Thymus serphllum* Linn. ...	308
327.	जूफा	*Hyssopus officinalis* Linn. ...	310

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

328.	द्रोणपुष्पी	*Leucas cephalotes* spreng.	...	309
	ईसबगोलादिवर्ग :–	*PLANTAGINACEAE.*	...	310
329.	ईसबगोल (अश्वगोलम्)	*Plantago* ovata Forsk.	...	310
		P. Major.		
	पुनर्नवादिवर्गः'–	*NYCTAGINACEA.*	...	311
330.	पुनर्नवारक्त	*Boerhaavia diffusa* Linn.	...	312
	(श्वेत)	*B. repens* Linn.	...	312
		B. repanda willd	...	312
	अपामार्गादिवर्ग :–	*AMARANTACEAE.*	...	313
331.	अपामार्ग	Achyranthes aspera Linn.	...	313
	चुक्रादिवर्गः'–	*POLYGONACEAE.*	...	314
332.	चुक्र	*Rumex Vesicarius* Linn.	...	315
333.	रेवेन्द्रचीनी	*Rheum emodi* wall	...	315
		R.webbinum....................	...	316
334.	ईश्वर्यादिवर्गः'–	*ARSTOLOCHIACEAE.*	...	316
335.	ईश्वरी	*Aristolochia indica* Linn.	...	316
336.	कीटमारी	*Aristolochia bracteata* Retz.		
	वास्तुकादिवर्गः'–	*CHENOPODIACEAE.*	...	317
337.	वास्तूक	*Chenopodium album* Linn.	...	317
338.	सुगन्ध वास्तूक	*Chenopodium ambrosioides* Linn.	...	317
	पिप्पल्यादिवर्गः'–	*PIPEARCEAE.*	...	318
339.	पिप्पली	*Piper longum* Linn.	...	318
340.	मरिच	*Piper nigrum* Linn.	...	319
341.	कंकोल	*Piper cubeba* Linn. f.	...	319
342.	(नागवल्ली (पान)	*Piper betle Linn.*	...	320
	चव्य	*Piper chaba* Hunter	...	320
	जाति.लादिवर्ग :'–	*MYRISTICAEAE.*	...	322
343.	जातीफल	*Myristica fragrans* Houtt.	...	322
	कर्पूरादिवर्ग :'–	*LAURACEAE.*	...	323
344.	कर्पूर	*Cinnamomum camphora* Nees.	...	324
345.	(त्वक्) दालचीनी	*Cinnamomum zeylanicum* Blume.		
346.	पत्रम्	*Cinmamomum tamala* Nees.	...	326
347.	मेदासक	*Litsea chinensis* Lam.	...	327
	वन्दाकादिवर्ग :'–	*LORANTHACEAE.*	...	327
348.	वन्दाक	*Dendrophthoe falcata* (Linn. f.) Etting.	...	327
		Syn. *Loranthus longiflorus Desr.*	...	327
	अगुर्वादिवर्गः'–	*THYMELAEACEAE.*	...	328
349.	अगरू	*Aquilaria agallocha* Roxb.	...	328
	चन्दनादिवर्ग : –	*SANTALACEAE.*	...	330
350.	चन्दन	*Santalum album* Linn.	...	330
	एरण्डादिवर्ग :–	*EUPHORBIACEAE.*	...	331
351.	एरण्ड	*Ricinus communis* Linn.	...	331

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

352.	दन्ती	*Baliospermum montanum* Muell.	...	332
353.	द्रवन्ती	*Jatropha corcous* Linn.	...	334
354.	आमलकी	*Emblica officinalis* Gaertn.	...	335
		Syn. Plyllanthus emblica Linn.		
355.	भूम्यामलकी	*Phllanthus Urinaria*	...	336
		Phyllanthus niruri Linn.	...	336
356.	स्नुही	*Euphorbia royleana* Boiss.	...	337
357.	कम्पिल्लक	*Mallotus phillippinensis* Muell.	...	338
358.	पुत्रन्जीवक	*Putrangiva roxburghii* wall.	...	339
359.	जयपाल	*Croton tiglium* Linn.	...	334
360.	नागदन्ती	*Croton oblongifolius* Roxb.	...	334
361.	दुग्धिका	*Euphorbia hirta* Linn.	...	340
		Syn. E. Pilulifera auct.		
362.	सातला	*Euphorbia daracunculodides.*	...	341
		Euporbia Pilosa.	...	341
	वटदिवर्ग :-	*URTICACEAE.*	...	341
363.	उदुम्बर	*Ficus racemosa* Linn.	...	342
		Syn. F. glomerata Roxb.		
364.	वट	*Ficus bengalensis* Linn.	...	341
365.	अश्वत्थ	*Ficus religiosa* Linn.	...	344
366.	प्लक्ष	*Ficus lacor* Buch -Ham.	...	344
		Ficus infectoria Roxb.		
367.	काकोदुम्बरिका	*Ficus hispida* Linn. F.	...	343
	तूतादिवर्ग	*MORACEAE.*	...	345
368.	तूत	*Morus alba* Linn.	...	345
	लकुच	Atrocarpus heterophyllus Lam	...	347
	विजयादिवर्ग :-	*CANNABINACEAE.*	...	345
369.	भंगा (विजया)	*Cannabis sativa* Linn.	...	345
		Syn. C. indica Lam.		
	चिरविल्वादिवर्ग :-	*ULMACEAE.*	...	346
370.	चिरविल्व	*Holoptelea integrifolia* Planch.	...	346
	अक्षोवदिवर्ग :-	*JAGLANDACEAE.*	...	347
371.	अक्षोट	*Juglans regia* Linn.	...	347
	कटफलादिवर्ग :-	*MYRICACEAE.*	...	348
372.	कटफल	*Myrica nagi* Thumb.	...	348
	भोजपत्रादिवर्ग :-	*BETULACEAE.*	...	349
373.	भोजपत्र	*Betula utilis* D. Don.	...	349
		Syn. *B. bhojpattra* wall.		
	मायाफलादिवर्ग :-	*FAGACEAE.*	...	349
374.	मायाफल	*Quercus infectoria* oliv.	...	350
	सोमादिवर्ग :-	*GENTACEAE.*	...	350
375.	सोम	*Ephedra gerardiana* wall.	...	350
	देवदार्व्यादि :-	*PINACEAE.*	...	351

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

376.	देवदारु	*Cedrus deodara* (Roxb) Loud.	...	351
377.	सरल	*Pinus roxburghii* sargent.` Syn. *P. longifolia* Roxb.	...	352
378.	तालीसपत्र	*Abies webbianna* Lindl.	...	353
379.	थुनेर	*Taxus baccata* Linn.	...	353
380.	हपूषा (हाउवेर)	*Juniperus communis* Linn.	...	353
	हरिद्रादिवर्ग :—	*SCITAMINAE.*	...	354
378.	हरिद्रा	*Curcuma longa* Linn.	...	355
379.	आम्रगन्धीहरिद्रा	Curcuma *amada Roxb.*	...	356
380.	कर्चूर	*Curcuma zedoaria. Rose*	...	357
381.	शटी	*Hedychium spicatum* Ham ex Smith.	...	358
382.	तवक्षीर	*Curcuma angustifolia* Roxb.	...	358
383.	एला	*Elettaria cardamomum* Maton.	...	359
384.	एला (बड़ी)	*Amomum subulatum* Roxb.	...	360
385.	महामरीवचा	*Alpina galanga* willd.	...	361
386.	केमुक	*Costus speciosus* (Koen) Sm.	...	362
387.	आद्रक	*Zingiber officinale* Rosc.	...	362
	कदल्यादिवर्ग :—	*MUSACEAE.*	...	363
388.	कदली	*Musa paradisiaca* Linn.	...	363
	अन्ननासादिवर्ग :—	*BROMELIACEAE.*	...	364
389.	अन्नास	*Ananas Comosus* Merr. Syn. *A. sativus* schult.	...	364
	केशरादिवर्ग :—	*IRIDACEAE.*	...	365
390.	केशर	*Crocus sativa Linn.*	...	365
	तालमूल्यादिवर्ग :—	*AMARYLLIDACEAE.*	...	366
391.	तालमूली	*Curculigo orchioides* Geartn.	...	366
	वाराहकन्दादिवर्ग :—	*DIOSCORIACEAE.*	...	366
392.	वाराहीकन्द	*Dioscorea bulbifera* Linn.	...	366
	रसोनादिवर्ग :—	*LILIACEAE.*	...	367
393.	रसोन	*Allium sativum* Linn.	...	368
394.	पलाण्डु	*Allium cepa* Linn.	...	368
395.	कुमारी	*Aloe barbadensis* Mill Syn. *A. Vera* Tourn.	...	369
396.	शतावरी	*Asparagus racemosus* willd.	...	370
397.	लांगली	*Gloriosa superba* Linn.	...	371
398.	सुरञ्जान	*Colchicum Luteum* Baker.	...	372
399.	श्वतेमूशली	*Chlorophytum aurndinaceum* Baker.	...	373

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

400.	उशवा	*Smilax zeylanica* Linn.	...	374
401.	वनपलाण्डु	*Urginea indica* kunth.	...	374
	नारिकेलादिवर्ग :—	*PALMAE.*	...	375
402.	नारिकेल	*Cocos nucifera* Linn.	...	375
403.	दरियाई - नारियल	*Lodoicea seychellarum* (Lillocea)	...	376
404.	पूग	*Areca catechu* Linn.	...	379
405.	रक्तनिर्यास	*Daemonorops draco* Blume. Syn. *Calamus draeo* willd.	...	376
406.	ताल	*Borassus flabellifer* Linn.	...	377
407.	खर्जूर	*Phoerix dectylifera* Linn.	...	378
	केतक्यादिवर्ग :—	*PANDANACEAE.*	...	380
408.	केतकी	*Pandanus tectorius* Soland. Syn. *P. Odoratissimus* Roxb.	...	380
	वचादिवर्ग :—	*ARACEAE.*	...	381
409.	वचा	*Acorus calamus* Linn.	...	381
410.	सूरण	*Amorphophallus campanulatus (*Roxb) Bl.	...	382
411.	गजपिप्पली	*Scindapsus officinalis* Schoot.	...	383
412.	मानकन्द	*Alocasia indica* schoot.	...	383
	मुस्तादिवर्ग :—	*CYPERACEAE.*	...	384
413.	कशेरूक	*Scirpus kyssoor* Roxb.	...	385
414.	मुस्तक	*Cypurs rotundus* Linn.	...	384
415.	भद्रमुस्तक (नागरमुस्तक)	*Cyperus pangorei* Rottb.	...	384
	उशीरादिवर्ग :—	*GRAMINAE.*	...	386
416.	उशीर	*Vetiveria zizanioides* (L) Nash.	...	386
417.	वंश	*Bambusa bambos* Druce. Syn. *B. arundinacca* willd.	...	386
418.	कुश (दर्भ)	*Desmostachya bipinnata* Stapf.	...	387
419.	काश	*Saccharum spontaneum* Linn.	...	388
420.	यव	*Hordeum Vulgare* Linn.	...	486
421.	शर- मून्ज	*Saccharum munja* Roxb.	...	388
422.	इक्षु	*Saccharum officinarum* Linn.	...	385
423.	दूर्वा	*Cynodon doctylon* (Linn) Pers.	...	390
424.	रोहिष	*Cymbopogon schoenanthus* (L) Spreng.	...	390
425.	धान	*Oryza sativa* Linn (Gramineae).	...	486
426.	गोधूम	*Triticum sativum*`	...	487
427.	कड्गु (कौणी)	*Setaria italica* Bacw.	...	490
428.	चीनाक (चींणा)	*Panicum miliaceum* Linn.	...	490
429.	श्यामाक (सांमा)	*Echinochloa frumentacea* Linn.	...	490
430.	कोद्रव (कोंदों)	*Paspalum scrobiculatum.*	...	490
431.	गवेधुक (कसई)	*Coix lachrymarobi* Linn.	...	490
432.	नीवार (तीनी)	*Hygroryza arista* Nees.	...	490
433.	यावनाल (ज्वारी)	*Sorghum vulgare* Pers.	...	490

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	हंसराजादिवर्ग :–		*POLYPODIACEAE.*	... 391
434.	हंसराज		*Adiantum lunulatum* Burm.	.. 391
	शैलेयादिवर्ग –		*LICHENS.*	
435.	शैलेय		*Parmelia perforata* Ach.	
436.	शैवाल			.. 391
	छत्रकवर्ग :–		*FUNGI.*	
437.	छत्रक		*Agaricus compestnis.*	.. 392
	कंकूष्ठ		*Garcinia Morella*	.. 392
	संदिग्धद्रव्याणां सामान्य परिचयम्			.. 393, 532
	अष्टवर्ग –	जीवक	*Microstylis* wallichiciadl.	.. 522, 524
		ऋषभक	*Microstylis muscifera.*	.. 524
		काकोली	*Roscoea procera.*	.. 524
		क्षीरकाकोली	*Lilium polyphyllum.*	.. 526
	कंकुष्ठ *Garcinia*	मेदा	*Polygonatum vertecillatum.*	.. 528
		महामेदा	*Polygonatum Cerrifolium.*	.. 528
		ऋद्धि	*Hebenariaindermeda.*	.. 528-530
		वृद्धि	Hebenaria.	..
	स्वर्णक्षीरी		*Euphorbia thompronia.*	.. 532
	कस्तूरी.		**Moschus moschuiferous**	.. 454

अकारादिक्रम से द्रव्यों की संस्कृत अनुक्रमणिका

द्रव्य नाम	पृ० सं०	द्रव्या नाम	पृ० सं०
(अ)			
अङ्. कोलादिवर्ग	... 131	अरलु	... 106
अंगरसा	... 131	अरिष्ठक,	... 121
अगस्त्य	... 148	अरिष्ठकादिवर्ग	... 121
अर्जुन	... 184	अर्कद्वय	
अग्निजार	... 457	अशोक	... 165
अगुरु	... 328	अश्मन्तक	... 164
अगुर्वादिवर्ग	... 328	अश्वकर्ण	... 74
अग्निमन्थद्वय	... 303	अश्वत्थ	... 344
अजकर्ण	... 74	अश्वगन्धा	... 282
अजमोदा	... 210	अश्वबोलम्	... 500
अतसी	... 93,485	असन	... 186
अतिबला	... 83	अस्थिसंहारक	... 120
अतिविषा	... 29	अक्षोटक	... 347
अधःपुष्पी	... 271	अक्षोटकादिवर्ग	... 347
अन्ननास	... 364	अहिफेन	... 53
अन्ननासादिवर्ग	... 364	अहिफनादिवर्ग	... 53
अतस्यादिवर्ग	... 93	अष्ठवर्ग	... 522
अर्कादिवर्ग	... 259	अर्कद्वय, रक्तार्क	... 260
अम्बिका	... 166	आटरुषक	... 296
अपराजिता	... 132	आमलकी	... 335
		आम्रः	

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अपामार्ग	...	313
अपामार्गादिवर्ग	...	313
अमरवल्ली	...	278
अम्लवेतस	...	71
अरण्यजीरक	...	235
(आ)		
आम्रः	...	123
आम्रादिवर्ग	...	123
आम्रातक	...	124
आम्रगन्धिहरिद्रा	...	356
आकारकरम	...	337
आवर्तकी	...	88
आवर्त्तनी	...	167
आयापान	...	240
आरग्वध	...	161
आकरभ	...	237
आद्रक	...	362
आखुकर्णी	...	277
औद्--भिज़लवण	...	483
(इ)		
इन्द्रवारुणी	...	197
इङ्गुदी	...	105
इङ्गुवादिवर्ग	...	105
इक्षु	...	389
इक्षुवर्ग	...	389
इक्षुरक	...	297
इरिमेद	...	171
इन्द्रगोप	...	463
(ई)		
ईश्वरी	...	316
ईश्वर्यादिवर्ग	...	316
ईसबगोल	...	310
ईसबगोलादिवर्ग	...	310
कटुकी	...	287
कटुशिग्रु		
कटुतुम्बी	...	200
कटुवीरा	...	287
कठचोरा	...	218
कड़वीभांरगी	...	107
कतक	...	267
कस्तूरी	...	454
कदली	...	363
आद्रकी	...	489
(उ–ऊ)		
उटंगन	...	299
उदुम्बर	...	342
उन्नाव	...	118
उत्पल	...	48
उपकुंचिका	...	37
उशवा	...	374
उशीर	...	386
उशीरादिवर्ग	...	386
(ऋ–ए–ऐ)		
ऋषभक	...	524
ऋद्धि	...	528
एरण्ड	...	331, 485
एरण्डकर्कटी	...	195
एला (छोटी)	...	358
एला (बड़ी)	...	359
(क)		
कच्छप	...	464
कंकुष्ठ	...	393,532
कंटकारी	...	279,495
कंटकार्यादिवर्ग		
कटफल	...	348
कटफलादिवर्ग	...	348
कटू शिग्रु	...	259
कांचनार	...	163
काकादनी	...	122
काकमाची	...	281
काकोली	...	524
काकोदुम्बर	...	343
काण्डीर	...	37
कारवेल्लक	...	203
काश	...	388
कासमर्द	...	161
कार्पास	...	75
कार्पासादिवर्ग	...	75
कालमेघ	...	298
कासमर्द	...	161
कासनी	...	241
केशर	...	365
केशरादिवर्ग	...	365
किराततिक्त	...	268
किरातादिवर्ग	...	268

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कदल्यादिवर्ग	...	363
कदम्ब	...	226
कपिकच्छु	...	140
कमलादिवर्ग	...	48
कमल	...	48
कम्पिल्लक	...	338
कपित्थ	...	101
करवीर	...	257
कटुतुम्बी	...	200
करंज	...	145
करमद्रक	...	297
कर्मरङ्ग	...	97
कर्चूर	...	357
कलाय	...	489
करीर	...	63
कर्कटक	...	464
कर्पूर	...	323
कर्पूरादिवर्ग	...	323
कर्बुदार (कोविदार)	...	164
कर्कटश्रृंगी	...	126, 514
कशेरुक	...	385
कंकोल	...	319
कपर्दिका	...	462
कुपीलू	...	266
कुमारी.	...	369
कुमुद	...	48
कुलत्थ	...	153
कुटजादिवर्ग	...	255
कुश	...	387
कूष्माण्ड	...	196
कुसुम्भ	...	485
कुष्ठ	...	232
कृष्णबीज	...	276
कृष्णजीरक	...	208
कृष्णमोक्षक	...	117
केतकी	...	380
केतक्यादिवर्ग	...	380
कुरुवक	...	300
केमुकम्	...	362
कोकिलाक्ष		
कोविदार	...	164
कोशाम्र	...	122
कोश (आवरेशम)	...	466
किणिही	...	173
कीटमारी	...	316
कुटज	...	499
कुटजादिवर्ग		
(ग)		
गजपिप्पली	...	383
गन्धप्रसारिणी	...	224
गन्धमार्जार	...	463
गर्जर	...	219
गम्भारी	...	507
गाजवान	...	272
गागेरुकी		
गिरिपर्पट		
गुंजा	...	138
गुडूची	...	42,493
गुडशर्करा		
गुड़मार	...	264
गुडूच्यादिवर्ग	...	42
गुग्गुलू	...	108,518
गुग्गुल्वादिवर्ग	...	108
गोरखमुण्डी	...	238
गोधूम	...	487
गोरक्ष	...	80
गोरक्षगंजा	...	80
गोरोचन	...	456
गोक्षुर	...	94,295
गोक्षुरादिवर्ग	...	94
घृतवर्ग	...	478
छत्तक	...	392
छत्रवर्ग	...	392
छिलहिण्ट	...	45
छिक्किका	...	242
(ज)		
जटामांसी (मांसी)	...	227
जटामांस्यादिवर्ग	...	227
जम्बू	...	188
जयन्ती	...	149
जयपाल	...	334
जपा	...	78
जलवर्ग	...	473
जाति	...	252
जात्यादिवर्ग	...	252
जातीफलम्	...	322

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कोशातकी ... 196
कोशातक्यादिवर्ग ... 196
क्षीरकाकोली ... 526
(ख)
खदिर ... 169
खर्जूर, ... 378
खत्मी ... 80
खूबकला ... 57
चणक ... 489
चंचु ... 92
चम्पक ... 40
चम्पकादिवर्ग ... 40
चक्रमर्द ... 162
चन्दन ... 330
चन्द्रशूर ... 56
चव्य ... 320
चक्षुष्या ... 160
चालमोगरा ... 66
चाङ्गेरी ... 96
चित्रक ... 243
चित्रकादिवर्ग ... 243
चिल्हक ... 195
चिरविल्व ... 346
चिरविल्वादिवर्ग ... 346
चीनाक ... 490
चुक्र ... 315
चोरक ... 218
(छ)
(त–थ–द–थ.न)
तगर ... 229
तक्र ... 477
त्वक् (दालचीनी) ... 324
तमाल (पत्रम्) ... 326
तरुणी ... 178
तवक्षीर ... 358
ताल ... 376
तालमूली ... 336
तालमूल्यादिवर्ग ... 366
तालीसपत्र ... 353
ताम्रपर्ण (तम्बाकू) ... 287
तिल ... 294
तिलादिवर्ग ... 294
तिक्तादिवर्ग ... 287
जीरक (श्वेत) ... 206
जीरक (कृष्ण) ... 208
जीरकादिवर्ग ... 206
जूफा ... 310
जीमूतक ... 201
जीवक
जीवन्ती ... 262
ज्योतिष्मती ... 116
ज्योतिष्मत्यादिवर्ग ... 116
(झ) झण्डू ... 240
तूदादिवर्ग ... 345
तूत ... 345
तेजोहवा
तुवरी ... 485
तैलपर्णी ... 190

तोदरी ... 57
थुनेर. ... 353
त्रायमाण ... 269
त्रपुष ... 204
त्रिवृत ... 273
त्रिवृतादिवर्ग ... 273
त्रिपुट ... 490
दमनक ... 235
दरियाईनारियल ... 375
दन्ती ... 232
द्रवन्ती ... 334
दर्भ
दारुहरिद्रा ... 46
दाड़िम ... 193
दाडिमादिवर्ग ... 193
दारुहरिद्रादिवर्ग ... 46
दुग्धफेनी ... 239
दुग्धिका ... 334
दुग्धवर्ग ... 474
दूर्व्वा ... 390
देवदारु ... 351
देवदार्वी ... 201
देवदार्व्यीदिवर्ग ... 351
द्राक्षा ... 119
द्राक्षादिवर्ग ... 119
द्रोणपुष्पी ... 309
(प–फ–ब–भ–म)

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तिंनिश ... 145
तिन्दुक ... 250
तिन्दुकादिवर्ग ... 250
तिन्तिडीक ... 127
तुलसी ... 307
तुलसी भेद ... 307
तुलस्यादिवर्ग ... 306
तुवरक ... 66
तुवरकादिवर्ग ... 66
तैलवर्ग ... 484
तुरुष्क ... 181
तुरुष्कादिवर्ग ... 181
तूत ... 345
द्वीपान्तरवचा ... 361
धस्तूर (श्वेत) ... 283
धस्तूर (कृष्ण) ... 284
धन्वन ... 90
धन्वादिवर्ग ... 89
धन्वयास ... 95
धव ... 186
धातकी ... 191
धातक्यादिवर्ग ... 191
धान्यक ... 215
धान्यवर्ग ... 486
धामार्गव ... 203
धान ... 486
नख ... 464
नवनीत ... 477
नागकेशर ... 69
नागकेशर (लाल) ... 69
नागकेशरादिवर्ग ... 69
नागदन्ती ... 334
नागदमनी
नागबला
नागबल्ली ... 320
नाडिहिंगु ... 221
नारिकेल ... 375
नारिकेलादिवर्ग ... 375
निम्ब ... 112
निम्बकादिवर्ग ... 90
निम्बुक ... 112
निर्विषा ... 33
निर्गुण्डी ... 301
पटोल ... 198
पतंग ... 158
पद्मक ... 91,176
पद्मकादिवर्ग ... 176
पनस
पर्णबीज ... 180
परुषक
पर्पटक ... 54
पर्पटादिवर्ग ... 54
प्रतिविषा ... 31
पलाण्डु ... 368
पलाश ... 132
पत्रम् ... 326
पत्तंग ... 158
प्लक्ष ... 344
पाटला ... 292
पाठा ... 43
पातालगरुड़ी
पारिजात ... 253
पारीष ... 78
पारिभद्र ... 150
पारषीकयवानी ... 284
पार्षाणभेदादि वर्ग ... 176
पाषाणभेद ... 176
प्राचीनामलक ... 67
पिचासकार्पास (उलटकम्वल) ... 87
पिप्पली ... 318
पित्तपञ्चक ... 465,510
बब्बूल ... 465
बब्बूलादिवर्ग ... 169,168
बाकुची ... 151
बिकंतक ... 67
बिजया ... 345
बिजयादिवर्ग
बिल्व ... 100
बिम्बी ... 204
बीजक ... 142
बीजपूरक ... 98
बाताम ... 177
वकुल ... 247
बोल ... 110
ब्राह्मी ... 289
बृहती ... 280,499

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

निर्गुण्डयादिवर्ग ... 301
नीली ... 146
नीलगिरी ... 190
पिप्पल्यादिवर्ग ... 318
पीतमूला ... 36
पीलू ... 251
पील्वादिवर्ग ... 251
पुनर्नवा (रक्त) ... 312
पुनर्नवा (श्वेत) ... 312
पुनर्नवादिवर्ग ... 311
पुतिकरन्जादिवर्ग ... 157
पुन्नाग ... 70
पुष्करमूल ... 233
पुत्रंजीवक ... 338
पूग ... 376
पट्टिका - लोध्र ... 249
प्रियंगु ... 302
पूतिकरंज ... 157
पूतिहा ... 308
प्रवाल ... 459
प्रियाल (चिरौंजी) ... 128
पृश्निपर्णी ... 137
वट ... 341
वटादिवर्ग ... 341
बदर ... 118
बदरादिवर्ग ... 118
वनप्सादिवर्ग ... 65
बन्पशा ... 65
वनकार्पाश ... 80
बला
बनपलाण्डु ... 374
मदनफल ... 167
मदयन्तिका ... 192
मरवान्नम् ... 50
महाचञ्चु ... 92
महाकाल ... 198
महानिम्ब ... 114
महामेदा ... 528
महामरीवचा ... 361
महाकाल ... 198
मंजिष्ठा ... 222
मंजिष्ठादिवर्ग ... 221
ममीरा ... 34
भंगा (बिजया) ... 345
भद्रमुस्त ... 384
भव्य ... 39
भव्यादिवर्ग ... 39
भल्लातक ... 125
भाण्डीर ... 305
भारंगी ... 304
भूतकेशी ... 220
भूनाग ... 465
भूम्यामलकी ... 336
भूमिबला ... 82
भुर्ज ... 345
भृंगराज ... 230
भृंगराजादिवर्ग ... 230
मीठामोहरु ... 32
मीठाविष ... 32
मुग्द् ... 488
मुद्गपर्णी ... 135
मुस्तक ... 384
मुञ्ज ... 388
मुस्तादिवर्ग ... 384
मुक्ता ... 458
मुक्ताशुक्ति ... 462
मुष्कक (श्वेत) ... 117
मुरामांसी ... 220
मुचुकुन्द ... 86
मुचुकन्दादिवर्ग ... 86
मूत्र
मूलक ... 58
मूशली (श्वेत) ...
मूर्व्वा ... 264
मेदा ... 526
मुश्कक (श्वेत) ... 254
मेदासक ... 327
माष ... 488
मेथिका ... 154
मेषश्रृंगी ... 264
मृगश्रृंग ... 456
लकुच ... 347
लोणिका ... 68
लोणिकादिवर्ग ... 68
लोध्र (शावरक) ... 248
लोध्रादिवर्ग ... 248

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ममीरी		
मण्डूकपर्णी		
मधु	...	467,519
मधूयष्ठी	...	140
मधूक	...	246
मधुकादिवर्ग	...	246
मयूर	...	470
मयूरशिखा	...	241
मरिच (कृष्ण)	...	318
मसूर	...	488
मानकन्द	...	383
मायाफल	...	349
मदनफल	...	223
मायाफलादिवर्ग	...	349
माषपर्णी	...	136
मांसरोहिणी	...	115
मार्कण्डिका	...	168
मिश्रेया (सौंफ)	...	214
(य–र–ल–व)		
यव	...	486
यवतिक्क्ता	...	209
यवानी	...	209
यवासा	...	149
यष्ठिमधु	...	139
यूथिका	...	253
रक्तचन्दन	...	143
रक्तनियास	...	379
रसोन	...	368
रुद्राक्ष	...	92
राजादन	...	247
राजपाठा	...	44
रास्ना	...	236
राजिका	...	59
राजिकावर्ग	...	55
रूमीमस्तगी	...	129
रेवन्दचिनी	...	315
रोहीतक	...	293
रोहीषकतृण	...	187
लवंग	...	
लवंगादिवर्ग	...	187
लज्जालू	...	174
लताकस्तूरी	...	77
लांगली	...	371
वंश	...	386
वंशलोचन	...	386
वचा	...	381
वचादिवर्ग	...	381
वत्सनाभ	...	31
वनपलाण्डु	...	374
वन्यकर्कटी	...	47
वन्यपटोल	...	199
वराटक	...	462
वन्दाक	...	327
वन्दाकादिवर्ग	...	327
वन्ययवानी	...	308
वरुण	...	61,500
वरुणादिवर्ग	...	61
वाराहीकन्द	...	366
वाराहकन्दादिवर्ग	...	366
वासा	...	296
वासादिवर्ग	...	296
वास्तूक	...	317
वास्तुकादिवर्ग	...	317
विशाला	...	190
व्याघ्रनखी		
वीरतरु	...	174
शिग्रु	...	130
शिम्बिवर्ग	...	132
शिरीष	...	172
शम्बूक	...	461
शिंशपा	...	141
शिवलिंगी	...	205
शुक्ति	...	462
शूकधान्यवर्ग		
श्वेतमूशली	...	373
श्वेतार्क	...	260
श्लेष्मातक	...	271
श्लेष्मातकादिवर्ग	...	271
शैवाल	...	391
शैलेय	...	391
श्योनाक	...	291
श्योनाकादिवर्ग	...	290
शोभांजनादिवर्ग	...	130
श्रृंगाटक	...	194
श्रृंगाटकादिवर्ग	...	194

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लोध्रादिवर्ग ... 248
विडलवण ... 482
विडंग ... 245
विडंगादिवर्ग ... 245
विदारिकन्द ... 452,489
विषतिन्दुकादिवर्ग ... 266
वीरतरु ... 173,174
वृद्धि ... 528
वृद्धदारुक ... 274
वृक्षाम्ल ... 72
(श–ष–स–ह) ...
शंख ... 407
शम्बूक ... 461
शंखपुष्पी (श्वेत) ... 275
शंखपुष्पी (नील) ... 275
शटी ... 358
शणपुष्पी ... 155
शमी ... 173
शतावरी ... 370
शताह्वा (शतपुष्पा) ... 211
शर ... 388
शमिधान्यवर्ग ...
शरपुंखा ... 514,156
शल्लकी ... 111
शाक ... 306
शालपर्णी ... 136
शाल्मली ... 84
शाल्मल्यादिवर्ग ... 84
शाल ... 72
शालादिवर्ग ... 72
श्याहजीरा ... 208
शिकाकाई ... 176
समुद्रफल ... 185
समुद्रफेन ... 472
सातला ... 341
सामुद्रलवण ... 482
समुद्रफल ... 189
सारिवा (श्वेत) ... 261
सारिवा (कृष्ण) ... 262
सांभरलवण ... 483
सिल्हक ... 181
सिताफल ... 41
श्रृंगीविष ... 32
सरल ... 352
सर्ज ... 74
सर्षप ... 60
सर्पगन्धा ... 258
सप्तपर्ण ... 256
सप्तचक्रा ... 195
सप्तचक्रादिवर्ग ... 181
सिल्हक ... 181
सत्यानासी ... 51
सहदेवी ... 234
हरमल ... 103
हंसराज ... 391
हंसराजादिवर्ग ... 391
हरिद्रा ... 355
हरिद्रादिवर्ग ... 354
हरीतकी ... 183
हरीतक्यादिवर्ग
हरिद्रु ... 227
हिंजल ... 189
हपुषा ... 195,353
हिंगु ... 517,216
हिंस्त्रा ... 61
हुलहुल ... 64
हृत्पत्री ... 290
हिज्जल ... 184
सुगन्धवास्तूक ... 317
सुदाव ... 103
सुरंजान ... 372
सुरपुन्नाग ... 69
स्नुही ... 337
सूचि (वैलेडोना) ... 286
सूरण ... 382
सैरेयक ... 300
सैन्धवलवण ... 481
सैरेयकादिवर्ग ... 299
सोम (प्रचलित) ... 350
सौवर्चल लवण ... 483
सोमादिवर्ग ... 350
स्थौणेयक ... 353
स्वर्णक्षीरी ... 51,538

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयुक्त-पारिभाषिक शब्दों की सामान्य तालिका

Acuminate	लम्वाग्र	*Capitulum*	मुंडक/केपिटुलम
Acute	निशिताग्रा, तीक्ष्णाग्र	*Capsular-fruit*	संपुटीफल
Aestivation	पुष्पदल विन्यास	*Capsule*	सम्पुट
Adanate	संलग्न	*ChlorophyII*	पर्णरहित
Alternate	एकान्तर	*Circular*	वृत्ताकार
Amplexicaule	स्तम्भालिंगी	*Climber*	आरोहीलता
Anther	परागकोश	*Climbing plant*	आरोहीपादप
Arragment	विन्यास	*Creeper*	विसर्पी-लता
Auriculate	पालिरुप	*Crenate*	कुंठदंती
Annulate	वलयाकार	*Conical*	शंक्वाकार
Angiospermum	आवृतबीजी	*Cuneate*	फानाकार
Axillary	कक्षीय	*Cyclic*	चक्रीय
Apex	अग्रक, पत्रांग्र	*Cylindrical*	वेलनाकार
Androecium	पुं-केशरी, पुगंग	*Cordate*	हृदयाकार
Acicular	सूच्याकार	*Corolla*	दलपुञ्ज
Aquatic	जलीय	*Cymose*	सीमाक्षी
Annuals	एकवर्षी	*Corky*	काग/कार्कि
Annual	वार्षिक	*Compound leaf*	संयुक्त पत्र
Annular	वलयाकार	*Dentate*	श्वदंती
Axil	कक्ष	*Deciduous*	पर्णपाती/पाती
Angular	कोणीय	*Decumbent*	भूशायी
Biennial	द्विवर्षी	*Diclinous*	एकलिंगी
Bifid	द्विशाखी	*Dicotyledon*	द्विबीजपत्री
Bifoliate	द्विपर्णी	*Disk floret*	बिम्ब-पुष्पक
Bisexual	द्विलिंगी	*Divergent*	अपसारी
Bract	सहपत्र	*Decurent*	अधोवर्धी
Bract-scale	सहपत्र-शल्क	*Diameter*	व्यास
Bracteole	सहपत्रिका	*Erect*	उर्घ्वसंस्थित
Brittle	भंगुर	*Ellipse*	दीर्घवृत
Branching	शाखन	*Elliptic*	दीर्घवृत्तीय
Bulb	शल्ककन्द	*Elliptical*	दीर्घवृत्ताकार/दीर्घवृतीय
Bud	कलिका	*Entire*	अच्छिन्न, सरलतट
Bark	छाल	*Endogenous*	अन्तर्जात
Blade	पटल	*Epicarp*	ब्राह्मफलभित्ति
Caducous	आशुपाती	*Epiderm*	बाह्मत्वचा
Calyx	बाद्यदलपुञ्ज	*Epiphyte*	अधिपादप
Capitate	समुंड	*Evergreen*	सदाहरित, सदापर्णी
Ex-Stipellate	अनुपपर्णी	*Inflorescens*	पुष्पक्रम, मंजरी
Family	कुल, कुटुम्ब	*Inter node*	पर्व
Female	स्त्री, मादा	*Inter petiolar*	अंतरावृत्तक
Fibrous	रेशेदार	*Involucre*	सहपत्र चक्र
Fistular	नलीदार	*Juice*	रस

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Flora	वनस्पति समूह	*Joint*	सन्धि
Floret	पुष्पक	*Lanceolate*	भालाकार
Flower	पुष्प	*Lateral*	पार्श्व–पार्श्विक
Foliage leaf	सामान्य पत्र	*Latex*	लेटेक्स, खड़क्षीर
Foliate	पर्णिल	*Leaf*	पर्ण, पत्र
Fruit	फल	*Leaflet*	पत्रक
Fugacious	आशुपाती	*Leaf stalk*	पर्णवृन्त
Fleshy	मांसल; गूदेदार	*Legume*	फली, शिंव
Gall	पिटिका	*Linear*	रेखाकार
Green	हरित	*Local*	स्थानीय, स्थानिक
Greenish	हरिताभ	*Lobed*	खण्डित
Glabrous	अरोमिल	*Lobe*	पालि, खण्ड
Genera	वंश, जीनस	*Leaf margin*	पत्र तट
Gland	ग्रन्थि	*Lateral side*	पार्श्व पृष्ट
Glandular	ग्रंथिल, ग्रंथिमय	*Male*	नर/पुं
Globose	गोलाकार	*Margin*	सीमा, तट
Globular	गोलाकार	*Marginal*	सीमांत
Gynaeceum	जायांग	*Micropyle*	वीजांडद्वार
Gymnosperm	अनावृतबीजी	*Milky*	क्षीरी, दुग्धयुक्त
Grey-Whitish	श्वेताभ	*Modification*	रूपान्तर, परिवर्तन
Habit	प्रकृति	*Monandrous*	एक–पुंकेसरी
Habitat	आवास	*Membranous*	भिल्लीमय
Hair	रोम	*Monoclinous*	उभयलिंगी
Hairy	रोमिल	*Monocotyledon*	एकबीज पत्री
Hastate	भालाकार	*Monoecious*	उभय–लिंगाश्रयी
Heart shaped	हृदयाकार	*Morphological*	आकृतिक
Heart wood	अंतः काष्ठ	*Multilocular*	बहुकोष्ठी
Herb	शाक, बूटी	*Multicellurlar*	बहुकोशिक
Herbaceous	शाकीय	*Nodose*	गांठदार
Hermaphrodite	उभयलिंगी	*Nodular*	ग्रन्थिकी
Hill	पहाड़ी	*Obcordate*	अधोमुख हृदयाकार
Hill Forest	पहाड़ीवन, पर्वतीवन	*Oblanceolate*	अधोमुख भालाकार
Hoary	श्वेतरोमिल	*Oblique*	तिर्यक्, तिरछा
Horticulture	उद्यान कृषि	*Oblong*	दीर्घायत
Hooked	अंकुशाकार	*Obovate*	अधोमुख अण्डाकार
Hooded	फणाकार	*Obtuse*	कुंठाग्र
Imparipinnate	विषम पक्षाकार	*Opposite*	विपरीत, सम्मुख
Orbicular	वर्तुल	*Recumbent*	शयान
Oval	अण्डाकार	*Rose*	गुलाबी
Ovoid	अंडाभ	*Reddish brown*	रक्ताभ भूरा
Ovate	लट्वाकार	*Regular*	समनियमित
Order	गण	*Reniform*	वृक्काकार
Orang-Yellow	नारंग, पीत	*Reticulated*	जालिका रूपी
Pair	युग्म, युगल	*Retuse*	खांचाग्री
Palmate	हस्ताकार	*Rhizome*	प्रकंद
Palmatifid	दीर्ण–हस्ताकार	*Rhizomatus*	प्रकंदी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Pappus	रोमगुच्छ
Parasite	परजीवी
Parasitic	परजीवी
Pedicel	वृंत्त, पुष्पवृन्त
Pedicle	वृंतक
Peduncle	पुष्पावलि–वृंत
Perianth	परिदल पुञ्ज
Pericarp	फलभित्ति
Petal	दल, पंखुड़ी
Petiole	वृंत, पर्णवृंत
Petiolate	सवृन्त
Pink	गुलाबी
Pinnate	पिच्छाकार
Pari-pinnate	युग्म–पिच्छाकार
Pinnatifid	दीर्ण–पिच्छाकार
Pinnatipartite	दीर्णतर–पिच्छाकार
Pinnatisect	दीर्णतम–पिच्छाकार
Pollon	पराग
Prickly	तीक्ष्णवर्धी
Projecting	प्रक्षेपी
Pseudo bulb	आभासी शल्ककन्द
Pubescent	रोमिल
Purple	नील–लोहित
Procumbent	शयान
Perennial	बहुवर्षी
Polymorphous	बहुरूपी
Qundrangular	चतुर्भुजी
Ray-floret	अर–पुष्पक
Raceme	असीमाक्ष
Racemose	असीमाक्षी
Rachis	पिच्छाक्ष
Radical	मूलज
Rectangular	समकोणिक
Toothed	दंन्तुर
Triangular	त्रिभुजीय, त्रिकोणीय
Tree	वृक्ष
Trifoliate	त्रिपर्णक
Tropical region	उष्णकटिबंधी प्रदेश
Trunk	काण्ड
Tuber	कंद
Tuberous	कन्दिल
Tubular	नलिकाकार
Twiner	वल्लरी
Twig	टहनी
Turbinate	लट्टूरूपी
Trilocular	त्रि–कोष्ठकी, भि–कोष्ठी
Rhomboid	समान्तर
Root stock	प्रकन्द, मूलस्तम्भ
Root tuber	मूलकन्द
Root hair	मूलरोम
Rough	रूक्ष
Scale leaf	शल्कपत्र
Sepal	बाह्यदल
Serrate	क्रकची
Sessile	अवृंत
Shoot	प्ररोह
Solitary	एकल
Shrub	क्षुप, झाड़ी
Simple	साधारण, सरल
Simple fruit	एकल फल
Simple leaf	सरलपर्ण
Species	जाती, स्पीशीज
Spike	स्पाइक
Spinose	शूलमय
Spiral	सर्पिल
Stalk	वृन्त
Stem	तना, काण्ड
Stipulate	अनुपर्णी
Stipule	अनुपर्ण
Succulent	गूदेदार, रसदार
Surface	पृष्ठ, सतह
Spurred	दलपुटयुक्त
Sharp	तीक्ष्ण
Temperate zone	शीतोष्ण कटिबंध प्रदेश
Tendril	प्रतान
Terminal	अंतस्थ, अन्तिम, अग्रस्थित
Terminal bud	अंतस्थ, कलिका
Terrestrial	स्थलीय, भौमिक
Thorn	कांटा
Unifoliate	एकपर्णी
Unisexual	एकलिंगी
Upper surface	उर्ध्वपृष्ठ
Verticillate	चक्रकी
Violet	बैंगनी
Velvety	मखमली
Vasicant	स्फोटकर
Variety	किस्म/भेद
Whorl	चक्कर
Whorled	चक्करदार
Wing	पक्ष, पंख
Wing scale	पक्ष–शल्क
Wood	दारु, काष्ठ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Tri-prinnate	त्रि-पिच्छाकार	*Woody*	काष्ठमय
Umbel	पुष्पछत्र	*Woolly*	लोमश, तूलरोमश
Umbellate	पुष्पछत्री	*Xygomorphic*	एकव्यास, सममित

संदर्भग्रन्थः

१ अष्ठांग संग्रह की वनौषधियाँ डॉ० मायाराम उनियाल श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, पटना
२ अष्टांग संग्रह संहिता, टीका श्री अत्रिदेव गुप्त, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९५१ ।
३ अष्टांगहृदय कोष, श्री वैद्य के० एम० वलापाड, द० मलाबार, १९३६ ।
४ अष्टांगहृदय संहिता, टीका अरुणदत्त, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९२४ ।
५ अभिनव बूटी दर्पण, भाग १-२, श्री रूपलाल वैश्य, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, १९४७ ।
६ अमरकोश, टीका रामाश्रमी, ६ ठी० आ०, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९४४ ।
७ ओषधीसंग्रह (मराठी), डॉ० वा० ग० देसाई, वैद्य या० त्रि० आचार्य, बंबई १९२७ ।
८ काश्यपसंहिता, टीका श्री सत्यपाल, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, १९५३ ।
९ कैयदेव निघण्टुः (पथ्यापथ्य विवोधक ग्रन्थः), टीका श्री कविराज सुरेन्द्र मोहन, दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, लाहोर, १९२८ ।
१० चक्रदत्त, टीका श्री जगदीश्वर प्रसाद त्रिपाठी, चौखाम्बा प्रकाशन, वाराणसी, १९४९ ।
११ चरकसंहिता, टीका चक्रपाणि, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९४१ ।
१२ द्रव्यगुणविज्ञानम्, उ०, द्वि० ख०, श्री यादवजी श्री विक्रमजी आचार्य, निर्णयसागर प्रेस, बंबई-२, १९५० ।
१३ द्रव्यगुणविज्ञान, भाग २-३, श्री प्रियव्रत शर्मा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, १९५६ ।
१४ निघण्ट रत्नाकर, टीका श्री कृष्ण शस्त्री नवरे, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९३६ ।
१५ निघण्टु आदर्श (गुजराती), भाग १-२, श्री वैद्य बापालाल ग० शाह, हंसोट, जि० ब्रोच, १९२७-२८ ।
१६ प्रारम्भिक उद्भिद् शास्त्र, श्री ठा० बलवन्तसिंह, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, १९४९ ।
१७ बिहार की वनस्पतियां, श्री ठा० बलवन्तसिंह, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, कलकत्ता, १९५० ।
१८ भारतीय वनौषधि (बंगला), भाग १-३, श्री कालीपद विश्वास, कलकत्ता, विश्वविद्यालय, कलकत्ता, १९५० ।
१९ भावप्रकाश टीका श्री लाला शालिग्राम वैश्य, खेमराज श्री कृष्णदास, बंबई, १९०७ ।
२० भावप्रकाश निघण्टु, टीका श्री विश्वनाथ द्विवेदी, तृ० सं०, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९५४ ।
२१ भावप्रकाश निघण्टु, के० सी० चुनेकर हिन्दी अनुवाद, १९६९ ।
२२ मदनविनोद, टीका श्री नन्दकिशोर शास्त्री, वाराणसी, १९३८ ।
२३ यूनानी द्रव्यगुणविज्ञान, श्री ठा० दलजीत सिंह, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९४९ ।
२४ राजनिघण्टुसहितो धन्वन्तरीयनिघण्टुः, टीका श्री नारायण विट्ठल पुरंदरे, आनन्दाश्रम प्रेस, पूना, १८९६ ।
२५ वनस्पति परिचय, श्री अन्तूभाई वैद्य, आयुर्वेद रिसर्च इंस्टिट्यूट, फोर्ट, बंबई, १९५२ ।
२६ वनौषधि चन्द्रोदय, भाग १-१०, श्री चन्द्रराज भण्डारी, ज्ञानमन्दिर, भानपुरा (इन्दौर), १९३८ ।
२७ वनौषधि दर्शिका, श्री ठा० बलवन्तसिंह, आयुर्वेदिक कालेज यूनियन, का० हि० वि० वि०, वाराणसी, १९४८ ।
२८ वृन्दमाधव, आनन्दाश्रम, पूना, १९४३ ।
२९ वैद्यक शब्दसिन्धुः, श्री कविराज उमेशचन्द्र गुप्त, कलकत्ता, १९१४ ।
३० ग्लासरी आफ वेजिटेबिल व ड्रग्स इन वृद्धत्रयी ।

ठा० बलवन्त सिंह
चौखम्बा संस्कृत सिरीज १९७२
वाराणसी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

३१ शालिग्राम निघण्टू भूषण, श्री लाला शालिग्राम वैश्य, खेमराज श्री कृष्णदास, बंबई, १९५३ ।
३२ संदिग्धनिर्णय वनौषधशास्त्र, भाग १–९, श्री पं० भगीरथ स्वामी, १४३ हरीसन रोड, कलकत्ता, १९३६ ।
३३ सचित्र वनस्पति गुणादर्श, भाग १–२, श्री वैद्य हिरामण मोतीराम जंगले, वाघली, पूर्वखानदेश (महाराष्ट्र) ।
३४ सुश्रुतसंहिता, टीका डल्हण, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९१६ ।
३५ उत्तराखण्ड वनौषधि दर्शिका डा० मायाराम उनियाल, केन्द्रीय आयुर्वेद सिद्ध अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली,

1 Anonymous, A Consolidated Glossary of Technical terms, Central Hindi Directorate, Delhi, 1962.
2 " Handbook of Agriculture, I. C. A. R., New Delhi, 1961.
3 " Pharmacopoeia of India, Ministry of Health, New Delhi, 1955.
4 " The Wealth of India (Raw Materials), Vols. 1-6, C. S. I. R., New Delhi, 1948-1962.
5 Aiyer, K. Narayan, Pharmacognosy of Ayurvedic Drugs of Travancore Cochin, Nos. 1-9, Central Research Institute, Trivandrum, 1951-1966.
6 Apte, V.S., Sanskrit English Dictionary.
7 Aykroyd, W.R., Gopalan, G., Balsubramanian, S.C., The Nutritive value of Indian foods and the Planning of satisfactory diets, 6th edn., I.C. M. R., New Delhi, 1963.
8 Bailey, L. H., Standard Cyclopedia of Horticulture, Vols. 1-3, The Macmillan Co., New-York, 1947.
9 Blatter, E., Beautiful Flowers of Kashmir, Vols. 1-2, John Bale, Sons & Danielsson Ltd., London, 1929.
10 Blatter, E., Millard, W.S., Stearn W., Some beautiful Indian Trees, 2nd edn; The Bombay Natural History Society, Bombay, 1924.
11 Chopra, R. N. Chopra, I.C., Handa, K.L., Kapur, L.D., Chopra's Indigenous Drugs of India, 2nd edn., U.N. Dhar & Sons Pr. Ltd., Calcutta-12, 1958.
12 Chopra R. N., Nayar, S.L., Chopra, I. C., Glossary of Indian Medicinal Plants, C. S. I. R., New Delhi, 1956.
13 Chopra, R.N., Badhwar, R. L., Ghosh, S., Poisonous Plants of India, Vols. 1-2; I.C. A. R., New Delhi. 1949, 1965.
14 Chopra, R.N., Chopra, I.C., A Review of work on Indian Medicinal Plants, I. C. M. R., New Delhi, 1955.
15 Claus, E. P., Pharmacognosy, 4th edn., Lea & Febiger, Philadelphia, 1961.
16 Cooke, T., Flora of Bombay, Vols. 1-3, Botanical Survey of India, Calcutta, reprt., 1958.
17 Cowen, D.V., Flowering Trees and Shrubs, Thacker & Co. Ltd., Bombay, 1950.
18 Dastur, J. F., Medicinal Plants of India and Pakistan, D.B. Taraporewala Sons & Co. Ltd., Bombay-1, 1951.
19 Dey, K.L., Indigenous Drugs of India, Thacker Spink & Co., Calcutta, 1896.
20 Duthie, J.F. Flora of Upper Gangetic Plain, Vols. 1-2, Botanical Survey of India, Calcutta report., 1960.
21 Dutta, A. C., A Class-Book of Botany, 6th edn., Humphrey Milford, Oxford Unversity Press, Calcutta, 1945.
22 Dutt, U. C., The Materia Medica of the Hindus, M. C. Das, 146, Lower Chitpore Road, Calcutta-1, 1922.
23 Dymock, W., Warden, C. J. H., Hooper, D., Pharmacographia Indica, Vols., 1-3, Trubner & Co. London, 1890-99.
24 Firminger, T.A., Firminger's Manual of Gardening for India, 8th edn., Thacker Spink & Co. Ltd., Calcutta, 1947.
25 Ghosh, R., Materia Medica & Therapeutics, 18th edn.,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Hilton & Co., Calcutta, 1949.
26 Greenish, H. G., The Microscopical Examination of Foods and Drugs, 3rd edn., J. & A. Churchill, London, 1923.
27 Haines, H. H., Botany of Bihar & Orissa, Botanical Survey of India, Calcutta, reprt., 1961.
28 Hocking, G. M., A Dictionary of Terms in Pharmacognosy, Charles C. Thomas, Springfield, Illinois, 1955.
29 Hooker, J. D., Flora of British India, Vols. 1-7, L. Reeve & Co., London, 1872-1897.
30 Jain, S. K., Medicinal Plants, National Book Trust, New Delhi, 1968.
31 Johansen, D.A., Plant Microtechnique, Mc. Graw-Hill Book Co., London, 1940.
32 Kanjilal, U.N., Kanjilal, P. C., Das, A., Flora of Assam, Vols. 1-5, Government of Assam, 1935.
33 Kirtikar, K. R., Basu, B. D., Indian Medicinal Plants., 2nd edn., L. M. Basu, Allahabad, 1933.
34 Krishnamurthi, S, Horticultural and Economic Plants of the Nilgiris, Coimbatore, 1953.
35 Macmillan, H.F., Tropical Planting and Gardening, 5th edn., Macmillan & Co., London, 1962.
36 Maheshwari, P., Singh, U., Dictionary of Economic Plants in India, I. C. A. R., New Delhi, 1965
37 Mc Cann, C., 100 Beautiful Trees of India, Bombay, 1959.
38 Mooss, N. S., Ayurvedic Flora Medica, No. 1, Vaidyasarathy, Kottayam, 1953.
39 Mukerji, B., The Indian Pharmaceutical Codex, Vol.1, C.S.I.R., New Delhi, 1953.
40 Nadkarni, A.K., Indian Materia Medica, Vols. 1-2, 3rd edn., Popular Book Depot, Bombay-7, 1954.
41 Pal, B. P., Beautiful Climbers of India, I. C. A. R., New Delhi, 1960.
42 Prain, D., Bengal Plants, Botanical Survey of India, Calcutta, reprt. 1963.
43 Pratt, R., Youngken, H. W., Pharmacognosy, 2nd edn., J. B. Lippincott Con, Montreal, Philadephia, 1956.
44 Raghuvira, Elementary English-Indian Dictionary of Scientific Terms, Sarasvati Vihar, Delhi, 1950.
45 Ramstad, E., Moder Pharmacognosy, Mc. Graw Hill Book Co. Inc., London. 1959.
46 Randhava, M.S., Flowering Trees in India, I.C. A. R., New Delhi. 1957.
47 Randhava M. S., Beautiful Trees and Gardens, I. C. A. R., New Delhi. 1961.
48 Randhava, M.S., Flowering Trees, National Book Trust, New Delhi, 1965.
49 Torfrida, Flowering Trees of India, Thacker & Co., Bombay, 1947.
50 Trease, G. E., A Textbook of Pharmacognosy, 8th edn., Bailliere Tindal & Cox, London, 1961.
51 Uphof, J. C. The Dictionary of Economic Plants, Hafner Publishing Co., New York, 1959.
52 Wallis, T. E., Practical Pharmacognosy, 5th edn., J. A. Churchill Ltd., London. 1948.
53 Wallis, T.E., Text Book of Pharmacognosy, 3rd edn., J. & A. Churchill Ltd., London, 1955.
54 Watt. G., A Dictionary of the Economic Products of India Vols. 1-6, Calcutta, 1889-99.
55 Wight, R., Icones Plantarum India Orientalis.
56 Willis, J.. C., A Dictionary of the Flowering plants and Ferns, 6th edn., University Press, Cambridge, 1951.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सन्दर्भग्रन्थों के संक्षिप्त नामों का विवरण

१	च० सू० अ०	चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय
२	च० चि० अ०	चरक संहिता चिकित्सा अध्याय ।
३	च० वि० अ०	चरक संहिता विमान अध्याय ।
४	सु० स० अ०	सुश्रुत संहिता अध्याय ।
५	सु० चि० अ०	सुश्रुतसंहिता चिकित्सा अध्याय ।
६	सु० उ० अ०	सुश्रुत उत्तरतन्त्र अध्याय ।
७	अ० हृ० सू०	अष्टा ंगह्रृदय सूत्र अध्याय ।
८	अ० सू० अ०	अष्ठांगसंग्रह सूत्र अध्याय
९	ध० नि०	धन्वन्तरिनिघण्टु
१०	कै० नि०	कैय्यदेवनिघण्टु
११	भा० प्र०	भावप्रकाश निघण्टु
१२	रा० नि०	राजनिघण्टु
१३	नि० स०	निघण्टुसंग्रह
१४	म० नि०	मदनपाल निघण्टु
१५	क्षे० कु०	क्षमेकुतूहल
१६	च० द०	चक्रदत्त
१७	शो० नि०	शोडलनिघण्टु

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ-संख्या	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ-संख्या
औदिभिज	औद्भिजः	3	मूत्रक	मूत्रल	264
निर्ग्गुण्डी	निर्गुण्डी	8	मतजज	अशुद्ध	268
मुद्दीका	मृद्विका	8	पत्रतय	पत्रतट	285
स्वदंष्ठा	श्वदंष्ट्रा	9	मण्डकपर्णी	मण्डूकपर्णी	289
से	के	14	मुक्त	युक्त	294
औद्भज	औद्भिज	17	कोकिलास	कोकिलाक्ष	297
लगज	लगभग	20	फणीञ्मक	फणीम्झक	308
पिश्वा	विश्वा	29	रक्तपदर	रक्तप्रदर	313
हयदयाकार	हृदयाकार	30, 31	प्रयोज्ययांग	प्रयोज्यअंग	322
वत्वसकादि	वत्सकादि	31	लाल	लाला	324
हे	है	32	पूर्तिहर	पूतिहर	324
विर्षली	विषैली	32	अधोभाग	अधोभागहर	337
पौदा	पौधा	37	परिस्टल	परिसृत	340
अंक	अङ्ग	39, 50	आसोड	अक्षोड	347
पतनाशक	वातनाशक	40	सन्दर	सुन्दर	352
कष्ठों	काष्ठों	47	पाचान	पाचन	356
त्रिपुष	त्रपुष	48	वेलनकार	बेलनाकार	358
खाजों	खोजों	65	246	346	367
Hus	Rhus	127	उग्रन्धी	उग्रगन्धी	369
दशमुल	दशमूल	138	एलुफा	एलुआ	369
हदयोत्तेजक	हृदयोत्तेजक	138	मधु	मधुर	371
त्रियेत्रक	त्रिपत्रक	145	वल्म	बल्य	371
पत्रस्वरूप	पत्रस्वरस	146	Supenba	Superba	
बीजपूर्ण	बीजचूर्ण	146	तगरी	गिरी	375
शिवहर	श्वित्रहर	152	कण्ठस्य	कण्ठय	381
वाससंशमन	वातसंशमन	180	फङ्गास	पक्कस	392
उत्पन्न	उत्पल	188	स्वर्णशीरी	स्वर्णक्षीरी	393
सुषकी	सुषवी	204	मय	भय	393
महाकाव्य	महाकषाय	212	उदाशूल	उदरशूल	394
शताहवा	शताह्वा	212	उष्णक	उष्ण	404
सिंहजी	सिंहली	215	हृदोग	हृद्रोग	404
राक्	रुक्	232	अंगुस	अगुरु	444
लातास्राव	लालास्राव	238	एलाछ्यं	एलाद्वयं	448
फलस्वरसर	पुष्पस्वरस	209	शिरोवस	शिरोबक्ष	465
शवक	क्षवक	242	राजयाक्ष्मा	राजयक्ष्मा	465
कफधन	कफध्न	254	शक्ति	शुक्ति	465
सर्पगन्ध	सर्पगन्धा	258	जांगाल	जांगल	480

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद
Central Council for Research in Ayurveda and Siddha

पुरस्कार एवं पारितोषिक योजना
Awards and Prizes Scheme

यह प्रमाणित किया जाता है कि श्री/श्रीमती/कु. डॉ॰ मायाराम उनियाल

को उनके द्वारा लद्दाख की वन-संपदा एवं परम्परागत तिब्बती (आमची) चिकित्सा प्रणाली (औषध-अनुसंधान)

के क्षेत्र में किए गए अनुसंधान कार्य के लिए परिषद का वर्ष 1987-88

का पुरस्कार प्रदान किया गया है।

This is to certify that Shri/Smt. Dr. M. R. Uniyal

has been awarded

the CCRAS Award for his/her research work in the field of

Medico-botanical Exploration of Laddakh Region & Amachi Practices for the year 1987-88

विवेकानन्द पाण्डेय
निदेशक/ Director
केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद नई दिल्ली।
Central Council for Research in Ayurveda and Siddha New Delhi

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1

द्रव्य गुणविज्ञान का सामान्य परिचय एवं वर्गीकरण

द्रव्य—गुण–विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र का एक प्रधान अंग है । इस शास्त्र में औषध–द्रव्यों के गुण कर्मों के साथ–2 द्रव्य के सामान्य परिचय, प्रकृतिविज्ञान, संग्रह व संरक्षणज्ञान, प्रभाव, संस्कार, मात्रा आदि के परिचय को वताने वाला विशाल शास्त्र है । यह शास्त्र प्राय: चिकित्सा सम्बन्धी औषधियों के शरीर पर होने वाले मुख्य प्रभाव को बतलाता है ।

प्राचीन काल से ही हमारे महर्षियों ने इस विशाल शास्त्र का अध्ययन करके इस विज्ञान का निर्माण किया है ।

द्रव्य का लक्षण : (1) जिसमें कर्म व गुण आश्रित हों, तथा जो अपने कार्य द्रव्यों का समवायिकारण हो वह द्रव्य कहलाता है ।

वैशेषिक (2) मतानुसार जिसमें क्रिया व गुण दोनों रहते हैं और जो क्रिया व गुण दोनों का समवायी कारण होता है उसे द्रव्य कहते हैं ।

चरक के मतानुसार "जो पदार्थ कर्म और गुण के आश्रय हों तथा जिसमें कर्म व गुण समवाय कारण रुप में निवास करते हों" वह भी द्रव्य है । यहाँ पर भी यदि दर्शनों की तरह विचार करें तो कार्य व कारण द्रव्य दोनों का ही समावेश हो जाता है । साथ ही पृथ्वी (3) जल, तेज, वायु, आकाश, आत्मा, मन, काल, दिशायें, बुद्धि एवं मन आदि अनेक द्रव्यों व गुणों का भी समावेश कर लिया जाता है ।

महर्षि सुश्रुत ने स्पष्ट रुप से लिख दिया है कि द्रव्य से औषध का ग्रहण करना चाहिये । स्थावर एवं जड़्गम भेद में विभक्त इस कार्य द्रव्य की परिभाषा को भावमिश्र और नागार्जुन ने और भी स्पष्ट कर दिया है कि जिसमें रसादि "(4) रस–गुण–वीर्य–विपाक–प्रभाव" ये पांच रहते हैं वह भी द्रव्य हैं ।

द्रव्य का पञ्चभौतिकत्व :— (5)

द्रव्य–गुण विज्ञान में कहे गये सभी द्रव्य पांच-भौतिक हैं ।

महर्षि चरक ने स्पष्ट निर्देश किया हैं कि पृथ्वी पर जितने द्रव्य हैं वे सब पांच-भौतिक हैं । अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश इन पांचों के मूलभूतों के समुदाय के मेल से समस्त द्रव्यों की उत्पत्ति होती है । प्रत्येक द्रव्य पांच भौतिक होने पर भी पृथ्वी आदि एक एक महाभूत की अधिकता के कारण यह द्रव्य पार्थिव हैं; आप्य, तैजस एवं वायवीय है ऐसा व्यवहार होता है । प्रत्येक द्रव्य पांच भौतिक होने पर भी द्रव्य की उत्पत्ती में पृथ्वी इसका अधिष्ठान है । जल योनिरुप अर्थात् इसके अवयवों के अणुओं को मिलाने वाला है । इस प्रकार इस सृष्टि को पंचमहा-भूतात्मक माना गया है एवं सृष्टि के सभी द्रव्य औषधमय है ।

द्रव्यों का वर्गीकरण :—

इस सृष्टि में द्रव्य अपरिमित हैं । आयुर्वेद में औषधियों का वर्गीकरण कई प्रकार से उपलब्ध है । समग्र सृष्टि के अनुसार इसके दो भेद पाये जाते हैं । यथा वैदिक क्रमानुसार (6) साशन, अनशन ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चरक मतानुसार चेतनावत् (सेन्द्रीय) अचेतनावत् (निरीन्द्रिय) चेतन (सेन्द्रीय) द्रव्य उसे कहते हैं जिसमें चेतना (जीव) की अभिव्यक्ति हो यथा मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि । इसके विपरीत अचेतन (निरीन्द्रिय) द्रव्य उसे कहते हैं. जिसमें चेतना की अभिव्यक्ति नहीं होती है और जीवन की संवेदनायें प्रच्छन्न और अस्फुट रुप से चलती हैं यथा. स्वर्ण, रजत, लौह आदि ।

चेतन (सेन्द्रीय) द्रव्यों के पुनः दो भेद होते हैं । यथा

1. अंतश्चेतन, 2. वहिरन्तश्चेतन

अंतश्चेतन जिनकी चेतनायें अंतर्निहित होती हैं । जो आहार का ग्रहण करते हैं, बढ़ते हैं, सुख-दुख अनुभव करते हैं एवं चेतनाभिव्यक्ति बाहर से दृष्टिगोचर नहीं होती है उन्हें अंतश्चेतन कहते हैं । यथा स्थावर, उदभिदद्रव्य ।

वहिरन्तश्चेतन :—वे हैं जिनमें चेतनाओं की अभिव्यक्ति बाह्य व आभ्यन्तर दोनों प्रकार से होती है, जो अपने सुख व दुख की स्थिति व्यक्त करते हैं । यथा मनुष्य, पशु, पक्षी ।

स्वरूपभेद से द्रव्यों का वर्गीकरण : (7)

(1) औद्भिज (Vegetable drugs) (2) प्राणिज (Human drugs)
(जान्तव–जाङ्गम) (Animal drugs) 3 पार्थिव (भौम) (Mineral drugs)

(1) उद्भिद :—अर्थात् उदभिद्य पृथिवी जायते इति" पृथ्वी को फोड़कर जो बाहर आते हैं वे उदभिद् या औद्भिज कहलाते हैं। वृक्ष, लता, वनस्पति आदि ।

(2) प्राणिज :—(जान्तव) अर्थात् जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं, ऐसे प्राणियों से प्राप्त द्रव्य प्राणिज कहलाते हैं। जैसे गोरोचन, कस्तूरी, मखखन, मांस, मधु, लोभ आदि ।

(3) पार्थिव :—पृथ्वी के विकास रूप जो आहारीय या औषधीय द्रव्य हों वे पार्थिव कहे जाते हैं । यथा–सुवर्ण, सैन्धव, मल्ल, लवण, मनःशिला, हरिताल, स्वर्णगैरिक, आदि ।

प्राणिज (जाङ्गम) द्रव्यों के भी पुनः शास्त्रकारों ने चार भागों में विभक्त किया है । यथा–1 जरायुज, जो जरायु या गर्भ से जन्म लेते हैं जैसे- मनुष्य, पशु आदि ।

2. अण्डज :—जो विशेषकाल तक अण्डे के रुप में रहते हैं और जन्म लेते हैं । यथा पक्षी, पंत्तग आदि ।

3. स्वेदज :—जो स्वेद या उष्मा से जन्म लेते हैं, कृमि, कीट आदि ।

4. उद्भिज :—जो पृथ्वी को भेद कर बाहर जाते हैं । मंडूक, इन्द्रगोप आदि ।

औद्भिज :—(8) (Vegetable drugs) द्रव्यों को भी शास्त्रकारों ने चार भेदों में वर्गीकरण किया है यथा — 1 वनस्पति 2 वानस्पत्य 3 औषधि 4 वीरुध । इन चारों भेदों का समावेश आधुनिक वनस्पतिशास्त्र के आधार पर सपुष्पसृष्टि (Phanerogams) एंव अपुष्पसृष्ठि (Cryptogams) इन दो श्रेणियों के अन्तर्गत आ जाता है ।

वनस्पति :—(9) पुष्पों के बिना भी जिसमें फल आते हैं वे वनस्पति कहलाते हैं यथा—उदुम्वर, वट, अश्वत्थ, आदि । महार्षि सुश्रुत ने वनस्पति शब्द की परिभाषा में अपुष्पा शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ यह है कि वट, गूलर आदि वृक्षों में नर एवं मादा पुष्प नहीं होते अपितु इनके पुष्प बाह्यरूप से दिखाई नहीं देते हैं, इस कारण से

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

"अपुष्पाः फलवन्तों वनस्पतयः" ऐसा कहा गया है । सपुष्प वानस्पत्य द्रव्यों में पुष्प एवं फल स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं । यथा आम्र, जम्वु दाडिम आदि ।

औषधि :—फलों के पक जाने के अनन्तर जो वनस्पतियाँ तैयार हो जाती हैं उन्हें औषधि कहते हैं । जिन धान्यों एवं आहार का उपयोग करते हैं उन सब का समावेश हो जाता है । यथा—फलपाक निष्ठाऔषधयः "अर्थात् फल पकने के बाद जो द्रव्य हो जाते हैं" वह औषधि कहलाती है ।

वीरुध :—लता आदि फैलने वाली समस्त वनस्पतियाँ वीरुध कहलाती है । यथा प्रतानवत्यः स्तम्विन्यश्च वीरुधः "सुश्रुत" ।

वैशेषिक दर्शन में जाड़गम द्रव्यों के मुख्यतः दो ही भेद बतलाये हैं । यथा योनिज एवं अयोनिज ।

आधुनिक विचारक सुपुष्प उद्‌भिज के दो भेद मानते हैं : (अ) नग्गबीजी (Gymnosperms) (ब) आवृतबीजी (Angiosperm)

नग्गबीजी द्रव्यों के बीज खुले होते हैं यथा, देवदारु, सरल वृक्ष आदि । आवृतबीजी द्रव्यों के पुनः दो भेद होते हैं । यथा द्विबीजपत्री (dicotyledonous) एकबीजपत्री (Monocotyledon).

एकबीजपत्री (मोनोकोटीलिडन्स्)—इस विभाग के उद्‌भिजों के बीज के अन्दर एक ही बीजपत्र (कोटीलिडन्स्) होता है । इनके बीजों को बोने पर अंकुरोत्पत्ति के समय अंकुर के बाजू से एक ही पत्र बाहर आता है इसलिये इनको एकबीजपत्र कहते हैं । जैसे यव, गोधूम शालि आदि ।

द्विबीजपत्री (डाइकोटीलिण्डस)— इस विभाग के औद्‌भिजों के बीज का बाह्य आवरण (कवच) निकाल देने से दो दल देखने में आते हैं । ये दल स्वभावतः अलग होने से अंकुरोत्पत्ति के समय ऊपर का आवरण निकल जाने पर दो दल अपने आप अलग हो जाते हैं। यथा मुद्‌ग, माष आदि ।

अपुष्पवर्ग के द्रव्यों का आधुनिकों ने क्रमशः हरीतक (एलगी) श्वेतक (फंगाई) थैलोफाइटा, व्रायोफायटा एवं सेप्रोफइट्स कहते हैं। विस्तार से इनका विस्तृत वर्णन इस स्थल पर देना सम्भव नहीं है ।

आयुर्वेदीय द्रव्यों की वर्गीकरण तालिका 1

कार्यद्रव्य

- चेतन
  - वहिरन्तश्चेतन (जाड्गम)
  - अन्तश्चेतन (औद्‌भिज)
- अंचेतन (भौम)
  - प्राकृत
  - कृत्रिम

प्राचीनकालीन औद्‌भिज द्रव्यों की आकृति एवं रचनात्मकविवरण :—

(क) उत्पन्न होने एवं स्थान भेद से उद्‌भिज द्रव्य चार प्रकार के होते हैं । स्थलीय (Terrestrial) जलीय (Aquatic), वृक्षरुह (Epiphytic) तथा वृक्षादन (Parasitic) ।

(1) स्थलज : उन्हें कहते हैं जो भूमि में उत्पन्न होते हैं। यथा हरीतकी, विभीतक, आम्र, जीवक, ऋषमक आदि ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(2) जलज : उन्हें कहते हैं जो जल में पैदा होते हैं । यथा कमल, कशेरुक, श्रृङ्गाटक आदि ।

(3) वृक्षरुह : जो द्रव्य वृक्ष चढ़े रहते हैं, किन्तु अपने जीवन के लिये उस पर निर्भर नहीं होते उन्हें वृक्षरुह कहते हैं । यथा स्वर्णजीवन्ती, वंगीयरास्ना (Vanda) आदि ।

(4) वृक्षादन : जो द्रव्य दूसरे वृक्षों का रस लेकर अपना पोषण करते हैं उन्हें वृक्षादन कहते हैं । यथा वन्दाक, आकाशवल्ली आदि।

(ख) आयुष्य भेद से भी उद्भिज द्रव्य तीन प्रकार के होते हैं । एकवर्षायु (Annual), द्विवर्षायु (Biennial) एवं बहुवर्षायु (Perennials) । जो द्रव्य एक ऋतु या एक वर्ष तक जीवित रहते हैं उन्हें एक वर्षायु कहते हैं । यथा यव, माष, कलाय आदि । जो द्रव्य दो ऋतुओं या दो साल तक जीवित रहते हैं उन्हें द्विवर्षायु कहते हैं । यथा सलगम, अतिविषा, वत्सनाभ आदि । दो साल से अधिक वर्षो तक जीवित रहने वाले द्रव्यों को बहुवर्षायु कहते हैं । यथा आम्र, वट, अश्वत्थ आदि ।

(ग) आकृति भेद से द्रव्यों के मुख्य रूप से चार भेद होते हैं : वृक्ष (Tree), क्षुप (Shrub),) शाक (Herb) एवं लता (Climber)

(1) वृक्ष (Tree):— इनकी ऊंचाई लगभग 5 मीटर से लेकर 30 मीटर तक होती है । इसके भी तीन उपभेद होते हैं ।

(क) महावृक्ष (Tall tree) (ख) वृक्ष (Medium tree) आम, जामुन, देवदारु, चीड़ आदि, (ग) वृक्षक (Small tree) पपीता, गुलशकरी, एरण्ड आदि ।

(2) गुल्म (9) क्षुप Shrub—जिनमें एक ही मूल से अनेक काण्ड निकलकर झाड़ सा बन जाय उन्हें क्षुप कहते हैं । यथा— अर्क, करमर्द, कार्पास आदि । वृक्ष, क्षुप, शाक स्वावलम्बी होते हैं एवं बिना किसी सहारे खड़े रहने वाले होते हैं ।

(3) शाक (10) Herb : इनकी ऊँचाई 30 सेन्टीमीटर से 4 मीटर लम्बे होते हैं । इनकी जड़े एवं शाखायें छोटी होती हैं जो 30 सेन्टीमीटर तक लम्बे होते हैं उन्हें क्षुपक कहते हैं ।

(4) लता Weak Plants : जो द्रव्य काण्ड दुर्बल होने के कारण स्वयं स्थिर नहीं रह सकते, और कोई आधार लेकर आगे बढ़ते हैं उन्हें लता कहते हैं । यह पुनः चार प्रकार की होती हैं । यथा– प्रसर, वल्ली, आरोहिणी और प्रतानिनी ।

(क) प्रसर Prostrate—जिनमें काण्ड जमीन से कुछ ऊपर बढ़ने पर उससे चारों ओर शाखायें निकलकर जमीन पर फैलती हैं उसे प्रसर कहते हैं । यथा कण्टकारी, ब्रह्मदण्डी आदि ।

(ख) वल्ली Twinning Plants—यह अपने आश्रयभूत वृक्ष आदि के चारों ओर लपेटती हुई आगे बढ़ती है एवं इसके वामावर्तिनी और दक्षिणावर्तिनी ये दो भेद होते हैं । जो वल्ली बाईं ओर से लपेटती हुई आगे बढ़ती है उसे वामावर्तिनी कहते हैं । यथा उत्तभारिणी, मेषश्रृङ्गी । आदि । जो दाहिनी ओर से वृक्ष को लपेटती हुई बढ़ती है उसे दक्षिणावर्तिनी कहते हैं । यथा गुडूची, विदारी आदि ।

(ग) आरोहिणी Climbing Plants.जो वृक्ष को बिना लपेटे सामान्य रूप से ऊपर चढ़ती है उसे आरोहिणी कहते हैं । इनमें पुनः मूलारोहिणी सूत्रारोहिणी (Tendril Climbers) वडिशारोहिणी (Hook Climberis) तथा पत्रारोहिणी (Leaf Climber) । ये चार भेद किये हैं। ये क्रमशः मूलों, सूत्रों, बडिशों तथा पत्तों के द्वारा आगे बढ़ती हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(घ) प्रतानिनी—जो लतायें वृक्ष के शिखर पर अमर्यादित रूप से फैलती हैं उन्हें प्रतानिनी कहते हैं । यथा माधवी, मालझन ।

जिस प्रकार प्राणियों के शरीर में सिर, हाथ, पांव, आदि अंग होते हैं, उसी प्रकार उद्‌भिजों में भी मूल, काण्ड, पत्र, पुष्प, फल ये पांच अंग प्रधान होते हैं । सामान्य भाषा में इन पांचों अंगों को वनस्पति पचाङ्ग कहते हैं । इन पांचों अंगों में जो अवयव होते हैं उनको प्रत्यङ्ग (secondary organs) या उपाङ्ग कहते हैं । मूल एवं काण्ड को धारक अंग कहते हैं । मूल काण्ड और पर्ण ये तीन अंग उद्‌भिजों के लिये जमीन एवं वायु से आहार लेते हैं तथा आहार रस तैयार कर उद्‌भिजों का पोषण करते हैं, इसलिये इनको पोषक (Nutritive) अंग कहते हैं । पुष्प और फल सन्तानोत्पादक या जनक (Reproductive) अंग कहते हैं । जिन उद्‌भिजों में ये पांचों अङ्ग मौजूद हों उनको पूर्ण उद्‌भिज complete तथा जिनमें इन पांचों में से किसी एक या दो का अभाव हो उनको अपूर्ण उद्‌भिज incomplete plant कहते हैं ।

औद्‌भिज द्रव्य तालिका 2

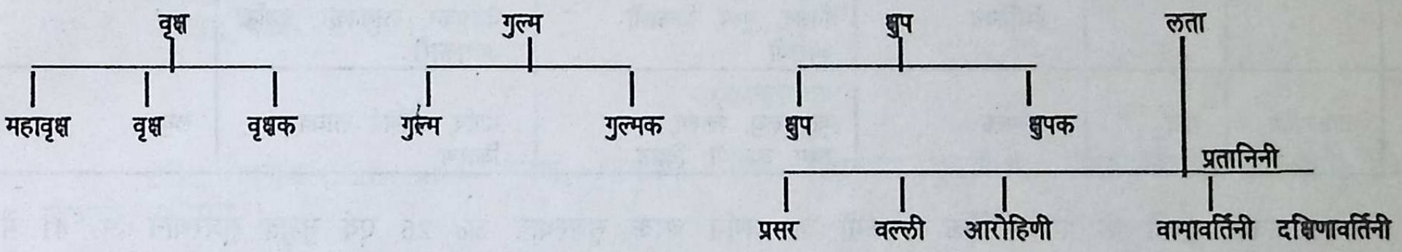

वैदिक साहित्य में भी भूलिनी, फलिनी, कांडिनी, स्ताम्बिनी, प्रतानवती, विशाखा, पुष्पवती, अफला, अपुष्पा, आदि नाम औद्‌भिज अंग प्रत्यड़्गों के लिये मिलते हैं ।

पृथ्वी आदि पन्चमहाभूत भेद से द्रव्यों का वर्गीकरण : 12.

पृथ्वी पर जितने द्रव्य हैं वे सब पाञ्चभौतिक हैं । अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांचों महाभूतों के मेल से द्रव्यों की उत्पत्ति होती है । प्रत्येक द्रव्य पाञ्चभौतिक होने पर भी पृथ्वी आदि एक महाभूत की अधिकता के कारण ही यह द्रव्य पार्थिव है वह आप्प है वह तैजस है वह वायवीय है इस प्रकार का व्यवहार होता है ।

पार्थिवद्रव्य (13) :—गुरु, खर, कठोर, मन्द, स्थिर, विशद्, सान्द्र, एवं गन्ध गुण बहुल हों उन्हें पार्थिव द्रव्य कहते हैं । उपचय, संधान, गौरव और स्थिरता ये पार्थिव द्रव्यों के कर्म हैं ।

आप्प द्रव्य (14) :—द्रव, स्निग्ध, शीत, मन्द, मृदु पिच्छिल एवं रसगुण बहुल जो द्रव्य हों वे आप्प द्रव्य कहे जाते हैं । क्लेद, स्नेह, वन्ध, विष्यन्द, मार्दव एवं प्रहलाद जलीय द्रव्यों के कर्म हैं ।

आग्नेय द्रव्य (15) :—उष्ण, तीक्ष्ण, स्थूल, लघु, रुक्ष, विशद एवं रुपगुण बहुल जो द्रव्य हों वे द्रव्य आग्नेय कहे जाते हैं । दाह, पाक, प्रभा, प्रकाश एवं वर्णकर ये आग्नेय द्रव्यों के कर्म हैं ।

वायव्य द्रव्य (16) :—लघु, शीत, रूक्ष, खर, विशद, सूक्ष्म एवं स्पर्शगुण बहुल जो द्रव्य हों वे वायव्य द्रव्य कहे जाते हैं । रौक्ष्य, ग्लानि, विचार, वैशद्य ये वायव्य द्रव्यों के कर्म हैं ।

आकाशीय द्रव्य (17) :—मृदु, लघु, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण, एवं शब्दगुण बहुल जो आकाशीय द्रव्य कहे जाते हैं । मृदुता, सौषिर्य, लघुता इसके कर्म हैं । इस (18) प्रकार संसार में ऐसा कोई भी द्रव्य नहीं जो औषधि नहीं है, वे औषध भिन्न-भिन्न युक्ति के अनुसार पर और भिन्न-भिन्न प्रयोजन के अनुसार प्रयोग में लाये जाते हैं । ये द्रव्य केवल गुण प्रभाव से कार्य करने वाले नहीं होते अपितु रस, वीर्य, विपाक एवं प्रभाव प्रकार भेद से कार्य करते हैं । जब ये द्रव्य भिन्न-भिन्न युक्ति एवं प्रयोजन के अनुसार कार्य करते हैं उन्हें कर्म, जिसके द्वारा करते हैं उसे वीर्य जहाँ कार्य करते

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पाञ्चभौतिक द्रव्यों की गुण–कर्म तालिका 3

	वर्ग	इन्द्रियार्थ	रस	गुण	कर्म	विपाक
1.	पार्थिव	गन्ध	मधुर, कषाय	गुरु, खर, कठिन, मन्द, स्थिर, विशद, सान्द्र, स्थूल	उपचय संघांत गौरव स्थैर्य, बल, अधोगमन	गुरु
2.	आप्य	रस	मधुर, ईषत्कषायाम्ल, लवण	द्रव, स्निग्ध, शीत, मन्द, मृदु, पिच्छिल स्तिमित, सर	क्लेदन, स्नेहन, बन्धन, विष्पन्दन, मार्दव, प्रह्लादन	गुरु
3.	तैजस	रूप	कटु इषदम्ल लवण	उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, लघु, रुक्ष, विशद, खर	दहन, पचन, प्रभा वर्ण, प्रकाशन, दारण तापन	लघु
4.	वायव्य	स्पर्श	कषाय ईषतिक्त	लघु, शीत, रुक्ष, खर, विशद, सूक्ष्म, विकाशी व्यवायी	विरुक्षण, विचारण, ग्लपन, वैशद्यकर, लाघवकर, कर्शन, आशुकारी	लघु
5.	आकाशीय	शब्द	अव्यक्त	मृदु, लघु, श्लक्ष्ण, सुक्ष्म, व्यवायी, विशद	मार्दव, सौषिर्य लाघव विवरण	लघु

इस प्रकार द्रव्यों के पाञ्चभौतिक गुणकर्मो का वर्णन चरक सूत्रस्थान अ० 26 एवं सुश्रुत सूत्रस्थान अ० 41 में विस्तृत रूप से मिलता है। —

दोषकर्म एवं प्रभाव –

भेद (20) से भी आचार्यो ने द्रव्यों का वर्गीकरण किया है जो निम्नप्रकार से है । यथा—1. दोषप्रशमनकर, 2. धातुप्रदूषकर, 3. स्वस्थवृतहित । वाग्भट्ट ने उनके संक्षिप्त नाम शमन, कोपन, स्वस्थहित प्रकार भेद से वर्णन किया है । कुछ द्रव्य अपने प्रभाव से ही वातादि दोषों एवं रसादिधातुओं का प्रशमन करते हैं वे द्रव्य दोषप्रशमनकर कहे जाते हैं । यथा—आमलकी । आंवला अम्लरस होने पर भी पित्त आदि दोषों को दूषित न करते हुये पित्त का शमन करता है। कतिपय द्रव्य अपने प्रभाव से धातुओं तथा रसादिकों को दूषित करते हैं यथा विष । कतिपय द्रव्य स्वभाव से वातादि दोषों को शमन किये बिना केवल स्वस्थ मनुष्यों के लिये हितकर होते हैं । आहार द्रव्यों से प्रधानतया शरीर के रस आदि धातुओं का पोषण होता है, इनमें शीत, उष्ण आदिगुणों की उत्पत्ति गौण रुप से होती है । अतः प्रायः (21) आहार द्रव्य रसप्रधान होते हैं एवं औषध द्रव्य वीर्यप्रधान होते हैं । आहार द्रव्य शरीर की रक्षा वृद्धि के लिये प्रयोग किये जाते हैं । यथा–शूकधान्य, शिम्बिधान्य शाकवर्ग, फलवर्ग, मांसवर्ग, जलवर्ग, गोरसवर्ग आदि ।

(22) औषधीय द्रव्यों में शीत, उष्ण आदि वीर्यो के तारतम्य भेद से तीक्ष्णवीर्य, मध्यवीर्य, मृदुवीर्य ये तीन आवान्तर भेद होते हैं । रसादिभेद से भी द्रव्य मधुरवर्ग, अम्लवर्ग, लवणवर्ग, कषायवर्ग, कटुवर्ग एवं तिक्तवर्ग भेद से छः प्रकार के होते हैं ।

कर्मभेद से द्रव्यों का वर्गीकरण :

आयुर्वेद में कर्म के अनुसार भी द्रव्यों का वर्णन किया गया है जिसका कि वर्गीकरण अत्यन्त विशद और वैज्ञानिक रूप से मिलता है । शरीर के प्रत्येक संस्थान पर होने वाले कर्मो का अध्ययन कर उनके अनुसार द्रव्यों को विभिन्न वर्गो में विभक्त किया गया है । चरक और सुश्रुत दोनों ने द्रव्यों का क्रमानुसार वर्गीकरण किया है । यद्यपि इन दोनों में कुछ अन्तर दृष्टिगोचर होता है । मूलतः दोनों में कोई भेद नहीं है । चरक ने वर्गों का नाम कर्मों के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अनुसार रखा है तो सुश्रुत ने मुख्य द्रव्य के अनुसार यथा जीवनीय कर्म करने वाले द्रव्यों वर्ग का नाम चरक ने कर्म के अनुसार जीवनीय द्रव्य एवं सुश्रुत ने मुख्यद्रव्य गुण के अनुसार वरुणादिवर्ग कहा है । वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, शिरोविरेचन आदि कर्मों के अनुसार भी द्रव्यों के गण आचार्यो ने नियत किये हैं । चरकसंहिता में जीवनीय, वृंहणीय, लेखनीय, सन्धानीय, दीपनीय, वल्य, अर्शोघ्न, हृद्य, तृपिघ्न, आदि भेद से 50 गण (महाकषाय) बताये हैं । प्रत्येक वर्ग में दस द्रव्य हैं, इस प्रकार कुल पांच सौ द्रव्यों का समावेश इसमें होता है । चरक सूत्रस्थान अध्याय 29 में आहारोपयोगी 12 वर्गो का बहुत सुन्दर रूप से वर्णन मिलता है, जो इस प्रकार हैः (1) शूकधान्यवर्ग, (2) शमीधान्यवर्ग, (3) मांसवर्ग, (4) शाकवर्ग (5) फलवर्ग, (6) हरितवर्ग, (7) मद्यवर्ग, (8) जलवर्ग, (9) गोरसवर्ग, (10) इक्षुवर्ग, (11) कृतान्नवर्ग, (12) आहारोपयोगी वर्ग । इस प्रकार आहार शास्त्र विस्तृत जानकारी इन वर्गों में वर्णित है, जिसे विस्तार भय से यहाँ देना सम्भव नहीं है ।

सुश्रुत ने सूत्रस्थान अध्याय 38 में 39 गणों का वर्गीकरण किया है जोकि कर्मों के आधार पर बहुत उपयोगी हैं । सुश्रुत ने उर्ध्वभागहर, अधोभागहर, उभयतोभागहर, वातसंशमन, पित्तसंशमन, ये पांच अन्य वर्ग भी बतलाये हैं । इसके अतिरिक्त शस्त्रकर्मोंपयोगी, पाचन, अवसेचन, अवगाहन, विम्लापन आदि 8 वर्गों का सुन्दर रूप से वर्णन किया है । छात्रों के सुलभता हेतु चरक संहिता के पचास गणों के नाम तथा सुश्रुतसंहिता के 39 गणों का वर्गीकरण सूक्ष्म रूप से दिया जा रहा है, जो इस प्रकार से है ।

चरकोक्तवर्गः

23 **जीवनीय** (Nutrients)—जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुदग्पर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, यठिमधु ।

24 **वृंहणीय** (Weight-Promoting Drugs or Robornts)—क्षीरिणी (क्षीरलता, क्षीरविदारी) राजक्षवक (दुग्धिका) अश्वगन्धा (असगंध) काकोली, क्षीरकाकोली, वाह्यायनी (श्वतेवला) भद्रौदनी (पीतबला) भारद्वाजी, (बनकपास) पयस्या, ऋष्यगन्धा (विधारा) ।

25 **लेखनीय** (Weight-Reducing Drugs or Revulsives)—मुस्त (मुस्तक), कुष्ठ (कूठ), हरिद्रा, दारूहरिद्रा, वचा, अतिविषा, कुटकी, चित्रक, चिरविल्व, हैमवती (श्वेतवचा) ।

26 **भेदनीय** (Purgatives)—सुवहा (त्रिवृत), अर्क, एरंण्ड, लाड्गली, दन्ती, चित्रक, चिरविल्व, शङ्खिनी, (श्वेतवुहघ्ना) शकुलादनी (कटुरोहिणी–कटुका) स्वर्णक्षीरी ।

27 **सन्धानीय** (Union-Promoters)—मधुक (मुलेठी), मधुपर्णी (गिलोय), पृश्निपर्णी, अम्वष्ठकी (पाठा), समड़्गा, (मंजीठ) मोचरस, धातकी, लोध्र, प्रियड़्गु, कटःफल (कायफल) ।

28 **दीपनीय** (Stomachics and Digestives)—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, श्रृड़्गवेर (शुष्ठी), अम्लवेतस, मरिच, अजमोद, भल्लातक, हिड्ग्गु (हींग) ।

29 **वल्य** (Tonics)—ऐन्द्री (गोरक्षकर्कटी), ऋषभी (कपिकच्छु), अतिरसा (शतावरी), ऋषप्रोक्ता, पयस्या (क्षीरविदारी), अश्वगन्धा, स्थिरा (शालपर्णी), रोहिणी (कटुकी), वला, अतिबला ।

30 **वर्ण्य** (Complexion Promoters)—चन्दन, तुड़्ग (नागकेशर), पदम्क (पदम्काष्ठ), उशीर (खश), मधुक (मुलेठी), मज्जिष्ठा (मंजीठ), सारिवा (अनन्तमूल), पयस्या (क्षीरविदारी), सिता (श्वेतदूर्व्वा) ।

31 **कण्ठय** (Voice Promoters)—सारिवा, इक्षुमूल (ईख की जड़), मधुक (मुलेठी), पिप्पली, द्राक्षा, विदारी, कैडर्य (कटफल), हंसपादी, वृहती (बड़ी कण्टकारी), कण्टकारी ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

32 हृद्य (Cardic Tonics)—आम्र, आम्रातक (आमड़ा), लकुच (बड़हर), करमर्द (करौंदा), वृक्षाम्ल, अम्लवेतस, कुवल (राजवदर), बदर, दाडिम, मातुलुङ्ग ।

33 तृपिघ्न (Appetisers)—नागर (सोंठ), चब्य. चित्रक, विड्ड्ग मूर्वा, गुड्ूची, वचा, मुस्त, पिप्पली, पटोल, ।

34 अर्शोघ्न (Anti-Hemorrhoidals)—कुटज, विल्व, चित्रक, नागर (सोंठ), अतिविशा (अतीस), अभया (हरड़), धन्वयास (जवासा), दारुहरिद्रा, वच, चब्य।

35 कुष्ठघ्न (Curative of Dermatosis)—खदिर, अभया (हरड़), आमलकी, (आंवला), हरिद्रा, अरुष्कर (भिलावा), सपृपर्ण, आरग्वध, करवीर, विडङ्ग, जाती,

36 कण्डूघ्न (Anti-Pruritis)—चन्दन, (सफेद) नलद (जटामांसी), कृतमाल (अमलतास) नक्तमाल (लताकरंज), निम्व, कुटज, सर्षप, मधुक, दारुहरिद्रा, मुस्तक,

37 कृमिघ्न (Anthelmintics)—अक्षीव (अब्दक, शोभाव्जनोवा) मरिच, गण्डीर, केबुक, वायविडङ्ग सिन्दुवार, किणही (कटमी, श्वेतशिरीषा) गोक्षुर, वृषपर्णिका आखुपर्णिका (मूषाकर्णी)

38 स्तन्यजनन (Galactogogues)—वीरण (खश) शालिधान्य, इक्षुवालिका (रवागलिका) दर्भ (डाम) कुश, काश, गुन्द्रा, इत्कट, कतृण (रोहिष)

39 विषघ्न (Anti-doter)—हरिद्रा, मंजीठ, सुबहा (निशोथ), सूक्ष्मएला (छोटी–इलायची), पालिन्दी (कालानिशोथ), चन्दन, कतक (निर्मली) शिरीष, निर्ग्ुण्डी ।

40 स्तन्यशोधन (Galacto-Purifiess)—पाठा, महौषध (सोंठ) देवदारु, मुस्तक (नागरमोथा) मूर्वा, गुड्ूची, वत्सक (इन्द्रजौ) किराततिक्त (चिरायता) कटुरोहिणी (कुटकी), सारिवा ।

41 शुक्रजनन (Semenoor Spermo-Purifiers)—जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मदग्पर्णी, माषपर्णी, मेदा, वृद्धरुहा (शतावरी) जटिला (जटामांसी) कुलिङ्ग (उच्चटाभेद) ।

42 शुक्रशोधन (Semeno or Sdermo-Purifiers)—कुष्ठ (कूठ) एलवालुक, कटःफल, समुद्रफेन, कदम्वनिर्यास, इक्षु, काण्डेक्षु, इक्षुरक (तालमखाना) वसुक (वसुहट्टक) उशीर ।

43 स्नेहोपग (Adjuvants in Oleation Therapy)—मृद्वीका (मुनक्का) मधुक (मुलैठी) मधुपर्णी (गिलोय) मेदा, विदारी, काकोली क्षीरकाकोली, जीवक, जीवन्ती, शालपर्णी ।

44 स्वेदोपग (Adjuvants in Sudation Therapy)—शोभाज्जन, एरण्ड, अर्क, वृश्ची (श्वेतपुनर्नवा) पुनर्नवा, यव, तिल, कुलत्थ, माष (उड़द), बदर।

45 वमनोपग (Adjuvants in Emetic Therapy)—मधु, मधुक, कोविदार (रक्तकचनार), कर्वुदार (श्वेतकचनार), नीप (कदम्व), विदुल (हिज्जल) बिम्वी (कुन्दरु) शणपुष्पी, सदापुष्पी (अर्क चक्र), प्रत्यग्पुष्पी (अपामार्ग) ।

46 विरेचनोपग (Adjuvants-in Purgative Therapy)—द्राक्षा (मुनक्का), काश्मर्य (गम्भारी का फल), परुषक, अभया (हरड़) आमलकी, बिभीतक, कुबल, बदर, कर्कन्धू (झड़वेर) पीलू ।

47 आस्थापनोपग (Adjuvants in-Non-oily Enemata)—त्रिवृत, विल्व, पिप्पली, कुष्ठ (कूठ) सर्षप, वचा, वत्सकफल (इन्द्रजौ) शतुपुष्पा (सोया), मधुक (मुलेठी), मदनफल ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

48 **अनुवासनोपग (Adjuvants in Oily-Enemata)**—रास्ना, सुरदारु, विल्व, मैनफल, शतुपुष्पा (सोया), वृश्चीर (श्वेतपुनर्नवा) पुनर्नवा, स्वदंष्ट्रा (गोखरु), अग्निमन्थ, श्योनाक ।

49 **शिरोविरेचनोपग (Adjuvants in Errtines)**—ज्योतिष्मती (मालकांगनी), क्षवक (नकछिकनी), मरिच, पिप्पली, वायविडङ्ग, शिग्रु, सर्षप, अपामार्ग, श्वेता (अपराजिता) महाश्वेता (नीलअपराजिता)

50 **छर्दि-निग्रहण (Anti-Emetics)**—जम्बु, आम्र, मातुलुङ्ग (बिजौरानींबू) बदर, दाडिम, यव, षष्ठीक (साठीचांवल) उशीर, मिट्टी, लाजा ।

51 **तृष्णनिग्रहण (Anti Thirst drugs)**—नागर (सोंठ) धन्वयासक (जवासा) मुस्तक, पर्पटक (पित्तपापड़ा) चन्दन, किराततिक्तक (चिरायता) गुडूची, हृवेर, धान्यक पटोल,

52 **हिक्कानिग्रहण (Anti-Hicough drugs)**—शटी (कपूरकचरी) पुष्करमूल, बदर, कण्टकारी, वृहती, वृक्षरुहा (गिलोय), अभया (हरड़) पिप्पली, दुरालभा कुलीरश्रृङ्गी (काकड़ासींगी)

53 **पुरीषसंग्रहणीय (Intestinal - Astringents)**—प्रियङ्गु अनन्ता, आम्रास्थि (आम की गुठली), कट्वङ्ग (श्योनाक), लोध्र, मोचरस, समङ्गा, (लज्जालु) धातकीपुष्प, पद्मा (ब्राह्मणष्ठिका) पद्मकेशर ।

54 **पुरीषविरजनीय (Correctives of Fecal-Pigments)**—जम्बु शल्लकी, कच्छुरा (कौंच), मधूक (महुआ) शाल्मली, मृत्तिका, पयस्या (विदारीकन्द) उत्पल, तिल, श्रीवेष्ठक (गन्धविरोजा)

55 **मूत्रसंग्रहणीय (Urinary Astringents)**—जामुन, आम, प्लक्ष, कपीतन (गन्धमुण्ड) वट, उदुम्बर, अश्वत्थ (पीपल), भल्लातक, अश्मन्तक, सोमवल्कल ।

56 **मूत्रविरजनीय (Corrective of urinary pigments)**—पद्म (कमल) उत्पल (नीलकमल), नलिन, कुमुद, सौगन्धिक, पुण्डरीक शतपत्र, मधुक (मुलेठी) प्रियङ्गु)

57 **मूत्रविरेचनीय (Diuretics)**—वृक्षादनी, गोक्षुर, वसुक (पुनर्नवा), वशिर, दर्भ, कुश, कास, पाषाणभेद, गुन्द्रा (होगला या जलदगदर्भ), इत्कटमूल (शरमूल) ।

58 **कासहर (Bronchial Sedatives)**—द्राक्षा, अभया (हरड़) आमलकी, पिप्पली, दुरालभा, कर्कटश्रृङ्गी, कण्टकारी, वृश्चीर (श्वेतपुनर्नवा), रक्तपुनर्नवा, तामलकी ।

59 **श्वासहर (Bronchial Anti-Spasmodics)**—शटी, पुष्फरमूल, अम्लवेतस, लघुऐला, हिङ्गु, अगुरु, सुरसा, भूम्यामलकी, जीवन्ती, चण्डा ।

60 **शोथहर (Anti- Droprydrug)**—पाटला, अग्निमन्थ, श्योनाक, विल्व, काश्मर्य, कण्टकरिका, वृहती, शालपर्णी, पृष्ठिपर्णी, गोक्षुरम।

61 **ज्वरहर (Anti- Pyretics)**—सारिवा (अनन्तमूल), शर्करा, पाठा, मज्जिष्ठा, द्राक्षा, पीलु, परुषक (फालसा) अभया (हरड़) आमलकी बिभीतक (बहेड़ा) ।

62 **श्रमहर (Anti- Fatigue drugs)**—द्राक्षा, खर्जूर (खजूर), प्रियाल, बदर, दाडिम, फल्गु, परुषक, इक्षु, यव, षष्ठिक ।

63 **दाहप्रशमन (Anti-Burning, Refrigerants)**—लाजा, चन्दन, गम्भारी, मधूक (महुआ) शर्करा, नीलोत्पल, उशीर, सीरिवा, गूडूची, हृवेर (सुगन्धवाला) ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

64 **शीतप्रशमन** (**Calefacients**)—तगर, अगुरु, धान्यक, सोंठ, भूतीक (यवानिका) वचा, कण्टकारी, अग्निमन्थ, श्योनाक, पिप्पली ।

65 **उदर्दप्रशमन** (**Anti-Urticarials**)—तिन्दुक, प्रियाल, बदर, खदिर, कदर (बिट्खदिर) सपृपर्ण, अश्वकर्ण, अर्जुन, असन, अरिभेद ।

66 **अङ्गमर्दप्रशमन** (**Restoratives**)—विदारीगन्धा, पृश्निपर्णी, वृहती, कण्टकारिका, एरण्ड, काकोली, चन्दन, उशीर, एला, मधुक (मुलेठी)

67 **शोणितस्थापन** (**Haemostatics**)—मधु, मुलैठी, केशर (कुङ्कुम), मोचरस, मृत्कपाल, लोध, गेरु, प्रियङ्गु, शर्करा, लाजा ।

68 **शूलप्रशमन** (**Analgesics**)—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चब्य, चित्रक, सोंठ, अजमोदा, अजगन्धा, अजाजी, गण्डीर ।

69 **वेदनास्थापनानि** (**Anodynes**)—शाल, कट्फल, कदम्व, पद्मक, तुम्वरु, मोचरस, शिरीष, वज्जुल, एलुआ, अशोक ।

70 **संज्ञास्थापन** (**Resuscitatives**)—हिंग, कैटर्य (पर्वतनिम्व), कटफल), अरिमेद, वच, चोरक, वयस्था, गोलोमी (भूतकेशी), जटिला (जटामांसी), गुगुलु, कुटकी ।

71 **प्रजास्थापन** (**Procreants**)—ऐन्द्री (दिव्य औषधि), व्राहमी, शतवीर्या, सहस्त्रवीर्या, अमोघा, अब्यथा, शिवा, अरिष्ठा, वाटयपुष्पी, विष्वक्सेनक्रान्ता ।

72 **वयःस्थापन** (**Rejuvenators**)—गुडूची, हरीतकी, आमलकी, मुक्ता, श्वेता (अराजिता) जीवन्ती, अतिरसा (शतावरी), मण्डूकपर्णी, स्थिरा, पुनर्नवा ।

इनके अतिरिक्त चरकसंहिता सूत्रस्थान अध्याय 2 एवं विमान स्थान अध्याय 8 में वमन, विरेचन आस्थापन, अनुवासन शिरोविरेचन आदि संशोधन वर्गों का उल्लेख मिलता है । चरक ने दन्तशोधन, मुखशोधन, लंघन, वृंहण, रुक्षण, स्नेहन, स्वेदन, स्तम्मन, निन्द्राजनन, अपतर्पण, संज्ञाप्रवोधन भेद से भी द्रव्यों का वर्गीकरण किया है ।

सुश्रुतोक्तवर्ग :

सुश्रुत ने संक्षेपतः द्रव्यों के 39 वर्ग बनाये हैं, यद्यपि ये वर्ग क्रमानुसार निर्धारित किये गये हैं, तथापि उनका नामकरण द्रव्य के आधार पर किया गया है ।

1 **विदारिगन्धादिवर्ग** :—विदारिगन्धा, विदारी, सहदेवा (महावला) विश्वदेवा श्वदंष्ट्रा (गोक्षुर) पृश्निपर्णी, शतावरी, सारिवा, कृष्णसारिवा, जीवक, ऋषभक, माषपर्णी, बृहती, पुनर्नवा, एरण्ड, हंसपदी, वृश्चिकाली कपिकच्छु ।

2 **आरग्वधादिवर्ग** :—आरग्वध, मदनफल, कर्कोटकी, कुटज, पाठा, कुटकी, पाटला, मूर्वा, इन्द्रयव, सपृपर्ण, निम्व, पीतसैरयेक, नीलसैरेयक, गुडूची, चित्रक, काकजंघा, करज्ज, लताकरंज, पटोल, चिरायता, करैला ।

3 **वरुणादिवर्ग** :—वरुण, ऑार्त्तगल, शोभाञ्जन, मधुशिग्रु, तर्कारी, मेषश्रृङ्गी, चिरविल्च, नक्तमाल, मोरटा, अग्निमन्थ, रक्त–पीत सैरेयक, बिम्वी, अर्क, अपामार्ग, चित्रक, शतावरी, विल्च, कर्कप्श्रृङ्गी, दर्भ, वृहतीद्वय ।

4 **वीरत्तवीदिवर्ग** :—वीरतरु, नील–रक्त–सहचर, दर्भ, वन्दाक, जलजदर्भ, नल, कुश, काश पाषाणभेद, अग्निमन्थ, मूर्वा, राजार्क, अपामार्ग, श्योनाक, इन्दीवर, व्राह्मी, गोक्षुर ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

5 **सालसारदिवर्ग** :—सालसार, सर्ज, खदिर, सोमवल्क, अरिमेद, क्रमुक, भूर्जपत्र, मेषश्रृङ्गी, तिनिश, चन्दन, कुचन्दन, शिंशपा, श्रिीषः, असन, धव, अर्जुन, ताल, शाक, नक्तमाल, चिरविल्व, अश्वकर्ण, अगुरु, पीतचन्दन ।

6 **रोध्रादिवर्ग** :—रोध्र, शाबररोध्र, पलाश, श्योनाक, अशोक, फञ्जी, कट्फल, एलवालुक, शल्लकी, जिंगणी, कदम्व, शाल, कदली।

7 **अर्कादिवर्ग** :—अर्क, अलर्क, करञ्ज, लताकरञ्ज, नागदन्ती, अपामार्ग, भाङ्र्गी, रास्ना, कलिहारी, श्वेतअपराजिता, नीलअपराजिता, वृश्चिकाली, ज्योतिष्मती, इङ्गुदी ।

8 **सुरसादिवर्ग** :—सुरसा (कृष्ण तुलसी) श्वेतसुरसा, मरुवक, क्षुद्रतुलसी, रोहिष, गन्धतृण, राजिका, वर्वरी, कासमर्द, छिक्किका, खरपुष्प, विडङ्ग, कट्फल, श्वेतनिर्गुण्डी, निर्गुण्डी, मुण्डी, मूषाकर्णी, फञ्जी, काकजङ्घा, काकमाची विषमुष्ठि ।

9 **मुष्कादिवर्ग** :—मुष्कक, पलाश, धव, चित्रक, मदन, कुटज, शिंशपा, स्नुही, त्रिफला ।

10 **पिप्पल्यादिवर्ग** :—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, शुण्ठी, मरिच, गजपिप्पली, हरेणुका, एला, अजमोदा, इन्द्रयव, पाठा, जीरा, सर्षप, महानिम्व फल, हिङ्गु, भाङ्र्गी, मूर्वा, अतिविषा, वचा, विडङ्ग, कुटकी ।

11 **एलादिवर्ग** :—एला, तगर, कुष्ठ, मांसी, रोहिष, त्वक्, पत्र, नागपुष्प, प्रियुङ्गु, हरेणुका, नखी, चोरपुष्पी, श्रीवेष्ठक, तज, ग्रन्थिपर्ण, एलावालुक, गुग्गुलु, सर्जरस, तुरुष्क, अगरु, स्पृक्का, उशीर, देवदारु, केशर, नागचम्पक, कमलकेशर ।

12 **वचादिवर्ग** :—वचा, मुस्ता, अतिविषा, हरीतकी, देवदारु, नागकेशर ।

13 **हरिद्रादिवर्ग** :—हरिद्रा, दारुहरिद्रा, पृष्निपर्णी, इन्द्रयव, मुलेठी ।

14 **श्यामादिवर्ग** :—त्रिवृत्, विधारा, दन्ती, शङ्खिनी, तिल्वक, कम्पिल्लक, महानिम्व, क्रमुक, द्रवन्ती, इन्द्रायण, आरग्वध, करज्ज, लताकरञ्ज, गुडूची, सपृला वृद्दारुकभेद, स्नुही, स्वर्णक्षीरी ।

15 **वृहत्यादिवर्ग** :—वृहती, कंण्टकारी, इन्द्रयव, पाठा, मुलेठी ।

16 **पटोलादिवर्ग** :—पटोल, चन्दन, रक्तचन्दन, मूर्व्वा, गुडूची, पाठा, कटुकी ।

17 **काकोल्यादिवर्ग** :—काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, भेदा, महाभेदा, गुडूची, कर्कटश्रृङ्गी, वंशलोचन, पद्म, प्रपौण्डरीक, ऋद्धि, वृद्धि, मृद्दीका, जीवन्ती, मुलेठी ।

18 **ऊषकादिर्वा** :—ऊषक, सैन्धव, शिलाजतु, कासीस, हिङ्गु, तुत्थ ।

19 **सारिवादिवर्ग** :—सारिवा, मुलेठी, चन्दन, रक्तचन्दन, पदम्क, गम्भारीफल, मधुकपुष्प, उशीर ।

20 **अञ्जनादिवर्ग** :—सौवीराञ्जन, रसाञ्जन, नागकेशर, प्रियङ्गु, नीलोत्पल, नलद, पद्मकेशर, मुलेठी ।

21 **परुषकादिवर्ग** :—परुषक, द्राक्षा, कट्फल, दाडिम, राजादन, कत्तकफल, शाकफल, त्रिफला ।

22 **प्रियंग्वादिवर्ग** :—प्रियुङ्गु, लज्जालु, धातकी, पुन्नाग, नागकेशर, चन्दन, रक्तचन्दन, मोचरस, रसाञ्जन, कुम्भीक, स्त्रोतोञ्जन, पद्मकेशर, मञ्जिष्ठा, धन्ययास ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

23 **अम्बष्ठादिवर्ग** :—पाठा, धातकीपुष्प, लज्जालु, श्योनाक, मुलेठी, बिल्व, शाबररोध्र, पलाश, नन्दीवृक्ष, पद्मकेशर।

24 **न्यग्रोधादिवर्ग** :—न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वत्थ, प्लक्ष, मधूक, आम्रातक, अर्जुन, आम्र, कोशाम्र, चोरक, जम्बूद्वय, प्रियाल, मुलेठी, कटफल, वेतस, कदम्ब, वदरी, तिन्दुक, शल्लकी, लोध्र, शाबरलोध्र, भल्लातक पलाश, नन्दीवृक्ष ।

25 **गुडूच्यादिवर्ग** :—गुडूची, निम्व, धान्यक, चन्दन, पद्मक ।

26 **उत्पलादिवर्ग** :—नीलोत्पल, रक्तोत्पल, श्वेतोत्पल, सौगन्धिक, कुवलय, पुण्डरीक, मधुक ।

27 **मुस्तादिवर्ग** :—मुस्ता, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, हरीतकी, आमलकी, बिभीतक, कुष्ठ, श्वेतवचा, पाठा, कुटकी, काकजंघा, अतिविषा, एला, भल्लातक, चित्रक ।

28 **त्रिफला** :—हरीतकी, विभीतक, आमलकी,

29 **आमलक्यदिवर्ग** :—आमलकी, हरीतकी, पिप्पली, चित्रक ।

30 **त्रिकटुवर्ग** :—शुष्ठी, पिप्पली, मरिच ।

31 **त्रप्वादिवर्ग** :—वंग, नाग, ताम्र, रजत, लौह, सुवर्ण, मण्डूर ।

32 **लाक्षादिवर्ग** :—लाक्षा, आरग्वध, कुटज, करवीर, कट्फल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, निम्ब, सपृपर्ण, मालती, त्रायमाण ।

33 **लघुपञ्चमूल** :—गोक्षुर, बृहती, कंटकारी, पृश्निपर्णी, शालपर्णी ।

34 **वृहत्पञ्चमूल** :—विल्व, श्योनाक, अग्निमन्थ, पाटला, गम्भारी ।

35 **कण्टकपञ्चमूल** :—करमर्द, गोक्षुर, सैरेयक, शतावरी, हिंस्त्रा ।

36 **वल्लीपञ्चमूल** :— विदारी, सारिवा, कृष्णासारिवा, गुडूची, मेषश्रृगी।

37 **तृणपञ्चमूल** :—कुश, काश, नल, शर, दर्भ ।

इसके अतिरिक्त सुश्रुत ने ऊर्ध्वभागहर, अधोभागहर, उभयतोभागहर, शिरोविरिचेन, वात, पित्त, कफसंशमन, एवं शोधन, लेखन, वृंहण भेद से द्रव्यों का वर्गीकरण किया है ।

सुश्रुतोक्त वर्गों के गुणकर्म और प्रयोग

संख्या	वर्गनाम	गुण	प्रयोग
1.	विदारिगन्धादि	बंहण, अड़गमर्दप्रशमन, श्वासहर, कासहर	शोष, गुल्म, अङ्गमर्द कास
2.	आरग्वधादि	कफघ्न, विषघ्न, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, कण्डूघ्न, छर्दिनिग्रहण, व्रणशोधन	प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, छर्दि,
3.	वरुणदि	कफघ्न, मेदोहर,	शिरःशूल, गुल्म, आभ्यन्तरविद्रधी
4.	वीरतर्वादि	वातहर, मूत्रजनन, अश्मरीभेदन,	वातव्याधि, अश्मरीशर्करा, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात,
5.	सालसारादि	कफघ्न, मेदोहर, कुष्ठघ्न,	कुष्ठ, प्रमेह पाण्डु, मेदोरोग
6.	रोध्रादि	कफघ्न, मेदोहर, वर्ण्य, विषघ्न,	योनिविकार, विष, मेदोरोग,
7.	अर्कादि	कफघ्न, मेदोहर, विषघ्न, व्रणशोधन, कुष्ठघ्न, कृमिघ्न	कृमि, कुष्ठ, व्रण, मेदोरोग, विष

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संख्या	वर्गनाम	गुण	प्रयोग
8.	सुरसादि	कफघ्न, कृमिघ्न, श्वासहर, कासहर, व्रणशोधन	कृमि, प्रतिश्याय, अरुचि, श्वास, कास, व्रण
9.	मुष्कादि	मेदोहर, शुक्रशोधन, अश्मरीभेदन,	मेदोरोग, शुक्ररोग, अश्मरी, प्रमेह, पाण्डु
10.	पिप्पल्यादि	कफघ्न, वातहर, दीपन, शूलप्रशमन, आमपाचन,	प्रतिशाय, अरुचि, गुल्म, शूल, आमदोष,
11.	एलादि	वातश्लेष्महर, विषघ्न, वर्ण्य, कण्डूघ्न,	कण्डू, पिडका, कोठ
12.	वचादि	स्तन्यशोधन, दोषपाचन	स्तन्यविकार, आमातिसार
13.	हरिद्रादि	" "	" "
14.	श्यामादि	भेदन, अनुलोमन, विषघ्न,	गुल्म, आनाह, उदर, उदावर्त, विष
15.	बृहत्यादि	त्रिदोषहर, पाचन, मूत्रजनन	अरुचि, ह्रल्लास, मूत्रकृच्छ्र
16.	पटोलादि	कफपित्तशमन, ज्वरहर, वर्ण्य	अरुचि, ज्वर व्रण, छर्दि
17.	काकोल्यादि	वातपित्तहर, रक्तशामक, जीवनीय, बृंहण, वृष्य	दौर्बल्य स्तन्यविकार, रक्तपित्त
18.	ऊषकादि दाह	कफमेदोहर, मूत्रजनन, रक्तपित्तशमन	मेदोरोग, अश्मरी, मूत्रमृच्छ्र रक्तपपित्त,
19.	सारिवादि	दाहशमन, ज्वरघ्न,	पित्तज्वर,
20.	अञ्जनादि	रक्तपित्तहर, विषघ्न, दाहप्रशमन	रक्तपित्त, विष, दाह,
21.	परुषकादि	वातहर, हृध, तृष्णाहर, रोचन, मूत्रजनन,	मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग, तृष्णा, अरुचि
22.	प्रियङ्वावादि	पित्तहर, स्तम्मन, संघानीय,	पक्वातिसार, व्रण, रक्तपित्त
23.	अम्वष्ठादि	व्रणरोपण,	
24.	न्यग्रोधादि–	ग्राही, संधानीय, वर्ण्य, रक्तपित्तशमन, दाहप्रशमन,	व्रण अस्थिभग्न, रक्तपित्त, दाह, प्रमेह, योनिविकार,
25.	गुडुच्यादि	ज्वरहर, दीपन, तृष्णाहर, दाहशमन,	अरुचि, छर्दि, तृष्णा, दाह,
26.	उत्पलादि	दाहप्रशमन, रक्तपित्तहर, विषघ्न हृद्य	दाह, रक्तपित्त, विष, छर्दि, हृद्रोग, मूर्च्छा,
27.	मुस्तादि	कफहर, स्तन्यशोधन, पाचन, कफपित्तहर, दीपन, चक्षुष्य	योनिविकार, स्तन्यदोष, आमदोष
28.	त्रिफला	कुष्ठघ्न, विषमज्वरनाशन	प्रमेह, कुष्ठ, नेत्ररोग, अग्निमांघ, विषमज्वर
29.	त्रिकटु	कफहर, मेदोहर, कुष्ठघ्न दीपन,	प्रमेह, कुष्ठ, गुल्म, पीनस मन्दाग्नि,
30.	आमलक्यादि–	कंफघ्न, रोचन, ज्वरहर, दीपन वृष्य, चक्षुष्य	ज्वर, नेत्ररोग, अरुचि उदरविकार
31.	त्रप्वादि–	कृमिघ्न, विषघ्न, हृद्य,	गरदोष, कृमि, तृष्णा, विष, हृद्रोग, पाण्डु प्रमेह,
32.	लाक्षादि	कषाय, तिक्त, मधुर, कफपित्त-हर, कुष्ठघ्न,	कुष्ठ, कृमि, दुष्ठव्रण
33.	लघुपञ्चमूल	कषाय, तिक्त, मधुर, वात्तपित्तहर	श्वास, त्रिदोषविकार, आमदोष
34.	वृहत् पञ्चमूल	तिक्त–मधुर, कटु, कफवातहर दीपन,	त्रिदोषविकार, आमदोष, ज्वर
35.	वल्लीपञ्चमूल	कफघ्न, रक्तपित्तशमन, शोथहर	रक्तपित्त, शोथ, प्रमेह, शुक्रदोष
36.	कंटकापञ्चमूल	शुक्रशोधन,	
37.	तृणपञ्चमुल	रक्तपित्तशमन, मूत्रजनन	रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ्र

द्रव्यों का प्राचीन एवं आधुनिक वर्गीकरण :

प्राचीनमत से द्रव्यों का वर्गीकरण :

चरक ने औषध द्रव्यों का वर्गीकरण कर्मों एवं उनके प्रधान रस के अनुसार किया है। चरक सू० अ० में तथा वि० अ० 8 मे वमन, विरेचन आदि पञ्चकर्मों के अनुसार पांच वर्गों का वर्णन किया है। सूत्रस्थान अध्याय 4 में कर्मों के अनुसार जीवननीय आदि पचास महाकषायों का वर्णन किया है जोकि छात्रों की सुविधा हेतु चरकोक्तवर्ग में स्पष्ट कर दिया गया है। सुश्रुत ने भी सूत्र अध्याय 38 में अनेक समान कर्म करने वाले द्रव्यों के विदारिगन्धादि आदि 37 वर्ग लिखे हैं। इसी प्रकार ऊर्ध्वभागहर, अधोभागहर, शिरोविरेचेन, वातसंशमन, पित्तसंशमन एवं कफसंशमन इन वर्गों का भी वर्गीकरण किया है। बाग्भट्ट में भी द्रव्यों का वर्गीकरण चरक एवं सुश्रुत के अनुसार ही मिलता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

धन्वन्तरि, राजनिघण्टु, कैय्यदेव, भावप्रकाश आदि निघण्टुग्रन्थों में द्रव्यों का वर्गीकरण कर्मानुसार नहीं मिलता है। ग्रन्थकारों ने गुड़च्यादि, हरीतक्यादि एवं कर्पूरादि वर्ग भेद से किया है। निघण्टु ग्रन्थों में वर्गों का वर्गीकरण मिलता है वह कर्मानुसार नहीं है एवं रचनानुसार भी वर्गीकरण का ध्यान नहीं दिया गया ऐसा प्रतीत होता है।

संहिता ग्रन्थों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम आहार में उपयोगी द्रव्यों का वर्गीकरण किया गया है तथा इसीप्रकार औषध द्रव्यों के वर्ग बनाये गये हैं।वनस्पतियों के प्रयोज्य अङ्गों के आधार पर भी वर्ग बनाये गये हैं।

उद्भिज द्रव्यों का रचनानुसार वर्गीकरण की पद्धति प्राचीन काल से ही प्रारम्भ हुई थी। परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। वेदों में उद्भिजों के सपुष्प एवं अपुष्प इन दो प्रधान वर्गों का उल्लेख मिलता है। संहिता ग्रन्थों में भी वनस्पति, वानस्पत्यं, औषधि, वृक्ष, क्षुप, गुल्म, लता, वृक्षकाण्ड, शाककाण्ड, प्रतानिनी, वीरुध, आदि नामों से रचनानुसार वर्गीकरण देखने को मिलता है। कुछ से संक्षिप्त उदाहरण यहां पर दिये जा रहे हैं। वृक्ष की आकृति एवं रचनानुसार उसके विभिन्न पर्याय शस्त्रकारों ने दिया है। कुज, क्षितिरुह, अङ्गिय, शिखरी, पादप, अनोकह, कुरुह, महीसह, विटपी, शाखी, धरणीरुह क्षितिज, फलद; करालिक, अगच्छ, नद्यावर्त, पर्णी, पलासी आदि कातिपय शब्दों का प्रयोग वृक्ष के लिये शास्त्रकारों ने किया है। इन पर्यायों में फलित, फलवान् फंजी, कठिन, फलेग्रही, अवन्ध्य ये नाम फलवाले वृक्षों के हैं। अवकेक्षी, विफल, निष्फल ये पर्याय बिनाफल वाले वृक्षों (उद्भिजों) के हैं। पत्र एवं शाखारहित वृक्ष को स्थाणु, ध्रुव एवं शङ्कु कहते हैं। जिस वृक्ष में शाखायें एवं मूल छोटे हों उसको क्षुप कहते हैं। प्रकाण्ड रहित उद्भिज को गुल्म, स्तम्ब, और विटप कहते हैं। वल्ली, प्रत्तनि लता बेल को कहते हैं। अनेक शाखा और पत्तों के संचय से जो लता बहुत विस्तार वाली हो उसे प्रत्तानिनी, वीरुध, गुल्मिनी और उलप कहते है। अधिक ऊँचाई वाले वृक्षों को उच्छ्रांय, उत्सेध और उच्छ्रय कहते हैं। फैले हुये वृक्षों को विस्तार, विटप एवं स्तम्ब कहते हैं। पुराने वृक्षों में जो पोल होते हैं उन्हें कोटर और निष्कुट कहते हैं। मूल को पाद, चरण, शिफा, जटा, बुध्न कहते हैं। वड़ पीपल आदि में जो शाखा से मूल निकलते हैं उनको अवरोह कहते हैं। बीज से निकले हुये अंकुर को प्रोंह रोह कहते हैं। अङ्कुर से निकले हुये मूल भाग को जो जमीन में जाकर मूल बनाता है उसे वुघ्न एवं नितम्ब कहते हैं। मूल के ऊपर से लेकर जहां तक शाखायें निकलती हैं वहां तक के वृक्ष के भाग को गण्डी प्रकाण्ड स्कन्ध, काण्ड, एवं दण्ड कहते हैं। शिखा, शाखा, शाला और लता ये शाखा के पर्याय हैं। वृक्ष के अग्रभाग को शिर, अग्र, प्राग्र और शिखिर कहते हैं। वृक्ष के कठिन भाग को सार और मञ्जा कहते हैं। त्वक्, त्वचा, वल्कल चोलक, चोच, और वल्क ये छाल के पर्याय हैं। वृक्ष के गोंद को निर्यास, खपुर एवं लुश कहते हैं।

परुष, पर्व एवं ग्रन्थि ये काण्ड के पर्याय हैं। काष्ठ, दारु ईन्धन, इध्म एवं समि ये लकड़ी के पर्याय हैं। पत्र, पर्ण, दल, विदल, पलाश, छद, छदन, एवं पतत्र ये सभी पत्ती-पर्याय हैं। नर्म पत्ती को किशलय प्रवाल, किशल एवं पल्लव कहते हैं। फली के कली को शुङ्ग एवं शुङ्ग कहते हैं। पत्र के मध्य शिश को मठि कहते हैं। पत्र, पुष्प या फल जिस काण्ड या शाखा से बंधे हुये होता है उन्हें वृन्त कहते हैं। नये पुष्प के अग्रभाग को मञ्जरी और वल्लरी कहते हैं। पुष्प की कलिका को कोरक, मुकुल, शाखा, जावक कहते हैं। कुसुम, सुमनस् प्रसून, सून, फल्ल, मणीवक ये पुष्प के पर्याय हैं। गुच्छ, गुच्छक, गुत्सक, कुसुमोच्चय गुच्छों वाले पुष्पों के पयार्य हैं। पुष्परज, पराग, मधूलि, मधूलिका ये पराग के पर्याय हैं। कच्चे फल को शलाटु एवं सूखे फल को वान कहते हैं। फुल्ल, स्फुट, स्फुरित उत्फुल्ल, प्रफुल्ल खिले हुये पुष्प के नाम हैं। शालि आदि धान्य वे अग्रभाग को किंशारु एवं धान्य की मञ्जरी को कणिश कहते हैं। यव आदि के तीक्ष्ण भाग को शूक एवं धान्य की त्वचा को तुष कहते हैं। इन सभी पर्यायवाची शब्द इस बात की पुष्टि करते हैं कि प्राचीन काल से ही बनस्पतियों के विभिन्न अङ्ग प्रत्यङ्गों का विस्तृत ज्ञान था। यही कारण है कि चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थों में रचनात्मक वर्गीकरण की विशद विवेचना है। (1) वनौषधि के मूल, काण्ड, पत्र, पुष्प, फल बीज निर्यास आदि को देखकर वर्गीकरण किया गया है। रचनात्मक विवेचन विस्तृत रूप से पूर्व प्रसङ्ग में स्पष्ट किया गया है।

अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन में द्रव्यों का वर्गीकरण आकृति, रचना, रसात्मक, गुणात्मक, कर्मानुसार, भौतिक संयोग के आधार पर, आमयिक प्रयोग के आधार पर, विपाक के आधार पर, प्रभाव के आधार पर, वीर्य के आधार पर, आहारोपयोगी द्रव्यों के आधार पर, औषध उपयोगी द्रव्यों के आधार पर, आनूप आदि देश भेद के आधार पर एवं जांगम, औद्भिज, पार्थिव भेद से किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आधुनिक मत से द्रव्यों का वर्गीकरण :

आधुनिक द्रव्यगुण विज्ञान (मेटीरिया मेडिका) के ग्रन्थों में द्रव्यों के शरीर की भिन्न-2 अवयवों पर होने वाली क्रियाओं के अनुसार उनका वर्गीकरण किया जाता है । उद्भिज द्रव्यों के रचनानुसार वर्गीकरण बहुत कम मिलता है । रचनानुसार वनस्पतिशास्त्र (बोटेनी) का विस्तृत उल्लेख मिलता है । ईसा की 17 वीं शताब्दी के अन्त में यूरोप के कई विद्वानों ने उद्भिजों के अङ्ग प्रत्यङ्गों का सूक्ष्म अवलोकन करना आरम्भ किया, एवं संत्तानोत्पादक साम्य एवं विभिन्नता के आधार पर उनके श्रेणी, गण, वर्ग, कुटुंब, जाति आदि भेद से वर्णन लिखना आरम्भ किया, उदाहरण के तौर पर वत्सनाभ आदि वर्ग (रैननकुलेसी) लिया जाय । वत्सनाभ आदि वर्ग की वनस्पति छोटी-बड़ी चाहे जितनी हों, परन्तु उनके पुष्प, फल उनके एक ही समान रचना एवं संख्या में होते हैं । पुष्प-फल में थोड़ा बहुत अन्तर हो जाने पर जाति प्रकार अलग हो सकता है । जिस प्रकार मुख की आकृति एक समान नहीं होतीं, इसी प्रकार एक ही कुटुम्ब की अनेक जातियों की आकृति, रूप-रंग एक समान नहीं होता । अतः एक कुटुम्ब में अनेक जातियों प्रकारों का समावेश हो सकता है । कुटुम्बवाचक (Generic name) और जातिवाचक नाम (Specific name) ये दो नाम विज्ञानशास्त्रियों ने देकर वनस्पतियों की पहचान में सुगमता कर दी है, वनस्पतियों के शास्त्रीय नाम लेटिन भाषा में है, इसका कारण यह है कि यूरोप, अमेरिका के लोगों की यह आदि भाषा है । समस्त शिष्ठ जगत ने इस नामकरण पद्धति को स्वीकार किया है । यह लेटिन नाम दो शब्दों से बना है । पहला शब्द कुटुम्बवाचक और दूसरा जातिवाचक । उदाहरण के तौर पर यथा फाइकस रिलिजियोसा (Ficus religiosa) इसमें यह कुटुम्बवाचक शब्द है, और religiosa जातिवाचक है । इसप्रकार फाइकस कुटुम्ब में वट, अश्वत्थ, प्लक्ष, पारीष, फल्गु आदि अनेक जातियां है । इन सब के फल, पुष्प, बीज आदि समान होते हैं । भारत में फाइकस कुटुम्ब की 112 जातियों का वर्णन हूकर नामक फ्लोरा में है ।

अनेक जाति के वनस्पतियों की पहचानने की सुगमता के कारण कुटुम्बों की रचना की गई है । कुटुम्बों के एक वर्ग को नैचुरल आर्डर (Natural order) कहते हैं । इस प्रकार नैचुरल आर्डर में कुटुम्ब (Genera) जाति या प्रकार (Species) प्रकार भेद (variety) आदि कर विभाजन देखा गया है । वनस्पतिशास्त्र (Botany) में लगभग 500 वर्गों को दो बड़े विभागों में बांटा गया है । (1) सपुष्पवनस्पति (phanarogamus plants) (2) अपुष्पवनस्पति (cryptogamous plants) सपुष्पवनस्पतियाँ पुनः दो श्रेणियों में विभाजित की गई हैं । (1) द्विदल' वाह्यवर्धक वनस्पति (Dicotyledon) (2) एक दल, अन्तवर्धक वनस्पति (Monocoty ledons) । जिन वनस्पतियों के बीज में दो पत्र या दो दल होते हैं, उन्हें द्विदल कहते हैं यथा-चणक, पलाश, सेम आदि । जिन वनस्पतियों के बीज में एक बीजपत्र होता है या एक ही दल मिलता है, उन्हें एक दल कहा जाता है, जैसे चावल, बाजरा, ज्वार, यव, गोधूम आदि । वनस्पति शास्त्र के महान् वैज्ञानिक लिनियस ने सपुष्प एवं अपुष्प वनस्पतियों के विभाजन एवं ज्ञान हेतु विस्तृत विवेचना की, तथा यह निष्कर्ष निकाला कि जिन वनस्पतियों में पुंकेशर एवं स्त्रीकेशर दिखाई देते हैं उनको अपुष्प वनस्पति की श्रेणी में रखा गया है और जिन वनस्पतियों में स्त्रीकेशर और पुंकेशर गुप्त हो उनको अपुष्प वनस्पति की श्रेणी में रखा गया है । तथा लिनियस ने सपुष्प (phanerogamous) वनस्पतियों के 23 वर्ग (classes) बनाये हैं एवं अपुष्प (crypto gamous) वनस्पतियों के 24 वर्ग निर्धारित किए थे । इस प्रकार स्त्रीकेशर एवं पुंकेश के आधार पर द्विजातीय (Hermaphrodite, Bysexual) एवं एकजातीय (unisexual) Monoecious, Dioecious, बहुजातीय Polygamous आदि भेद से रचना के आधार पर वर्गीकरण किया है ।

सम्पूर्ण पादप जगत की आधुनिक वर्गीकरण तालिका

आधुनिक वर्गीकरण का अध्ययन करने से पता चलता है कि पौधों का क्रमिक विकास हुआ है । जीवाणुओं से शैवाल तथा कवच बने शैवालों ने ब्रायोफाइट तथा टेरिडोफाइट को जन्म दिया । इसप्रकार आधुनिक वर्गीकरण के आधार पर सम्पूर्ण पादपों को 25 संघों में बांटा गया है । इन 25 संघों को 5 प्रमुख श्रेणियों में रखा गया है ।

(1) थैलोफाइटा (Thallophyta) (2) ब्रायोफाइट (Bryophyta) (3) टेरिडोफायटा (pteridophyta) (4) आवर्तबीजी (Angiosperms) (5) अनावृतबीजी (Gymnosperms)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(1) **थैलोफाइटा (Thallophyta)**- थैलोफाइटा के अन्तर्गत लगभग 1 लाख 13 हजार जातियों के पौधे मिलते हैं। कुछ पौधे जलीय तथा कुछ भूमि पर नम स्थानों पर पाये जाते हैं। इस वर्ग को चार उपसमूहों में बांटा गया है। (अ) जीवाणु Bacteria (ब) शैवाल Algae (स) कवच Fungi, द -lichens. ये सभी प्रकार पुनः कई-उपजातियों में विभाजित होती हैं।

(2) **ब्रायोफाइटा (Bryophyta)** - ब्रायोफाइटा समूह के अन्तर्गत लगभग 23,000 जातियाँ पाई जाती है। साधारणतया ये पौधे नम भूमि पर उगते हैं। इस समूह को तीन उपसमूहों में बांटा गया है। (अ) हिपैटोफाइटा Hepatophyta (ब) एन्थोसेरोफाइटा Anthocerophyta, (स) ब्रायोफाइटा Bryophyta।

(3) **टेरिडोफाइटा (Pteridophyta)** इस समूह के अन्तर्गत 10,500 जातियाँ पाई जाती हैं। साधारणतया ये पौधे नम तथा छायादार भूमि पर उगते हैं। अपुष्पी पादपों में ये सबसे अधिक जटिल होते हैं। इस समूह को चार उपसमूहों में बांटा गया है। (अ) साइलोफाइटा Psitophyta, (ब) लाइकोफायटा Lycophyta (स) आथ्रोफाइटा Arthrophyta (द) फिलिकोफाइटा Pilicophyta।

(4) **आवृतबीजी (Angiospensun)** — इस समूह के पौधों में बीज फल के अन्दर बन्द रहता है। इस समूह में छोटे पौधे से लेकर विशालकाय वृक्ष आते हैं। जैसे—आम, बरगद, पीपल आदि। इस समूह को बीजों में पाये जाने वाले बीजपत्रों के आधार पर दो उपसमूहों में बांटा गया है। (अ) एक बीजपत्री Monocotyledons—एक बीजपत्री पौधों के बीज में एक बीजपत्र होता है। यथा मक्का, धान आदि।

(ब) **द्विबीजपत्री Dicotyledons**— इनके बीज में दो बीजपत्र पाये जाते हैं। इनकी पत्तियों में जालिकावत् शिरा विन्यास होता है। यथा अतिविषा, दारुहरिद्रा, वत्सनाभ आदि।

(5) **अनावृतबीजी (Gymnosperms)**— इसके अन्तर्गत वे पौधे आते हैं जिनका बीज नग्न होता है। नग्नबीज पौधों की लगभग 600 जातियाँ मिलती हैं। अनावृतबीजी पौधों को भी दो भागों में बांटा गया है। (अ) साइकेडोफाइटा, (ब) कानिफेरोफाइटा। इस क्रम के वृक्ष सदाबहार होते हैं। पर्णसूक्ष्माकार, तना बड़ा एवं शाखान्वित होता है, यथा—चीड़, देवदार, जूनिपर आदि। इस प्रकार वनस्पति वैज्ञानिकों ने उनकी रचना एवं पुष्पबीज भेद से वर्गीकरण किया है, जिनका कि क्रमिक विकास होता गया। आधुनिक वनस्पतिशास्त्रियों ने नाम रूप परिचय की सुविधा हेतु पुनः इन द्रव्यों को कुल, श्रेणी जाति, प्रजाति से विस्तृत रूप में वर्णन किया एवं उसी आधार पर बने वनस्पति शास्त्र के बड़े-2 फ्लोरा का निर्माण किया गया।, इस प्रकार विद्वानों ने कुटुम्बवाचक Generic name नाम एवं जातिवाचक Specifie name नाम देकर वनस्पतियों की पहचान हेतु बहुत बड़ा कार्य किया है।

निघण्टु विज्ञान की दृष्टि से भी इस वनस्पतिशास्त्र का विभाजन फार्मेसी, थेराटप्युटिक्स, फार्मेकोग्नोसी फार्मेकॉलाजी एवं मेटीरिया मेडिका आदि अंगों में किया गया है। यदि हम पाश्चात्य चिकित्सकों का भी साहित्य अवलोकन करें तो दिखाई पड़ता है कि पहले वे भी मेटीरिया मेडिका को द्रव्यगुणविज्ञान कहते थे। मेटीरिया मेडिका का शाब्दिक अर्थ है कि औषध रूप में उपयोग आसके ऐसे सम्पूर्ण गुण धर्म के शास्त्र को मेटीरिया मेडिका एवं थेरापुटिक्स कहते हैं। इसी द्रव्यगुण विज्ञान का विवचेन इस पुस्तक में किया गया है।

आयुर्वेदीय सिद्धान्तों से द्रव्यों का नामकरण एवं पहिचान

आयुर्वेदीय द्रष्ठी से द्रव्यों का परिचय किया जासके यह विचारणीय प्रश्न आज भी विद्यमान है। यद्यपि औषधियों के वर्णन के विषय में विस्तृत और विशाल साहित्य आयुर्वेद में पाया जाता है, किन्तु अधिकतर लोगों का विचार है कि आयुर्वेद में इस विषय पर विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं हैं। जिसका मुख्य कारण यही है कि आज भी बहुत सी वनस्पतियों संदिग्ध है। यदि गहन रूप से संहिता ग्रन्थों एवं निघण्टु ग्रन्थों के सन्दर्भ स्थलों का अध्ययन किया जाये तो यह स्पष्ट होता है कि आयुर्पेद ग्रन्थों में औषधि द्रव्यों की जाति, आकृति, भेद, उपभेद, वीर्य, रस, गुण आदि विवरणों का पूर्ण रूप में वर्णन है। शास्त्रकारों ने हर एक अङ्ग के परिचय के लिये पर्यायों के वर्णन से कठिनाई हो जाती है, कि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एक ही पर्याय दो, तीन द्रव्यों के हो जाते हैं तथा एक सा अर्थ का ज्ञान होने लगता है, जिसका मुख्य कारण यही रहा है कि कतिपय द्रव्य परिचय के अभाव से अज्ञात एवं संदिग्ध हो गये हैं । इसके अतिरिक्त शताब्दियों से औद्भिज द्रव्यों का परीक्षण एवं अनुसन्धान का प्रवाह रूक जाने के कारण हमारी आर्ष सम्पत्ति का हृास हो गया ।

यह हृास कई तरह से हुआ । एक तो हमारे औषध भण्डार से कई अनमोल रत्न लुप्त हो गये । अष्ठ वर्ग जैसी कितनी दीव्यऔषधियों हमारे ग्रन्थों में वर्णित है । परन्तु उनका सही स्वरूप ज्ञान न होने से हम उन्हें सही रुप से खोज निकालने में समर्थ नहीं हो पाये हैं । एक ओर हमें ओर कलुषित बुद्धि के व्यापारी लोग हीन गुण एवं समान आकार वाले द्रव्यों की मिलावट कर शास्त्र की मर्यादा को नष्ठ कर रहे है । अतः हमें द्रव्यों के पहिचान एवं नाम रूप परिचय हेतु प्राचीनों की बताई हुई विधि द्वारा अनुसरण करना चाहिये । तथा द्रव्यों के अन्वेषण का पूरा उत्तरदायित्व अनुसन्धान कर्ताओं पर छोड़ देना चाहिये । संक्षित रूप में द्रव्यों के पहिचान हेतु प्राचीनों की बताई हुई विधि का यहां पर उल्लेख किया जा रहा है । हमारे प्राचीन आचार्यों ने भेषज द्रव्यों के पहिचान हेतु कई प्रकार बताये हैं । महर्षिचरक ने योगविज्ञान रूपज्ञ को भेषज द्रव्यों का तत्त्वज्ञ बललाया है । द्रव्यों के गुण एवं कर्म के अनुसार उनके परस्पर संयोग तथा प्रयोग को जानने वाले विद्वान् को योगविद् कहा है । अतः भैषज द्रव्यों के नाम, रूप, गुण एवं कर्म, द्रव्यत्तत्वज्ञ के विषय हैं । इन्हीं विषयों को लेकर आयुर्वेद में द्रव्य गुण शास्त्र का निर्माण किया गया है । जिसके कि नामरूपात्मक, गुणकर्मात्मक ये दो पक्ष हैं । द्रव्यों के पहिचान के उभय मुखी हृास की पूर्ति तभी सम्भव है जब हम इन उभय पक्ष का अध्ययन करेगें ।

आयुर्वेदीय द्रव्यगुण शास्त्र के नाम रूपात्मक पक्ष का अध्ययन गुणकर्मात्मक की अपेक्षा अत्पधिक उपेक्षा वृद्धि से देखा गया है । प्राचीन काल में द्रव्यों के नामरूपात्मक एवं गुणकर्मात्मक के अध्ययन हेतु गुरुपरम्परा प्रचालित थी । ऋषियों के आश्रमों में शिक्षा के केन्द्र थे, ये केन्द्र जंगलों एवं पर्वतों पर होते थे । गुरू एवं शिष्य दोनों का जंगलों की जड़ी–बूटियों से सम्पर्क था । जंगली आदिवासी, वनेचर एवं ग्वालों के सम्पर्क से भी द्रव्यों के नाम एवं पहिचान की जाती थी । इसी आधार पर ग्रन्थकारों ने द्रव्यों के कतिपय पर्यायों का सूत्रपात किया । आज हमारी शिक्षण व्यवस्था आश्रमों से उठकर नगरों के कृत्रिम वातावरण में आ गई है, जिसके फलस्वरूप जड़ी–बूटियों का प्रत्यक्ष सम्पर्क टूट गया ।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि प्राचीन आचार्यों ने भषेज द्रव्यों के नामरूपात्मक विवचेन को विशेष महत्त्व नहीं दिया । तथा इन आचार्यों ने व्रव्यों का नाम रूप परिचय के विषय को गोपादि वनवासियों के हवाले कर दिया, जिसके फलस्वरूप मौलिक द्रव्यों की पहिचान की व्यवस्था लुपृ हो गई । केवल टीकाकारों एवं संग्रहकारो ने भिन्न–2 स्थानों पर द्रव्यों के अनेकार्थ नामकरण करने लगे । हमारे आर्ध ग्रन्थों के टीकाकार चक्रपाणी, डल्हण, हेमाद्री, अरुणदत्त आदि विद्वानों ने द्रव्यों के नाम रुपात्मक विषय में अपने विचार स्पष्ट किये । निघण्टु ग्रन्थों के रचयिता छन्वन्तरि, कैय्यदेव, मदनपाल, शोठल, राजनिघण्टु कर्त्ता, राजवल्लभ, भावमिश्र आदि निघण्टुकारों की कृतियों को पाते हैं । टीकाकारों में केवल महामति डल्हण एक ऐसे हैं जिन्होंने ने भेषज द्रव्यों पर देशभेदादि के नामों और मतान्तरों को देकर अधिक प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है । संहिताकाल में भी कतिपय द्रव्यों में संदिग्धता आ गई थी । जो कि इन महर्षियों की टीका इत्यन्ये" मत देकर मालूम पड़ती है ।

लगभग 11 वीं शताब्दी के बाद हमारे आचार्यों ने निघण्टु विषयक रचनाओं का निर्माण किया । इनके समय में भी नामरूपात्मक व्यवस्था बिगड़ गई थी तथा पूर्वाचार्यों एवं समकालीन लेखकों के वचनों का संग्रह तथा कुछ नवीन द्रव्यों का समावेश इन आचार्यों ने किया ।

अनेक नामरूपात्मक विषयक के सम्बन्ध में धन्वन्तरि निघण्टुकार का मत है कि एक ही संज्ञायें समान रूप में कई द्रव्यों के मिलते हैं, तथा एक ही द्रव्य के कई पर्याय हैं । किसी व्यक्ति को एक द्रव्य का एक ही नाम ज्ञात है, देशभेद व भाषा भेद से एक ही द्रव्य के कई नाम होते हैं । उन देशों के लोग उसी नाम से जानते हैं । अतः द्रव्य के परिचय में क्या विधि अपनाई जाये ताकि भ्रम का निवारण किया जा सकें, इसका कुछ संक्षिप्त उपाय शास्त्रकारों ने बतलाया है । निघण्टुकार का कहना है कि द्रव्यों के पहिचान हेतु उनके प्राकृत व संस्कृत में बहुत से नाम हैं । देश व भाषादि भेद से बहुत सी संज्ञायें हैं । अतः इन सब नामों को संग्रह करके जानकारी से पूछकर द्रव्य की जाति व उनके चिहनों को पहचान करके विधिवत् स्पर्श करके उनके गुणों को जानकर तब निर्णय करना चाहिये । द्रव्यों के नाम रूप पुष्ठी हेतु जंगलों में जीवन व्यतीत करने वाले गोपाल, तापस, तपस्वी, व्याध, एवं जो अन्य परम्परागत नाम द्रव्यों के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जातने हैं उनसे जानकारी करनी चाहिये । (3) एक ही नाम वाले तथा तुल्य संज्ञा वाले द्रव्यों का जहां शास्त्र में प्रयोग किया गया है वहां पर ग्रन्थकर्त्ता के प्रसङ्ग, अभिप्राय, अधिकार व सम्प्रदाय को देखकर निर्णय करना चाहिये । इसी प्रकार राजनिघण्टु कार ने भी द्रव्यों के पर्याय देश भेद से, उपमा भेद से, स्वभाव भेद से, वीर्य के आधार पर एवं रुढि नामों के आधार पर किया है । इसके अतिरिक्त आयुर्वेदिक ग्रन्थों में वनोषधियों के मूल, कांड. त्वक्, पत्र, पुष्प, फल, बीज, शाखा क्षीर, सार, लोम, शृंग, प्ररोह, बंध, रस स्पर्श कंटक, प्रवर्धन, वर्धन, चोलक, प्रसून, फूल, गुच्छक, पुष्परज, पराग, एवं पुष्पों पर लगने वाले क्रिमि–कीट पतंग, भ्रमर आदि कतिपय आधार एवं पर्यायों पर निर्भर है । इन सभी आधारों का एक वर्गीकरण तैयार कर नाम रूप परिचय की विधि तैयार की जानी चाहिये जोकि अनुसन्धान के माध्यम से होना चाहिये । कतिपय पर्याय हमें ऐसे देखने को मिलते हैं कि जिनका संकेत च्छेद लेकर, काटकर, रचना का अध्ययन कर दिया गया है । इन सभी आधारों का संक्षिप्त परिचय उदाहरण के रूप में यहां पर दिया जा रहा है, जोकि निम्न प्रकार से है ।

(1) कुटज के सार्थक पर्यायों का विवरणः

(1) स्थान भेद से नाम :– कुटज, कौटज, कौट, कलिङ्ग, गिरिमाल्लिका, ये सभी पर्याय इस बात का संकेत करते है कि कुटज के वृक्ष पहाड़ियों पर होने वाला या कलिङ्ग देश में अधिक वर्धन शील होने के कारण स्थान भेद से इन पर्यायों का उल्लेख किया गया है ।

(2) पुष्प के आधार पर नाम :– गिरिमल्लिका, मल्लिका, पुष्प, महागंन्ध, ये सभी नाम पुष्प के वर्ण एवं सुगन्धी के आधार पर रखे गये है ।

(3) शाखा :– चक्रशाखी नाम से अभिप्राय है कि जिसके काण्ड गोल हो उसे चक्रशाखी कहते हैं एवं च्छेद करने पर चक्राकार बनावट हो ।

(4) वृक्ष की आकृति :– वृक्षक, पाण्डुर, इन्द्र, शंकु, चक्रशाखी, शक्रपादप, से अभिप्राय है कि वृक्ष की अधिक ऊँचाई वाला न हो एवं छोटे वृक्षों की श्रेणी वाला तथा देखने में सुन्दर से अभिप्राय है ।

(5) बीज :– इन्द्रयव, शक्रयव, यवफल, वत्सक, बीज ये पर्याय बड़े यव के आकार सधश बीज होने से पर्यायों का समावेश किया गया है ।

(6) ऋतु :– प्रावृष्य, प्रविषेण्य, वर्षाऋतु में विशेष रूप से विकसित होने से इन पर्यायों का समावेश किया गया है ।

(7) कर्म :– संग्राही मल को बांधने वाला द्रव्य विशेष ।

(8) रस :– वर, तिक्त, कटुक, कटु तिक्त इस प्रधान, रस प्रकार से प्राचीनों ने द्रव्यों की पहिचान आकृति देश, पुष्प, शाखा गुण, रस, वीर्य कर्म एवं रस बोधक पर्यायों को देकर स्पष्ठ किया है । चरक में कुटज, वत्सक बीज, गिरिमल्लिका, कलिंग, वृक्ष, वृक्षक आदि नामों का समावेश है उपर्युक्त सभी पर्याय संहिता ग्रन्थों एवं निघण्टु ग्रन्थों के आधार पर दिये गये हैं ।

(2) गुडुची के सार्थक पर्यायों का विवरणः

(1) जातिवाचक नाम :– बल्ली, या लता, अमृतबल्ली, सोमबल्ली, सोमलत्तिका ये सभी पर्याय लता बोधक है ।

(2) रोहण संबन्धी पर्याय :– छिन्नोद्भवा, छिन्नांगी, कंदोद्भवा अमृता, रोहिणी ये सभी पर्याय इस द्रव्य रोहण के आधार पर हैं । अर्थात् गुड़ूची के काण्ड काट कर रोपित किये जाते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(3) इतिहास के आधार पर :– अमृत–संभवा, देवनिर्मिता, सुरकृता, आदि पर्याय भावमिश्र के अनुसार देवताओं के अमृत पीते समय अमृत के बूंद गिर जाने से है ।

(4) आम्यन्तरच्छेद भेद से :– चंक्राङ्गी, चक्र, मण्डली गुड़ची का आम्यन्तर रचना देखने पर चक्र की तरह चिह्न दिखाई देते हैं । इन आधारों पर गुड़्ची का पहिचान की जा सकती है ।

एला लघु के पर्याय :

(1) रुढिनाम :– सूक्ष्मैला एला,

(2) स्थान के आधार पर :– द्रांविड़ी कोरंगी, सूक्ष्म, अर्थात् द्रविड देश, कोरंग देश व समुद्र के किनारे पैदा होने के कारण से ।

(3) वर्ण के आधार पर :– कपोलवर्णा, चन्द्रवाला, गौराङ्गी, तुत्था ये सभी पर्याय एला के हरित, पीत, रंग के बोधक पर्याय हैं ।

(4) गंध के आधार पर :– बहुलगंधा, गंध फलिका

(5) पुष्प के आधार पर :– चन्द्रवाला, चन्द्रिका

(6) आकार के आधार पर :–' त्रिपूटा, त्रुटि, कायस्था, पृथ्विका

(7) गुण के आधार पर :– बलवती, हिमा, इस प्रकार द्रव्यों का सामान्य रूप से स्वरुप का ज्ञान हो जाता है।

कुछ पर्याय देशविशेष में होने के कारण भी रखे गये हैं। यथा– धन्वयास–धन्वदेशका, काम्बोजी, कपास, मलयज–चन्दन, काश्मीरज–कूठ, सौराष्ट्री–फिटकरी, पारषीक यवानी,

प्रापिृस्थान के आधार पर पर्याय :– मृगनाभि :– कस्तूरी, कृमिजा–लाक्षा, स्निग्धपत्रा–करञ्ज, आदि।

इसी प्रकार फलरागिं के आधार पर पंचराजिका–पटोलः, धाराफल मदन, पंचरेखा–अभया, पुष्प के आधार पर लोमपुष्प, वृतपुष्पक्षी–शिरीष, विषपुष्पक–मदन, वाय्यपुष्पी–वला, फल के आधार पर–पांण्डुपल–पटोल, कंटफल–करंज घाराफल, कंटफला, काण्ड के आधार पर सुकाण्डक क्षीरकाण्डक, महाकाण्डा, रक्तकांण्डा , क्षीर निकलने के आधार पर क्षीरशुक्ला, क्षीरा, पयस्या, क्षीरविदारी पीतदुग्धा, हेमक्षीरी, तिक्तदुग्धा, पर्यायों का उल्लेख शास्त्रकारों ने किया है ।

इस प्रकार पूर्व आचार्यों ने विभिन्न नामों के आधार पर बनौ–षधियों का नामकरण करके द्रव्यों के पहिचान की व्यवस्था की है । इन विभिन्न नामों को देकर उनके स्वरूप परिचय देने की विधि अपनाई गई है । विभिन्न पर्यायों के आधार पर कतिपय संदिग्ध द्रव्यों की पहिचान कतिपय रस, गुण, पत्र, पुष्प, .काण्ड, कन्द, स्वरूप सूचक शब्दों का संग्रह कर द्रव्यों का निर्णय किया जा सकता है । इसी आधार पर लेखक ने द्रव्य गुणादर्श नामक पुस्तक की रचना की है । आशा है कि विचारक विद्वान वैद्य, वनस्पतिशास्त्री एवं विद्यार्थी उपर्युक्त पद्धति द्वारा द्रव्यों का निर्णय करने की चेष्टा करेंगे तो निसन्देह सफलता मिलेगी ।

इस पुस्तक में कतिपय संदिग्ध द्रव्यों का भी वर्णन करने से पूर्व इन द्रव्यों को संदिग्धता का सामान्य ज्ञान विधार्थियों को जानना अनिवार्य है । जिसका कि उल्लेख यहां पर किया जा रहा है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्रव्यों की संदिग्धता का इतिहासः

वेदों की उत्पत्ति से पूर्व औषधि ज्ञान का विवरण हमारे देश में मिलता है जिसका कि उल्लेख ऋगवेद में स्पष्ट रूप से किया गया है । यथा या औषधी पूर्वाजाता देवेम्य स्त्रियुगं पुरा" अर्थात् वैदिक कालीन औषधियों का विभाजन से पूर्व दिव्यज्ञान के द्वारा औषधियाँ जानी जाती थी । और इन औषधियों का समावेश श्रेणिवद्ध रूप में धीरे–2 वेदों में किये जाने लगा । दिव्यज्ञान के द्वारा प्राप्त औषधियों लगज 150 के करीब हैं तथा कालान्तर में हजारों की संख्या में इन औषधियों के भेद प्रभेद होने लगे ।

भगवान् दिवोदास धन्वन्तरि ने भी मनुष्य की उत्पत्ति से पूर्व वनौषधियों की उत्पत्ति का विवरण दिया है । सश्रुत संहिता सूत्रस्थान के प्रारम्भ में ही इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है । इन सभी प्रमाणों से यह स्पटट होता है कि प्रणिजगत् की सुष्टि से पूर्व वनस्पतियों उत्पन्न हुई हैं । मनुष्य का ज्ञान समय के अनुसार धीरे–2 बढ़ता गया और वह औषधियों के नाम, रस, गुण, वीर्य, विपाक प्रभाव आदि का ज्ञान श्रेणिबद्ध रूप में करने लगा । यही वैदिक साहित्य आज में श्रृंखला–वद के रूप में उपलब्ध है । इस प्रकार वनस्पतियों के नामों का उल्लेख क्रमशः वैदिककाल, संहिताकाल, तन्त्रयुग, एवं प्रतिसंस्कार युग में देखने को मिलता है । लेखक ने वनस्पतियों की पहिचान के सन्दर्भ पूर्व प्रसंग. में स्पष्ट कर दिया है । केवल वनौषधियों के संदिग्धता के कारण संक्षिप्त रूप में यहां पर दिया जा रहा है । जिसके कि मुख्य कारण निम्न कारण हैं । (1) शास्त्रीय ग्रन्थों के मौलिक विषयों के अध्ययन का अभाव, मनमानापन (2) कलुषित वृद्धि के व्यापारियों का समान आकार की वनस्पतियों की मिलावट, (3) देशाटन एवं वनंचरों के साथ औषधियों की पहिचान की परम्परा का अभाव, (4) द्रव्यों के क्रय विक्रय में समुचित प्रबधं का अभाव, (5) प्रतिनिधि द्रव्यों के ग्रहण में चिकित्सकों का अपना–2 मन, (6) स्थान भेद से एक ही द्रव्य का भिन्न–भिन्न स्थानों पर अलग–2 प्रयोग, (7) टीकाकारों में मतभेदता, एवं अनेकार्थ पर्यायों का नामकारण, आदि कतिपय कारणों से द्रव्य या तो अज्ञात हो गये है संदिग्ध बन गये हैं ।

(1) अध्ययन का अभावः–

आयुर्वेद के निपुण तत्त्वों को सही रूप में न समझने के कारण, सूत्र रूप में वर्णित औषधियों के कार्य का अनर्थ होने से संदिग्ध हो गई है । इसी प्रकार विद्यार्थी को सही रूप में द्रव्य का परिचय न होने से वह स्वरूप ज्ञान से वंचित हो जाता है, तथा द्रव्यों के पर्यायों की उलझन से अनेकार्थ करने लगता है, हमारे ग्रन्थों में औषधियों के विस्तृत विवरण एवं स्वरूप का अभाव होने से द्रव्य पहिचान में कठिनाई आती है, जिसके कारण द्रव्य संदिग्ध हो जाते है । सामान्य रूप से चरक संहिता में 1,200 औषधियों का वर्णन मिलता है । सुश्रुतसंहिता में लगभग 550 औषाधियों का प्रयोग हुआ है । अष्ठाङ्गहृदय एवं संग्रह में लगभग 1,500 औषधियों का वर्णन मिलता है । काश्यप, मेल, हारीत आदि कतिपय संहिताओं में वनौषधि द्रव्यों का यन्त्र–तन्त्र वर्णन मिलता है । धन्वन्तरि एवं राजनिघण्टु में लगभग 450 खनिज एवं उद्भिज द्रव्यों का वर्णन मिलता है । मदल पाल निघण्टु में जो 1390 ई० में लिखा गया उसके 13 वर्गों में लगभग 500 द्रव्यों का उल्लेख मिलता है । भावप्रकाश निघण्टु में 950 उद्‌मिज औषध द्रव्यों का का उल्लेख है । यह ग्रन्थ लगभग 1550 ईस्वीय सन् का है । 1990 में प्रकाशित कैय्यदेव निघण्टु में 450 द्रव्यों का उल्लेख है । सभी निघण्टुओं में औषध द्रव्यों के पहिचान हेतु जाति, आकृति, प्रयोज्य अंग, रस, गुण, वीर्य, विपाक के आधार पर पर्याय मिलते हैं । प्रायः कुछ पर्याय ऐसे भी हैं जो कि भिन्न द्रव्य होने पर भी वर्णित द्रव्यों के पर्यायों में निघण्टुकारों ने समावेश कर लिया है । यथा श्योनाक, शुकनासा, अरलू मदनफल महापिण्डी, करहाटक आदि कतिपय ऐसे द्रव्य हैं जिनका कि निघण्टु कारों ने एक साथ ही पर्यायों के नाम से उल्लेख कर दिया हैं ।

काल के कुप्रभाव से संदिग्धता का यह भी मुख्य कारण है । एवं आयुर्वेद के निगूठ तत्त्वों के अभाव से औषध द्रव्यों के पर्यायों के अर्थ का अनर्थ होने से द्रव्य संदिग्ध बन गये हैं ।

कलूषित वृद्धि के व्यापारियों द्वारा मिलावटः–

समान आकार एवं रचना वाले द्रव्यों को स्थान भेद से एक द्रव्य बाजार में अनेक नामों से बिकता है । एवं वैद्य को सही पहिचान न होने से एवं पंसारियों पर विश्वास से चिकित्सक अपनी चिकित्सा में इन द्रव्यों का प्रयोग करते

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हैं । अतः वैद्य को द्रव्यों के आकार एवं रचना की सही पहिचान एवं प्रत्यक्ष ज्ञान का होना अनिवार्य है । विद्यार्थियों को द्रव्यों के प्रयोज्य भागों के स्वरूप की पहिचान होनी बहुत अनिवार्य है ताकि द्रव्यों के मिलावट से बच सके इस दिशा में भारत सरकार की भारतीय चिकित्सा पद्धति केन्द्रीय आयुवैद अनुसन्धान परिषद् सचेष्ट है । परिषद् द्वारा किये गये शोध कार्यो से छात्रों का पुस्तक रूप में प्रकाशन यथा शीघ्र हो रहा है जिसमें द्रव्यों की पहिचान एवं मिलावट की पूर्ण जानकारी है उपलब्ध करने का प्रयास किया जा रहा है।

(3) देशाटन एवं वनेचरों द्वारा औषध द्रव्यों का ज्ञानः-

संदिग्धता निवारण एवं द्रव्यों की सही पहिचान के लिये स्थान-2 पर जाकर जड़ी बूटियों का प्रत्यक्ष ज्ञान करना चाहिये । स्थानिक आदिवासी एवं वनेचरों के माध्यम से कई बूटियों की पहिचान की जासकती है । इस विषयक चर्चा पूर्व प्रसङ्ग में स्पष्ट रूप से किया गया है ।

द्रव्यों के क्रय विक्रय की समुचित व्यवस्था पढ़े लिखे अनुभवी वैद्यों द्वारा होनी चाहिये । शुष्क द्रव्यों की पहिचान एवं संग्रहविधि का ज्ञान के बिना सही द्रव्य प्राप्त करना कठिन हो जाता है । टीकाकारों द्वारा भिन्न-भिन्न स्थानों में एक ही द्रव्य का अनेकार्थ करने से द्रव्य संदिग्ध हो गये हैं । अतः इन संदिग्ध द्रव्यों का निर्णय कर संदिग्धता निवारण की व्यवस्था होनी चाहिये । विस्तृत जानकारी विस्तार भय से यहाँ देना कठिन है।

आज हमारे सामने संदिग्ध द्रव्यों के निराकरण के उपायों की समस्या बनी हुई है तथा आयुवैद के लिए यह एक चुनौती है कि इस वैज्ञानिक युग में आयुर्वेद शोध शास्त्रियों को इन द्रव्यों की पहिचान विधि तैयार करनी चाहिये। कुछ संक्षिप्त विचार विद्यार्थियों के ज्ञान हेतु दिये जा रहे हैं, जो इस प्रकार से हैं।

(1) आयुर्वेद ग्रन्थों में वर्णित वानस्पतिक परिचय, गुणधर्म और आमयिक प्रयोगों का अध्ययन।
(2) टीकाकारों और उनके द्वारा उद्धृत मतों का अध्ययन ।
(3) स्थानीय परम्प्रा नामों और प्रयोगों का अध्ययन।
(4) पर्यायों का शब्दिक ज्ञान, एवं एकार्थ पदों द्वारा उत्पन्न संदिग्धता का प्रसंगनुसार अध्ययन।
(5) द्रव्यपरिचयात्मक व गुण परिचयात्मक एवं परीक्षण एवं आतुरीय परीक्षणों द्वारा अंतिम निर्णय।
(अ) द्रव्य के प्रकृति विज्ञान का अध्ययन, नाम, जाति, रुप व रचना का वाह्य-आभ्यन्तर ज्ञान (Pharmecognosy)
(ब) गुण व प्रभाव का अध्ययन, (Pharmacology).
(स) द्रव्य उत्पत्ती एवं देश एवं स्थल का अध्ययन (Ecology)
(द) संग्रह एवं सरंक्षण (Collection and Storage)
(ध) (कल्पविज्ञान, मात्राविज्ञान, आमयिक प्रयोग।

एवं दोषगुण प्रभाव अध्ययन का विस्तृत प्रयोगात्मक अध्ययनों द्वारा संदिग्धता का निराकरण करना चाहिये। यही उपदेश चरकाचार्य ने विमानस्थान में स्पष्ट किया है। द्रव्यों के पहिचान हेतु शास्त्रीय प्रणाली द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि द्रव्य की जाति क्या है उसकी आकृति क्या है। पत्र पुष्प, फल, मूल, काण्ड, त्वक पत्र आदि का क्या स्वरुप है, इसकी रचना कैसी है, इसमें इस गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव क्या है। किस देश में पैदा होती है। उसका पाञ्च-भौतिक संगठन क्या है। किन दोषों का शमन करता है किन दोषों को कुपित करता है। कब इसका संग्रह करना चाहिये है, इसकी सरंक्षण विधि क्या है। औषध द्रव्यों का विभिन्न संस्थानों पर क्या विशेष प्रभाव है आदिविस्तृत जानकारी यत्र तत्र उपलब्ध है। इन सभी का गहन अध्ययन अपेक्षित है। इस विषयक अनुसन्धान भारत के लब्ध प्रतिष्ठित आयुवैद मनीषियों द्वारा करना चाहिये। अतः संक्षिप्त रुप में द्रव्यों के संदिग्धता का मुख्य कारण छात्रों की जानकारी हेतु दिया गया है। जैसा पूर्व प्रसंग में स्पष्ट किया गया है कि कुछ द्रव्य वैदिक काल, संहिता काल निघण्टुकाल में यातो अज्ञात थे या पहिचान के अभाव से संदिग्ध हो गये थे, और काल के कुप्रभाव से धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ती गई है परन्तु भारत सरकार एवं राज्य सरकारें इस दिशा में काफी प्रयत्नशील हैं। आशा है कि निकट भविष्य में कारगर परिणाम सामने दृष्टिगोचर हो सकेगें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रस्तुत पुस्तक में द्रव्यों के गण, कुल, मुख्यपर्याय द्रव्यों का स्वरुप अंग प्रत्यंग वर्णन, कर्मज्ञान, आमयिकप्रयोग, औषघटक, मात्रा, प्राप्तिस्थान एवं मुख्य कर्म का वर्ण दिया जा रहा है। लगभग 400 द्रव्यों का समावेश किया गया है । खनिज, एवं प्राणिज द्रव्यों की जानकारी इस पुस्तक में दी गई है । कर्माभ्यास हेतु कुटज, गुडूची, कण्टकारी आदि द्रव्यों के वाह्य एवं आम्यन्तरिक रचना का सचित्र उल्लेख किया गया है जिसमें द्रव्यों की पहिचान विधि की जानकारी मिल सके ।

खण्ड 1

1. यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायियत् तद् द्रव्यम, च० सू० अ० 1-51 ।।
क्रियागुणवत् समवायिकारण द्रव्यम् सु० सू० अ० 40-3 ।।

2. क्रियागुणवत् समवायिकारणमितिद्रव्यम् वै० सू० 11-5 ।।

3. रवादीन्यात्मामनः कालोदिशश्च द्रव्य संग्रह ।।च० सू० अ० 9-48 ।।

4. रसादीनां पन्चानां यदाश्रयभूतंतद् द्रव्यम् ।। भावप्रकाश ।

5. सर्व द्रव्यं पान्चभौतिक मस्मिन्नर्थे सच्चेचतनावदचेतन चक्ष तस्य गुणाः शब्दयो गुर्वादयश्च द्रवान्ताः च० सू० अ० 261
इह हि द्रव्य पन्चमहाभूतात्मकं, तस्पधिष्ठानं पृथ्वी-योनिरुदकं, खानिलानत समवाया भिवृतिविशेषा ।। अ० स० अ० 99

6. ततो विष्पइ. व्यक्रामतः साशनानशने उभे अथर्व पू० सं० 4
तदद्रब्यं चेतनावदचेतनं च च०सू०अ० 9 ।।
सेनद्रियं चेतनं द्रब्यं, निरिन्द्रियमचेतनम् ''च० सू० अ० 1 ।।

7. तन्तु त्रिविधंप्रोक्तं जागमौदिभि दपार्थिवम्'' च० सू० अ० 1''
जंगमाः खल्वपि चतुर्विधाः । जरापुजांडज स्वेदजोद्भिज्जाः तत्र
मनुष्य पशुब्यालादयो जरायुजाः, खग–सर्प सरीसृपप्रभृतयो अंडजाः'
कृमि कीट प्रभृतयो स्वेदजाः, इन्द्रगोप मण्डूकप्रभृतयो उद्भिज्जाः''
सु० सू० अ० 1''

8. औदिभिदं तु चतुर्विधम्, वनस्पतिस्तथा वीरुधानस्पत्पस्तथौषधिः''
फलै वनस्पतिः पुष्पैवीनस्पत्यः फलैरपि । औषध्य फलपाकान्ताः प्रतानैवीरुध
स्मृताः ।। च० सू० अ० 1''

9. अपुष्पाफलवन्तो वनस्पतयः, प्रतानवत्य स्तम्भिन्यश्व च वीरुधः सुश्रुतः''
वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः अथर्ववेद काण्ड 14 सू० 8
पुष्पवती प्रसूमती फलिनीरफला उतः'' अथर्ववेद काण्ड 8 सू० 7,

9. गुल्मा एक मूलाः संघात जाताः शरेक्षु प्रभृतयः
मनुस्मृति अध्याय 1–48

10. ह्रस्व शाखा शिफः क्षुपः''
अमरकोष वनौषाधी वर्ग''

11. कण्ट कार्यादिकाः प्रोक्ताः प्रसराइतिसंज्ञिता'' शब्दार्थ - चिन्तामणी''

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

12. सर्वंद्रव्यं पाञ्चभौतिकअस्मिनर्थे" "च० सू० 26 110"

13. तत्र द्रव्याणि गुरु खरकठिन मन्द स्थिर विशद सान्द्र स्थूलगन्ध गुण बहुलानि पार्थिवानि"
तान्युपचय संघात गौख स्थैर्यकराणि" च० सू० अ० 26

14. द्रव स्निग्ध शीतमन्द मृदुपिच्छिल रसगुणवहुलान्यापानि, तान्युपक्लेद स्नेह
वन्ध विष्पन्द मार्दव प्रह्लाद कराणि" च० सू० अ० 26"

15. उष्ण तीक्ष्ण सूक्ष्मलघु रुक्षविशद रूपगुणबहुलान्याग्नेयानि, तानि दाह पाक प्रभा प्रकाश वर्णकराणि" च० सू० अ० 26"

16. लघु शीत रुक्ष खर विशद सूक्ष्म स्पर्श गुणबहुलानि वायव्यानि, तानिपरौक्ष्य ग्लानिविचार वैशद्य लाघवकराणि" च० सू० अ० 26"

17. मृदु लघु सूक्ष्म श्लक्ष्ण शब्दगुण बहुलान्याकाशात्मकानि, तानि मार्दव सौषिर्य लाघवकराणिच च० सू० अ० 26"

18. अनेनोपदेशेन नानैषधि भूतं जगति किंचिद् द्रव्यमुपलभ्यते तां तां युक्तिमर्थं च तं तमभिप्रेत्य" च० सू० अ० 26–12"

19. नतु केवलं गुणप्रभावादेव द्रव्याणि कार्मुकाणिभवन्ति'; द्रव्याणि हि द्रव्यप्रभावाद्, गुणप्रभावाद् द्रव्यगुणप्रभावाद् तस्मिंस्तस्मिन् काले तत्तदधि करणमासाद्य तां तां च युक्तिमर्थं च तं तमाभिप्रेत्य यत् कुर्वन्ति, तत् कर्म; येनकुर्वन्ति, तद्वीर्य; यत्रकुर्वन्ति तदधिकरणं, यदा कुर्वन्ति, स कालः; यथा कुर्वन्ति स उपाय यदा साधयन्ति तत् फलम्" च० स० अ० 26 "

20. शमनं कोपन स्वस्थहितं द्रव्यमितित्रिधा अ० हृ० सू० अ० 1"

20. किंचिद्दोष प्रशमनं, किंचिधातु प्रदूषणम् ।
स्वस्थवृतौ मतं किंचित्रिविधं द्रव्यमुच्यते ।। च० सू० अ० 1–69

21. द्विविधं वीर्यप्रधान औषध द्रव्यं, रसप्रधान आहार द्रव्यं ञ्च' च० सू० अ० 2"
तंतं युक्तिविशेष मर्थं चा समीक्ष्य स्ववीर्य गुणयुक्तानि—द्रव्याणि कार्मुकाणिभवन्ति" सु० सू० अ० 41"

22. तत्राप्यौषध द्रव्यं त्रिविधं वीर्यभेदात्—तीक्ष्णवीर्यं यथा शुण्ठयादि, मध्यवीर्य विल्वाग्निमन्थादि, मृदुवीर्यञ्चामलकादि" " सु० सू० अ० 2"

23. मन्दानां व्यवहाराय बुधानां बुद्धिवृद्धये, पञ्चाशत्को हृवयंवर्गः कषायाणांमुदाहृतः"
एतांवन्तो हृयलअल्पबुद्धिनां व्यवहाराय बुद्धिमतां च स्वाल क्षण्यानुमान युक्ति कुशलांना "च० सू० अ० 4"
जीवकर्षभकौ मेदा, महामेदा काकोली क्षीरकाकोली मुद्गपर्णी माषपर्ण्यौ—जीवन्ती मधुक मिति

24. क्षीरिणी राजक्षवकाश्वगन्धाकाकोली क्षीरकाकोली वास्यायनी
भद्रौदनी भारद्वाजी, पयस्या, ऋष्यगन्धा इति वृंहणीयानि"

25. मुस्त कुष्ठ हरिद्रः दारुहरिद्रावचा, अतिविषा, कटुरोहिणी चित्रक चिरविल्व हैमवत्यइति दशेमानिलेखनीयानि भवन्ति"

26. सुवहाअर्क उरुवकाग्निमुखी चित्राचित्रक चिरविल्व शंखिनी शकुलादनी स्वर्णक्षीरिण्य इति दशेमानि भेदनीयानि भवन्ति"

27. मधुक, मधुपर्णी पृश्निपर्ण्यम्वष्ठकी सममंगामोचरस धातकी लोध्र प्रियङ्गु कट्फलानीति दशेमानि सन्धानीयानि भवन्ति"

28. पिप्पली, पिप्पलीमूल चव्य चित्रक श्रृंगवेराम्लवेतस मरिचाजमोदाभल्लातकास्थिहिंगुनिर्यास इति दशेमानि दीपनीयानि भवन्ति"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

29. ऐन्द्रऋषभ्यतिरसर्स्य प्रोक्ता पयस्याश्वगन्धा स्थिरारोहिणीबलातिबला दशेमानिवर्ण्यानि भवन्ति"

30. चन्दनतुंगपद्मकोशीरमधुक मंजीष्ठा सारिवापयस्या सितालता इति दशेमानि वर्ण्याप्रोक्निताभवन्ति"

31. सारवेक्षुमूलमधुक पिप्पलीद्राक्षा विदारी कैटर्य हंसपादी वृहतीकण्टकारिका इति दशेमानि कण्ठयानि भवन्ति"

32. आम्रातक लकुच करमर्द वृक्षाम्लाम्लवेतस कुवलबदरदाडिम मातुलुंगानीति दशेमानि हृद्यानि भवन्ति ।

33. नागर चव्य चित्रक विडंग मूर्वा गुडूची वचामुस्तपिप्पली पटोलानीति दशेमानि तृप्तिघ्नानि भवन्ति ।

34. कुटज विल्व चित्रक नागरातिविषाभया धन्वयासक दारुहरिद्रो वचा चव्यानीति दशेमान्यर्शोघ्नानि"

35. खदिराभयामलक हरिद्रारुष्कर सपृपर्णारग्वध करवीर विडंग जातीप्रवाला इति दशेमानि कुष्ठघ्नानि भवन्ति"

36. चन्दन, नलद कृतमाल नक्तमाल निम्व कुटज सर्षप मधुक दारुहरिद्रा मुस्तानीति दशेमानि कण्डूघ्नानानि भवन्ति"

37. अक्षीव मरिचगण्डीर केबुक विडंग निर्गुण्डी किणही श्वदंष्ट्रा वृषपर्णिकाखुपर्णिका इति दशेमानि क्रिमिघ्नानिभवन्ति"

38. वीरण शालिषष्ठिकेक्षु वालिका दर्भ कुशकाश गुन्द्रेत्कट कतृण मूलानि इति स्तन्यजननानि भवन्ति"

39. हरिद्रा मञ्जिष्ठा सुवहा सूक्ष्मैलापालिन्दी चन्दन कतक शिरीष सिन्दुवार श्लेष्मातका इतिदशेमानि विषघ्नानि"

40. पाठा महौषध सुरदारुमुस्तमूर्वा गुडूची वत्सकफल, किराततिक्त कटुरोहिणी सारिवा इति दशेमानि स्तन्यशोधनानि भवन्ति"

41. जीवकर्षभक काकोली क्षीरकाकोली मुद्गपर्णी, माषपर्णीमिदा वृद्धरुहा जटिला कुलिंग इति दशेमानि शुक्रजननानिभवन्ति"

42. कुष्ठैलवालुक-कटफल समुद्रफेन कदम्बनिर्यासिक्षु काण्डेक्षिक्षुरक वसुकोशीराणीति दशेमानि शुक्रशोधनानि भवन्ति"।

43. मृद्वदीका मधुक मधुपर्णो मेदा विदारी काकोली क्षीरकाकोली जीवक जीवन्ती शालपर्ण्य इतिदशेमानि स्नेहोपगानि भवन्ति" ।

44. शोभाञ्जनकैरण्डार्क वृश्चीर पुनर्नवा यव तिल कुलत्थ माषबदराणि इतिदशेमानि स्वेदोपगानि भवन्ति" ।

45. मधु मधुक कोविदार कर्बुदार, नीप विदुल बिम्वी शणपुष्पी सदापुष्पी प्रत्यग्पुष्पी इति दशेमानि वमनोपगानि भवन्ति"

46. द्राक्षा काश्मर्य परुषकाभयामलक बिभीतक कुबल बदर कर्कन्धू पीलूनीति दशेमानि विरेचनोपगानि भवन्ति"

47. त्रिवृद्बिल्व पिप्पली कुष्ठ सर्षप वचावत्सक फल शतपुष्पामधुक मदनफला नीति दशेमानि आस्थापनोपगानि भवन्ति" ।।

48. रास्ना सुरदारुविल्व मदन शतपुष्पा वृश्चीर पुनर्नवा श्वदंष्ट्राग्निमन्थ श्योन्नाका दशेमान्यतुवासनोपगानि भवन्ति"

49. ज्योतिष्मती क्षवक मरिच पिप्पली विडंग शिग्रुसर्षपामार्ग तण्डुल, श्वेता-महाश्वेता इति दशेमानि शिरोविरेचनोपगानि भवन्ति"

50. जम्बवाम्र पल्लवमातुलुंगाम्ल बदर दाडिम यवषष्ठी-कोशीर मृल्लाजा इति दशेमानि छर्दिनिग्रहणानि भवन्ति"।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

51. नागर धन्वयवासक मुस्तपर्पटक चन्दन किराततिक्तगुडूची ह्रिबेरधान्यक पटोलानीति दशेमानि तृष्णा-निग्रहणनि भवन्ति"

52. शटी पुष्करमूल बदरबीजक कण्टकारिका वृहती वृक्षरुहा-भया पिप्पली दुरालभा श्रंगय इति दशेमानि हिक्कानिग्रहणानि भवन्ति"

53. प्रियंगग्वनन्ताऽम्रास्थि कट्वंग लोध्र-मोचरस समंगधातकीपुष्पा पद्मापद्मकेशराणीति दशेमानि पुरीष संग्रहणीयानि भवन्ति"

54. जम्बु शल्लकीत्यक्कच्छुरामधूक शाल्मली श्रीवेष्ठक भृष्ठमृत्पयस्योत्पल तिलकणा इति दशेमानि पुरीष विरजनीयानि भवन्ति"

55. जम्व्बाम्रपल्क्षवटकपीतनो-दुम्वराश्वत्थ भल्लातकाश्मन्तक सोमवल्का इति दशेमानि मूत्रसंग्रहणीयानि भवन्ति"।

56. पद्मोत्पल नलिन कुमुद सौगन्धिक पुण्डरीक शतपत्र मधुक प्रियंगु धातकीपुष्पाणीति दशेमानि मूत्रविरजनीयानि भवन्ति"।

57. वृक्षादनीश्वदंष्ठ्रावसुक वशिर पाषाणभेद दर्भ कुशकाश गुन्द्रेत्कटमूलानि इति दशेमानि मूत्रविरेचनीयानि भवन्ति"

58. द्राक्षाभयामलक पिप्पली दुरालभाश्रृंगी कण्टकारिका वृश्चीर पुनर्नवा–तामलक्य इति दशेमानि कासहराणि भवन्ति"

59. शटी पुष्करमूलाम्लवेत सैलाहिंग्वगुरु सुरसातामलकी जीवन्ती चण्डा इति दशेमानि श्वासहराणि भवन्ति"

60. पाटलाग्निमन्थ-श्योनाक विल्व काश्मर्य कण्टकारिका वृहती शालपर्णी पृश्निपर्णी गोक्षुरुका इति दशेमानि श्ययथु हराणि भवन्ति"

61. सारिवा शर्करापाठा मञ्जिष्ठाद्राक्षापीलु परुषकाभयाआमलक-बिभीतकानि इति दशेमानि ज्वरहराणि भवन्ति"

62. द्राक्षाखर्जूरप्रियाल बदर दाडिमफल्गु परुषकेक्षु यवषष्ठिका इति दशेमानि श्रमहराणि भवन्ति" ।

63. लाजा चन्दन काश्मर्यफल मधूक शर्करानीलोत्पलोशीर सारिवागुडूची हीवेराणीति दशेमानि दाह प्रशमनानि भवन्ति ।

64. तगरागुरुधान्यक श्रृंगवेर भूतिकवचा कण्टकार्यग्निमन्थश्योनाक पिप्पल्य इति दशेमानि शीतप्रशमनानि भवन्ति"

65. तिन्दुकप्रियालृबदरृखदिरकदर सप्तपर्णाश्वकर्णार्जुनासनारिमेदा इति दशेमान्युदर्द प्रशमनानि भवन्ति"।।

66. विदारीगन्धा पृश्निपर्णी वृहती कण्टकारिकैरण्ड काकोली चन्दनोशीरैला मधुकानीति दशेमान्यंगमर्दप्रशमनानि भवन्ति" ।

67. मधु मधुक रुधिर मोचरस मृत्कपाल लोध्रगैरिक प्रियंगु शर्करलाजा इति दशेमानि शोणितस्थापनानि भवन्ति" ।

68. पिप्पली पिप्पलीमूल चब्य चित्रक श्रृंगवेर मरिचाजमोदाजगन्धाजाजी गण्डीर इति दशेमानि शूलप्रशमनानि भवन्ति" ।

69. शाल कट्फल कदम्वपद्मक तुम्वरु मोचरस शिरीष वञ्जुलैलवालुकाशोका इति दशेमानि वेदनास्थापनानि भवन्ति"

70. हिंगुकैटर्यारिमेदावचा चोरक वयस्था गोलोमी जटिला पलंकषाशोक रोहिण्य इति दशेमानि संज्ञास्थापनानि भवन्ति"।

71. ऐन्द्री ब्राह्मी सहस्त्रवीर्याऽमोघाऽव्यथा शिवाऽरिष्ठा वाट्यपपुष्पी विषवक्सेनक्रान्ता इति दशेमानि प्रजास्थापनानि भवन्ति" ।

72. अमृताऽभया धात्री मुक्ताश्वेताजीवन्त्यतिरसा मण्डूकपर्णीस्थिरा पुनर्नवा इति दशेमानिवयःस्थापनानि भवन्ति" च० सू० अ० 4 ।। 18 ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

73. विदारिगन्धा विदारी सहदेवा विश्वदेवा श्वदंष्ट्रा पृथक्पर्णी, शतावरी सारिवा कृष्णसारिवा जीवकभर्षको महासहा क्षुद्रसहा बृहत्यौ पुनर्नवैरण्डोहंसपांदीवृश्चिकाल्यृषभी चेति ।। सु० सू० अ० 38 ।।

74. आरग्वधमदनगोपघोण्टा कुटजपाठापाटलामूर्वेद्रयव सपृपर्णनिम्व कुरण्टक, दासीकुरण्टक गुडूची चित्रक शांरगेष्ठा करञ्जद्वय पटोल किराततिक्तकानिसुषवी चेति"।

75. वरुणार्त्तगल शिग्रु मधुशिग्रु तर्कारी मेषश्रृंगी पूतिक नक्तमाल मोरटाग्निमन्थ सैरेयकद्वय बिम्वीवसुकबशिर चित्रक शतावरी विल्वाजश्रृंगी) दर्भा वृहती द्वयं चेति"।

76. वीरतरु सहचरद्वय दर्भ वृक्षादनी गुन्द्रानल कुशकाशाश्मभेदकाग्निमन्थमोरटावसुक वसिरभल्लूक कुरण्टकेन्दीवर कपोतवंका श्वदंष्ट्रा चेति"

77. सालसाराजकर्ण खदिरकदर कालस्कन्ध क्रमुक भूर्ज मेषश्रृंग तिनिश चन्दन कुचन्दन शिंशपा शिरीषासनधवार्जुनतालशाक नक्तमाल पूर्तिकाश्वकर्ण अगुरु कालीयकञ्चेति"

78. रोध्र सार्वररोध्र पलाश कुटन्नटाऽशोक फञ्जी कट्फलै लवालुकशल्लकी जिंगिनी कदम्बसालाः कदली चेति ।

79. अर्कालर्क करञ्जद्वय नागदन्तन्ती मयूरकभार्गी रास्नेद्रपुष्पी क्षुद्रश्वेता महाश्वेता वृश्चिकाल्यलवणास्तापसवृक्षश्चेति"

80. सुरसा श्वेत सुरसा फणिज्झकार्जक भूस्तृण सुगन्धक सुमुखकालमालकासमर्दक्षवक खरपुष्पाविडंग कट्फलसुरसी निर्गुण्डी कुलाहनोन्दुरुकर्णिका फञ्जीप्राचीवल काकमाच्यो विषमुष्ठिकश्चेति"

81. मुष्कक पलाशधवचित्रक मदन वृक्षक शिंशपा वज्रवृक्षा स्त्रिफलाचेति"

82. पिप्पली पिप्पलीमूल चव्यचित्रक श्रृंगवेर मरिच हस्तिपिप्पली हरेणुकैलाजमोदेन्द्रयव पाठा जीरक सर्षपमहानिम्व फल हिंगुभार्गी मधुरसाऽतिविषा वचा विडंगानि कटुरोहिणी चेति"

83. एलातगर कुष्ठ मांसी ध्यामकत्वक् पत्र नागपुष्प प्रियंगु हरेणुका व्याघ्रनख शुक्ति चण्डा स्थौणेयक श्रीवेष्ठक चोच चोरक वालुक गुग्गुलु सर्जरस तुरुष्क कुन्दुरुकागुरु स्पृकोशीरभद्रदारु कुंकुमानि पुन्नागकेशरञ्चेति"

84. वचामुस्तातिविषाभया भद्रदारुणि नागकेशरञ्चेति"

85. हरिद्रा दारुहरिद्रा कलशी, कुटजबीजानिमधुकं चेति"

86. श्यामा महाश्यामा त्रिवृत्दन्ती शंखिनीतित्वक् कम्पिल्लक रम्य क्रमुक पुत्रश्रेणी गवाक्षी राजवृक्ष करञ्जदूय गुडूची सप्तलाच्छगलान्त्री सुधासुवर्णक्षीरी चेति"

87. बृहती कण्टकारिका कुटजफल पाठा मधुकञ्चेति" ।

88. पटोल चन्दन कुचन्दन मूर्वागुडूची पाठाः कटुरोहिणी चेति"

89. काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभक मुद्गपर्णी माषपर्णी मेदा महामेदाच्छिन्नरुहा कर्कटश्रृंगी तुगाक्षीरोपद्मक प्रपौण्डरीक ऋद्धि-वृद्धि मृद्विका जीवन्त्योमधुकञ्चेति" ।।

90. ऊषक सैन्धव ,ध शिलाजतु कासीसद्वय हिङ्गुनि तुत्थकञ्चश्चेति ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

91. सारिवा मधुक चन्दन कुचन्दन पद्मक काश्मरीफल मधुक पुष्पाण्युशीरश्चेति ।

92. अञ्जन रसाञ्जननागपुष्प प्रियङ्गुनीलोत्पल नलद नलिन केशराणि-मधुकञ्चेति ।।

93. परुषक द्राक्षा कट्फल दाडिमराजादन कतकफल शाकफलानि त्रिफलाचेति ।

94. प्रियङ्गुसमङ्गाधातकी पुन्नाग नागपुष्प चन्दन कुचन्दन मोचरस रसाञ्जन-कुम्भीक स्त्रोतोञ्जन पद्मकेशर योजनवल्योदीर्घमूलाचेति ।।

95. अम्वष्ठाधातकी कुसुम समङ्गा कट्वङ्गमधुक विल्वपेशिका सावररोध्र पलाश नन्दीवृक्षाः पद्म्केशराणिचेति ।।

96. न्यग्रोधोदुम्बरा श्वत्थवृल्पक्षमधुक पीतनक ककुभाम्र कोशाम्र चोरकपन्त्र-जम्बूद्धय पियाल मधूक रोहिणी वञ्जुल कदम्वबदरी तिन्दुकीशल्लकी लोध्र सावररोध्र भल्लातक पलाशानन्दीवृक्षञ्श्चेति ।।

97. गुडूची निम्ब कुस्तम्बुरु चन्दनानि पद्मकश्चेति।

98. उत्पल रक्तोत्पल कुमुद सौगन्धिक कुबलय पुण्डरीकाणि मधुकञ्श्चेति ।।

99. मुस्ताहरिद्रा दारुहरिद्रा हरीतक्यामलक विभीतक कुष्ठ हैमवतीवचा पाठा कटुरोहिणी शार्ङ्गेष्ठाङ्गतिविषा द्राविड़ीभल्लातकानि चित्रकञ्श्चेति ।।

100. हरीतक्यामलक बिभीतकानि त्रिफला ।

101. आमलकी हरीतकी पिप्पल्यश्चित्रकश्चेति ।

102. पिप्पली मरिच श्रृङ्गवेराणित्रिकटुकम् ।

103. त्रपुसीसताम्र रजतरजत कृष्णालोह सुवर्णानि लोहमल्लश्चेति ।

104. लाक्षारेवतकुटजाश्वमार कट्फल हरिद्राद्धय निम्वसपृच्छदमालत्य-स्त्रायमाणांचेति ।।

105. तत्र त्रिकण्टक बृहतीद्धय पृथक्पर्ण्यो विदारिगन्धा चेति ।

106. विल्वाग्निमन्थ टिण्टुक पाटलाः काश्मर्यश्चेति ।

107. करमर्द त्रिकण्टक सैरीयक शतावरीगृटघ्रनख्य इति कण्टकसंज्ञ ।

108. बिदारी सारिवा रजनी गुडूच्योङ्जश्रृङ्गीचेतिवल्लीसंज्ञा ।।

109. कुश, काशानल दर्भ काण्डेक्षुका इति तृणसंज्ञका ।

110. तत्र स्थावरेभ्य त्वक्-पत्र-पुष्प, फल-मूल-कन्द निर्यासः स्वरसादयः प्रयोज्यवन्तः ।।

111. ।। सु० सू० अ० 9 ।।

112. योगविन्नामरुपज्ञ स्तासां तत्वविदुच्यते ।

113. किं पुनर्योविजानीयादोषधिः सर्वथाभिषक् ।। च० सू० अ० 1"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

114. औषधी र्नामरुपाभ्यां जानते ह्ययपजानने ।
115. अविपाश्च गोपाश्च, से चान्येवनवासिनः ।।

116. बहून्यतः प्राकृत संस्कृतानि नामानिविज्ञाय बहूँश्च पृष्ठ्राव ।
117. द्यष्ठ्वा च संस्पृश्य च जातिलिंगै र्विद्याभिभषग्भेषजमादरेण ।। ध० नि०"

118. एकं तु नाम प्रथितं बहूनामेकस्य नामानि तथा बहूनि ।
119. द्रब्यस्य जात्याकृति वर्ण वीर्य रस प्रभावादि गुणैर्भवन्ति" ध० मि० प्रथमवर्ग

120. गोपालास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचारिणः
121. मूलजातिभिश्च ये तेभ्योः भेषज व्यक्तिरिष्यते ।। ध० नि० प्रथमवर्ग

122. तुल्याभिधानानि तु यलिशिष्ठै र्द्रब्याणियोगे विनिवेशितानि ।
123. अर्थाधिकारागम सम्प्रदायैः विभज्य तर्केण च तानि युज्यात्" "ध० नि०"

124. इदमेवं प्रकृति एवं गुणमेवं प्रभावमस्मिन्न देशे जातमस्ममृण्मेव संगृहीतमेवं निहितंमेव मुपस्कृतमनया च,
125. मात्रया युक्तमस्मिन् व्याधामेवं विधस्य तावतं दोषम पकर्षयत्युपेशमयतिवा ।। च० वि० अ० 8

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अध्याय 2
औद्भिज द्रव्यों का वानस्पतिक स्वरूप एवं पहिचान

द्विदलः (Dicotyledons)

वत्सनाभादिवर्गः (RANUNCULACEAE)

वर्ग लक्षणः. इस वर्ग में परीक्षोपयोगी मुख्य द्रव्य अतिविषा, प्रतिविषा वत्सनाभ, निर्विषा, मभीरा, पीतमूला, उपकुञ्चिंका एवं काण्डीर का वर्णन किया गया है । ये सभी द्रव्य रेननक्युलेसी कुल की हैं । इस कुल में आधुनिक वनस्पति शास्त्र के आधार पर लगभग 1300 जातियों एवं 35 कुटम्बों का समूह पृथ्वी पर उपलब्ध है । इस वर्ग में एक वर्षायु, बहुवर्षायु शाकीय पौधे एवं लतायें पाई जाती हैं । पर्णविन्यास प्रायः मूलोद्भव, एकान्तर पर्ण बड़े, चौड़े खंड़ित या अखण्डित होते हैं । पुष्प द्विदल, विभन्क्त दल, अधस्स्थकोश, पुंकेशर संख्या अनियत पुष्प वाह्यदल संख्या में पांच, रंगीन, स्त्रीकेशर प्रायः अनेक एवं असंयुक्त होते हैं । पुष्प के सभी भाग गर्भाशय स्थित होते हैं । फल प्रायः अनेक बीज युक्त तले में चिपके हुये धारीदार एवं कोष पांच खण्ड़ों में विभक्त होता है । मूल प्राय मूलकाकार, कन्दसद्यश एवं कुछ सूत्रसद्यश होते हैं । इस वर्ग के पुष्प अतिसुन्दर एवं रंगीन होते हैं ।

1 अतिविषा

द्रव्यनाम	संस्कृत (पर्याय) अतिविषा, घुणप्रिया, शुक्लकन्दा, अरुणा, भंगुरा, प्रतिविषा, शिशुभैषज्य, विश्वा,
हिन्दी	अतीस, गढवाली, - अतीस, हिमाचली, - पतीस, मोटिया-पौंकर,
लेटिन	Aconitum heterophy llum wall
कुल	वत्सनाभकुल (1) Ranunculaceae.

संहितोक्तगणः. चरक ने सूत्रस्थान अध्याय 4 में लेखनीय महाकषाय अर्शोघ्न महाकषायों में पाठ दिया है । सुश्रुत ने सूत्र स्थान अध्याय 38 में पिप्पल्यादि, वचादि एवं मुस्तादिगण में पाठ दिया है ।

पर्यायवाची शब्दों की शाब्दिक निरुक्तिः

(1) **अतिबिषाः**— विषमतिक्रान्त (2) अर्थात् जो विष के प्रभाव का अतिक्रमण करे उसे अतिविषा कहते हैं । यह विष जाति की हाने पर भी विषरहित है ।

(2) **घुणवल्लभाः**— घुणानां वल्लभः, इसके मूलकन्द घुणों को अतिप्रय होते हैं । इसीलिये घुणों से वचाने हेतु अतीस के कन्दों को चूने के चूर्ण या तुत्थ के साथ रखते हैं ।

(3) **भंगुराः**— मूलकन्द आसानी से टूट जाते हैं ।

(4) **शिशुभैषज्यः**— बच्चों के लिये यह विशेष उपयोगी

(5) **विश्वाः**— यह शरीर के सूक्ष्म तन्तुओं में शीघ्र पहुँचकर लाभ करती है । शुण्ठी के पर्याय में पिश्वा का प्रायः उल्लेख है ।

(6) **अरुणाः**— प्रकारभेद से अतिविषा रक्तवर्ण की भी होती है ।

(7) **प्रतिविषाः**— प्रतीपा विषस्य प्रतिविषा अगदत्वात्" यह विषघ्न औषधि है ।

स्वरुप परिचयः

यह द्विवर्षायु शाकीय पौधा है । लम्बाई में 30 सी0 मी0 से 100 से0 मी0, स्वावलम्बी होता है । मूल द्विवर्षायु, संयुक्तकन्दवाला द्विव, एक इंच से लेकर दो इंच तक लम्बे शंक्वाकार, श्रृङ्ग सद्यश धुसर -एवं सफेदी लिये होते

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हैं । पुरानाकन्द संकुचित, झुदीदार पतला होता है कन्द तोड़ने पर भंगुर श्वेत्र वर्ण पर्ण काण्डसंलग्न गोलाकार, मंण्डलाकार, आधार ह्रदयाकार, पर्णधार दन्तिल एवं कुष्ठिताग्र होते हैं । ऊपरी पर्ण विनाल (sessil) तथ्रा काण्डसंसक्त (stem-clasping) होती हैं । पुष्पः 2.5 से0 मी0 से 3.95 से0 मी0 हरिताभ नीलेरंग के और देखने में फणाकार होते हैं । फल कोष पांच धारियों वाला एवं अन्दर कृष्णाभवर्ण के चपटे बीज संख्या में 20 से 25 तक होते हैं । बीजों का काला रंग पकने पर होता है ।

पुष्पकालः— जुलाई, अगस्त, फलकालः सितम्बर, अक्टुबर प्राप्तिस्थानः— यह हिमालय प्रदेश में 2,100 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,800 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है । विशेषकर जम्मु-कश्मीर, हिमाचलप्रदेश, उत्तराखण्ड गढ़वाल, कुमाँयु गढ़वाल, नेपाल सिक्किम भूटान, अफगानिस्तान, दार्जिलिंग, एवं सिन्धुघाटी की ढलानों और एलपाईन में उपलब्ध है ।

प्रयोज्य अंग एवं औषध संग्रहकालः—

मूलकन्द-अतीस की जड़ में दो कन्द होते हैं । जिनमें एक पुराने साल का दूसरा नया साल का नयाकन्द पुराने कन्द की उमेक्षा लम्बाई में छोटा श्वेतवर्ण का एवं गढ़ा हुआ होता हैं । चखने पर कन्द त्तिक्त होता है । औषध संग्रह हेतु दोनों कन्दों को अलग–2 सुखाना चाहिये एवं गुणों की धष्ठी से नवीनकन्द विशेष उपयोगी है । पुराने साल वाले मूल अल्पगुण वाले होते हैं । इन मूल कन्दों को नवम्बर दिसम्बर में संग्रह करना चाहिये । इस समय तक बीज परिपक्व हो जाते हैं । बीजों को उसी स्थान पर छोड़ देना चाहिये । सूखे हुये कन्दों को बन्द डिब्बों में चूने के चूर्ण या नीले थोते में रखना चाहिये ।

मिलावटः—

जम्मुकश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश से संग्रहित अतीस में चिरोफलम एक्युमिनेटम् एवं चिरोफिलम विलोसम के मूलकन्दों का मिश्रण होता है । इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत में क्रिप्टोकोरीने स्पीरालिस कन्दाकार भौमिक काण्ड़ों का भी अतीस में मिश्रण किया जाता है। इसको तेलगूभाषा में नत्ती अतिविष तथा तामिल में नत्ततिविदयम्र कहते हैं।

वीर्यकालावधिः— 2 वर्ष, मात्राः 2 माशा से 4 माशा तक

दोष अधिष्ठान भेदन कर्म ज्ञान (3)

गुण लघु, स्क्ष, रस-तिक्त, कटु विपाक-कटु वीर्य-उष्ण, प्रधानकर्म-दीपन-पाचन, ग्राही, ज्वराति–सार–नाशक, यह अग्नि को दीपृ कर आमदोष का पाचन करती है । जिससे आमदोष का प्रसार नहीं हो पाता, दोष भेद से कफ पित्त नाशक है । यूनांनी मतानुसार दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है ।

आमयिकक प्रयोगः—

आमातिसार (4) एवं ग्रहणी रोग में अतीस का उपयोग प्रचूर मात्रा में मिलता है । अतिविषा उत्तम कटुपौष्ठिक होने से बच्चों के अतिसार एवं कास में अतीस श्रृङ्गभस्म के साथ देने से भूख लगती है और अन्न का पाचन होता है ।

(2) बच्चों को उल्टी जुलाव एवं ज्वर में अतीस उत्तम औषध है ।

(3) बच्चों के खांसी, ज्वर एवं कास में अतीस का अच्छा प्रभाव देखा गया है ।

(4) अतीस का प्रयोग कास, अर्श, ज्वर, कृमि, प्रतिश्याय, शूल, अजीर्णजन्यविष आदि रोगों में भी किया जाता है इसके अतिरिक्त इसेसर्वव्याधिहर बताया गया है ।

(5) मुषिकदंश में अतिविषाचूर्ण उपयोगी है ।

(6) प्रवाहिका (अमीविकडिसेन्ट्री) में उपयोगी वत्सकादि कषाय में अतीस मुख्य द्रव्य है ।

रासायनिक संगठनः—

वत्सनाभ जाति की होने पर भी यह विषैली नहीं है । अतिसिन (Atisine) अत्यन्तकड़ुवा एमारफस (Amorphous) ऐल्केजाइड पाया जाता है । इसके अतिरिक्त टैनिकएसिड, पेक्टस तत्त्व, स्टार्च, वसा, इक्षुशर्करा तथा भस्म के मिश्रण 2 प्रतिशत पाये जाते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोगः—

अतिविषाचूर्ण, वालचालुभद्र चूर्ण वत्वसकादिक्वाथ महासुदर्शन चूर्ण, अमृतारिष्ठ, चन्द्रप्रभावटी, गंगाधर रस,

वत्तव्यः— अष्टाड्ग संग्रह ने विषाद्वय" कहकर दो प्रकार की अतीस का उल्लेख किया है । श्वेत एवं कृष्णा, निघण्टुकारों ने अतिविषा के रंग भेद श्वेत, कृष्राा एवं अरुण तीन या चार किस्मों का उल्लेख किया है । वास्तव में श्वेत एवं कृष्राम वर्ण की अतिविषा व्यवहार में प्रयुक्त होती है । श्वेत कन्दा को एकोनाईटम हिटरोफिल्म कहते हैं । एवं कृष्राकन्दा को एकोनाईटम पामेटम् कहते हैं । जिसे कि आसामी भाषा में विखमा बूटी कहते हैं । अरुण एवं पीत विचारणीय है विखमा को ही प्रतिविषा कहते हैं ।

2 वत्सनाभः

द्रव्यनामः—

संस्कृतपर्यायः— अमृत, विष, वत्सनाभ, स्क्ष्वेड, गरल,
हिन्दीनामः— वछनाग, मीठा विष, तेलियाविष,
गढवालीः— मोहरु, मीठा, भोटिया चैन्दुक, वुंआनगपो
लैटिनः— Aconitum ferox wall
कुलः— वत्सनाभकुल Ranunculaceae

सहितोक्तगणः— चरक के पचासमहाकषायों एवं सुश्रुत के 37 गणों में वत्सनाभ का उल्लेख नहीं हैं । लेकिन चिकित्सा एवं कल्प स्थानों के कतिपय स्थलों पर ग्रन्थकारों ने वर्णन किया है ।

पर्यायवाची शब्दों की शब्दिक निरुक्तिः—

(1) अमृतः— यह औषधि विषैली होने पर भी सूक्ष्ममात्रा में प्रयोग करने से जीवन देती है, इसलिये इसे अमृत कहते हैं ।

(2) वत्सनाभः—वत्सान् नभ्नाति णभ हिसायाम्, इसके खाने से बछड़े मर जाते हैं। वत्सस्य नाभिरिव नाभिरस्य इति" अर्थात् बछड़े की
नाभि के समान मूलकन्द होता है । अतः इसे वत्सनाभ कहते हैं ।

(3) विषः— वेष्ठिकायम् (विष्लृ व्यापृौ) विकासी गुणों वाला होने से यह सारे शरीर में फैल जाता है, इसलिये इसे विष कहते हैं ।

(4) गरलमः— गिरतिजीवम् (गृ निगरणे) जीवन को यह निगल जाता है । अथवा गरंलाति" (ला दाने धातु) यह विष का दान करती है इसलिये इसे गरल कहते हैं ।

(5) क्ष्वेडः— श्वेडते मोहयति" इस औषधि के सेवन करने पर मोह उत्पन्न होता है । यह मादक होने से मोह को उत्पन्न करती है ।

स्वरूपपरिचयः— मूलकन्द बहुवर्षायु काण्ड एक वर्षायु 60 सी0 मी0 से लेकर $1\frac{1}{2}$ मीटर तक होते हैं । मूल कन्दद्विवर्षायु दो कन्दों वाला होता है । लम्बाई में 4 से0 मी0 8 से0 मी0 तक बछड़े की नाभी सद्यशया गोस्तनाकार होते हैं । कन्द को तोड़ने पर पीताभ श्वेत एवं सूखने पर चमकदार होता है । काण्ड सीधा, गोल, तलोत्थ एवं शाखा मृसृण हरिताभ होती हैं । पर्ण परस्पराभिमुख, वृकाकार, विच्छिन्न (Lobed) आधार ह्यदयाकार, पर्ण छोटा, पर्ण धार खण्डित 2 या 3 में विभक्त पुष्प मन्जरीसद्यश गहरे नीले रेग के फनाकार होते हैं । फलकोष पांच खण्डों में विभक्त एवं इन कोषों में चपटे कई बीज होते हैं ।

पुष्पकालः— अगस्त, सितम्बर, **फलकाल** सितम्बर, अक्टूबर **प्राप्तिस्थान** यह हिमालय के उत्तराखण्ड गढ़वाल, पिथौरागठ, हिमाचल प्रदेश, कश्मीर, सिक्किम, नेपाल भूटान आदि स्थानों के 2,700 मीटर से लेकर 3,600 मीटर की ऊँचाई तक प्रायः समूह रूप में पाया जाता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोज्यअंग एवं औषध संग्रहकालः— मूलकन्द, सितम्बर, अक्टूबर,

मिलावटः एवं पहिचानः— हिमालय क्षेत्र में वत्सनाभ की कई किस्में पाई जाती हैं । मुख्य रूप से एकोनाइटम चस्मैनथमू Aconitum chasmanthum stopf एकोनाइटम फेलकोनिराई Aconitum, falconeri spapf. एकोनाइटम डाइनोरिज्म Aconitum deinorrhizum stapf आदि किस्मों की मिलावट व्यापारी लोग करते हैं । प्राकृतिक वत्सनाभ गोस्तनाकार, शंक्वांकार 4 से0 मी0 8 से लम्बे एवं परिपवक कन्द वजन दार होता है । तोड़ने पर अन्दर से पीताभ श्वेत एवं चमकदार स्निग्ध होता है । एकोनाइटम फेलकोनिराई की जड़े झुरीदार कमवजनवाली एवं कम लम्बे अन्दर से श्वेताभ वर्ण का तथा चखने पर स्वाद में मधुर होता है । इसी कारण इसे मीठा विष भी कहते है । इसके मधुर स्वाद के बाद जीभ में चिमाचिमाहट एवं शून्यता होती है । बाजार में दो प्रकार का वछनाग मिलता है । (अ). सफेद, (ख) काला श्वेताभ वर्ण मूलककन्द प्राकृतिक होते हैं । एवं काले रंग के मूलकन्द गोमूत्र में शोधित हुये होते है । गोमूत्र में उबालकर एवं धूप में सुखाये हुये कन्दों में कीड़ा नहीं लगता काफी समय तक रख सकते हैं ।

वीर्यकालावधिः 1 से $1\frac{1}{2}$ वर्ष, मात्रा : 1 रि0 2 र0 तक "

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (6)

रस मधुर, वीर्य, उष्ण, विपाक, मधुर वात, कफ दोषशामक, गुण :—रसायन, बल्य, व्यवायी, शीतहर, उष्ण, ज्वरघ्न, स्वदेल, मूत्रल, वातकफ विकारों में उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग : (7) 1. ज्वर में वत्सनाभ सेवन से प्रस्वेद होकर ज्वर कम होता है। मूत्रल होने से हृदय पर शामकप्रभाव पड़ता है।

(2) शिरःशूल में वेदनाशामक के रुप में शुद्धवत्सनाम चूर्ण अच्छा कार्य करता है।

(3) शुद्धवत्सनाभ चूर्ण हृदय के लिये वल्य माना गया है।

(4) पक्षाघात, गठियावात, एवं अन्यवातव्याधियों में इसका अच्छा प्रभाव देख गया है।

(5) पित्त प्रकृति में वत्सनाम का प्रयोग नहीं करना चाहिये, वात एवं कफ प्रकृतिवालों को वत्सनाम विशेष उपयोगी है।

(6) यह न्यूमोनियाँ (वातश्लेष्मिकज्वर) फुफ्फुसच्छदशोथ (प्लुरसी), हृदयावरणशोथ (पेरिकाडइटिस) अन्त्रावरण शोथ (पेरिटोनाइटिस) एवं कास में उपयोगी है।

(7) आमाशय की पीडा या शोथ में वत्सनाभ के प्रयोग से वेदना शान्त होती है।

(8) अग्निमांद्य, श्वास, कास, प्लीहोदर, कण्ठरोग, में उपयोगी है।

(9) कुष्ठ, सन्निपात, मधुमेह शोथ, आदि रोगों में अनुपान भेद से मूल चूर्ण लाभ करता है।

(10) रसायन प्रयोग के लिये शुद्ध विष के सेवन का निर्देश है।

रासायनिक संगठन :— एकोनाइटीन एवं स्युडो एकोनाइटिन नामक विषाक्ततत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :— संजीवनीवटी, मृत्युञ्जयरस, हिङ्गुलेश्वरस, पंचामृतरस, जयावटी, कफकेतु रस, आनन्द भैरवरस, विषगर्भ तैल, अमृतरसायन आदि कतिपय योग है।

वक्तव्य :— (8) अतिमात्रा में वद्यनाग के सेवन से विषैला प्रभाव होता है। विष के शमन हेतु शु0 सुहागा मधु के साथ सेवन कराना चाहिये। मधु.घृत के साथ अर्जुन छाल चूर्ण का सेवन कराना चाहिये। चरक ने मूल विषों में वत्सनाभ एवं श्रृङ्गी विषों की गणना की है एवं उर्ध्व भाग दोषहर माना हे। निघण्टु ग्रन्थों में इन विषों के 8 भेदों का उल्लेख है। डल्हण एवं चक्रपाणी ने लिखा है कि इन किस्मों हिमालय प्रदेश में किरात एवं वनेचरों की सहायता से पहिचाना जा सकता है। यथा.मूलादिविषाणां यत्नपरैरति ज्ञातुमशक्यत्वात् तानि हिवत्प्रदेशे किरात शवरादिम्यों ज्ञेयानि" डल्हणः क0 अ.2" मेरा अपना विचार है कि एकोनाइय्म की कतिपय विर्षली किस्में हिमालयं प्रदेश में सुलभ है जिनमें कि श्रृङ्गिक् Aconitum chosmanthum, सयुक्त, हालाहल आदि प्रकार भेद हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

3 निर्विषा

द्रव्यनाम................संस्कृतपर्यायः................निर्विषि, विषहा, अपविषा, विषवैरिणी, विषभवा
हिन्दी.....................निर्विषी, यूनानीः जद्वार, गढवाली–कांतलू
लैटिन..............................(अ) delphiuium denudatum wall
(व) polygonum rumicifolium
कुल .... वत्सनाभकुल, Ranunculaceae,
अञ्जुवारकुल polygonoceac

गण :— चरक सुश्रुत आदि संहिताग्रन्थों में निर्विषा का उल्लेख नहीं हैं।

पर्यायवाचीशब्दों की शाब्दिक निरूक्ति : निर्विषा :अर्थात् विषकुल की होने पर भी यह विषरहित है।
(2) विषहा :विषहर होने से इसे विषहा कहा गया है।
(3) विषभवा :अर्थात् जिन स्थानों पर वछनाग पाया जाता है. उसी के साथ पैदा होने से इसे विषभवा कहा है।
(4) विषवैरिणी :विषों का शत्रु होने से विषवैरिणी कहा गया है अर्थात् तीव्र मारक विषों के प्रभाव को कम कर देता है।

संदिग्धतानिवारण :— शास्त्रीय निर्विषी विचारणीय हैं अतः किसी वनस्पति विशेष के स्वरूप वर्णन से पूर्व विद्यार्थियों को यह जानना आवश्यक है कि उन वनस्पतियों की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर ले जो कि शास्त्रीय निर्विषी हो सकती है। अधिकतर विद्वानों ने जद्वार को निघण्टुओं मे वर्णित निर्विषी को माना है। जद्दवार (डेलफीनियम डेनुडेटम) यह वत्सनाम कुल की वनस्पति है। एवं आयुवेदीय धठी से गुण घर्मो एवं रचना की साम्यता इस वनस्पति में नहीं मिलती हैं। मेरा अपना अनुभव है कि वास्तव में शास्त्रीय निर्विषी एकोनाइटम की कोई निर्विषी किस्म है या इस कुल से भिन्न वनस्पति है जोकि विषहा, विष्वैरिणी है। मुझे हिमालय के वनौषधि सर्वेक्षण कार्यकाल में इस तरह की बूटी उपलब्ध हुई है जिसमें निर्विषी के शास्त्रीय गुण धर्म में मिलते हैं उसी बूटी का संक्षिप्त परिचय यहां पर दिया जा रहा है।

स्वरूपपरिचय :— संस्कृत..............निर्विषा
लैटिन.................. Polygonum rumicifolium Royle.

यह 60 से० मी० 90 से० मी० तक लम्बा उर्ध्व संस्थित क्षुप है। मूल बहुवर्षायु होता है। मूलकन्द भौमिक काण्ड (Rhizome) ए आद्रकसंध्यश, बाहर से धूसर एवं रक्तवर्ण के तोड़ने पर अन्दर से श्वेतवर्ण एवं सूखने पर भूरे रंग के होते हैं। कन्द स्वाद में कषाय एवं कुछ तिक्त सा होता है। काण्ड मृदुरोमिल, कोमल कुछ नीचे के भाग रक्ताभ होते हैं। पत्र अभिमुख, लट्वाकार, मसृण, पत्राग्र कुछ तीक्ष्ण होता है। पुष्प मन्जरी में एवं श्वेत गुलाबी रंग के होते हैं। बीज पतले चपटे कुछ धारीदार कई संख्या में होते हैं।

पुष्पकाल = जुलाई, अगस्त फलकाल : सितम्बर
औषध संग्रहकाल = सितम्बर, अक्टूबर, प्रयोज्यअंग = मूलकन्द

प्राप्तिस्थान :—

उत्तराखण्ड हिमालय के बर्फीली ढलानों पर एवं विशेष रूप से जिन स्थानों पर वछनाग पाया जाता है, उसके साथ.साथ मिलता है। हिमालय में यह केदारनाथ, मदमहेश्वर, तुंगनाथ, हिमाचलप्रदेश बुढाभंगाल, चम्वा.वनखण्ड, रोटाङ्गपास, जम्मु–कश्मीर राज्य में 3,000 मीटर से लेकर 3,800 मीटर की ऊँचाई तक सुलभ है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मिलावट एवं पहिचान :—

बाजार में निर्विषी के नाम से कई प्रकार के कन्द मिलते हैं। प्रायः व्यापारी लोग वत्सनाभ कौ आकृति के समान वाले कन्दों को निर्विषी नाम से बेचते हैं। जोकि व्यास लगभग $\frac{1}{2}$ " लम्बे अण्डाकार, शंक्वाकार कालाई लिये हुये भूरे रंग के होते हैं। मिलावट वाले कन्द चबाने पर जीभ में सुन्नता चिमचिमाहट पैदा करते हैं। जो सही निर्विषी है वह कुछ तिक्त एवं जिहवा की शून्यता कम कर दे वह सही निर्विषी है। यह तिब्बत एवं नेपाल में होती हैं जो सम्भवतः एकोनाइटम अकरवी या जद्वार खताई कहते हैं। ये कन्द भीतर बाहर से पिलाई लिये हुये श्यामवर्ण के पुच्छाकार होते है श्यामवर्ण के पुच्छाकार होते हैं। जोकि जद्वार के किस्मों में एक है। यही कारण है कि आयुर्वेद के विद्वानों ने डेलफीनियम डेनुडेटम को निर्विषी लिख दिया है। वास्तव में यह प्रकार इस से भिन्न हैं। मेरा अपना विचार है कि इस आयातित किस्म के स्थान पर उत्तराखण्ड हिमालय में उपलब्ध पोलेगोनम रुयुमीसीफोलियम के मूलकन्दों का प्रयोग प्रतिनिधि द्रव्य में करना चाहिये। स्थानिक लोग इसके कन्दों का प्रयोग वछनाग के विष को दूर करने में आन्तरिक सेवन करते हैं।

प्रकारभेद : निघण्टु ग्रन्थों ने इसके रक्त, श्याम, कृष्ण, एवं पीत भेद से चार प्रकार बताये हैं। इन सभी प्रकारों का निर्णय विचाराधीन है।

वीर्यकाल अवधि : 2 वर्ष   मात्रा. 4 से 8 रत्ती $\frac{1}{2}$ से 1 ग्राम

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

गुण-लघु, रूक्ष, रस-तिक्त विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, त्रिदोषशामक, शोथहर, लेखन, विषघ्न, वातहर, रक्तशोधक, आर्तवजनन, आमपाचन, अश्मरीनाशन, मूत्रल, कटुपौष्ठिक, नाड़ियों के लिये वलप्रद वेदनास्थापन एवं सर्वदोषहर है।

आमयिकप्रयोग :

(1) प्रतिश्याप एवं कफ विकार में गोलियाँ बनाकर प्रयोग की जाती हैं।

(2) विषनाशक होने से सभी प्रकार के विषों में इसका उपयोग किया जाता है। दंशज विषों में इसको घिसकर दंश स्थन पर लगाने से लाभ होता है।

(3) सभी प्रकार के शोथों पर लेप उपयोगी है।

(4) कामला, मूत्रकृच्छ्र, कष्ठार्तव, जलोदर आदि में उपयोगी है।

(5) नाड़ियों के लिये बलप्रद होने से पक्षाघात, अर्दित्त, अपस्मार, कम्पवात, त्वचा की शून्यता, एवं अन्य वातरोगों में निर्विषी उपयोगी है।

(6) निर्विषी को निन्द्रा में हिक्रारी माना गया है। अतः मानसिक रोगों तथा वातविकारों की वेदना के कारण नींद न आती हो तो यह उपयोगी है।

(7) इसे यकृतउत्तेक एवं पित्तसारक भी माना गया है।

(8) यूनानी हकीम जद्वार के कई किस्मों का अपने औषध योगों में विशेषरूप से प्रयोग करते हैं।

मात्रा- 4 र0 से 1 माशा तक।

चरक सुश्रुत में निर्विषा का उल्लेख नहीं है।

4 ममीरा

द्रव्यनाम............संस्कृतपर्याय..................पीतमूला, ममीर,

हिन्दीनाम.................. ममीरा, ममीरी, आसामी—मिष्मीतीता

लैटिन........... ....Coptisteeta wall

कुल-वत्सनामादिर्ग Ranunculaceae

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप :— यह काण्डहीन शाकीय क्षुप है। क्षुप एक वर्षायु एवं मूल (राईजोम) बहुवर्षायु "1 से 3" लम्बे गोलाई लिये हुये झुरीदार तथा तोड़ने पर पीताभ वर्ण का चक्राकार एवं स्वाद में तिक्त होता है। यही कारण है कि आसामी लोग इसे मिष्मी तीता कहते हैं।

पर्ण गाजर जैसे तीन भागों में विभक्त होते हैं। पुष्प-नियमित छोटे श्वेतवर्ण के एवं पुष्पदण्ड पर खिलते हैं। पुष्प बाह्य कोश के पत्र 5 से 6 पुष्पाभ्यन्तर कोश के पत्र 5 से 6 नागफणा कृति में होते हैं।

पुष्पकाल — सितम्बर, अक्टूबर,

प्राप्तिस्थान :

यह क्षुप काबुल से लेकर आसाम तक के हिमालय प्रदेश एवं चीन में पाया जाता है। आसाम की मिष्मी नामक पहाड़ियों पर यह पाया जाता है। इसी कारण इसे मिष्मीतीता कहते हैं।

प्रयोज्यअंग एवं औषध संगहकाल : मूल, सितम्बर, अक्टूबर

मिलावट एवं पहिचान :

भारतीय बाजारों में यह प्रायः आसाम से आता हैं। शास्त्रीय ममीरा का प्रयोग बहुत कम देखने को मिलता है क्योंकि ममीरे की सबसे श्रेष्ठ जाति चीन में होती है एवं तिब्बत चीन के अधिकार में चले जाने से सीमान्त प्रदेशों से ये वनस्पतियाँ आनी कठिन हो गई है। इस समय पियारांगा प्रचलितममीरी (थेलेक्ट्रम-फोलियोलोसम्) एक एवं कुटकी मूल और एक्टीया. स्पाईकेटा, केल्थापोलिट्रस के मूलों का मिश्रण किया जा रहा है।

वीर्यकाल = 1 वर्ष से $1\frac{1}{2}$ वर्ष तक, मात्रा : 1 से 2 माशे तक,

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

रस में तिक्त, वीर्य में उष्ण, विपाक में कटु, वात, कफनाशक चक्षुष्य, ज्वरहर, दीपन, पाचन, सर, एवं वृकशूल में उपयोगी है।

आमयिकप्रयोग :

(1) नेत्रामिष्पन्द में आंख पर इसका लेप किया जाता है। ममीरे द्वारा निर्मित नेत्रबिन्दु एवं सुरमा आंख की फूली एवं लालिमा, जलन आदि को नष्ठ करता है।

(2) विषम ज्वर :— ज्वर से पूर्व 1" से 3 माशा की मात्रा में 3 घण्टे के अन्तर में देने से लाभ होता है।

(3) अजीर्ण :— यह आम.पाचक हाने से अजीर्ण में लाभ करता है।

(4) यह कटुपौष्ठिक होने से दुर्बलता को नष्ट करता है।

(5) वातानुलोमक एवं मूत्रल माना गया है। मूत्रल होने से इसे अवरोध जन्य कामला में अनीसून के साथ पीस कर पिलाते हैं।

(6) लेखन होने के कारण नखों का सफेद होना, श्वित्र, सिध्म, कच्छू, तथा त्वचा के दाग में मधु एवं सिरके के साथ इसको पीसकर लेप करते हैं।

रासायनिक संगठन :

इसके मूल में वर्वेरिन नामक आल्केल्वाइड पाया जाता है। यह जल एवं एल्कोहल में विलेय है। यूनानी मतानुसार ममीरा तीसरे दर्जे में गरम ओर खुश्क होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य :— कुछ विद्वानों का विचार है कि ममीरा एवं ममीरी दोनों भिन्न.भिन्न द्रव्य हैं। इसी कारण कतिपय ग्रन्थों में दोनों द्रव्यों का अलग-अलग वर्णन किया है। क्योंकि थेलिक्ट्रमफोलियो-लोशम एवं कोप्पटिसरटीता दोनों द्रव्यों के मूल में वर्वेरीन नामक आल्काल्वाइड पाया जाता है। अतः पियारांगा को प्रतिनिधि द्रव्य के रूप में प्रयोग करना चाहिये।

5 पीतमूला

द्रव्यनाम............ संस्कृत.................... पीतमूला, पीतरंग
स्थानिक....................गढवाल पीलीजड़ी,
लैटिननाम................ ...Thalictrum foliolosum Dc.
कुल वत्सनाभादि वर्ग Ranunculaceae

स्वरूप :— काण्ड उर्ध्व संस्थित, मसृण एवं 60 सेन्टीमीटर से लेकर 1 मीटर तक लम्बा प्रायः एक वर्षायु होता है। मूल बहुवर्षायु गांठदार एवं तोड़ने पर पीले रंग का होता है। पर्ण-एकान्तर, एवं उपपर्ण पिच्छाकार, पर्ण की आकृति चक्राकार एवं लट्वाकार होती है। पत्रतट पालिकायुक्त तथा खण्डित होते है। पुष्प मञ्जरी में श्वेत वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल :— जून, जुलाई,

प्राप्ति स्थान :

यह उत्तरी हिमालय में 900 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,000 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र पाया जाता है। विशेषकर उत्तराखण्ड, जम्बुकश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, आसाम, नेपाल अमरकण्टक आदिस्थानों में सर्वत्र सुलभ है। इसकी अन्य किस्मे भी इन स्थानों पर पाई जाती हैं।

मिलावट एवं पहिचान :

इसके घुमावदार कृष्णाभवर्ण के मूल होते हैं। तोड़ने पर यह अन्दर से पीताभ वर्ण के होते हैं। स्वाद में तिक्त होता है। कभी-कभी व्यापारी लोग ऐनसलीया ऐपटेरा (Ainsliaca aptera) को जड़ों का मिश्रण करते हैं। इसकी जड़ें तोड़ने पर पीत वर्ण की नहीं होती हैं। एवं स्वाद में तिक्त होती हैं।

वीर्यकाल : 1 वर्ष, मात्रा. 1 से $1\frac{1}{2}$ माशा

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

रस में तिक्त, वीर्य में उष्ण विपाक में कटु, कटुपौष्टिक, रूक्ष, दीपन, पाचन, शोथहर, ज्वरघ्न चक्षुष्य मृदुरेचक, श्लेष्मनिःस्सारक, श्वासहर।

आमयिक प्रयोग :

(1) नेत्र के विकारों में पीली जड़ी के द्वारा निर्मित सुरमा विशेष गुणकारी माना जाता है। इसके प्रयोग से आंखों की जलन एवं लालिमा नष्ट होती है।

(2) उदरशूल में मूलचूर्ण या क्वाथ का प्रयोग उपादेय है। इसके प्रयोग से जठर रस तैयार होता है। और अन्न पचता है। उत्तम कटुपौठिक होने से सारक गुणों वाला है।

(3) जीर्णज्वर एवं विषमज्वरों में मूल का प्रयोग किया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(4) यूनानी मतानुसार वेदनास्थापन, श्वयथू विलयन्न, दीपन एवं विषनाशक है। कास, श्वांस एवं फुफ्फुसरोगों में भी प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन : इसके मूल में वर्वेरीन (Berberin) नामक सत्व पाया जाता है।

वक्तव्य : लेखक के विचार से कौप्टीसटीटा के अभाव में इसे प्रतिनिधि द्रव्य के रूप से स्वीकार कर लेना चाहिये क्योंकि यह द्रव्य आसानी से भारत में काफी मात्रा में पाया जाता है।

6 उपकुञ्चिका

द्रव्यनाम संस्कृतपर्याय.................. कुञ्चिका, उपकुञ्चिका, स्थूलजीरक, कालिका, पृथ्वीका,
हिन्दीनाम..................... कलौंजी, मंगरैला फा० श्याहदाना,
लैटिन...........................Nigella satival. L.
कुल वत्सनाभकुल Ranunculaceac
वर्ग : चरक (1) सूत्रस्स्थान आहारयोनिवर्ग, सुश्रुत सूत्र स्थान अ० 46 ''

निरूक्ति :— उपकुञ्चति इति, कुञ्चकौटील्ये,, उप उपसर्ग पूर्वक कुञ्च शब्द से उपकुञ्चिका बना है। जिसका अर्थ है कि कुटिलता, कलौंजी का बीज.कुटिलता लिये हुये होता है।

पृथ्वीका :— प्रथते प्रख्याता भवति गुणैः इति अर्थात् अपने गुणों से प्रसिद्ध होने से इसे पृथ्वीका कहते हैं।

स्थूलजीरक :— स्थूल चासौ जीरकः जीरे से कुछ बड़ा बीज होने से

कालिकाः :— कालः वर्ण अस्ति अस्मा इसका रंग कृष्ण वर्ण का होने से कालिका कहते हैं।

स्वरूप परिचय :

यह एक वर्षायु शाकीय वनस्पति है। काण्ड 60 से० मी० से लेकर 120 सेन्टिमीटर लम्बा उर्ध्वसंस्थित होता है। पर्ण द्वि पालियुक्त, सूच्याकार एवं भालाकार हैते हैं। पुष्प गुलाबी.नीले रंग के, लम्ब पुष्प वृन्त एकाकी खिलते हैं। फल कोषीय एवं बीज पकने पर कृष्णवर्ण के तथा तिकोना होता है। बीजों के मसलने पर उग्र सुगन्धी आती है। ये बीज मसालो के काम में आते हैं।

पुष्पकाल.................. दिसम्बर, जनवरी, फलकाल जनवरी, फरवरी
प्रयोज्यअंग.................. बीज

प्राप्ति स्थान : यह यूरोप के भूमध्य सागरतटीय प्रान्तों का आदिवासी पौध है। सीरिया में यह पौध स्वयंजात होता है। भारत में विशेषतः बिहार, पंजाब एवं उत्तरप्रदेश में इसकी खेती है।

मिलावट एवं पहिचान :

कलौंजी के बीज तिकोने, काले एवं गहरे भूरे रंग के होते हैं। बीजों के ऊपर खुरदरा छिलका होता है। बीज लम्बाई मे 2'' से 3 मि० मि० लम्बे तथा 2 मि० मि० लम्बे होते हैं। मग्जा सफेद रंग का तथा इस मग्ज में काफी तैल होता है। बीजों को मसलने पर तीक्ष्ण सुगन्धी आती है। कभी-कभी प्याज के बीजों की मिलावट कलौंजी के बीजों के साथ किया जाता है जोकि अशुद्ध है।

वीर्यकाल अवधि . 1 वर्ष से 6 वर्ष तक, मात्रा 1 माशा से 2 मा०

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान

रस-कटु, तिक्त, वीर्य (10) उष्ण, विपाक-कटु, दोषघ्नत्ता वातकफ नाशक, गुण-लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कर्म-दीपन, पाचन, गर्भशयोत्तेजक, मूत्रल, वेदनास्थपना, वातनाशक दुर्गन्धीनाशक, गर्भाशय-विशुद्धिकर, आमदोष, आध्मान, वातगुल्म, कृमि एवं आर्तवप्रवर्तक और रूचिकारक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग :

कलौंजी गर्भाशय विशुद्धिकर होने से प्रायः प्रसूताविकारों में सेवन कराया जाता है। इससे भूख अच्छी लगती है। गर्भाशय में यदि कोई दोष शेष रह जाय तो उसे भी यह बाहर निकाल देती हे। इसके अतिरिक्त स्तन्यवृद्धि भी होती है।

(2) कष्ठार्तव में भी कलौंजी को जीरक के साथ देने से ऋतुकाल जन्य वेंदना कम होती है। गर्भाशय का संकोच विकासदि क्रिया करके आर्तव प्रवृति बिना वेदना की होती है।

(3) विषमज्वर में कलौंजी का प्रयोग किया जाता है।

(4) अर्श चिकित्सा में कलौंजी आदि द्रव्यों से साधित तक्र के प्रयोग का विधान है। सूजे हुये अर्श में कलौंजी की धुनि लाभदायक है।

(5) मूत्राघात चिकित्सा में उत्तरवस्ति हेतु कलौंजी का प्रयोग किया जाता है।

(6) गुल्म चिकित्सा दाधिक धृत में कलौंजी आदि द्रव्यों से साधित धृत उपयोगी है।

(7) यूनानी मत से दूसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क है।

रासायनिक संगठन :— स्थिरतैल 31.5 प्रतिशत, ऐसैल्शियलआइल 05 से 1.5 तक। इसके अतिरिक्त ग्लुकोसाइड, एवं सेपोजिन एवं रेजिन होता है। ऐसैन्शियल आयल मुख्य तत्व है।

वक्तव्य :— जीरकत्रय में सफेद जीरा, श्याहजीरा, एवं कलौंजी ये तीन द्रव्य आते हैं। संहिता ग्रन्थों में कारवी, अजाजी, एवं उपकुञ्जिका इन तीन द्रव्यों का उललेख है।

7 काण्डीर

द्रव्यनाम............संस्कृत.................. काण्डीर, जलधान्यक,
हिन्दी.................. जलधनियाँ, प्लेगबूटी
लैटिन.......................... Ranunculus sceleratus
कुल.............................. वत्सनाभवर्ग, Ranunculaceae.

पाठ . घन्वन्तरिनिघण्टु करवीरादिवर्ग,

स्वरूप परिचय :

काण्ड एक वर्षायु मसृण 60 सेन्टीमीटर से लेकर 1 मीटर तक लम्बा होता है। काण्ड पीताभ हरित वर्ण का होता है। काण्ड का भीतरी भाग पोला होता है। पर्ण. मूलोद्धव, धनियाँ की तरह कटी पत्तीवाला 3 पत्र में विभक्त होता है। काण्ड में लगे हुये पर्ण संयुक्त होते हैं। पुष्प.पीत वर्ण के छोटे, फल आकृति मे पिप्पली सदृश होते हैं।

पुष्पकाल -..... जनवरी से मार्च,
फलकालृ....... पुष्पकाल के बाद
प्रयोज्य अंग ......पंचाग, स्वरस,

प्राप्ति स्थान :— यह बूटी प्रायः मैदानी भागों से लेकर हिमालय में 1,200 मीटर की ऊंचाई तक नदी-नालों के किनारे सर्वत्र सुलभ है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— कटु (11) तिक्त, तीक्ष्ण, विस्फोटकारक, सर, वातनाशक, आर्तवजन, पाचक, विषघ्न,

आमयिक पप्रोग :

(1) उभरी हुई गिल्टी बिठाने की अच्छी दवा है।

(2) विस्फोटजनक होने से आमवात में इस बूटी का प्रयोग किया जाता हे।

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(3) गुल्म एवं उदर रोगों में वैद्यलोग सावधानी से इस बूटी का प्रयोग करते हैं।
(4) प्लेग के गांठों पर इसका लेप का आभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है।
(5) पारद एवं अन्य धातुओं के मारण में इसके स्वरस का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन :— इसमें अत्यन्त वीर्यवान् एनिमोनीन (Anemonin) नामक सत्व पाया जाता है।

वक्तव्य :— संहिताग्रन्थों में काण्डीर नामक द्रव्य का उल्लेख नहीं मिलता है। धन्वन्तरि निघण्टुकार ने काण्डीर के नाम से रेननकुलस स्केरेटस का वर्णन किया है। कुछ विद्वानों ने जलपिप्पली। (Lippia nodiflora) इस बूटी का नाम दिया है। लेखक के विचार से जलपिप्पली एवं काण्डीर दोनों अलग-अलग द्रव्य हैं।

भव्यादिवर्ग **DILLENIACEAE**

इस वर्ग में छोटे बड़े वृक्ष पाये जाते हैं। इसमें शाकीय पादप एवं लतायें भी होती हैं। पर्ण-एकान्तर, सादे, अखण्डित, सदा हरित उपपर्ण से युक्त या विहीन होते हैं। पुष्प प्रायः नियमित श्वेत या पीत वर्ण के दर्शनीय, पुष्पबाह्य कोष के दल 5, स्थायी, पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल 4 से 5, पुंकेशर संख्या अनियमित, पराग कोश अन्तर्मुख, एवं भिन्न. भिन्न होती हैं। 16 कुटम्बों में 400 जातियाँ पाई जाती हैं। इस कुल के भारत में उपलब्ध औषधोपयोगी भव्य का वर्णन किया गया है।

8 भव्यः

द्रव्यनाम संस्कृत.......................... .भव्य,
हिन्दी.......................... चाल्ता, करंवल
लैटिन.......................... **Dillenia inclica** Linn.
कुल
गण – चरक सू. अ. 21 फलवर्ग एवं.............भव्यादिवर्ग Dilleniaceae
सु० सूत्र० 46 फलवर्ग, में..................भव्यादिवर्ग उल्लेख है

स्वरूपपरिचय :

इसके वृक्ष एवं पुष्प दिखने से सुन्दर लगते हैं जिसके कारण इसे भव्य कहते हैं। यह गुल्मनुमा 10 सेन्टीमीटर से लेकर 15 सेन्टीमीटर तक लम्बा होता है। इसकी कई जातियाँ पाई जाती हैं। इसके पत्ते बड़े एवं सुन्दर होते है। आकृति में पत्ते सागौन पत्र सदृश हरित मसृण एवं दन्तुर होते हैं। पुष्प बड़े श्वेत, सुगन्धित एवं एकाकी होते है। पक्के फल खटे-मीठे एवं कच्चे फल कषैले होते हैं। फल खट्टे होने से दाल, चटनी आदि में खटाई के लिये डाले जाते हैं। भव्य का फल ताड़ फल सदृश वाहर से कठोर एवं अन्दर से मांसल एवं अनेक बीजों वाला होता है।

पुष्पकाल .... मार्च, अप्रैल
प्रयोज्य अंक .... फल

प्राप्ति स्थान :— यह नैपाल से आसाम तक एवं बंगाल से कोंकण तक पाया जाता है। गुजरात के डांग नामक स्थान पर इसके घने वन पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— (12) रस-मधुर, अम्ल, कषाय, वीर्य-उष्ण विषाक. अम्ल, वात, कफ नाशक हृद्य, ग्राही, विस्ठम्भी मुखशोधक, कफ एवं पित्त प्रकोपक।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग :— (1)

ज्वर में फल का शखत देने से लाभ होता है। कास में फलों का शरवत लाभ करता है। इसके प्रयोग से कफ पतला होकर गिरता है। फल दस्तावर है एवं अधिक खाने से अतिसार होता है।

चम्पकादिवर्ग MAGNOLIACEAE

वर्ग पहिचान :—

इस वर्ग में वृक्ष, लता एवं क्षूप सभी वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। वृक्ष, सदाहरित एवं पर्णपाति होते हैं। पुष्प रचना अनियमित होती हैं। कभी-कभी एकाकी एवं शाखाओं के शिरों पर गुच्छों में भी पाई जाती हें। इस वर्ग के पुष्प आकर्षक, सफेद, पीले एवं गुलाबी रंग के सुगन्धिंत होते हैं। वाह्यान्तर कोष 6 से 9 पंखड़ियों युक्त एवं तीन-तीन के दो चक्रों में व्यवस्थित होती है। सपुष्प द्विबीजपर्ण, विभक्तदल, अधःस्थबीजकोष, पर्ण एवं एकान्तर, नियमित शाखा के अग्रभाग से या पत्रकोण से निकलते हैं। पुंकेशर अनियमित एवं फल गुच्छों में एवं बीज आकार में बड़े होते हैं। इस वर्ग में लगभग 100 जातियाँ पाई जाती हैं।

9 चम्पक

द्रव्यनाम :— संस्कृत .... चम्पक, स्वर्णपुष्प, पीतपुष्प
हिन्दी .... चम्पा
लैटिन .... Michelia Champaca Linn
कुल .... चम्पकादिवर्ग Magnoliaceae

निरूक्ति :— चम्पक : चम्पयति चम्प्यते वा जो विषनाशक गुणवाला है। किसी प्राचीन नगरी के नाम से भी चम्पा शब्द बना है

हेमपुष्पक :— हेमवर्ण पुष्पं अस्य " जिसके फूल सुनहरे रंग के होते हैं।

पीतपुस्प :— पुष्प पीत वर्ण के सुगन्धित होते हैं।

स्वरूप परिचय : चम्पा के वृक्ष उद्यानों में लगाये हुये मिलते हैं। वृक्ष सीधा 10 मीटर से 20 मीटर तक ऊँचा एवं सदाहरित होता है। 12 से 13 मीटर लम्बे 5 से. मी. चौड़ें लट्वाकार, आयताकार, भालाकार अखण्डित एवं गहरे हरित वर्ण के तीक्ष्णाग्र होते होते हैं। पुष्प-पीतवर्ण के सुगन्धित एवं मनमोहक होते हैं। पुष्प एवं छाल का चिकित्सा में व्यवहार होता है।।

पुष्पकाल .... अप्रैल, जून,
प्रयोज्य अंग .... पुष्प, त्वचा,

प्राप्ति स्थान :— इसके वृक्ष दक्षिण भारत, आसाम, एवं ब-ंगाल के जंगलों में स्वयं जात मिलते हैं। भारत के सभी प्रदेशों के उद्यानों में इसके वृक्ष लगाये हुये मिलते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :. (13)

रस.कटु'.तिक्त, वीर्य शीत, विपाक-कटु-कफ-पतनाशक, चक्षुष्य, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न, दाह, कण्डू में उपयोगी।

आमयिक प्रयोग :

1. मूलत्वक् का प्रयोग अनार्तव एवं कष्ठार्त्तव में उपयोगी है।
2. मूल चूर्ण का उपयोग आमवात एवं जीर्ण संधिवात में उपयोगी है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

3. फूल का फाण्ट को पूय मेह में देने से दाह शान्त होता है एवं मूत्र की मात्रा बढ़ती है।
4. विषमज्वर में त्वक्चूर्ण लाभ करता है।
5. योनिदोष में चम्पा के पुष्प जुही के पुष्प एवं मुलेठी के कल्क में घी डालकर एवं पिचु योनि में रखने से योनिदुर्गन्ध दूर होती है
6. चम्पा के मूल की त्वचा में मूत्रल, गर्भाशयोत्तेजक आर्तवजनन स्वेदजनन कटुपौष्ठिक, दीपन, शोथहर गुण विद्यमान है।

सीताफलादिवर्ग ANONACEAE

वर्ग लक्षण :

इस वर्ग में वृक्ष एवं लतायें प्रायः मिलती हैं। पर्ण एकान्तर, सादे अखण्डित होते हैं। पुष्प वाहयकोष में पत्र बहुधा तीन होते हैं। पुष्पाभ्यान्तर कोष के द्विदल दो चक्रों में, पुंकेशर अनियमित, स्त्रीकेशर नलकिका सुक्ष्म, गर्भकोष संख्या में कई एक या अधिक बीज होते हैं। बीज बड़े एवं कठिन। इसवर्ग में 80 कुटम्ब एवं 820 जातियाँ पाई जाती हैं।

10 सीताफल

द्रव्यनाम................

संस्कृत .... सीताफल, गण्डगात्र

हिन्दी .... सीताफल, शरीफा

लैटिन .... Anona Squamosa Linn.

स्वरूप परिचय :—

गुल्म 5 मीटर से लेकर 6 मीटर तक लम्बे बहुशाखीय, पर्ण. बड़े, भालाकार, अण्डाकार मसृण एवं चमकीले होते हैं। पत्र को मसलने पर अप्रियगन्ध आती हैं। पुष्प एकाकी पर्णसंसक्त, फल बड़ा गोल, गढें एवं उभार लिये हुये रंग से हरा एवं पकने पर पीला गुलाबी रंग लिये हुये मधुर एवं स्वादिष्ठ होते हैं। अन्दर से काले बीज निकलते हैं।

फलकाल .... अगस्त, सितम्बर

प्रयोज्यअंग .... फल, पत्र, बीज,

प्राप्ति स्थान :—

यह क्यूबा, जमायका आदि पश्चिम भारतीय द्वीपों का मूल निवासी पौधा है। धन्वन्तरि आदि निघण्टु ग्रन्थों में इस द्रब्य का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। केवल 19 वीं शती के निघण्टु ग्रन्थों में गण्डगात्र नाम से उल्लेख है। भारत में इसका प्रचलन युरोपवासियों के माध्यम से हुआ है एवं इसके गुल्म उद्यानों में गांवों के समीप सर्वत्र पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—

रस.मधुर, बीर्य.शीत, विपाक.मधुर, वात पित्तघ्न। फल.मधुर, वृष्य, हृद्य, वल्य, हृदयवलवर्धक, सौमनस्य जनन, एवं दूसरे दर्जे में गरम और तर है।

आमयिक प्रयोग :—

1. शिर के वालों के जूँ को मारने के लिये बीज चूर्ण सीताफल के पत्ते स्वरस के साथ प्रयोग करते हैं। यह तीव्रजन्तूघ्न हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. कफ प्रकृति एवं प्रतिश्याय कास के रोगी को इसका फल नहीं खाना चाहिये।
3. पित्त प्रकृति एवं वात प्रकृति वालों को सीताफल गुणकारी होता है। यह विशेष रूप से सारक है।
4. पित्त शामक होने से दिल की धड़कन को कम करता है।
5. दुष्ठव्रण से पत्र कल्क लाभ करता है।

गुडूच्यादिवर्ग MENISPERMACEAE

वर्गलक्षणः—

इस वर्ग में बहुधा लताये एवं गुल्मीय पादप होते हैं। इसके काण्ड को काटकर देखने से चक्राकार रेखायें दिखाई देती हैं। पर्ण सवृन्त, एकान्तर, सादे, अखण्डित, करतलाकार विभक्त होते हैं। पुष्प विभाजित, गुच्छ सघश, अथवा जुडें हुये होते हैं। पुरुष एवं स्त्रीपुष्प भिन्न-भिन्न पौधों में अलग-अलग होते हैं। स्त्रीपुष्प पर स्त्रीकेशर प्रायः तीन कोशवाला होता है। प्रत्येक कोश में एक आदि बीज होता है स्त्रीपुष्प में मिथ्या पुंकेशर होता है। फल छोटे, पकने पर लाल जामुनी काले रंग के होते हैं। इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः औषध उपयोग की हैं। विशेषरूप से मुत्रल, ज्वरघ्न, कृमिघ्न, पिन्तघ्न, ग्राही एवं उत्तम कटुपौष्ठिक हैं। कई विषैली औषधियाँ इस वर्ग में पाई जाती हैं।

11 गुडूची

द्रव्यनाम : संस्कृत .... अमृता, छिन्नरुहा, छिन्नोद्‌वा, चक्रांगी, वत्सादिनी, कुण्डलिनी,
हिन्दी .... गिलोय, गुडुच
लैटिन .... Tinospora Cordifolia Mierr.
कुल .... गुडूच्यादिवर्ग Menispermaceae

गण – चरक सू0 अ० 4 में वय–स्थापन, दाहप्रशमन, स्तन्यशोधन,तृप्तिघ्न, तृष्णानिग्रह एवं भाव प्र॰ में गुडूच्यादि वर्ग।

निरुक्ति :

गुडूची :— गुड् रक्षणे धातु से गुडूचीवना है। अर्थात् जो व्याधियों से रक्षा करती है।
छिन्नरुहा :— छिन्ता अपिरोहति" अर्थात् शाखा को काट कर डालने पर बैठने लगती हैं।
बत्सादनी :— वत्सै अद्यते " अद् भक्षणे धातु से यह शब्द का है। अर्थात् बछड़ें इसे खाते हैं।
अमृता :— न मृतमस्या जिसके सेवन से मूत्यु नही आती। अमृता प्रर्याय आंमला के लिये भी निर्दिष्ट है।
चक्रांगी :— काण्ड का आभ्यन्तर भाग की रचना चक्राकार दिखाई देती है। इस प्रकार गुडूची के आकृतिबोधक, गुणबोधक, स्वरूपबोधक सार्थक पर्यायों का उल्लेख शास्त्रकारों ने किया है।

स्वरूप परिचय :— यह वहुवर्षायु, मांसल, आरोही लता है। तना हरिताभ, मांसल, काटने पर अन्तर्भाग चक्राकार। पर्ण एकान्तर, मसृण, हृदयाकार, पर्णनाड़ियाँ संख्या में 7.9 पत्रव्यास 5 से 2 से 10 सेन्टी मीटार सवृन्त, हरितवर्ण के होते हैं। पुष्प गुच्छों में छोटे पीतवर्ण के एवं पत्र कोणोद्रव, फल छोटे, मटर सदृश, एक बीज वाला मांसल एवं पकने पर रक्त वर्ण के कुछ उभार लिये होते हैं।

पुष्पकाल................... अप्रैल, मई
फलकाल................... पुष्पकाल के बाद
प्रयोज्यअंग.................. काण्ड (तना), सत्व
संग्रहकाल. जनवरी से जून तक।

प्राप्ति स्थान :— प्रायः भारत के सभी स्थानों पर 900 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है। पहाड़ों में टिनोस्पोरा मालावेरिका की किस्म पाई जाती है। कन्दोदवा गुडूची कहते हैं। इसके काण्ड भी गुडूची के नाम से विक्रय होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— (1)

रस कटु, तिक्त, कषाय, वीर्य-उष्ण विपाक.मधुर, त्रिदोषशामक, वातघ्न, ग्राही, ज्वरघ्न, दीपनीय, श्लेष्महर, प्रमेहनाशक, रक्तविकारों में उपयोगी। (2) गिलोयसत्व-मधुर, लघु, दीपन, चक्षुष्य धातुओं की पुष्ठि करने वाला मेध्य एवं वयः स्थापक है।

आमयिक प्रयोग :—

1. वातज्वर में गुडूची श्रृतशीत कषाय,
2. विषमज्वर में गुडूची स्वरस,
3. कामला में गुडूची स्वरस
4. वातरक्त में गुडूची का प्रयोग
5. प्रमेह में गुडूची का प्रयोग, इसी प्रकार कुष्ठ कण्डु, प्लीहोदर, अर्श, जीर्णज्वर, हलीमक आदि कतिय रोंगों में गुडूंची के एक मूलिका के प्रयोग का विधान है।

मात्रा :— चूर्ण . 1 से 3 ग्राम , क्वाथ. 3 से 8 तोला, स्वरस. 1 से 2 तोला, सत्व 6 से 1 माशा।

मुख्ययोग :— संशमनबटी, गुडूचीसत्व, अमृतारिष्ठ, गुडुच्यादि क्वाथ, दशमूलारिष्ठ, संजीवनीवटी, चन्द्रप्रभावटी, च्यवनप्राश चिन्त्रकहरीतकी।

रसायनिक संगठन :— गिलोईन, गिलाइनिन, त्रिलेस्टोशल आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

वक्तब्य :— गुर्च को मसल कर पुनः घनसत्व तयार करना चाहिए।

12 पाठा

द्रव्यनाम :—

विषहन्त्री

संस्कृत .... अम्वष्ठा, अम्वष्ठकी, अविद्धकर्णी वृकी, कुचैला, प्राचीना, श्रेयसी,

हिन्दी .... पाठ, पाड़वेल,

लैटिन .... Cissampelos Pareira Linn,

गुण :— चरक में सन्धानीय, स्तन्यशोधन ज्वरहर महाकषायों में पाठा का उल्लेख किया है। सुश्रुत. आरग्वधादि, पिप्पल्यादि, वृहत्यादि, पटोलादि, अम्वादि मुस्तादिगण में उल्लेख किया है।

निरुक्ति :

पाठा :— पठयते इति पाठा। पठ व्यक्तायां वाचि " धातु से पाठा शब्द बना है। अर्थात् जो वाणी मधुर करता है।

विद्ध्कर्णी :— विद्धौकर्णी यया विडकर्णी अर्थात् पत्र पृठ से पष्ठवृन्त से लगा होने से।

श्रेयसी :— अतिशयेन प्रशस्ता. विशेष उपयोगी एवं श्रेष्ठ होने से।

अम्मष्ठा :— अम्वा माता इव या तिष्ठति" रोगों में मातृवत् रक्षा करती है।

विषहन्त्री :— विषघ्न होने के कारण से।

वृकी :— पत्र की रचना वृकसदृश होने से।

स्वरूप परिचय :— यह आरोही लता जाति की वनस्पति है, जो कि पथरीली जगहों पर प्रायः छोटे-छोटे वृक्षों एवं झाड़ियों पर फैली होती है। मूलस्तम्भ वहुवर्षायु, पर्ण-एकान्तर, पत्रवृन्त, पृष्ठभाग से जुड़ा हुआ, लट्वाकार, या वृताकार-वक्काकार, मसृण, कुंठिताग्र, पुष्प-एकलिंगीय, छोटे, श्वेताभ, नर एवं मादाभेद से अलग–अलग, फल मांसल पकने पर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रक्तवर्ण होते हैं। शास्त्रों में लघुपाठा एवं राजपाठा पाठाद्वय का वर्णन मिलता है। सामान्यतया लघुपाठा का विशेष रूप से प्रचलन है। कतिपय विद्वानों ने राजपाठा से Cyclea peltata एवं Stephnania hernandifolia को राजपाठा माना है।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त,

प्रयोज्य अंक................... मूल, पंचांग।

प्राप्ति स्थान :— यह हिमालय 1500 मीटर की ऊँचाई से लेकर समस्त मैदानी भागों में सर्वत्र सुलभ है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

रस कटु, तिक्त; वीर्य उष्ण, विपाक. कटु, त्रिदोषहर, ग्राही, स्तन्यशोधन, वातश्लेष्महर, भग्नसंधानकर, वल्य, अर्शोघ्न, ज्वरघ्न, मूत्रजनन एवं शोथहर है।

आमयिक प्रयोग :— (3)

1. अतिसार में दही की लसी के साथ पाठापत्र देते हैं।
2. पाठा एवं अगुरु का क्वाथ लवण मेह में लाभदायक है।
3. गाय के दही के साथ पाठामूल चूर्ण देने से अतिसार एवं दाह में लाभ होता है।
4. शीतज्वर में पाठामूलचूर्ण संसाधित दुग्ध पिलाने से लाभ होता है।
5. पाठा के मूल चूर्ण की पोट्टली योनि में रखने से प्रसव सुखपूर्वक होता है।
6. अर्धावभेद में पाठा के मूल का नस्य दिया जाता है।
7. सुखप्रसव के लिये पाठामूल कोघिसकर, नाभिवस्ति एवं योनि पर लेप करने से लाभ होता है।
8. वृक एवं मूत्राशय के व्रणों में पाठामूल का उपयोग करना चाहिये।
9. कुपचन, उरशूल अतिसार, रक्तातिसार एवं ज्वरातिसार भी सुगन्धित द्रव्यों के साथ मिलाकर देते हैं।

मात्रा :— चूर्ण 1 से 2 माशा, क्वाथ 2 से 4 औन्स।

योग :— सारिवाद्यारिष्ठ, चन्दनासव, विडंगासव, लोकनाथरस, महायोगराजगुगुल, प्रदरारिलौह, गंगाधरचूर्ण, पुष्यानुकचूर्ण।

वक्तब्य :— चरकसंहिता चिकित्साअध्याय 18 द्वे पाठे पाठ का उल्लेख मिलता है। राजपाठा एवं लघुपाठा के नाम से प्रचलित है। लघुपाठा के विषय में कोई मतभेद नहीं हैं। राजपाठा का प्रयोग भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग–अलग से द्रब्य होता है। जिसमें निम्न दो द्रब्य मुख्य है।

(अ) गिन्दाड़ू Stephania hernandifoli (walld) walp एवं Cyclea- peltata H.f. C. burmanni miers आकनादी है।

13 राजपाठा

द्रव्यनाम :

संस्कृत .... राजपाठा

हिन्दी .... गिन्दाड़ू, आकनादी

लैटिन .... Stephania hennandifolia (walld.) walp. S. Glabra (Roxb. Miers.

स्वरूप परिचय :—

यह बहुवर्षायु आरोही लता है। पत्र अण्डाकार, वर्तुल सवृन्त होते हैं। पुष्प छोटी मंजरियों पीताभ एवं नारंगी रंग के होते हैं। मूल-कन्दिल, काटने पर पीताभ वर्ण का मसृण होता है। राजपाठा के नाम से Cycleapeltata H.F. दक्षिण के लोग प्रयोग करते हैं।

पुष्पकाल .... मई, जून,

प्रयोज्यअंग.................. मूलकन्द

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थान :— इसकी किस्में हिमालय में 900 मीटर की ऊँचाई से लेकर 1,900 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है। cyclea peltata की लता आसाम, दक्षिण में कोंकण महावलेश्वर एवं सिलोन तक पायी जाती हैं।

गुण :— दक्षिण वाली राजपाठा वातहर, स्वेदजनक एवं मूत्रजनक है। छोटे बच्चों के उदरशूल, आंव, अतिसार एवं अर्श में इसकी जड़ पीस कर देते हैं। स्टिफनिया हरर्नेण्डिफोलिया का प्रयोग अतिसार, कुपचन, वातविकार एवं मूत्र विकारों में किया जाता है। इसमें सेपोनीन नामक तत्व पाया जाता है। गिन्डारीन नाम एल्कोलाइड पाया जाता है।

14 छिलहिण्ट

द्रव्यनाम :—

संस्कृत ....पातालगरुड़ी, महामूल, दीर्घवल्ली,
हिन्दी .... जलजमनी, छिलहिण्ट,
लैटिन .... Cocculus hirsutus (Linn.) Diel.
कुल .... Menispermaceae

निरुक्ति :— पातालगरुड़ी पातालगामी वा गरुड इव" अर्थात् जिसके मूल गहराई में जाते हैं। यह विषघ्न होने से गारुड़ी कहलाती है।

छिलहिण्ट :— कफ एवं वायु का शमन करने वाला विशेष द्रव्य होने से या जिसका दीर्घ मूल जमीन के अन्दर गहरा जाता है।

दीर्घवल्ली :— लतायें लम्बी होती हैं।

स्वरूप परिचय :

इसकी लता वृक्षों एवं झाड़ियों पर चढ़ी होती है। पर्ण. मृदु श्वेताभ, रोमिल, एवं एक लता में अनियमित आकार के पर्ण होते हैं। नीचे के पत्र प्रायः लट्वाकार आयताकार 3"× 2 तक बड़े ऊपर के क्रमशः छोटे आयाताकार होते हैं। पुष्प छोटे, एकलिंगीय, हरिताभ होते हैं। फल पकने पर काले बैंगनी रंग के रसदार एवं एक बीज वाला होता है। पत्तों को जल में मसलने से जल जम जाता है। इसलिये इसे जलजमनी कहते हैं। मूल जमीन में काफी नीचे जाने से इसे पातालगरुड़ी कहते हैं।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त.
प्रयोज्यअंग.................. मूल, पत्र

प्राप्ति स्थान : यह लता भारत के उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ है।

दोष अधिठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

रस-कटु, वीर्य उष्ण विपाक कटु, वात, कफनाशक, शीत, वल्य, सारक, स्वेदल, त्रिदोषघ्न, विषघ्न, मूत्रजनन एवं ज्वरघ्न है।

आमयिक प्रयोग :—

1. आमवात एवं सन्धिशोथ में मूलक्वाथ को त्रिकटू के साथ सेवन करने से लाभ होता है।
2. उपदंश में पत्रस्वरस जीरक एवं मिश्री के साथ।
3. पातालगरुड़ी का सेवन करने से देहसम्बन्धी कोई कष्ठ नहीं होता है।
4. मूल का प्रयोग वस्तिशोथ तथा प्रमहे में किया जाता है।
5. पत्तों को चोट एवं शोथ पर बाँधने से वेदना कम होती

मात्रा चूर्ण—2, 3 माशा, स्वरस 2, तोला।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दारुहरिद्रादिवर्ग BERBERIDACEAE

वर्ग परिचय : इस वर्ग में 12 कुल तथा लगभग 210 जातियाँ हैं। इसमें बहुवर्षायु वृक्ष एवं पौधे होते हैं। पर्ण सादे, संयुक्त, उपपर्ण रहित, एकान्तर एवं तले से निकलने वाले होते हैं। पुष्प नियमित, गर्भाशयास्थित, दो या अधिक चक्रों में होते हैं। बीजकोष एक, फल मांसल, बीज काफी संख्या में पाये जाते हैं। इस वर्ग की वनस्पतियों में प्रायः वर्वेरिन नामक अल्कोलायड होता है। मूल एवं त्वचा, तिक्त, वल्य, एवं ज्वरघ्न चक्षुष्य होती है।

15 दारुहरिद्रा

द्रव्यनाम :— संस्कृत .... दारुहरिद्रा, दार्वी, कटंकटेरी पर्जनी, पचम्पचा, पीतदारु, तार्थ्य

हिन्दी .... दारुहलदी, स्थानिक, किनगोड़, तोतरा, काशमल।

लैटिन .... Berberis aristata D.C.

कुल................ दारुहरिद्रादिवर्ग .... Berberidaceae

गण :— (1) चरक. लेखनीय, अर्शोघ्न, कण्डघ्न गण में पाढ़ आता है। सुश्रुत हरिद्रादि, मुस्तादि, लाक्षादि, दारुहरिद्र गण में।

निरुक्ति :

दारुहरिद्रा — काष्ठ हलदी के समान पीले रंग का होता है।

दार्वी — धृविदारणे" अर्थात् यह दोषों का विदारण करता है।

पीतद्रु पीतोद्रु स्कन्धोस्य, तना पीले रंग का होता है।

पचम्पचा — स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखने में सहायता करता है। या भलि-भाँति दोषों का पचन करती है।

कंटकटेरी — करति आवृणोति स्त्रोतोमार्गान्" अर्थात् शरीरस्थित एवं स्त्रोतोस्थित अवरोध करने वाले उग्र दोषों दूर करता है।

पर्जनी — रोगों से बचाने में उपयोगी द्रव्य हैं।

स्वरूप परिचय :— इसके कण्टकित झाड़ीनुमा गुल्म होते हैं। काण्ड बाहर से हरित एवं भीतर से पीत वर्ण के होते हैं। इसीकारण इसे पीत दारु कहते हैं। शाखा प्रशाखायें संख्या में अधिक कांटेदार होती हैं। पर्ण 2.3 ईंच लम्बी, लट्वाकार अमिलट्वाकार, पत्रतट सरल, अखण्डित, किनारे कण्टकित एवं दन्तुर होते हैं। पुष्प संख्या में अधिक पीतवर्ण के सघन मंजरियों में खिलते हैं। फल $\frac{3}{5}$ से $\frac{3}{5}$ इंच तक लम्बे, अण्डाकार, नीलाभ एवं कृष्णवर्ण के होते हें। फल खाने में रुचिकर खट्टे-मीठे होते हैं। बीज संख्या में अधिक होते हें। यूनानी में इन्हीं फलों को जिरिश्क कहते हैं। हिमालय प्रदेश में Berberis की कई किस्में पाई जाती हैं। मुख्य रूप से निम्न किस्मों का दारुहरिद्रा के नाम से संग्रह किया जाता है।

(अ) Berberis asiatica Roxb Dc.
(ब) Berberis Lycium Royle.
(स) Berberis Chitria Lindl.

पुष्पकाल .... अप्रैल, जून

फलकाल .... जुलाई, अगस्त

प्रयोज्यअंग.................. मूल, काष्ठत्वक् सार (रसाज्जन) फल, मूलक्वाथ से तैयार किया हुआ घनसत्व को रसौंत कहते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थान :— ये जातियाँ हिमालय, 1,500 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,000 मीटर की ऊँचाई तक उत्तराखण्ड गढ़वाल कुमायूँ, हिमाचल प्रदेश, कश्मीर, नैपाल, सिक्किम आदि सभी स्थानों पर सुलभ है।

मिलावट :— बाजार में प्रायः उपर्युक्त सभी किस्मों के कष्ठों का मिश्रण मिलता है। वर्वेरिस आरिस्टाटा में वर्वेरीन नामक तत्व अधिक मात्रा में मिलता है। अन्य जातियों में कम मात्रा में मिलता है। वाह्य परीक्षा में काष्ठ एवं छाल को पहिचानना कठिन है। अतः मिलावट की सम्भावना अधिक रहती है। आजकल वर्वेरीन नामक सत्व को विदेशों को निर्यात किया जा रहा है।.

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— (3) गुण.लघु, रुक्ष, रस.तिन्क्त, कषाय, विपाक, कटु, वीर्य, उष्ण, फल, मधुर.अम्ल, कफ पित्तघ्न सर, चक्षुष्य, अर्शोघ्न, रक्तशोधक, यकृतोत्तेजक, ग्राही, पिन्तसारक, व्रणरोपण, ज्वरघ्न, शोथघ्न।

रसौंत (रसांजन) (4) :— शीतवीर्य, आँखों के लिये हितकर रक्तपिन्त, कफ, व्रणशोथ, तथा विषमज्वर, एवं विशूचिका में उपयोगी है। यह उत्तम रसायन भी है।

शुद्ध रसौंत परीक्षा :— शुद्ध रसौंत को पानी में डालने पर घुल जाती हैं। पानी का रंग पीतवर्ण का एवं कांटें कंकड़ रहित, स्वाद में कटु होता है। बाजार में उपलब्ध रसौंत में काफी मिलावटें की जाती हैं।

आमयिक प्रयोग :—

1—**व्रणरोपण**—दारुहल्दी छाल कल्क का लेप उपयोगी माना है।
2—**नेत्ररोग** में रसौंत का अंजन एवं घोल विशेष उपयोगी माना गया है।
3—मुखरोग, रक्तप्रदर एवं नाड़ीव्रणों में रसौंत को शहद के साथ प्रयोग करने पर लाभ होता है।
4—**श्वेतप्रदर में**—चूर्ण मधु या चावल के पानी के साथ देने से लाभ होता है।
5—**कामला**—दारुहल्दी के रस या क्वाथ प्रातः सायं मधु से सेवन करने से लाभ होता है।
6—प्रमेह :—में दारुह'ल्दी त्वक् चूर्ण उपयोगी है।
7—हैजा में घनसत्व को दिन में 4 से 6 की मात्रा में देने से लाभ होता है।
नब्ययमत से दारुहल्दी स्वेदल, मृदुरेचक, ज्वरहर, कटुपोष्ठिक, एवं ग्राही है।

मात्रा :—दारुहल्दी चूर्ण 3 से 6 माशा, घनसत्व 4 से 6 र०।

योग :— खदिरारिष्ठ, रसांजनवटी, अश्वगन्धारिष्ठ, अशोकारिष्ठ, कुमार्यासव, रक्तशोधकवटी, हरिद्राखण्ड, चन्द्रप्रभावटी, ज्यात्यदितैल, पुनर्नवामण्डूर।

16 वन्यकर्कटी

द्रव्यनाम :- संस्कृत .... वन्यकर्कटी (गिरिपर्पट) वन्या, क्षुद्रफला, गोपाली, वनन्त्रपुस
हिन्दी .... वनककड़ी, वनकाख्यडन्या, रिखपात,
लैटिन.................. **Podophyllum hexandrum Royle.**

निरुक्ति :-
वन्यकर्कटी :- ककड़ी सदृश स्वाद एवं गन्ध होने से इसे जंगली ककड़ी कहते हैं।
गोपाली :- ग्वाले लोग पके फलों को खाते हैं।
क्षुद्रा :- इस रक्तवर्ण का फल छोटा होता है।
वन्या :- हिमालय में स्वयंजात होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप परिचय :–

यह बहुवर्षायु 2 से 3 फुट ऊँचा पौधा है। काण्ड मसृण तलोत्थ, मृदु होता है। पर्ण काण्ड पर क्रमानुसार, सवृन्त, चक्राकार, 6"× 10 व्यास में, पत्रतट त्रिपालि में खण्डित द्रत्त धारवाले एवं पत्र मसलने पर खीरे के सदृश गन्ध वाले होते हैं। पुष्प प्याले के आकार में श्वेतवर्ण के, फल मांसल, अण्डाकार, एवं रक्त वर्ण के, बीज 15–20 की संख्या में । मूल ग्रन्थिल, उपमूल–अनेक 1 से 2 फुट तक लम्बा गन्ध वाला होता हैं।

पुष्पकाल .... मई, जून,
फलकाल .... अगस्त, सितम्बर,
प्रयोज्यअंग.................. मूल, मूलसत्व, (पोडोफाईलीन)

प्राप्ति स्थान :– यह उत्तराखण्ड, गढ़वाल, कुमांयु, हिमाचल प्रदेश, कश्मीर राज्य, लद्दाख, दार्जिलिंग, सिक्कीम आदि सीमान्त प्रदेशों में 2,600 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,600 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— (1) रुक्ष, तिक्त, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, वातघ्न, पित्तसारक, संग्राही, वामक, रेचक।

आमयिक प्रयोग :– यह पित्तप्रकोपक होने से पतले पीले रंग के दस्त होते हैं। रक्तविकार, एवं पुराने कैन्सर पर उपादेय है।

रासायनिक संगठन :– पोडोफाइलोनीन नामक अल्कोलायड पाया जाता है। मात्रा मूल चूर्ण 6 र० 1 माशा ।

वक्तव्य :– अधिकतर विद्वानों ने वनवृन्त्ताक एवं गिरिपर्पट इस द्रव्य का नाम रखा है। लेखक के विचार से यह वन्यकर्कटी है। स्थानिक नाम एवं गुणधर्म त्रिपुष से मिलते हैं। ठा० बलवन्तसिंह जी ने चतुरंगुल नामक द्रव्य विशेष के लिये इस वनस्पति का संकेत दिया है।

कमलादिवर्ग NEMPHAEACEA

वर्ग परिचय :— इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः जल में होती हैं। पर्ण-बड़े गोल एवं पत्रवृन्त से द्विधाभग्न होकर पानी में तैरते रहते हैं। पुष्प बड़े श्वेत, रक्त, गुलाबी, पीले नीलेरंग के, एकाकी भी होते हैं पुष्पवृन्त लम्बा, मोटा एवं सच्छिद्र होता है। पुष्पवाह्यकोष के दल 3 से 6 पंखुड़ियों में या उससे अधिक, एवं पुंकेशर स्त्री केशर संख्या में अधिक होते हैं। परागकोश अन्तर्मुख होता है। बीज कोष 8 या अधिक, संयुक्त एवं पुष्पासन काफी बड़ा होता है। इस वर्ग की वनस्पतियाँ शीतल, पौष्टिक, मूत्रल और स्वेदल होती हैं।

17 कमल

द्रव्यनाम :– संस्कृत .... कमल, पद्म अरविन्द, पुण्डरीक, कोकनद, पंकज, अम्भोज, नीरज, श्वेतपत्र शतपत्र, सरोज, सरोरुह, अब्ज
हिन्दी.................. कमल, बीज, कमलगट्टे
लैटिन .... **Nelumbo Nucifera Gaertn**
कुल .... कमलादिवर्ग Nymphaeaceae.
1– चरक मूत्रविरेचनीयगण, सुश्रुत-उत्पलादिगण में पाठ दिया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरुक्ति :–

कमल :– कं जलं अलति भूषयति" अर्थात् जल को शोभित करता है, या जिसे लेने का मन करे उसे कमल कहते हैं। कमला अस्ति अस्मिन्" जिसमें लक्ष्मी का निवास है।

पद्म :— पद्मा अस्ति अस्मिन्" जिसमें लक्ष्मी रहती है या तृषा एवं दाह जिससे नाश होता है ।

अरविन्द :– मन को सुन्दर लगने वाला।

सरोज, सरसिज :— सरसि जायते" जिसका जन्म सरोवर में होता है।

शतपत्र श्वेतपत्र :— पुष्प की पंखुड़ियाँ सफेद रंग की एवं कई संख्या में होती हैं।

नीरज :– पत्र के ऊपर पानी डालने पर तैरता रहता है।

कोकनद:— कोकान् चक्रवाकान् नदति जो चक्रवाकों को मुग्ध करता है।

पुण्डरीक :— पुण्डयति भूषयति आत्मानं" जो अपने वर्ण से मनमोहित करता है एवं तालाब को शोभित करता रहता है। एवं इसी प्रकार सभी जल के पर्याय भी प्रायः कमल के पर्याय हैं।

पुष्पकाल ....मई, जून,

फलकाल................... अगस्त, सितम्बर

कमल के भिन्न—भिन्न प्रयोज्य अंगों के नाम :—

पुष्प	पद्मकेशर, किञ्जल्क पुष्परस, ...मकरन्द
बीज..................	पद्मबीज, कमलाक्ष, (कमलगट्टा)
नाल..................	बिस, मृणाल (मुरार) भसीड,
कमलकन्द............	शालूक
वीर्यकालावधि बीज	.................2 वर्ष।

स्वरूप परिचय :— तालाबों में उगने वाला जलीय पौधा है। पर्ण गोल, गोल, बड़ी थाली के आकार के तथा 30 से 90 सेन्टीमीटर या 1–3 फुट व्यास के होते हैं। पत्र पृष्ठ के मध्य से पत्रवृन्त लगा होता है, पानी की तरफ की पत्रसतह मृदु हल्के रक्तवर्ण की एवं उर्ध्व सतह पत्रोदर ,द्विदलवत् तथा मखमली, गोढे हरे रंग की एवं चिकना होता है। इस सतह पर पानी की बूँद नहीं ठहरती है। पुष्प सूर्योदय के साथ खिलतें हैं। सायंकाल बन्द हो जाते हैं। पुष्प श्वेत, रक्त वर्ण के बड़े पुष्पवृन्त पर एकाकी रुप में खिलते हैं। पुष्प की पंखुड़ियाँ बड़ी एवं अन्दरवाली छोटी होती हैं। पुष्प का गर्भाशय बड़ा होता है। बीजकोष संख्या में अधिक एवं प्रत्येक कोष में एक एक बीज होता है। मूल के उपरी भाग को बिष (मुरार) कहते हैं।

प्राप्तिस्थान :— यह जलाशयों में उत्पन्न होता है। कीचड़ वाले तालाबों में कमल अधिक पाये जाते हैं।

शुद्ध शुद्ध परीक्षा :— नीलोफर के नाम से कतिपय जातियों का संग्रह व्यापारी करते हैं। अतः पुष्प पंखुड़ियों के स्वरूप को देखकर पहचानना चाहिये । यह कमल से भिन्न है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— गुण—लघु, स्निग्ध, रस, मधुर, कषाय, तिक्त, विपाक—मधुर, वीर्य—शीत।

मुख्य योग :— अरविन्दासव एवं कतिपय क्वाथों में उपयोग ।

वक्तव्यः– चरक ने सूत्रस्थान के चौथे अध्याय में पद्मोत्पल, नलिन, कुमुद सौगन्धिक, पुण्डरीक शतपत्र, एक सथ उल्लेख कर कमल की जातियाँ गिनाकर इन्हें मूत्रविरेचनीय दशेमानि में रखा है तथा उत्पल को पुरीष विरजनीय दशेमानि में गिना है। गर्भस्थापन विधि में पद्मोत्प ल कुमुद किंजल्कांश्चास्यै समधुशर्करान् लेहार्थ दापयेत्" कहा है। आसवयानि द्रव्यों की गिनती में भी कमलपुष्प का नाम है। सुश्रुत ने उत्पलादिगण एवं पित्तसंशमन वर्ग में कमल का उल्लेख किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

18 कुमुद

द्रव्यनाम : संस्कृत.................. कुमुद्वती, कुमुदिनी
हिन्दी नाम.................. नीलोफर
लैटिन .... **Nymphaea alba** Linn.

द्रव्यस्वरूप :— यह जलीय बहुवर्षायु मूलवाला द्रव्य विशेष है। मूल जलाशय के सतहों पर फैलता है। पर्ण.गोल, हृदयाकार, चमकीले एवं जल की सतह पर तैरते हैं। पर्णनाल काफी लम्बा होता है। पुष्प नीलाभ श्वेतवर्ण के होते हैं। बीज छोटे पकने पर काले रंग के होते हैं। बिहार, बंगाल में इनका लावा बनाकर लड्डू बनाकर खाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य जातियाँ भी पाई जाती हैं। उत्पल Nymphaea Stellata willd कहते हैं। उत्पल के पुष्पों को नीलोफर भी कहते हैं। इसके पुष्प हल्के बैंगनी–नीले रंग के होते हैं। पुष्प व्यास में 3 से 6 इंच तक होते हैं। यह पौधा प्रायः भारत के उष्ण भागों के तालाबों में पाया जाता है।

प्राप्तिस्थान :— यह कश्मीर के जलाशयों में पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— गुणधर्म कमल सदृश ही है। प्रायः सभी वल्य, कषाय एवं रक्तपित्तहर होते हैं।

वक्तव्य :— भावप्रकाशकार ने कमल के श्वेत, रक्त एवं पीत तीन भेद माने हैं। श्वेतकुवलय (श्वेत कुमुद) एवं कल्हार को रक्तकुमुद कहके वर्णन किया है। स्थल कमल का भी निघण्टुकार ने उल्लेख किया है जो कि हिमालय के एलपाईन क्षेत्र में पाया जाता है। वनस्पतिशास्त्र के आधार पर इसे ससूरिया आवेलाटा कहते हैं। संहिताग्रन्थों ने भी कतिपय भेदों का उल्लेख किया है। आधुनिक वनस्पतिशास्त्र के आधार पर निंफिया की श्वेत, रक्त एवं नील तीन जातियाँ मानी गई हैं। पुष्प खिलने के आधार पर सूर्य विकाश्री एवं चन्द्रविकाश्री दो भेद माने गये हैं। सूर्य निकलने पर खिलते हैं। उन्हें सूर्य विकाश्री एवं जो चन्द्रमा निकलने पर रात को खिलते हैं उन्हें चन्द्रविकासी कहते हैं। कमल सूर्यविकासी एवं कुमुद चन्द्रविकासी होते हैं।

19 मखान्न

द्रव्यनाम :— संस्कृत .... मखान्न, पानीयफल, (जल में उत्पन्न होने के कारण)
हिन्दी .... मखाना
लैटिन .... **Euryale feroz Salisb**
कुल .... कमलादिवर्ग Nymphaeaceae

स्वरूप परिचय :— यह भी कमल की तरह जल में उत्पन्न होने वाला पौधा है। क्षुप काण्डहीन कांटेदार, पर्ण कमल सदृश जल के ऊपर तैरते रहते हैं। पर्ण व्यास में 30 से– मी– 10 से– मी– तक ऊपर से हरित वर्ण के, नीचे से बैंगनी लाल रंग के एवं गोल चमकीले होते हैं। पुष्प 3 से.मी. से 6 से. मी. रक्ताभ वर्ण के होते हैं। फल— गोलाकार, कँटिदार, स्पञ्जसदृश छिद्रयुक्क्त एवं नीलोफर के पुष्प सदृश होते हैं। फल कोष में 8 से 20 बीज होते हैं। बीज मटर के आकार सदृश ये बीज को बालू में भून कर फूल जाते हैं। जिन्हें मखाना कहते हैं।

प्राप्तिस्थान :— यह उत्तर भारत मध्य, बिहार के मिथिलाप्रदेश, विशेष रूप से दरभंगा के तालों में पाया जाता है।

प्रयोज्य अंक .... बीज,
बीज की मात्रा................. 6 मा० से 1 तोला

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—(1) रस-मधुर तिक्त, कषाय, वीर्य-शीत विपाक–कटु मधुर, त्रिदोषघ्न, वल्य, वाजीकर, ग्राही, स्तम्भन एवं कमलबीज सदृश ही मखाना के गुण हैं।

आमयिक प्रयोग :—

1– भूने हुये मखाना को शुक्रस्त्राव एवं वीर्याल्पता में दूध के साथ सेवन कराते हैं।
2– प्रसवोत्तरजन्य दौर्बल्यता में मखाना का प्रयोग लाभदायक है।
3– यूनानी मतानुसार मखाना गरम एवं स्निग्ध है।

रासायनिक संगठन :– इसमें प्रोटीन, कार्वोहाइड्रेट, स्नेह, लौह, फासफोरस आदि लवण पाये जाते हैं।

अहिफेनादिवर्ग PAPAVERACEAE

वर्गलक्षण :– इस वर्ग में एक वर्षायु, बहुवर्षायु, पादप आते हैं । प्रायः इस (+) इस वर्ग पौधों मे श्वेत या पीला गाढा सा द्रव पदार्थ निकलता है। पर्णविन्यास, एकान्तर, सादे, दन्तुर, अपर्ण रहित, गुच्छाकार सादे एवं दन्तुर होते हैं। पुष्प–पत्र कोणोभूत, बाह्यय कोष 2-3 दल में, पुष्प सुशोभित, पीले, गुलाबी, श्वेत, लाल रंग के होते हैं। पंखुड़ियाँ 4 से 6 या 8 से 12 दल में पूर्वपाति, होते हैं। पुंकेशर पुष्काल, अनियमित, स्त्रीकेशर व फल लम्बगोल, बीज सूक्ष्म एवं अधिक होते हैं। इस वर्ग की वनस्पतियाँ मादक, क्षोभक ग्राही, शामक, निद्राजनक वामक एवं रेचक गुण वाले होते हैं।

20 स्वर्णक्षीरी

द्रव्यनाम :–

संस्कृत .... स्वर्णक्षीरी काञ्चनाक्षीरी, हे'-माह्वा, हिमावती, पीतदुग्धा, हेमाह्ववा हेमवती
हिन्दी .... सत्यानासी, कंटेली, चोकमूल,
लैटिन .... **Argemone maxicana'** Linn ?
कुल .... अहिफेनकुल Papaveraceae

गुण ....चरके भेदनीये सुश्रुते श्यामादिगणे, व्रणशोधने च अधोभागहरगणे स्वर्ण–क्षीरी पठयते ।

शाब्दिकनिरुक्ति ::–

स्वर्णक्षीरी :– पौधे से निकलने वाला दूध सोने के रंगसदृश पीत वर्ण का होने से ।

हिमावती :– हिमाचलप्रदेश में उत्पन्न होने से प्रायः सभी पर्याय इस बात का संकेत करते हैं कि शास्त्रीय स्वर्णक्षीरी से निकलने वाला दूध पीत वर्ण का होता है या मूल पीत वर्ण होता है ।

वक्तव्य :– शास्त्रीय स्वर्णक्षीरी के विषय में आज भी संदिग्धता बनी हुई है । मुख्य रूप से निम्न द्रव्यों में स्वर्णक्षीरी की साम्यता मिलती है ।

1– स्वर्णक्षीरी (सत्यानासी) **Argemone maxicana** Linn.
2– हिरवी (हिमावली) **Euphoprbia thomsoniana** Boiss.
3– पीतमूली, रेवतिका, रेवन्दचीनी **Rheum emodi** wall.
4– रेवन्दउशारा (कंकूष्ठ) **Garcinia morella** Desr.

उपर्युक्त वनौषध द्रव्यों में शास्त्रीय स्वर्णक्षीरी की साम्यता मिलती है । इन सभी द्रव्यों का संक्षिप्त वानस्पतिक विवरण क्रमशः यहां पर दिया जा रहा है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूपपरिचय :-

1- सत्यानासी Argemone maxica na Linn. यह तलोत्य 30 से. मी. 1 मीटर तक ऊँचा क्षुप है। यह मैक्सिकन पौधा है जोकि भारत में भी प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। पर्ण, काण्ड, पुष्प, फल प्रायः कण्टकित होते हैं।

पर्ण, अवृन्त, काण्डसंसक्त, लहरदार एवं खण्डित होते हैं। पुष्प पीले रंग के एवं काण्ड को तोड़ने पर पीले रंग का दूध निकलता है इसीकारण अधिकतर विद्वानों ने इसे स्वर्णक्षीरी मान लिया है। वास्तव में लेखक के विचार से हिमालय की घाटियों में उत्पन्न हिमावली, रेवान्तिका में ही शास्त्रीय स्वर्णक्षीरी है। सत्यानासी का मूल बाजार में चोकमूल के नाम से बिकता है। एवं बीजों का मिश्रण व्यापारी लोग सरसों के बीज के साथ करते हैं। भारत के उष्ण प्रदेशों में यह सुलभ है।

गुणधर्म :- (1) सत्यानासी—तिक्त, लघु, रुक्ष, कफपित्तहर मूत्रल, भेदक, रेचक, व्रणशोधक एवं त्वचा के विकारों में उपयोगी है। इसके अतिरिक्त यह शोथहर, व्रणरोपण एवं विषमज्वर हर है।

आमयिकप्रयोग :-

1- सत्यानासी का क्षीर मूत्रजनन, एवं व्रणरोपण में उपयोगी है।
2- नेत्र के फूले में क्षीर का उपयोग करने से वह नष्ठ होता है।
3- मूल का उपयोग उपदंश के उपद्रवों में उपयोगी माना गया है एवं मूल की त्वचा उत्तम रक्तशोधक मानी गई है।
4- सत्यानासी का तेल मृदुरेचक है।

मात्रा–बीजचूर्णः- 1 ग्राम से 3 ग्राम, तेल- 15 से 30 बूँद, रेचन हेतु, मूलचूर्ण- 1 ग्राम से 3 ग्राम।

रासायनिक संगठन :- इसमें वर्वेरीन एवं प्रोटोपीन नामक क्षारोद पाये जाते हैं। बीजों में 22-36% स्थिरतेल, पाया जाता है।

मुख्ययोग :- स्वर्ण-क्षीरी तेल।

मेरे विचार से स्वर्ण क्षीरी के प्रतिनिधि द्रव्य में इस उपयोगी वनस्पति का समावेष कर लेना चाहिये।

2- हिरवी, हिमावली **Euphorbia thomsoniana**

स्वरुपपरिचय :- यह बहुवर्षायु मूल वाला पौधा है। काण्ड एकवर्षायु एवं अनेकों शाखावाला होता है। पर्ण-क्रमानुसार अवृन्त दीर्घायत एवं मृसण होते हैं। काण्ड–दुग्धिल होता है। पुष्प गुच्छ पीताभ वर्ण के होते हैं। मूल को तोड़ने पर भी श्वेताभ दूध निकलता है। कश्मीरी लोग हिरवी कहते हैं। मूल का लेप स्थानिक लोग चर्म विकार, रक्त विकारों में करते हैं। अधिकतर विद्वानों का मत है कि इसे शास्त्रीय स्वर्णक्षीरी, स्वीकार करना चाहिये। मेरे विचार से काञ्चनक्षीरी हेमाहव, हेमदुग्धा आदि पर्याय इसके लिये सार्थक नहीं हैं क्योंकि काण्ड से निकलने वाला दूध श्वेत वर्ण का होता है।

3- पीतमूली, रेवन्दचीनी **Rheum emodi wall**. यह भी हिमालय के 300, मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,800 मीटर की ऊँचाई तक कश्मीर, उत्तराखण्ड, सिक्कीम, भूटान, नेपाल आदि क्षेत्रों में पाया जाता है। बहुत प्राचीन काल से चीन, तिब्बत से निर्यात विदेशों को रुवाव के नाम से होता रहा है। भारत के मध्य हिमालय में इसकी 3–4 किस्में पाई जाती हैं, एवं सभी सीमान्त क्षेत्रों में पीत वर्ण के मूल का स्थानिक चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। अतः ऐसे उपयोगी वनस्पति को हमारे प्राचीनों ने कैसे छोड़ दिया है यह विचारणीय है। मेरे विचार से इसे स्वर्णक्षीरी के नाम से प्रयोग कर लेना चाहिये। गुण धर्मों की साम्यता भी इसमें पाई जाती है। कुछ विद्वानों का मत है कि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Garcina morella रेवन्दउशारा शास्त्रीय स्वर्णक्षीरी है । अतः सभी का फार्मेकोलोजिकल (आमयिकपरीक्षण) कर अन्तिम निर्णय कर लेना चाहिये । डल्हण ने अपनी टीका में काञ्चनक्षीर्यो " द्वे का उल्लेख किया है।

20 अहिफेनः

द्रव्यनाम :— संस्कृत .... खाखस, खसतिल, फणिफेन, आफूक,
हिन्दी .... अफीम
लैटिन .... **Papaver sommiferum** Linn.
कुल .... अहिफेनकुल Papaveraceae

स्वरुपपरिचय :– यह तलोत्थ से 80 से. मी. लेकर 1. 2 से. मी. ऊँचा वार्षिक क्षुप है । यह क्षुप बाहर से भारत में आया है यही कारण है कि वृद्धत्रयी में इसका उल्लेख नहीं हैं । शाङ्गर्धर एवं भावप्रकाश ने 14, 15 वीं शताब्दी में इसका उल्लेख किया है । शाखें एवं पर्ण क्षोदलिप्त होती हैं पर्ण लगभग 10 से. मी. चौड़े अवृन्त, फल मूल–हृदयाकार, काण्डसंसक्त तथा पत्रतट आरावत, दन्तुर होता है । पुष्प, एकल पुष्पदण्ड पर, किञ्चत् लोमश, पुष्प नीली आभा लिये हुये श्वेत वर्ण के होते हैं । प्रत्येक पौधे में दाड़िम जैसे फल 5 से 8 क संख्या में लगते हैं । ये फल गोल, अण्डाकृति के एवंग्रीवा के ऊपर कंगूरेदार चोटी होती है । फल पिलाई लिये भूरे रंग का अन्दर की रचना खानेदार जिसमें काफी संख्या में चौलाई के बीज सदृश दाने पाये जाते हैं । इन्हीं बीजों को पोस्तदाना एवं फल को पोस्तडोंडा (अफीम का डोडा) कहते हैं । फलों पर प्रातः काल चाकू से चीरा लगाया जाता है । जिन से दूध जैसा निर्यास निकलता है । इसी निर्यास को अफीम कहते हैं। अफीम कच्चे फलों से चीरा लगाकर प्राप्त किया हुआ निर्यास है ।

पुष्पकाल.........................मार्च, अप्रैल,

प्रयोज्य अंग :– फलनिर्यास (अफीम) बीज (खस खस) फलत्वक् (पोस्तडोडा) बीर्यकालावधि :– सुरक्षित रचाने पर कई वर्षो तक रहता है ।

प्राप्तिस्थान :– भारत वर्ष के बिहार, राजस्थान, पूर्वि उत्तरप्रदेश, गढ़वाल, चकाराता, कश्मीर में इसकी खेती की जाती है । विदेशों में यह ब्रह्मा, चीन, ईरान, एशियामाइनर, नैपाल, मिस्त्र, यूनान आदि देशों में प्रचुर मात्रा में खेती की जाती है । यह भारत का आदिवासी पौधा नहीं हैं । चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि ग्रन्थों में इस द्रव्य का उललेख नहीं है । शाङ्गर्धग्र, भावप्रकाश में अफीम का उल्लेख मिलता है । अहिफेन शब्द अखी अफ्युन का संस्कृत रुपान्तर है । 12 वीं शदी शोढल, गदनिग्रह में भी इस द्रव्य का उल्लेख मिलता है । धन्वन्तरिनिघण्टु ने अफूक " नाम से इसका उल्लेख किया है । सम्भवतः मुसलमानों के साथ यह पौधा भारत में आया हो एवं इसकी उपयोगिता के कारण वैद्य समाज ने अपना लिया है । अरब व्यापारी भारत के कालीकट नामक बन्दरगाह पर अफीम लेकर आते थे । 15 वीं शती में भारत में मुसलमानों ने काम्बे तथा मालवा में राज्य के नियन्त्रण में इसकी खेती प्रारम्भ की । अकबर के काल में अतिरिक्त फतेहपुर, इलाहबाद, गाजीपुर के काल में इसकी खेती होने लगी थी जिसका उल्लेख अबूल फजल ने किया है।

दोषअधिष्ठात भेदेन कर्मज्ञान :– (1)
रस तिक्त वीर्य–उष्ण, विपाक–कटु, कफघ्न, शुक्र तम्भक, निद्राकर, मादक, वेदनाहर, ग्राही, स्वेदजनक, रक्तस्तम्भक, है ।

आयमिक प्रयोग :– यह मादक एवं विषैली औषधि है । यही कारण है कि बहुधा लोग आत्महत्या के लिये इसका प्रयोग करते हैं । यह तीव्र निन्द्राजनक है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2– वेदनाहर एवं निद्राजनक होने के कारण इसके फांड या क्वाथ को शिरःशूल, कटीशूल, गृध्रसी, उन्माद, अनिद्रा में देते हैं । वेदनाशामक हेतु स्थानीय लेप किया जाता है ।

3– ग्राही औषधियों के साथ अतिसार एवं संग्रहणी में इसका चूर्ण विशेष लाभदायक है । रक्ततिसार में देने से रक्त का गिरना बन्द हो जाता है ।

4– अफीम में उत्तेजक, आल्हादकर, वाजीकर, शामक, स्वापजनन, पीडाशामक, शूलघ्न, मादक, कफघ्न, शोथघ्न, विषमज्वरप्रतिबन्धक, कासहर, संकोच–विकासप्रतिबन्धक (आक्षेपहर) आदि गुण मुख्य हैं ।

5– (2) खसखस को दुग्ध में घोटकर शिर का दारुणक रोग दूर होता है ।

6– यह एक विषैला द्रव्य है । इसका वर्णन उपविषों में आया है । अहिफेन को औषध योगों में डालने से पूर्व इसको शुद्ध करना चाहिये ।

मात्रा :– 30 मि॰ ग्रा॰ 125 मि॰ ग्रा॰ 1/4 80 1 रत्ती,

पोस्तडोडा – 1 ग्राम से 3 ग्राम 1 मा॰ 3 माशा

खसखस (बीज) आवश्यकतानुसार

शुद्धाशुद्धपरीक्षा :– अफीम यह पोस्त के डोडों से चीरा लगाकर सुखाया हुआ दुग्ध (निर्यास) है । देशभेद से बाजार में 8 प्रकार की अफीम मिलती है । 1– भारतीय अफीम, 2 तुर्की अफीम, 3– युरोपीय अफीम, 4. फारसी अफीम । भारतीय अफीम के घनाकार (**cubical pieces**) आते हैं जो वजन में लगभग 800 मि ग्राम के होते हैं । तोड़ने पर भंगुर एवं नम्य होते हैं । स्वाद में तिक्त तथा कम से कम मार्फीन होता है। अफीम को अच्छी तरह डाट बंद पात्रों में रखना चाहिये ।

रासायनिक संगठनः– पोस्त में अल्पप्रमाण में अफीम एवं मार्फीन होता है । बहुत कम मात्रा में कोडीन, पापावरीन, नार्कोटीन, एवं निकोनिक एसिड आदि पाये जाते हैं । बीजों में हल्के पीले रंग का मीठा स्थिर तैल होता है। अफीम में मार्फीन, नार्कोटीन, कोडीन आदि एलकेलाईड्स पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त लेक्टिक एसिड, एपोमार्फीन, मिकोनिक एसिड, राल, ग्लुकोज, वसा, उड़नक्षील तैल आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मूख्ययोग :–

आहिफेनासव, वृ॰ गंगाधर चूर्ण, कर्पूर रस, निद्रोदया वटी, महावातराजरस, दुग्धवटी, वालघुटी।

पर्पटादिवर्ग FUMARIACEAE

वर्गलक्षण :– इस वर्ग में प्रायः छोटे पौधे आते हैं । इनकी शाखायें मृदु एवं आसानी से टूटने वाली होती हैं । पर्ण मूलोद्व, एकान्तर, अभिमुख, अतिविभाजित होते हैं । पुष्प छोटे, स्त्रीपुंसोपयोगी, पुष्प वाहयकोष के दल 2 पुष्पाभ्यन्तर दल कोष 5, पुंकेशर पुष्प की पंखड़ियों के सामने, फली में चमकते हुये एक या अनेक बीज होते हैं । इस वर्ग की वनस्पतियों प्रायः तिक्त्त, वलप्रद, रसायन, ज्वरघ्न एवं स्वेदल गुण वाले होते हैं ।

22 पर्पट

द्रव्यनाम :— संस्कृत .... पर्पट, वरतिक्त, रेणु, कवच,
हिन्दी .... पित्तपापड़ा, शाहत्तरा
लैटिन .... **Fumaria parviflora** Lam
कुल .... पर्पटादिवर्ग Fumariceae

गणः– चरक तृष्णानिग्रहणगण में पाठ दिया है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरुप परिचय :– एकवर्षायु 30 से. मी. 60 से. मी. तक ऊँचा एवं परिसृत शाकीय पादप है । पर्ण–मूलोद्भव, पक्षवत् बारीक कई भागों में विभाजित, एवं उपपक्ष गहरे खण्डों में प्रासवत् होते हैं । पुष्प गुलाबी श्वेताभ रंग के होते हैं। इसकी अन्य किस्म पहाड़ों पर पाई जाती है । जिसे **Fumaria indica** Fugsley कहते हैं । यह वनस्पति प्रायः गेहूँ की खेती के साथ पाई जाती है ।

पुष्यकाल.........................जनवरी, फरवरी,
प्रयोज्यअंग.......................पञ्चाङ्ग मात्राचूर्ण 5 से 9
ओषध संग्रह काल....................जनवरी से मार्च,

प्राप्तिथान :– यह भारत के मैदानी भागों से लेकर 1,600 मीटर की ऊँचाई में गेहुँ के खेतों में सर्वत्रसुलभ है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः – (1)

रस–तिक्त, वीर्य–शीत, विपाक–कटु, पित्त–कफघ्न, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, कटुपौष्ठिक, रक्तदोष एवं रक्त विकारों में उपयोगी है ।

आमयिक प्रयोगः– ज्वरों मे पर्पट का क्वाथ विशेष उपयोगी माना जाता है । अंतों की शिथिलता से उत्पन्न कुपचन एवं त्वचा के रोगों में यह उपयोगी माना जाता है । साधारण सर्दी–जुकाम में शाहतरा का क्वाथ देने से पसीना और पेशाव खुलकर आता है । दस्त साफ होता है , शरीर का दर्द कम होता है । यह पित्तज्वर एवं यकृत के रोगों में विशेष उपयोगी द्रव्य माना गया है । चरक ने तृष्णानिग्रहगण में इस द्रव्य का पाठ दिया है, एवं रक्तपित्त, ज्वर, कुष्ठ संग्रहणी, पाण्डु अतिसार आदि रोगों में प्रयोग किया जाता है ।

रासायनिक संगठन :– इस द्रव्य में फ्युमेयुरिक एसिड, एवं फ्युमेरिन नामक क्षाराभ पाया जाता है । क्षाराभ की मात्रा 6% तक रहती है । जिस पर इसके गुण निर्भर है ।

मुख्ययोग :– पर्पटकादिक्वाथ, षडङ्गपानीय, धान्यादिकषाय,

वक्तव्य :– इस समय भारत में पित्तपापड़ा के नाम से भिन्न–भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न वर्गो की वनस्पत्तियों के उपभेदों का उपयोग किया जाता है । प्रयुक्त द्रव्यों के शास्त्रीय गुणों में कुछ सभ्यता मिलती जुलती है । भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जिन द्रव्यों का पर्पट के नाम से प्रयोग होता है उनके वानस्पतिक नाम इस प्रकार से है

1– पर्पट (पित्तपाड़ा उत्तरप्रदेश, पंजाब, विहार Fumaria parviparviflora Lann.
2– शेत्रपर्पट, गुजरात Polycaraea corymbosa.
3– पर्पट मालाबार, केरल Polycarparea corymbosa.
4– पर्पट गुजरात में Rungia repens Nees.
5– Justicia procumbens Linn.

इस प्रकार प्रदेश भेद से भिन्न द्रव्यों का उपयेग पित्तपापड़ा का देखने को मिलता है । इस समय संदिग्ध वनौषधि निर्णय कमेटी ने नः 1 वाले द्रव्य को शास्त्रीय पर्पट माना है । शेष अभाव या प्रतिनिधि द्रव्यों में प्रयोग किया जा सकता है ।

राजिकादिवर्ग CRUCIFERAE

वर्गलक्षण :– (+) दस वर्ग के पुष्पों में पखड़ियाँ आमनेसामने स्वतिकाकार, पुष्प की पंखड़ियाँ चार, एक दूसरे के अमने सामने, वर्षायु या वहुवर्षायु पौधे, पर्ण्र वहुधा मूल से, एकान्तर, उपपर्ण रहित, पुष्प्र पीले, सफेद, गुलाबी या जामुनी रंग के, बीज में उड़नशील तैल, कई तैल खाने के काम आते हैं। इस वर्ग की वनस्पतियाँ तिक्त, कटु एवं विदाही होती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

23 चन्द्रसूर

द्रव्यनाम : –

संस्कृत .... चन्द्रसूर, चर्मिका, चन्द्रहन्त्री दर्घबीज, रक्तराजि,
हिन्दी ....हालों, हालिम, चन्सूर,
लैटिन .... **Lepidum Sativum** Linn.
कुल .... राजिकावर्ग Cruciferae

निरुक्तिः–

चन्द्रशूरः– चन्द्रति आल्हपदयति लोकान्, शूरयति विक्रमं करोति वातादिरोगेषु इति शूरः" आर्थात् बलपुष्ठि वर्धन द्वारा जो लोगों को आनन्दित करता है, एवं वातादि रोगों को नष्ठ करने में शूर है उसे चन्द्रशूर कहते हैं ।

स्वरुप परिचय :– यह 30 से 60 से. मी. उँच्चा तलोत्थ स्वावलम्बी एकवर्षायु पौधा है । काण्डमूल के पर्ण वृन्तयुक्त द्विपक्ष वृत खण्डित होते हैं । काण्डीयपत्र विनाल, पक्षवत्, खण्डित एवं भालाकार होते हैं । पुष्प छोटे तथा सफेद रंग के लम्बे मञ्जरियों में खिलते हैं । फलों के प्रत्येक कोष्ठ में एक–बीज होता है । ये बीज छोटे एवं लाल रंग के होते हैं । बीजों को पानी में भिगोने से लुवाब पैदा होता है ।

पुष्पकाल......................जनवरी फरवरी,
प्रयोज्यअंग.................... बीज
वीर्यकालूअवधि ....1 वर्ष

प्राप्तिस्थान :– समस्त भारत वर्ष के उष्ण भागों में इसकी खेती पाई जाती है । यदा कदा बीजों का आयात फारस से भी होता है । वृधत्रयी में चन्द्रशूर नामक द्रब्य का उल्लेख नहीं है । भाव्रप्रकाश ने सर्व्रपथम इस द्रब्य का समावेश किया है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

रस–कटु, तिक्त, वीर्य–उष्ण, विपाक–कटु, कफ–वातध्न, दीपन, वातानुलनोभन, शूलपशमन, ग्राही, उदरकृमि–नाशन, कफःनिसारक, मूत्रार्त्तव्रप्रजनन, वल्य एवं वृष्य। इसका लेप वेदनाथस्थापन एवं त्वक् दोषहर है ।

आमयिक प्रयोग :– (2)

चतुर्बीज चूर्ण प्रतिदिन लेने से समस्तवात रोग अजीर्ण, शूल, आध्मान पार्श्वशूल कटिपीड़ा, आदिरोग नष्ट होते हैं । चतुर्बीज (3) चूर्ण में मेथी, चन्द्रशूर, अजवायन, कालाजीरा ये चार बीज आते हैं ।

चन्द्रसूर का फाण्ट हिक्का में उपयोगी माना गया है । बीजों का यवागू बनाकर प्रसूतास्त्रियों को देने से लाभ होता है । इसके बीजों को दूध में पकाकर पीने से कमर का दर्द अच्छा होता है ।

नींबू के रस में पीस कर इसका लेप कटिशूल, आन्तरिकशोथ, आमवात एवं सन्धिशूल में लाभ करता है । पत्र मूत्रल एवं उत्तेजक है ।

रासायनिक संगठन :– बीजों में एक सुगन्धित एवं तेल पाया जाता है । पंचाग में आयोडीन, लोह, फास्फोरस, पोटास, गन्धक अदि लवण पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग :– चतुर्बीजचूर्ण

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

24 तोदरी

द्रव्यनाम :- संस्कृत .... तोदरी, तोद्री
हिन्दी .... तोदरी बीज
लैटिन .... **Matthiala indica R.Br.**
कुल .... राजिकाकुल **Cruciferace**

स्वरुप परिचय :- यह बहुपर्षायु तलोत्थ, मृदुशाखाओं वाला पौधा है । पर्ण के दोनों पृष्ठ रोमिल होते हैं । पुष्प गुलाबी–लाल रंग के होते हैं। फलियों में बीज होते हैं । हकीम लोग इसके लाल पीली एवं सफेद भेद से तीन किस्म मानते हैं । भारत में इसकी खेती की जाती है । तोदरी के नाम से **Lepidium iberis** Linn. के बीज भी बाजार में तोदरी के नाम से बिकते हैं । यह साइवेरिया एवं दक्षिण योरोप का आदिवासी पौधा है । फारस से इसके बीज भारत में आते हैं । पीले बीजों की तोदरी सबसे श्रेष्ठ मानी जाती हैं । इन बीजों को पानी में डालने पर लुबाव निकलता है । दाने, सूक्ष्म एवं मसूर की तरह होते हैं ।

प्रयोज्यअंग......................बीज,
मात्राबीज......................6 से 12 ग्रा०

प्राप्ति स्थानः- यह दक्षिण योरोप से साइवेरिया तक एवं फारस में ये पौधे स्वयंजात पाये जाते हैं । भारत में यह आयतित है । केवल अभी **Matthiola indica** वाली किस्म की खेती भारत में की जा रही है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :- गुरू, स्निग्ध, पिच्छिल, रस मधुर, तिक्त, वीर्य उष्ण, वातपित्त शामक, स्तन्यजनन मूत्रल, युनानी मतानुसार दूसरे दर्जे में उष्ण एवं पहले में तर हैं ।

आमयिक प्रयोग :-

1—तोदरी के बीजों से निकाला हुआ तैल सन्धि बात में अभ्यङ्ग (मालिश) के रुप में प्रयोग करते हैं
2– तोदरी का फाण्ट श्वास नलिका के शोथ में कफ को निकालने या कम करने के लिये करते हैं।
3– तोदरी(11) के बीजों का प्रयोग वातव्याधि, तथा वीर्यवृद्धि के लिये किया जाता है । सिद्ध भैषजय मणिमाला में तोदरी के बीज का उल्लेख मिलता हैं । वृद्धत्रयी में इसका उल्लेख नहीं है ।

रासायनिक संगठनः- बीजों में लुवाव सा तोदरीन, यालेपिडीन नामक सत्व पाया जाता है ।

25 खूवकलाँ

द्रव्यनाम :— संस्कृत .... यूनानी खूवकलाँ
हिन्दी .... खाकथी, खूवकलां
लैटिन .... **Sisymbrium irio** Linn.
कुल .... कमलादिवर्ग Nymphaeaceae

स्वरुप परिचय :- यह बहुशाखीय 30 से 80 से. मी. उँचा द्विवर्षायु पौधा है । पर्ण खण्डित, एवं किनारे आरावत् दन्तुर होते हैं । पुष्प पीले रंग के, फलियां, लम्बी, पतली सरसों की सदृश एवं बीच –बीच में दबी हुई होती हैं । फलियों से पोस्त के दानों की तरह छोटे–छोटे ललाई लिये हुये बीज निकलते हैं । बीजों को पानी में छोड़ने से लुवाव सा निकलता है । स्वाद में ये बीज तीक्ष्ण होते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयेज्यअंग............................बीज
मात्राबीज............................3 से 6 ग्राम
पुष्पकाल............................जनवरी,मार्च

प्राप्ति स्थान :– उत्तरभारत के राजस्थान, पञ्जाव, पेशावर बुलिचिस्थान, फारस, आदि देशों की फसल के साथ बोयी जाती है । भारत में विशेष रुप से फारस से इसका आयात होता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः–

गुणः– स्निग्ध, गुरु पिच्छिल, रस–मधुर, तिक्त, विपाक–मधुर, वीर्य–अनुष्ण, कफनिस्सारक, ज्वरघ्न, पुष्ठिकर, दाहशामक, मसूरिका, एवं विशूचिका में उपयोगी है । शोथ पर इसकी बीजों का लेप करते हैं । यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे में उष्ण एवं तर है । पुष्टिकर पाकों माजूनों में इसके बीज मिलाये जाते हैं ।

26 मूलक

द्रव्यनाम :— संस्कृत .... मूलक, मरुसंभव, शालेंयय, चाण्क्यमूल
हिन्दी .... मूली
लैटिन .... **Raphanus sativus** Linn.
वर्गीकरण .... शाकवर्ग (भा.प्र.)

निरुक्ति :– मूलक–मूलति प्रतिष्ठा गच्छति पृथिव्यां दोषत्रय हरत्वादिगुणैश्च, यद्वा मूलयति, रोहति पृथिव्यां कन्दरुपेण" अर्थात् कन्दरुपी मूल पृथ्वी पर बढ़ते हैं तथा जो तीनों दोषों को हरण करने में समर्थ है उसे मूलक कहते हैं।

स्वरुप परिचयः– यह एक वर्षायु कन्द प्रधान द्रव्य है । पर्ण मूलोद्भव बड़े होने पर शाखाओं पर भी पत्र निकलते हैं । सरसों के साथ प्रायः मूली मिलती है । पुष्प श्वेत वर्ण के फलियां 1 से 2" तक लम्बी एवं फलियों के पकने पर रक्ताभ बीज निकलते हैं । कच्ची फलियाँ बाजार में मुंगरे के नाम से बिकती हैं । पत्ते एवं मूलकन्दों का शाक में विशेष उपयोग होता है । यह दो प्रकार की होती है । लघुमूलक (चाणक्यमूलक) दूसरी नेवारमूलक (नेपालमूलक) नेवारमूली में पतली मूली के अपेक्षा तीक्ष्णता कम पाई जाती है । इसका मूल हाथी दांत की तरह मोटे एवं लम्बे होते हैं। औषधीय द्यठी पतली मूली ही अधिक उपयोगी होती है ।

पुष्पकाल.............................. जनवरी, मार्च
प्रयोज्य अंग............................कन्द,बीज, पत्र, फलियाँ
मात्राबीजचूर्ण.......................... 1 से 3 ग्रा०
पत्रस्वरस.............................. 2 से 4 ग्रा
क्षार .... 4 रत्ती से एक माशा

प्राप्ति स्थान :– मूली भारत में सर्वत्र इसकी खेती की जाती है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :– (2)

गुण–लघुमूलक–वृहद्मूलक–तीक्ष्ण, रस कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, लघुमूलक, त्रिदोषहर, वृ० मूलक त्रिदोषकर, रोचन, दीपन, पाचन, वातानुलोभन, यकृदुत्तेजक, भेदन, यकृत्पील्हा शोथहर, कफःनिस्सारक, कास–श्वासहर, मूत्रल, अश्मरीभेदन, आर्तवजनन।

आमयिक प्रयोग (3) सूखी मूली त्रिदोषहर, विषघ्न एवं लघु है । मूली के पुष्प पत्र फल उत्तरोत्तर गुरु होते हैं। फल–कफ एवं वायु का नाश करते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2– अर्श में सूखी मूली का यूष बनाकर देते हैं ।
3– प्रवाहिका में मूली का यूष लाभदायक है ।
4– यकृत प्लीहा की विकृती में मूली का स्वरस विशेष लाभ करता है ।
5– वातजन्य कास में मूली का शाक पथ्य है ।
6– कर्ण शूल में मूली का गरम स्वरस कान में डालने से लाभ होता है ।
7– सभी प्रकार के शोथ में तिल के साथ मूली का सेवन लाभ करता है ।
8– बीज एवं पत्र मूत्रल, रेचक एवं अश्मरीनाशक है । बीजों के आर्तवजनन हेतु भी प्रयोग किया जाता है ।

रासायनिकसंगठनः– बीजों में उड़नशील तैल पाया जाता है । बीज में स्थिर तैल पाया जाता है । इसमें गन्धक फासफोरिक ऐसिड पाया जाता है । कन्दों कार्बोहाइड्रेट तथा क्षार आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोगः– शुष्कमूलाद्यृत, शुष्कमूलाद्यतैल ।

27 राजिका

द्रव्यनाम :— संस्कृत .... राजिका (1) , आसुरी, तीक्ष्णगन्धा पीतपुष्पा
हिन्दी .... राई
लैटिन .... **Brassia integrifolia** (West) O.E. or **B juncea** (Linn.) Czern.
वर्ग ....भा. प्र. शाकवर्ग

निरुक्तिः– राजिकाः राजते पुष्पादिभिः राजयाति च अन्यानि । अर्थात् जो पुष्पों द्वारा दूसरों को शोभायमान करती है ।

आसुरीः– असुराणां प्रियं, जो असुरों को प्रिय है ।

तीक्ष्णगन्धाः– तीक्ष्ण गन्धो यस्या सा जिसकी गन्ध तीक्ष्ण होती है ।

पीतपुष्पाः– पुष्प पीत वर्ण के सुन्दर होते हैं ।

स्वरुप परिचय :– यह एक वर्षायु सरसों सदृश मृदु शाखीय शाकीय क्षुप है पौधे सरसों के सद्यश दिखाई देते हैं। किन्तु पत्तियाँ सरसों की भांति काण्ड संसक्त नहीं होती है । पत्रों की रुप रेखा में भिन्नता पाई जाती है । पुष्प हल्के पीले रंग के होते हैं । फली–सवृन्त त्रिपार्श्विक एवं बीज बैंगनी आभा लिये हुये भूरे रंग के होते हैं । राई के बीजों में कभी–कभी सत्यानासी के बीजों की मिलावट की जाती है ।

पुष्पकाल......................... दिसम्बर, जनवरी,
प्रयोज्य अंग...................... बीज, तैल, पत्र, ।
बीजचूर्ण............................1 से 3 ग्राम

प्राप्ति स्थानः– उत्तरी एवं दक्षिण भारत में सर्वत्र इसकी खेती की जाती है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (2)

गुण–लघु, तीक्ष्ण रस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–वात कफ नाशक, बीजों का लेप शोथहर, लेखन, विदाही, स्फोटजनन, एवं वेदनास्थापन, मुख से सेवन करने पर दीपन, पाचन, शूलहर, कृमीघ्न, प्लीहावृद्धिनाशक, अधिक मात्रा में प्रयोग करने से वामक, रक्तपित्त कोपक, स्वेदजनन है। अधिक सेवन करने से तृष्णा, दाह एवं पैत्तिक लक्षण पैदा होते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग :-

1- राई का तैल वातजन्य वेदना—युक्त अंगों पर मर्दन किया जाता है । वेदना एवं शोथ वाले स्थानों पर राई का उपनाह या लेप किया जाता है ।

2- यह कण्डू, कोठ एवं कृमिनाशक है ।

3- यह पक्षाघात, सन्धिवात एवं कमर का दर्द शान्त करता है ।

रासायनिक संगठनः- बीजों में स्थिर तैल, एवं अल्प मात्राभेंउड़न शील तैल पाया जाता है ।

28 सर्षप

द्रव्यनाम :— संस्कृत .... सिद्धार्थ, सर्षप, भूतनाशक कटुस्नेह,
हिन्दी .... सरसों
लैटिन .... **Brassica Camp estrisl. B. nigra L.**

गणः- चरक के कण्डूघ्न, आस्थापनोपग, शिरोगविरेचन महाकषायों में पाठ दिया है ।

सुश्रुत पिप्ल्यादिवर्ग

निरुक्ति :—

सर्षपः- सरति स्नेह अमृतात्, सृगतो, अर्थात् जिस में तेल निकलता है ।

सिद्धार्थः- सिद्धः अर्थ अस्मात् मंगल्यत्वात्, मांगलिक होने से जो कामना की सिद्धि करता है ।

कटुस्नेहः- कटुक स्नेहः यस्य सः जिसका तैल कटु होता है ।

भूतघ्नः- भूतान् घ्ननति, अर्थात जो भूतों का नाश करता है ।

स्वरुप परिचयः- इसकी गेहुँ एवं चने के साथ खेती की जाती है । यह एकवर्षायु शाकीय पौधा है । घरेलू कार्य में इसकी काफी खपत है । शाक एवं तैल का काफी प्रयोग होता है । बाजारों में प्रायः लाल, काली और पीली सरसों के प्रकार पाये जाते हैं । ये सभी **Brassica campestris** की उपजातियाँ हैं । एक प्रकार तराई के जिलों में बोया जाता है । सरसों का बीज साबूदाना की तरह गोल दानों के रुप में होता है । पीली एवं सफेद सरसों के बीज पीले या सफेद रंग के होते हैं ।

पुष्पकाल.............................दिसम्बर, जनवरी,
प्रयोज्यअंग...........................बीज तैल (कड़वातैल)

प्राप्ति स्थान :- समस्त भारत वर्ष में इसकी खेती की जाती है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः- (1)

तैल—स्निग्ध, रुक्ष शाक—तीक्ष्ण, रुक्ष रस—कटु, तिक्त, विपाक—कटु, वीर्य—उष्ण, कर्म.कफ—वातशामक, पित्तवर्धक, लेखन, कुष्ठघ्न, वर्ण्य, वेदनास्थापन, शोणितोत्क्लेशक, दीपन, विदाही, हृदयोत्तेजक, मूत्रजनन, बाजीकरण, गर्माशयोत्तेजक, यूनानी मतानुसार यह तीसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोगः– (1) प्रलेप के रुप में प्रयुक्त करने से इसकी क्रिया राई की तरह होती है, सन्धिवात, कमरदर्द आदि वेदनाओं को शान्त करने के लिये वेदनास्थापन औषधियों के साथ मिलाकर इसके तैल की मालिश की जाती है ।

2– वर्ण्य एवं वल्य क्रिया के लिये बीजों का उबटन तथा तैल की मालिश की जाती है ।

3– गण्डूष धारण करने से तथा मसूड़ों पर सेन्धानमक मिलाकर मालिश करने से लाभ होता है ।

4– कुष्ठ (3) में सर्षप तैल विशेष उपयोगी है ।

5– उरुस्तम्भ में करञ्जफल और सरसों को गोमूत्र में पीस कर लेप करें ।

6– अपस्मार और उन्माद में करंज के बीज एवं सफेद सरसों को सम भाग में लेकर बकरी के मूत्र में मर्दन कर एवं वर्तिका बनाकर सुखाकर रख लेनी चाहिये। अपस्मार में इस वर्ति का अजंन आंख में करने से लाभ होता है ।

7– वातरक्त में सफेद सरसों का लेप लाभ करता है ।

8– (4) प्लीहावृद्धि में सरसों का तैल विशेष उपयोगी माना गया है ।

रासायनिक संगठन :– बीजों में सिनापिन नामक अल्केलाइड पाया जाता है । इसके अतिरिक्त माइरोसिन, सिनिग्रिन, आइनोसाइट एवं कलरिङ्ग तत्व पाया जाता है ।

वरुणादिवर्ग CAPRARIDACEAE

(+) वर्गलक्षणः– इस वर्ग में छोटे पौधे गुल्मक, लता एवं वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण विन्यास त्रिपत्रक मसृण, चर्मिल, फल बहुधा असमान, पुष्प–खिलने पर अनेक वर्ण के सुन्दर होते हैं। इस वर्ग में वरुण, हिंस्त्रा, करीर, हुल-हुल आदि हैं।

28 वरुण

द्रव्यनाम :— संस्कृत .... वरुण,(1) तिक्त शाक, कुमारक, अश्मरीघ्न, त्रिपर्ण, बहुपुष्प

हिन्दी .... वरुण, वरना,

लैटिन .... Crataeva nurvala Buchttam.

कुल .... वरुणकुल Capparidaceae

गणः– वरुणादिगण, वाताश्मरी नाशक गण, कफश्मरीनाशक गण"

निरुक्ति :– वरुणः– व्रियते लौकैः गुल्मदि रोगनाशार्य" अर्थात गुल्मादि रोगों के नाश के लिये जो उपयोगी है ।

त्रिपर्णः– विल्व सदृश तीन प्रपत्रों वाला होता है ।

तिक्तशाकः– तिक्तः शाकोऽस्य,, इसके पत्रों का शाकतिक्त होता है ।

बहुपुष्प :– पुष्पित होने पर सारापर्णपातिवृक्षः पुष्पों से वसन्त में आच्छादित होने से ।

स्वरुप परिचयः– यह मध्मय आकार का पर्णपाति वृक्ष है । पर्ण– विल्वपत्र सद्यश त्रिपत्रक, पर्णवृन्त 10 से 15 से. मी. पर्ण-लट्वाकार, भालाकार, मसृण, चर्मिल एवं पत्राग्र नुकीले होते हैं पुष्प पीताभ श्वेतवर्ण के सुगन्धिमुक्त गुच्छाकार मञ्जरियों में खिलते हैं । पुष्पों के खिलने पर इन पर भंवरे काफी मंडराते हैं यही कारण है इसको भ्रमरप्रिय कहते हैं । फल–कागजी नीबू सदृश गोलाकार एवं पकने पर लाल रंग का होता है । फल मञ्जा पीले रंग की जिसमें कई बीज होते हैं । पत्र एवं फल का स्वाद तिक्त होता है ।

पुष्पकाल............................फरवरी मार्च, फलकाल–अगस्त,

प्रयोज्यअंग........................ छाल, मूल, पत्र,

मात्रात्वक्चूर्ण........................3 से 6 ग्राम, स्वरस 1 से 2 तोला

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थानः– समस्त भारतवर्ष के उष्ण कटिबन्धीय, एवं समशीतोष्ण प्रान्तों के जंगलों या गांवों के आसपास पाया जात है । मालाबार एवं कन्नड़ में विशेषतया पाया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः – (2)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, मधुर, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–भेदेन, कफवात, शामक, दीपन, अनुलोभन, अश्मरीभेदन, मूत्रल, ज्वरघ्न यूनानी मतानुसार वरुण तीसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क है ।

आमयिक प्रयोग :– (3)

1– वरुण की जड़ का क्वाथ शहद मिलाकर पीने से गण्डमाला एवं विद्रधी में लाभ होता है ।
2– अश्मरी में वरुण के मूलत्वक् क्वाथ में वरुण की छाल का चूर्ण डालकर सेवन कराने से विशेष लाभ होता है।
3– मूत्रकृच्छ्र में वरुण क्वाथ देने से लाभ होता है ।
4– गुल्म, वातरक्त कृमि गलशोष, आदि रोगों में छाल का प्रयोग उपादेय है ।

रासायनिक संगठनः– छाल में सेनेगा की तरह सेपोनिन तत्व पाया जाता है, एवं अल्प मात्रा में टैनीन भी पाई जाती है ।

मुख्ययोगः– वरुणदिक्वाथ, वरुणघृत, मञ्जिष्ठाधारिष्ठ, कांञ्चनारगुगुलु,

30 हिंस्त्रा

द्रव्यनाम :— संस्कृत .... हिंस्त्रा, कन्थारी, गृध्रनखी, दुःप्रघर्षा
हिन्दी .... हैंस, कंथार
लैटिन .... **Capparis sepiaria Linn.**
कुल .... वरुणकुल

निरुक्तिः–

हिंस्त्राः– हिंसा अर्थ में हिस्ता शब्द आया है । अर्थात् इसके घुमावदार कांटे अंग पर लगने से कष्ट होता है ।

गृधनखीः– गीध के नखों के तरह कांटे होते हैं ।

दुःपघ्रर्षाः– झाड़ी घनी कांटेदार होती है ।

कन्थारीः– कन्थार देश विशेष अधिक पाया जाता है ।

स्वरुप परिचयः– गुल्म विस्तृत खड़े, शाखायें पत्तली, लम्बी, एवं प्रसरशील स्वाभाव की होती हैं । ग्रन्थियों पर टेढ़े एवं तीक्ष्ण कांटों के जोड़े होते हैं । पर्ण–लट्वाकार आयताकार, या अभिलट्वाकार, अभिप्रासवत्, अग्रभाग नुकीला, कुण्ठित, पर्णवृन्त 2 मी. मी. लम्बा होता है । पुष्प श्वेत वर्ण के व्यास में 13 से 12 ", लम्बे होते हैं । फल–मटर सदृश पकने पर काले रंग के होते हैं । इसकी अन्य किस्म भी औषध उपयोग की है जिसे कब्रा **Capparis spinosa Linn.** कहते हैं ।

पुष्पकाल..........................जुलाई, अगस्त,
फलकाल............................शीतकाल
प्रयोज्यअंग.........................फल, मूल,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थान :– समस्त भारत के उष्ण भागों के शुष्कप्रदेशों, झाड़ीदार वनों, में इसके गुल्म पाये जाते हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (1)

रस. कटुरस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, ज्वरघ्न, कफवात नाशक, दीपन, रुच्य, शोफघ्न, स्नायु एवं ग्रन्थि रोगों में उपयोगी ।

आमयिक प्रयोग :– कंथारी का मूल स्वरस उष्ण जल के साथ नासिका में डालने से गोधा विष नष्ट होता है । काण्ड का मूलत्वक् पक्षाघात, उदरशूल, वातरक्त, प्रतिश्याय सन्धिवात आदि में उपयोगी मानते हैं ।

31 करीर

द्रव्यनाम :—
संस्कृत .... करीर, (1) निगूढपत्र, मरुरुह, अपत्र,
हिन्दी .... करीर
लैटिन .... **Capparis decidua** Edgew
कुल .... करीरादिवर्ग Capparidaceae

निरुक्तिः–

करीरः–कृ विक्षेपे, कण्टकैः करीरो मरुवृक्षः" भेदनादि गुण विशेष होने से मल, विष और कफ का नाश करने वाला होता है ।

मरुरुहः– मरुभूमि में विशेष रुप से पैदा होने से इसे मरुरुह कहते हैं ।

निगूठपत्र–अपत्रः– पत्र विहीन कण्टकित झाड़ी हाने से इसे निर्गतपत्र या अपत्र कहते हैं ।

वानस्पतिक स्वरुपः– इसकी सघन अनेक शाखाओं वाला कांटेदार, झांड़ी होती है । इसमें प्राय पत्र नहीं होते हैं। केवल नवीन शाखाओं पर केवल छोटे–छोटे पत्र पाये जाते हैं जो बाद में गिर जाते हैं । पुष्प गुलाबी रंग में खिलते हैं । फल लाल, गुलाबी रंग के होते हैं । पुष्प कालिकाओं एवं कच्चे फलों का अचार बनाया जाता है ।

पुष्पकाल............................जनवरी–मार्च,
प्रयोज्य अंग.........................मूलछाल, फल,
मात्राचूर्ण............................1 से 2 ग्राम

प्राप्ति स्थानः– भारत वर्ष के उष्ण एवं शुष्क प्रदेशों में विशेषतः पंजाब, राजस्थान, कच्छ, गुजरात, एवं गंगा के उत्तरी मैदानों में पाया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (2)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, कटु, विपाक–कटु, बीर्य–उष्ण, कर्म–कफ–वातशामक, रोचन, पाचन, कटुपौष्ठिक, भेदन, अर्शोघ्न, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक शोथहर, श्वासहर, स्वेदजनन, विषघ्न, शोथपाचन, दन्तश्वयथुहर एवं व्रणरोपक है ।

अमायिकप्रयोग :– (1) नेत्ररोगों में करीरफल का शाक उपयोगी है ।
2– शोथ में करीर पुष्प चूर्ण लाभ करता है ।
3– अर्श में करीर के कोमल फलों को पानी में गरम कर धूप में सुखाने एवं प्रतिदिन दही के साथ लाभ करता है ।
4– योनिधावन में करीर त्वक् क्वाथ उपयोगी है ।
5– मूल तिक्त मृदुरेचक, एवं शोथ में विशेष उपयोगी है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

32 हुलहुल (तिलपर्णी)

द्रव्यनाम :—

संस्कृत .... उग्रगन्धा, तिलपर्णी, अजगन्धा,
हिन्दी .... हुरहुर
लैटिन .... श्वेतपुष्पा **Gynandropsis gynandra** (L.) Briq.
पीतपुष्पा **Cleome Viscosa** Linn.

गणः– चरक ने शिरोविरेचन, शूलप्रशमन महाकषायों में अजगन्धा के नाम से उल्लेख किया है । सुवर्चला, आदित्यभक्ता पर्याय भी ग्रन्थकारों ने हुलहुल के लिये दिया है । ये पर्याय अनेकार्य बोधक है ।

स्वरुपपरिचयः–

श्वेत हुरहुर के उग्र दुर्गन्ध युक्त 30 से. मी. से 90 से. मी. तक ऊँचे पौधे होते हैं । पर्ण–समपत्रक, पाणिवत् पत्रक संख्या में 5 रुपरेखा में अभिलट्वाकार, ग्रन्थिल रोमश होते हैं । पुष्प सफेद बैंगनी रंग के, मन्जरियाँ स्पर्श में चिपचिपी, निष्पत्र फलियाँ पतली, वाह्यतल रेखांकित, तथा चिकना होता है । फलियों में काले रंग के वृकाकार बीज होते हैं । बीज स्वाद में तीक्ष्ण एवं सरसों जैसे गन्ध वाला होता है ।

पीतपुष्पा हुरहुर के पौधे भी सफेद पुष्प वाले पौधे के सदृश होते हैं, किन्तु नीचे के पत्र 5 पत्रकों वाले एवं ऊपर के पत्र त्रिपत्रक वाले होते हैं । बीज गाढ़े भूरे काले रंग के तीक्ष्ण स्वाद वाले होते हैं । ये एक दूसरे के प्रतिनिधि के रुप में लिये जा सकते हैं ।

पुष्पकाल............................अगस्त, सितम्बर,
प्रयोज्य अंग..........................बीज, पत्र, मूल,
मात्रा..............................बीजचूर्ण 1 से 3 ग्राम पत्रस्वरस 1 तोला

प्राप्ति स्थानः– भारतवर्ष के उष्णप्रदेशों में गांवों के आसपास, सड़कों के किनारे, मैदानों में वर्षाकाल के बाद यह सर्वत्र स्वयंजात पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः–

गुण–लघु, रुक्ष, रस—कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म—कफ वात शामक, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, दीपन, पाचन, अनुलोभन, कोष्ठवातप्रशमन, शूलहर, कृमिघ्न, दाहजनक, उत्तेजक, वेदनास्थापन,

आमयिक प्रयोगः– (1)

1– पत्र स्वरस की बूँद कान में डालने से कर्णशूल दूर होता हैं
2– बीज विषम ज्वर में उपयोगी है ।
3– 1 से 3 माशा की मात्रा में बीज चूर्ण खिलाने से उदरगत केंचूआ बाहर निकल आते हैं ।
4– हुरहुर की स्थानिकलेप से राई के समान क्रिया होती है ।

रासायनिक संगठन :– हुरहुर के ताजे पौधों में एक उत्पत् तैल पाया जाता है । जिसमें लहसुन तथाा सरसों के समान गुण कर्म होते हैं । बीजों से स्थिर तैल प्राप्त होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वनप्सिकादिवर्ग VIOLACEAE

वर्गलक्षणः– इस वर्ग में छोटे पौधे एवं गुल्म पाये जाते हैं । पर्णविन्यास–एकान्तर, सादे, उपपर्ण–पत्रों सदृश छोटे, पुष्प–एकाकी, पुंपुष्प, और स्त्रीपुष्प पृथक–पृथक या संयुक्त होते हैं । पुष्पाभ्यरकोश के 5 दल, बहुधा असमान, फलकुछ शिम्बी रुप में होते हैं । इस वर्ग में पुष्प दर्शनीय एवं रंग–बिरंगें होते हैं। इस वर्ग के द्रव्य ज्वरघ्न, कफघ्न, शोथघ्न, मूत्रल एवं वामक होते हैं ।

33 वनप्शिका

द्रव्यनाम :. संस्कृत .... वनप्शिका,
यूनानी–हिन्दी .... वनफ़सा
लैटिन .... **Viola odorata Linn.**

स्वरुपपरिचयः– यह एकवर्षायु क्षुप है । समस्त पौधा 15 से. मी.. तक ऊँचा होता है । पर्ण–गोल, हृदयाकार, मृदु रोमिल, ब्राह्मी पर्ण सदृश मूलोद्भव होते हैं । पुष्प बैंगनी नीले रंग के झुमकेदार होते हैं । पंचांग को वनफ़सा एवं पुष्प को यूनानी में गुलवनफ़सा कहते हैं । इसकी दूसरी किस्म उत्तरी हिमालय में विशेष रुप से पाई जाती है जिसे Viola serpens wall. कहते हैं ।

पुष्पकाल..........................फरवरी, मार्च
प्रयोज्यअंग........................पंचाग, पुष्प (गुल वनफ़सा)
मात्रा.............................5 से 7 ग्राम

प्राप्तिस्थान :–

बैंगनी फूल वाला वनफ़सा फारस में विशेष होता है । काश्मीर, हिमाचलप्रदेश 1,800 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2,700 मीटर ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है । बाजार में Viola की कई किस्में बनफ़सा के नाम से मिलती हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :–

गुण–लघु, स्निग्ध, रस–मधुर, तिक्त विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–ज्वरघ्न, वातश्लैष्मिक ज्वर में उपयोगी, कफनिस्सारक, पित्तंसंशमन, प्रतिश्यायहर, यूनानी मतानुसार यह पहले दर्जे में शीत एवं तर होता है । इसका खमीरा एवं शर्बत– मलावरोध, प्रतिश्याय एवं ज्वर में उपयोगी है ।

आधुनिक खाजों के आधार पर इसके पंचाग का उपयोग एवं मुरवपाक, एवं कण्ठगत विकारों में विशेष उपयोगी है।

रासायनिक संगठन

इसमें वायेलीन नामक अल्केल्वाइड, एवं ग्लुकोसाइड होता है । मूल में सेपोनीन पाया जाता है । वनफ़सा के सभी अंगों में ग्लूकोसाईड के रुप में मेथिल सेलिसिलेट पाया जाता है ।

मुख्ययोगः– वनप्शादिक्वाथ, खमीरा - वनफ़सा, गुलुकन्द - वनफ़सा ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तुवरकादिवर्ग Falcourtiaceae

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में बड़े वृक्ष एवं गुल्म होते हैं । पर्ण-सादे, एकान्तर उपपर्ण युक्त, अस्थायी होते हैं । पुष्प-उभयलिंगी या एक लिंगी, पुष्प की पंखड़ियों की स्थिति अनियमित, पुंकेशर अनेक होते हैं। फल-अविदारी और रसाल होते हैं। बीज बड़े एवं मज्जा वाले एवं इन बीजों से तेल पर्याप्त मात्रा में निकलता है। इस वर्ग की वनस्पतियाँ कृमिघ्न एवं तन्द्राप्रद गुणवाली हैं। इस वर्ग में कुष्ठ में उपयोगी चालमोगरा नामक द्रव्य मुख्य है।

34 तुवरक

द्रव्यनाम :—

संस्कृत.........तुवरक, कट्टुकपित्थ,
हिन्दी.........चालमुगरा,
लैटिन..........**Hydnocarpus laurifolia** (Dennrt, Sle.)
कुल...........तुवरकादिवर्ग Falcourtiaceae

स्वरूप परिचय :— तुवरक के वृक्ष सुन्दर होते हैं। पर्ण-शरीफा जैसे मसृण एवं चमकदार, 125 से 25 सें. मी. तक लम्बी 3.75 से 7.5 से. मी. चौड़ी लट्वाकार, आयताकार, या भालाकार तथा लम्बे नोकवाली होती हैं। पुष्प सफेद गुच्छों में खिलते हैं। फल प्रायः गोल एवं कैंथ सदृश और सूक्ष्म रोमिल होते हैं। फल में छोटे बदाम जैसे बीज होते हैं। बीजों से प्राप्त होने वाला तैल चालमुगरा का व्यवहार औषधि में किया जाता है। **पुष्पकाल** -मार्च, अप्रैल **प्रयोज्य अंग**-बीज एवं बीजों से प्राप्त तैल।

मात्राबीज चूर्ण - 1 से 3 ग्राम, तैल 30 से 60 बूँद तैल को मक्खन या घी, मलाई के साथ देना चाहिये।

प्राप्तिस्थान :— दक्षिण भारत में पश्चिमी घाट के पर्वतों पर तथा दक्षिण कोंकण और ट्रावनकोर में तथा लंका में इसके वृक्ष स्वयंजात पाये जाते हैं।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट :— सिक्किम खासिया पर्वतमाला एवं पूर्व वंगाल में चटगांव के जंगलों तक इस कुल की दो अन्य किस्में पाई जाती हैं। इन किस्मों का स्वरूप एवं तेल से मिलता है। व्यवसाय में इनका व्यवहार चालमुगरा तेल के नाम से किया जाता है।

(1) **Hydnocarpus Kurzii (King) warb**

2- **Gynocardia Odorata** R.Br.:— इन दोनों पौधों में तुवरक जैसा तेल पाया जाता है। यह तुवरक तेल का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य माना जाता है। परन्तु जीनोकार्डिया ओडोराटा के तेल में चालमुग्रिक एसिड, एवं हिडनोकार्पिक एसिड नहीं पाया जाता है। यह तेल शीतकाल में घी की भांति जम जाता है एवं गर्मियों के दिनों पिघल कर भूरापन लिये हुये पीले रंग के द्रव रूप में होता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान - (1)

गुण-लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, रस-तिक्त, कटु, कषाय विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, स्थानिक प्रयोग करने पर कण्डूघ्न, जन्तुघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण, कुष्ठघ्न, मुखमार्ग से लेने पर कुष्ठघ्न, वामक, रेचक, कृमिघ्न, प्रमेहघ्न, वातरक्तशामक है। यूनानी मतानुसार यह तीसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क होता है। तुवरक तैल उत्तम कुष्ठ नाशक औषधि मानी गई है।

आमयिक प्रयोग :—

कुष्ठ रोग में तुवरकतेल खदिरक्वाथ एवं मधु–घृत के साथ सेवन करने से लाभ होता है। त्वचा पर इसका लेप करने से रक्तशोधन करता है। त्वचा पर मालिश करने से त्वचा लाल होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठन :— तुवरक तेल के बीजों से 44% तक स्थिर तेल प्राप्त होता है। जिसमें प्रधानतः हिडनोकर्पिक एसिड, चालमूगरिक एसिड तथा अल्पमात्रा में पामिटिक एसिड भी पाया जाता है।

मुख्य-योग :— चालमुगरा तेल

35 प्राचीनामलक

द्रव्यनाम :-		
	संस्कृत......................	प्राचीनामलक, पानीयामलक,
	हिन्दी.......................	पचनाला,
	लैटिन.......................	**Flacourtia Jangomas** (Lour Raecuh.)

स्वरूप परिचय :— यह सदाहरित मध्यम प्रमाण का गुल्म जाति का वृक्ष है। शाखायें कंटकित, 6 सें. मी. से 15 सें. मी. लम्बे लट्वाकार, प्रासवत् या आयताकार–भालाकार मसृण होते हैं। पुष्प छोटे अनियमित सदण्डिक में होते हैं। फल-गुलाबी रंग के होते हैं।

पुष्पकाल........ जुलाई, अगस्त, **फलकाल**-नवम्बर, दिसम्बर।
प्रयोज्य......... **अंग** पत्र, फल।
प्राप्तिस्थान :— यह भारत के मैदानी भागों से लेकर हिमालय की निचली घाटियों में 900 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः- (1)

रुचिकारक, गुरू, मधुर, दीपन, पाचन, त्रिदोषशामक, ज्वरघ्न, मुखशोधक, एवं पित्तवर्धक है।

36– बिकङ्कत

द्रव्यनाम :-		
	संस्कृत......................	विकङ्कत, स्त्रुवावृक्ष, स्वादुकंण्टक
	हिन्दी	कंड़ाई, कांगू
	लैटिन.......................	**Flacourtia indica** Merr.

स्वरूप परिचय :- यह गुल्म जाति का कांटेदार वृक्ष है। पर्ण-गोलाई लिये हुये आधार या अग्र की ओर आयताकार, अभिलट्वाकार, कुंठिताग्र, आरावत् एवं दन्तुर होते हैं। पर्ण विभिन्न आकार के अनियमित होते हैं। पुष्प - छोटे–छोटे हरित - पीत वर्ण के सदण्डिक में लगते हैं। फल - गोल, पकने पर गहरे लाल रंग के होते हैं। स्वाद में फल मधुर होते हैं।

पुष्पकाल ....मार्च, अप्रैल,
फलकाल .... मई, जून,
प्रयोज्य अंग........ फल छाल।

प्राप्ति - स्थान :—यह गुल्म भारत के मैदानी भागों से लेकर हिमालय की निचली घाटियों तक प्रायः सर्वत्र सुलभ है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्म - ज्ञान : (1)

ईषत्तिक्त, लघु, दीपन, पाचन, मधुर, क्षुधावर्धक ।

कामलानाशक एवं त्रिदोषघ्न है। अष्ठांग संग्रहकार ने तिक्तद्रव्यस्कन्ध एवं कषायस्कन्ध द्रव्यों में इसकी गणना की है। चरक सुश्रुत आदिसंहिताओं में स्वादुकण्टक, स्त्रुवावृक्ष आदि नामों से कतिपय स्थलों में इस द्रव्य का उल्लेख है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य :—कुछ ग्रन्थकारों ने **Gymnosporia spinosa** (Forsk) Fiori को भी विकङ्कत लिखा है।

लोणिकादिवर्ग PORTULACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में प्रायः छोटे पौधे एवं प्रसर जाति की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। पर्ण - प्रायः रोमश, रसाल, अभिमुख या एकान्तर अखण्ड स्थिर होते हैं। पुष्प रचना अनेक प्रकार की बहुधा शाखग्र पुष्पवाह्यकोष के दल पुष्पाभ्यन्तर दल से छोटे होते हैं। पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल 4 से 5 अलग - अलग होते हैं। बीज अधिक होते हैं।

इस कुल के द्रव्य कटु, कफ, वातहर, पित्तल एवं सर होते हैं।

37 लोणिका

द्रव्यनाम :—

संस्कृत................................	लोणिका
हिन्दी.................................	मोटी लोणी, छोटी लोणी
लैटिन	Portulacea oleracea Linn.

निरूक्ति :—

लोणी लवणं :- अस्तिअस्याम् क्षारयुक्तत्वात्। इसमें लवणरस तथा क्षार अधिक होने से इसे लोणी कहते हैं।

स्वरूप परिचय :---यह एक वर्षायु जमीन पर परिसृत शाकीय पौधा है। पर्ण-स्फानवत्, आयताकार, एकान्तर, गोल, खण्डिताग्र, 2 से. मी. 3 से. मी. लम्बे स्वाद में नमकीन होते हैं। पुष्प शाखाओं के सिरे पर पत्रकोणीय, गुच्छों में छोटे पीले रंग के होते हैं। बीज छोटे, संख्या में अधिक, काले एवं स्वाद में चिकने होते हैं। इसकी दूसरी किस्म भी वर्षाकाल में पाई जाती है, जिसे छोटा लोण (लोनाशाक) **Portulaca quadrifida** कहते हैं। यह भी जमीन पर परिसृत एवं वर्षायु शाक है। पर्ण मांसल, एकान्तर एवं स्वाद में नमकीन होते हैं।

पुष्पकाल..............अगस्त, सितम्बर।
प्रयोज्य अंग ....पंचांग, बीज।
प्राप्ति स्थान :— भारत के नमी वाले स्थानों पर यह सर्वत्र उपलब्ध है। हिमालय की निचली उष्ण घाटियों में 1,200 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः (1)

गुरू, रुक्ष, रस–कटु, वीर्यशीत, विपाकमधुर, वात, कफ शामक, विष्ठम्भी, मूत्रल, ग्राही, दीपन, शोथहर, कृमिघ्न, एवं रक्तशोधक है।

आमयिक प्रयोग :

मूत्रकृच्छ्र में लोणिका के पंचांग का क्याथ देने से पेशाब खुलकर आता है। अत्यन्त दाह एवं वेदना में लेप के वाह्यरूप में प्रयोग करने से लाभ होता है। हकीम लोग वृक, मूत्राशय एवं फुफ्फुस के रोगों में इसे विशेष उपयोगी मानते हैं। इसके अतिरिक्त श्वास - कास, प्रमेह, गुल्म अर्श आदि में उपयोगी है।

रासायनिक संगठन :—इसमें पिच्छिल पदार्थ एवं पोटेशियम आक्जलेट एवं लवण पाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नागके-शरादिवर्ग GUTTIFEREAE

वर्ग लक्षण :---इस वर्ग में बड़े वृक्ष एवं गुल्म होते हैं। इस वर्ग की सभी वनस्पतियों में राल जैसा रस निकलता है। पर्ण - क्रम अभिमुख - पर्ण सादे, उपपर्ण रहित, पुष्प–नियमित, पुष्पवाह्य-कोष और पुष्पाभ्यन्तर-कोश के दल 4 से 12, 2 से 3 चक्रों में स्थित पुंकेशर अनेक, खाने वाला, फल बहुधा रसाल होते हैं। इस कुल की वनस्पतियाँ प्रायः सुगन्धित एवं राल-युक्त, विरेचक होती हैं।

38 नागकेशर

द्रव्यनाम :-

संस्कृत.........तुंग नागकेशर, नागपुष्प, चाम्पेय, केशर, देववल्लभ
हिन्दी ....पीलानागकेशर
लैटिन ....Mesua fera Linn .
कुल ....नागकेशरादिवर्ग Guttifereace.
सुश्रुतः.........एलादिगण, प्रियद्गुवादिगण, अंजनादिगण।

निरूक्ति :— तुंग=तुजिहिसायाम् धातु उच्चत्वाद्वा यह केशर नामक द्रव्य विशेष होने पर ऊँचा बैठता है।
केसर :—प्रशस्ताः केशरा अस्यः इसके पुंकेशर अतिसुन्दर होते हैं। पुंकेसर औषध के काम में आता है।
देववल्लभ :—देवानांवल्लभ " इस वृक्ष के पुष्प काफी सुन्दर होते हैं।
नागकेसर :—नागगन्धयुक्तं नागद्रव पुष्पं इसके पुष्प नाग के सदृश होते हैं।
चाम्येच :—चम्पा नदी के किनारे इसके वृक्ष अधिक पाये जाते हैं।

स्वरूप परिचय :—इसके सदाहरित मध्यम आकार के गुल्म होते हैं शाखायें सीधी, गोल, कोमल एवं घूसर वर्ण की होती हैं। पर्ण 5 सें. मी. से 15 सें. मी. लम्बी 3.75 सें. मी. तक चौड़ी आयताकार भालाकार, अग्र की ओर नुकीले उर्ध्वपृष्ठ चमकीला, अधःपृष्ठ श्वेताभ होता है। पुष्प पत्रकोणीय, सुगन्धित, श्वेत वर्ण के एवं पुंकेसर पीतवर्ण के होते हैं। इन्हीं पुष्पों का औषध कार्यो में प्रयोग किया जाता है।

पुष्पकाल........मार्च, अप्रैल।
प्रयोज्य........अंग - पुंकेसर।
मात्रा..........4 रत्ती से 1 माशा।

प्रतिनिधि द्रव्य एवं मिलावट :— नागकेशर, सुरपुन्नाग।

लैटिन **Ochrocarpus longifolius** Benth. के पुष्प कलिकाओं का व्यवहार प्रायः नागकेशर के नाम से होता है। इसके पुष्प दक्षिण कोंकण, मालावार, कोयम्बटूर के समुद्रतट प्रदेशों में स्वयंजात पाये जाते हैं। इसकी सुखायी हुई कलिकायें हल्की लालिमा लिये हुये भूरे रंग की छोटी लौंग के बराबर होती हैं। इस द्रव्य का उपयोग अभाव द्रव्य के स्थान पर किया जा सकता है। (2) बाजार में कालानागकेशर के नाम से तेजपत्र cinnamomum के शुष्क पुष्प कलिकाओं का प्रयोग कालानागकेशर के नाम से दक्षिण में होता है। वास्तव में इस द्रव्य का उपयोग शास्त्र-सम्मत नहीं हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान - (1)

गुण-लघु, रुक्ष, रस-कषाय, त्तिक्त, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, कर्म-कफ पित्तशामक, दुर्गन्धनाशक, स्वेदोपनयन, दीपन, पाचन, ग्राही, रक्तस्तम्भक, वल्य, वाजीकरण, गर्भस्थापन, मूत्रजनन, यूनानीमतानुसार दूसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष है।

आमयिक प्रयोग :— (2) अर्श रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रक्तकास, रक्तपित्त में यह उत्तम औषध है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2– नागकेशर के बीजों से निकाला हुआ तेल संधिवात, पामा आदि रोगों के बाह्योपचार के काम आता है।
3– **रक्तस्रावी अर्श** में आधातोला नागकेशर मक्खन एवं चीनी के साथ रक्तार्श में अति लाभप्रद है।
4– रक्तप्रदर में नागकेशर चूर्ण शहद अथवा चावल के साथ प्रातः सायं देने से लाभ होता है।
5– रक्तातिसार में नागकेशर का चूर्ण मिसरी के साथ देने से लाभ होता है।
6– सुश्रुत ने नागकेशर को श्लेष्मघ्न, पित्तघ्न और विषहर कहा है।

रासायनिक संगठन :---कच्चे फलों में तेलीय राल निकलता है। बीजों में स्थिर तेल पाया जाता है।

मुख्ययोग :—पुष्पानुक्चूर्ण, द्राक्षासव, दशमूलारिष्ठ, अश्वगन्धारिष्ठ, सुपारीपाक, प्रदरान्तकचूर्ण ।

39 पुन्नाग

द्रव्यनाम :-

संस्कृत	....	पुन्नाग, तुंग,
हिन्दी	....	सुलतानचम्पा,
लैटिन	....	**Calophyllum inophyllum** linn.
कुल	....	नागपुष्पादि वर्ग Ciuttifereae.

गण :—सुश्रुत ने एलादिगण में पुन्नाग केशर का उल्लेख किया है।

स्वरूपपरिचयः—

इसके मध्यम ऊँचाई के सुन्दर वृक्ष होते हैं। पर्ण 12 सें. मी. से 15 सें. मी. लम्बे $6\frac{1}{2}$ सें. मी. सें. मी. चौड़े अण्डाकार, कुण्ठिताग्र, मसृण पुष्पवाह्यकोश एवं आभ्यन्तर-कोश के चार-चार दल होते हैं। स्त्रीकेशर नलिका लम्बी मुड़ी हुई, स्त्रीकेश्वर मुखाग्र बड़ा, गद्दी जैसा फल-मसृण, मांसल पीतवर्ण का अनेक बीज वाला होता है।

प्रयोज्य अंग पुष्प, बीज तेल, निर्यास (राल)
पुष्प कलिका का उपयोग कुछ लोग नागकेशर के नाम से करते हैं।

प्राप्तिस्थान :—

इसके वृक्ष दक्षिण में समुद्र के किनारे पाये जाते हैं। बम्बई के पूर्व में एवं पश्चिम के किनारे पर बर्मा, मलेशिया, लंका, अंडमान-निकोवार में पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान ::– (2)

रस-मधुर, तिक्त, कषाय, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, कफ-पित्तघ्न, व्रणरोपक, वामक, रेचक, ग्राही एवं कण्ड्घ्न है।

आमयिक प्रयोग :—

1– जननेद्रिय, मूत्राशय एवं वृक की श्लेष्मकलाओं पर इसके तैल का उपयोगी प्रभाव देखा गया है।
2– बीजों का तेल पाभा में उपयोगी माना गया है।
3– सन्धिवात एवं वात्तन्रक्त में इसके तेल का अभ्यंग किया जाता है।
4– दुष्ठ व्रणों पर इसका निर्यास अच्छा कार्य करता है

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

40 अम्लवेतस

द्रव्यनाम :-	संस्कृत	....	सहस्त्रवेधी चुक्र, शंखद्राबी, भेदक, अम्लनायक, फलाम्ल,
	हिन्दी	....	अम्लवेतस, बंगाली-थैकल,
	लैटिन	....	GARCINIA PEDUNCULATA ROXB

गुण :— चरक, नेदीपनीय, भेदनीय, श्वासहर, हृघ और सुश्रुत ने अम्लस्कन्ध, में अम्लवेतस का पाठ दिया है।

निरूक्ति :— **सहस्त्रवेधी** :— अर्थात् अत्यन्त अम्ल होने विशेष से लोहे के कतिपय परतों का भेदन करने वाला द्रव्य।

अम्लनायक :–अम्लप्रधान द्रव्यों में विशिष्ठ द्रव्य विशेष होने से।

फलाम्ल :— अम्लप्रधान फल विशेष द्रव्य।

भेदक :— अम्ल प्रधान होने से लोहे आदि द्रव्यों का भेदन करने वाला।

स्वरूप परिचय :— इसके वृक्ष बगीचों में रोपित् किये जाते हैं। पर्ण–बड़े कर्कश एवं आयताकार होते हैं। पुष्प-श्वेताम वर्ण के, फल–पकने पर पीत वर्ण के नाशपाती की आकृति सदृश गलगल के बराबर होते हैं। राजनिघण्टुकार ने भोट देशे प्रसिद्धम्" लिखा है। कूचबिहार में इसका अचार बनाकर खाया जाता है। फल बहुत खट्टा होता है।

पुष्पकाल :— जुलाई, अगस्त। **फलकाल** दिसम्बर, जनवरी।

प्रयोज्य अंग ....फल

प्राप्तिस्थान :— कूचबिहार राज्य में यह विशेष रूप से पाया जाता है। भारत व बंगाल, बम्बई के उड़ीसा के उद्यानों में लगाये हुये पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :- (1)

रस-अम्ल, कटु कषाय, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, कफ वातघ्न, दीपन, हृद्य श्वासहर, अश्मरीघ्न।

आमयिक प्रयोग :—

प्रायः इस द्रव्य का प्रयोग राजयक्ष्मा, ग्रहणी, श्वास आध्मान, उदावर्त, कास, गुल्म, शिरोरोग, मुखरोग एवं अर्श आदि रोगों में किया जाता है।

वक्तव्य :— अम्लवेतस नामक द्रव्य विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग वनस्पति के ग्रहण करने से विवादास्पद रहा है। परन्तु वनौषधि-वेत्ताओं ने यह मत स्पष्ट किया है कि शास्त्रीय अम्लवेतस फलवर्ग का ही द्रव्य विशेष है। यह फल अति खट्टा होता है। शास्त्रकारों ने भिन्न-भिन्न स्थलों पर निम्न द्रव्य को अम्लवेतस लिखा है ।

(अ) चुक्री Rumex Vesicareus Linn.
(ब) गलगल Citrus की किस्में
(स) रेवन्द चीनी Rheum emodi Wall
(द) थैकल Garcinia Pedunculata Roxb

उत्तरप्रदेश के विभिन्न स्थानों की फार्मेसियों में Rheum emodi रेवन्द चीनी के पत्रवृन्तों के वेंत की चोटी की तरह गुथी हुई वेलसद्यश शाखा मिलती है। जिसे व्यापारी साइट्रिकऐसिड में और भिंगोकर विशेष अम्ल कर देते हैं। रेवन्दचीनी हिमालय क्षेत्र के 2,700 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,800 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है। थैकल के फल बहुत कम बाजार में आते हैं। लेखक के विचार से इसे प्रतिनिधि द्रव्य के रूप में स्वीकार करना चाहिये।

मुख्ययोग :— यमानी-खांडव हिंग्वादिचूर्ण, मरिच्यादिचूर्ण, पथ्यादिचूर्ण।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

41 वृक्षाम्ल

द्रव्यनामः–

संस्कृत	....	वृक्षाम्ल, फलाम्ल, शाकाम्ल, रक्तचूड़, रक्तपूरक,
हिन्दी	....	रतांवी, आमसोल, कोकम,
लैटिन	....	**Garcinia indica** Chois

गण :— चरकने हृद्यमहाकषाय में पाठ दिया है।

स्वरूपपरिचय :— इसके मध्यम आकार के वृक्ष सुन्दर एवं दर्शनीय होते हैं। पत्र-मसृण, सुगन्धित, पुष्प-श्वेताभ वर्ण के होते हैं। फल-नारंगी जैसे होते हैं। बीजों में काफी तेल होता है। फल स्वाद में तीव्र अम्ल होते हैं।

पुष्पकाल :— जुलाई, अगस्त, फलकाल :— दिसम्बर, जनवरी।
प्रयोज्य अंग :— फल एवं बीज तेल।
प्राप्तिस्थान :— कोंकण, गोआ, उत्तरकनाड़ा, कुर्ग-मालावार पश्चिमघाट।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— (1)

गुण-रुक्ष, रस-अम्ल, कटु, कषाय, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, वात कफ नाशक, हृद्य, ग्राही, शूलघ्न, गुल्मनाशक तृष्णा, अर्श, ग्रहणी आदि रोगों में उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग :—

1– रक्तस्रावी अर्श में दही की तर में कोकम का चूर्ण पकाकर देने से अर्श में लाभ होता है।
2– अतिसार में घी और तेल में कोकम का चूर्ण तलकर खिलाने से अतिसार ठीक हो जाता है।
3– गुल्म में कोकम स्वरस को सैन्धव लवण के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है।

वक्तव्य :— वृक्षाम्ल की यथार्थता में चरक एवं सुश्रुत आदि संहिताकारों के अलग-अलग मतभेद हैं। चरक ने वृक्षाम्ल को अम्लिका के गुणों से भी हीन माना है। सुश्रुत ने तिन्तिडक के गुणों को बताने के बाद कोशाम्र के गुणों के समान लिखा है। तिन्तिडक को सामान्य भाषा में समाकदाना **Rhus Parviflora** Roxb कहते हैं नव्यमतानुसार कोकम का तेल पोषक, स्निग्ध और मार्दवकृत् है। प्रवाहिका में यह उपयोगी माना गया है।

शालादिवर्ग DIPTE ROCARPEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग की वनस्पतियों में बड़े वृक्ष पाये जाते हैं। इस कुल के वृक्षों से राल निकलती है। पर्ण-एकान्तर, सादे उपपर्ण-सादे छोटे या अस्थायी होते हैं। पुष्प-स्त्रीपुंसयोगी, सुगन्धित, पत्रकोणोद्भव मज्जरियों में खिलते हैं। पुष्प–वाह्यकोश के दल 5 एक के ऊपर एक बल खाये हुये, बहुधा बड़े एवं फल लगने पर पंख जैसे हो जाते हैं। पुंकेशर बहुधा अनेक स्त्रीकेशर नलिका अखंडित या त्रिविभाजित, फल अस्फोटक और प्रायः एक बीज वाले होते हैं।

42 शाल

द्रव्यनाम :–

संस्कृत	....	शाल, साल, यक्षधूप, सर्जरस
हिन्दी	....	साल, साखू,
लैटिन	....	**Shorea Robusta Gaertn.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण :—चरक ने वेदनास्थापनगण, आसवयोनिसार वृक्ष तथा सुश्रुत ने कषायस्कन्ध, शालसारादिगण, लोध्रादिगण में उल्लेख किया है।

निरूक्ति :—**शाल** :— इस वृक्ष का सार भाग अतिकठिन होता है इसलिये इसे साल कहते हैं।

यक्षधूप :— शाल वृक्ष का निर्यास कृमिघ्न एवं भूतवाधाहर होता है।

स्वरूप परिचय :—शाल के वृक्ष विशेष ऊँचाई लिये हुये पर्णपाती होते हैं बड़े एवं पुराने वृक्षों की छाल खुरदरी, काफी मोटी एवं अनुलम्ब दिशा में दरारयुक्त होती है। पर्ण 10 से 30 से0 मी0. लम्बे एवं 5 से 19 से0 मी0 चौड़े, लट्वाकार, आयताकार, लम्बाग्र, मजबूत चर्मिल, चिकने, चमकदार, एकान्तर क्रम में स्थित आधार की ओर गोलाकार या हृदयाकार, वृन्त बेलनाकर होता है। पुष्प–पीताभ श्वेतवर्ण के सुगन्धित, छोटे वृत्त वाले या विनाल, पत्रकोणोद्भूत, गुच्छेदार, मंजरियों में खिलते हैं, फल 1 इंच लम्बा, अण्डाकार, अग्र की ओर नुकीला, पकने पर घूसर वर्ण का पंखदार, पक्ष लगे होते हैं। गरीब लोग अकाल के समय बीजों का आटा बनाकर खाते हैं।

पुष्पकाल :— मार्च, अप्रैल **फलकाल**–मई, जून।

प्रयोज्य अंग :—शालनिर्यास (राल) चूर्ण 1 से 2 ग्राम, ताजा सालनिर्यास राल रंगहीन होता है। पुराना गाढ़े भूरे रंग से लेकर हल्के अम्बरी रंग का होता है। यह प्रायः गंध एवं स्वादहीन होता है। राल का उपयोग धूपन एवं चिकित्सा में मलहम, लेप बनाने में किया जाता है। तने से चीरा लगाकर राल प्राप्त किया जाता है।

प्राप्ति स्थान :— यह हिमालय की तराई या बाहरी पर्वत श्रेणियों में 1,200 मीटर की ऊँचाई तक समूहबद्धरूप में पाये जाते हैं। उत्तरप्रदेश, पंजाब, मध्यप्रदेश, आसाम, उड़ीसा, बिहार आदि प्रान्तों में विशेषतया पाया जाता है। राल का आयात भारत में सिंगापुर आदि देशों से भी होता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (1)

राल :—गुण-लघु, रुक्ष, रस-कषाय, मधुर विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, छाल, कषाय, कटु, त्तिक्त एवं शीत्तवीर्य होती है। यूनानीमतानुसार यह तीसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क है। राल उत्तम व्रणशोधन, व्रणरोपण, स्तम्भन, अस्थिमग्न का संधान करने वाला एवं ग्राही है।

आमयिक प्रयोग :—

सिद्धभैषज्य मणिमाला में सर्जपर्पटी का उल्लेख है यह कफवातज्ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, भ्रम एवं वान्ति आदि रोगों में उपयोगी है। राल रक्तसंग्राही होने से रक्तार्श एवं रक्तप्रवाहिका में दी जाती है। रक्तार्श में राल को नागकेशर के साथ देने से रक्त का गिरना बन्द हो जाता है एवं वेदना कम होती है।

राल का धूप जन्तुघ्न है एवं लेप खुजली तथा जख्म के निशानों को मिटाता है।

रासायनिक संगठन :— छाल में कषाय द्रव्य होता है । जो जल में उबालने पर खदिर सार के समान प्राप्त होता है।

वक्तव्य :—संहिताग्रन्थों में सालनिर्यास सर्जरस के नाम से विशेष रूप से उल्लिखित है। "सृजति इतिसर्ज सर्जः सृ विसर्गे" अर्थात् जिससे राल का निस्सरण होता है उसे सर्ज कहते हैं। शालादिवर्ग में अवश्वकर्ण, अजकर्ण. नदीसर्ज, महासर्ज, लघुसर्ज कतिपय वृक्ष विशेष या पर्याय हैं जिनसे निर्यास निकलता है। चरक ने कषायस्कन्ध में साल, सर्ज, अश्वकर्ण और अजकर्ण चारों नाम दिये हैं जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये चारों भिन्न-भिन्न वृक्ष हैं । इन वृक्षों से ओलियोरेजीन (राल–तेल) प्राप्त किया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोग :— सर्जरसादिमलहर, अतस्यादिलेप, महामंजिष्ठाधारिष्ठ।

43 सर्ज

द्रव्यनाम :–
संस्कृत .... सर्ज, सर्जरस, सर्जक, देवधूप
हिन्दी .... राल, सर्जरस, वड़ासाल, सफेदडामर
लैटिन............................ **Vateria indica** Linn.

निरूक्ति :— रालः– राति ददाति सुखम्, "रा दाने धातु" जो अलक्ष्मी का नाश करे एवं सुख को प्रदान करती है।

सर्जरस :— सर्जस्य शालवृक्षस्य रस" शालवृक्ष विशेष का निर्यास होने से सर्जरस कहते हैं।

देवधूप :— देवताओं का धूप होने से इसे देवधूप कहते हैं।

स्वरूप परिचय :— इसके वृक्ष काफी ऊँचाई लिये होते हैं। पर्ण-बड़े हृदयाकार, बड़े मसृण एवं स्पष्ट शिरा वाले होते हैं। पुष्प श्वेताभ, सुगन्धित एवं छोटे होते हैं। फल-2 से $2\frac{1}{2}$ इंच लम्बे गोल होते हैं। बीजों से पीताभ सुगन्धित तेल निकलता है।

पुष्पकाल........................... अप्रैल, मई।

प्रयोज्य अंग :— निर्यास (राल को चन्द्र रस कहते हैं ।

प्राप्तिस्थान :— पश्चिम भारत, उत्तरकनाड़ा से ट्रावनकोर तक पाया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (1)

रस–कषाय, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु कर्म-कफ-पित्तशामक, कृमीघ्न, व्रणरोपक, व्रणशोधक, कुष्ठघ्न, विषघ्न, एवं योनिरोग-हर है।

आमयिक प्रयोग :–

बीजों से निकला हुआ तेल सन्धिवात में मालिश के रूप में उपयोगी है।

2– कर्णशूल में डालने से वेदना दूर होती है। उदर में होने वाले रक्तस्त्राव में चन्द्ररस (निर्यास) बहुत उपयोगी है। अर्श में धूपन किया जाता है। सर्जरस-पाण्डु, प्रमेह, कुष्ठ एवं योनिरोगों में विशेष उपयोगी है। यूनानी हकीम शरीर की स्थूलता को कम करने हेतु सर्जरस का प्रयोग करते हैं। यह दूसरे दर्जे में गरम और रुक्ष है।

वक्तव्य :—

प्राचीन लेखकों ने सर्ज एवं राल का सर्जरस नाम दिया है। वास्तव में शाल एवं सर्ज शालादिवर्ग के भिन्न-भिन्न वृक्ष हैं। चन्द्ररस (सफेदडामर) सिंगापुर से भी भारत में मंगाया जाता है। सुश्रुत ने सालसारादादिगण में शाल, अजकर्ण, अश्वकर्ण ये तीन और चरकके कषायस्कन्ध में साल, सर्ज, अश्वकर्ण एवं अजकर्ण इन चार नामों का उल्लेख मिलता है। निघण्टु ग्रन्थों ने कतिपय पर्यायों का एक साथ समावेश कर संदिग्धता पैदा कर दी है। वास्तव में ये चारों शाल के भेद या तत्सम वृक्ष हैं।

44 अश्वकर्णः

द्रव्यनाम :–
संस्कृत .... अश्वकर्ण, गर्जन, जरणद्रुम।
हिन्दी .... गर्जन, श्वेतगर्जन।
लैटिन............................ Dipterocarpus alatus Roxb
अजकर्ण Dipterocarpus turbinatus Gaertn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप परिचय :— इस वर्ग में इसकी कई किस्में पाई जाती हैं। इसके वृक्ष काफी ऊँचे एवं मोटे होते है। पर्ण–लट्वाकार, आयताकार, चर्मिल चमकीले होते हैं। पुष्प–पत्रकोणीय छोटे–छोटे गुच्छों में खिलते हैं। फल पंख सदृश एवं परत घोड़े के कान की आकृति में। इसके काण्ड से तैल निकला जाता है, जिसे गर्जन तैल कहते हैं। अजकर्ण के भी वृक्ष भी अश्वकर्ण के वृक्षों के सदृश होते हैं। यह किस्म भी वर्मा, आसाम, अण्डमान आदि प्रदेशों में पाई जाती है। बंगाल में इसे तेली गर्जन कहते हैं। इससे रेलवे के स्लीपर बनाये जाते हैं। इसके काष्ठ से तैल निकला जाता है जिसका चिकित्सा में उपयोग होता है।

प्रयोज्य अंग ....तैल
प्राप्ति स्थान .... घिटगांव, ब्रह्मदेश, आसाम, अण्डमान आदि स्थानों पर पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— वीर्य–उष्ण, विपाक–कटु, पित्त-कफ शामक, मूत्रल, कृमिघ्न, पूयघ्न, कोथप्रशमन।

गर्जन तैल मूत्रेन्द्रिय श्लेष्मकला को उत्तेजित करता है। मूत्र की मात्रा को बढ़ाता है एवं मूत्र मार्ग को साफ रखता है। जीर्ण पूयमेह (गनोरिया) में इसका तैल उपयोगी है।

त्वचा के रोगों में तैल का वाह्य प्रयोग विशेष लाभदायक है। अनेक त्वचा के रोगों में इसके तैल का मलहम बनाया जाता है।
ग्वायकरेजिन, गर्जनतैल एवं चालमोगरा इन तीनों को सम भाग मिलाकर देने से श्वित्र ठीक होता है।

वक्तव्य :—अजकर्ण एवं अश्वकर्ण नाम इन द्रव्यों के इसलिये शास्त्रकारों ने दिया है कि इन वृक्षों के फल पंखदार एवं ये पंख आकृति में घोड़े के एवं बकरी के कान के सदृश होते हैं।

कार्पासादिवर्ग MALVACEAE

वर्गलक्षण :. इस वर्ग में वृक्ष, वृक्षक एवं शाकीय पौधे पाये जाते हैं। इस वर्ग की वनस्पतियों की लकड़ी मृदु होती है। अन्तःत्वचा कड़ी एवं रेशेदार होती है। पर्णःप्रायः एकान्तर, अखण्डित, 3, 5, 7 या 9 कोने वाले पंत्राङ्गुल करतलाकार एवं सादे होते हैं। उपपर्ण–अनेक आकार में पाये जाते हैं। पुष्प–श्वेत, पीले, गुलाबी, लाल एवं नीचे रंग के होते हैं। पुष्प–वाह्यकोष दल के दल 5 बहुधा संयुक्त, पुष्पाभ्यान्तर कोष के 5 दल असंयुक्त एवं बल खाये हुये होते हैं। पराग कोश एक खाने वाला और वहिःस्फोटक होता है। स्त्रीकेशर एक होता है। फल प्रायः भिण्डी के आकार में, अतिवला जैसे गोल, मृदंगाकृति, अण्डाकृति (धारिदार) आदि अनेक आकार के होते हैं। बीज प्रायः चपटे, गोल, प्रायशः रोमश होते हैं।

इस वर्ग की वनस्पतियां पौष्टिक, ग्राही, मूत्रल, स्वेदल, विषहर, शोथघ्न, ज्वरघ्न, वातघ्न, स्निग्ध होते हैं।

45 कार्पास

द्रव्यनाम :–

संस्कृत	....	कार्पासी, तुण्डिकेरी, तूल, पिचु, भारद्वाजी
हिन्दी	....	कपास रुई, पिचु।
लैटिन	....	**Gossypium herbaceum Linn.**

गुण :— (1)चरक वृहणीय महाकषाय, सुश्रुत .... वातंसशमन
निरुक्ति :— तुण्डिकेरी – तुण्डिकान् शरीराणिईरयत्ति" अर्थात्- जिसका उपयोग शरीर को ढांपने के काम में होता है।
कार्पासी :—कल्पते कार्पासी– वात का नाश करता है या इसके वस्त्र बनाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भारद्वाजी :—जंगली किस्म भी होने के कारण भारद्वाजी कहा गया है।

स्वरूप परिचय :—यह बहुवर्षायु, बहुशाखी, झाड़ीदार वृक्षक है। इसकी प्रतिवर्ष खेती की जाती है इसलिये एक वर्षायु भी होता है। पर्ण–देखने में एरण्ड सदृश, छोटे, गहरे हरे रंग के एवं चर्मिल होते हैं। यह 5–7 खण्डों में विभक्त, फलक चौड़े लट्वाकार, त्रिकोणाकार तथा तट दन्तुर होते हैं। पुष्प–चमकीले पीले रंग के फल–लम्बा, अण्डाकृति में नुकीला, तीन या चार कोष्ठयुक्त होता है। बीज (बिनौला) श्वेतरोमावृत्त जिसे कपास (रुई) कहते हैं। बीजों से एक प्रकार का तैल भी निकलता है।

कपास की बहुत-सी जातियां होती हैं जिसमें देशी एवं विदेशी भेद से 2 विभाग किया जा सकते हैं। जंगली कपास को भारद्वाजी कहते हैं।

पुष्पकाल..................जुलाई, अगस्त

प्रयोज्य अंग :— मूलत्वक्, बीज तैल, रुई (पिचु) पुष्प, मात्रा–मूलत्वक् 6 ग्राम से 10 ग्राम" पत्रस्वरस 1 से 2 ग्राम ।

प्राप्ति - स्थान :— भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों, बंगाल, गुजरात, पंजाब, बम्बई में प्रचुरता से इसकी खेती की जाती है। इसके अतिरिक्त उष्ण कटिबन्धीय देशों में भी कपास की न्यूनाधिक मात्रा में खेती की जाती है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

गुण–लघु, स्निग्ध, रस–मधुर, कषाय, विपाक–मधुर, वीर्य–इषद् उष्ण, कफ–पित्तघ्न, मूलत्वक्–गर्भाशय संकोचक, रक्तस्तम्भक, पर्ण–वातघ्न रक्त स्तम्भक, मूत्रजनन, फल–कषाय, मधुर, बीज–स्नेहन स्त्रसन, स्तन्यजनन, वल्यवृष्य स्तन्यवर्धक, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, विषघ्न।. पुष्प–सौमनस्यजनन, उत्तेजक, वातश्लेम हर है। जंगली कपास–(भारद्वाजी) शीत्तवीर्य रूचिकर, व्रण एवं शस्त्त्रक्षत में उपयोगी है। यूनानी मतानुसार बिनौले की गिरी, दूसरे दर्जे में उष्ण एवं तर है। वृकों के लिये अहितकर है।

आमयिक प्रयोग :—

1– कपास का डोडा एवं मूलत्वक् आर्तवजनन सुखप्रसवकारक एवं अधिक मात्रा में गर्भघातक है। इस हेतु मूलत्वक् के क्वाथ का प्रयोग किया जाता है।

2– रुई का व्यवहार व्रण चिकित्सा एवं शल्यकर्म में किया जाता है।

3–कुष्ठ में कपास की मूलत्वचा एवं पुष्प के लेप का विधान है

4– वातरोग में कुल्थी एवं बिनौले से पकाया हुआ घृत वातघ्न है। चरक ने भारद्वाजी का वृंहणीय वर्ग में उल्लेख किया है अश्मरी में अन्य अश्मरी नाशक द्रव्यों के साथ प्रयोग करने का विधान है। सुश्रुत ने वातसंशमन वर्ग में कार्पासी का उल्लेख किया है। दुष्ठव्रण में कार्पास फल की योजना है । प्राचीन काल से व्रणवन्धनार्थ एवं पिचु, प्लोत के रुप में इसके प्रयोग का विधान है।

प्रसव वेदना का न होने पर कपास मूल का चूर्ण या क्वाथ देने से प्रसव–वेदना तथा गर्भाशय संकोचन यथावत् होकर प्रसव हो जाता है। नष्ठार्त्तव एवं कष्ठार्त्तव में मूल के उपयोग का विधान है। कपास बीज का फाण्ट पिच्छिल एवं स्निग्ध है।

नव्यमतानुसार भारत में बिनौलों का उपयोग गर्भपात के लिये किया जाता है। इसके लिये कपासमूल की छाल का भी प्रयोग किया जाता है। गर्भाशय पर इसका प्रभाव अर्गट जैसा होता है। यही कारण है कि हमारे शास्त्रकारों ने कपास बीज एवं मूल का उपयोग गर्भस्त्राव एवं गर्भपात योगों में किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठन :– मूलत्वक् में 8% तक रंगहीन या पीत आम्लिक राल रैजिन, डायहाइड्रोक्सी बेंजोइक एसिड, फिनोल, वसाम्ल, शर्करा आदि तत्त्व पाये जाते हैं। तेल में ओलिक एसिड, पामिटिक एसिड, स्टियरिक एसिड, गिल्सेराईड् पाये जाते हैं।

46 लताकस्तूरी

द्रव्यनाम :–

संस्कृत .... लताकस्तूरिका, कटुक।
हिन्दी फारसी...................... लताकस्तूरी बीज, मुश्कदाना ।
लैटिन.............................. **Hibiscus Abelmoschus** Linn.

निरूक्ति :— **लताकस्तूरिका** :– इसके बीजों में कस्तूरी जैसे गन्ध आती है, इसलिये लताकस्तूरी कहते हैं।
मुष्कदाना :— बीज कस्तूरीमृग के अण्डकोष के सदृश सुगन्धित होते हैं।

स्वरुप परिचयः—

यह बहुवर्षायु भिण्डी सदृश पौधा है। काण्ड रोमिल उर्ध्वसंस्थित होता है। पर्ण–बहुरूपिक खण्डयुक्त, नीचे के पत्ते अपेक्षाकृत चौड़े, लट्वाकार या हृदयाकार होते हैं। पत्रखण्ड–आयताकार, भालाकार छोटे एवं लम्बे नोकदार एवं दंतधार युक्त होते हैं । सभी पर्ण–सघनरोमावृत । पुष्प–बडे पीतवर्ण के शाखाग्रों पर खिलते हैं। फल देखने में भिण्डी के समान अपेक्षाकृत छोटे, बीज वृकाकार, चपटे एवं कृष्णवर्ण के होते हैं जिनको मसलने पर कस्तूरी जैसी सुगन्ध आती है।

पुष्पकाल.............अगस्त सितम्बर ।
फल काल...........दिसम्बर, जनवरी ।
पय्रोज्य अंग...........बीजचूर्ण, पत्र, मूल ।

शुद्धा शुद्ध परीक्षा :– बीज चपटे, वृकाकृत्ति में, वाह्यतल में सूक्ष्म एवं समानान्तर रेखायें होती हैं। बीजों में वृन्तक (हाइलम) का चिन्ह होता है। रंग बीज खाकी या कालिमा लिये हुये होता है। बीज के अन्दर चिकना सुगन्धित गूदा (मग्ज) होता है। बीज को मुँह में रखकर चबाने से सुगन्धि आती है।

प्राप्ति स्थान :–

भारत के उष्णतर प्रदेश में विशेषकर बंगाल एवं मद्रास में इसकी खेती की जाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (1) गुण– लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, मधुर, कटु, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, मुखदुर्गन्धनाशक, रोचन, दीपन, कफ–पित्त–शामक, मूत्रल, वृष्य, शुक्रल एवं आक्षेप–हर।

आमयिक प्रयोग :— श्वासरोग में श्वासनलिका के संकोच विकास में बीजों का फाण्ट देने से लाभ होता है।

बीज को मुख में चबाने से मुख की दुर्गन्ध दूर होती है।

ताम्बूल में इसके दाने खाने से मुख सुगन्धित होता है।

व्यक्तव्य :— संहिताग्रन्थों में कटुक नाम लताकस्तूरी के लिये प्रयुक्त हुआ है ऐसा संकेत चक्रपाणिदत्त ने किया है।

रासायनिक संगठन :— इसमें स्थिरतैल एवं हरिताभ पीतवर्ण का सत्व पाया जाता है एवं सुगन्धित तत्त्व जो हल्के हरे रंग के द्रव रूप में प्राप्त होता है और कस्तूरी जैसी तीव्र सुगन्धी पाई जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

47 जपा

द्रव्यनाम :–

संस्कृत	....	जपा, जवा, ओड्रपुष्पा, अरुणा
हिन्दी	....	गुड़हल, जासूद
लैटिनण	....	**Hibiscus Rosa-sinensis** Linn.

निरुक्ति :— जपा– जयंति जपा जपातिव्यक्तं वदति स्वकीयान् गुणान्" जो अपने गुणों को स्पष्ट व्यक्त करता है।

ओड्रपुष्प :— इसका पुष्प क्लेद युक्त होता है।

स्वरूप परिचय :— इसके गुल्मनुमा 5 मीटर से लेकर 8 मीटर तक ऊँचे गुल्म होते हैं। ये गुल्म वागों में शोभा के लिये लगाये जाते हैं। गुल्म सदाहरित, पर्ण, चमकीले, हरित अण्डाकार भालाकार, अरोमिल, दन्तुर, शहतूत जैसे होते हैं। पर्ण के आधार से 3 शिरायें, सहपत्र– भालाकार। पुष्प– लाल रंग के घण्टाकार, बड़े 4–6 इंच व्यास में स्त्रीकेशर एवं पुंकेशर पुष्पदल से बाहर निकले होते हैं। फल गोलाकार एवं अनेक बीजों से युक्त। पुष्प–लाल, पीले, श्वेत कतिपय रंग के होते हैं।

पुष्पकाल........................प्रायः हर समय पुष्पित होते हैं।
प्रयोज्य अंग....................पुष्पकलिका, पुष्प, मुलत्वक्, मात्रा पुष्प 3 से 6 ग्राम ।

प्राप्ति स्थान :— भारत के सभी उद्यानों में प्रायः इसके गुल्म लगाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— (1)

रस–कषाय, मधुर, विपाक–मधुर, कफ, वीर्य–शीत, कफ, वातघ्न, संग्राही, केश्य, हृद्य, वल्य, प्रमेहहर, मानसिक रोगहर, रक्तसंग्राहक।

आमयिक प्रयोग :—

गुड़हल के पुष्पों को काली गाय के मूत्र में पीसकर सिर पर लेप करने से गंज अच्छा होता है एवं केश्य है। जपा के पुष्प रक्त प्रदर में दूध के साथ सेवन करने पर लाभ होता है। पत्र क्वाथ फिरंग के व्रणों को धोने में उपयोगी है। जपा का शर्बत–मानसिक दुर्बलता, उन्माद, पैतिकज्वर एवं हृदय की दुर्बलता में प्रयोग करते हैं।

परिवार नियोजन में जपा पुष्प विशेष उपयोगी है।

रासायनिक संगठन :— पुष्प में कैल्सियम, फास्फोरस, लौह, थियामिन, राइवोफ्लेविन एवं विटामिन सी पाया जाता है।

48 पारीष

द्रव्यनाम :–

संस्कृत	....	पारीष, गर्दभाण्ड, कपीतन, सुपार्श्वक
हिन्दी	....	पारसपीपल, गजदण्ड,
लैटिन	....	**Thespesia Populnea** Soland.

निरुक्ति :— गर्दभाण्ड–गर्दभस्य अण्डमिवफलमस्य इतिगर्दभाण्ड" इसके फल गर्दभ के अण्ड सदृश होते हैं एवं गन्ध भी विशेष प्रकार की होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कपीतन :— कं पीतयति कपीतन, कपिनां कायेः वा वर्णस्य शोभां तनुते" इसके फलों का रंग बन्दरों के रंग सृद्यश शोभा लिये होता है।

सुपार्श्वक :—इसके वृक्ष शोभा के लिये सड़कों पर लगाये जाते हैं। गन्धपिप्पल इसे कुछ लोग कहते हैं।

स्वरूप परिचय :—वृक्ष मध्यमाकार, सदाहरित, बहुशाखीय होते हैं। पर्ण–3–5 इंच लम्बे 2–3 इंच व्यास में पीपल के पर्ण सद्यश छोटे नोकदार होते हैं। पुष्प–घण्टाकार पाँच पंखड़ियों वाले गुलाबी रंगके, फल–गूलर सद्यश कुछ कठोर होते हैं। फल के अन्दर एरण्ड सद्यश बीज होते हैं। फलों को तोड़ने पर पीले रंग का दूध सा निकलता है।

पुष्पकाल................शीतकाल ।
प्रयोज्य अंग ....छाल, फल ।

प्राप्ति स्थान :—पारीश के वृक्ष बंगाल पोरबन्दर एवं दक्षिण में समुद्र की खाड़ी एवं रेतली भूमि इसके अनुकूल है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—(1)

रस, कषाय, स्निग्ध,. दुर्जर, वृष्य, मधुर, कृमिनाशक, कफ वर्धक, फल–अम्लता लिये हुये, जड़ मधुर कषाय रस युक्त होता है।

आमयिक प्रयोग :— पारीश की मूल छाल का उपयोग सन्धिविकार एवं रक्तविकार के रोगों में क्वाथ के रूप में किया जाता है। इसके क्वाथ से व्रण, एवं क्षत धोये जाते हैं। पारीश के पुंकेशर मिसरी के साथ प्रमेह में देते हैं।

दद्रु पर पुष्प एवं फलों का रस लगाया जाता है। आम एवं संग्रहणी में पारीश के अपक्व फलों का उपयोग मिसरी के साथ करते हैं। नब्यमतानुसार पारीश के फल से पीला दाहक रस निकलता है। दक्षिण भारत के लोग इस रस को पामा पर लगाते हैं। साथ में इस वृक्ष की त्वचा के क्वाथ से व्रणों को धोते हैं।

नये फलों को कूटकर शिरःशूल दूर करने के लिये सिर पर लेप करते हैं।

रासायनिक संगठनः—पुष्प दल में पोपुलिनिन (Populinin), पोपुल्नेटिन, (Populnetin), हर्बेसिटिन (Herbecetin) आदि तत्व पाये जाते हैं।

वक्तव्यः—निघण्टुकारों ने पंचक्षीरी वृक्षों में पारीष की गणना की है। ग्रन्थकारों ने वटजातीय (Ficus) वृक्ष को पारीष लिखा है। Ficus Rumphii को कुछ वैद्य पारीष के नाम से इसका प्रयोग करते हैं। थेसपेसिया–पोपुलीनिया के छाल में दूध नहीं होता है, परन्तु फलों में दूध पाया जाता हैं। सम्भवतः Ficus की जाति विशेष यह द्रव्य प्लक्ष है जो कि पारीष से भिन्न है। प्लक्ष के लिये कतिपय स्थलों पर नन्दीवृक्ष, गर्दभभाण्ड यह भी अर्थ संहिताओं के टीकाकारों ने किया है। पारीष का वृक्ष पीपल सदृश होने से अधिकतर लोगों ने प्लक्ष से पारीष अर्थ कर लिया। यह मेरे विचार से अशुद्ध प्रतीत पड़ता है।

48 वनकार्पास

द्रव्यनाम ....
संस्कृत ....वनकार्पासी, भारद्वाजी, तुण्डिकेरी ।
हिन्दी ....जंगली कपास ।
लैटिन............**Thespesia Lampas Dala Syn-Hibiscus Lamps**

निरुक्तिः—**तुण्डिकेरी**–जो वालों से अपने को आवृत करता है, उसे तुण्डिकेरी कहते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूपपरिचयः—इसके बहुशाखीय गुल्म पाये जाते हैं। ये गुल्म कभी-कभी बागों में भी लगाये हुये पाये जाते हैं। पर्ण–करतलाकार, 3 खण्डों में विभक्त या अखण्ड 4 से 5" व्यास में मृदुरोमिल होते हैं। पुष्प–पीत वर्ण के एवं मध्य भाग रक्ताभ होता है। इससे निकलने वाली रूई पीताभ वर्ण की होती है।

प्रयोज्यअंगः—मूल, फल ।

प्राप्तिस्थानः—हिमालय की घाटियों में यह आसाम, दार्जिलिंग में—1200 मीटर की ऊँचाई तक सुलभ है। इसके अतिरिक्त यह बंगाल दक्षिण में सुलभ है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः—इसके गुणधर्म कर्पास से मिलतेजुलते हैं। जंगली कपास शीतवीर्य, रूचिकर, व्रण एवं शस्त्रक्षत को ठीक करने वाला है। स्निग्ध, वल्य के रूप में भी मूल का प्रयोग होता है।

स्तन्यवृद्धि में जंगली कपास के मूल एवं ईख के मूल को कांजी के साथ पिलाते हैं।

अपची में वनकपास के मूल चूर्ण को तण्डुलोदक से मर्दन कर पुनः इसकी पूरी में बनाकर खाने से अपची रोग दूर होता है। मूल–फिरंग एवं उपदंश में उपयोगी ।

वक्तव्यः—संहिता ग्रन्थों में भारद्वाजी, तुण्डिकेरी कार्पासी आदि नामों का उल्लेख कर्पास के लिये है। अधिकतर विद्वानों का विचार है कि वनकर्पास से निम्न दो द्रव्यों की विशेष सम्भावना है।
(अ) **वनकर्पास Thespesia** Lampas Dalz
(ब) **Hibiscus Cancellatus** Roxb

इन वनौषध द्रव्यों का वनकर्पास नाम से लोक में भी प्रचलन है। Hibiscus cancellatus को बिहार में बिसकाकान्दा एवं भेडवा कान्दा तथा बुन्देलखण्ड क्षेत्र में कामराज या बलराज कहते हैं। अतः यह भी शास्त्रीय भारद्वाजी हो सकती है।

49 खत्मी

द्रव्यनाम ....

प्रचलित........खत्मी, खतमी का बीज, रेशाखतमी ।
यूनानी ....पुष्प–गुलखेरू, तुख्म–इ–खतमी ।
लैटिन ....**Althaea Officinalis** Linn.
कुल ....कर्पासकुल.......Malvaceae

स्वरूप परिचयः—इसके बहुवर्षायु क्षुप होते हैं। काण्ड 60 से 90 सें.मी. ऊँचा एवं रोमावृत्त, पर्ण–साधारण, अण्डाकार गोल, दन्तुर, अनुपत्र रेखाकार पुष्प गुलाबी रंग के एवं पत्रकोणोद्भूत पुष्पवाहक दण्ड पर गुच्छीभूत, पुटपत्र एवं दलपंत्र संख्या में 5–5 तथा पुंकेशर अनेक एवं परस्पर संसक्त होते हैं। बीज कृष्णाभ-वर्ण के चपटे होते हैं। मूल–लुवावदार होता है।

प्रयोज्य अंगः—बीज, मूल, पुष्प, गोंद, वीर्यकाल – 1 वर्ष

प्राप्तिस्थानः— भारतवर्ष के पश्चिम हिमालय विशेषतः कश्मीर, पंजाब आदि प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। फारस में काफी मात्रा में इसकी खेती की जाती है। भारत में इसका आयात मुख्यतः फारस से होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः—गुण–स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, रस–मधुर विपाक–मधुर वीर्य–ईषदुष्ण, कर्म–वातपित्त शामक, अनुलोमन, मार्दवकर, स्नेहन, श्लेष्महर, सारक, मूत्रल, वाह्य स्थानिक प्रयोग करने पर शोथहर एवं वेदना स्थापक है।

आमयिक प्रयोगः—बीजों एवं पुष्पों का क्वाथ कफ का पाचन एवं श्वसन मार्ग में मृदुता पैदा करता है। जड़ आतों पर संशमन का कार्य करती है। यह मुख्यरूप से श्वयथुविलयन एवं कासहर है। प्रतिश्याय एवं कास में बीजों का काठा बनाकर दिया जाता है।

मूत्रदाह, आंत्रशोथ, प्रवाहिका एवं पित्त अतिसार में बीजों का क्वाथ उपयोगी माना जाता है। हकीम लोग इस औषध का विशेष रूप से प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठनः—जड़ में लवाव, पिष्ठमय पदार्थ, पेक्टीन शर्करा, स्थिरतैल एवं खत्मीन नामक तत्व पाया जाता है । यह भी शतावरी में पाये जाने वाला एस्पेरेगिन नामक तत्त्व सदृश होता है।

50 बला

द्रव्यनाम .... संस्कृत............बला, वास्यायनी खरयष्ठिका, भद्रौदनी ।
हिन्दी..........वरियारा, खरैंटी ।
लैटिन............**Sida Cordifolia** Linn.

गणः—चरक– वृंहणीय, वल्य, प्रजास्थापन, सुश्रुत वातसंशमन ।

निरुक्तिः—बला–वल संवरणे अनया इति बला या बलमस्ति अस्या" अर्थात् यह बाधने के काम में आता है या इसमें बल अधिक होता है।

वाट्यालकः—बट वेष्ठ ने अनया इति वाट्यालक" यह बांधने के काम आता है। ग्रामीण लोग इससे झाड़ू बनाते हैं। यह वाटिकाओं को भी शोभायमान करती है, इसलिये इसे वास्यालक कहते हैं। टीकाकारों ने सफेद पुष्प वाली बला को वाट्यायनी कहा है एवं पीत पुष्पवाली बला को भद्रोदनी कहा है।

खरयष्ठिकाः—इसका काण्ड खुरदरा रुक्ष होता है।

स्वरूप परिचयः—इसका 60 से.मी. से 1 मीटर तक ऊँचा गुल्मक होता है। पर्ण 1–2" लम्बी लट्वाकार, आयताकार, आधार हृद्वत्, कुण्ठिताग्र या कुछ नुकीले तूलरोमश, एवं दन्तुर होते हैं। पुष्प·वाहक दण्ड पर पत्रकोणोद्भूत अकेला या कई पुष्प लगते हैं। पुष्प श्वेत-पीताभ रंग के होते हैं। पुष्प दल संख्या 5–5 में बीज छोटे, भूरे काले रंग के होते हैं। इन बीजों को बीजवन्द कहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य जातियां भी बला के नाम से प्रयुक्त होती हैं जो निम्न हैं।

(अ) बला, भद्रौदनी **Sida Rhombifolia** Linn. गुल्मक 60 सें.मी. 120 सें. मी. ऊँचा, शाखायें तूल रोमश, पर्ण–तिर्यगा याताकार, या अभिलट्रबाकार, उर्ध्वपृष्ठ प्रायः मसृण अधःपृष्ठ मृदुरोमश, पत्र आधार सरल, अग्र की ओर दन्तुर, पुष्प पत्रकोणों से शाखाग्र पर समूह रूप में पीले या पीताभ वर्ण के होते हैं।

(ब) **खरैंटी Sida Spinosa** Linn

(स) बला **Sida acuta, Sida** retusa Linn. आदि किस्में बला के नाम से संग्रह की जाती हैं। सभी किस्में वर्षाकाल में स्वतः सड़कों एवं मैदानों में उत्पन्न होती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकालः—जुलाई, अगस्त ।
फलकालः—अक्टूबर,नवम्बर ।
प्रयोज्य अंगः—पंचांग बीज, मूल ।

प्राप्ति स्थानः—समस्त भारतवर्ष के उष्ण कटिबन्धीय तथा समशीतोष्ण प्रान्तों में गांवों के समीप पथरीली जमीन पर बगीचों में ये पौधे स्वयं जात पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः—गुण–गुरु, स्निग्ध पिच्छिल, रस–मधुर, विपाक–मधुर वीर्य–शीत। कर्म–वात–पित्त शामक, नाड़ी वल्य; स्नेहन हृद्य, रक्तपित्तशामक, शुक्रल, प्रजास्थापन, मूत्रल, ज्वरघ्न, वल्य, वंहण, ओजोवर्धक, एवं वातहर और पित्तघ्न है।

आमयिक प्रयोगः—1. रक्तपित्त में बलामूल से सिद्ध गोदुग्ध पीना चाहिये।
2. व्रणशेधन एवं रोपण हेतु वलामूल क्वाथ का प्रयोग किया जाता है।
3. वातरक्त में वलामूल साधित तैल का अभ्यंग विशेष उपयोगी है।
4. क्षय में वलामूल कल्क साधित घृत गोदुग्ध के साथ सेवन करने से विशेष लाभ होता है।
6. प्रदर में बलामूल चूर्ण मधु एवं गोदुग्ध के साथ सेवन करने से लाभ होता है।
7. सभी प्रकार के वातरोगों में वलाक्वाथ एवं वलाकल्क से यथा विधि सिद्ध किया हुआ तैल, घृत विशेष उपयोगी है।
8. गर्भिणीशूल में बलामूल के क्वाथ से साधित सिद्धघृत प्रातः सायं देने से लाभ होता है।
9. बला का प्रयोग उन्माद, अर्दित, श्लीपद आदि रोगों में भी उपयोगी है।

रासायनिक संगठनः—जड़ों में पिच्छिल द्रव्य, वसाम्ल,राल एवं पोटेशियम नाइट्रेट इफेड्रीन आदि तत्व पाये जाते हैं। बीजों में क्षारतत्व अपेक्षाकृत अधिक होता है।

मुख्ययोगः—वलातैल, वलाघघृत, चन्दनवलालाक्षादि तैल, महानारायण तैल, वलारिष्ठ, च्यवनप्राश, मन्मथरस, पुनर्नवारिष्ठ, शतपाकी एवं सहस्त्रपाकी बलातैल दक्षिण में विशेष रूप से लोक प्रचलित हैं।

वक्तव्यः—आयुर्वेद ग्रन्थों में चार प्रकार के बला का उल्लेख है। निघण्टुकारों ने कतिपय बलाओं के भेद एवं पर्यायों का समावेश किया है। संहिता ग्रन्थों में बला, अतिवला, सहदेवा, विश्वदेवा, शीतपाकी ओदनपाकी आदि नामों का उल्लेख मिलता है। चरक संहिता के मधुर स्कन्ध में भी बला, अतिवला, सहदेवा, विश्वदेवा, शीतपाकी, ओदनपाकी एक साथ उल्लेख किया है। सुश्रुत संहिता के मधुरवर्ग में बला, अतिबला और काकोल्पादिगण में सहदेवा, विश्वदेवा के भेद दिये हैं। महाबला शब्द का उल्लेख केवल निघण्टु ग्रन्थों में उपलब्ध है। सम्भवतः सहदेवा ही निघण्टुओं में वर्णित महाबला हो सकती है। अमरकोषकार ने वला एवं वाट्यालक दो शब्द दिये हैं।

51 भूमिवला

द्रव्यनाम .... संस्कृत......................भूमिवला,।
हिन्दी.......................फरीदवूटी।
लैटिन.......................**Sida Veronicaefolia** Lann.

स्वरूप परिचयः—यह जमीन पर परिसृत बहुवर्षायु क्षुपक है। काण्ड रोमश, पर्ण–अण्डाकार, हृदयाकार, पत्ताग्र नुकीला, पत्रतट-दन्तुर होते हैं। पुष्प $\frac{1}{3}$ " व्यास में पीताभ वर्ण के होते हैं। पुष्पकाल–अगस्त, सितम्बर, प्रयोज्य अंग—मूल, पंचांग।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थानः—समस्त भारतवर्ष के उष्ण कटिबन्धीय तथा समशीतोष्ण प्रान्तों के गांवों के समीप, वर्षाकाल में सर्वत्र सुलभ हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— मधुर, स्निग्ध, पिच्छिल, वल्य, रसायन, पुष्टिदायक, ज्वरघ्न है।

वक्तव्यः—यादव जी त्रिविक्रम ने फरीदवूटी को नागवला माना है। नागवला के विषय में कतिपय मतभेद हैं। अधिकतर विद्वान गुलशकरी Grewia Hirsuta को शास्त्रीय नागबला स्वीकार करते हैं। नागबला के प्रसंग में इस विषयक जानकारी दी गई है। महर्षि चरक ने नागबला रसायन का विशद रूप से वर्णन किया है।

52 अतिबला

द्रव्यनाम .... संस्कृत..................अतिवला, कंगतिका, पीतपुष्पा, ।
हिन्दी..................कंघी, ककही, ।
लैटिन..................**Abutilon indicum** (L) Sw

गुण[1]—चरक-वृहणीय, वल्य महाकषाय तथा मधुरस्कन्ध में अतिबला का पाठ दिया है। सुश्रुत ने वातसंशमन एवं मधुर वर्ग में अतिबला का पाठ दिया है।

स्वरूप परिचयः—इसके गुल्मक 1.5 मीटर से 1.8 मीटर तक ऊँचे होते हैं। सम्पूर्ण पौधा सूक्ष्म, शुभ्र रोमान्वित होता है। पर्ण-मृसण हृदयाकार, शुभ्ररोमान्वित, एवं सवृन्त होता है। पुष्प-पीतवर्ण के 5-5 पंखुड़ियों वाले, पत्रकोणोद्भव, एकल एवं पुष्पदण्ड पर खिलते हैं। फल चक्राकृति के कंघी के सदृश खड़ी-खड़ी कमरखियों वाली, मण्डलाकार होती हैं। फल के पकने पर प्रत्येक कमरखी में काले बीज निकलते हैं। अतिबला के बीजों में भी लुबाव होता है। इसकी अन्य जातियां पाई जाती हैं।

पुष्पकालः—अगस्त, सितम्बर।
फलकालः—शीतकाल।
प्रयोज्य अंगः—मूल, बीज, पंचांग, बीजचूर्ण 1 से 3 ग्राम ।

प्राप्ति स्थानः—समस्त भारतवर्ष के उष्ण एवं समशीतोष्ण प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ है। वर्षाकाल के बाद प्रायः इसकी पौध निकल आती है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः—रस-कटु, तिक्त, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, वात, पित्तघ्न, मूलछाल-मूत्र-जनन, बीज-स्नेहन, वल्य, स्त्रंसन, कासहर एवं बला के गुणकर्म सदृश है।

आमयिक प्रयोगः—1. रसायन प्रयोग हेतु अतिबला मूलचूर्ण मधु एवं घृत्त के साथ सेवन करने से लाभ होता है।
2. मूत्रकृच्छ्र में अतिबला का क्वाथ दिन में 3 वार देने से लाभ होता है
3. रक्त प्रदर में अतिबला मूल स्वरस मिसरी एवं मधु के साथ देने से लाभ होता है।
4. अश्मरी भेदन हेतु पाषाण-भेदादि क्वाथ में अति बला का उपयोग किया है।
5. वस्तिशोथ में पत्र एवं मूल का क्वाथ उपयोगी है।
6. बीज नपुंसकत्व में उपयोगी है।

रासयनिक संगठनः—पत्र में काफी मात्रा में लुआव, कुछ टैनीन एवं एस्पेरेगीन नामक तत्त्व पाये जाते हैं। जड़ में भी एस्पेरेगीन पाई जाती है।

मुख्ययोगः—महाविषगर्भ तैल, वलातैल, ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शाल्मल्यादिवर्ग : (BOMBACACEAE)

वर्ग लक्षणः—इस वर्ग की वनस्पतियों में बड़े वृक्ष होते हैं । काण्ड काफी मोटे होते हैं। पर्ण–एकान्तर, सादे या पत्रांगुल, उपपर्ण–अस्थायी पुष्प वाह्यकोष प्यालाकृति, बन्द, 3 से 5 दलयुक्त, या नलिकाकार के रूप में संलग्न, तथा पंखड़ियों के सामने लगे होते हैं। गर्भाशय ऊर्ध्व, 2 से 5 खाने वाला होता है । स्त्रीकेशर नलिका सादी या विभाजित होती है । इस वर्ग के वृक्षों से निकलता है। कई वनस्पति या तिक्त एवं कषाय होती हैं । गोंद रसायन एवं–वाजीकर के रूप में प्रयोग होता है ।

53 शाल्मली

द्रव्यनाम ....

संस्कृत...............शाल्मलि, मोचा, तूलिनी, स्थिरायु पिच्छिला, रक्तपुष्प,
हिन्दी ....सेमर, सेमल (सेमरमूशली–मूल)
लैटिन ....**Salamia Malabaria** schott. syn. Bombax mala-ricum Dc.

गणः—[1]पुरीषविरजनीय, शोणितस्थापन, वेदनास्थापन, एवं प्रिय-ङ्गवादि गण में चरक सुश्रत ने उल्लेख किया है ।

निरुक्तिः—**शाल्मली**—वनों में कई वर्षों तक यह जीवित रहता है इसलिये इसे शाल्मली कहते हैं ।

पिच्छिलाः—"पिच्छा अस्तिअस्या" इसमें चिकिनापन होता है एवं गोद(मोचरस) को पिच्छिला भी कहते हैं ।

मोचा—"मुञ्चतिरस इति मोचा" इस वृक्ष में से रस अधिक स्त्रावित होता है जिसे मोचरस कहते हैं ।

शाल्मलि—"शालमति शले संचलने" यह वृक्ष बड़ा एवं शोभायमान होने से वनों को सुशोभित करता है ।

रोचन—"रोचते अनेन" पुष्प खिलने पर अतिशय सुन्दर होते हैं इसलिये इसे रोचन कहते हैं ।

कुटशाल्मलि—इस के काण्ड, प्रकाण्ड पर कांटे होने से एवं कुटिल कार्यार्थ इसका प्रयोग होने से कुटशाल्मलि कहते हैं ।

मोचरस—वह रसायन गुणों वाला होता है इसलिये मोचरस कहते हैं ।

स्वरूप परिचय : — इसके विशाल पर्णपाति वृक्ष होते हैं । ये वृक्ष प्रायः दीर्घजीवी होते हैं। काण्ड स्कन्ध सीधा, मोटा एवं जड़ के पास काफी फूला होता है । शाखाओं पर सर्वत्र शक्वाकार कांटे पाये जाते हैं । पूर्ण–करतलाकार, खण्डित, सवृन्त, प्रखण्ड या पत्रक प्रत्येक पर्ण में संख्या में 5 से 7 होते हैं । पत्रक चौड़े–भालाकार, अभिलद्वाकार, या प्रतिभालाकार, लम्बाग्र एवं सरलतट वाले होते हैं । पुष्प मोटे दलों में रक्त वर्ण के होते हैं । वाह्यकोष कटोरीनुमा और गूदेदार होता है । पुष्पकलिकाओं का शाक खाया जाता है । फल लम्बगोल, या अण्डाकार, पञ्चकोणीय होते हैं । फलों के फटने से अन्दर चिकने काले बीज निकलते हैं । इन बीजों पर सफेद रेशमी रूई लगी रहती है । रूई तकिये बनाने के काम आती है । परन्तु आधुनिक खोजों से पता लगाया जा चुका है कि सेमल की रूई से निर्मित तकिये दमारोग का सहायक कारण है ।

मोचरसः—सेमल के पुराने वृक्षों की छाल पर एक प्रकार के कृमि लगने से छोटे–छोटे कोटर बन जाते हैं जिसमें जेली की भांति गाठास्त्राव जमा होता रहता है । यही स्त्राव निकलकर जम जाता है जिसे मोचरस कहते हैं ।

पुष्पकाल ....मार्च, अप्रैल, फलकाल –जुलाई, अगस्त ।
प्रयोज्यअंग ......निर्यास (मोचरस) छोटेपादपों 1–2 वर्ष के मूल (सेमल मूशली) ।
मात्रा – मोचरस – 2 से 3 ग्राम, सेमल मूशली 6 ग्राम से 10 ग्राम ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थानः—भारतवर्ष के समस्त उष्णतर जंगलों में इसके स्वयं जात वृक्ष पाये जाते हैं। गांवों के आसपास सड़कों के किनारे एवं बगीचों में इसके वृक्ष लगाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान[2] मोचरस :— गुण–लघु, स्निग्ध, पिच्छिल, रस–मधुर, कषाय, कटु, वीर्य–शीत, विपाक–मधुर, कर्म–स्तम्भन व्रणरोपण, रक्तस्तम्भन, शुक्रस्तम्भन, 1 सेमलमूशली–वल्य, वृष्य वृंहण, कच्चे फल–कासहर, मूत्रल पुष्प–रक्तस्तम्भन, यूनानी मतानुसार पहले दर्जे में गरम और तर तथा मोचरस दूसरे दर्जे में शीत एवं रुक्ष है। यह प्रवाहिका अतिसार, आम, कफ पित्त, रक्तस्त्राव एवं दाह को नष्ट करने वाला है।

आमयिक प्रयोगः—

1. मोचरस बालकों के अतिसार में 20 से 30 ग्रेन की मात्रा में मिसरी के साथ देने से लाभ होता है।
2. व्रण में शाल्मली वृक्ष की छाल का लेप करने से व्रणों का रोपण शीघ्र होता है।
3. वीर्य वृद्धि के लिये सेमलमूशली का उपयोग हितकर है।
4. रसायन बाजीकरण के रूप में—शालमली मूल स्वरस को तिल के साथ प्रयोग किया जाता है।
5. इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग प्रवाहिका, रक्तपित्त, प्रदर, में छाल का प्रयोग किया जाता है।
6. मोचरस का प्रवाहिका, रक्तातिसार रक्तवमन एवं क्षय में प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठनः—मोचरस में कषायाम्ल, गैलिक एसिड, एवं बीजों में स्थिर तैल पाया जाता है।

मुख्ययोगः—पुष्पानुकचूर्ण, शाल्मलीघृत, पत्रङ्गासव, बोलवद्धरस, कामधेनुरस, सुन्दरीकल्प,

मोचरसः—चन्दनासव, अभयारिष्ठ, प्रदरारिलौह, कुटजावलेह, चन्दनादिचूर्ण,

वक्तव्यः—सेमल की एक श्वेत पुष्प की जाति भी कहीं–कहीं पाई जाती है। इसका भी वृक्ष बड़ा होता है। इस वृक्ष में काटे कम होते हैं। पुष्प श्वेतवर्ण की अपेक्षा रक्तवर्ण के होते हैं, सम्भवतः यही कूटशाल्मली है।

1. चरके पुरीषविरजनीये महाकषाये शाल्मलिः शोणितास्थापने,
वेदनास्थापने, गणे कषायस्कन्ध च मोचरसः पठयते।
सुश्रुते प्रियङ्गवादिगणेमोचरसः पठयते।
2. शाल्मली पिच्छिलावृष्या वल्यामधुरसा तथा।
कषायस्दद्रसो ग्राही, पुष्पंतद्वस्तथाफलमू ॥
ध. नि." ॥
शाल्मलिः पिच्छिलो वृष्यो वल्योमधुरः शीतलः।
कषायश्चलघुस्मिग्धः शुक्रश्लेशमविवर्धनः ॥

मोचरसस्तु कषायः कफवातहरो रसायनो योगान ॥
रा० नि० ॥

54 गोरख

द्रव्यमान .... संस्कृत .... गोरख, पञ्चपर्णी, शीतफल।
हिन्दी .... गोरख इमली, गोरखाचिंचा।
लैटिन .... **Adansonia digitata** Linn.

स्वरूप परिचयः—इसके विशाल पर्णपाती वृक्ष होते हैं। इसके वृक्ष नीचे से मोटा एवं ऊपर को शंक्वाकार होता है, संसार के बड़े से बड़े वृक्षों में इसकी गणना की जाती है। इसकी शाखायें चारों ओर फैली हुई होती हैं। पर्ण 5 से 7 सेमल सदृश होते हैं। फल–लौकी सदृश "9 से 12" लम्बे 4 इंच व्यास में और कठोर कवच वाले होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गूदा खट्टा एवं अनेक बीजों वाला होता है । फल की मात्रा अम्ल एवं कषाय रस वाली होती है । गोरख नाम इस वृक्ष का इसलिये पड़ा है कि सम्भवतः यह विशाल छायादार वृक्ष होने से गायें आदि पशु इसके नीचे बैठते हैं ।

पुष्पकाल .... जनवरी, फरवरी।
फलकाल...........मार्च, अप्रैल ।
प्रयोज्यअंग .... फलमज्जा, त्वक् (छाल) फलमज्जा की मात्रा ।

प्राप्ति स्थानः—यह अफ्रीका का आदिवासी वृक्ष है । भारत में ये वृक्ष उत्तर प्रदेश, बिहार, बम्बई, एवं मद्रास में लगाये हुये पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : 1 रस–अम्ल, मधुर, वीर्य–शीत, विपाक–अम्ल, मधुर, पित्तशामक, फलमज्जा–रोचक, हृद्य, शीतल, पर्ण–संग्राही, आतिसारनाशक, छाल–दीपन, ग्राही, विषमज्वर नाशक, नवीनपर्ण–वाह्य प्रयोग के रूप से शोथघ्न एवं दाहनाशक है ।

आमयिक प्रयोग :—1. मूल एवं काण्ड छाल के क्वाथ का पैत्रिक रोगों में उपलेपक रूप में दिया जाता है ।
2. गोंद (निर्यास) का प्रयोग मुखपाक में किया जाता है ।
3. फलमज्जा का शर्बत गर्मियों के दिन में पीने से लू का प्रभाव कम होता है ।
4. फल का उपयोग प्रवाहिका, रक्तातिसार, तृषा, दाह आदि रोगों को शान्त करने में किया जाता है ।
5. वृक्ष की छाल का क्वाथ ज्वर में नाड़ी की गति कम होने के लिये देते हैं । विषम ज्वर में कुनैन की अपेक्षा यह अधिक लाभ करता है ।

वक्तव्यः—चरक आदि प्राचीन संहिता ग्रन्थों में गोरख इमली का उल्लेख नहीं है । सुश्रुतसंहिता के टीकाकार डल्हण ने शीतफल रावणम्लिका इति प्रसिद्धम्" करके एक स्थल पर उल्लेख किया है । अतः सम्भवतः— गोरख इमली का ही पर्याय शीतफल हो सकता है । राजनिघण्टुकार ने गोरखी नाम से उल्लेख किया है । यह उपयोगी द्रव्य है ।

मुचुकुन्दादिवर्ग (STERCULIACEAE)

वर्गलक्षणः—इस वर्ग में वृक्ष, वृक्षक एवं शाकीय पादप होते हैं । काण्डत्वक् से गोंद-सा चिकना पदार्थ निकलता है। पर्ण–एकान्तर, उपःपर्णयुक्त, सादे, छोटे वृक्ष वाले होते हैं । पुष्प–पत्रकोणोभूत, विभाजित, छत्राकार, नियमित, बहुधा स्त्रीपूंसयोगी, कदाचित् एकजातीय भी होते है, पुष्पवाहयकोष एवं पुष्पाभ्यन्तर कोष के 5–5 दल पृथक्–पृथक होते हैं । पुंकेशर नियमित 5–10, 15 या अधिक होते हैं । परागकोश दो खाने वाला, स्त्रीकेशर एक गर्भाशय पांच खानें वाला होता हे । फल–शुष्क, रसाल, विविध आकार के बहुधा शिम्बी फलसदृश 1 से 5 खाने वाले होते हैं । इस वर्ग की वनस्पतियों में ग्लुकोसाइड, टैनीन, केफीन, थियोब्रामीन आदि तत्व पाये जाते हैं ।

55 मुचुकुन्द

द्रव्यनाम .... संस्कृत ....मुचुकुन्द, क्षत्रवृक्ष
हिन्दी ....मुचुकुन्द
लैटिन ....**Pterosperinum suberifolium** Lnn.
सुश्रुत चि० अ० 18, पुष्पवर्ग (भा० प्र०)

निरुक्तिः— **मुचुकुन्दः**—"मुञ्चति सुगन्ध कुन्द इव" पुष्पों की सुगन्धि कुन्द सदृश होती है ।.
क्षत्रवृक्ष—इस वृक्ष के पर्ण छालेंसदृश चौड़े होते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप परिचयः—वृक्ष, मध्यमाकार, सघन एवं मृदु शाखाओं वाला होता है । पर्ण 15 से. मी., 39.5 से..मी., लम्बे, 12.5 से. मी., 25 से. मी., चौड़े, गोलाकार, आयताकार, खण्डित, चर्मवत्, चमकीले एवं पत्रतट सरल, चमकीले अधरपृष्ठ रक्ताभश्वेत । पुष्प–बड़े सुगन्धित, द्विलिंगी, पर्णकोणीय, एकलक्रम में या छोटे पुष्पव्यूहों में निकलते हैं, जिसमें 2 या 3 पुष्प पीताभ वर्ण के होते हैं । फल लम्बगोल, पंचकोष्ठीय पंचकोषीय, एवं बाहर से गाढ़े भूरे रंग के होते हैं। बीज–चपटे, भूरे रंग के चपटे पिच्छाकार होते हैं । पर्ण का उपयोग पत्तल एवं डोने बनाने के लिये किया जाता है ।

पुष्पकाल ....मार्च, अप्रैल, फलकाल अगस्त, सितम्बर।
प्रयोज्य अंगः —पुष्प, (विशेषतः वाह्यकोष) ।
मात्रापुष्प .... 4 रत्ती से 9-।। माशा ।

प्राप्तिस्थानः—हिमालय की तराई एवं बाहरी पर्वतश्रेणियों, शिवालिक वनखण्ड, उत्तरप्रदेश बंगाल, उड़ीसा आदि प्रदेशों के वनों में ये वृक्ष स्वयंजात पाये जाते हैं । भारत के सभी नगरों के उद्यानों में ये वृक्ष लगाये हुये मिलते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : 1 गुण–रुक्ष, रस–कषाय, तिक्त, किंचित कटु तिक्त, विपाक–कटु वीर्य–उष्ण, त्रिदोषशामक, वेदनास्थापन रक्तस्तम्भन, कफघ्न, विषघ्न, त्वचा के विकारों में उपयोगी है । यूनानी मतानुसार पुष्प गरम एवं खुश्क होता है ।

आमयिकप्रयोगः2 शिरःशूल में मुचुकुन्द के पुष्प कांजी में पीसकर सिर पर लगाने से शिरोवेदना नष्ट होती है । वातरक्त, विसर्प, कास, स्वरभंग, एवं गर्भाशय रक्तस्त्राव और गर्भाशय शोथ में यह उपयोगी माना गया है ।

रासायनिक संगठनः—पुष्पों में सुगन्धित उड़नशील तैल पाया जाता है ।
मुख्य–योग – हिमांशुतैल ।

1. मुचुकुन्द कटुस्तिक्तः कफ कास विनाशनश्च कण्ठदोषहरः ।
   त्वग्दोष शोफशमनो, वृणपामाविनाशनश्चैव ।। रा० नि०
   मुचुकुन्दः शिरःपीडा पित्तास्त्रविषनाशनः ।। भाप्र ।।
2. शिरपीडायाम्–शिरो र्ति नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ।। "चचुदत्तः"

56 पिशाचकार्पास (उलट कम्बल)

द्रव्यनाम........... संस्कृत ....पिशाच कार्पास, ।
हिन्दी ....उलट कम्बल ।
लैटिन ....**Abroma augusta** Linn. f.

स्वरूप परिचयः—उलट कम्बल के गुल्म 5 मीटर से 6 मीटर ऊँचे, होते हैं । काण्ड की आभ्यन्तरत्वचा सौत्रिक रचना प्रधान, मजबूत रेशेदार, एवं शाखायें रोमावृत होती हैं, पर्ण गोलाकार, हृदयाकार, खण्डयुक्त, सूक्ष्म दन्तुरित, सघनरोमिल, एवं वृत्तयुक्त होते हैं । पुष्प–सुन्दर, अवनत, बैंगनीवर्ण के वाहृय दलपत्र हरिताभ, 1 इंच लम्बे दलपत्र बैंगनी रंग के लम्बे होते हैं । फल–पांच कोणों वाला सम्पुट, रोमश, कोष्ठीय, कार्पाससूत्रावृत, बीज संख्या में अनेक काले रंग के होते हैं ।

पुष्पकाल .... अगस्त, सितम्बर।
फलकाल .... सितम्बर, अक्टूबर,।
प्रयोज्यअंग .... मूल, काण्डत्वक्, मूल 4 से 9 माशा ।

मिलावट व्यापारी लोग भिण्डी एवं वनभिण्डी के मूल को उलट कम्बल ने नाम से विक्रय करते हैं, परीक्षा कर शास्त्रीय द्रव्य उपयोग में लाना चाहिये ।

प्राप्तिस्थान:—बङ्गाल में इसकी खेती विशेषतः की जाती है । खासिया पहाड़ियों एवं सिक्किम में 4 हजार फीट की ऊँचाई पर ये गुल्मक स्वयंजात पाये जाते हैं । उत्तर प्रदेश के समशीतोष्ण भागों में इसकी खेती की जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान:— गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु,वीर्य–उष्ण, कर्म–गर्भाशयोत्तेजक, आर्तवजनन, वेदनास्थापन, गर्भाशयवल्य, वेदनास्थापन ।

आयमिक प्रयोग : — ताजे मूलत्वक् स्वरस से आर्तव साफ तथा नियमित होता है, एवं आर्तव पीड़ाशामक होने से इसका प्रयोग रजोरोध एवं कष्टार्त्तव आदि विकृतियों में किया जाता है ।

प्राचीन ग्रन्थों में इस वनौषध का उल्लेख नहीं मिलता है । होमियोपैथी में विशेष रूप से इसका प्रयोग किया जाता है ।

रासायनिक संगठन मूल में काफी मात्रा में लुवावीतत्व, कार्बोहाइड्रेट, रेजिन, मैग्नीशियम आदि तत्व पाये जाते हैं।

57 आवर्तनी

द्रव्यनाम..................संस्कृत ....आवर्त्तनी, आवर्त्तकी, आवर्त्तफला
हिन्दी..........................मरोड़फली, मरडासिंगी,
लैटिन.........................**Helicteres isora linn.**

निरूक्ति:—आवर्तफला फल गुच्छों में फ़ली रस्सीसद्यश आवर्तित (घुमावदार) एवं बेलनाकार होती है इसलिये इसे आवर्तनी, आवृतफला कहते हैं ।

स्वरूप परिचय:—इसके गुल्माकृति के सघन एवं छोटे वृक्ष होते हैं । शाखायें झुकी हुई रोमश, खुरदरी, पर्ण–घने, अभिलट्वाकार, या गोलाकार, रोमश, नुकीले होते हैं । पुष्प–लालरंग के एवं समूहबद्ध के रूप में निकलते हैं । फलियाँ मुड़ी हुई, गुच्छों में आवर्तित, धूसरवर्ण के एवं अग्र भाग नुकीले होते हैं ।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त, फलकाल ....अक्टूबर, नवम्बर।

प्रयोज्य अंग:—फल (मरोड़फली) मूल, एवं त्वक् । मात्राफल चूर्ण:—1 से 3 ग्राम ।।

प्राप्ति स्थान:—यह भारत के सम शीतोष्ण भागों के वन्य क्षेत्र उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, बिहार, मध्यप्रदेश आदि प्रान्तों में सर्वत्र सुलभ हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान:[1] गुण:—लघु, स्निग्ध, रस–कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, त्रिदोषघ्न, कृमिघ्न, श्वासकासघ्न, स्तम्भन, ज्वरघ्न, शूलप्रशमन, मूत्रसंग्रहणीय । यूनानी मतानुसार–मरोड़फली पहले दर्जे में गरम और खुश्क श्वयथु विलयन एवं प्रवाहिकाहर है ।

आमयिक प्रयोग:— 1. बालकों के अतिसार और प्रवाहिका में मरोड़ फली घिसकर सेवन कराने से पेट के मरोड़ों में लाभ होता है ।

2. मरोड़ फली के मूल की छाल का क्वाथ मधुमेह में उपयोगी है ।

3. प्रवाहिका, अतिसार रक्तप्रवाहिका, एवं उदरशूल में मरोड़फली उपयोगी है । बच्चों की प्रवाहिका, अतिसार में शुण्टी के साथ विशेष उपयोगी है ।

रासायनिक संगठन:—फलियों में थोड़ी मात्रा में स्नेहद्रव्य तथा कम मात्रा में टैनिन आदि तत्व पाये जाते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

धन्वनादिवर्ग TILIACEAE

वर्गलक्षण:— इस वर्ग में वृक्ष, वृक्षक एवं छोटे पौधे होते हैं । इस वर्ग के वृक्षों की छाल अत्यन्त द्रुष्ठ होती है। छाल से रेशे निकलते हैं । पर्ण–एकान्तर, या अभिमुख, सादे, उपपर्णयुक्त होते हैं । पुष्प–नियमित, पुष्पवाह्यदलपुंज एवं दलपुज्ज संख्या में 4 या 5 परस्पर एवं साथ-साथ लगे रहते हैं । पुंकेसर अनेक कर्णिका पर से निकले हुये या गुच्छाकार होते हैं । परागकोश दो थैलीवाला, स्त्रीकेशर एक गर्भाशय ठीक पुष्पासन पर स्थित, फल शुष्क या रसाल, विकासी या अविकासी फलों में 2 से 10 खण्ड, प्रत्येक खण्ड में एक या अधिक बीज होते हैं ।

58 नागबला (गुलशकरी)

द्रव्यनाम............ संस्कृत ....नागबला, गाङ्गेरूकी गुड़–शर्करा।
हिन्दी ....गुलशकरी, गगेरन।
लैटिन ....Grewia populifolia vahl.
कुल ....धन्वनकुल Tiliaceae.

वर्ग:—चरक सूत्र अध्याय 29, सुश्रुत अध्याय 46 ।

निरूक्ति:—नागबला—नागानां हस्तिनां हस्तिनां बला नागबला" इसके सेवन से हाथी जेसा बल मिलता है ।

गांगेरूकी : —ईर्‌गतौ क्षेपणे" यह बलगम निकालती है अतः इसे गाङ्गेरूकी कहते हैं ।

टिकाकारों के मत : — गाङ्गेरूकी नागबला डलहणः नागबला गाङ्गेरूकी शाङ्गाधर्रः नागबला गोरक्षतण्डुला" चक्रदत्त:' गाङ्गेरूकी नागबला फलमू "चक्रपाणी" नागबला–गङ्गेरण इत्तिख्याता" भानु श्री दीक्षित" आदि टीकायें नागबला के सन्दर्भ में संहिताग्रन्थों में वर्णित है । राजघिण्टुकार ने चतुष्फला नाम दिया है ।

स्वरूप परिचय:—इसके गुल्म 45 से. मी. , 90 से. मी. तक ऊँचे होते है । शाखायें प्रायः मूल के पास से निकली होती हैं तथा रोमश होती है । पर्ण अनियमित आकार में, रेखाकार, लट्वाकार प्रासवत्, आयताकार, लम्बाग्र, एवं तीक्ष्ण दन्तुर वाले होते हैं । पुष्प–पीत वर्ण के, फल प्रायः चार खण्ड वाले एवं मृदु रोमों से ढके होते हैं । पके फल मधुर एवं स्वादिष्ट होते हैं । बीज संख्या में 5–6 होते हैं ।

पुष्पकाल........... .अगस्त, सितम्बर ....फलकाल ......शीतकाल,
प्रयोज्यअंग ....मूल, छाल, मूलचूर्ण .....1 से 3 माशा ।

प्राप्ति स्थान:—यह हिमालय की तराई वाले भागों, बुन्देलखण्ड, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात एवं दक्षिण भारत में स्वयंजात पाये जाते हैं । इस कुल की दूसरी भी जातियाँ पाई जाती हैं जिसमें **Grewia hirsuta** मुख्य रूप गगेरन के नाम से प्रयोग होता है । कुछ वैद्य इस जाति को भी शास्त्रीय गगेरन मानते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान:— गुण–गुरू, स्निग्ध, पिच्छिल, रस–मधुर, कषाय, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–वातपितशामक, नाड़ीवल्य, मेध्य, स्नेहन, अम्लतानाशक, अनुलोमन, हृद्य, रक्तपित्तशामक, कफः निस्सारक, दाहप्रशमनः, गर्भस्थापन, वृष्य, रसायन, वाह्यप्रयोग में वेदनास्थापन एवं व्रणरोपक है ।

आमयिकप्रयोग[2] 1. रसायन के लिये नागबला मूल चूर्ण घृत एवं मधु के साथ दुग्ध का अनुपान देने से लाभ होता है ।

2. क्षय में नगबला मूलचूर्ण 1 1/2 तोल की मात्रा में दूध के साथ देने से लाभ होता है ।
3. हृदयरोग में नागबला चूर्ण उपयोगी है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

4. सद्योव्रण में नागबलामूल स्वरस का लेप उपयोगी है । महर्षि चरक ने नागवला रसायन का विशेष रूप से उल्लेख किया है ।

मुख्ययोग:—नागबला रसायन नागबला चूर्ण ।

वक्तव्य:—नागबला टीकाकारों एवं निघण्टुकारों के अनेकार्थ बोधक पर्यायों एवं टीकाओं के कारण संदिग्ध है । कुछ विद्वान भूमिबला (सिडा बेरोनिसिफोलिया) फरीदबूटी को मानते हैं । फरीदबूटी भूमि पर टेढी-मेढी नागवत् जमीन पर परिसृत होती है, इसी कारण कुछ विद्वान इसे नागबला मानते हैं । महर्षि चरक ने चिकित्सा स्थान अध्याय 1 रसायनपाद में नागबला जाङ्गलदेश में पैदा होने वाला धन्वनसदृश वृक्षक को नागबला का संकेत किया है । तथा चक्रपाणी ने गाङ्गेरूक नागबलाफलम्" यह अर्थ किया है । एवं माघ, फाल्गुन में नागबलामूल को संग्रह करने का निर्देश किया है । सुश्रुत ने भी तद्वत् गांङ्गेरूकं विद्यात्" सू. सू. आ. 46" अर्थात् धन्वन फलसदृश ही नागबला के फल होते हैं, जिसे गङेगरन कहते हैं । भानूजी दीक्षित ने भी नागबला गङ्गेरन इति ख्याता" यह टीका की हैं । अतः मेरे विचार से भी भूमिबला (फरीदबूटी) से भिन्न नागबला है जिसे गुलशकरी, गङेगरन (ग्रिविया पोपोलिफोलिया या ग्रिविया हिरसुयटा) कहते हैं ।

59 धन्वन (धामन)

द्रव्यनाम............ संस्कृत ....धन्वन, धनुर्वृक्ष।
हिन्दी ....धामन, धामण, धामिन,।
लैटिन ....**Grewia tilaefolia** vhal.

वर्ग:—चरक आसवयोनिफलेषु एवं अम्लस्कन्ध में सुश्रुत ने पिच्छावस्ति में ।

निरुक्ति:—धन्वङ्ग – धनो अङ्गमिव अङ्गयस्य स " इसकी शाखायें धनुसदृश मुड़ने वाली होती हैं । एवं रेशों से रस्सी बनाई जाती है ।

धनुवृक्ष:—धनुष बनाने के काम आता है ।

स्वरूप परिचय:—इसके मध्यम आकार के वृक्ष समशीतोष्ण प्रदेशों में स्वयंजात पाये जाते हैं । पर्ण–एकान्तर, रूक्ष, आयताकार, रोमश, 6 से0 मी0 से 15 से0 मी0 तक लम्बे $3\frac{1}{2}$ से. मी. चौड़े होते हैं । पुष्प पीले रंग के फल पकने पर कृष्ण वर्ण के एवं मांसल तथा स्वाद में मधुर होते हैं । इसकी दूसरी जाति भी शिवालिक वनखण्ड में पाई जाती है जिसे **Grewia elastica** कहते हैं ।

पुष्पकाल .... अप्रैल, जून।
फलकाल:— अगस्त, नवम्बर।
प्रयोज्य अंग ....मूल, फल,।

प्राप्ति स्थान :— यह भारत के समशीतोष्ण प्रान्तों में विशेषकर उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, बिहार आदि प्रान्तों के मैदानी भागों में सर्वत्र सुलभ है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान[1]:— रस–मधुर, कषाय, वीर्य, उष्ण, विपाक–मधुर कर्म–कफ वातघ्न, वृष्य, वल्य, शुक्रवृद्धिकर व्रणरोपक, वेदनाहर, दाहशामक, फल–कषाय, स्वादु एवं कफवातजित है । घावों पर मूल का लेप व्रणरोपण हेतु किया जाता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य:— सुश्रुत ने निरूह पिच्छा वस्ति के द्रव्यों के घटकों में धन्वन (धामिण) की योजना की है। चरक ने फलासव में धन्वन का पाठ दिया है । इसी प्रकार अम्ल स्कन्ध एवं वमनोपग द्रव्यों में इसकी गणना की है ।

60 परुषक (फालसा)

द्रव्यनाम .... संस्कृत ....परुषक, मृदुफला।
हिन्दी .... फालसा।
लैटिन .... Grewia asiatica Linn.

निरूक्ति:—परुषक:—पृ–पालन पूरणयोः" पूरयति वा फलपाके माधुर्यम् । इसके फल पित्तदाह आदि से रक्षा करते हैं । या फल पकने पर मधुर होते हैं । या यह पौष्टिक होने से शरीर को पुष्ट बनाता है ।

स्वरूप परिचय:—फालसा के वृक्ष भी धामिन सदृश होते हैं जो उद्यानों में लगाये जाते हैं । वृक्ष मध्यम आकार का वृक्षक सदृश, पर्ण–त्रिपत्रक, गोल, खर, दन्तुरत, पर्ण–आधार से हृदयाकार, पुष्प गुच्छों में पीतवर्ण के छोटे–छोटे फल–मटर सदृश, मांसल, बैंगनी, एवं स्वाद में मधुराम्ल होते हैं ।

पुष्पकाल .... अप्रैल, जून,
फलकल........... जुलाई, अगस्त ।
प्रयोज्यअंग .... फल, मूलछाल, ।

प्राप्ति स्थान:—भारत के मैदानी भागों में प्रायः उद्यानों एवं शहरों के समीप ये वृक्ष लगाये हुये पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान:[1] रस–मधुर, अम्ल, कषाय, वीर्य–शीत, विपाक–मधुर, कर्म–वात पित्तघ्न, रोचक, दीपन, सर, दाहप्रशमन, रक्तपित्तशामक, फलों का शर्बत बनाया जाता है ।

आमयिक प्रयोग:— 1. मदात्यय जन्य तृषा में फालसा का रस पीना चाहिये ।
2. मूढगर्भ में नाभि, वस्ति एवं योनि पर फालसा मूल का लेप करना चाहिये ।
3. अरोचक, दाह, छर्दि, विबंध, रक्तपित्त, वातरक्त, पूयमेह, इक्षुमेह, एवं रजोरोध में यह उपयोगी है ।

रासायनिक संगठन :— फल में अम्ल शर्करा, एवं छाल में पिच्छिल तत्व पाया जाता है ।

61 चञ्चु (चेंच)

द्रव्यनाम .... संस्कृत ....चञ्चु, चिञ्चा, दीर्घपत्रा.
हिन्दी .... चेंच,
लैटिन .... Corchorus aestuans Linn.

निरुक्ति:—चञ्चु— चञ्चति गच्छति शैत्यादिगुणान्, पञ्चुगत्यर्थे" शीतलता आदि गुणों वाली होने से इसे चञ्चु कहते हैं ।

स्वरूप परिचय:—यह वर्षाकाल में उत्पन्न होने वाला एक वर्षायु शाकीय पादप है, काण्ड 30 से. मी., 90 से. मी., ऊँचा होता है । पर्ण एकान्तर, दन्तुर, प्रासवत् लम्बाग्र होते हैं । औषध उपयोग में इसकी तीन जातियाँ मुख्य हैं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जिसे चञ्चु, वृहचञ्चु, क्षुद्रचञ्चु कहते हैं । वृ. चञ्चु को **Corchorus Olitorus** एवं क्षुद्रचञ्चु के **Corchorus Capsularis** कहते हैं । इन जातियों के पुष्प एवं फल गुच्छों में लगते हैं । कच्चे फल चिकने लुबावदार होते हैं ।

पुष्पकाल............ जुलाई, अगस्त।
फलकाल ....अगस्त, सितम्बर।
प्रयोज्य अंग............बीज, पत्र।

प्राप्ति स्थान :— भारत के उष्ण भागों में वर्षाकाल के बाद सड़कों एवं गांवों के आसपास सर्वत्र उपलब्ध है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः[1]—रस–मधुर, कटु, वीर्य–शीत, विपाक–कटु, पित्तनाशक, ग्राही, मूत्रल, कृमिघ्न, वल्य एवं व्रण में हितकर है ।

आमयिक प्रयोग:—नवीन पत्रों का उपयोग आदिवासी शाक के लिये करते हैं । राजनिघण्टुकार के अनुसार तीनों किस्मों का उपयोग अतिसार, विवन्ध, अर्श ग्रहणी, गुल्म, शूल आदि रोगों में उपयोगी है ।

वक्तव्य:—चरक संहिता के अतिसार चिकित्सा में चंचु का उल्लेख है । सुश्रुतसंहिता को टीकाकार डल्हण ने चञ्चु नाडिकाकारः पत्रः चंचु इति लोकेख्याता" यह अर्थ किया है । निघण्टुकारों ने शाकवर्ग में चंचु, कालशाक, चंचुक आदि शाकों का उल्लेख किया है ।

रुद्राक्ष वर्ग ELEOCARPACEAE

वर्गलक्षण:— इस कुल वृक्ष , वृक्षक एवं क्षुपक भी पाये जाते हैं । वृक्ष मध्यम आकार के, पर्ण सादे, अभिमुख होते हैं । पुष्प सुगन्धित पत्रकोणीय, श्वेताभ वर्ण के गुच्छों में, फल मांसल एवं कठोर होते हैं ।

62 रुद्राक्ष

द्रव्यनाम .... **संस्कृत** .... रुद्राक्ष, पञ्चमुखी,
हिन्दी .... रुद्राक्ष,
लैटिन ....**Elacocarpus ganitrus** Roxb.

स्वरूप परिचय:— इसके मध्यम आकार के वृक्ष नेपाल, बिहार, बंगाल, आसाम में पाये जाते हैं । पर्ण– 9 से. मी., 15 से. मी. लम्बे अण्डाकार, प्रासवत्, या आयताकार पुष्प श्वेतवर्ण के, फल–नीलाभ गोल, मांसल, बीज कठोर एक धारीदार होता है । इन रेखाओं के आधार पर एक मुखी रुद्राक्ष से लेकर 14 मुखी रुद्राक्ष का वर्णन पुराणों में मिलता है । पञ्चमुखी, एक मुखी विशेष उपयोगी माना जाता है। **Elacocarpus** की कई किस्में पाई जाती हैं । नैपाल की रुद्राक्ष सर्व श्रेष्ठ है ।

पुष्पकाल.................. जनवरी .... अप्रैल।
फलकाल...................शीतकाल।
प्रयोज्यअंग..................बीज, मूल।

प्राप्ति स्थान:—रुद्राक्ष के वृक्ष नेपाल, आसाम, बंगाल में पाये जाते हैं । नेपाल की रुद्राक्ष श्रेष्ठ मानी गई है । आजकल नकली रुद्राक्ष की मालाओं का विशेष प्रचलन है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुणधर्म:— भारतीय पौराणिक ग्रन्थों में रुद्राक्ष का विशेष महत्व है । इसकी माला, कवच, आदि का धारण करना मनोकामना की पूर्ति एवं विघ्नों के निवारण हेतु विशेष उल्लेख है ।

हृदय विकार एवं रक्तचाप में रुद्राक्ष की माला पहनने का विशेष विधान है ।
रुद्राक्ष का प्रयोग अपस्मार, रोमान्तिका आदि में किया जाता है ।
मूल का ज्वर में प्रयोग करते हैं ।

अतस्यादिवर्ग LINACEAE

वर्गलक्षण:— इस वर्ग में गुल्म तथा छोटे पौधे पाये जाते हैं। पर्ण सादे, अखण्डित धारवाले, एकान्तर, उपपर्णयुक्त, कभी-कभी उपपर्ण रहित होते हैं। पुष्पवाह्यकोश के दल 3 से 5 विभक्त या अविभक्त, एक के उपर एक लगे होते हैं। पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल 3 से 5 तक एवं शीघ्र गिर जाते हैं। परागकोश दो खाने वाला, स्त्रीकेशर एक फल पांच खाने वाला तथा प्रत्येक खाने में बीज 1 से 2 तक होते हैं। बीज चमकीले एवं दबे हुये होते हैं। इस वर्ग के द्रव्य स्निग्ध और पौष्टिक होते हैं।

64 अतसी (अलसी)

द्रव्यनाम .... संस्कृत ....अतसी, उमा, नीलपुष्पी, पिच्छिल क्षुमा।
हिन्दी ....अलसी (बीज) तिसी
लैटिन.....................**Linum Usita-tssimum L.**

निरुक्ति :— **अतसी**— अतति सततं गच्छति इति अतसी " अर्थात् मधुरादि गुणों को धारण करने के कारण इसे अतसी कहते हैं

नीलपुष्पीः— नीलानि पुष्पाणियस्या साः" पुष्प नीलवर्ण के होने से इसे नीलपुष्पी कहते हैं।

उमाः— पुष्प शिव के प्रिय होने इसे उमा कहते हैं।

पिच्छिल :— बीज मसृण एवं लुवाबदार होते हैं।

स्वरूप परिचय :— वर्षायु मृदु शाकीय वनस्पति हैं। काण्ड 30 सें.मी. से 60 सें.मी. ऊँचा होता है। शाखायें विरल, छोटी, मृदु, पर्ण एकान्तर, दीर्घ–तनु नुकीले होते हैं। पुष्प शाखाग्र, सुन्दर, चक्राकार, छोटे नीलवर्ण के,फल गोल, घुण्डीदार 5 कोष्ठीय, बीज प्रत्येक कोष्ठ में दो-दो, स्निग्ध चपटे रक्ताभ वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल..........फरवरी,मार्च। फल काल ....जून, जुलाई ।
प्रयोज्य अंग बीज, बीजचूर्ण 3 से 6 ग्राम
तैल – 6 माशा से 1 तोला।

प्राप्ति स्थान :— भारत के सभी उष्ण भागों में प्रायः इसकी खेती की जाती है। यह भारत का आदिवासी पौधा है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः[1] — गुण–गुरू, स्निग्ध, पिच्छिल, रस–मधुर, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, वातशामक, लेप, बीज एवं तैल पौष्टिक वाजीकर एवं किंचीत् सर है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग :— 1. संहिता ग्रन्थों में अतसी का उल्लेख ग्रहवाधाहर और रक्षोघ्न के रूप में तिल, अतसी, सर्षप आदि बीजों के साथ मिलता है।

2. पक्वव्रण के भेदन के लिये अतसी का लेप करना उपयोगी है।

3. वातप्रधान व्रण में – वेदना एवं दाह होने पर अतसी का तैल लगाने से लाभ होता है।

4. वातरक्त में अतसी को दूध में मर्दन कर लगाने से शूल नष्ट होता है।

5. ईसवगोल की तरह अतसी बीज का प्रयोग मलबन्ध में किया जाता है।

6. सुश्रुत ने अतसी (क्षौमसूत्र) से व्रणसीवन हेतु निर्देश किया है।

7. अतसी तैल एवं चूने के पानी से तैयार किया हुआ मलहम अग्निदग्ध में अति उपयोगी है। गन्धक के साथ यह तैल पामा (त्वचाविकार) में उपयोगी है।

8. यह अतिसार, ग्रहणी, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ, वस्तिशोथ, पूयमेह आदि में उपयोगी है।

रासायनिक संगठनः—बीज में लुवावी तत्व (म्युसिलेज) रालीय पदार्थ फास्फेट शर्करांश एवं लाइनेमेरिन नामक ग्लाइकोसाइड नामक तत्व है;

मुख्ययोग :— अतस्यादिलेप, मरहम, अतस्यादिमोदक ।

गोक्षुरादिवर्ग ZYGO PHYLLACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में प्रायः छोटे बड़े सभी पादप पाये जाते हैं।इस वर्ग में वृक्ष कम कम होते हैं। पर्ण–अभिमुख, या एकान्तर द्विदल या पक्षाकार होते हैं। उपपर्ण स्थायी, एवं वहुधा कांटे जैसे होते हैं। पुष्पवाह्यकोष के पांचदल, क्विचित् 4 दल, पृथक 2 पुष्पाभ्यान्तर कोष के दल भी 4 या 5 होते हैं। स्त्रीकेशर एक होता है। फल–शुष्क कांटोंवाला या पंखसदृश धाराओं वाले होते हैं। फल के प्रत्येक खाने में दो या अधिक बीज होते हैं। इस वर्ग के द्रब्य प्रायः मूत्रल, स्वेदल, श्लेष्महर एवं रसयान गुणों वाले होते हैं।

65 गोक्षुर

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... गोक्षुर, स्वादुकण्टक, त्रिकंटक इक्षुरक, श्वदँष्ट्रा, भद्रकण्टक,

हिन्दी ...... गोखरू (छोटा)

लैटिन........ **Tribulus terrestris Linn.**

निरूक्ति :— **स्वादुकण्टक** इसके कांटे स्वादु होते हैं।

गोक्षुरकः— सुरति सुरविलेखने" फलों के कांटे गाय के खुरों सदृश भूमि में निशान बनाते हैं।

त्रिकण्टकः— फलों के काँटों की संख्या 3 से अधिक होती है तथापि त्रिकण्टक नाम से इसका बोध होता है।

श्वदंष्ट्राः— फल कुत्ते की दाढ़ जैसा हिंसक होता है।

वर्गः 1 **चरक**–कृमिघ्न, अनुवासन, मुत्रविरेचनीय शौथहर महाकषाय में, तथा सुश्रुत के विदारीगन्धादि, वीरतर्वादि, लघुपञ्चमूल, कण्टकपंचमूल एवं वाताश्मरी भेदेन गण में पाठ दिया है।

स्वरूप परिचयः— यह जमीन पर परिसृत मूल बहुवर्षायु, काण्ड एक वर्षायु क्षुप है। प्रधान काण्ड एवं शाखायें मृदुरोमावृत्त पर्ण 4 से. मी., 6 से. मी. लम्बे सपत्रक अभिमुखक्रम से प्रत्येक पत्र 4 से 7 की संख्या में युग्म, चणकपत्र

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सदृश होते हैं। पुष्प पत्रकोणोद्भूत या पत्तियों के अभिमुख हल्के पीत वर्ण होते हैं। फल गोल 5 कोष्ठीय ईषद्पंचकोणीय, प्रत्येक कोण के ऊर्ध्व एवं अधः सिरे पर 2-2 मृदु कांटे प्रत्येक कोष्ठ में अनेक बीज होते हैं।

पुष्पकाल ....अगस्त, सितम्बर।
फलकाल ....अक्टूबर, नवम्बर ।
प्रयोज्य अंग ....पंचांग, फल, फलचूर्ण 3 से 6 ग्राम ।

प्राप्तिस्थानः—यह भारत के उष्ण प्रान्तों की ऊसर भूमि में प्रायः उत्तर प्रदेश, देहली, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, बिहार, जम्मूकश्मीर राज्य के लेहलद्दाख में भी सर्वत्र पाया जाता है।

दोष-अधिष्ठान-भेदेन कर्मज्ञानः—2 गुण-गुरू, स्निग्ध, रस-मधुर, विपाक-मधुर, वीर्य-शीत वातपित्तशामक, कफवर्धक, मूत्रल, अश्मरीघ्न, वाजीकर, श्वास-कासहर शोथहर, गर्भस्थापन, एवं वेदनास्थापन है।

आमयिक प्रयोगः—1. **वेदनायुक्तमूत्र प्रवृत्ति** में गोखरू साधित दुग्धपान श्रृतशीत विधि से सेवन कराने से लाभ होता है।

2. **अश्मरी** में गोखरू पंचांग स्वरस से साधित घृत एवं श्रृतशीत दुग्ध से सेवन करने पर लाभ होता है। गोक्षुर चूर्ण मधु एवं दुग्ध अनुपान देने से लाभ होता है।

3. **आमवात** में गोखरू एवं शुंण्ठिका क्वाथ प्रतिदिन प्रातः पानी से कटीशूल नष्ट होता है।

4. **वाजीकरणार्थ** गोक्षुर चूर्ण को दूध के साथ उबालकर पीने से लाभ होता है।

5. **मूत्रकृच्छ्र** में गोखरू पंचांग का क्वाथ मिसरी एवं मधु के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

6. **इन्द्रलुप्त** में गोखरू एवं तिलपुष्प लेप मधु के साथ शिर पर लेप करने से लाभ होता है।

7. यह पूपमेह, प्रमेह, गर्भाशयशोथ, गर्भस्राव, वातरक्त रक्त, पित्त, वृकशोथ आदि में लाभ करता है।

रासायनिक संगठनः—फल में स्थिर तैल 3.5 % उड़नशील तैल, राल एवं पर्याप्त मात्रा में नाइट्रेट्स पाये जाते हैं।

मुख्य योगः— गोक्षुरादि चूर्ण-गोक्षुरादि गुग्गुलु, दशमूलारिष्ठ, दशमूलतैल, दशमूलक्वाथ, दशमूलारिष्ठ, अमृतारिष्ठ, च्यवनप्राश, महानारायणी तैल, गोक्षुराद्यवलेह।

वक्तव्यः—शास्त्रकारों ने वृहद्गोक्षुर (बड़ा गोखरू) का उल्लेख किया है, जिसे वनस्पति शास्त्र के आधार पर **Pedalium murex** Linn. कहते हैं। यह वनस्पति विगनोनियेसी (श्योनाक) कुल की है।

66 धन्वयास (धमासा)

द्रव्यनाम .... संस्कृत ....धन्वयास, दुरालभा, धन्वयवास, समुद्रान्ता, कच्छुरा,
हिन्दी ....धमासा
लैटिन.........................**Fagonia Cretica Linn.**

गणः— चरक के अर्शोघ्न, तृष्णानिग्रहण महाकषाय में पाठ आया है।

निरुक्तिः—धन्वास-मरूदेशे जायमानत्वात् धन्वयासः" अर्थात् यह निर्जल मरूदेश में पैदा होता है।

दुरालभाः— दुखेन आलभ्यते " यह दुर्लभ है, अथवा कांटे होने से इसे छूना कठिन है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कच्छुराः— कच्छ आदि शुष्क भूमि में विशेष पाया जाता है।

स्वरूप परिचय :— हरिताभ वर्ण के बहुशाखी, 60 सें. मी. 90 से.मी. ऊँचे कंटीले झाड़ी सदृश क्षुप होते हैं। पर्ण त्रिपत्रक, अभिमुख, रेखाकार, अण्डाकार, सरलाधार वाले एवं देखने में सनाय पत्र सदृश होते हैं। प्रत्येक पर्ण के आधार पर 2–2 कांटे होते हैं। ये कांटे रूपान्तरित अनुपत्र हैं। पुष्प छोटे 2 गुलाबी रंग के पुटपत्र रूपरेखा में आयताकार एवं पत्रकोणोद्भव होते हैं। फल पंचकोष्ठीय या धाराओं से युक्त, तीक्ष्णकण्टक युक्त। मूल रक्ताभताम्र वर्ण का होता है।

पुष्पकाल..............जून ।
फलकाल............अगस्त, सितम्बर ।
प्रयोज्य अंग ....पंचांग, मूल मात्रा 6 ग्राम से 12 ग्राम ।

प्राप्ति स्थानः—दक्षिण भारत के प्रदेशों, पंजाब, गुजरात, कच्छ, राजस्थान, अफगानिस्तान एवं मिस्त्र में पाया जाता है।

दोष अधिष्ठॉन भेदेन कर्मात्ज्ञानः[2]:—गुण–लघु, रुक्ष, रुक्षकषाय, मधुर, कषाय, विपाक– कटु, वीर्य –शीत, कर्म–कफपित्तशामक, व्रणशोधक, रोपक, नाड़ीवल्य, रक्तप्रसाधन, मूत्रल, ज्वरघ्न, त्वग्दोषहर, कटु-पौष्टिक।

1. **रक्तपित्त** में धमासा का क्वाथ शीतल होने पर चंदन एवं मिसरी के साथ पीने से रक्तपित्त ठीक होता है।
2. **कफजन्य छर्दि** में धमासा का क्वाथ मधु डालकर पीने से लाभ होता है।
3. **मूत्राघात**[3] में धमासा स्वरस पिलाने से लाभ होता है।
4. **भ्रम रोग** में धमासा क्वाथ घृत के साथ सेवन करने से लाभ होता है।
5. **मुखपाक** में धमासा क्वाथ के गरारे करने से लाभ होता है।
7. श्वास–कास, ज्वर, अतिसार ग्रहणी, कुष्ठ, जलोदर आदि रोग में उपयोगी है।

मुख्य रोगः— दुरालभादिक्वाथ, ज्वरघ्नकषाय।

वक्तव्यः—भाव प्रकाश में धन्वयास को जवासा लिखा है। संहिताकारों ने दुरालभा के पर्यायों में दुरालभा का उल्लेख किया है। जवासा एवं धमासा के गुण–धर्म मिलते-जुलते हैं। वस्तुतः दोनों भिन्न 2 कुल के अलग द्रव्य हैं। बाजार में हरिताभ रंग के पंचांग के छोटे-छोटे टुकड़े मिलते हैं।

चागेर्यादिवर्ग OXALIDACEAE

वर्गलक्षणः— इस वर्ग में क्षुप, गुल्मक, शाकीय पादप पाये जाते हैं। पर्ण–करतलाकृति या पक्षाकारवत्, संयुक्त, दलपत्र एकान्तर अभिमुख, एकाकी, पुष्प–उभयलिंग, पुष्प वाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल संख्या में 5, 5 पांचखाने वाला, फल शिम्बी जैसी लगती है। इस वर्ग की वनस्पतियाँ बहुधा खट्टी होती हैं। प्रायः इस वर्ग की वनस्पतियाँ ग्राही, रक्तस्तम्भन, पितघ्न होती हैं।

67 चाङ्गेरी

द्रव्यनाम ....

संस्कृत ....चंगेरी, दन्तशठा, अम्लपत्रिका, कच्छुरा,।
हिन्दी ....चंगेरी, तिपतिया।
लैटिन..................**Oxalis Corniculata Linn.**
चरक ....अम्लस्कन्धवर्ग

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरुक्तिः—ईर गेतौ धातु से चाङ्गेरी शब्द बना है, अर्थात् अम्ल होने से रूचिकर होता है।

अम्लपत्रिकाः—इसके पत्र स्वाद में खट्टे होते हैं।

दंत्तशठाः—पत्र चबाने पर दांतों में अम्ल सा आने से अन्य वस्तु आसानी चबाई नहीं जाती है।

स्वरूप परिचयः—यह भूमि में प्रसरित शाकीय पौधा है। काण्ड जमीन पर फैलता है। पर्ण–सपत्रक, तीन पत्रों वाला, पत्रक अम्ल, अभिहृदयाकार, एवं लोमयुक्त होते हैं। पुष्प–छोटे एवं पीले रंग के प्रत्येक पुष्पवाहक दण्ड पर समूह में खिलते हैं। फल–रेखाकर, आयताकार, लंवोतरा एवं फली सदृश घन रोमावृत होता है। प्रत्येक फल में कई बारीक बीज होते हैं।

इसकी एक बड़ी किस्म भी खेतों केआसपास नमदार स्थानों पर पाई जाती है जिसे **Oxalis acetosella** Linn.कहते हैं।

पुष्पकाल ....जनवरी, फरवरी।
प्रयोज्य अंग ....पंचांग ।

प्राप्ति स्थानः—यह भारत के सम शीतोष्ण प्रदेशों के नमदार भूमि पर प्रायः सर्वत्र सुलभ है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान [1] गुण–रूक्ष, लघु रस–अम्ल, मधुर, वीर्य–उष्ण, विपाक–अम्ल मधुर, वातकफ शामक, स्थानिक प्रयोग में शोथहर, चक्षुष्य, गुदसंकोचक, रोचक, आभ्यन्तर प्रयोग में दीपन, ग्राही, वेदनाशमन, यकृदुत्तेजक एवं विषघ्न है।

आमयिक प्रयोग 1. अर्श में चाङ्गेरी घृत का सेवन कराने से लाभ होता है।
2. ग्रहणी में पिप्पली आदि के कल्क को चाङ्गेरी स्वरस के साथ घृतपाक बनाकर रोगी को सेवन कराते हैं।
3. चतुर्थक–ज्वर में चागेरी स्वरस से साधित घृत विशेष उपयोगी है।
4. यह जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली और संग्राही है। अतिसार गुदभ्रंश, योनिभ्रंश में यह उपयोगी है।

रासायनिक संगठनः—इसके पंचांग में पोटेशियम एवं आकजेलिक एसिड पाया जाता है। धतूरे के विष निवारण हेतु इसके पत्र स्वरस का सेवन कराते हैं।

मुख्य योगः— चंगेरी घृत, यकृद्दरीलौह।

68 कर्मरंग (कमरख)

द्रव्यनाम .... संस्कृत ....कर्मरंग, धाराफल, पीतफल
हिन्दी ....कमरख, कमरक
लैटिन.................**Averrhoa Carambola Linn.**

निरुक्तिः— कर्मरंग रञ्जरागे, कर्मणे कफवातनाशाय'' इस द्रव्य में कफवात नाशक गुणकर्म है।

धाराफलः— इसका फल धारीदार एवं रेखाकार होता है।

पीतफलः— पकने पर फल का रंग पीत वर्ण का होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप परिचयः— यह बहुशाखीय सदाहरित गुल्मक एवं छोटे आकार का वृक्ष है। पर्ण–कसौंदी के पत्र सदृश, अण्डाकार, मसृण, पत्राग्र नुकीला होता है। पुष्प छोटे-छोटे रक्ताभ–श्वेत वर्ण के, फल 3 से 4 इंच लम्बे पांच धार वाले गूदेदार, सुगन्धित, हरे रंग के, पकने पर पीतवर्ण के एवं स्वाद में मधुर अम्ल होता है।

पुष्पकाल ....मार्च, अप्रैल,
फलकाल ....जुलाई, अगस्त
प्रयोज्य अंग ....पक्वफल, फलरस – 2 से 3 तोला।

प्राप्ति स्थानः— भारत के उष्ण प्रदेशों की वाटिकाओं में इसके वृक्ष रोपित पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान[1] रस–अम्ल, मधुर, वीर्य–शीत, विपाक–मधुर, अम्ल, कफ वातघ्न, शीतल, बल्य, रोचक, रक्तशोधक, एवं वल पुष्ठिदायक है।

आमयिक प्रयोगः— 1. अपक्व कमरख अम्ल, उष्ण वातहर एवं पित्तकर है। स्कर्वी में इसको फलों का सेवन किया जाता है।

2. इसके पके फलों से शाक, चटनी, अचार एवं शर्बत बनाया जाता है। ज्वर के रोगी को पके फल पथ्य हैं।

रासायनिक संगठनः— फलों में एसिड पोटेशियम आक्सलेट् एवं विटामिन ए, पाया जाता है।

निम्बुकादिवर्ग RUTACEAE

वर्गलक्षणः— इस वर्ग में बड़े वृक्ष एवं छोटे शाकीय पादप पाये जाते हैं। इस वर्ग के द्रव्यों के सादे या संयुक्त होते हैं। पर्ण–सुगन्धित एवं तैलीय ग्रन्थियों से युक्त, पुष्प–नियमित शाखाग्रोद्भूत पुष्प वाह्यकोश एवं पुष्पआभ्यन्तरकोश के दल 4–5, परस्पर आच्छादित, परागकोश दो खाने वाला स्त्रीकेशर एक फल रसाल या मांसल। इस वर्ग की वनस्पतियाँ उत्तेजक, वातहर, सारक, मूत्रल स्वेदल एवं ज्वरघ्न होती हैं।

.69 बीजपूरक

द्रव्यनाम ....
संस्कृत ....बीजपूर मातुलुङ्ग, फलपूर।
हिन्दी ....विजौरा।
लैटिन.....................Citrus Medica Linn.
वर्ग – चरकहृद्य, छर्दिनिग्रहण महाकषाय में उल्लेख है।

निरूक्तिः— मातुलुंग— "मीनाति हिनस्ति अरूच्यादीन्" यह अरूचि आदि को नष्ट करता है।

बीजपूरकः— इसके फल में बीजों की संख्या अधिक होती है।

फलपूरः— फलं पूरयति इति फलपूर" फलों से यह वृक्ष ढक जाता है।

स्वरूप परिचयः— यह मध्यमाकार निम्बूक सदृश मध्यम आकार का कांटेदार वृक्ष है। काण्ड गोल, मसृण, पर्ण एकान्तर, मलने पर सुगन्धित आयताकार, सवृन्त, मसृण, पर्ण अनेक पीताभ श्वेत, सुगन्धित फल, पकने पर पीतवर्ण के कागजी निम्बू की अपेक्षा बड़े दीर्घ गोलाकार होते हैं।

पुष्पकाल..........अप्रैल, मई।
फकाल..........शीतकाल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोज्य अंगः— पुष्प, फल, मूलत्वक्, मत्रारस 1 से 2 तोला

प्राप्ति स्थानः— यह पश्चिमोत्तर भारत, बंगाल, आसाम, एवं दक्षिण भारत के उद्यानों में ये वृक्ष लगाये हुये पाये जाते हैं। सिक्किम, खासिया एवं कुमायूँ की पहाड़ी पर भी पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्म ज्ञान[1]ः— रस–अम्ल, वीर्य–उष्ण, विपाक–अम्ल, कर्म—कफ वातघ्न, दीपन, शूलहर, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, हृदयोत्तेजक, ज्वरघ्न,

आमयिक प्रयोगः— 1 गर्भवती स्त्रियों की अरूचि में वीजपूर केसर, कालीमीर्च के साथ चूसने से अरूचि दूर होती है।

2 गुल्म एवं आनाह में गुदा में इसकी वर्तिका अन्य द्रव्यों के साथ मिलाकर देने से लाभ होता है। गुल्मरोगी को इसकी गोलियाँ बनाकर देते हैं।

3. कर्णशूल में फलस्वरस कान में डालने से कर्णशूल शान्त होता है। पत्र स्वेदजनन एवं वेदनास्थापन है।

4. रक्तपित्त में मूलत्त्वक् एवं पुष्पचूर्ण को तण्डुलोदक के साथ देने से लाभ होता है।

5. इसके अतिरिक्त यह हिक्का, पार्श्वशूल, हृत्शूल, अजीर्ण, अश्मरी, रजोरोध, विवन्ध, अर्श आदि रोगों में उपयोगी है।

मुख्ययोगः— बीजपूराद्यघृत।

वक्तब्यः— बीजपूरक एवं चकोतरानिम्बू दोनों लेखक के विचार से भिन्न 2 किस्में हैं। चकोतरे के फल में छोटी-छोटी केसरिया रंग की फाँकें निकलती हैं। चकोत्तरे की फाँके कुछ मीठी होती हैं। प्राचीनों ने दोनों को एक ही माना है। वनस्पति शास्त्र के आधार पर इसे **Citrs Maxima** कहते हैं।

रासायनिक संगठन फलत्वक् में उड़नशीलतैल में साइट्रीन 76 % तथा सिट्रोल 7–8 % साइमोन एवं निम्बूकाम्ल, गन्धकाम्ल, शर्करा आदि तत्व पाये जाते हैं।

70 निम्बूक

द्रव्यनाम .... संस्कृत . ... निम्बूक, दन्तशठ ।

हिन्दी ... ... कागजी नींबू ।

लैटिन..... ... **Citrus aurantifolia** Cbrist var- C.acida.

स्वरूप परिचय :— यह बहुशाखीय कँटिदार मध्यम आकार का सदाहरित गुल्मक है। पर्ण–मलने पर सुगन्धित, मसृण, पुष्प श्वेत वर्ण के फलगोल एवं चिकने, फल का छिलका कागज की तरह पतला, कच्चे फल हरे पकने पर पीत वर्ण के रस खट्टा होता है।

पुष्पकाल ....वर्षाकाल ।
फलकाल ....शीतकाल ।
प्रयोज्य अंग ....फलरस ।

प्राप्तिस्थानः— नींबू भारत का आदिवासी गुल्म है। इसकी जंगली किस्म हिमालय की उष्ण घाटियों एवं भारत के सभी प्रदेशों में कागजी नींबू की खेती की जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान 1

रस–अम्ल, विपाक–मधुर, वीर्य–अनुष्ण कर्म–अम्ल होने पर भी पित्तशामक, तृष्णानिग्रहण, रोचन, दीपन–पाचन, अनुलोमन, पित्तसारक, मूत्रल, ज्वरघ्न पाण्डु कामलानाशक।

आमयिक प्रयोग :—

इसमें विटामिन सी काफी मात्रा में पाया जाता है इसलिये यह स्कर्वी में उपयोगी है। अम्ल होने पर भी पित्तशामक है। नींबू के रस में जौखार मिलाकर देने से पसीना आता है एवं पेशाब की अम्लता कम होती है।

वक्तब्य :— संहिता ग्रन्थों में निम्बूक शब्द नहीं देखने को मिलता है। जम्बीर फल का उल्लेख संहिताकारों ने किया है । सम्भवतः उस काल में पहाड़ी जम्वीरी नींबू का विशेष प्रचलन होगा जो कि स्वयं ज्ञात होता है। औषधोपयोगी यही जम्वीरी श्रेष्ठ है। कागजी नींबू इसकी सुधरी किस्म है। जम्वीरी नीबूं को दन्तशठ एवं ऐरावत भी नाम सुश्रुत ने दिया है। जम्बीरी नीबू को Citrus Limon (Linn.) Burn. Varlimonum कहते हैं। निघण्टु ग्रन्थों में जम्वीरी, मधुजम्वीर, वृहत् जम्वीर आदि कई प्रकारों का उल्लेख है। जम्वीरी का प्रयोग अम्लपित्त, कर्णशूल एवं दीपन–पाचन हेतु विशेष रूप से लिया जाता है। धातु उपधातुओं के शोधन कारण हेतु इसके स्वरस का विशेष प्रयोग है।

रासायनिक संगठन :— फलरस में साइट्रिक एसिड, प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। ग्लुकोसाइड एवं फलत्वक् में उड़नशील तैल पाया जाता है जिसे साइट्रोनिलातैल कहते हैं।

मुख्य योग :— जम्वीरासव,

71 बिल्व (वेल)

द्रव्यनाम ..	संस्कृत ...	.....विल्व, श्रीफल, शिवपत्र, त्रिपत्र, पीतफल, शल्य, गन्धपत्र, गन्धफल, शाण्डिल्य ।
	हिन्दी	..... बेल
	लैटिन......	..... Aegle Marmelos Correa Ruta Ceae.
	कुल	...... निम्बुकादिवर्ग ।

वर्ग :— चरक ने अर्शोघ्न, आस्थापन, अनुवासन एवं शोथघ्न महाकषायों उल्लेख किया है। सुश्रुत ने वरूणादिगण, अम्बष्ठादिगण एवं महापंचमूलगण में विल्व का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :— बिल्व बिल भेदेन धातु से विल्व शब्द बना। अर्थात् यह वायु एवं कफ का भेदन करता है। गुणबोधक है।

शाण्डिल्य :— शडि रुजायाम् "शण्डयातिरूजं करोति वा" यह कतिपय रोगों का नाश करता है।

श्रीफल :— इसका फल लक्ष्मी को प्रिय है।
गन्धपत्र, गन्धफल से सुगन्धिवोधक पर्याय है।
शल्य त्रिपत्र, पीतफल यह स्वरूप बोधक पर्याय है।

स्वरूप परिचय :— बेल के मध्यम आकार के कण्टकित पर्णपाति वृक्ष होते हैं। शाखायें मजबूत, अनेक एवं कांटेदार, खुरदरी, पर्ण–सपत्रक, त्रिपत्रकों वाले एवं एकान्तर क्रम में सुगन्धित, लट्वाकार भालाकार, या तिर्यगायताकार,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लम्बाग्र, सवृन्त एवं स्वाद में कुछ तिक्त होते हैं। पुष्प–श्वेत, हरिताभ वर्ण के, फल गोल, कठोर पकने पर पीत वर्ण के सुगन्धित, गूदा मीठा बीज मसृण श्वेतवर्ण की अनेक संख्या होती हैं। गूदे का शर्बत गर्मियों में बनाकर पीया जाता है।

पुष्पकाल ....मार्च मई, ।
फलकाल ....जून,जुलाई दूसरे वर्ष ।
प्रयोज्य अंग ......पक्वापक्वफल (वेलगिरी, पत्र, मूल, छाल
मात्रा ....बेलागिरी 3 से 6 ग्राम ।
पत्रस्वरस ....1 से 2 तोला ।

प्राप्ति स्थान :—यह देश के सभी भागों में विशेषतः उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हिमाचल प्रदेश एवं हिमाचल प्रदेश के निचली पहाड़ियों में बिहार, बंगाल आदि प्रान्तों वनों में स्वयं जात एवं उद्यानों सर्वत्र सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान – 2

गुण–रुक्ष, लघु, रस–कषाय, तिक्त विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफ वातशामक, कच्चा फल–दीपन, पाचन, ग्राही, रक्तस्तम्भक, पक्वफल–कषाय, मधुर मृदुरेचक, अधिक मात्रा में विष्ठम्भजनन, वल्य, हृद्य, पत्रस्वरस–शोथहर, वेदनास्थापन, ज्वरघ्न, मूत्रशर्करा को कम करने वाला, एवं श्वासकासहर है। मूलत्वक्–शोथघ्न कफघ्न, ज्वरनाशक, गर्भाशय शोथहर, हृद्य कटुपौष्ठिक।

आमयिक प्रयोग :—

1. प्रवाहिका में विल्व मज्जा दही के साथ सेवन कराने से लाभ होता है। जीर्ण प्रवाहिका में यह विशेष उपयोगी है।
2. पित्तातिसार एवं रक्तातिसार में अपक्व फलचूर्ण मुलेठी एवं मिसरी के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है।
3. ग्रहणी में विल्वमज्जाचूर्ण शुण्ठी के साथ मिलाकर तक्र के साथ सेवन करने से लाभ होता है।
4. रक्तस्रावी अर्श में विल्वमज्जा को तक्र के साथ सेवन करने से लाभ होता है।
5. शोथ में विल्व पत्रस्वरस कालीमिर्च में सेवन करने से लाभ होता है। यह तीनों प्रकार के शोथ, कामला एवं अर्श से होने वाले विवन्ध में विशेष उपयोगी है।
6. मधुमेह में मूत्रशर्करा की मात्रा कम करने हेतु पत्र स्वरस का प्रयोग उपादेय है।
7. आमशूल में वाल विल्वमज्जाचूर्ण गुड़ के साथ देने से लाभ होता है।
8. यह वात रोगों में विशेष उपयोगी है। हृदय का अधिक स्पन्दन उदासीनता, निन्द्रानाश और उन्माद में मूल दिया जाता है।
9. कर्णशूल एवं कर्णस्राव में विल्व तैल लाभ करता है।

रासायनिक संगठन :—फलों में बिल्वीन या मार्मेलोसीन, नामक तत्व पाया जाता है। गूदे में लुवाव, पेक्टीन, शर्करा एवं सुगन्धित उन्पलतैल आदि पाये जाते हैं।

मुख्य योग :— विल्वादि चूर्ण, विल्वतैल विल्वादिघृत, विल्वपञ्चक क्वाथ, गंगाधरचूर्ण, दशमूल तैल, दशमूलघृत, दशमूलारिष्ठ वत्सकादिक्वाथ च्यवनप्राश, धान्यपञ्चकक्वाथ, पुष्पानुकचूर्ण, महानारायणतैल।

72 कपित्थ (कैंथ)

द्रव्यनाम ...	.....संस्कृत ...	.....	कपित्थ, दधित्थ, दधिफल, चिरपाकी, ग्राही, फलसुगन्धिक ।
	हिन्दी	.....	कैंथ, कैंत ।
	लैटिन.....	......	**Feronia Limonia (L) S W..Sy. F. e Elephantum**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरूक्ति :— कपित्थ कपयः तिष्ठन्ति अत्र'' अर्थात कैंथ के वृक्ष पर बन्दर अधिक बैठते हैं।

दधिफल :— दधिस्वादुफलो दधिफलः'' अर्थात् कैंथ के पके हुये फल स्वादिष्ट होते हैं।

फलसुगन्धिक :— इसके पके हुये फल विल्व सद्यश सुगन्धित होते हैं। फल देर से पकता है, इसलिये चिरपाकी कहते हैं ।

ग्राही :— फल गुणों की घ्यष्ठी से ग्राही होता है इसलिये इसे ग्राही कहते हैं।

स्वरूप परिचय :— वृक्ष मध्यम आकार का पर्णपाती काण्डत्वक् श्वेत घूसरवर्ण का बहुशाखीय कांटेदार। पर्ण –एकान्तर, संयुक्त पत्रक, संख्या में 3 से 9 तक लट्वाकार या अभिलट्वाकार, मसलने पर सुगन्धित मसृण होते हैं। पुष्प छोटे हल्के रक्ताभ वर्ण की मंजरियों में निकलते हैं। फल–श्वेताभ गोल, कठोर, गूदेदार होता है।

पुष्पकाल ....मार्च, अप्रैल, **फलकाल** ....सितम्बर, अक्टूबर ।
प्रयोज्य अंग ....फल, छाल, पत्र, गोंद ।
मात्रा–फल चूर्ण 1 से 2 तोला ।

प्राप्ति स्थान :— भारत के उष्ण प्रदेशों में प्रायः सर्वत्र सुलभ है। विशेषकर, पिलीभीत, बुन्देलखण्ड, मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं दक्षिण भारत में ये वृक्ष स्वयं जात पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान 1

गुण—लघु, रुक्ष, रस–कषाय, अम्ल, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–पकाफल स्तम्भन, वात पित्त शामक, रोचक, लेखन कण्ठ्य, पत्र—वेदना —स्थापन, शोथहर, वातानुलोमन एवं वेदनाशामक है। यूनानी मतानुसार कच्चाफल यह दूसरे दर्जे में शीत एवं रुक्ष होता है। पकाफल दूसरे दर्जे में शीत और रुक्ष होता है।

आमयिक प्रयोग :—

1. अर्श में कपित्थ एवं विल्व का यूष बनाकर दिया जाता है।
2. रक्तपित्त में राजादन एवं कपित्थपत्र का कल्क घृत में भूनकर सेवन करने से लाभ होता है।
3. प्रवाहिका में घातकी एवं कपित्थ पत्र रस दही में सेवन कराने से लाभ होता है।
4. छर्दि में कपित्थ पत्र स्वरस पिप्पली एवं मधु के साथ सेवन करने से लाभ होता है। कफजन्य छर्दि में कपित्थ मञ्जा चूर्ण त्रिकटु के साथ मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।
5. नेत्र के विकारों में पत्रस्वरस मधु के साथ अंजन करने पर लाभ होता है।
6. हिक्का में पत्तों को मसलकर सूंघने से हिचकियां कम आती हैं।
7. इसके अतिरिक्त यह तृष्णा, अरोचक, अतिसार कण्ठगतविकार, शोथ आदि में लाभ करता है।
8. मूत्र की रक्त शर्करा को कम करने हेतु कोमल पत्रों का उपयोग किया जाता है।
9. कपित्थ का गोंद अतिसार, ग्रहणी एवं प्रवाहिका में मधु के साथ दिया जाता है। यह गोंद बबूल के गोंद का प्रतिनिधि हैं
10. कपित्थ मूल स्वरस श्वास में उपयोगी है। अथर्ववेद में कपित्थ मूल को वीर्यवर्धन एंव वल्य कहा गया हैं।

रासायनिक संगठनः—फलगूदा में सिट्रिक एसिड एवं लुवावदार पिच्छिलतत्व पाया जाता है। इसकी भस्म में पोटेशियम कैल्सियम, लौह आदि लवण पाये जाते हैं । पत्रों में सुगंधित उड़नशील तैल पाया जाता है।

मुख्य योगः— कपित्थाष्ठकचूर्ण, ग्रहणीकपाट-रस ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

73 हरमल

द्रव्यनाम .... फारसी........ इस्पंद
हिन्दी .... हरमल
लैटिन........... **Peganum** harmala Linn.

स्वरूप परिचयः—यह 30 से. मी.से. 90 सें.मी. ऊँचा मूल बहुवर्षायु गुल्मनुमा वहुशाखीय पौधा है। पर्ण–4 सें.मी. से 9 सें.मी. लम्बे तीक्ष्णाग्र होते हैं। पुष्प–पत्रकोणोद्भव एकाकी, श्वेत सर्वत्र होते हैं। फल गोलाकार कोषीय, त्रिखण्डीय, प्रत्येक कोष्ठ में त्रिकोणाकार कृष्णाभवर्ण के बीज होते हैं।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त, **फलकाल** ....सितम्बर अक्टूबर
प्रयोज्य अंग ....बीज, मात्रा 1 ग्राम से 3 ग्राम।

प्राप्ति स्थानः—यह ईरान का आदिवासी पौधा है। भारत में यह कश्मीर, लेह–लद्दाख, सिन्ध, कच्छ, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि प्रान्तों में पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान

उष्ण, रूक्ष, वात, कफघ्न, मादक, आक्षेपहर, स्वापजनन, वेदनास्थापन, आर्तवजनन कृमिघ्न, ज्वरघ्न, कोष्ठवातप्रशमन, क्षीरजनन कामोत्तेजक, गर्भस्त्रावकर।

आमयिक प्रयोग

1. आर्दित, पक्षाघात, गृध्रसी में हरमल लाभ करता है।
2. अनार्तव, कर्ष्ठार्त्तव एवं मूत्र रोध में हरमल का क्वाथ तिलतैल एवं मधु के साथ मिलाकर देते हैं।
3. आमवात में भी बीज के अच्छे परिणाम देखे गये हैं।
4. अपतन्त्रक, अपस्मार आक्षेप में भी यह पोटेशियम ब्रोमाइड की अपेक्षा अच्छा लाभ करता है।
5. दमा सूखी खांसी एवं हिक्का (हिचकी) में भी लाभ करता है।
6. ग्रामीण दाइयाँ गर्भपात के लिये बीजों का प्रयोग करती हैं।

रासायनिक संगठन :— बीजों में हर्मलीन, हर्मीन हर्मेलोल, हर्मेगागीन नामक एलकेलाइड्स पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त रंजक तत्त्वयुक्त एकराल भी पाया जाता है जिसमें भंग जैसी मादक गंध होती है।

मिलावट :— कुछ क्षेत्रों में मेंहदी के बीज हरमल के नाम से विक्रय किये जाते हैं। असली हरमल के बीज स्वाद में तिक्त, कुचलने पर तम्बाकू जैसी मादक सुगन्ध आती है। आकार में बीज धूसर कृष्णवर्ण के नानारुप कोणाकार होते हैं।

74 सुदाव (सिताव)

द्रव्यनाम ....फारसी फो............................
हिन्दी .... सिताव, सातरी। सद्दाव।
लैटिन............................ **Ruta graveolens Linn.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरुप परिचयः—यह एक शाकीय पौधा है। काण्ड वेलनाकार अनेक शाखा प्रशाखायुक्त तथा स्पर्श में मुलायम होता है। पर्ण–एकान्तर द्विविभक्त, खण्डयुक्त, अभिप्रासवत् एवं पर्णो पर छोटे–2 बिन्दुवत् तैल ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। पत्रों को मसलकर सूंघने उग्र गंध आती है। स्वाद में यह तिक्त एवं उत्क्लेशकारक होता है। पुष्प छोटे पीतवर्ण के, फल–छोटे त्रिकोष्ठीय, प्रत्येक कोष्ठ में त्रिकोणाकार एवं कत्थई रंग के बीज होते हैं।

पुष्पकाल.............जुलाई, अगस्त, फलकाल........ सितम्बर, अक्टूबर।
प्रयोज्य अंग...........पंचांग, मात्रा..... ....2 से 5 ग्राम, बीज तैल–1 से 5 बूंद।

स्वरूप परिचयः—यह एक शाकीय पौधा है। काण्ड वेलनाकार अनेक, शाखा प्रशाखायुक्त तथा स्पर्श में मुलायम होता है। पर्ण–एकान्तर द्विविभक्त, खण्डयुक्त अभियुक्त, अभिप्रासवस् एवं पर्णो पर छोटे 2 बिन्दुवत् तैल ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। पत्रों को मसलकर सूंघने उग्र गंध आती है। स्वाद में यह तिक्त एवं उत्क्लेशकारक होता है। पुष्प छोटे पीतवर्ण के फल– त्रिकोष्ठीय, प्रत्येक कोष्ठ में त्रिकोणाकार एवं कत्थई रंग के बीज होते हैं।

प्राप्ति स्थानः— यह फारस का आदिवासी पौधा है। भारत के बगीचों में इसके पौधे लगाये हुये पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः—

उष्ण, रुक्ष, छेदन, विलयन, प्रमाथी, दीपन, वातघ्न, वातानुलोमन, स्वेदजनन, आक्षेपहर, मूत्रल, आर्तवजनन ।

आमयिक प्रयोगः—

1. पत्रस्वरस छोटे बच्चों के आक्षेप के लिये बहुत उपयोगी औषध है।
2. सिताव के सूखे पत्तों का क्वाथ या टिंचर अतिसार, गुल्म, उदरशूल एवं कष्ठार्त्तव में उपयोगी हैं।
3. सुदाव की उत्तेजक क्रिया विशेषकर त्वचा, नाड़ी व्यूह, एवं गर्भाशय पर होती है। तीव्र गर्भाशय संकोचक होने से गर्भावस्था में वर्जित है।
4. ज्वर में देने से पेशाब एवं पसीना आता है तथा नाड़ी की गति कम होती है।
5. श्रम एवं अपतंत्रक में सूदाव का फाण्ड पिलाते हैं।
6. कर्णशूल में पत्रस्वरस कान में डालते हैं।
9. उदरशूल, आध्मान एवं कुपचन में भी फाण्ट उपयोगी है।

रासायनिक संगठनः—इसमें उड़नशील तैल तथा रुटिन नामक ग्लुकोसाइड पाया जाता है।

वक्तव्यः—निघण्टुरत्नाकर ने पीतपुष्पा के नाम से इस द्रव्य का वर्णन किया है।

75 तेजोह्वा (तेजवल)

द्रव्यनाम..................................संस्कृत.......... तुम्वरु, तेजोह्वा, तेजोवती, तेजास्विनी।
हिन्दी............तेजबल, तुम्बरु, धनियांनैपाली।
लैटिन...........**Zanthoxylum alatum** Roxb.

वर्ग [1]:— चरक ने शिरोविरेचन एवं तिक्तस्कन्ध द्रव्यों में उल्लेख।

निरुक्तिः—तेजोवती—यह उष्ण, तीक्ष्ण गुणों के कारण अग्नि को प्रदीप्त करती है ।
तेजस्विनीः—इसकी तीक्ष्णता प्रंशसनीय है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप परिचयः—इसके गुल्माकृति के छोटे वृक्ष होते हैं । शाखा एवं काण्ड उभारदार कांटेयुक्त, पत्र एकान्तर, पत्रकों की मध्यशिराकांटेदार, सपत्रक एवं असमयसवत् पत्रक 2–6 जोड़े में विषम संख्यक, अभिमुखक्रम में स्थित, वृन्तकहीन, सुगन्धित नोकदार तथा दन्तमयधार वाले होते हैं । पुष्प–छोटे–छोटे पीतवर्ण के एवं एकलिंगी, पार्श्ववर्ती मञ्जरियों में खिलते हैं । फल सुगन्धित देखने में धनियां सदृश, फलत्वक् दानेदार, फल पकने पर रक्तवर्ण के एवं बीज काले रंग के होते हैं ।

पुष्पकाल............अप्रैल, जून, **फलकाल**—सितम्बर, अक्टूबर।
प्रयोज्य अंग..........फल, त्वक् (छाल)।
मात्रा ....फलचूर्ण 6 से 10 त्वक्चूर्ण 1 से 3 ग्राम।

प्राप्ति स्थानः—यह हिमालय की घाटियों में विशेषतया हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल, कुमायुं, कश्मीर, नेपाल, खासिया की पहाड़ियों में 1,500 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2):—

गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण। कर्म–कफ वातशामक, पित्तवर्धक, जीवाणुनाशक, उत्तेजक, वातहर, नाड़ीवल्य, दन्तशोधन, दीपन–पाचन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, ज्वरघ्न, कटु-पौष्ठिक ।

आमयिक प्रयोगः—

1. बीज का प्रयोग अफारा, अजीर्ण, एवं अतिसार में करते हैं ।
2. तेजलव (तुम्बरु) बीज एवं छाल का उपयोग मुखशोधक एवं दन्तमंजन के रूप में करते हैं । अपतन्त्रक में तुम्ब्वर्वादिचूर्ण का उपयोग लाभदायक है ।
3. तेजोवती का प्रयोग कफ, वात, कास, श्वास, मुखरोग, दन्तरोग, हिक्का, मन्दाग्नि, आम व्रणशोधन, कुष्ठ, शिरोविरेचन आदि में करते हैं ।

रासायनिक संगठनः—फल में एक उत्पलतैल, राल, वर्वेरीन की भांति तिक्त क्रिस्टलीय तत्व पाये जाते हैं । फल त्वचा में भी उत्पलतैल, राल, आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्य योगः—तुम्ब्वर्वादिचूर्ण, वहुशालगुड ।

इङ्गुद्यादिवर्ग SIMARUBACEAE

वर्ग लक्षण:—इस वर्ग में छोटे–बड़े वृक्ष पाये जाते हैं । पत्र–एकान्तर या अभिमुख, साधारण, उपपत्ररहित, पर्ण तैल ग्रन्थि विहीन, पुष्प वाह्यकोश एवं आम्यन्तर कोशदल 3–5 विभाग वाला, फल–गोल, अण्डाकार या कली–सदृश, कठिन गुठली वाले होते हैं ।

इस वर्ग की वनस्पतियों में ज्वरघ्न एवं कटुपौष्टिक गुण पाये जाते हैं ।

76 इङ्गुदी (हिंगोंट)

द्रव्यनाम.........................संस्कृत ....इंगुदी, तैलफल, तापसवृक्ष, दीर्घकण्टक ।
हिन्दी ....हिंगोंट, हिंगोठा,
लैटिन...........**Balanites aegypetiaca (L) Deel Sym:—B. roxbunghi D C. Planch.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्गः—[1] सुश्रुत में शिरोविरेचन द्रव्यों में इंगुदी का उल्लेख किया है ।

निरूक्तिः—इंगुदी इगिगतौ, इड्ग्ग कुष्ठ भूत ग्रहादिचेष्टितम्" अर्थात् भूत, कुष्ठ, ग्रह आदि का नाश करता है ।

तापसतरूः— तापसा अरण्ये यस्याः अरण्ये स्नेहमुपयुञ्ज्यते" अर्थात् वनवासी तपस्वी इसके तैल का उपयोग करते हैं।

दीर्घकण्टकः— इसके कांटे काफी मजबूत होते हैं ।

द्रव्य स्वरूपः—इंगुदी के कांटेदार, गुल्माकार छोटे वृक्ष होते हैं । पर्ण–त्रिपत्रक, अवृन्त, पत्रक–अखण्ड, अण्डाकार, अभिल–ट्खाकार या अभिप्रासवत् नोकदार होते हैं । पत्तियों के पार्श्व में दीर्घ स्थूल कांटे होते हैं । पुष्प–छोटे, गुच्छों में पीताभ वर्ण के, फल–अष्ठिल, अण्डाकार, पञ्चकोणीय, कठिन गुठलीदार एवं एक बीज वाला होता है । फल मञ्जास्वाद में कुछ मधुर होते है । बीजों से तैल निकलता है ।

पुष्पकाल ....अप्रैल, मई । **फलकाल**–सितम्बर, अक्टूबर ।
प्रयोज्यअंग............फल एवं तैल, छाल तैलमात्रा 5 से 10 बूँद ।

प्राप्ति स्थानः—भारत के शुष्क एवं उष्ण प्रदेशों के जंगलों में विशेषतः उत्तर प्रदेश, बुन्देलखण्ड, मध्यप्रदेश, बिहार, राजस्थान, आदि सभी प्रान्तों में सुलभ है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान [2]:—

गुण–लघु, स्निग्ध, रस–तिक्त, कटु, मञ्जा–तिक्त, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–वात कफनाशक, कृमिघ्न, फलमञ्जा–शिरोविरेचक, विषघ्न, रेचक, मूत्रल, कुष्टघ्न, तेल–केश्य, व्रणरोपण जन्तुघ्न, एवं त्वचा के रोगों में उपयोगी है ।

आमयिक प्रयोगः—

1. कुष्ठ में इड्गुन्दी तैल उपयोगी है ।
2. मूषिकविष में शिरीष एवं इड्गुदीफलमञ्जा का कल्क मधु के साथ चाटने से लाभ होता है ।
3. दुष्टव्रण में इंगुदी तैल रोपण हेतु प्रयोग करते हैं ।
4. बीज का प्रयोग कास में करते हैं ।
5. फलमञ्जा में सेपोनिन होने से कफःनिस्सारक है ।
6. उदरशूल, श्वास, कास एवं विष विकारों में उपयोगी है ।

रासायनिक संगठनः—फलमञ्जा में म्युसिलेजज, शर्करा एवं सेपोनिन तथा कुछ सेन्द्रिय अम्ल आदि तत्व पाये जाते हैं । बीजगिरी में 43% तैल पाया जाता है। इंगुदी की क्रिया बहुत कुछ सेनेगा की भांति होती है ।

77 अरलु

द्रव्यनाम ....संस्कृत ....अरलु, भल्लूकः, पंक्तिपत्रक, निम्वाकार–वृक्ष ।
हिन्दी .... अरलु, महानिम्व ।
लैटिन.......... **Ailanthus excelsa** Roxb.

निरूक्तिः—इयं विशेषगुणत्वात् अरलु" अर्थात् यह विशेष गुणों वाला होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पक्तिपत्रक:—अरलु के पत्र एक–दो फुट तक लम्बे पंक्तिबद्ध एवं महानिंव सदृश होते हैं ।

निम्वाकार वृक्ष:—वृक्ष महानिम्वसदृश बड़े होते हैं ।

स्वरूप परिचय:—इसके 60 से 90 फुट तक लम्बे होते हैं । छाल धूसर वर्ण की होती है । छाल धूसर वर्ण की, पर्ण–एक मीटर तक भी लम्बे पक्षवत् संयुक्त पत्र वाले होते हैं । पत्रक 6 से० मी० से 12 से०मी० लम्बे चौड़े सुगन्धित, नोकदार, दन्तुरधार वाले, तिरछे आधार वाले संख्या में 10 से 13 जोड़े तक, लम्बे वृन्तयुक्त, आधार के पास दो ग्रन्थियुक्त होते हैं । पुष्प–छोटे, मञ्जरियों युक्त गुच्छों में पीताभ वर्ण के फल–सीसम की फली–सदृश संकुचित बीज वाला होता है ।

पुष्पकाल ....फरवरी, मार्च, **फलकाल**......... जुलाई, अगस्त ।
प्रयोज्य अंग........छाल, मूलत्वक् ।

प्राप्ति स्थान:—भारत के उष्ण प्रदेशों में प्रायः सड़कों के आसपास, उत्तर प्रदेश, बुन्देलखण्ड, बिहार, राजस्थान मध्यप्रदेश, छोटानागपुर आदि स्थानों पर सर्वत्र सुलभ है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान [1]:—

रस–तिक्त, वीर्य–शीत, विपाक–कटु, त्रिदोषहर, वस्तिरोगहर, कटुपौष्टिक, दीपन, ग्राही, ज्वरहर ।

आमयिक प्रयोग:—

1. अतिसार में अरलु छाल से पुटपाक विधि द्वारा निकाला हुआ स्वरस मधु के साथ देने से लाभ होता है ।
2. कर्णशूल में अरलु त्वचा को पुटपाक विधि रस निकाल कर कान में डालने से लाभ होता है ।
3. जीर्णज्वर एवं दुर्बलता में छाल का उपयोग किया जाता है ।
4. आमातिसार एवं ग्रहणी में उपयोगी है ।

रासायनिक संगठन:—छाल में एइलेन्टिक एसिड, नामक कड़वा रक्ताभ भूरे रंग का पदार्थ पाया जाता है ।

वक्तव्य:—संहिता ग्रन्थों के आधार पर श्योनाक, शुकनासा एवं अरलु तीनों भिन्न–भिन्न द्रव्य है । टीकाकारों के विवाद से ये द्रव्य संदिग्ध बन गये थे । वास्तव में तीनों भिन्न–भिन्न द्रव्य हैं । सुश्रुत ने अरलु शब्द का उल्लेख किया है । अधिकतर विद्वानों ने अरलु से श्योनाक का ही ग्रहण किया है ।

78 कड़वीतिथई (भरङ्गी)

द्रव्यनाम ....संस्कृत ....भरङ्गी, विचारणीय ।
हिन्दी, बंगाली .... भारङ्गी, तिथई ।
लैटिन...........**Picrasma quassioides Benth.**

स्वरूप परिचय:—इसके झाड़ीनुमा वृक्ष होते हैं । शाखायें मजबूत, अनेक, एवं सफेद चिह्न वाले होते हैं । पर्ण–अयुग्म, पक्षाकार, 20 से०मी० से 42 से०मी० लम्बे, अरलु के पत्रसदृश लम्बे, एवं रोमिल होते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पत्रक–अभिलट्वाकार, आरावत् सबसे नीचे के पत्रक छोटे एवं अपपत्रों के सदृश होते हैं । पुष्प–छोटे हरिताभ, गुच्छी में, फल–छोटे पकने पर काले रंग के और एक बीज वाला होता है ।

पुष्पकाल.............. अप्रैल, मई, **फलकाल**........ पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग............छाल, पत्र, काष्ठ, ।

प्राप्ति स्थान:—यह हिमालय के निचली पहाड़ियों पर उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, नेपाल, भूटान, आसाम आदि प्रदेशों के पहाड़ी भागों में पाया जाता है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः—

यह अत्यन्त कटु द्रव्य है । छाल का प्रयोग आमाशय की दुर्बलता से उत्पन्न अग्निमांद्य में उपयोगी है । गुदमार्ग द्वारा वस्ति देने से यह उदर कृमिनाशक है । पंजाब प्रान्त के वैद्य छाल एवं पत्र क्वाथ का उपयोग ज्वरघ्न एवं कृमिघ्न के रूप में करते हैं ।

रासायनिक संगठन:—इसमें पिक्रेस्मिन् (Picrasnin) मिलता–जुलता साराम 0.05% क्वासीन् नामक कड़वा पदार्थ तथा एक अन्य प्रभायुक्त घुलनशील कड़वा पदार्थ पाया जाता है ।

वक्तव्य:—बंगाल के कविराज छाल का उपयोग भारङ्गी के नाम से करते हैं । काण्ड एवं छाल गन्धहीन तथा अत्यन्त कड़वी होती है । यह द्रव्य इन्डियन क्वासिया के नाम से प्रसिद्ध है । अधिकतर लेखकों ने इस द्रव्य को भारंगी लिखा है ।

गुग्गुल्वादिवर्ग BURSERACEAE

वर्ग लक्षण:—इस वर्ग में बड़े एवं छोटे वृक्ष पाये जाते हैं । इन वृक्षों से सुगन्धित निर्यास निकलता है । इस निर्यास का औषध एवं धूपन हेतु प्रयोग होता है । इस वर्ग की वनस्पतियों में पर्णविन्यास एकान्तर, क्वंचित् अभिमुख, संयुक्त या क्वचित् एक, एक पत्र वाला होता है । पुष्प उभयलिङ्गी एवं कई जातियों में एकलिङ्गी पुष्प भी पाये जाते हैं । पुष्पवाह्यकोश और पुष्पाभ्यान्तर कोश के दल 3 से 5 एक के ऊपर एक लगे होते हैं । पुंकेशर पंखड़ियों के बराबर, या उससे द्विगुण, स्त्रीकेशर एक, फल–कठोर, विकासी या अविकासी होते हैं ।

इस वर्ग की वनस्पतियाँ वातघ्न, रेचन, कफघ्न, सुगन्धित होती हैं ।

79 गुग्गुलु (गूगल)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... गुग्गुलु, कौशिक, पुरः, पल, महिषाक्ष ।
हिन्दी .... गूगल, भैंसागुगल ।
लैटिन .... **Balsamodendron mukul** Hook. st. stocks.

गण:—[1] सुश्रुत–एलादिगण–में ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरूक्ति:—गुग्गुलु:—गुडतिरक्षति वातरोगांन् इति गुग्गुलु" अर्थात् यह वातरोगों से रक्षा करता है, एवं शरीर पर आघात करने वाले रोगों से रक्षा करता है ।

कौशिक:—कोशेभव कौशिकः" वृक्ष के कोषों से गुगल की उत्पत्ति होती है, इसलिये इसे कौशिक कहते हैं ।

पुर:—पुर अग्रगमने" अर्थात् रोगों को दूर करने में यह अग्रगण्य है ।

पलङ्कषा:—पलं मासं कषति हिनस्ति" मेदोघ्नत्वात् अति लेखनत्वात्" लेखन होने से भेदोवृद्धि में विशेष उपयोगी है ।

स्वरूप परिचय:—इसके बहुशाखीय झाड़ीनुमा वृक्ष पाये जाते हैं । शाखांग्र नुकीले पत्र सपत्रक, जिनमें 3–3 पत्रक होते हैं । पत्रक चिकने, चमकदार, अभिलट्वाकार, पत्र अग्रतट–दन्तुर, पत्रक विनाल (Sessile) या बहुत छोटे वृक्षों पर लगे होते हैं । पुष्प एक लिङ्गी गुच्छों में खिलते हैं । नरपुष्प एवं स्त्री पुष्प अलग–अलग, स्त्रीपुष्प में वन्ध्य या क्लीव केशर होते हैं । पुंकेशर संख्या में 8 से 10 कुक्षी (Stigma) प्रायः द्विखण्डीय होती हैं । फल–मांसल लट्वाकार, मांसल गुठलीदार एवं रक्तवर्ण के होते हैं । जाड़ों में गूगल के काण्ड में चीरा लगाने से सुगन्धित निर्यास निकलता है जिसे गूगल कहते हैं ।

पुष्पकाल ....मार्च, अप्रैल । **फलकाल** ....पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग .... निर्यास ।

प्राप्ति स्थान:—भारतवर्ष में गुजरात कच्छ, राजस्थान, सिन्ध, आसाम, सिलहट, पूर्व बंगाल एवं मैसूर में इसके वृक्ष स्वयं जात पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त यह बलूचिस्तान, अरब, अफ्रीका आदि में पाया जाता है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान:—[2]

लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, पिच्छिल, सूक्ष्म, सर, रस–तिक्त, कटु, मधुर, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–त्रिदोषहर, कर्म–शोथहर, वेदनास्थापन, व्रणशोधन, व्रणरोपण, जन्तुघ्न, नाड़ीवल्य, दीपन, सर, यकृदुत्तेजक, अर्शोघ्न, रक्तशोधक, रक्तकण (R.B.C.) एवं श्वेतकण (W.B.C.) वर्धक, गण्डमालानाशक, कफनिस्सारक, मूत्रल, रसायन, वल्य नयांगूगल लेखन, पुरानागूगल–कुष्ठघ्न, वर्ण्य, शीतप्रशमन आदि गुणों वाला है ।

आमयिक प्रयोग:—

1. संधिवात एवं उपदंश जैसे रोगों में तथा वातजन्य व्याधियों में विशेष रूप से उपयोग किया जाता है ।
2. जीर्णकास एवं दुर्गन्ध युक्त वलगम में गूगल उपयोगी है ।
3. जीर्णवृकशोथ, पूयमेह, मूत्रपिण्डशोथ, गर्भाशय शोथ, कष्ठार्त्तव एवं रक्तप्रदर में गूगल लाभ करता है ।
4. शोथ में गोमूत्र के साथ गूगल का सेवन करते हैं ।
5. जीर्णआमवात, गृध्रसी, उरूस्तम्भ आदि व्याधियों में शिलाजीत के साथ गूगल लाभ करता है ।
6. गलगण्ड, त्वचा के रोग व्रणविकार, कण्डू आदि में गूगल लाभ करता है ।
7. यह अर्श, प्रमेह, भेदोवृद्धि, पील्हावृद्धि कुष्ठ, ग्रन्थि, अपची आदि रोगों में लाभ करता है ।
8. रक्षोघ्न, भूतवाधाहर एवं जन्तुघ्न हेतु धूपन हेतु उपयोग होता है ।

रासायनिक संगठन:—गूगल में एक उत्पत्तैल, रालदार गोंद (Gum-resim) तथा एक सत्व पाया जाता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शुद्धाशुद्ध परीक्षा:—बाजार में गूगल की दो जातियाँ पाई जाती हैं । 1. कण गूगल, 2. भैंसा गूगल, । कणगूगल मारवाड़ में होता है जोकि ललाई लिये हुये गोल दानेदार होते हैं । भैंसा गूगल का रंग हरापन लिये हुये पीताभ वर्ण का होता है । यह सिन्ध, कच्छ आदि स्थानों में पाया जाता है । श्रेष्ठ गूगल रक्तवर्ण का पारदर्शक एवं सुगन्धियुक्त होता है । अग्नि में डालने पर जलता है एवं धूप में रखने पर पिघलने लगता है । गूगल की अन्य जातियों के वृक्षों के निर्यास का भी मिश्रण व्यापारी लोग करते हैं ।

मुख्य योग:—योगराज गुग्गुलु, महायोगराज गुग्गुलु, कैशोर गुग्गुलु, चन्द्र प्रभावटी, गोक्षुरादि गुग्गुलु, त्रिफला गुग्गुलु, कंचनार गुग्गुलु, आरोग्यवर्धनी ।

80 बोल

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... बोल, सुरस, गन्धरस, बर्बर,
हिन्दी ....बोल, बीजाबोल,
लैटिन ....**Commiphora myrrha** (Ness) Engl

निरुक्ति:— बोल:— बोलयति मज्जति रुधिरम् " वा वागतिगन्धनयोः" यह रक्त की शुद्धि करता है या यह गन्ध एवं शीतलता के गुणों वाला है ।

गन्धरस:—गन्धवान् रसःअस्य" इसका निर्यास गन्धयुक्त होता है ।

स्वरूप परिचय:—यह गूगल की जाति का वृक्ष है । वृक्ष के निर्यास (गोंद) को बोल कहते हैं । वृक्ष के काण्ड–त्वक् में अनेक निर्यास वाहिनियाँ होती हैं । छाल को सत करने पर एक पीताभ श्वेत गाढ़ा निर्यास निकलता है जो जमकर लालिमा लिये हुये भूरे रंग का हो जाता है । वृक्ष मध्यम आकार के झाड़ीनुमा होते हैं । पुष्प पत्रकोणीय छोटे रक्ताभ–वर्ण के होते हैं ।

पुष्पकाल............... मार्च, अप्रैल, फलकाल–पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग .... निर्यास (गोंद) ।

प्राप्ति स्थान:—एविसीनिआ, पूर्वी अफ्रीका, सुमालीलैंड, एवं अरब, फारस में इसके वृक्ष पाये जाते हैं । मक्का का बोल सर्वोत्तम है भारतवर्ष में बोल विदेशों से आयात होता है । व्यापारी इसे छांट कर उत्तम, मध्यम भेद से बेचते हैं।

पहिचान:—बोल के दाने गोल–गोल, बेडौल छोटे–बड़े पाये जाते हैं । बाहर से इनकी रंगत ललाई लिये हुये पीले रंग की या भूरी होती है । तथा वाह्यतल एक सूक्ष्म चूर्ण से धूसरित भगुंर सा प्रतीत होता है । बोल के टुकड़े कड़े एवं भंगुर होते हैं । यह स्निग्ध होता है, जगह–जगह सफेद या रेखायें दिखाई देती हैं । इसमें एक विशिष्ट प्रकार की गन्ध होती है एवं स्वाद में तिक्त होता है । उत्तम बोल में कम से कम 5% तक उड़नशील तैल पाया जाता है ।

इसमें अनेक कम्मीफोरा के वृक्ष की जातियों के गोंद की मिलावट की जाती है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान:—[1]

गुण–रूक्ष, लघु, रस–तिक्त, कटु, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–त्रिदोषहर, कोथप्रशमन, वेदनास्थापन, शोथहर, स्तम्भन, दीपन पाचन, अनुलोमन, रक्तशोधक, श्लेष्मपूतिहर, मूत्रल, आर्तवजनन, स्वेदजनन । इसका उत्सर्ग त्वचा, मूत्र एवं फुफुसों से होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग:—बोल रक्त के श्वेताणु की वृद्धि करता है । इसलिये रक्ताल्पता एवं पाण्डुरोग में उपयोगी है । बोल–वातहर, उत्तेजक ज्वर, अपस्मार एवं कुष्ठनाशक है । यह त्वचा मूत्रेन्द्रिय जननेन्द्रिय, श्वासमार्ग के विकारों में विशेष उपयोगी है । इससे जीर्ण वस्तिशोथ, एवं श्वेतप्रदर ठीक होता है । यह गर्भाशय के शैथिल्य में विशेष उपयोगी है । व्रणशोधन एवं व्रणरोपण हेतु वाह्य प्रयोग किया जाता है ।

संगठन:—बोल में 57% से 61% तक गोंद 25% से 40% रालीय या रेजिन का अंश या उड़नशील तैल पाया जाता है । इसका तिक्त सत्व होता है ।

मुख्ययोग:—बोलपर्पटी, बोलवद्धरस ।

81 शल्लकी (सलई)

द्रव्यनाम.................................संस्कृत................ शल्लकी, गजभक्ष्या, कुन्दुरुकी, सुस्त्रवा, ।
हिन्दी................ सलई, धूप सलाई
लैटिन................ **Boswellia serrata** Roxb.

गण:—[1] चरक–पुरीषविरजनीये, शिरोविरेचन द्रव्यों में गणना की है । सुश्रुत रोध्रादिगण, कषायस्कन्ध एवं एलादिगण में पाठ दिया है ।

निरूक्ति:—**गजभक्ष्या:**—हाथी इसके पत्तें खाते हैं इसलिये इस गजभक्ष्या कहते हैं ।

शल्लकी :— सलति सलगतौ" अर्थात् वृक्ष से गोंद का निस्सरण होने से शल्लकी कहते हैं ।

स्वरूप परिचय:—इसके मध्यम आकार के सुन्दर वृक्ष होते हैं । ये वृक्ष उष्ण प्रदेशों की पहाड़ी ढालों पर समूह के रूप में पाये जाते हैं । काण्डत्वक् रक्ताभ पीतवर्ण का या हरित श्वेत, चिकना एवं कागज की तरह पतले–पतले परतोंदार होता है । शाखायें अनेक समूहबद्ध रूप में, सदलपर्ण, पत्रक प्रायः 8–16 जोड़े में प्रायः अवृन्त, अभिमुख, आयताकार, दन्तुरित एवं सुगन्धि पत्रक युक्त होते हैं । पुष्प–छोटे, समूह में रक्ताभ श्वेत, सुगन्धित एवं पत्रकोणों दृभूत होते हैं ।

फल:—अण्डाकार, लम्बा–आयताकार एवं पकने पर हरिताभ–पीत वर्ण के होते हैं । वृक्षों पर चीरा लगाने पर एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसे भारतीय लोवान कहते हैं । असली लोवान (कुन्दरूगोंद) भारत में प्रायः अरब, अफ्रीका आदि पश्चिमी देशों से आता है ।

पुष्पकाल .... मार्च, अप्रैल, **फलकाल** .... अगस्त, सितम्बर ।
प्रयोज्य अंग ....गोंद (निर्यास) काण्डत्वक्, फल ।

प्राप्ति स्थान:—ये वृक्ष भारत के उष्णप्रदेशों एवं हिमालय की निचली तराई वाले भागों में विशेषकर, बुन्देलखण्ड, पीलीभीत, गोरखपुर, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा आदि सभी प्रान्तों में सुलभ हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान:— 2

गुण–रूक्ष, लघु रस–कषाय, तिक्त, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–पित्त कफहर, स्थानिक प्रयोग में शोथहर, वेदनास्थापन, दुर्गन्धनाशक, जन्तुघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण एवं चक्षुष्य है । मुखमार्ग द्वारा प्रयोग करने पर दीपन-पाचन, ग्राही, कटुपौष्टिक, वातानुलोमन, मूत्रल स्वेदजनन, ज्वरघ्न हृद्य, रक्तस्तम्भन, कफनिस्सारक, श्लेष्मपूतिहर, वृष्य ।

आमयिक प्रयोग:—

1. अतिसार में शल्लकी त्वचा चूर्ण मिसरी एवं मधु के साथ सेवन करने से लाभ होता है ।
2. श्वास में शल्लकी का धूपन उपयोगी है ।
3. यह कुष्ठ, अर्श, वातरोग, कफरोग, एवं प्रदर आदि विकारों में उपयोगी है ।
4. कुन्दुर की क्रिया श्लेमल त्वचा पर विशेषतः श्वास मार्ग की श्लेष्मल त्वचा पर होती है । श्वासनलिका, जीर्णशोथ एवं दुर्गन्ध युक्त कफ में इसका प्रयोग करते हैं ।
5. वस्ति एवं गवीनी को वलप्रद होने के कारण हस्तिमेह एवं बहुमूत्र में इसका उपयोग किया जाता है ।
6. रक्त एवं श्वेतप्रदर में लाभ करता है ।
7. पार्श्वशूल एवं व्रणों में वाह्य रूप में लेपन करने से लाभ होता है । इसके अतिरिक्त संधिवात, ग्रन्थिशोथ, जीर्णव्रण, प्रमेह पिड़िका में इसका मरहम उपयोगी माना जाता है ।

रासायनिक संगठन:—इसमें उत्पलतैल, गोंद, राल का अंश पाया जाता है ।

पहिचान एवं मिलावट:—शल्लकी वृक्ष के गोंद को कुन्दुरू निर्यास भी कहते हैं । गोंद के टुकड़े सुनहरे रंग के तथा कुछ पारदर्शक होते हैं । इसमें तारपीन जैसी सुगंधि पाई जाती है । आग में डालने पर जलते हुये सुगंधि छोड़ता है । बाजारों में विदेशी कुन्दरू गोंद भी मिलता है । यह गोंद वासवेलिया फालेरिविडां के वृक्षों से प्राप्त होता है, यह गोंद के श्वेताभ भीतर से लसदार एवं कुछ सुनहरे रंग का होता है । स्वाद में कुछ कड़वा होता है । जल में घोलने पर ईमल्सन बन जाता है । यूनानिनिघण्टु कारों ने नरकुन्दुर, मादाकुन्दर, गोलकुन्दुर, किशोर कुन्दुरु आदि कई भेद किये हैं । बाजार में गारूगापिनेटा (अरमू–केकड़) के वृक्ष के गोंद की मिलावट शल्लकी गोंद के साथ किया जाता है ।

निम्बादिवर्ग MELIACEAE

वर्गलक्षण:—इस वर्ग में बड़े वृक्ष एवं वृक्षक होते हैं । पर्ण–एकान्तर, संयुक्त, उपपर्ण-रहित, पुष्पवाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल 3 से 6 होते हैं । पुंकेशर 8 से 10 या इससे भी अधिक होते हैं । परागकोश इसी नलिका में स्थित होता है । गर्भाशय 3 से 5 खानोंवाला, स्त्रीकेशर नलिका का मुख चौड़ा या गोल-सा होता है । पुष्प सुगन्धित होता है । बीज संख्या में 1 से 5 होते हैं । इस वर्ग की वनस्पतियाँ कुष्ठघ्न, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, कटुपौष्टिक, ग्राही एवं वामक होते हैं ।

82 निम्ब (नीम)

द्रव्यनाम ....संस्कृत..........निम्ब, अरिष्ठ, पिचुमन्द, प्रभद्र,
हिन्दी ....नीम, (बीज) निमोली,
लैटिन ....**Azadirachta indica A. Jass.**

वर्ग:—चरक कण्डूघ्न महाकषाय, तिक्तस्कन्ध एवं वमन द्रव्यों में नीम की गणना की है । सुश्रुत–आरग्वधादि, गुडूच्यादि एवं लाक्षादिगण में नीम का पाठ दिया है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरूक्ति:—निम्ब:—णिवि सेवने धातु से निम्ब बना है । अर्थात् इसके सेवन करने से आरोग्य की प्राप्ति होती है।

पिचुमन्द:—पिचुंकुष्ट मृद्नाति इति पिचुमन्द, अर्थात् यह कुष्ठरोग को नष्ट करता है ।

अरिष्ठ:—न रिष्टम् अरिष्टम्" अर्थात् नीम के सेवन करने से कोई विकार नहीं होता है ।

स्वरूप परिचय:—इसके मध्यम आकार के प्रायः सदाहरित वृक्ष होते हैं । पत्र मार्च, अप्रैल गिरते हैं । सम्पूर्ण वृक्ष स्वाद में तिक्त होता है । पर्ण शाखाओं पर समूह रूप में मसृण, सपत्रक तथा असम पक्षवत् होते हैं । पत्रक संख्या में 9 से 15, जिनमें एक अग्र पर अकेले तथा शेष पत्रक दण्ड पर प्रायः आमने-सामने स्थित होते हैं । पत्रक–भालाकार या लट्वाकार, अग्र–लम्बा नुकीला, चमकीले गाढ़े हरे रंग के होते हैं । पत्रांतट दन्तुर एवं कुछ हंसिये के आकार के होते हैं । पुष्प–छोटे–छोटे सफेद रंग के सुगन्धित पत्रकोर्णो एवं मञ्जरियो में खिलते हैं । फल–लम्बगोल, चिकने, मांसल एवं एक मींगीदार होते हैं । इन्हीं बीजों को निमोली कहते हैं, जिनसे तैल निकलता है ।

पुष्पकाल ....अप्रैल, मई, **फलकाल**–पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग ....काण्डत्वक् (छाल) बीजतैल, पत्र, पुष्प ।

मात्रा:—छाल चूर्ण 1 से 2 माशा, तैल 4 से 10 बूँद ।

प्राप्ति स्थान :— इसके वृक्ष विशेष रूप से बुन्देलखण्ड, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार उत्तर प्रदेश की सड़कों के आसपास एवं गांवों के समीप लगाये हुये पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान:— 2

गुण–लघु, रस–तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–कफ–पित्तशामक, रोचन, ग्राही, कृमिघ्न, यकृदुत्तेजक, कटुपौष्ठिक, रक्तशोधक, दाहप्रशमन, ज्वरघ्न, व्रणशोधन, कण्डूघ्न, पूतिहर, दाहप्रशमन, तैल–व्रणरोपण, कुष्ठघ्न, वेदनास्थापन, उदरकृमिनाशन, फल–भेदन, गर्भाशयोत्तेजक, कोमलपत्र एवं पुष्प चक्षुष्य । अधिक मात्रा में बीज एवं तैल का सेवन करने से कभी–कभी हृल्लास, वमन, रेचन आदि उपद्रव होने लगते हैं । निवारण–मधु एवं कालीमिर्च, स्नेहद्रव्य ।

आमयिक प्रयोग:—

1. कुष्ठ में नीम का पञ्चाङ्ग चूर्ण या क्वाथ के स्नान, पान एवं लेप के प्रयोग से कुष्ठ में लाभ होता है ।
2. दाहज्वर में नीमपत्र को मर्दनकर तथा मधु के साथ सेवन कराने से वमन होता है तथा दाह की शान्ति होती है ।
3. वातरक्त में पटोलपत्र एवं निम्बपत्र का क्वाथ मधु से सेवन करने पर दोषों का पाचन होता है ।
4. व्रणशोधनार्थ–निम्बपत्र का कल्क व्रणों पर लेपन हेतु उपयोग किया जाता है । शोफ एवं उरूस्तम्भ में निम्बपत्र का शाक का उपयोगी है ।
5. खालित्य–पालित्य में नीम तैल का नस्य करने से लाभ होता है ।
6. कामला में निम्बपत्र स्वरस को मधु के साथ सेवन करने से लाभ होता है ।
7. कृमि, रक्तपित्त, व्रण नेत्र वेदना अर्श आदि रोगों में निम्बपत्र एवं तैल का प्रयोग किया जाता है ।
8. निम्ब तैल त्वचा के दद्रु–पामा आदि अनेक रोगों पर उत्तम जन्तुघ्न प्रभाव डालता है । चिरकालीन फिरङ्ग के व्रण, दुष्ठव्रण और फोड़े-फुन्सियों पर यह तैल अधिक उपयोगी है । निम्बपत्र एवं तैल जीर्ण विषम ज्वर में विशेष लाभ करता है । इसके पुराने वृक्षों से स्वयं द्रवरस स्त्रवित होता है जिसे नीमताड़ी कहते हैं । इस रस का भी औषध में उपयोग होता है । संधिशोथ एवं आमवात में तेल की मालिश करते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठन:—छाल में निम्बीन या मार्गोसीन नामक तिक्तरालमय सत्व निम्बिडिन तथा निम्वोस्टेरोल, उड़नशील तैल तथा टैनिन पाया जाता है । बीजों में स्थिर तैल पाया जाता है । तिक्तसत ओलीकएसिड, लिनोलीकएसिड, निम्बोस्टेरोल आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्य योग:—निम्वादिक्वाथ, निम्बादिचूर्ण, निम्बारिष्ट, पञ्चनिम्ब चूर्ण, निम्बतैल, अर्शोघ्नीवटी, महासुदर्शन चूर्ण, रक्तशोधक वटी, महामञ्जिष्ठाद्यारिष्ठ, ज्वरसंहार रस ।

83 महानिम्ब (बकायन)

द्रव्यनाम........................संस्कृत.........महानिम्ब, रम्यक, द्रेक ।
हिन्दी......... बकाइन, बकायन ।
लैटिन......... **Melia azedarach** Linn.

गण:—सुश्रुत ने पिप्पाल्यादिगण एवं अधोभाग हर वर्ग में महानिम्ब का उल्लेख किया है ।

निरुक्ति:—महानिम्ब–महाश्चासौनिम्बश्चेति "महानिम्ब" अर्थात् इसका वृक्ष एवं फल बड़े होते हैं ।

रम्पाक:—रम्पाते अनेन भ्रमच्छर्दि कुष्ठादिरोदिभिः" अर्थात् इसके सेवन से भ्रम छर्दि, कुष्ठ आदि रोग नष्ट होते हैं ।

द्रेक:—स्थानिक भाषा में इसे डेंकण एवं डेक कहते हैं । पहाड़ों की उष्ण घाटियों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं । इसी कारण से इसे पर्वत निम्ब भी कहते हैं ।

स्वरूप परिचय:—यह नीम की जाति का और उसके समान आकृति वाला पर्णपाती वृक्ष है । काण्ड बहुशाखीय एवं मृदु होता है । पर्ण–22.5 से 45 से०मी० लम्बे, सपत्रक, पक्षवत्, प्रायः द्विपक्षवत् या त्रिपक्षवत्, पत्रक संख्या में 3 से 7 तक, लम्बे, लट्वाकार, भालाकार अग्र नुकीला एवं लम्बा (Acuminate) होता है । पत्रतट नीम सदृश गहरे दन्तुर होते हैं । पुष्प नीली आभा लिये हुये श्वेतवर्ण के सुगन्धित,
सवृन्तकाण्डज एवं पुष्पमञ्जरियों में निकलते हैं । फल गुच्छों में नीम के फलों से बड़े गोलाकार पकने पर पीताभ वर्ण के होते हैं जोकि काफी समय तक वृक्षों पर लगे होते हैं । फल गुठलीदार होते हैं ।

पुष्पकाल............मार्च, अप्रैल, फलकाल......... सितम्बर, अक्टूबर ।
प्रयोज्यअंग...........छाल, पत्र, पुष्प, फल ।

प्राप्ति स्थान:—इसके वृक्ष हिमालय की निचली घाटियों-उत्तराखण्ड गढ़वाल, हिमाचल, कश्मीर की निचली घाटियों से लेकर मैदानी भागों तक गांवों के समीप पाया जाता है । चीन एवं बलूचिस्तान में इसके स्वयंजात वृक्षों की प्रचुरता पाई जाती है । यह मूलतः पश्चिम एशिया का आदिवासी वृक्ष है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान:—

गुण–लघु, रुक्ष, रसतिक्त, कटु, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–अनुष्ण, प्रभाव–अर्शोघ्न, कर्म–अर्शोघ्न, कृमिघ्न, रक्तशोधक, कुष्टघ्न, ज्वरघ्न, प्रमेहघ्न, कटुपौष्टिक, गर्भाशय संकोचक, व्रणशोधन, व्रणरोपण एवं त्वग्दोषहर है ।

आमयिक प्रयोग:—

1. गृध्रसी में मूलत्वक् चूर्ण का सेवन करने से लाभ होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. प्रमेह में फलों के प्रयोग करते का विधान है । इसके अतिरिक्त अर्श, कुष्ठ, हृल्लास, श्वास, गुल्म, मूषिकाविष आदि रोगों में वकायन का प्रयोग किया जाता है ।

नव्यमत से वकायन त्वक्ग्राही, ज्वरघ्न एवं कृमिघ्न है । यह अजीर्ण कामला कृमि एवं फोड़े-फुन्सियों में उपयोगी है । पत्तों का कल्क दुष्टव्रण में लाभ करता है ।

रासायनिक संगठन:—इसमें हल्का पीला तिक्तरालदार क्षारोद गुण विरहित पदार्थ पाया जाता है । इसके अतिरिक्त इसमें शर्करा पाई जाती है । छाल के बाहरी भाग में कषायिन (टैनीन) एवं फलों में नीम की भांति मार्गोसीन नामक तिक्तसत्व पाया जाता है ।

मुख्य योग:—अर्शोघ्नीवटी ।

वक्तव्य:—कुछ विद्वानों ने अरलु Ailanthus-ex celsa का पर्याय महानिम्ब होने के कारण एवं वकायन के वृक्ष में साद्यश्यतान होने के कारण अरलु को शास्त्रीय महानिम्ब मानते हैं । मेरे विचार से महानिम्ब द्रेका (डेंकण) के लिये ही उपयुक्त है क्योंकि वाग्भट्ट ने महानिम्ब के फलों का उपयोग अर्श में लिखा है तथा वकायन के फलों का अर्श में कारगर प्रभाव देखा गया है । अरलु के फलों का प्रयोग व्यवहार में देखने को नहीं मिलता है । आचार्य प्रियवर्त शर्मा ने [महानिम्ब वकायन है] इस विषय में संदिग्धता व्यक्त की है । अरलु एवं वकायन के गुणधर्मों में समानता भी मिलती-जुलती है ।

84 मांसरोहिणी (रोहिणी)

द्रव्यनाम........................संस्कृत........... रोहिणी, मांस-रोहिणी, चर्मकषा (चमकरी) ।
हिन्दी............ रोहिणी, रोहण ।
लैटिन............ **Soymida febrifuga A. Juss.**

गण :– (1) चरक वल्यमहाकषाय एवं सुश्रुत ने न्यग्रोधादिगण में उल्लेख किया है।

निरुक्तिः– मांसरोहिणी– मांसरोहयति इति मांसरोहिणी "यह मांस का रोपण करती है या कटे हुये मांस के घाव की क्षतिपूर्ति शीघ्र करता है।

रोहिणीः– अर्थात् यह शीघ्र रोपण का कार्य करता है।

चर्मकषाः– चमर्णकराः "अर्थात् जो व्रण का शीघ्र रोपण कर नयी त्वचा लाती है उसे चर्मकरी कहते हैं।

स्वरुप परिचयः– वृक्ष मध्यम आकार के, पर्ण–पक्षवत् 22.5 से0 मी0 से 45 से0 मी0 लम्बी होती है। पत्रक 3 से 6 जोड़ों में अवृन्त, रुपरेखा में आयाताकार या अण्डाकार, चिकने तिर्यग् आधार वाले, पत्रदण्ड एवं पत्रक सिरा लाल रंग की होती है। पुष्प उभयलिंगी, एवं हरिताभ श्वेत वर्ण के मञ्जरियों में निकलते हैं। फल–रुपरेखा में मृदङ्गाकार, बड़े कठोर भूरे–लाल रंग कें तथा विदारी होते हैं। अन्दर अनके सपक्ष बीज होते हैं। छाल रक्ताभवर्ण की होती है।

पुष्पकाल .... अप्रैल, मई,।
फलकाल .... शीतकाल।
प्रयोज्य अंग .... छाल छालचूर्ण 1 से 3 माशा।

प्राप्तिस्थानः– भारत के उष्ण प्रदेशों में विशेष रुप से बुन्देलखण्ड, मिर्जापुर, बिहार, मध्यप्रदेश, छोटानागपुर के जंगलों में पाया जात है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः (2) गुण–लघु, रुक्ष, रस–कषाय, कटु, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–कफपित्तशामक, ग्राही, कटुपौष्ठिक, ज्वरघ्न, संन्धानीय, व्रणरोपक, रक्तस्तम्भक एवं अस्थिभग्न में उपयोगी है।

आमायिक प्रयोगः– (1) अतिसार एवं प्रवाहिका में छाल का उपयोग किया जाता है।

(2) क्वाथ स्तम्भक, व्रणरोपक एवं व्रणशोधक है। आमाशयान्त्र में छाल चूर्ण विशेष उपयोगी माना जाता है।

(3) जीर्णज्वर एवं विषमज्वर में क्वाथ का प्रयोग करते हैं। उरक्षत रक्तपित्त, कृमि, कास श्वास आदि रोगों में उपयोगी हैं।

रासायनिक संगठनः– छाल में तिक्त सत्व तथा राल (रेजिन) स्टार्च, एवं टैनिक ऐसिड आदि घटक पाये जाते हैं।

छाल की पहिचानः– छाल नलिकाकार एवं पट्टाकार एवं भूरे रंग की होती है। पुरानी छाल की बाहरी सतह पर अनुलम्ब दिशा में दरारें सी पड़ी होती हैं। छाल की भीतरी सतह लाल या मांसवर्ण की होती है। स्वाद में कषैलापन लिये हुये तिक्त होती है।

ज्योतिष्मत्यादिवर्ग CELASTRACEAE

वर्गलक्षणः– इस वर्ग में वृक्ष, वृक्षक एवं लतायें पाई जाती हैं। इस वर्ग की वनस्पतियों के पर्ण एकान्तर, अभिमुख, सादे, उपपर्णरहित या अस्थायी होते हैं। पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल प्रायः नहीं होते हैं। पुकेशर 3–5 दो थैली वाला, फल–अण्डा–कार या गोलाई लिये हुये होते हैं। स्त्री केसर नलिका छोटी एवं धारियों वाली होती है। इस वर्ग की वनस्पतियों के बीजों में तेल होता है। यह तेल वातघ्न, एवं नाड़ी–वल्य होता है।

85 ज्योतिष्मती (मालकंगनी)

द्रवयनाम ....संस्कृत .... ज्योतिष्मती, कंगुनी, सुवर्णलतिका, पारावतपदी ।
हिन्दी .... मालकंगनी, मालकङ्गी
लैटिन .... Celastrus paniculatus willd.

वर्गः– चरक शिरोविरेचन द्रव्य एवं सुश्रुत ने अधोभाग हर एवं शिरोविरेचन वर्ग में मालकंगनी का पाठ दिया है।

निरुक्तिः– ज्योतिष्मतीः– ज्योतिअस्तिअस्या" अर्थात् बीज तेल नेत्रों के ज्योतिवर्धक है।

कंगुनीः– कं सुखं अंङ्गति प्रापयति "बह्नि बुद्धि स्मृति प्रदत्वात् यह अग्निदीपक, बद्धिवर्धक, समृतिप्रद होने से सुख को देती है।

सुवर्णलतिकाः– पके फल सुनहरे रंग के होने से लता सुवर्ण सघश होने से सुवर्णलतिका कहते हैं।

स्वरुप परिचयः– यह वृक्षारोही झाड़ी सघश काष्ठमय लम्बी लता है। इसकी कोमलशाखायें वातरन्ध्रों के चिह्नों से बिन्दुकित होती है पत्रों की लम्बाई, चौड़ाई एवं रुप रेखा में बड़ी भिन्नता पाई जाती है। पर्ण–अमिलट्वाकार, गोलाकार, अण्डाकार अथवा आयताकार, पत्रतट दन्तुर पत्राधार की ओर चौड़ाई क्रमश कम एवं पर्णसवृन्त होता है। पुष्प छोटे–छोटे पीताभ हरितवर्ण के नम्य एवं मञ्जरियों में लगते हैं। फल मटर के आकर में, पकने पर लाल पीले रंग के तथा तीन कोष्ठों वाले एवं प्रत्येक कोष्ठ में तिकोने बीज होते हैं। बीजों से तेल निकलता है।

पुष्पकाल .... अप्रैल, मई,।
फलकाल .... सिमम्बर, अक्टूबर
प्रयोज्य अंग .... बीज एवं बीज तेल, –तेल 2 से 10 बूंद।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थानः— यह हिमालय की निचली घाटियों से लेकर भारत के मैदानी भागों के समशीतोष्ण प्रदेशों में सर्वत्र स्वयंजात पाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदने कर्मज्ञानः (3) गुण–तीक्ष्ण, स्निग्ध, सर, रस–कटु, तिक्त, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–मेध्य, प्रधानकर्म–वातकफनाशक, वाजीकार, रक्तप्रसादन, दीपन–पाचन, कफनिस्सारक, पित्तप्रकोपक एवं वातनाशक है।

आमायिक प्रयोगः— ज्योतिष्मती तेल शिरोविरेचनार्थ उपयोगी माना गया है। चरक एवं सुश्रुत मतानुसार ज्योतिष्मती उन्माद एवं अपस्मार में उपयोगी है। मृगी में भी तेल सेवन का विधान है। सिध्म में ज्योतिष्मती तेल का विधान है। ज्योतिष्मती मेध्य एवं वातहर होने बीजों का वर्धमान विधि से सेवन करने का विधान है।

मालकांगनी तिक्त, उष्ण, उत्तेजक, स्वेदजनन, मूत्रजनन, वातहर एवं त्वग्दोषहर है। इसकी क्रिया मस्तिष्क और नाड़ियों पर होती है। स्मरणशक्ति के कम होने पर इस तेल को गाय के घृत के साथ देते हैं।

रासायनिक संगठनः— बीजों में स्थिरतैल, तिक्तरालीय पदार्थ, रञ्जक द्रव्य एवं अल्पमात्रा में टैनिन पाया जाता है।

मुख्ययोगः— ज्योतिष्मतीतेल, मरिच्यादितेल, मल्लतेल।

86 कृष्णमोक्षक (जमरासी)

द्रवयनाम ....संस्कृत .... मुष्कक, कृष्णमोक्षक,
हिन्दी .... जमरासी, कालामूका, रतनरुर,
लैटिन ....**Elaeodendron gleaucum** Pers
मुष्कक :— **Schrebera Swietenioides** Rloxb.

स्वरुप परिचयः— इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। काण्ड बहुशाखीय, गोल, पत्रतट, एवं गहरे हरे रंगे के होते हैं। पुष्प हरित पीताभ छोटे, पत्रकोणोद्भुत होते हैं। फल–अष्ठिल, आधइञ्च लम्बे तीक्ष्णग्र होते हैं।

पुष्पकाल .... अप्रैल, मई, ।
फलकाल .... सितम्बर, अक्टूबर
प्रयोज्य अंग .... छाल, पत्र।

प्राप्तिस्थानः— भारत के शिवालिकवनखण्ड, बुन्देलखण्ड, मध्यप्रदेश, राजस्थान, एवं मैदानी उष्ण भागों में सर्वत्र सुलभ है। कतिपय स्थानों पर इसे भूतकेश भी कहते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः कषाय, तिक्त, उष्णवीर्य, कफवातघ्न, ग्राही, शोथघ्न, कृमिनाशक है।

आमयिक प्रयोगः— पत्तियों को कुचल कर सुंघाने से छीकें आती हैं एवं प्रतिश्याय एवं सिरदर्द में लाभ होता है। भूतोन्मान में पत्तियों का धुआं चेतना हेतु दिया जाता है। बिहार के आदिवासी सन्धिबात में छाल का लेप करते हैं।

ग्रामीणलोग श्वास–कास में भी छाल का उपयोग करते हैं।

रासायनिक संगठनः— इसकी छाल में क्षारतत्व एवं राल जैसा पदार्थ पाया जाता है। टैनीन, कैल्सियम आक्सलेट आदितत्व पाये जाते हैं। क्षारतत्व की मात्रा अधिक होने पर संहिताकारों ने श्वेत मुष्कक को भी क्षारश्रेष्ठा कहा है।

वक्तव्यः— संहिताग्रन्थों एवं निघण्टुकारों ने श्वेत एवं कृष्ण भेद से दो प्रकार के मोक्षक का उल्लेख किया है। श्वेतमोक्षक का उल्लेख जात्यादिवर्ग के प्रसंग में किया जायेगा। देखिये जात्यादिवर्ग में।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बदरादिवर्ग RHAMNACEAE

वर्गलक्षणः– इस वर्ग में वृक्ष और वृक्षक पाये जाते हैं। इस वर्ग की वनस्पतियों के पत्र सादे एकान्तर, अथवा अभिमुख या बहुधा अपर्णयुक्त होते हैं। पुष्प रचना विभागित, पुष्प वाह्यकोष नलिका कार 4 या 5 दल का, पुकेशर 4 से 5ए पुष्प वाह्य कोष की नलिका पर दो दांतों पर लगे होते हैं। पराग कोश दो खानों वाला कार्णिकायुक्त होता है। गर्भाशय 2–4 खानों वाला स्त्रीकेशर नलिका कुछ मुड़ी हुई होती है। फल गोल अण्डांकृति में शुष्क या मांसल होते हैं। गुठली में 1 से 4 खाने होते हैं। प्रत्येक गुठली में एक बीज होता है। इस वर्ग की वनस्पतियाँ ग्राही, पौष्टिक, शोथघ्न और पित्तनाशक होता है।

87 राजबदर (उन्नाव)

द्रवयनाम .... संस्कृत .... राजकोल राजबदर, सौवीरक, सौबीरबदर,
हिन्दी .... उन्नाव, तितमबेर,
लैटिन ....**Zizy phus sativa Gaertn.**

गणः– चरक हृध महाकषाय, हिक्कानिग्रहण, सुश्रुत उदर्दप्रश्मन, श्रमहर, स्वेदोषग गण में बदर का उल्लेख किया है।

स्वरुप परिचयः– राजबदर में कांटेदार झाड़ी नुमा छोटे वृक्ष होते हैं। पर्ण–बदर पत्र सघश, स्थूल, रोमश, भालाकार, मृदु होते हैं। पुष्प–पत्रकोणोद्भुत, मुण्डाकार, फल–झड़वेर के सघश, अष्ठिफल, मांसल एवं रक्त वर्ण के होते हैं। काण्ड छाल रक्तवर्ण की होती है।

इसकी कई जातियाँ पाई जाती हैं जिसमें कोलबदर **Zizyphus jujuba Lam** झड़वेरी कहते हैं। दूसरी किस्म को कर्कन्धु कहते हैं। ये सभी किस्में जंगलों में पाई जाती हैं।

पुष्पकाल .... सितम्बर, नवम्बर,
फलकाल .... दिसम्बर, मार्च
प्रयोज्य अंग .... शुष्कफल, पत्र, छाल, गोंद।

प्राप्तिस्थानः– पंजाब, हिमालय प्रदेश, कश्मीर, उतरप्रदेश एवं बंगाल में पाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः (2) गुण–स्निग्ध, रस-मधुर, विपाक–मधुर वीर्य–शीत। प्रधानकर्म–कफनिस्सारक, रक्तविकार शामक, तृषाहर, प्रमेहनाशक एवं मूत्रल है।

आमयिक प्रयोग:—वाह्यदाह, नेत्राभिष्यन्द में पत्रलेप, एवं आभ्यन्तर प्रयोग में वातजकास, श्वास, प्रतिश्याय, शोथ, क्षय अरोचक, ज्वर, रक्तपित्त, रक्तविकार एवं मूत्रकृच्छ्र में उपयोगी है ।

अर्श में बदरीमूलत्वक् क्वाथ से रोगी का परिषेक करते हैं । अतिसार, रक्ततिसार प्रदर, प्रवाहिका में पत्र एवं मूलत्वक् का प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठनः—फल में शर्करा, पिच्छिल द्रव्य, त्वक्पत्र में कषाय द्रव्य, काष्ठ में जलीय सार, फल में एवं छाल में टैनीन पाया जाता है।

वक्तव्य:—चरक में बदरबीज का हिक्कानिग्रहण, बदरफल का श्रमहर और हृध, उदर्दप्रशमन, स्वेदोपग दंशेमानि में उल्लेख है। विरेचनीयग देशेमानि में कुवल, बदर, कर्कन्धु का एक साथ उल्लेख है। फलासव में तीनों का उल्लेख

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। सुश्रुत ने वांतसंशमन वर्ग में कोल एवं वदर का उल्लेख किया है। रसशास्त्र में वदरीत्वक् से अभ्रक शोधन किया जाता है।

द्राक्षादिवर्ग VITACEAE

वर्ग लक्षणः—इस वर्ग की वनस्पतियों में बहुधा लतायें पाई जाती हैं। लताओं एवं पौधों के काण्ड पर कुछ अन्तर पर सन्धियाँ पाई जाती है। काण्ड में जलीयांश अधिक होता है। पर्ण–एकान्तर, अधःपत्र अभिमुख, पत्राङ्गुल, सादे या संयुक्त होते हैं। पुष्प पत्राभिमुख, मञ्जरियों में सिंह पुच्छाकार, स्तवक के रूप में अथवा विभाजित पुष्प की रचना में होते हैं। पुष्पवाह्य कोश के दल छोटे, अखण्डित धार वाले 4–5, आभ्यन्तरदल–संयुक्त या विभक्त और अस्थायी होते है। स्त्रीकेशर–गर्भाशय 2–6 खाने वाला प्रत्येक खाने में 1 से 2 आदिबीज होते हैं। इस वर्ग की वनस्पतियों में विदाही या दाहक रस होता है। इनमें ग्राही, शोथघ्न एवं वल्य आदि गुण होते हैं।

88 द्राक्षा (मुनक्का)

द्रव्यनाम .... संस्कृत ....द्राक्षा, गोस्तनी, मृद्विका, कपिशा ।
हिन्दी ....मुनक्का दाख, अंगूर ।
लैटिन ....**Vitis Vinifera Linn.**

वर्गः—चरक [1] स्नेहोपग, विरेचनोपग, कासहर, ज्वरहर गण में एवं सुश्रुत ने काकोल्यादि, परुष कादि गण में द्राक्षा का उल्लेख किया है।

निरुक्तिः—द्राक्षाः—द्रौंतिरसत्वात् द्राक्षा स्वादिष्ठरस होने से इसे द्राक्षा कहते हैं।

गोरत्तनीः—फल की आकृति गाय के थन के सदृश होने से इसे गोस्तनी कहते हैं।

मृद्वीकाः—अधिक मुलायम होने से असुविधा बरतने पर जल्दी खराब होने का डर रहता है।
कपिशा :— पके फलों का रंग कपिशवर्ण का होने से कपिशा कहते हैं।

मधुरसा :— इसका रस अधिक स्वादिष्ट होता है।

स्वरुप परिचय :— यह सुदीर्घ वहुवर्षायु लता है। इसके फलों को मुनक्का (दाख) कहते हैं। इसके जंगली एवं बगीचे भेद से दो प्रकार का होता है। आकार भेद से दाख सफेद, लाल, काला अनेक प्रकार का होता है। औषधीय योगों में मुनक्का का ही प्रयोग किया जाता है। इसके सूखे फलों को किशमिश कहते हैं। पर्ण–गोल, खण्डित, दन्तुरित रोमिल, हरितरक्ताभ, पुष्प–सुगन्धित, गुच्छों में, फल–सरस, गुच्छों में गोल, स्वाद में पके फल मधुर होते हैं।

पुष्पकाल .... मार्च, अप्रैल,
फलकाल .... अगस्त, सितम्बर
प्रयोज्य अंग .... फल, (मुनक्का) किशमिश ।

प्राप्ति स्थान :— .हिमालय के समीपवर्ती, शीतप्रधान प्रान्त, कश्मीर, प्रान्त, उत्तर–प्रदेश, उत्तराखण्ड, हिमालय, काबुल बलूचिस्तान, अफगानिस्तान आदि प्रदेशों में पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— गुण–स्निग्ध, गुरु, मृदु, रस–मधुर, विपाक, मुधुर, वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–वातपित्तशामक, वृहण, वृष्य, स्नेहोपग, विरेचनोपग, संतर्पण, तृषा, दाह एवं ज्वरनाशक, मध्य, सौमनस्यजनन, हृद्य, रक्तप्रसाधन, रक्तपित्तशामक, श्वास–कासहर, क्षयनाशक, प्रभावी, लेखनीय, वाजीकर, कामोत्तेजक, मूत्रल,।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग :— क्षय, मूर्च्छा, भय, मदात्यय, मस्तिष्कदौर्वल्य, अरोचक, तृषा–दाह, उदावर्त, कामला, रक्तपित्त, उरक्षत, श्वास–कास, मूत्रकृच्छ, शुक्रदौर्वल्य, आदि विकारों में उपयोगी है।

रासायनिकसंगठन :— फल में शर्करा, (ग्लुकोज) टैनीन, टारटेरिकएसिड द्राक्षाम्ल, पोटासियमसल्फेट, फास्फोरस, द्राक्षाम्ल, मै मैलिकएसिड, क्षारीय द्रव्य एवं लौह आदि तत्व पाये जाते हैं। सूखे फलों में, कैल्सियम, मैग्नेशियम, पोटासियम् एवं लौह तत्व पाया जाता है।

मुख्ययोग :— द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ठ, द्राक्षादिलेह, चरक ने आसव योनि में द्राक्षा का उल्लेख किया है। मद्यासवों में रस का विशेष उल्लेख है।

89 अस्थिश्रृंखला (हड़जोड़)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... वज्रवल्ली, अस्थिश्रृंखला, अस्थिसंहार, ग्रन्थिमान् ।
हिन्दी .... हढ़जोर, हड़जोरी ।
लैटिन .... **Cissus quandrangularis** Linn..

स्वरुप परिचय :— इसकी लंबी लतायें पायी जाती हैं । काण्ड चिकना एवं हरे रंग का, मांसल तथा चतुष्कोणीय और पर्वों पर संकुचित एवं संयुक्त–सा होता है। संधियों पर तन्तु होते हैं। सन्धियां पर पर्ण एकान्तर क्रम में होते हैं। पर्ण–मांसल प्रायः तीन खण्ड युक्त, रुपरेखा में हृब्दतू लट्वाकार, सूक्ष्म, दन्तुर धारवाली, एवं छोटे पर्णवृन्त युक्त होते हैं। अनुपत्र अर्ध चन्द्राकार, तथा सरलधार वाले होते हैं। पुष्पवाहक दण्ड छोटा होता है, इस पर छत्रकवत् पुष्प खिलते हैं। फल गोल बड़ी मटर के बराबर, बीज मांसल तथा रक्तवर्ण के होते हैं। प्रत्येक फल में अभिलट्वाकार रुपरेखा का एक बीज होता है। बीज बाहर से भूरे रंग के होते हैं।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त,
फलकाल...................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग .... ताजेकाण्ड एवं पत्र । स्वरस 1 से 2 तोला ।

प्राप्तिस्थान :— समस्त भारत के उष्ण प्रदेशों में हड़जोड़ की लतायें पाई जाती हैं। यह बगीचों एवं घरों में लगाई हुई पाई जाती हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—(1) गुण–लघु, रुक्ष, रस–मधुर, विपाक–अम्ल । प्रधानकर्म–कफवात–शामक, पित्तवर्धक, स्तम्भन, अस्थिसंन्धानीय, दीपन, पाचन, अनुलोमन, कृमिघ्न रक्तशोधक अर्शनाशक हैं।

आमयिक प्रयोग :— अस्थिभग्न में हड़जोरी को धृतसिद्ध कर सेवन करने से लाभ होता है। भग्न स्थान पर लेप करने से टूटी हड्डी जुड़ जाती है।

2–यह उष्ण एवं रसायन है। ग्रहणी, अग्निमांध, रक्तपित्त एवं अनियमित आर्तव में उपयोगी है। शाखाओं का चूर्ण श्वास में भी उपयोगी माना जाता है। पूतिकर्ण में कान में रस डालते हैं। पत्र एवं कोमल शाखाओं का चूर्ण अजीर्ण अन्य उदर रोगों में देने से लाभ होता है। नकसीर में स्वरस का नस्य देते हैं।

रासायनिक संगठन :— हड़जोड़ में कैल्सियम आक्जलेट, केरोटीन, एवं काफी मात्रा में विटामिन सी पाया जाता है।

मुख्ययोग :— अस्थिसंहार तैल ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अरिष्ठकादिवर्ग SAPINBACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में वृक्षक एवं लतायें पाई जाती है। पर्ण–वहुधा एकान्तर, या अभिमुख, सादे संयुक्त, उपपर्णरहित होते हैं। पुष्पवाह्ययकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल 4 से 5, पुंकेशर गर्भाशयाध संलग्न, तथा कर्णिका के भीतर संलग्न होते हैं। फल वहुधा पंखवाले,, मांसल होते हैं।

इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः वामक, विषहर और जन्तुघ्न होती हैं।

90 अरिष्ठक (रीठा)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... अरिष्ठः फेनिल,
हिन्दी .... रीठा, रिठा,
लैटिन ....**Sapindus mukurossi Gartn.**

निरुक्ति :—अरिष्ठ :—यह रोगी के लिये अशुभ नहीं होता है। वामक होने से कफघ्न है।

फेनिल :— इससे फेन उत्पन्न होता है। पानी में डालने पर झाग देता है।

स्वरुप परिचय :— इसके वृक्ष काफी बड़े और देखने में सुन्दर होते हैं। पर्ण–संयुक्त, एकान्तर, 30 से0 मी0 से 50 से0 मी0 लम्बे, समपक्ष, पत्रक–युग्म, अभिमुख, अथवा एकान्तर क्रम में स्थित, आकार में लम्वाग्र, भालाकार होते हैं। पुष्प हलके गुलाबी रंग के, फल गोलाकार, गूदेदार, एक गुठलीवाला, बीज काले रंग का एवं बीज को तोड़ने पर बीज मग्जा में तैलीय अंश पाया जाता है। रीठा को दूसरी जाति भी पाई जाती है जिसे Sapindus trifoliaturs Linn कहते हैं। ये वृक्ष दक्षिण भारत में पाये जाते हैं।

पुष्पकाल .... सितम्बर, अक्टूबर,
फलकाल .... मार्च, अप्रैल,
प्रयोज्य अंग .... फल का छिलका, बीज (मग्ज)

प्राप्तिस्थान :— ये वृक्ष हिमालय प्रदेश के निचली घाटियों के 1,200 मीटर ऊंचाई से लेकर समस्त भारते के बंगाल, आसाम, उत्तरप्रदेश आदि में गावों के आस–पास ये वृक्ष लगाये हुये मिलते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदने कर्मज्ञान :— गुण–लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–वामक, प्रधानकर्म, रेचक, कृमीघ्न, कुफनिस्सारक, गर्भाशय–संकोचक आमवातनाशक, मूर्च्छा एवं अपतन्त्र :नाशक ।

आमयिक प्रयोग :— शिर–शूल एवं अर्धावभेद में रोगियों की नाक में 3–4 बूंद डालने से तत्काल लाभ होता है।

श्वास में उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है। हिस्टीरिया एवं अपस्मार में नस्य देने से लाभ होता है। नाक कें अधिक बूंदे नहीं डालनी चाहिये। इस बात का विशेष ध्यान रखें।

यह वात, कफ, कुष्ठ, कण्डू और विस्फोट नाशक है। रीठे का जल पिलाने से वमन होता है और वमन द्वारा विष निकलता है।

रासायनिक संगठन :— फल में सैपोनिन लगभग $11\frac{1}{2}$ इसके अतिरिक्त द्राक्षशर्करा और लवावसधश पैक्टीन नामक क़फघ्न पदार्थ पाया जाता है। बीज तैल का उपयोग साबुत बनाने के काम आता है इसमें चर्बी पाई जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य :— संहिता ग्रन्थों में अरिष्ठक शब्द से निम्न एवं रीठा इन दो द्रव्यों के लिये आया है। चरक सुश्रुत ने फेनिल शब्द इसके लिये उपयुक्त बतलाया है।

91 काकादनी (कनफोटा)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... काकादनी, कर्णस्फोटा,
हिन्दी .... कन्फोटा, लताफटकी,
लैटिन ....**Cardiospermum halicacabum L.**

स्वरुप परिचय :— यह वर्षाकालीन एक वर्षायु आरोही लता जाति की वनस्पति है। पर्ण–एकान्तर, रोमिल, दन्तुर, एवं त्रिकोणाकार होते हैं। वृन्तमूल पर दो उपवर्ण होते हैं पुष्प–पत्रकोणीय पुष्पदण्ड पर निकलते हैं। पुष्प छोटे श्वेत वर्ण के, फल–तीन धार वाले, फल–पकने पर काले रंग के वीज के ऊपरी भाग पर श्वेत चिन्ह होता है। यह बीज कौवे की आँख की तरह दिखाई देती है।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त,
फलकाल.....................शीतकाल,
प्रयोज्य अंग ....पंचाग।

प्राप्तिस्थान :— यह हिमालय की उष्ण घाटियों से लेकर भारत के उष्णप्रान्तों में वर्षाकाल में सर्वत्र पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— गुण–कटु, वीर्य उष्ण कर्म–त्रिदोषघ्न, वामक, मूत्रल, रजःस्त्राव, नियामक, आनाह, आमवात, कटिवात, शोथ, अर्बुद आदि नाशक है।

आमयिक प्रयोग :— मूल–मृदुरेचक, आमवात, वातव्याधि, अर्श, अश्मरी नाशक के रूप में प्रयोग किया जाता है। कटीशूल, गर्भाशय संकोच निवारक हेतु मूल का प्रयोग किया जाता है।
शिरः शूल में पत्रों का लेप करते हैं। उपदंशजन्य व्रणों पर पत्रों का लेप करते है। शोथ एवं अर्बुद में पचांड्ग का व्याह्य प्रयोग लेपन हेतु किया जाता है। आर्तव दोष एवं मासिक धर्म की विकृति में इसका प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन :— इसमें झागदार सैपोनिन नामक तत्व पाया जाता है अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर विषैला प्रभाव होता है।

वक्तव्य :— सुश्रुत संहिता में काकादनी का उल्लेख है। यद्यपि टीकाकारों ने काकादनी से काकमारी, काकमारी, वायसतिन्दुक, ज्योतिष्मती आदि अर्थ किये हैं। काकदनी के मूल के प्रयोग का विशेष उल्लेख मिलता है जबकि ज्यातिष्मती के फलों का विशेष रुप से प्रयोग है।

92 कोशाम्र

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... कोशाम्र, कृमिवृक्ष, सुकोशक ।
हिन्दी .... कोसम
लैटिन ....**Schleichera oleosa** (Lour) Merr

स्वरुप परिचय :— इसके बड़े छायादार वृक्ष होते हैं। काण्ड बहुशाखिय पर्ण–पक्षवत् 8 से–16" ईञ्चलम्बे, पत्रक संख्या में 2 से 4, जोड़े, अखण्ड 3 से 10" लम्बे, आयताकार, अवृन्त, तथा लम्बे होते हैं। पुष्प मञ्जरी में हरित–पीताभ रंग के, फल लम्बे–गोल एवं किञ्चित् नुकीले मांसल होते हैं। बीज 1 से 3 चिकने तथा चपटे होते हैं। यह वृक्ष लाख

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के लिये उत्तम माना जाता है। लाख के कीड़ों को पालने के लिये यह उपयोगी है। इसके बीजों से तैल निकलता है। व्यापारी सरसों के तैल के साथ इसके तैल का भी मिलावट कभी-कभी करते हैं।

पुष्पकाल .... मार्च, अप्रैल,
फलकाल .... अगस्त, सितम्बर
प्रयोज्य अंग .... छाल, बीज,

प्राप्तिस्थान :— भारत के उष्ण प्रदेशों में विशेषकर शिवालिक वनखण्ड, बुन्देलखण्ड, बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि प्रान्तों में सर्वत्र उपलब्ध है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— (1) गुण— लघु, उष्ण, गुरु, कर्म-वात, कफनाशक, फल—ग्राही, अम्ल-रस-युक्त, गुरु, अग्निदीपक, रुचिकारक, रक्तपित्त, कुष्ठ, शोथ आदि विकारों में उपयोगी है।

आमयिक प्रयोग :— इसकी त्वचा गलित कुष्ठ तथा अन्य त्वचा के रोगियों में उपयोगी है। पशुओं के व्रणों पर कीड़े पड़ने पर इसके बीज का चूर्ण डालते हैं। बालों के झड़ने या बालों या बालों की वृद्धि के लिये इसका तेल बहुत उपयोगी है।

रासायनिक संगठन :— बीजों में साइनोजेनेटिक ग्लुकोसाइड पाया जाता है।

आम्रादिवर्ग ANACARDIACEAE

वर्गलक्षण :—.इस वर्ग में छोटे एवं बड़े वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण विन्यास एकान्तर, क्वचित् अभिमुख सादे या संयुक्त पुष्प स्त्री एवं पुंपुष्प अलग-अलग होते हैं। पुष्पवाह्यकोश के दल 3 से 5, पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल 3 से 7" पुंकेशर 4-5, फल 1 से 5 खाने वाला, अस्थ्लि, एवं प्रत्येक खाने में एक बीज होता है। इस वर्ग की वनस्पतियाँ पौष्टिक एवं रसायन होती हैं। फल से चिकना दाहक रस निकलता है। इस वर्ग में भिलावा, आम, काजू, चिरोंजी, काकड़ाश्रृङ्गी आदि मुख्य हैं।

93 आम्र (आम)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... आम्र, सहकार, चूत, रसाल ।
हिन्दी .... आम
लैटिन ....**Mangifera indica Linn..**

वर्ग :—चरक (1) हृध, छर्दिनिग्रह महाकषाय, पुरीषसंग्रहणीय, मुत्रसंग्रहणीय, कषायस्कन्ध एवं अम्लस्कन्ध में आम्र का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :— आम्र—अम्यते प्राप्ते आरोग्य वलं च अनेन" इसके सेवन से आरोग्य एवं बल का प्राप्ति होती है।

रसाल :— इसका रस मधुर गुणों वाला होता है।

सहकार :— अतिशय सौरभ भस्य इसका वृक्ष अतिशय सुख देने वाला एवं सुन्दर होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरुप परिचय :— इसके सदा हरित बड़े वृक्ष होते हैं। पर्ण-अपत्रक (Simple) तथा एकान्तर (Alternate) शाखाओं के चारों और समूह में आवृत , पर्ण-अभिलट्वाकार, भालाकार, लम्बोतरे, अखण्डित, चर्मिल, मसृण एवं गाढे हरे रंग के होते हैं। पर्ण सवृत्र 9 से $2\frac{1}{2}$ इंच तक लम्बा, नवीन पत्र कोमल गुलाबी रंग के, सुगन्धित, पुष्प-शाखाओं के अग्रभाग में गुच्छों में या मञ्जरियों में श्वेताभ-हरित एवं सुगन्धित होते हैं। पुष्प द्विलिंगी, पुष्पों की मञ्जरियाँ को तोड़ने पर दाहक रस निकलता है। फल-अष्ठिफल, आकार में लम्बगोल, चपटा होता है। इसके अग्र भाग की और छोटा सा नुकीला उभार होता है। गुठली प्रायः रेशेदार होती है। कच्चे फलों का अचार या अमचूर बनाया जाता है।

पुष्पकाल .... मार्च, अप्रैल,।
फलकाल................ मई, जून ।
प्रयोज्य अंग .... फल, बीजमञ्जा, पत्र।

मात्रा :— बीजमात्रा 1 से 3 ग्राम ।

प्राप्तिस्थान :— आम भारतवर्ष एवं पूर्वि द्वीप समूह का आदिवासी पौधा है। यह ग्रीष्म-प्रधान देशों में विशेष रुप से पाया जाता है। इसकी कई किस्में भारत में पाई जाती है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—(2) गुण-लघु, रुक्ष, रस-कषाय, पका फल मधुर, कच्चा अम्ल, विपाक-कटु, वीर्य-शीत, बीजमञ्जा-कफ-पित्तशामक, स्तम्भन, मूत्रसंग्रहणीय, रक्तरोधक, व्रणरोपण, आग में भूना हुआ कच्चा फल-दाहप्रशमन, रोचन, दीपन लूनाशक, पक्वफल-वातपित्तशामक स्नेहन, अनुलोमन, सारक, हृघ, वृष्य, वल्य, वर्ण्य, वृंहण, शोणितस्थापन, कोमल पत्र एवं मूत्र कषायं, ग्राही, कफ तथा पित्तघन है। पुष्प-रोचन एवं दीपन होते हैं।

आमायिक प्रयोग :— अंशुघात या लू लगने पर आम के कच्चे फलों के पत्ते का वाह्य एवं आभ्यन्तर प्रयोग करने पर विशेष लाभ होता है।

अरुचि को दूर करने हेतु आम्रपानक का सेवन लाभ करता है । पके हुये आम्ररस का प्रयोग रसायन कल्प हेतु दुग्ध के साथ विशेष रुप से किया जाता है। गुठली का प्रयोग अतिसार, रक्तातिसार में किया जाता है। छर्दि एवं ज्वर में भी गुठली का प्रयोग किया जाता है।

रक्तार्श एवं अत्यार्तव में भी आम की गुठली लाभ करती है।

रासायनिक संगठन :— छाल एवं गुठली में टैनीन पाई जाती है। कच्चे फलों में टाटरिक एसिड, गेलिक एसिड, पोटाश पाया जाता है। पके हुये फलों में वीटामिन सी, कार्बोहाइड्रेट्स, कैल्सियम, खनिजतत्व, फासफोरस, लौह, एस्कोर्बिक एसिड, ग्लुकोज, सुक्रोज आदि तत्व पाये जाते है।

मुख्ययोग :— पुष्पानुक चूर्ण, आम्रपानक, गंगाधर-चूर्ण,।

94 आम्रातक (अम्बाड़ा)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... आम्रातक, कपीतन, मर्कटाम्र
हिन्दी .... अम्वाड़ा आमड़ा
लैटिन ....**Spondias pinnata (L) Kurz..**

वर्ग :— भावप्रकाश- आम्रादिफलवर्ग, चरक हृघदेशेमानि एवं सुश्रुतने मदात्यय चिकित्सा में आम्रतक पानक के रूप में उल्लेख किया जाता है

निरुक्ति :— कपीतन :— तनु विस्तारे अर्थात् इसका वृक्ष काफी बड़ा होता है एवं पके हुये फल देखने में बन्दरों के वर्ण सदृश होते है

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आम्रातक :— इसके गुण आम के गुणों से कुछ मिलते हैं। इसलिये आम्रातक कहते हैं ।

स्वरूप परिचय :— इसका वृक्ष पर्णपाति जींगन सदृश होता है। काण्ड एवं शाखायें चिकनी, पर्ण–विषमपक्षाकार (imparipinnate) 12 से 18" इंच लम्बी, एकान्तर, पत्रक संख्या में 9 से 11 सम्मुख क्रम से स्थित, आयताकार, अण्डाकार, सरलधार–युक्त, मृदु एवं पतझड़ होने से पूर्व पीले रंग के पत्र होते हैं। पुष्प मञ्जरियों पर्ण कोणोद्‌भूत श्वेताभ वर्ण के होते हैं। फल–लम्ब गोल, अष्ठिलयुक्त, कच्चे फल कुछ खट्टे होते हैं। पर्ण एवं फल कुछ सुगन्धित होते हैं। निर्यास (गोंद) पीलाई लिये हुये हलके भूरे रंग का होता है।

पुष्पकाल .... मई, जून,
फलकाल .... शीतकाल,
प्रयोज्य अंग .... फल, गोंद

प्राप्तिस्थान :— इसके वृक्ष हिमालय की निचली घाटियों से लेकर भारत के पठारी प्रदेशों में इसके वृक्ष स्वयं जात पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—(2) गुण–गुरु, स्निग्ध, रस–अम्ल, कषाय, मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–कफ पित्तवर्धक तथा पक्वफल–वातपित्त शामक, और कफवर्धक है। इसके अतिरिक्त यह रोचक हृध, रक्तस्तम्भक, सारक, दाहप्रशन, वल्प, वृष्य एवं वृहण है। छाल एवं पत्र स्तम्भक होते हैं।

आमयिक प्रयोग :— फलमञ्जा पित्तातिसार में उपयोगी मानी जाती है । फलस्वरस कर्ण शूल में उपयोगी माना जाता है। फल ग्राही एवं रक्तपित्तशामक माना जाता है। मदात्यय के निवारण हेतु आम्रातक पानक का विधान है।

रासायनिक संगठन :— इसके फलों में अल्प मात्रा में साइट्रिक एसिड पाया जाता है।

95 भल्लातक (भिलावा)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... भल्लातक, अरुष्कर, अग्निमुख, शोफहेतु ।
हिन्दी .... भिलावा।
लैटिन ....**Semecarpus anacardium** Linn f...

वर्ग :— चरक दीपनीय, कुष्ठघ्न, मूत्रसंग्रहणीय महाकषाय एवं सुश्रुत न्यग्रोधादि और मुस्तादि गण में भल्लातक का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :— भल्लातक :— भल्ल इवातति वृणोति का भल्लातकः अर्थात् मलों का भेदन करने में यह शरीर में भाले की तरह गति करता है।

अग्निमुखी :— अग्निवत् मुखमस्य दाहकरत्वात् अर्थात् उष्ण होने से अग्नि की तरह दाह करता है।

अरुष्कर :— अरुर्वणंकरोति अर्थात् फलरस के लगने से शरीर में व्रण एवं छाले पड़ जाते हैं।

शोफहेतु :—अग्नि प्रधान गुण होने से यह उष्णप्रकृति वालों की असह्य होता है। यह शोफ का कारण होने से शोफ हेतु कहलाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरुप परिचय :—. मिलावा के मध्यम आकार के पर्णपाती वृक्ष होते हे। पत्तियाँ बहुत बड़ी तथा शाखाग्रों पर समूहबृद्ध होती हैं। काण्डत्वक् गाढे भूरे रंग की होती हैं। काण्ड को चीरा लगाने से काले रंग का दाहक एवं स्फोट जनक रस निकलता है। पर्ण–अखण्डित तथा एकान्तर क्रम में स्थित होती है। पर्ण–आकृति में अभिलट्वाकार, आयताकार, चर्मिल, अग्र एवं आधार पर प्रायः गोलाकार होते हैं। पर्ण–शिरायं जोड़ों में होती हैं। पुष्प हरिताभ–पीतवर्ण के छोटे–छोटे एवं सगुच्छ मञ्जरियों में होते हैं पुष्प एकलिंगी होते हैं। अष्ठिफल लम्बा, चपटा, काला–चमकदार, मांसल होता है। पके हुये फलों में दाहकरस प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। जिसका कि उपयोग धोबी लोग कपड़ों में निशान लगाने के लिये करते हैं।

पुष्पकाल ....मार्च, अप्रैल,
फलकाल................. सितम्बर, अक्टूबर,
प्रयोज्य अंग ....फलमञ्जा, तैल

प्राप्तिस्थान :— यह हिमालय की निचली धाटियों से लेकर एवं समस्त भारतवर्ष के उष्ण प्रदेशों में विशेषकर बिहार, बंगाल, आसाम, मध्यभारत, गुजरात, गुजरात, कोंकण और मद्रास के जंगलों में इसके स्वयंजात जंगल पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— गुण–लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, रस–कषाय, विपाक–मधुर, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफवातशामक, पित्त संशोधन । वाह्यस्थान पर प्रयोग से रस–स्फोटजनक, आभ्यन्तर सेवन से दीपन–पाचन, भेदन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, मेघ्य, नाडिबल्य, कफनिस्सरक, श्वासहर, अर्शोघ्न, आमवातनाशक, वाजीकरण, गर्भाशयोत्तेजक, स्वेदजनन, कुष्ठघ्न वृंहण, रसायन, हृदयोत्तेजक, यकृतोदर एवं प्लीहोदर नाशक हे।

आमायिक प्रयोग :— (1) सभी प्रकार के कुष्ठों में भल्लातक का क्वाथ लाभदायक होता है।
(2) शुष्कार्श में यह उत्तम औषध है।
(3) उरुस्तम्भ में पिप्पलीमूल एवं भिलावे को एक साथ कूटकर मधु के साथ सेवन करने से लाभ होता है ।
(4) रसायनार्थ भल्लातक रसायन उत्तम औषध है।
(5) प्लीहोदर में भिलावा, अभया एवं जीरक सम भाग लेकर सेवन कराने से लाभ होता है।

रासायनिक संगठन :— फल के बाह्य त्वक् में काला दाहजनक तेल तथा तिक्त सत्व मञ्ज में काजू की गिरी की भांति पौष्टिक द्रव्य तथा मीठा तैल पाया जाता है।

मुख्ययोग :— कांकायनीवटी, अमृतभल्लातक, भल्लातक पर्पटी, भल्लातक तैल, भल्लातक लवण, भल्लातक मञ्जन चिञ्चा भल्लातक वटी।

96 कर्कटश्रृङ्गीं (काकड़ासींगी)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... कर्कटश्रृंगी,, कर्कटाह्वया, श्रृंगी ।
हिन्दी .... काकड़ासींगी।
लैटिन ....**Pistacia integerrima stew...**

गण :— (1) चरक हिक्कानिग्रहण एवं कासहर महाकषाय में पाठ दिया है। सुश्रुत ने काकोल्यादिगण में काकड़ासींगी का पाठ दिया है।

निरुक्ति :— कर्कटश्रृंगी कृणाति हिनस्तिजीवनू" वृ हिंसायाम" कर्कट इव श्रृंग यस्मा सा" अर्थात् यह छोटे जीवन समूहों का कीट गह्वर है जिसकी अकृति कर्कट श्रृंग सदृश होती है।.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरुप परिचय :— इसके मध्यम आकर के पर्णपाती वृक्ष होते हैं। पर्ण एकान्तर युग्म से स्थित होते हैं। ये पर्णः-अयुग्मपक्षारक पत्र 4 से 6 जोड़ों में, अभिमुख क्रम से स्थित, सनाल रुपरेखा में भालाकार, लम्बे नोक वाले एवं सरल धार एवं चिकने होते हैं पुष्प छोटे–छोटे दलपत्र रहित, एकलिंगी मंजरियों में खिलते हैं । पुष्प खिलने पर रक्ताभ हरित वर्ण के, फल–गोल, मांसल एवं गुच्छों में एवं पुष्प नयी पत्तियों के साथ निकलते हैं। इसकी टहनियों पर लम्बे-लम्बे श्रृंगसंदृश कृमिगहवर लगते हैं जोकि हेमिप्टेरुस नामक कीड़ों के बनाये हुये होते हैं। इन्हीं कृमिगहवरों को कर्कटश्रृङ्गी कहते हैं। कभी–कभी इसके अतिरिक्त hus succedenea नामक वृक्ष पर भी कृमिगहवर लगते हैं। जिसे काकड़ा–सींगी कहते हैं।

पुष्पकाल .... मई, जून,
फलकाल .... जुलाई, अगस्त
कृमिगहवरकाल .... सितम्बर, अक्टुबर ।
प्रयोज्य अंग ....कृमि ग्रह (Galls)

प्राप्तिस्थान :— इसके वृक्ष उत्तरी पश्चिम हिमालय की निचली घाटियों में विशेषतया कांगड़ा घाटी, उत्तराखण्ड हिमालय, कुमायुँ आदि स्थानों पर पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— गुण–लघु, रस, रस–कषाय, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य उष्ण, प्रधानकर्म–ग्राही, कास, अतिसार प्रवाहिकानाशक, कटुपौष्ठिक एवं ज्वरघ्न है।

आमायिक प्रयोग :— (1) वातजकास में कर्कटश्रृङ्गीचूर्ण का सेवन लाभ करता है।
(2) बालकों के श्वास में काकड़ासींगी चूर्ण मधु, धृत के साथ चटाने से लाभ होता है। यह कफघ्न द्रव्य के रूप में विशेष उपयोगी है। यह बात, कफ, क्षय, ज्वर, श्वास, उर्ध्ववात, तृषा, कास, हिक्का, अरुचि, प्रवाहिका आदि में उपयोगी है।

काकड़ासींगी की पहिचान :— बाजार में मिलने वाली काकड़सींगी मोटी, चपटी, बाहर से कालिमा लिये हुये लालरंग की एवं भीतर से पीली, श्वेताभ रंग की तथा हल्की होती है। काकड़ासींगी को तोड़ने पर अन्दर से जो श्वेताभ धूल के कणपुन्ज दिखाई देते हैं, वह वास्तव में कीड़ों का अपद्रव्य है। स्वाद में यह ईषत्कषाय एवं कुछ कड़वी सी होती है। वाह्य रुप में यह विषमाकार केकड़े के सदृश दिखाई देते हैं।

रासायनिक संगठन :— उड़नशील तैल 1.3% तक टैटिनिन 60% तक मस्तगी के समान गोंद 5% तक, एक राजीयद्रव्य तथा क्रिस्टलाईन एसिड् या हाइड्रोकार्बन पाया जाता है।

मुख्ययोग :— श्रृङ्यादिचूर्ण, वालचातुभद्र चूर्ण, र्कटादिचूर्ण, कासवटी, दशमूलारिष्ठ, देवदार्व्यादिक्वाथ, दन्तोद्भेद्गदान्तक रस, च्यवनप्राश।

97 तिन्तिडीक (समाकदाना)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... तिन्तिडीक
हिन्दी .... समाकदान, तुगला
लैटिन ....**Rhus parviflora Roxbt.**

सुश्रुत सूत्र अध्याय 46 में तिन्तिडी का उल्लेख है। चरक ने अम्लवर्ग में गणना की है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरुपपरिचय :— इसके झाड़ीनमुा एवं मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। काण्ड त्वक् खाली रंग की चिकनी एवं मृदुरोमिल पर्ण सपत्रक, तीनपत्रकों वाले, सवृन्त, अभिलट्वाकार, या गोलदन्तुरधार वाले होते हैं। पुष्प छोटे-छोटे पीताभ हरित शाखाग्र में स्थित मञ्जरियों में खिलते हैं। फल-गोल, अण्डाकार मसूर के दाने सदृश चिकना एवं भूरे रंग का होता है। कच्चे फल स्वाद में खट्टे एवं पकने पर मधुर होते हैं। इसके गुल्मों से गोंद भी निकाला जाता है। फलों को ही समाकदान कहते हैं।

पुष्पकाल.................... मई, जून,
फलकाल................. अगस्त, सितम्बर,
प्रयोज्य अंग ....फल, गोंद
मात्राफल................ 3 से 6 ग्राम,

प्राप्ति स्थान :— यह हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों में विशेषकर उत्तराखण्ड गढ़वाल, कुमाऊँ, हिमाचलप्रदेश, जम्मू कश्मीर, खांसिया की पहाड़ियों पर 1500 मीटर की ऊंचाई तक सुलभ हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1) :— पक्वफल कासहर एवं अपक्व फल पित्तकफकर है। समाकदाना शीत, रूक्ष, ग्राही, दीपन, दाह-तृष्णशामक, रक्स्तम्भक, हृघ वहुमूत्ररोधक है। यह अतिसार, हृल्लास, वमन, दाह एवं ज्वर में भी उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन :— छाल में टैनीन एवं फलों में अम्लीयतत्व पाया जाता है।

वक्तव्य :— भारत में असली समाकदाना इटली, स्पेन, फारस से आता है। यूनानी चिकित्सा में इसकी प्रचुरता के साथ व्यवहार होता है। तिन्तिडीक से लोग इमली अर्थ करते हैं।

98 प्रियाल (चिरौंजी)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... प्रियाल, स्नेहबीज, चारबीज,।
हिन्दी .... चिरौंजी, अचार,।
लैटिन ....**Buckanania lanzan Spr...**

गण :—(1) चरक श्रमहर, उदर्दप्रशमन महाकषाय तथा सुश्रुत ने न्यग्रोधादि गण में प्रियाल का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :— प्रियाल :— पीयति तर्पयति हृदयं हृघत्वात्"

प्रिणति तर्पयति इति प्रियाल" यह हृदय के लिये हितकर होने से इसे प्रियाल कहते हैं।

स्नेहबीज :— इसके बीजों में तैल पाया जाता है, इसलिये इसे स्नेहबीज कहते हैं।

चारबीज :— चर गति भक्षणयोः यह हृदय के लिये प्रिय होने से एवं पित्त कफ को नाश करता है।

स्वरुप परिचय :— प्रियाल के मध्यम आकार के सदाहरित वृक्ष पाये जाते हे। पर्ण-एकान्तर, साधारण, आयाताकर या अण्डाकर, पत्रतट अखण्डित अग्र एवं आधार दोनों और कुण्ठित cobutuse बनाक्ट में चर्मिल (coriaaceous) मृदुरोमश, पुष्प-उभयलिंगी अवृत्त हरिताभ श्वेत के छोटे-छोटे, पत्रकोणोद्‌भूत शिखराकर एवं मञ्जरियों में खिलते हैं। फल-मांसल चर्मिल गुठलीदार, गुठली के अन्दर के बीज गिरी को चिरौंजी कहते हैं। फलमज्जा पकने पर कृष्णाभ वर्ण एवं स्वाद में मधुर होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल .... जनवरी, फरवरी ।
फलकाल.....................मई, जून।
प्रयोज्य अंग ....चिरोंजी (गिरी) फलमज्जा, त्वक्

प्राप्तिस्थान :— प्रियाल के वृक्ष भारत के उष्ण प्रदेशों में शिवालिक वनखण्ड, बुन्देलखण्ड, मुध्यप्रदेश, राजस्थान, दक्षिणभारत, उड़ीसा, छोटा नागपुर, एवं बर्मा की निचली पहाड़ियों पर पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2) :— गुण–स्निग्ध, गुरु, सर, रस–मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–वातपित्त शामक, वर्ण्य, केशरञ्जन, कुष्ठघ्न, वल्य, एवं वृंहण, रक्तप्रसादन, हृध, वृष्य, वाजीकर, मूत्रल, कफनिस्सारक, पित्तको बढ़ाने वाला, एवं वातानाशक है।

आमायिक प्रयोग :— यह उत्तम पौष्टिक द्रव्य है इसके बीजों का प्रयोग तृषा, दाह, क्षत एवं क्षय में किया जाता है। सुश्रुत ने प्रियाल फल को वात पित्तहर एवं वृष्य लिखा है। पित्त संसृष्ठ वायु में चिरोंजी का तैल उपयोगी लिखा है। बादाम एंव अखरोट के समान इसके गुण हैं। प्रियाल के गोंद का अतिसार में प्रयोग किया जाता है। चिरोंजी का प्रयोग फुन्सी एवं पामा में किया जाता है।

रासायनिक संगठन :— चिरौंजी में 51.8% स्थिरतैल, प्रोटीन, स्टार्च, तथा शर्करा पाई जाती है। छाल में टैनीन पाई जाती है।

99 रुमीमस्तगी

द्रव्यनाम ....हिन्दी .... रुमीमस्तगी
फारसी .... मस्तकी, समी,
लैटिन ....**Pistacia lentiscus** Linn..

स्वरुप परिचय :— इसकी झाड़ी गुल्म एवं छोटे वृक्ष होते हैं। इसकी कई जातियाँ पाई जाती हैं। यह इस वृक्ष का गोंद है जिसे रुमीमस्तगी कहते हैं। यह गोंद चीरा लगाकर प्राप्त किया जाता है। इन वृक्षों में चीरा जून मास में लगाया जाता है। अच्छे परिपक्व वृक्ष से 5 किलो तक गोंद प्राप्त किया जा सकता है। इसके उत्तम कुंदरू जैसे–पीलाई लिये हुये सफेद रंग के सुगन्धित गोल टुकड़े बाजार में मिलते हैं। इस गोंद में मिट्टी–बालू आदि की भी मिलावट पाई जाती है। खरल में कूटने से यह चिपक जाती है। यह गोंद स्वाद में कुछ मीठा होता है।

प्रयोज्य अंग :—गोंद (रालीयपदार्थ) मात्रा 1 ग्राम से 2 ग्राम ।

प्राप्तिस्थान :— दक्षिण यूरोप (भूमध्य समुद्र के पास के प्रदेश) सीरिया, इजराइल, रोम, उत्तरी अफ्रीका, आदि प्रदेशों में पाया जाता हे। भारतीय बाजारों में इसका आयात सीधे ईरान एवं अफगानिस्तान से होता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— गुण–लघु, रुक्ष, रस–मधुर, कषाय, विपाक–मधुर, वीर्य–उष्ण, वातपित्त शामक, आमाशयान्त्रवल्य, यकृदुत्तेजक, ग्राही कफनिस्सारक, मूत्रजनन, स्तम्भन, रक्तरोधक, वाजीकरण, आर्तवजनन, लेखन, एवं फुफुस के रोगों में उपयोगी हे।

इसके प्रयोग से मुख की दुर्गन्ध दूर होती है एवं आमाशयरस की वृद्धि होती है। यूनानी चिकित्सक इसका विशेष रुप से प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन :— इसमें रैजीन एवं उड़नशील तेल पाया जाता हे।

मुख्ययोग :— जुवारिश मस्तगी, रोगन मस्तकी,।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य :— इसके अतिरिक्त भल्लादकादिवर्ग में काजू **Anacardium occidentale** एवं जिंगिनी आदि उपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं।

शोभाजनादिवर्ग MORINGACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग की वनस्पतियों में बड़े वृक्ष पाये जाते हैं इनकी लकड़ी मृदु होती है। इस कुल की वनस्पतियों में पर्ण–एकान्तर, पर्णपाती एवं द्वित्रिभग्न होते हैं। पत्रदल अभिमुख होते है। पुष्प बाह्यकोश नलिकाकार, पुष्पदल छोटे एवं बड़ी संख्या में 5, पंखड़ियों जैसे होते हैं। पुकेशर 5. एवं स्त्रीकेशर एक होता है । गर्भाशय तीन खाने वाला होता है। प्रत्येक खाने में तीन धार वाले अनेक बीज होते हैं। बीजों से तैल निकलता है।

इस वर्ग की वनस्पतियों में मूत्रल, स्वेदल, अश्मरीघ्न, शोथघ्न, कफघ्न, उत्तेजक एवं दाहक गुण पाये जाते हैं।

100 शिग्रु (सहिंजन)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... अक्षीव, शिग्रु, शोभाञ्जन, कृष्णगन्धा ।
हिन्दी .... सहिंजना ।
लैटिन .... मधुशिग्रु ....**Moringa pterygos Perma** Gaertn...
कटुशिग्रु **Moringa Concanensis** Nirmno

गण :— (1) चरक कृमिघ्न, स्वेदोपग, शिरोविरेचनोपग महाकषाय में एवं सुश्रुत ने वरुणादिगण एवं शिरोविरेचनीय वर्ग में मधुर एवं कटुशिग्रु का उल्लेख किया हे।

निरूक्ति :— शोभाञ्जन :— अपने विशेष गुणों के कारण यह शोभा को प्रकट करता है। इसलिये इसे शोभाञ्जन कहते है।

शिग्रु :— तीक्ष्णगुणत्वात् शिग्रु "अर्थात् इसमें तीक्ष्ण गुण पाये जाते हैं।

तीक्षणगन्ध :— इसकी गन्धतीक्ष्ण होती है। इसे अक्षीव भी कहते हैं।

स्वरुप परिचय :— सहिंजन के छोटे एवं मध्यम कद के वृक्ष पाये जाते हैं। तने की छाल कार्कयुक्त, मोटी तथा मुलायम होती है। काण्ड मृदु एवं कोमल होता है। पर्णसंयुक्त, प्रायः त्रिपक्षवत्, 1 से $2\frac{1}{2}$ फुट लम्बे, पक्षक (Pinnate) 4–6 युग्म, अभिमुख क्रम में स्थित, पत्रवृन्त आधार की ओर कुछ कोषमय होते हैं। पुष्प–सुगन्धित, सफेद रंग के गुच्छों में खिलते हैं। फलियाँ लम्बी त्रिकोणाकार, धारीदार, सफेद बीजों से युक्त होती हैं। फलियों से वृक्ष लद जाते हैं। कच्ची फलियों को उबालकर शाक खाया जाता है। संहिजन के बीज कभी–कभी सफेद काली मीर्च के साथ मिलावट किया जाता है।

पुष्पकाल .... फरवरी, मार्च ।
फलकाल ....अप्रैल, मई ।
प्रयोज्य अंग .... मूल एवं काण्डत्वक्, बीज, तैल, पत्र ।

प्राप्तिस्थान :— ये वृक्ष हिमालय की निचली घटियों, शिवालिक वनखण्ड, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान के जंगलों में स्वयं जात पाये जाते हैं। भारत के सभी प्रान्तों में इसके वृक्ष लगाये हुये पाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2) :— गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, सर, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–कफवातशामक, रोचन, दीपन, विदाही, शूलप्रशमन, सारक, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, कफघ्न, मुत्रल, मूत्र की प्रतिक्रिया को क्षारीय करने वाला, आर्तवजनन, स्वेदजनन, विषघ्न, ज्वरघ्न, बीजों के चूर्ण का नस्य शिरोविरेचन, लेखन, चक्षुष्य, बीजों का तैल वेदना स्थापन, शोथहर, छाल एवं पत्र का लेप विदाही एवं विद्रधीपाचन है।

आमयिक प्रयोग :— इसका प्रयोग कफ कृमि, कुष्ठ, प्रमेह और शिरोरोग नाशक है। इसकी छाल के प्रयोग से पाचन रस उत्पन्न होता हे। आंतों को उत्तेजना मिलती है। दस्त साफ करता है। यह नाड़ियों स्वेद ग्रन्थियाँ, एवं हृदय को उत्तेजित करता है। इसकी क्रिया वृकों पर भी प्रत्यक्ष होती है। छाल का कल्क त्वचा पर बांधने से त्वचा लाल होती है। अग्निमांध, कुपचन, आध्मान, आनाह एवं उदरशूल में उपयोगी है। यकृत के विकारों में भी यह उपयोगी है।

विशेष :— आमवात, कटीशूल, श्वास–कास एवं प्लीहाशोथ में फलियाँ एवं पुष्प उपयोगी है। शिरःशूल, कर्णशूल, प्रतिश्याय में उपयोगी है।

रासायनिक संगठन :— मूत्र में टेरिगोस्पर्मिन नामक जीवाणु नाशक तत्व पाया जाता है। बीजों में एक अनुत्पत्तैल पाया जाता है। छाल में सफेद–क्रिस्टजी–एल–के–लायड, राल, एव लवाव आदि तत्व पाये जाते है। पत्तें में कार्बोहाडेटस् खनिज तत्व पाये जाते हैं।

अंकोलादिवर्ग ALANGIACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में वृक्ष एवं वृक्षक पाये जाते हैं। इस वर्ग में पर्ण–अभिमुख, एकान्तर, अखण्डित, पर्ण–मसृ ण, सुगन्धित चमकीले होते हैं। पुष्पवाह्य कोष दल 4–5 होते हे। पुष्पाभ्यन्तर कोष में पंखुडियाँ प्रायः नहीं होती हे। पुंकेशर पंखड़ियों के समसंख्यक अथवा द्विगुण भी होते हे। गर्भाशय अधः स्थित होता है । फल मांस गुठली दार होता है।

इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः स्वेदल, ज्वरघ्न, विषघ्न एवं रेचक होती है।

101 अंकोल

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... अंकोल, अंकोट, दीर्घकीलक, पीतसार, ताम्रफल, रेची।
हिन्दी .... अंकोल, ढेरा।
लैटिन ....**Alangium salvifolium** (L.f.) wang..
चरक विषचिकित्सा के अमृत धृत योग में

निरुक्ति :— अंकोल :— अंक्यते कीलकैः लश्यते इति अंकोल अर्थात् इसके वृक्ष तीक्ष्ण कांटे से पहिचाने जाते हैं।

दीर्घकीलक :— इसके कांटे कठोर लम्बे मदनवृक्ष सद्यश होते हैं।

ताम्रफल :— फल पकने पर ताम्र रंग के होते हैं।

स्वरुप परिचय :— इसके मध्यम आकार के वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण–एकदलपत्र या अपत्रक, एकान्तरक्रम में स्थित, आम्रपर्णसद्यश, विभिन्न आकृतियों में होते हैं। पुष्प–सुगन्धित श्वेत गुच्छों में खिलते हैं। पुष्पित अवस्था में यह वृक्ष पर्णविहीन होता है। केवल काटें एवं पुष्प दिखाई देते हे। पुष्पवाह्यकोष मृदु मखमली एवं रोमावृत होता है। फल–रक्त, ताम्रवर्ण का मांसल एवं बदबूदार गुठली वाला होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल .... मार्च, अप्रैल।
फलकाल .... मई, जून।
प्रयोज्य अंग ....मूलत्वक्, बीज, बीजतैल।

प्राप्तिस्थान :— यह भारत के उष्णभागों में विशेषकर उत्तरप्रदेश राजस्थान, बंगाल, बिहार, उड़ीसा एवं दक्षिण भारत के पार्वत्य प्रदेशों के जंगलों में ये वृक्ष पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2) :— लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, सर, रस–तिक्त, कटु, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–विषघ्न विषघ्न यकृदुत्तेजक, मूत्रल, स्वेदल, ज्वरघ्न, त्वग्दोषहर, अधिक मात्रा वामक, रेचक हे।

आमयिक प्रयोग :— दंशस्थान पर छाल का लेप विषघ्न के रुप में किया जाता है। अतिसार में अंकोल मूल को तण्डुलोदक के साथ पिलाने से लाभ होता है।

वीर्य स्तम्भन के लिए अंकोल तेल का नाभि पर लेप किया जाता है एवं वातव्याधियों में भी इसके तैल का अभ्यंग करते हैं। यह जलोदर, अर्श, कृमि, त्वचा रोग, शोथ, विसर्प, एवं आमवात आदि रोगों में प्रयुक्त किया जाता है।

रासायनिक संगठन :—मूलत्वक् मे अंलेग्जाइन नामक तिक्त क्षाराम तत्व पाया जाता है। पोटेशियम कलोराइड भी इसमें मिलता है।

मुख्ययोग :— अंकोल तैल ।

शिम्बीवर्ग (पलाशादिवर्ग) PAPILIONACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में मुख्यतः तीन प्रकार के पुष्प होते हैं, इन्हीं पुष्पों के आधार पर तीन उपवर्गों में यह बांटा गया है। अब नये कुलों के आधार पर इन्हें स्वतन्त्र कुल के रुप में स्वीकार किया गया है। पेपिलिओनेसी वर्ग में तितली जैस पुष्प विशेष होते हैं। इस वर्ग में वृक्ष, वृक्षक एवं लतायें पाई जाती हैं। पर्ण–एकान्तर, करतलाकार या पक्षाकार, एकाकी एवं संयुक्त होते हैं। पुष्प अनियमित, पुष्प बाह्यकोष के दल परस्पर, न्यूनाधिक रुप में संयुक्त देखे जाते हैं। पुष्पाभ्यन्तर दल के कोष 5 होते हैं। इन पाचों दलों के सबसे बड़े दल को पताका कहते हैं। उडुपाकार दलों में 10 पुंकेशर एवं स्त्रीकेशर के आसपास नीचे से जुडे हुये होते हैं। गर्भाशय में एक या अधिक बीज होते हैं। फल–शिम्बी के रूप में फटकर खुलने वाले होते हैं।

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वर्ग है। इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः बीज, ज्वरघ्न, कृमिघ्न, रसायन, कण्डूघ्न, विषघ्न होती है। इस वर्ग में मुख्य रूप से पलाश, अपराजिता, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, मूलैठी, गुञ्जा, कपिकच्छु आदि कतिपय उपयोगी द्रव्य होते हैं।

102 पलाश (ढाक)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... पलाश, किंशुक, व्रह्मवृक्ष, क्षारश्रेष्ठ।
हिन्दी .... पलाश, टेसू, ढाक।
लैटिन ....**Butea monosperma (lamk)..**
वर्ग–सुश्रुत ने लोध्रादिगण, मुस्कादिगण, अम्बष्ठादिगण एवं न्यग्रोधादिगण में उल्लेख है।

निरुक्ति :— वर्ग :— पलाश :— प्रशस्तनि पलाशानि सन्ततस्य इतिपलाशः अर्थात् इसके पत्ते ग्रीष्मकाल में सुन्दर हरे होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

किंशुक :— शुक द्रव चञ्चु पुष्पमस्य अर्थात् इसके पुष्पों की आकृति शुकचंचु के समान होती है।

क्षारश्रेष्ठ :— क्षार वाले महावृक्षों में पलाश की गणना की जाती है इसलिये इसे महावृक्ष भी कहते हैं। ग्रीष्मकाल के प्रारम्भ में वृक्ष रक्तपुष्पों से आवृत होते हैं इसे रक्तपुष्पक एवं बीज तिक्त होने से तिक्तबीजक भी कहते हैं।

स्वरुप परिचय :— पलाश के मध्यम आकार के पर्णपाती वृक्ष होते हैं काण्ड–स्कन्ध प्रायः टेढा मेढा, पर्ण त्रिपत्रक, दो आमने–सामने तथा तीसरा सिरे पर होता है। पत्रक–मजबूत–कर्कश, चर्मिल, उर्ध्वतल पर चिकने, किन्तु अधः पृष्ठ पर रेशमी रोंयेदार सम्मुखपर्ती पत्रक 15 से 20 से0 मी0 लम्बे, तिरछे, लट्वाकार अथवा चौडे अंडाकार सवृन्तक होते हैं। पुराने पर्ण वसन्त में गिरने प्रारम्भ हो जाते हैं एवं नयी पत्तियां निकलनी प्रारम्भ होती हैं। पुष्प–अग्निज्वाला की भांति रक्त वर्ण के समूह गुच्छों में पाये जाते हैं। पुष्प वाह्यकोष खाली रेशमी रंग का मांसल होता हे। पुष्प की आकृति सुग्गे की चोंच सद्यश होती है इसलिये इसे किंशुक कहते हैं। फलियाँ चपटी रेशमी रोयेदार, लटकी हुई गुच्छों में होती है। बीज–चपटा, गोलाकार पकने पर लाल रंग का होता है। पलाश वृक्ष की लाख भी उत्तम समझी जाती है। इसके गोंद को कमरकस कहते हैं।

पुष्पकाल .... मार्च, अप्रैल।
फलकाल...................अप्रैल, मई।
प्रयोज्य अंग ....बीज, पुष्प, गोंद (कमरकस), पत्रस्वरस, छाल, काष्ठसार,

प्राप्तिस्थान :— समस्त भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में 9,200 मीटर की ऊंचाई तक प्रायः उत्तरप्रदेश, के बुन्देंलखण्ड क्षेत्र, राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात आदि प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानदोष (3) :— गुण–लधु, स्निग्ध, रस–कटु, तिक्त कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, पुष्प–मधुर विपाकी एवं शीतवीर्य होते हैं। प्रधान कर्म–बीज–लेखन, भेदन, कृमीघ्न पुष्प–स्तम्भन, मूत्रल, ज्वरघ्न, दाह प्रशमन, श्वेतप्रदरनाशक, गोंद–स्तम्भन, अम्लतानाशक, वृष्य, वल्य, संधानीय, क्षार–अनुलोमन, भेदन, छाल एवं पत्र संग्राही, मूत्रजनन, आर्तवजनन, । पलाश बीज उत्तम आन्त्र कृमिहर औषधि है । विशेषतः इसकी क्रिया केंचुए (Round worm) पर होती है ।

आमयिक प्रयोग :—

पलाश गोंद की क्रिया विशेष रूप से आमाशय पर होती है । खाने के बाद गले में खट्टा पानी आता हो उसपर पलाश का गोंद उत्तम औषघ है । जीर्ण अतिसार और आंव में गोंद देते हैं । यह प्रमेह, कृमि, वात, कफ, कुष्ठ, गुल्म एवं उदर रोगों में उपयोगी है । इसके अतिरिक्त अर्थ, अभिष्यन्द, स्त्रीरोगों में उपयोगी है ।

रासायनिक संगठन :— छाल में काइनोन्टैनिक एवं गैलिक अम्ल तथा पुष्प में ब्युट्रिन नामक ग्लुकासाईड, ब्यूटीन एवं पीतरञ्जक पदार्थ पाये जाते हैं । बीजों में स्थिर तैल एलव्युमिनाइड्स, शर्करा प्रभृति तत्व पाये जाते हैं ।

पलाश गोंद की पहिचान :— ताजा निर्यास माणिक्य की भांति लाल रंग का होता है एवं यह अधिकांश जल में घुलनशील होता है । कुछ समय बाद गोंद का रंग काली छाया लिये हुये लाल रंग का होता है । गोंद के कोणाकार टुकड़े अपारदर्शक होते हैं ।

मुख्ययोग :— पलाश बीजादिचूर्ण, पलाशक्षार, कृमिकुठाररस, कृमिघातिनीवटी, महानारायणतैल, पलाशकल्प ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

103 अपराजिता (कोयल)

द्रव्यनाम ....संस्कृत ....गिरिकर्णिका, अपराजिता, विष्णुक्रान्ता, योनिपुष्पा, गोकर्णिका, आस्फोता ।

हिन्दी ....कोमल (श्वेत, नील) अपराजिता ।

लैटिन ....Clitoria ternata Linn.

वर्ग :— (1) चरक में श्वेता नाम से एवं में अपराजिता गिरिकर्णिका के नाम से शिरोविरेचन द्रव्यों में उल्लेख किया है ।

निरूक्ति :—

आस्फोता :— आविस्तारयति" अर्थात् इसकी बेल चारों तरफ विस्तारपूर्वक फैलने से आस्फोता कहते हैं ।

गरिकर्णिका :— गिरि वालमूषिकाया : कर्ण द्रव पर्ण यस्या" अर्थात् इसके पत्र छोटे चुहिया के कान सद्यश होते हैं ।

विष्णुक्राता :— इसके पुष्पों से विष्णु की पुजा की जाती है अर्थात् यह विष्णु को प्रिय है ।

अपराजिता :— यह रोगों को पराजय करने में समर्थ है ।

स्वरूप परिचय :— अपराजिता की बहुवर्षायु चक्रारोही लता होती है । पर्ण–पक्षवत्, संयुक्त, विषम, पत्रक 5 1 से 2 " लम्बें, अण्डाकार एवं अग्र पर अयुग्मपत्रक होते हैं । पुष्प–पत्रकोणोंदूत् एकाकी क्रम में स्थित, श्वेत एवं नीलवर्ण के होते हैं । पुष्प की रचना मदनांकुर (क्लाइटोरिस) की भांति दिखाई पड़ती है अतः इसे योनि पुष्पा भी कहते हैं । फली–चपटी एवं लम्बी होती है जिसमें धूसर रंग के बीज होते हैं।

पुष्पकाल ....अप्रैल, मई,
फलकाल..........................जुलाई, अगस्त
प्रयोज्य अंग .... मूल, बीज, पत्र

प्राप्तिस्थान :— यह समस्त भारत के गांवों के समीप, वाटिकाओं एवं मन्दिरों में इसकी लतायें लगाई हुई पाई जाती हैं । शोभा के लिये प्रायः उद्यानों में इसकी बेलें लगाई जाती हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2) :—

रस–कषाय, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–त्रिदोषघ्न, विशेषतः कफ वातनाशक, शोथ एवं व्रणपाचन, शिरोविरेचन, चक्षुष्य, स्मृतिवर्धक, कुष्ठघ्न, आमपाचन, विषघ्न, मृदुभेदन, मूत्रजनन, श्वास–कास हर, मलभेदन, वेदनास्थापन । बीज–मृदुमलभेदक है ।

आमयिक प्रयोग :—

आभ्यन्तर प्रयोग में यह गलगण्ड, शोथ, कुष्ठ, आमवात, संधिवात, जलोदर, शुक्रमेह, मूत्रकृच्छ्र एवं सर्पविष में उपयोगी है । गर्भस्थापनार्थ एवं उन्माद में विशेष प्रयोग है । उदररोग एवं क़फ विकार में मूल एवं बीज उपयोगी माने जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बालकों के श्वास'कास में बीजों को थोड़ा भून कर एवं चूर्ण बनाकर गुड़ एवं सेंधानमक के साथ देने से दस्त साफ एवं कफ का आराम होता है

रासयनिक संगठन :— मूलत्वक् में श्वेतसार टैनीन एवं राल प्रभृति तत्व तथा बीजों में स्थिर तैल एवं टैनीन पाया जाता है ।

मुख्ययोग :— गर्भपालरस, कुमार्यासव, स्वर्णभकरध्वज ।

वक्तव्य :— निघण्टुकारों ने शंखिनी एवं शंखपुष्पी आदि पर्याय अपराजिता के लिये प्रयुक्त किये हैं । वास्तव में अपराजिता, शंखिनी एवं शंखपुष्पी तीनों भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं । दक्षिण के वैद्य परम्परा में अपराजिता को ही शास्त्रीय शंखपुष्पी प्रयोग करने की परम्परा है । चरक एवं सुश्रुत ने शिरोविरेचन द्रव्यों में गिरिकर्णिका अपराजिता का उल्लेख किया है ।

104 मुद्गपर्णी

द्रव्यनाम ....संस्कृत ....मुद्गपर्णी, क्षुद्रसहा, शूर्पपर्णी।
हिन्दी ....मुगवन, जंगली मूंग।
लैटिन ....**Phaseslus trilolbes Ait.**

वर्ग :—(1) चरक ने जीवनीय, शुक्रजनन, महाकषाय, मधुरस्कन्ध तथा सुश्रुत ने विदारीगन्धादिगण एवं काकोल्यादिगण में मुद्गपर्णी का उल्लेख किया है ।

निरूक्ति :—(2)

मुद्गपर्णी :— मुद्गस्य पर्णमिवपर्ण यस्या इति" अर्थात् इसके पर्ण मूंग के पर्ण जैसे होते हैं ।
शूर्पपर्णी :— पर्ण सूर्प सद्यश होने से शूर्पपर्णी कहते हैं ।
आरण्यमुद्ग :— जंगलों में स्वयंजात होने से अरण्यपर्णी भी कहते हैं ।

स्वरूपपरिचय :— जंगली मूंग की प्रसरी मृदु लतायें होती हैं । काण्ड रोमश, देखने में मूंग सद्यश होता है । पर्ण-संयुक्त त्रिपत्रक, आयताकार, अण्डाकार एवं कद में प्रायः अनियमित आकार के होते हैं । वृत्त छोटे रोमिल, उपपत्रक छोटे, परन्तु पर्णकार दिखाई देते हैं । पुष्प-पीले रंग के गुच्छों में पुष्पदण्ड पर खिलते हैं । फली-पतली, चपटी, मूंग सद्यश अनेक बीजों युक्त होती हैं ।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त,
फलकाल .... शीतकाल
प्रयोज्यअंग .... पंचांग

प्राप्तिस्थान :— यह भारत के हिमालय की निचली घाटियों से लेकर मैदानी प्रदेशों में सर्वत्र जंगलों के छायादार स्थानों पर सुलभ है । इसकी दूसरी जातियों भी पाई जाती हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (3) :—

गुण-लघु, रूक्ष, रस-मधुर, तिक्त, विपाक-मधुर, वीर्य-शीत, कर्म-त्रिदोष शामक वातपित्तशामक, शोथहर, चक्षुष्प, दीपन, अनुलोमन, ग्राही, रक्तपित्तशामक, जीवनीय, ज्वरघ्न, वृष्य एवं विषघ्न है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग :—

यह क्षय, पित्त, दाह एवं ज्वर को नाश करने वाला है । अतिसार, ग्रहणी, रक्तपित्त, मेह एवं शुक्रदोष में उपयोगी है । आंखों के उपनाह हेतु मुद्गपर्णी का कल्क बांधा जाता है ।

मुख्ययोग :— च्यवनप्राश जीवनीय गण के घटकों में ।

वक्तव्य :— आजकल स्थानिक फार्मेसियों में मुद्गपर्णी के नाम से कई जंगली बेलों का संग्रह किया जाता है। अतः पहिचान कर औषधोपयोग करना चाहिये ।

105 माषपर्णी

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... माषपर्णी, महासहा, बहुफला,
हिन्दी .... मषवन, बनउड़द,
लैटिन .... **Phaseolus labialis** spreng.

वर्ग :— चरके जीवनीये, शुक्रजनने च महाकषाये, मधुरस्कन्ध में एवं सुश्रुत ने विदारीगन्धादि एवं काकोल्यादिगण में उल्लेख किया है ।

स्वरूप परिचय :— एक वर्षायु जंगली प्रसरी मृदुलतायें होती हैं । काण्ड, मृदु, रोमिल एवं उड़द के सद्यश होता है । पर्ण–संयुक्त, त्रिपत्रक, आयताकार, अण्डाकार, माषपर्ण सद्यश होते हैं । पुष्प–पीलाभ बैंगनीं रंग के होते हैं । इसके अतिरिक्त माषपर्णी के नाम से Teramnus labialis spreng नामक प्रसर मृदु रोमिल वनस्पति का भी प्रयोग होता है । इन दोनों किस्मों में काफी साम्यता पाई जाती है । बाजार में Phascolus की कई किस्मों का मिश्रण माषपर्णी के नाम से होता है ।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त,
फलकाल .... शीतकाल,
प्रयोज्यअंग ....पंचांग

प्राप्तिस्थान :— यह हिमालय की निचली घाटियों से लेकर भारत के उष्ण प्रदेशों के वन्य क्षेत्रों में प्रायः सर्वत्र सुलभ है । वर्षाकाल के बाद यह वनस्पति प्रायः सुलभ है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2) :—

रस–मधुर, तिक्त, गुण–लघु, स्निग्ध, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–वातपित्तशामक, दाहप्रशमन, रक्तशोधन, शुक्रजनन एवं जीवनीय है ।

आमयिक प्रयोग :—

यह विशेषतः वातव्याधि, पक्षाघात अर्दित, शोथ, वात पित्तविकार दाह, ज्वर एवं रक्तविकारों में उपयोगी है । माषपर्णी एवं मुद्गपर्णी इन दोनों के गुणधर्म प्रायः समान है ।

106 शालपर्णी (सखिन)

द्रव्यनामः..................संस्कृत............शालपर्णी, स्थिरा, त्रिपर्णी, अंशुमती, गुहा, अतिगुहा ।
हिन्दी.............सखिन,
लैटिन.............Desmodium gangeticum DC.

गण— चरक के वल्य, स्नेहोपग, श्वयथूहर, अंङ्गमर्दप्रशमन महाकषाय एवं मधुरस्कन्ध में उल्लेख है । सुश्रुत के विदारीगन्धदिगण एवं लघुपञ्चमुल में उल्लेख है ।

निरुक्तिः— अंशुमती— इसके मूल गहरे एंव दीर्घ होने से अशुंमती कहते हैं ।

शालपर्णी— शालस्येव पर्णान् अस्य" इसके पर्ण शालपत्र सघश होते हैं ।

स्थिरा— यह वहुवर्षायु मूल वाली वनस्पति है जिसे स्थिरा कहते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूपपरिचयः— यह एक स्वावलम्बी, या जमीन की ओर झुके हुये शाकीय एवं काष्ठीय गुल्म हैं । काण्ड कुछ कोंणदार, पर्ण-एक पत्रक, प्रासवत्, आयताकार, कम चौड़ी और लट्वाकार एवं अग्र की ओर क्रमशः तीक्ष्णाग्र होती है, पत्रों की लम्बाई में भिन्नरूपता पाई जाती हैं । कुछ जातियों के पत्र-त्रिपत्रक होते हैं इसी कारण इसे त्रिपर्णी भी कहते हैं ।.

पुष्प-छोटे श्वेताभ-गुलाबी रंग के, शारवाग्र एंव पत्र कोणोद्भूत मज्जरियों में लगते हैं । फली चपटी, कुछ टेढ़ी 6 से 8 सन्धियों से युक्त होती हैं, जिनमें सूक्ष्म रोम होने से कपड़ों में चिपक जाते हैं ।

पुष्पकाल ....अगस्त, सितम्बर, फलकाल.—.शीतकाल
प्रयोज्यअंग ....पञ्चांङ्ग मूल,

प्राप्तिस्थानः— यह समस्त भारत के उष्ण भागों के छायादार जंगलों, बाहरी हिमालय की निचली घाटियों में 1200 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ हैं । इसके साथ कई जातियाँ पाई जाती हैं । जोकि बाजार में प्रायः शालपर्णी के विक्रप की जाती हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः-(2)

गुण—गुरु, स्निग्ध, रस-मधुर, तिक्त, विपाक-मधूर, वीर्य-उष्ण, कर्म-त्रिदोषशामक, ज्वरघ्न, मूत्रल, वल्य, वृंहण, रसायन, अङ्गमर्दप्रशमन, वृष्य, कफनिस्सारक शोथहर, दीपन, त्रिदोंषघ्न हैं ।

आमायिक प्रयोगः— यह ज्वर, प्रमेह, अर्श, शोथ, अतिसार, क्षतकास एंव क्षय में उपयोगी है । मूल उत्तम ज्वरघ्न एवं वातघ्न माना जाता है ।

आधा शीशी में शाळपर्णी के स्वरस अथवा ववाथ का नस्य देने से अर्धावभेदक नष्ट होता है । सुश्रुत एवं चरक ने अतिसार रोग में शाळपर्णी की उपादेयता प्रतिपादित की हैं । रसायन जीवनीय एवं विषघ्न के रूप में शाळपर्णी का कतिपय स्थलों पर निर्देश हैं ।

मुख्यप्रभोगः— शाळपर्ण्यादिक्वाथ, च्यवनप्राश, दशमूलारिष्ठ, दशमूलतैल, अमृतारिष्ठ, चित्रकहरीतकी, महानारायणीतैल ।

रासायनिक संगठनः— इसके मुळ पत्र में कई किस्म के Alkaloides पाये जाते हैं ।

107 पृश्निपर्णी (पिठवन)

द्रव्यमान....................संस्कृत........... पृश्निपर्णी, पृथकपर्णी, सिंहपुच्छि, कोष्ट्रकपुच्छिका, श्रृङ्गालविन्न, कलशी,
हिन्दी ....पिठवन
लैटिन .... Uraria picta Desv.

गणः— 1 चरक ने संन्धानीय, श्वयथूहर, अङ्गमर्दप्रशमन महाकषाय एवं मधुरस्कन्ध में तथा सुश्रुत ने विदारीगन्धादि, हरिद्रादि एवं लघुपञ्चमुल में पृश्निपर्णी का उल्लेख किया हैं ।

निरुक्तिः— पृश्निपर्णी पृश्निअल्प पर्णमस्या—अर्थात् इसके पर्ण कुछ चितकबरे व अलग-अलग पर्ण होते हैं । इसे पृथगपर्णी कहते हैं ।

सिंहपुच्छीः— सिंहपुच्छाकार पुष्पत्वात् इसकी पुष्पमञ्जरी सिंह पुच्छसद्यश होती है ।

धावनीः— धावति प्रसरति इति धावनी अर्थात् इस प्रसार शीध्रता के साथ होता हैः— ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कलश्रीः— कलं अजीर्ण श्याति" इति अर्थात् यह वनस्पति अजीर्ण का नाश करती है ।

कोष्ठुविन्नाः— अर्थात् इसकी पुष्पमञ्जरी श्रृङ्गाल पुष्पसंघ्रश होती है ।

स्वरूप परिचयः— मूल बहुवर्षायु, काण्ड एकवर्षायु 60 से. मी. तक लम्बा क्षुप पर्ण-विभिन्न आकार में, श्वेत रेखांकित एवं चित्तसद्यंश दिखाई देने वाले होते हैं, पर्ण-एकान्तर, कमचौड़े, सादे या एकाकी होते हैं । पुष्प-गुलाबी रंग के, सघनमञ्जरी में पुच्छाकार एवं बीज-वृक्काकार, चर्मरीसद्यश खर-एंव मञ्जरी में लगे रहते हैं ।

पुष्पकाळ....................अगस्त, सितम्बर,
फलकाळ.......,..........शीतकाल,
प्रयोज्यअंग...................मूळ, पञ्चांग,

प्राप्तिस्थानः—

यह हिमालय की निचली घाटियों में 1,200 मीटर की ऊँचाई तक घास के वर्षाकाळ के बाद स्वयंजात पाई जाती है । मैदानी भागों के छायादार स्थानों पर यत्र, तत्र पाई जाती हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः— (2) रस-मधुर, गुण-स्निग्ध, लघु विपाक-मधुर, वीर्य उष्ण, त्रिदोषहर, शोथहर, दीपन, वृष्य, संग्राहिक, सन्धानीय, अङ्गमर्दप्रशमन ।

आमयिक प्रयोगः— रक्तदोष, कास, श्वास, ज्वर, तृषा, दाह, एवं रक्तातिसार में उपयोगी है । वेदों ने पृश्निपर्णी को दिव्यगुणवाली वनस्पति बतलाई है । तान्त्रिक भी कतिपय मन्त्रों की सिद्धी में पृश्निपर्णी का उपयोग करते हैं ।

रक्तार्श में पृश्निपर्णी का क्वाथ उपयोगी हैं । चरक" चक्रदत्त के अनुसार एकाहिक ज्वर पर पुष्य नक्षत्र में पृ श्निपर्णी के मूल को उखाड़कर एवं उसे रक्तसूत्र मे लपेट कर उसे भूजा में बांधने से ज्वर का वेग शान्त हो जाता है ।

मुख्ययोगः— च्यवनप्राश, दंशमूलारिष्ट, दशमुलतैल, अमृतारिष्ठ, चित्रक हरीतकी, महानारायणीतैल ।

वक्तव्यः— बाजार में पृश्निपर्णी के नाम से Uraria lagopoides एवं U. hamosa के पञ्चांङ्ग विशेषतः पाये जाते हैं ।

108 गुञ्जा (रत्ती)

द्रव्यनाम....................संस्कृत..............गुञ्जा, रक्तिका, काकणन्ती; काम्बोजी,
हिन्दी................घुगची, रत्ती, घुमची,
लैटिन................Abrus precatorius Linn.

गण :— सुश्रुत ने कल्प अध्याय के 2 अध्याय में मूल विषयों में गुञ्जा का पाठ दिया है ।

निरुक्तिः— 2 गुञ्जा-गुजिअव्यक्त से गुञ्जा बना है । अर्थात् पकी फली फूटने पर इसमें अव्यक्त शब्द होता हैं ।

रक्तिकाः— यह अरुण एवं कृष्ण बिन्दु वाले बीजों के कारण रक्तिका तथा भान बोधक भी होने रक्तिका भी कहते हैं । काकणन्ती-वर्षाकालीन कीट के रंगसद्यंश अरुण वर्ण होने से इसे काकणन्ती भी कहते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भिल्लभूषणाः— जंगली कोल भिल्ल इसके बीजों से आभूषण बनाते हैं ।

स्वरुप परिचयः—इसकी आरोही लता एवं काण्ड काष्ठमय, पर्ण-युग्म पक्षाकार, 20 से 24 जोड़ों में पत्रकों से युक्त पत्रक इमली के पत्रकों के सद्यश होते हैं । चखने पर पत्रक स्वाद में कुछ मधुर, पुष्प-श्वेताभ हलके गुलाबी रंग के, सवृन्त काण्डज गुलाबी रंग के गुच्छों में निकलते हैं । पुष्प वाहक दण्ड पर भी कभी-कभी पत्र पाये जाते हैं । शिम्बी गुच्छों में आयताकार एवं चपटी होती हैं । प्रत्येक फळी में चमकीले बीज लाल या सफेद तथा उप़री भाग में काला होता है । यदा कदा काळे या सफेद रंग के बीज भी पाये जाते हैं । मुळ काष्ठमय स्वाद में ईषत्मधुर होता है एवं मुलेठी के मूल के साथ भी मिलावट व्यापारी करते हैं

पुष्पकालः..................जुलाई, अगस्त,
फलकाळ..................दिसम्बर, जनवरी

प्रयोज्य अंगः— मूल, बीज, पत्र,

मात्रा—मुलचूर्ण 6 से 8 र० बीजचुर्ण – 1 से $1\frac{1}{2}$ रत्ती,

प्राप्तिस्थानः— इसकी लतायें हिमालय की निचली उष्ण घाटियों से लेकर भारत के मैदानी भागों में स्वयंजात सर्वत्र सुलभ हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः—

गुण-लघु, रूस, तीक्ष्ण, रस-तिक्त, कषाय, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, कम्र-त्रिदोषहर, स्नेहन, कफनिस्सारक, मूत्रल, बीज-कफ वातशामक, लेखन, कुष्ठघ्न, नाड़ीवल्य, हदयोत्तेजक, वाजीकरण, केश्य तथा अल्पमात्रा में कटुपौष्ठिक ।

अहितकरः— कभी-कभी बीज चूर्ण का मुखद्धारा सेवन करने से अतियोग हो जाने से आमाशयान्त्र प्रदाह होकर, बमन, विरेचन मूत्राघात, एवं हदयावसाद आदि उपद्रव हो जाते हैं । रसग्रन्थकारों ने इसे उपविष माना है ।

आमायिक प्रयोगः— मूल एवं पत्र मधुर, कफ शामक, एवं व्रणरोपक हैं । यह इन्द्रलुप्, कण्डु, कुष्ठ एवं कृमि-नाशक हैं । उपविष एवं उष्ण होने से गर्भस्राव कर हैं । स्वरभंग में पत्तियों की गोलियां बनाकर मुंह में रखने पर लाभ होता है । इसके अतिरिक्त मूल गृध्रसी, गण्डमाला शिरोरोग एवं कृमिदन्त में उपयोगी है ।

रासायनिक संगठनः— इसकी पत्तियों तथा जड़ में मुलेठी में पाये जाने वाला ग्लिसरहाजिन नामक तत्व एवं बीजों में सब्रिन नामक विषाक्त प्रोटीन पाया जाता है । आयुर्वेद में इसकी उपविषों में गणना की है । सुश्रुत ने मूलविष उष्णों में गणना की हैं ।

मुख्ययोगः— गुञ्जादितैल, गुञ्जाभद्ररस,

109 यष्ठीमधु (मुलेठी)

द्रव्यनामः..................संस्कृत..............मधुक, यष्ठीमधु, मधुयष्ठी कीतक,
हिन्दी...............मुलेठी,
लैटिन...............Glycyrrhiza glabrara Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गणः— 1 चरक ने जीवनीय, सन्धानीय, वर्ण्य, कण्ठथ, कण्डूघ्न, स्नेहोपग, वमनोपग, आस्थानोपग, छर्दिनिग्रहण, मुत्रविरेचनीय, एवं शोणितस्थापन महाकषाय में उल्लेख किया है । सुश्रुत ने काकोल्यादि, सारिवादि, अञ्जनादिगण में उल्लेख किया है ।

निरुक्तिः— यष्ठीमधु यष्ठीरूप मधुक इति'' अर्थात मूळ काष्ठ मधुर होता हैं ।

मधुयष्ठी— मूल काष्ठ मधुरता को लिये हुये होने मधुयष्ठी कहते हैं एंव मधु सद्यश माधुर्य होने से मधुक भी कहते हैं ।

क्लीतकः— क्ली ल्छीवत्वं तकति वृस्यत्वात्'' अर्थात् यह नपुंसकता का नाश करता है ।

स्वरुप परिचयः— मुलेठी के एक मीटर से 1.6 मीटर तक ऊँचे मृदुकाण्ड एवं बहुवर्षायु मूल वाले पौधे होते हैं । पत्रक संख्या में 4 से 8 तक युग्म रूपरेखा में आयताकार अण्डाकार, अण्डाकार होते हैं जिनके अग्र नुकीले या कुण्ठित होते हैं । पुष्प हलके गुलाबी रंग के होते हैं । पुष्प-पत्रकोणोभूदत शुकीवत् मञ्जरियों में खिलते हैं । बीज संख्या में 2-3 वृक्काकार होते हैं । मूळ का वर्ण रक्ताभ घूसर वर्ण का, लम्बाई के रुख में झुर्रियां पड़ी हुई एवं वृत्ताकार चिन्ह्न वाले होते हैं । स्वाद में मधुर एवं कुछ कषाय होते हैं । अन्दर काष्ठीय भाग कुछ पीला एवं रेशेदार होता हैं । बाजार में कई जातियों की मुलेठी के मिश्रण मिलता हैं । इनमें मुख्य रूप से रूस, स्पेन, सिलिलीद्वीप की Varieties मुख्य हैं ।

पुष्पकाल......................अगस्त, सितम्बर,
प्रयोगज्य अंग.................मूल,

प्राप्तिस्थानः— यह अरब, ईरान, तुर्कीस्तान, अफगानिस्तान आदि + 6 देशों का आदिवासी पौधा हैं । इन स्थानों से व्यावसायिक रूप से इसका संग्रह किया जाता है । भारत में मुलेठी का आयात प्रधानतः फारस की खाड़ी साईबेरिया, स्पेन आदि देशों से होता है । इस समय भारत में पंजाब, सिन्ध, कश्मीर, उत्तर प्रदेश में इसकी खेती करने की दिशा में प्रयत्न जारी हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः— 2

गुण-गुरु, स्निग्ध, रस-मधुर, विपाक-मधुर, वीर्य-शीत, कर्म-वात पित्त शामक, वातानुलोभन,मृदुरेचन, शोणितस्थापन, मूत्रल, मूत्रविरेचनीय, कण्ठय, चक्षुष्य, जीवनीय, संधानीय, रसायन, वल्य, शुक्रवर्धन वर्ण्य, कण्डूघ्न, चर्मरोग नाशक, केश्य, शोथहर, ज्वरनाशक ।

आमयिक प्रयोगः— 1 रसायन हेतु मुलेठी चूर्ण का सेवन दुग्ध के साथ सेवन करने से लाभ होता है यह हृदयरोग वातंरक्त अपस्मार, स्वरभंग, पाण्डुरोग, मुत्रविकार तिमिररोग फुफ्फुसरोग, कास, क्षतक्षीण, तथा व्रणरोपण में उपयोगी हैं ।

रासायनिक संगठनः— मूल में ग्लिसिराइजीन नामक मधुर सत्व सुक्रोज एवं डेक्ट्रोज, स्टार्च, प्रोटीन, वसा, रेजिन आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोगः— मधुयष्ठयादि चूर्ण, कासवटी, एळादिवटी, अश्वगन्धारिष्ठ,

110 कपिकच्छु (केंवांच)

द्रव्यनाम......................संस्कृत...............कपिकच्छु, आत्मगुपृा, ऋषभी, शुकशिम्बी, कच्छुरा, वानरी, मर्कटी, कण्डूरा,
हिन्दी...............क्रोंच, केवांच,
लैटिन...............Mucuna prurita Hook.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गणः– (1) चरके ने वल्य महाकषाय एंव मधुरस्कन्ध में ऋषभी एंव ऋष्यप्रोक्ता के नाम से उल्लेख किया हैं । सुश्रुत ने विदारि गन्धादिगण एंव वातसंशमन वर्ग में कपिकच्छु का उल्लेख किया हैं ।

निरुक्तिः– **आत्मगुप्ता-** केवांच की फली में कण्डू वाले रोंये होने से अपने को स्वयं सुरक्षित रखने से इसे आत्मगुप्ता कहते हैं । फलियों में कण्डूवाले रोंये होने से शूकाशिम्बी भी कहते हैं ।

कण्डुराः– अर्थात् इसके स्पर्श से खूब खुजली होती हैं इसलिये इसे कण्डूरा एंव कच्छुरा भी कहते हैं ।

मर्कटीः– पके हुये फलियों के रोयें वन्दरों के शरीर पर जेसे रोम होने से इसे मर्कटी एंव वानरी भी कहते हैं ।

कपिकच्छुः– कपीन् कशति इति कपिकच्छुः" अर्थात् इसके रोम बन्दरों को लग-जाने से खुजली पैदा करते हैं ।

स्वरूपपरिचयः–

इसकी एकवर्षायु काण्ड वाली चक्रारोही लताये होती हैं । पर्ण–संयुक्त, त्रिपत्रक, आकृति में लट्वाकार या विषमकोण, समचुतभुर्जाकार, उप्रर चिकने तथा नीचे रोमश होते हैं । पूष्य पत्रकोणोद्भूत बैंगनी रंग के मञ्जरी में नीचे को लटकी हुई या झुकी हुई होती हैं । प्रत्येक शिम्बी में प्रायः शिम्बी एक साथ कुछ मुड़ी हुई रोमश, धारीदार होती हैं । बीज संख्या में 5-6 कृष्णाभ, धब्बेदार होते हैं कच्ची कलियों का अचार या शाक बनाकर खाया जाता हैं । पकी हुई फलियों के रोयें शरीर लग जाने पर कण्डु एंव शोथ होता हैं । मूल का रंग रक्तवर्ण का होता हैं ।

पुष्पकाल......................जुलाई, अगस्त, **फलकाल**, शीतकाल,
प्रयोज्यअंग..................बीज, मूल,
मात्रा–.......................बीजचूर्ण 3 से 6 माशा

प्राप्तिस्थानः इसकी लतायें वर्षा काल के बाद हिमालय की निचली उष्ण घाटियों से लेकर भारत के समस्त मैदानी भागों में स्वयंजात पाई जाती है इसकी किस्म की खेती भी की जाती हैं बाजार में श्वेत एंव कृष्णबीज प्रायः मिलते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (2)

गुण-गुरु, स्निग्ध, रस-मधुर, तिक्त, विपाक-मधूर, वीर्य-उष्ण, कर्म-वृहण, वल्य, शुक्रल, वाजीकर, रोम कृमिघ्न, मूल-योनिसंकोचक,

आमयिक प्रयोगः– कौंच ज्ञानतन्तुबलप्रद, आर्तवजनक, प्रदर की अनियमितता, एंव पक्षाघात में उपयोगी हैं । कौंचपाक का प्रयोग शुक्रदौर्वल्य में किया जाता हैं । शिम्बी के रोम उत्तम कृमिघ्न हैं । अतिसार में मूल का उपयोग किया जाता हैं ।

मुख्ययोगः– बानरीगुटिका, मन्मथरस, धातुौष्ठिकचूर्ण, शतावर्यादिचूर्ण, मूशलीपाक, कपिकच्छुपाक, महामायुरघत (शिरोरोग अधिकार) ।

111 शिंशपा (सीसम)

द्रव्यनामः....................संस्कृत..............शिंशपा, कृष्णासारा,
हिन्दी...............शीशम,
लैटिन..............Dalbergia sissoo Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गणः– (1) चरक में आसवयोनिसार वृक्षों में तथा कषायस्कन्ध वर्ग में उल्लेख हैं । सुश्रुत के सालसारादिगण एंव मुष्ककादि गण में उल्लेख हैं ।

निरुक्तिः– (2) शय् आक्रोशे धातु से शिशपा वना है अर्थात् यह काटने वाले को शाप देता हैं ।

कृष्णासाराः– अर्थात् काष्ठसार कृष्णवर्ण का होता हैं । अमर कोषटीकाकार क्षीरस्वामी ने अगुरुशिंशपा अर्थ किया हैं । शिवदत्त ने रक्तशिंशपा ऐसा भी विवेचन किया हैं ।

स्वरूपरिचयः–

इसके पर्णपाती मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं । काण्ड छाल मोटी, खाकीस्तरी रंग की तथा लम्बाई के रूख में कुछ विदीर्ण होती हैं । पर्ण-एकान्तर, सपत्रक, पत्रक, संख्या में 3-5 एकान्तर क्रम में स्थित, एंव लट्वाकार होते हैं । पुष्प-पीताभ श्वेत एंव पत्रकोणोंद्भूत, मञ्जारियों निकलते हैं । फली-लम्बी, चपटी $1\frac{1}{2}$ से 4 इंच लम्बी 2 से 4 बीज युक्त होते हैं । काष्ठसार कृष्णाभ भूरे रंग का ।

पुष्पकाल....................फरवरी, मार्च,
फलकाल..................मई, जून,
प्रयोज्यअंग.................सारकाष्ठ छाल, पत्र, बीज,
मात्रा–क्वाथ.................3 से 5 तोला

प्राप्तिस्थानः– भारत के सभी प्रदेशों के वनों सड़कों के आसपास इसके वृक्ष स्वयंजात एंव लगाये हुये पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (3)

गुण-लघु, रुक्ष, रस-कषाय, कटु, तिक्त, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, कर्म-त्रिदोषशामक, कुष्ठघ्न, कृमिघ्न, व्रणशोधन, शोधहर, गर्भाशय संकोचक, आर्तवप्रवर्त्तक, लेखन, पत्र-स्तम्भन, मूत्रमार्गस्नेहन, पाण्डुहर, व्रणशोधन ।

आमयिक प्रयोगः– यह मुत्राशय के रोग हिक्का, शोथ, विसर्प, भेद के रोग, कुष्ठ, श्वित्र, वमन, कृमि, दाह, रक्तविकार, शीशम की लकड़ी का तैल तिक्त, कटुकषाय, कृमि, कुष्ठ एंव वातविकारों में उपयोगी हैं । युनानी मतानुसार रक्तरोधक एंव पेट के कीड़ों में उपयोगी हैं ।
नेत्ररोगों पर इसके पत्तों का रस और मधु सम भाग लेकर बिन्दु को आंख में डालने पर लाभ होता हैं ।

रासायनिक संगठनः– काष्ठसार में तैल पाया जाता हैं । छाल तथा फलियों में टैनीन पाया जाता हैं । बीजों भी स्थिरतैल पाया जाता हैं ।
मुख्य योगः– महाखदिरासव,

112 बीजक (विजयसार)

द्रव्यमानः	संस्कृत	बीजक, असन, बन्धूकपुष्प,
	हिन्दी	विजयसार, बीजासार,
	लैटिन	Pterocarpus marsupium Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गणः- (1) चरक ने उदर्दप्रशमन महाकषाय एंव सुश्रुत ने साल सारादिगण में असन (बीजक) का उल्लेख एंव अष्ठाङ्ग संग्रह ने असनादिगंधा में किया हैं ।

निरुक्तिः- असन- अस्यतिरुजमू" इति अर्थात यह रोग को नष्ठ करने में विशेष उपयोगी हैं ।

बीजकः- अर्थात् अर्थात् इसका काष्ठसार रोगों के जीतने में समर्थ हैं ।

बन्धूक पुष्पः- इसके पुष्प बन्धूक पुष्प के सधश रक्त वर्ण के होते हैं ।

स्वरूपपरिचयः-

विजयसार के मध्यम आकार के पर्णपाती वृक्ष होते हैं । काण्ड शाखायें चारों ओर को फैली हुई होती हैं । पर्ण पक्षवत्, तथा 5 से 9 पत्रकोंयुक्त, रुपरेखा में आयताकार या अण्डाकार 2 11" से 5" तक लम्बे 2" चौड़े, कुण्ठित, नताग्र पर्ण-सतह मसृण एंव चमकीले होते हैं । पुष्प रक्ताभ वर्ण के मञ्जारियों में लगते हैं । फालियाँ वृताकार 1 से 2" तक लम्बी, वृत्त के पास कोना चोंचदार होता हैं । छाल-पीताभ रंग की काफी मोटी एंव स्वाद में कषैली होती हैं । काष्ठसार रक्ताभवर्ण का एंव पानी में डालने में लाल रंग छोड़ता हैं,

पुष्पकाल . . . . . जनवरी, फरवरी,
फलकाल . . . . . मार्च, मई,

प्रयोज्य अंगः- छाल, काष्ठसार, गोंद, पुष्प,

प्राप्ति स्थानः- भारत के उष्णप्रान्तों उत्तरप्रदेश, बुन्देलखण्ड, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, गुजरात आदि सभी प्रान्तों में इसके वृक्ष स्वयं जात पाये जाते हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः- (2)

गुण-लघु, रुक्ष, रस-कषाय, विपाक-कटु, वीर्य-शीत, कर्म-मधुमेहोहर, कुष्ठघ्न, प्रमेहहर, मुत्रसंग्रहणीय, रक्तविकार नाशक एंव जल शुद्धि हेतु कृमिनाशक के रुप में भी प्रयोग किया जाता हैं ।

आमयिक प्रयोगः- छाल एंव काष्ठसार का क्वाथ मधुमेह प्रयोग किया जाता हैं ।

मुत्रकृच्छ्रु, अश्मरी, कामला एंव पाण्डु में यह उपयोगी हैं । कुष्ठ, विसर्प, श्वित्र, उरु स्तम्भ एंव कर्णशूल में उपयोगी माना जाता हैं । स्थूलता कम करने के लिए भी क्वाथ को मधु के साथ देते हैं ।

रासायनिक संगठनः- इसमें टैनिक एसिड, पायरोंकेटेचीन, गैलिक एसिड आदि अन्य कषायतत्व पाये जाते हैं ।

मुख्य योगः- बीजकारिष्ठ, सारासव, महानीलतैल, चन्दनादितैल, महाखदिरघृत, बीजादिरसायन,

वक्तव्यः- संहिताओं के भिन्न-भिन्न स्थलों पर टीकाकारों ने बीजक का ही पर्याय असन माना हैं एंव कुछ ने सर्ज, महासर्ज, पीतशाल को असन में गणना कर अलग द्रव्य स्वीकार किया हैं । लेखक के विचार से बीजक का ही पर्याय असन हैं । सम्भवतः सर्ज, महासर्ज में भी असन आया हो ।

113 रक्तचन्दन (लालचन्दन)

द्रव्यनाम	संस्कृत	रक्तचन्दन, रक्तसार, लोहित्तचन्दन
	हिन्दी	लालचन्द
	लैटिन	Pterocarpus santalinus linn.f.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गणः– (1) सुश्रुत ने पटोलादि, सारिवादि एंव प्रियङ्गवादिगण में कुचन्दन (रक्तचन्दन) का उल्लेख किया गया हैं ।

निरुक्तिः–

रक्तसारः– काष्ठसार रक्तवर्ण का होता हैं ।
रक्तचन्दनः– काष्ठ लाल रंग का होता हैं ।

स्वरूपपरिचयः

लालचन्दन के मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं । काण्ड मृदुरोमावृत, पर्ण-3 पत्रक, कभी 5 पत्रकों से युक्त, पत्रक 2 से 4" तक लम्बें, अग्र एंव आधार दोनों तरह गोलाकार एंव कुछ कटे हुये तथा अधःपृठतल से चिपके, सुक्ष्म खाकस्तरी, रोमावृत, पुष्प-छोटे-2 मञ्जरियों में पीताभ श्वेत गुच्छों निकलते हैं । फली 2 से 3" तक लम्बी, रेशमी रोमावृत एंव कोने से चोंच सी निकली होती हैं । बीज-कुछरक्त वर्ण का होता हैं । काष्ठसार-रक्तवर्ण का तथा घिसने पर लाल रंग देता हें ।

पुष्पकाल . . . . . मार्च, अप्रेल,
फलकाल . . . . . पुष्पकाल के बाद,
प्रयोज्य अंग . . . . . काष्ठसार,

प्राप्ति स्थान :– इसके वृक्ष विशेषकर कर्नाटक, कैरल दक्षिण के पश्चिमवर्ती जंगल प्रदेशों एंव चिंगलपुर की पहाड़ियों पर स्वयंजात वृक्ष पाये जाते हैं । भारत में मालाबार से भी लालचन्दन की लकड़ी का आयात होता हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः–

गुण-लघु, रुक्ष, रस-तिक्त, कषाय, विपाक-कटु, वीर्य-शीत, कर्म-कफ-पित्तशामक, दाहशामक, स्तम्भन, शोथहर, त्वग्दोषहर,
तृष्शानिग्रहण, रक्तशोधक, दाहप्रशम, ज्वरनाशक, विषघ्न,

आमयिक प्रयोगः– लाल चन्दन का लेप शीतल, शोथघ्न एंव व्रणरोपक हैं । फोड़े-फुन्सियों में विशेषकर रक्त-की उष्णता से उत्पन्न रोगों में लेप लाभ करता हैं । यह ज्वर, दाह, तृष्णा, अतिसार, रक्तार्श, रक्तपित्त कुष्ठ आदि रोगों में प्रयुक्त होता हैं ।

रासायनिक संगठनः– इसमें सेन्टलिन नामक रंजक द्रव्य सेन्टल टेरोकार्पिन नामक, श्वेत रवेदार, अविलये तत्व पाया जाता हैं ।

लालचन्दन की पहचान

बाजार में लालचन्दन के छोटे बड़े लम्बगोल बेलनाकार टुकड़े मिलते हैं । काष्ठ का अतःसार बजनदार एंव पानी में डूबने वाला होता हैं । लालचन्दन को टुकड़ों को जल में घिसने पर लाल रंग निकलता हैं । यह प्रायः निर्गन्ध और स्वाद में कषाय युक्त होते हैं । उत्ताप देने से कुछ हलकी सुगन्ध आती हैं । कभी-कभी पंतगकाष्ठ की लकड़ी का मिश्रण लाल चन्दन के साथ किया जाता हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्यः– कुचन्दन शब्द से डल्हण ने लोहितचन्दन ये अर्थ किया हैं कुछ विद्वानों ने कुचन्दन को ही रक्त चन्दन स्वीकार किया हैं । लेखक के मत से कुचन्दन पीतचन्दन एंव रक्तचन्दन तीनों अलग-2 द्रव्य हैं ।

मुख्ययोगः चन्दनासव, च्यवनप्राश, सुपारीपाक, दशमूलारिष्ठ,

114 तिनिश

द्रव्यनाम	संस्कृत	तिनिश, नेमी, रथद्रु
	हिन्दी	सांदन, स्यंदन
	लैटिन	ougeinia daltergioides L

गणः– (1) सुश्रुत ने सालसारादिगण, एवं चरक ने दशेमानिगण में उल्लेख न करते हुए इन्द्रोक्त अपर रसायन में तिनिश का उल्लेख किया है ।

निरुक्ति रथद्रुः– "रथोपयोगित्वात् रथद्रु' इसकी लकड़ी रथ बनाने के काम में आती हैं । इसी कारण इसके वृक्ष को नेमी, रथद्रुम भी कहते हैं । वृक्षकाष्ठ मजबूत होने से इसे तिरिच्छ भी कहते हें तिनिश– अतिशयेननेशति इति "वृक्ष लम्बी आयु वाला होता है।"

स्वरुपपरिचयः–

तिनिश के छोटे, मध्यम आकार के पर्णपाती वृक्ष होते हैं । काण्ड पतली, बाहर से श्वेताभ रंग की एंव चीरा लगाने पर रक्तवर्ण का स्त्राव निकलता हैं, पर्ण-त्रियत्रक, 3-6" तक लम्बें, अण्डाकार, वृताकार, कुण्ठिताग्र, गोल एंव दन्तुर होते हैं । पुष्प-श्वेताम गुलाबी रंग में मञ्जारियों में खिलते हैं । फलियाँ 3-4 तक लम्बी गुच्छों में पतली होती हैं ।

पुष्पकालः	मई, जून,
फलकाल	पुष्पकाल के बाद,
प्रयोज्यअंग	छाल, गोंद,

प्राप्तिस्थानः– इसके छोटे आकार के वृक्ष हिमालय की निचली घाटियों में 120 मीटर की ऊंचाई तक एंव भारत के सभी मैदानी भागों में स्वयंजात पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान– रस–कषाय, वीर्य–उष्ण, विपाक–कटु, वात–कफ नाशक, रसायन, रक्तविकार नाशक ।

आमयिक प्रयोग– कुष्ठ में छाल या सार का क्वाथ खाने एवं व्रण प्रज्ञालन में उपयोग किया जाता है । यह व्रण, पाण्डु एवं कृमिनाशक है । श्वीत्र में भी सार का उपयोग किया जाता है । मूत्र के रक्त वर्ण के होने पर छाल का क्वाथ लाभ करता है । ।

115 करञ्ज

द्रव्यनाम	संस्कृत	उदकीर्य, करञ्ज, नक्तमाल, गुच्छपुष्पक,
	हिन्दी	कंरज, करंजुआ
	लैटिन	Pongamia pinnata (l) S/n. P. glabra Vent Pierre.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गणः– (1) चरक में विरेचनद्रव्यों में, कण्डूघ्न महाकषाय, कटुकस्कन्ध, तिक्तस्कन्ध, एंव सुश्रुत ने आरग्वधादि, वरुणादिगण, अर्कादिगण, श्यामादिगण तथा शिरोविरेचन द्रव्यों में करञ्ज का उल्लेख किया हैं ।

निरुक्तिः–

उदकीर्यः– उदकेनकीर्यते विसिप्यते इति" जलीय प्रदेशों में विशेष रुप से फैलता हैं ।

करञ्जः– कं जलं रञ्जयति" अर्थात् यह अपने रंगीन पुष्पों से जल को रंजित करता हैं । या शाखा चवाने से रंग छोड़ता हैं ।

नक्तमालः– नक्तं रात्रों मालाधायते यस्य सः" इसके पुष्पों की माला रात्रि को धारण की जाती हैं ।

गुच्छपुष्पकाः– पुष्प गुच्छों में लगते हैं ।

धृतपूरकः– बीजों से धृत जैसा तैल निकलता हैं ।

स्वरूपपरिचयः–

करञ्ज के बहुशाखीय छायादार वृक्ष पाये जाते हैं, काण्ड स्कन्ध अपेक्षा कृत छोटा,. छाल चिकनी, चिन्हित, पर्ण-सपत्रक, पन्त्र स्निग्धपत्र, गाढ़े हरे रंग के एंव स्वाद में तिक्त होते हैं, पुष्पश्वेताभ गुलाबी रंग के जो देखने में आकर्षण होते हैं । शिम्बी में एक बीज होता हैं जोकि चपटा, हलके छिलकेदार लाल रंग का तथा रेखांकित । बीज गिरी से धृत सघश तैल निकाला जाता हैं ।

पुष्पकाल	अप्रैल, मई,
फलकाल	जुलाई, अगस्त,
प्रयोज्यअंग	पत्र, पुष्प, बीज, तैल ।
मात्रा· पत्रस्वरुप	1 से 2 तोला ।
वीजपूर्ण	1 से 3 माशा ।

प्राप्तिस्थानः– प्रायः समस्त भारतवर्ष के उष्ण भागों में सड़कों के किनारे वृक्ष लगाये हुये पाये जाते हैं । विशेषकर समुद्रतटीय प्रान्तों में हिमालय की निचली घाटियों से लेकर लंका तक पाया जाता हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (2)

गुण-लघु, तीक्ष्ण, रस-तिक्त, कटु, कषाय, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, प्रधानकर्म-वातकफनाशक, रक्तशोधक, व्रणशोधक शोथनाशन, क्रम्सहर शिरोविरेचन । पत्र-कटुविपाक, उष्णवीर्य, भेदन,

आमयिक प्रयोगः– कृमि, योनिरोग, उदावर्त, गुल्म एवं अर्शरोग नाशक, फल–बात, प्रमेह, अर्ध, कृमि कुष्ठनाशक हैं तैल सारक-बात, कफ, कुष्ठ, प्रमेह एंव शिरोरोगनाशक हैं ।

रासायनिक संगठनः– बीजों में 29% तक पीले रंग का गाढ़ा तैल प्राय होता हैं । जिसे करञ्जतैल कहते हैं । छाल में तिक्त क्षारोद पाया जाता हैं जो ईथर, ऐल्कोहल, एंव जल में विलेय होता हैं ।

मुख्य योगः– करञ्जादिचूर्ण, करञ्जाद्यधृत, करञ्जादितैल,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

116 नीली

द्रव्यनामः	संस्कृत	नीली, नीलिनी, रंजिनी,
	हिन्दी	नील
	लैटिन	Indigofera tinctoria Linn.

गणः– (1) चरक ने विरेचन द्रव्यों एंव सुश्रुत में अधोभाग हर द्रव्यों में नीलिनी का उल्लेख किया है ।

निरुक्तिः– (2)

नीलिनी– नीलो वर्णोऽस्तस्याः इति" अर्थात इसका वर्ण नीला होता हैं ।

रजिनी– इसका उपयोग रंगने के कार्य में होता हैं । रञ्जयति रञ्यते वानऽयाइति"

श्रीफलीः– श्रीमत् फलमस्या" अर्थात् इस की फलियाँ सुन्दर होती हैं ।

स्वरुपपरिचयः–

इसके 2 से 3 फुट तक सीधे खड़े एक वर्षायु क्षुप होते हैं । शाखायें रुपरेखा में बेलनाकार और कड़ी होती हैं । पर्ण-सकृत्पक्षवत्, सपत्रक, पत्रक संख्या में 5 या 6 जोड़े में, अंडाकार-लट्वाकर, आधार की ओर अधिक चौड़े, एंव सफानाकार और अग्र की ओर क्रमशः कम चौड़े होते हैं । पुष्प-हरिताभ-गुलाबी रंग के, पत्र कोणोंद्भूत मञ्जारियों में निकलते हैं । फलियों-करीब एक इंच लम्बी तथा वेलनाकार गुच्छों में होती हैं । प्रत्येक फली में 10 से 12 बीज होते हैं ।

पुष्पकालः . . . . . जुलाई, अगस्त,
फलकाल . . . . . दिसम्बर, जनवरी,
प्रयोज्य अंग . . . . . पत्र, बीज, मूल,

प्राप्तिस्थानः– यह भारत के उष्ण प्रदेशों, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश राजस्थान, पंजाब, बंगाल, बिहार, आदि स्थानों में व्यावसायिक रुप से खेती की जाती हैं । भारत में इसके स्वयं जात पौधे भी पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (3)

गुण-रुक्ष, लधु, रस-कटु, तिक्त, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, प्रधानकर्म, लेखन, वेदनास्थापन, केशरञ्जजन, केशवर्धन, दीपन पाचन यकृदुत्तेजक, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, रसायन, वाजीकरण, मूत्रल, विषघ्न,

आमयिक प्रयोगः– पत्रस्वरस का उपयोग पागल कुत्ते के विषशामक एंव मूलक्वाथ संखिया विष निवारक माना जाता है । पत्तों का उपयोग खिजाब में डालने के लिये किया जाता हैं । सर्पविष पर नीली मूल को तण्डुलोदक में घिसकर लेप करने से लाभ होता हैं । विसर्प, मूत्रकुच्छ्र, दन्तकृमि, उन्माद, अपस्मार, क्षय आदि रोगों में इसका उपयोग किया जाता हैं ।

सुश्रुत एंव चरक ने उदररोग में नीली को विशेष उपयोगी माना हैं ।

रासायनिकसंगठनः– इसमें इन्द्रिकन नामक ग्लूकोसाइड पाया जाता हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्यः– बाजार में इंडिगोफेरा आरैक्टा, इंडिगोफेरा सुमात्रना, इंडिंगोफेरा आर्टिकुलंशेटा" आदि किस्मों की नील के साथ मिलावट या प्रतिनिधि द्रव्य के रुप में किया जाता हैं । प्राचीन काल से नील का क्रय-विक्रय विदेशों से होता रहा हैं । इसी कारण इसे कृताकिका भी कहते हैं ।

117 अगस्त्य

द्रव्यनाम	संस्कृत	अगस्त्य, मुनिद्रुम, वक्रपुष्प
	हिन्दी	अगस्तिया
	लैटिन	Sesbania grandiflora (L) Pers.

गणः– (1) सुश्रुत ने क्षयकासहर द्रब्यों के साथ अगस्त्य की गणना की है

निरुक्तिः– (2)

अगस्त्यः– अंग विन्ध्याचलं स्त्यायात्ति स्तम्नाति इति अगस्त्यः" अर्थात् विन्ध्याचल को साम्भित कर देने वाले एंव अगस्त्यनामक ऋृषि को यह वृक्ष प्रिय होने के कारण इसे अगस्त्य कहते हैं ।

मुनिद्रुमः– मुनेः अगस्तस्यप्रियों द्रुमः इति" यह अगस्त्य मुनि का प्रिय वृक्ष हैं एंव अगस्त्य नक्षत्र में यह पुष्पित होता हैं ।

वक्रपुष्पः– पुष्प शुभ्र वर्ण के एंव वक्र होते हैं ।

स्वरुपपरिचयः–

इसके मध्यम आकार के वृक्ष प्रायः उद्यानों में लगाये हुये पाये जाते हैं । पर्ण-सदल, शिरीषप्रत्र सघश, समवत पुष्प वर्ण के कभी-कभी पलास पुष्प सद्यश रक्तवर्ण के होते हैं । पुष्प भेद से राजनिघण्टुकार ने चार प्रकार का अगस्त्य बताया हैं । इस समय श्वेतपुष्प वाला ही अगस्त्य सुलभ हैं । पुष्प खिलने पर इसकी बहुत सुन्दर शोभा होती हैं ।

फलियाँ शिग्रु के फलियाँ के सद्यश 12 से 15" तक लम्बी एंव चार धारवाली होती हैं ।

पुष्पकालः	जुलाई, अगस्त,
फलकाल	सितम्बर, अक्टुबर,
प्रयोज्य अंग	पुष्प, मूल, पत्र, त्वक्,

प्राप्तिस्थानः– भारत के मैदानी भागों में इसके वृक्ष उद्यानों में लगाये हुये पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः–(3) रस-कषाय, तिक्त, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, कर्म-कफ-पित्तघ्न, पत्र-कटु, तिक्त, मधुर, गुरु, विशद, कफघ्न, विषघ्न । पुष्प-तिक्त, कषाय, कटु, विपाक वातकर, क्षयघ्न, कासघ्न, तथा रतौंधी नाशक हैं ।

आमयिक प्रयोगः– अगस्त्य पुष्प नव्यमतानुसार दीपन एंव आनुलोमिक, मूल-उष्णवीर्य वातहर एंव कासहर हैं । त्वचा ग्राही एंव पत्र आनुलोमिक एंव शिरोविरेचन में उपयोगी हैं । इसके पुष्पों का शाक एंव फलियों का अचार बनाया जाता हैं । पत्तियों का लेप व्रण पर करने से शोधन एंव रोपण होता हैं । घष्ठिमांन्ध में फूलों का स्वरस आंख में डालते हैं । सन्धिशोथ में मूल का लेप करते हें । मसूरिका में अगस्त्य छाल का क्वाथ देने से काम होता हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्यः– सुश्रुत एंव अष्ठांङ्गसंग्रह एंव अष्ठाङ्गहृदय में इस द्रव्य का एक या दो स्थलों पर उल्लेख मिलता हैं । चरक में इसका उल्लेख नहीं हैं । राजनिघण्टुकार ने पुष्प भेद से चार प्रकार का माना हैं ।

118 जयन्ती

द्रव्यनाम	संस्कृत	जयन्ती, जया,
	हिन्दी	जैंत
	लैटिन	Sesbania aegyptiaca Poir.

गणः– चरक संहिता एंव अष्ठाङ्गहृदय में जयान्द्वय शब्द का उल्लेख हैं । जयन्ती संहिता ग्रन्थों में अग्निमन्थ का पर्याय दिया हैं ।

स्वरुपपरिचयः–

इसके मध्यम आकार के गुल्म या छोटे आकार के वृक्ष पाये जाते हैं । ये गुल्म उद्यानों में लगाये हुये या स्वयं जात पाये जाते हैं । शाखायें मृदु एंव नताग्र होती हैं । पर्ण 3 से 6" तक लम्बें एकान्तर, एंव संयुक्त समपक्षवत् 12 से 20 जोड़ों में पत्रक होते हैं । पुष्प पत्रकोणोद्भूत, पीत वर्ण के एंव पुष्परंग भेद से इसकी कई जातियाँ पाई जाती हैं ।

फलियाँ–पतली लम्बी एंव बीच–2 में पतली होती हैं । Sasbania aculeata को इत्कट या वनजयंती कहते हैं ।

पुष्पकाल	जुलाई, अगस्त,
फलकाल	सितम्बर, अक्टुबर,
प्रयोज्यअंग	पत्र, मूल, छाल, पुष्प, बीज,
स्वरस मात्रा	1 से 2 तोला ।

प्राप्ति स्थानः– निचली घाटियों से लेकर भारत के गृह उद्यानों में सर्वत्र सुलभ हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः–(1)

गुण-लघु, रुक्ष, रस-कटु, तिक्त, विपाक, कटु, वीर्य-उष्ण, प्रभाव-विषघ्न, ज्वरघ्न, कर्म कफ पित्तशामक, दीपन, ग्राही, कृमिघ्न, रक्तशोधक, गलगण्डनाशक, कफघ्न, आर्तवजनन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, व्रणपाचन,

आमयिकप्रयोगः प्रतिश्याय, शिवत्र मसूरिका, गलगण्ड, कृमी-शोथ आदि रोगों में उपयोगी हैं । आन्त्रवृद्धि एंव सन्धिवात में जयन्ती पत्र का लेप किया जाता हैं । कण्डु-नाश के लिये जयन्ती के बीजों का चूर्ण आटे में मिलाकर त्वचा में लेप किया जाता हैं । मूल का सूक्ष्मचूर्ण वृश्चिक दंश में लेप किया जाता हैं ।

119 यवासा (यवास)

द्रव्यनाम	संस्कृत	यास, यवास–शर्करा, दुःस्पर्शा, दुरालभा ।
	हिन्दी	जवास, जवासा,
	लैटिन	Alhagi Pseudalbagi (Bieb.) Desv.

गणः– चरक सू० अ० 29 यासशर्करा का उल्लेख, सुश्रुत सू० अ० 45 में यवासशर्करा का उल्लेख मधुर कषाय में ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरुक्तिः– **यासः**– याति प्रसरति इति वा" अर्थात् जो खूब फैलता हैं एंव काफी होता हैं उसे यास कहते हैं ।

दुःस्पर्शाः– दुःखेन स्पृश्यते कण्टकित्वात्" अर्थात् इसका काण्ड कांटेदार होने से स्पर्श करने में कठिनाई होती हैं । कांटे होने से इसके संग्रह करने में कठिनाई होती हैं इसलिये इसे दुरालभा भी कहते है ।

धन्वयासः– मरुद्भुवत्वात् ध्न्वयास" इसका काण्ड मरु भूमि में विशेष रुप से उगता हैं ।

स्वरुपपरिचयः–

जवासा के 30 से 90 से0 मी0 ऊंचे, पीताभ हरितवर्ण के शाखावहुल एंव कांटेदार नुकीले होते हैं । कांटे कड़े नुकीले 3.15 से0 मी0 लम्बें होते हैं । काण्ड-पतले प्रशाखाओं वाला, रम्भाकार पर्ण-साधारण, चर्मिल, रुपरेखा में अभिलट्वाकार, आयताकार कुण्ठिताग्र, नुकीले, पत्राग्र-संकुचित एंव तीक्ष्ण, फलक-आधार पर त्रिकोणाकार पर्णवृन्त छोटे एंव पत्र लम्बाई $\frac{1}{4}$ से $\frac{3}{8}$ " तक होते हैं पुष्प रक्तवर्ण के, फलियां कुछ मुड़ी हुई बीज कृष्णाभ-भूरे रंग के चिकने रंग के होते हैं ।

पुष्पकाल . . . . . जुन, जुलाई,
फलकाल . . . . . पुष्प काल के बाद,
प्रयोगज्यअंग . . . . . पञ्चांङ्ग, यवासशर्करा
(तुरञ्जवीन (यवासशर्करा–निर्यास की भांति द्रव पदार्थ)

प्राप्तिस्थानः– यह भारत के मरुभूमि विशेष रुप से गुजरात, सिंध, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश , महाराष्ट्र, पंजाब आदि प्रान्तों में तथा समुद्री तटों तक स्वयंजात पाया जाता हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः (1)

गुण-लघु, स्निग्ध, रस-मधुर, तिक्त, कषाय, विपाक-मधुर, वीर्य-शीत, प्रधानकर्म-वातपित्त शामक, शोथहर, वेदना स्थापन, रक्तरोधक, पित्तसारक, मुत्रजनन, वल्य, वृहणं, त्वग्दोषहर, यवासशर्करा-वल्य, वृष्य, सारक एंव कफ शामक हैं ।

आमयिकप्रयोगः यह मद, भ्रम, कुंष्ठ, विसर्प, बातरक्त, एंव कास नाशक हैं, प्रतिश्याय, श्वासनालिकाशोथ, गले का शोथ, आदि श्वासमार्ग के रोगों में जवासे का क्वाथ या वाष्प देने से लाभ होता हें । दमें में जवासे का घूम्रपान लाभ करता हैं । अर्श को जवासे के क्वाथ होने से शोथ एंव वेदना कम होती हैं ।

युनानी हकीम यासशर्करा (तुरंजबीज) जो कि एक प्रकार का निर्यास सधश द्रव्य रस जमकर कुछ ललाई लिये श्वेत वर्ण का पदार्थ हैं उसका विशेष रुप से चिकित्सा में प्रयोग करते हैं । इसका आयात ईरान, एंव अरबदेशों से होता हैं जो कि स्वाद में कुछ मधुर होता हैं । संहिताकारों ने इस द्रवशुष्क पदार्थ को यासशर्करा कहा हैं ।

रासायनिक संगठनः– तुरंजबीन में एक क्रिस्टली सत्व होता हैं जो किसी अम्ल में उबालने पर यासशर्करा में बदल जाता हैं । इसमें इक्षु शर्करा (Cane Sugar) भी पाई जाती हैं ।

120 पारिभद्र (फरहद)

द्रव्यनाम . . . . . संस्कृत . . . . . पारिभद्र, मन्दार, कंटकीपलाश, रक्तपुष्प
हिन्दी . . . . . फरहद, पांगरा,
लैटिन . . . . . Erythrina Variegata Linn. Var. orientalis M voilsyn E. indica Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्ग – गुडूच्यादिवर्ग (भा० प्र०)

निरुक्ति :– (1) पारिभद्र :– पारियारं गतं भद्र मस्य, परितोभद्रमस्य भा इति पारिभद्रः" यह कल्याण कारक है ।

कण्टकीपलाश :– पर्ण–पलाश सदृश त्रिपत्रक काण्ड कांटेदार होता है ।

रक्तपुष्प :– पुष्प रक्त वर्ण का होता है ।

मन्दार :– मन्दा अरा यस्य, मन्द मृच्छाति वा-झगतौ धातु से मन्दार शब्द बना है ।

स्वरूपपरिचय :

इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं । काण्ड एवं शाखायें कण्टकित, छाल कार्की, धूसरवर्ण की, पर्ण-पलाश-त्रिपत्रक, पत्रक विषम चतुर्भुजाकार, अग्रपत्रक-दीर्घ, हरिताभ वर्ण के होते हैं । पुष्प-पत्रकोणोद्भूत, गुच्छों में रक्तवर्ण के; सुरम्य, शिम्बी 30 से० मी० तक लम्बी, पतली बीजों युक्त होती है ।

पुष्पकाल . . . . . अप्रैल, मई,
फलकाल . . . . . जुलाई, अगस्त,
प्रयोज्यअंग . . . . . मूल, त्वचा, पुष्प, पत्र,
स्वरस मात्रा . . . . . पत्र स्वरस 5 से 10 ग्राम ।

प्राप्तिस्थान :– यह दक्षिण भारत के तटवर्ती प्रदेशों एवं भारत के शिवालिकप्रदेशों एवं उद्यानों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

रस-तिक्त, कटु, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, कर्म-वात-कफ शामक, ब्रणशोधक, शोथहर, कृमिघ्न, शूलप्रशमन, आक्षेपहर, मूत्रजनन, दीपन, मेदोघ्न ।

आमयिक प्रयोग :– व्रण, शोथ, संधिवात में लेप, कर्णशूल में स्वरस का पूरण, आभ्यन्तर प्रयोग में ज्वर, आक्षेप, शूल, कृमि फिरंग, मेदोरोग, मूत्रकृच्छ्रनाशक है । यह विशेष रूप से पुरीष कृमि गंडूपद एवं हुकवर्म लाभदायक है । छाल-ज्वरहर, शोथहर, एवं स्वप्नजनन है । ज्वर में और निन्द्रा लाने के लिये छाल देते हैं ।

वक्तव्य :– चरक संहिता में पारिभद्र शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है । सुश्रुत एवं वाग्भट्ट ने पारिभद्र का पर्याय पारिजात दिया है । इन ग्रन्थों के टीकाकारों ने निम्न एवं हारसिंगार यह अर्थ किया है । अधिकतर विद्धानों ने पारिभद्र से कण्टकीपलाश (फरहद) को स्वीकार किया है ।

121 वाकुची (बावची)

द्रव्यनाम . . . . . संस्कृत . . . . . वाकुची, सोमराजी, अवल्गुजा, चन्द्रलेखा पूतिफली ।
हिन्दी . . . . . बावची
लैटिन . . . . . Psoralea Corylifolia Linn.

गण– चरक ने तिक्तस्कन्ध इसकी गणना की है । अर्श रोग में शाक का विधान है । सुश्रुत संहिता में कटुवर्ग में अवल्गुज का उल्लेख, मेधायुस्यकामीय अध्याय में वांकुची का उल्लेख है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरुक्ति(1)

सोमराजी :– सोमेन आल्हादेन राजते इति सोमराजी"
अर्थात जो आनन्द से शोभित होती है उसे सोमराजी कहते हैं ।

अवल्गुज :– अवल्गोः अरम्यत्वात् जायते इति अवल्गुजः"
अर्थात् जो आसानी से पैदा होती है ।

बाकुची :– गुजि अव्यक्ते" कुच शब्दे" वा वात-कोचयति इति"
अर्थात् जो वायु का संकोच करती है, या जो वाणी से अव्यक्त शब्द करती है ।

पूतिफली :– पूतिः फलेस्वस्या"
अर्थात् इसका फल कृष्णावर्ण का एवं बदबूदार होता है ।

स्वरुपपरिचयः

बाकुची के एक से चार तक ऊंचे सीधे खड़े कोमल एक वर्षायु पौधे होते हैं । मूल बहुवर्षायु होता हैं । पर्ण–सवृंत्त 1 से 3" लम्बी रुपरेखा में गोलाकार, प्रायः मिश्रण दोनों पृष्ठ कृष्ण विन्दुत, पुष्प नीलाम, जामुनी रंग के पत्र कोणोद्भव, सघन, मञ्जारियों में निकलते हैं । बीज समूह में पकने पर काले रंग के चपटे कुछ बदबूदार, एंव दवाने पर तैलीय स्त्राव " निकलता हैं ।

पुष्पकाल	अगस्त, अक्टुबर,
फलकाल	जनवरी, मार्च,
प्रयोज्यअंग	बीज, बीज तैल,
मात्रा.............	बीज चूर्ण 1 से 3 माशा

प्राप्ति स्थानः समस्त भारत के उष्णप्रदेशों के मैदानी भाग में स्वयं जात पौधे वर्षाकाल के बाद पाये जाते हैं । कतिपय स्थानों पर इसकी खेती की जाती हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः (2)

गुण–उष्ण, रुक्ष, रस-कटु, तिक्त, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, प्रभाव-कुष्ठघ्न, एंव कृमिघ्न, प्रधानकर्म-वात-कफ नाशक, कटु पौष्ठिक, उत्तेजक, वाजीकरण, दीपन पाचन, प्रमेहघ्न, श्वासघ्न, तैल-वाह्य प्रयोग के शिवहर ।

आमयिक प्रयोगः बाकुची बीजचूर्ण शिवत्र, कुष्ठ, गोमूत्र या कृष्णतिल के साथ सेवन करने से लाभ होता हैं । दद्रु एंव श्लीपद में लेप या क्वाथ का सेवन लाभदायक हें ।

रासायनिक संगठनः– बीजों में एक उड़नशील तैल, एक राल या रैजिन, स्थिरतैल या क्रिस्टलाईन सत्व, सोरालेन एंव आइसोसोरालेन पाये जाते हैं । वाकुची के कुष्ठघ्न एंव कृमिघ्न यह दोनों प्रसिद्ध कर्म इन्ही सत्वों के कारण होता हैं ।

मुख्ययोगः– बाकुची तैल,

122 बिदारीकन्द

द्रव्यनाम	संस्कृत	बिदारीकन्द, बिदारी, भूमि कुष्माण्ड,
	हिन्दी	बिलाईकन्द, बिदारीकन्द, सराल,
	लैटिन	Pueraria tuberosa DC.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुणः– चरक ने कष्ठय, स्नेहोपग महाकषाय, एंव मधुरस्कन्ध गण में विदारी का उल्लेख किया हैं,

निरुक्तिः–

विदारी– द्यृ विदारणे, भक्षणे इति विदारी" अर्थात् इसको विदारण करके भक्षण किया जाता हैं ।

क्षीरशुल्का– इसके कन्द दुग्ध के समान श्वते के होते हैं ।

भू-कुष्माण्डः इसका कन्द जमीन के अन्दर पेठा के सधश आकार में पाये जाते हैं ।

स्वरुपपरिचयः

बिदारीकन्द की परिसृत चक्रारोही बहुवर्षी लता होती हैं । पर्ण-पलाशपत्र सधश, त्रिपत्रक तिर्यगायताकार, पार्श्व के दोनों पत्रक तिरछे-लट्वाकार होते हैं । पत्रक 4 से 6" लम्बे, 3 से 4" चौड़े, एंव लम्बी नोक वाले होते हैं । लतायें पर्णविहीन होने पर पुष्प मञ्जरी में नीलाम बैंगनी रंग के पुष्प खिलते हैं । शिम्बी 2 से 3" लम्बी मृदू रोमश होती है । जमीन के अन्दर पेठा सधश इसके कन्द होते हैं । बड़े कन्दः प्राय गोलाकार, बाहर से धूसर वर्ण के एंव अन्दर से श्वेत रंग के होते हैं । स्वाद में ये कन्द मधुर-कषाय होते हैं । बाजार में विदारीकन्द के पत्रसे टुकड़े सुखाये मिलते हैं । ताजे कन्दों को ग्रामीण–आदिवासी कच्चे या उबालकर खाते हैं ।

पुष्पकालः .... अप्रेल, मई,
फलकालः ....मई, जून
प्रयोज्यअंगः ....मूलकन्द,

प्राप्ति स्थानः– इसकी लतायें हिमालय प्रदेश की निचली घाटियों में 1,200 मीटर की ऊंचाई तक एंव शिवालिक वनखण्ड, देहरादून, सहारनपुर, बुन्देलखण्ड, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि प्रान्तों की पथरीली भूमि पर लतायें प्रचुर मात्रा में पाये जाती हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः (1)

गुण-गुरु, स्निग्ध, रस-मधुर, विपाक-मधुर, विपाक-मधुर, वीर्य-शीत । प्रधानकर्म-बल्य, वृंहण, रसायन, स्तन्यजनन, बाजीकर, मुत्रल, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, स्तन्यजनन हैं ।

आमयिक प्रयोगः

विषमज्वर, पित्तविकार विसर्प, तथा रसायन एंव वाजीकरण हेतु इसके मूलचूर्ण का उपयोग किया जाता हैं ।

रासायनिक संगठनः– कन्द में रालीयतत्व, शर्करा एंव स्टार्च पाया जाता हैं । इसके लेक्टोज नामक शर्करा भी काफी मात्रा में पाई जाती हैं ।

मुख्ययोगः– च्यवनप्राश रसायन, विदारीचूर्ण,

123 कुलत्थ (कुलथी)

द्रवयनामः .... संस्कृत .... कुलत्थ, कुलत्थिका,
हिन्दी .... कुलथी,
लैटिन .... Dolichos biflorus Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गणः– चरक ने स्वेदोपग महाकषाय में कुलथी की गणना की हैं ।

निरुक्तिः– (1) कुलत्थ-कुलत्थिका-कुलं भूलग्नं सत् तिष्ठति इति" अर्थात् यह जमीन पर परिसृत होती हैं ।

ताम्रबीजः– इसके बीज का रंग ताम्र वर्ण का होता हैं चक्रपाणी ने शुल्क, कृष्ण, चित्र, लोहित भेद से कुलत्थ चार प्रकार का एवं उत्पत्ति भेद से ग्राम्य एंव वन्य दो प्रकार का माना हैं ।

स्वरुपपरिचयः–

यह एक वर्षायु जमीन पर परिसृत क्षुप हैं । भारत में सुषर भूमि पर इसकी खेती की जाती हैं । पर्ण-माषपर्णसधश, त्रिपत्रक, मृदु, अण्डाकार, पुष्प-पत्रकोणों द्रव, पीतवर्ग के, शिम्बी 2" लम्बी, चपटी, घुमावदार, बाहृयतल रोमावृत, फली में बीज संख्या में 5–6 कुछ चपटे रुपरेखा में वृकाकार, खाकी-धूसराभ-भूरे, एंव काले रंग के होते हैं ।

पुष्पकाल ....अगस्त; सितम्बर,
बीजकाल ....शीतकाल
प्रयोज्यअंग ....बीज,
मात्रा ....बीज 2 से 4 माशा,

प्राप्ति स्थानः– इसकी खेती भारत में हिमालय की निचली उष्ण घाटियों से लेकर सभी प्रान्तों में इसकी थोड़ी बहुत मात्रा में खेती की जाती हैं । यह वन्य एवं ग्राम्य स्थान भेद से दो प्रकार का माना जाता हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण-लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस-कषाय, अम्ल, वीर्य-उष्ण, प्रभाव-भेदन, कर्म-कफ वातशामक, रक्तपित्तशोधक, शोथहर, विदाही, अनुलोमन, अश्मरीभेदन, लेखन, मुत्रल, शुक्रनाशन, गर्भाशयोत्तेजक ।

आमयिकप्रयोगः

बीज क्वाथ का प्रयोग अश्मरी, मुत्रकृच्छ्र, गुल्म–कृमि, आध्यान, विवंध-यकृतवृद्धि में उपयोगी हैं । बाहृयप्रयोग में कर्णमूल ग्रन्थिशोथ में बीज का लेप किया जाता हैं ।

रासायनिक संगठन

बीजों में प्रोटीन, एलव्युमिनाईडस्ट, स्टार्च, तैल, भस्म फास्फोरिक एसिड, तथा प्रचुर मात्रा में युरिमेज पाया जाता हैं

मुख्ययोगः– कुलत्थादिप्रलेप, कुलत्थाधघृत,

124 मेथिका (मेथी)

द्रव्यनाम .... संस्कृत ....मेथिका, पीतबीजा, दीपनी, गन्धबीजा,
हिन्दी.............मेथी,
लैटिन.............Trigonella foenum-graeccum Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्गीकरण– हरीतक्यादिवर्ग,

निरुक्तिः– **मेथिकाः–** मेथयति हिनस्ति वात कफ ज्वरान्" इसके बीज वायु तथा कफ ज्वर का नाश करते हैं ।

पीतबीजाः– पीतानि बीजानियस्याः" अर्थात् इसके बीजों का रंग पीत वर्ण का होता हैं ।

दीपनीः– बीज जठराग्नि को प्रदीप करते हैं ।

गन्धबीजः– बीजों को मसने एंव छौंक देने पर सुगन्ध देते है ।

स्वरुप परिचयः मेथी के एक वर्षायु क्षुप होते हैं । पत्रक एक इन्च तक लम्बे अभिप्रासवत् आयताकार, कुठिताग्र, पुष्प–अवृन्त पत्रकोणों–द्भूव पीतवर्ण के, फली 2 से 3" लम्बी, चोंचदार, 10–20 पीले बीज वाले, मसलकर सुंघने पर सुगन्धित होते हैं ।

पुष्पकाल .... दिसम्बर, जनवरी,
फलकाल .... जनवरी, मार्च,
प्रयोज्यअंग .... बीज, पत्र,

प्राप्तिस्थानः– समस्त भारत के मैदानी, एंव हिमालय की उष्णघाटियों में इसकी खेती की जाती हैं । कोमल पत्र तरकारी के काम में प्रयुक्त होते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (1)

रस-तिक्त, कटु, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, कर्म-वात-कफघ्न, शोथविलयन, रोचन, दीपन, नाड़ीबल्य, आर्तवजनन, एंव आर्तवशूलहर, प्रसूता स्त्रियों को मेथी के बीज को लड्डू बनाकर खिलाते हैं, पत्र–पित्तशामक, पाचन, शोथघ्न, वातानुलोभन हैं ।

आमयिकप्रयोगः– यह अरुचिनाशक, वातघ्न, कफनाशक एंव ज्वरघ्न हैं । यह सन्धिवात, कटीशूल एंव वातरोगों में उपयोगी हैं । बीज रक्तसंग्राहक एंव गर्भाशय संकोचक हैं । कास, श्वास, अतिसार एंव ग्रहणी में भी उपयोगी हैं ।

रासायनिक संगठनः– बीजों में स्थिरतैल 6% पिच्छिल 28% पीत रंजनद्रब्य, तिक्त एंव गन्धयुक्त वसामय तैल तथा ट्रिगोनेलीन नामक दो क्षारोद पाये जाते हैं ।

मुख्यप्रयोग– मेथिकामोदक,

125 शणपुष्पी

द्रब्यनाम .... संस्कृत .... शणपुष्पी, घण्टाखा,
हिन्दी........... झुनझुनियाँ
लैटिन........... Crotalaria juncea.L.

गणः– चरक ने शणपुष्पी का उल्लेख वमनोपग एंव मूलिनी द्रब्यों में की हैं । सुश्रुत ने व्रणसीवन में शणसूत्र का उल्लेख एंव उर्ध्वभागहर द्रब्यों में किया हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरुपपरिचयः— एक वर्षायु क्षुप, पत्र मृदु, स्थुलाग्र, अण्डाकार पुष्प—सदीर्धवन्त, पीतवर्ण के गुच्छों में, शिम्बी-शणशिम्बी सघश, रोमश, बीज संख्या में 15 से 20 छोटे, काले वर्ण के, हिलाने पर झुनझुने के समान बजते हैं इसीलिये शोठल निघिण्टुकार ने इसे घण्टारव कहा हैं ।

पुष्पकाल	अगस्त, सितम्बर,
फलकाल	सितम्बर, अक्टुबर,
प्रयोज्यअंग	बीज, मूल,

प्राप्तिस्थानः— इसके क्षुप वर्षाकाल के बाद भारत के उष्ण-प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ हैं । बंगाल दक्षिण आदि प्रान्तों में इसकी खेती की जाती हैं । इसकी कई वन्य जातियाँ पाई जाती हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः— (1)

रस-तिक्त, कषाय, गुण-तीक्ष्ण, रुक्ष, लघु, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, कर्म-पित्त्श्लेष्महर, शोथहर, रक्तशोधक, मूल-बामक ।

आमयिकप्रयोगः— अपस्मार, अतिसार, प्रवाहिका, कुष्ठ, रक्तपित्त एंव श्लेष्मल विकारों में वमनार्थ मूल का उपयोग किया जाता हैं । सुश्रुत ने वयःस्थापन हेतु शण के बीजों को दूध के साथ पकाकर सेवन करने का विधान दिया हैं । आधुनिक मतानुसार बीजों का रक्तशोधक के रुप में प्रयोग किया जाता हैं ।

126 शरपूंखा (सरफौंका)

द्रब्यनाम	संस्कृत	ल्पीहशत्रु, नील वृक्षाकृति, ल्पीहारि,
	हिन्दी...........	शरपुंखा, सरफौंका,
	लैटिन...........	Tephorsia purpurea (L) Rens.

वर्ग— सुश्रुत में केवल अलर्क विष चिकित्सा में मूल का उल्लेख हैं । वाग्भट्ट ने इसका उल्लेख किया हैं ।

निरुक्तिः शरपुंख (1) शरस्य इव पुंख यस्य स" अर्थात् पर्ण का अग्र भाग शर के समान तिरछा टूटता हैं ।

ल्पीहारिः— अर्थात् यह ल्पीहावृद्धि में अच्छा कार्य करता हैं । इसीलिये इसे ल्पीहशत्रु भी कहते हैं ।
नीलवृक्षाकृतिः— नीली के आकृति सधश इसके पौधे होते हैं ।

स्वरुपपरिचयः

इसके बहुवर्षायु 1 से 3 फुट लम्बे, बहुशाखी क्षुप होते हैं । काण्ड मृदु रोमिल एंव बेलनाकार, पर्ण-सपक 5 से 9 तक जोड़े में पत्रक आयताकार, प्रतिभालाकार, नताग्र या रोमशाग्र होते हैं । ये काण्ड नीली के काण्ड सधश दिखाई देते हैं । पत्रकों को तोड़ने पर बाण के अग्र भाग के समान टूटते हैं । पुष्प—पत्रकोणोद्भव, जामनी—गुलावी रंग के होते हैं । फली 1-2" लम्बी सीधी, रोमश, एंव अग्रभाग पर कुण्ठिताग्र होती हैं । बीज-चितकवरा होता हैं । श्वेत पुष्प वाले शरपुंखा को Tephorsia Villosa Pens. कहते हैं ।
इसका पौधा जमीन पर परिसृत होता हैं ।

पुष्पकाल	अगस्त, सितम्बर,
फलकाल	दिसम्बर, जनवरी,
प्रयोज्यअंग	पञ्चांग, सार,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थानः- इसके पौध भारत के मैदानी भागों में सर्वत्र रेतली, एंव पुराने बगीचों के आस पास सर्वत्र सुलभ हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः (2)

गुण-लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस-तिक्त, कषाय विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, प्रधानकर्म-कफ-वातशामक, प्लीहोदरनाशक, (क्षार) रक्तशोधक मूत्रल, कफ निस्सारक, ज्वरघ्न, विषघ्न ।

आमयिकप्रयोगः- यकृत एंव प्लीहा की वृद्धि में इससे अच्छा लाभ होता हैं । गण्डमाला में मूल का लेप करते हैं । खाज में बीज का लेप करते हैं । यह अपची, गुल्म, कास, कृमि आदि रोगों में उपयोगी हैं । शरपुंखा के मूल का धूम्रपान कास में हितकारी हैं । श्वेतपुष्प वाले शरपुंखा की गणना रसायन द्रब्यों मे की जाती हैं ।

रासायनिकसंगठनः- अल्पमात्रा में मैगनीज, क्लोरोफिल, भूरे रंग का रालीय पदार्थ, मोम, एल्व्युलिमिन , क्वेसैटिन नामक तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्य योगः- शरपुंखाक्षार,

पूतिकरञ्जादिवर्ग CAESALPINIACEAE

वर्गलक्षणः- इस वर्ग की वनस्पतियों में वृक्ष, गुल्म एंव शाकीय पौधे पाये जाते हैं । इनके पत्र पिच्छसधश, सकृत् विभाजित, अथवा असकृत विभाजित, संयुक्त और कदाचित सादे, त्रिपत्रक एवं एकान्तर होते हैं । पुष्प की रचना-कलगी या मञ्जरीसधश या कदाचित् विभाजित एंव तोरण सधश होती हैं । पुष्पवाहकोष के पत्र संख्या में 5 बहुधा अलग 2 एक के ऊपर एक आये हुये पुष्पाभ्यत्तर कोष 5, पुंकेशर 90, जो प्रायः पृथक-2 ही होते हैं । फल-शिम्बीसधश ।

इस वर्ग के द्रव्य प्रायः ज्वरघ्न, रेचक, अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, एंव कुष्ठघ्न होते हैं ।

127 पूतिकरञ्ज (कांटाकरञ्ज)

द्रब्यनाम	संस्कृत	प्रकीर्ण, पूतिकरञ्ज, पूतिक, कुवेराक्ष
	हिन्दी...........	करंजुआ, कंजा, कांटाकरंज,
	लैटिन...........	Caesalpinia Crista L. sy. C. bonducella Fleming.

गणः- (1) चरक ने विरेचन द्रब्यों में पूतिक का उल्लेख किया हैं । सुश्रुत ने अधोभाग द्रब्यों पूतिक का उल्लेख किया हैं ।

निरुक्तिः-

पूतिकरञ्जः- पूतिको-दुर्गन्ध" दुर्गध युक्त करञ्ज इति" अर्थात् यह कुछ दुर्गन्ध युक्त होता हैं ।

कण्टकीरञ्जः- कांटेदार होने से इसे कांटाकरंज भी कहते हैं ।

कुवेराक्षः- कुस्तितं बेरं शरीरं अक्षिणि च" इसके फल एंव बीज कुबेर के आंख सधश होते हैं ।

स्वरुपपरिचयः-

इसकी सघन एंव परिसृत कंटीली झाड़ीनुमा लता होती हैं । शाखा-पत्रदण्ड सूक्ष्म, कठोर कांटे होते हैं । पर्ण-रुपरेखा में आयताकार या अण्डाकार कुण्ठितांग्र, एंव अग्र पर मुदृरोमश होते हैं पुष्प-पीतवर्ण के पत्रकोणोद्भव, शाखाग्र,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मञ्जरियों में फली चौड़ी आयताकार, चपटी, कांटेदार, एंव प्रत्येक फली में 1 से 2 बीज होते हैं । बीज-चिकने अण्डाकार होते हैं । पत्र, बीज, गिरी स्वाद में तिक्त होते हैं ।

पुष्पकाल .... अगस्त, सितम्बर,
फलकाल .... नवम्बर, दिसम्बर,
प्रयोज्यअंग .... बीज, पत्र, मूल,

प्राप्तिस्थानः– यह समस्त भारत के उष्ण प्रदेशों एंव हिमालय की निचली घाटियों 3000 फीट की ऊंचाई तक प्रायः सर्वत्र सुलभ हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (2)

गुण-लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस-कटु, तिक्त, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, कर्म-कफवात शामक, शोथहर, ज्वरघ्न, गर्भाशयोंत्तेजक, वेदनास्थापन, अनुलोमन, यकृल्पीहोदरनाशक, श्वासहर, कुष्ठघ्न, विषमज्वर निवाराण हेतु बीज कुनैन का अच्छा प्रतिनिधि द्रव्य समझा जाता हैं ।

आमयिकप्रयोगः– अर्श, उदररोग, ज्वर, कृमिरोग, मसूरिका, श्लीपद आदि रोगों में उपयोगी हैं । इसके कोमलपत्र विषमज्वर तथा अन्त्रगत कृमियों का बाहर निकालने में उपयोगी हैं । अपरापातन हेतु कंटकी-करंजमूल को तण्डुलोदक के साथ मिलाकर देने से लाभ होता हैं । प्रसूताज्वर में बीज चूर्ण लाभ करता हैं । यह उत्तम कटु पौष्ठिक औषध हैं ।

रासायनिकसंगठनः– बीजों में वांडुसिन नामक एक तिक्त अक्रिस्टलीय ग्लुकोसायड पाया जाता हैं । यह सफेद चूर्ण के रुप में प्राप्त होता हैं । इसके अतिरिक्त अप्रिय गंधयुक्त हलके पीले रंग का एक गाढ़ा तेल, स्टार्च, सुक्रोज, आदि सत्त्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोगः करञ्जादिवटी विषमज्वरान्तक चूर्ण ।
महासुदर्शनचूर्ण, कृमिकुठार रस ।

128 पत्तंग (बकम)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... पत्तंग, रक्तसार, रंजन
हिन्दी........... बकम,
लैटिन........... Haemotoxylon Campech inaum Linn. or. Caesal pinia Sappan L.

वर्गः– कर्पूरादिवर्ग (भा० प्र०)

स्वरुप परिचयः–

पंत्तग के मध्यम आकार के कांटेदार गुल्म पाये जाते हैं । काण्ड एंव शाखायें रक्ताभ, रोमश, पर्ण–अण्डाकार 20 से 40 से0 मी0 दीर्घपत्रक, 10-20 संख्या में युग्म, आयताकार, कुण्ठिताग्र, पुष्प-शाखाग्रभञ्जारियों में पीताभ-धूसरवर्ण के सुगन्धित, फलियां-चपटी, अस्फोटी, वक्राकृति में बीज संख्या में 3 से 4 लम्बे काष्ठसार–रक्तवर्ण का एंव कपड़े को रंगने वाला होता हैं । रक्तचन्दन के काष्ठ में सुगन्ध नहीं होती हैं ।

पुष्पकाल .... मार्च, मई,
फलकाल .... वर्षाकाल के बाद,
प्रयोज्यअंग .... काष्ठसार,,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थानः- इसके वृक्ष तामिलनाडू, बंगाल, पूर्वी–पश्चिमी प्रायद्वीप, मद्रासप्रान्त एंव बिहार में कहीं-कहीं पाया जाता हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः- रस-मधुर, तिक्त, रुक्ष, मधुर, रुक्ष, विपाक-कटु, वीर्य-शीत, पित्तकफहर, व्रणशोधकारक, शोणितस्थापन, स्तम्भन, रक्तसंग्रहक, ग्राही एंव गर्भाशयोत्तेजक और संकोचक है ।

आमयिकप्रयोगः- उरःक्षत, सरक्तकफष्ठीवन, रक्ततिसार, प्रवाहिका, रक्तार्श, रक्तप्रदर, अत्यार्तव एंव श्वेतप्रदर में यह उपयोगी हें । रक्तस्राव के बन्द करने के लिये पत्तंग क्वाथ पिलाया जाता हैं । इसके क्वाथ से बाल भिंगोकर व्रण पर रखने से व्रणरोपण होता हैं । श्वेतप्रदर में पत्तंग क्वाथ की वस्ति दी जाती हैं ।

रासायनिकसंगठनः- इसमें सप्पनरेड, नामक एक लाल रंग गैलिक एंव टौनिक एसिड, तथा उड़नशील तैल आदि तत्व पाये जाते हैं । इसमें का रंग हिमेटैक्साइजिन से मिलता जुलता हैं ।

मुख्ययोगः- पंत्रगासव, पंत्तगक्वाथ,

129 चक्षुष्या (चाकसू)

द्रब्यनाम	संस्कृत	चक्षुष्मा, अरण्यकुलत्थिका वन्यकुलत्थ,
	हिन्दी...........	चाकसू,
	लैटिन...........	Cassia absus Linn.

स्वरुपपरिचयः-

यह एक वर्षायु शाकीय पौधा हैं । काण्ड मृदु, सपत्रक, पत्रक–संख्या में चार, 1 से 2" लम्बें, रुपरेखा में आयताकार, पत्राग्र प्रायः कण्ठिताग्र पार्श्व भाग प्रायः असमान होते हैं । पुष्प-रक्ताभ पीतवर्ण के फली–पतली, चपटी को टेढी, बीज चपटें चमकीले कृष्ण वर्ण के संख्या में 3 से 5 तक पाये जाते हैं ।

पुष्पकाल	जुलाई, अगस्त,
फलकाल	सितम्बर, अक्टुबर,
प्रयोज्यअंग	बीज,

प्राप्तिस्थानः- यह हिमालय की निचली घाटियों से लेकर मैदानी भागों के वन्य प्रदेशों में वर्षाकाल के बाद सर्वत्र सुलभ हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः-

गुण-रुक्ष, रस-कषाय, तिक्त, विपाक-कटु, वीर्य–शीत, प्रभाव-चक्षुष्य, कर्म-लेखन, शोथविलयन, मूत्रल, मेदोनाशक,

आमयिकप्रयोगः- आंख दुखने पर एंव नेत्राभिष्यन्द में इसकी पोटली बनाकर नेत्र के बाह्य रुप में प्रयोग करने से लाभ होता हैं । चाकसू बीज अर्थ, शूल, विवन्ध, आध्मान में उपयोगी हें । यूनानी चिकित्सा में चाकसू का विशेष रुप से प्रयोग होता हें ।

रासायनिक संगठनः- बीज में 3.9% भस्म एंव अंशत मैगनीज पाया जाता हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

130 आरग्वध (अमलतास)

द्रव्यनाम	संस्कृत	आरग्वध, राजवृक्ष, आरेवत, व्याधिघात, चतुरंगल, कृतमाल, कर्णिकार,
	हिन्दी...........	अमलतास
	लैटिन...........	Cassia fustula Linn.

गणः- (1) चरक ने कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न एंव विरेचन द्रव्यों में अमलतास की गणना की हैं । सुश्रुत में आरग्वधादि, श्यामादि एवं अधोभाग हर द्रव्यों में अमलतास की गणना की हैं ।

निरुक्तिः-

आरग्वधः- आसमन्तात् रग्यते शंक्यतें इति आरक्, वा आसमन्तात् रुजं बधाति, छिन्नाते" अर्थात् यह चारों ओर से रोग या वेदना मात्र का नाश करता है ।

राजवृक्षः- वृक्षाणांराजा राजवृक्षः, इसके पुष्प अतिशय-सुन्दर एंव वृक्ष औषधउपयोगी होने से राजवृक्ष कहलाता हैं । रोगाणां राजानं नृश्यति इति वा" अर्थात् यह राजरोगों का भी नाश करता हैं ।

आखेतः आ रेवयति निःसारयति मलं सारकात्वात्" यह रेचक एंव सारक होने के कारण मल का भली-भांति बाहर निकालता हैं ।

कृतमालः- कृलामालाऽस्य पुष्पैः इति" इसके सुवर्ण सधश वर्णवाले सुन्दर पुष्पों की माला में बनाई जाती हैं ।

कर्णिकारः- अर्थात् कुण्डलों के सधश गुच्छों में पुष्प खिलते हैं ।

चतुरगंलः- चतस्त्रों ऽगुंलय प्रमाणमस्य पर्वणः" अर्थात् चार अंगुली प्रमाण पर इसके फल में पर्व पाये जाते हैं ।

सुवर्णकः- इसके सुवर्ण सधश पीतपुष्प होते हैं । इसी प्रकार आरोग्य शिम्बी शम्पाक, दीर्घफल आदि कातिमय उपयोगी पर्याय हैं ।

स्वरुपपरिचयः-

इसके मध्यम आकार के गुल्मनुमा पर्णपाती, वृक्ष पाये जाते हैं । पर्ण-संयुक्त दलपर्ण, पत्रक 4 से 8 जोड़ों में लट्वाकार, लम्बगोल, हरितवर्ण के उभय पर मिश्रण पुष्प-पीत वर्ण के पत्रकोणोंद्भूत, गुच्छों में लटके हुये फली-1 से 2 फीट लम्बी, घास में लगभग 4" मोटी अपक्वावस्था में हरितवर्ण की पक्वावस्था मे रक्ताभ-कृष्ण एंव कठोर, फलमञ्जा कृष्णाभवर्ण की एंव स्वाद में मधुर, बीज-चपटें संख्या में 30 से 50 तक पाये जाते हैं ।

पुष्पकाल ....अप्रेल, मई,
फलकाल ....जून, अगस्त,
प्रयोज्यअंग ....मूलत्वक, फलमञ्जा, पत्र, पुष्प ।

प्राप्ति स्थानः- इसके स्वयंजात वृक्ष भारत के उष्ण प्रान्तों में सर्वत्र सुलभ हैं । आजकल छाया एंव सुन्दरताहेतु ये वृक्ष सड़कों के किनारे लगाये हुये भी मिलते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः-(2)

गुण-गुरु, स्निग्ध, रस-मधुर, तिक्त, विपाक-मधुर, वीर्य-शीत, प्रधानकर्म-मृदुरेचन, कण्डूघ्न, कुष्ठघ्न, कफपित्तशामक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिकप्रयोगः– यह-कुष्ठ, ज्वर, कण्डू, हृदयरोग, वातरक्त, उदावर्त्त, एंव में कोष्ठशुद्धि के लिये उपयोगी हैं। यह अनुलोमिक दाहशामक एंव वेदनास्थापन हैं। यह सौम्य होने से बालक, स्त्री आदि सुकुमार प्रकृतिवालों के लिये विशेष उपयोगी हैं। यूनानी मत से यह उष्ण स्निग्ध शोथघ्न एंव सारक हें। फलमज्जा-विसर्प, कामला पित्तोदर मूल-गण्डमाला में उपयोगी हैं। व्रणप्रक्षालन में अमलतास के पत्रक्वाथ उपादेय हैं। कुष्ठ में अमलतास मूल संसाधित धृत का विशेष लाभ हैं।

रासायनिक संगठनः– मज्जा में म्युसिलेज, पेक्टिन, शर्करा, किन्चित् उड़नशील तैल तथा हाइड्रोक्सीमेथिल आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोगः– आरग्वधारिष्ठ, आरग्वधादिसुत्रवर्ति, अमलतासगुलकन्द,

131 कासमर्द (कसौंदी)

द्रब्यनाम	संस्कृत	कासमर्द, कासारि,
	हिन्दी...........	कर्सौंदी,
	लैटिन...........	Cassia occidentalis Linn.

गणः– सुश्रुत ने (1) सुंरसादिगण में कासमर्द का उल्लेख किया हैं। चरक ने शाकवर्ग एंव हिक्का श्वास निवारण हेतु कासमर्द का उल्लेख किया हैं

निरुक्तिः–

कासमर्दः– कासं मर्दयति इति'' अर्थात् यह कास का नाश करता है।
कासारिः– कासस्य आरि इति'' अर्थात् यह कास का शत्रु हैं।

स्वरुपपरिचयः–

यह वर्षाकालीन सड़कों के आसपास एंव खाली स्थानों पर उगने वाला एक वर्षायु बहुशाखीय पौधा है। शाखा में मूल के पास से घीं निकलती हैं। पर्ण-पक्षाकार, संयुक्त, पत्रक 3 से 5 एंव नोकदार होते हैं। पुष्प-पीले रंग के पत्रकोणोंद्भूत, फली चिकनी, चपटी, कई बीजों वाली होती हैं। इसके बीजों का उपयोग काफी के स्थान पर होता हैं। इसकी कई किस्में पाई जाती हैं, जिसमें Cassia sophora मुख्य हैं।

पुष्पकाल	अगस्त, सितम्बर,
फलकाल	सितम्बर, अक्टुबर,
प्रयोज्यअंग	पत्र, बीज,
मात्रा स्वरुप	1 से 2 तोला,

प्राप्तिस्थानः– कर्सौंदी के क्षुप भारत के हिमालय की निचली घाटियों से लेकर भारत के उष्णप्रान्तों के नगरों, गांवों के समीप वर्षाकाल में स्वयंजात सर्वत्र सुलभ हैं।

गुण दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः–(2)

गुण-रुक्ष, लघु, तीक्ष्ण, रस-तिक्त, मधुर, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, प्रधानकर्म-वातकफ शामक, पित्तसारक, मृदुविरेचक, श्वासहर, मूत्रल, ज्वरघ्न, दद्रुनाशक, पाण्डु-कामलानाशक।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोगः– कसौंदी के पत्रों में सनाय की तरह विरेचन गुण पाये जाते हैं । बीज–ज्वरहर एंव कुष्ठघ्न हैं । कफज्वर में पत्र स्वरस का प्रयोग करते हैं । यह संकोच विकास प्रतिबन्धक एंव मूत्रजनन हैं । पत्तियों को पीसकर व्रणशोथ एंव विसर्प में लेप करते हैं ।

रासायनिक संगठनः– कासमर्द की पत्तियों में सनाय जेसा विरेचक तत्व कैथार्टिन, लवणतत्व एंव लवण पाये जाते हैं । बीजों में औनिक एसिड, व साम्ल, इमोडिन, क्राइसेरोविन, अल्प मात्रा में सोडियम सल्फेट, फास्फेट, मेग्नीशियम सल्फेट तथा एक विषाक्त तत्व पाया जाता हैं ।

132 चक्रमर्द (चकवड़)

द्रब्यनाम	संस्कृत	चक्रमर्द, प्रपुन्नाड, एडगज ।
	हिन्दी...........	पेवांड़, चकवड़,
	लैटिन...........	Cassia tora Linn.

गणः– (1) सुश्रुत ने ऊर्ध्वभागहर द्रव्यों में चक्रमर्द का उल्लेख किया हैं । चरक ने दशेमानि महाकषायों में इसका उल्लेख नहीं किया हैं ।

निरुक्तिः– (2)

चक्रमर्दः– चक्र दद्रुरोगं मृद्नाति इति" अर्थात् यह दद्रु रोग को नष्ट करता हैं । इसीलिये इसे दद्रुघ्न भी कहते हैं ।

एडगजः– एडो मेषः स एंव गज यस्य भंजकत्वात् इति" इसके क्षुपों को भेड़ तोड़ते हैं ।

प्रपुन्नाडः–प्रकर्षेण पुरुषं नाष्यति इति" नट अवस्यन्दने यह वातघ्न होने से सेक में उपयोगी है ।

स्वरुपपरिचयः–

चकवड़ के एक वर्षायु वर्षाकालीन स्वावलम्बी क्षुप होते हैं । पर्ण-समपक्षवत्, 3–जोड़े में पत्रक होते हैं, पत्रक 1 $\frac{1}{2}$" तक लम्बें, अभिलट्वाकार, गोल, कुण्ठिताग्र, या नताग्र एक दूसरे के साथ मिले होते हैं । पुष्प-पीतवर्ण के पत्रकोणोद्भूत, एकाकी या दो–दो साथ निकले रहते हैं । शिम्बी 6 से 8" तक लम्बी, पतली, घेरे में गोलाई किये हुये चतुष्कोणीय होती हैं । फलियों में खाली रंग के अनेक लम्ब-गोल बीज होते हैं । इन बीजों के दोनों सिरे तिरछे कटे हुये होते हैं ।

पुष्पकाल	जुलाई, अगस्त,
फलकाल	सितम्बर, अक्टुबर,
प्रयोज्यअंग	बीज, पत्र, पंचांग,

प्राप्ति स्थानः– चकवड़ के पौधे भारत वर्ष के समस्त उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में गांवों के आसपास एंव खाली मेदानों एंव सड़कों के समीप वर्षा काल में सर्वत्र सुलभ हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (3)

गुण-लघु, रुक्ष, रस-कटू, विपाक-कटू, वीर्य-उष्ण, पत्र-मधुर एंव शीतवीर्य, कर्म कफ वातशामक, अनुलोमन, कृमिघ्न, यकृद्रुत्तेजक कुष्ठघ्न, दद्रुघ्न, पत्र–सनाय की भांति रेचक होता हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोगः- यह कण्डू, दाह, विष, वायु गुल्म, कृमि एंव कुष्ठनाशक हें । सिध्म एंव कुष्ठ में चक्रमर्द के मूल को कांजी में पीस कर लेप करने से लाभ होता हैं । आधा शीशी में चक्रमर्द के बीजों को कांजी में पीसकर लेप करते हैं । दद्रु में बीज एंव फलस्वरस के साथ पीस कर दद्रु पर लेप करने से लाभ होता हैं । रक्तदोष में पत्तियों की भाजी उपयोगी मानी जाती है । इसके पत्तों में सनाय सधश विरेचक गुण हैं । बीज काफी बनाने के रुप में प्रयुक्त होते हैं ।

रासायनिकसंगठनः- इसके बीजों तथा पत्रों में क्राइसोफैनिक एसिड की तरह एक ग्लुकोसाईड, पत्र में कैथार्डीन के समान एक तत्व पाया जाता हैं ।

मुख्य योगः- दद्रुघ्नवटी, एक्जीमाहरलेप,

133 काञ्चनार (कचनार)

द्रब्यनाम	संस्कृत	काञ्चनार, कोविदार, युग्मपत्रक, कुद्दाल,
	हिन्दी...........	कचनार,
	लैटिन...........	Bauhinia Variegata Linn.

गणः-(1) चरक में वमनोपग महाकषाय एंव सुश्रुत में उर्घ्वभाग गण में कोविदार का उल्लेख हैं ।

निरुक्तिः-(2)

कोविदारः- द्यृ विदारणे धातु से कोविदार बना हैं, अर्थात् इसका वृक्ष जमीन को विदारण कर निकलता हैं ।

युग्मपत्रकः- यमलपत्रत्वात् युग्मपत्रक "अर्थात् इसके पत्र दो जुड़े हुये होते हैं । ताम्रपुष्पपश्चामरिक महा युगलपत्रकः इसके रंग बिरंगे पुष्प यमल सधश दिखाई देते हैं एंव पत्र परस्पर जुड़े हुये होते हैं ।

कोबिदारः अर्थात् यह शरद् ऋतु में पुष्पित सुन्दर वृक्ष विशेष हैं, कर्बुदार भी इसे कहते हैं ।

स्वरुपपरिचयः-

कचनार के मध्यम कद के पर्णपाती वृक्ष पाये जाते हैं । काण्ड छाल रक्ताभ वर्ण की, पर्ण-2 से 6" तक लम्बें द्विखण्डित, युग्मपत्रक, पत्राग्र के मध्यम भाग में दबे होने के कारण ऐसा मालूम होता हैं कि मानों दो पत्र आपस में जुड़े हुये हैं । इसीकारण इसे युग्मपत्रक कहते हैं । पुष्प-ताम्र श्वेतवर्ण के सुगन्धित बड़े गुच्छों में खिलते हैं । शिम्बी 6 से 10" तक लम्बी चोड़ी, चपटी, कुछ टेड़ी, पकने पर स्फोटी, रक्तवर्ण के होते हैं । इसकी अन्य किस्में भी कचनार के नाम से संग्रह होती हैं जिनमें Bauhinia purpurea एंव B.racemosa मुख्य हैं ।

पुष्पकाल ....फरवरी, मार्च,
फलकाल ....मई, जून,
प्रयोज्यअंग ....छाल, पुष्प,

प्राप्तिस्थानः- इसके वृक्ष हिमालय की निचली घाटियों से लेकर भारत के उष्ण प्रान्तों के जंगलों में स्वयंजात वृ-क्ष पाये जाते हैं । इसके वृक्ष बगीचों में लगाये हुये भी पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः-(3) गुण-रुक्ष, लघु, रस-कषाय, विपाक-कटु वीर्य-शीत, प्रभाव-गण्डमालानाशन, प्रधानकर्म-व्रणशोधन एंव रोपण स्तम्भन, मूत्रसंग्रहणीय, गण्डमाला एंव लसीका ग्रन्थिशोथनाशक, पुष्प-सारक, मधुरविपाक,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिकप्रयोगः– छाल, कृमि, कुष्ठ, गुदभ्रंश, गण्डमाला एंव व्रण का नाश करने वाला हैं । बड़ी मात्रा में प्रयोग करने से वमन करता हैं । पुष्प का उपयोग रक्तपित्त में किया जाता हैं । अर्थ में कोविदार के मूल क्वाथ का उपयोग तंक्र के साथ किया जाता हैं । गण्डमालापर कोविदार के मूल एंव छाल का चुर्ण सोंठ के साथ मिलाकर प्रयोग करने से लाभ होता हैं । इसके अतिरिक्त क्वाथ वातरक्त, गलगण्ड, रक्तार्श, रक्तप्रदर त्वचा के रोग एंव व्रणों में दिया जाता हैं ।

रासायनिकसंगठनः– कचनार की छाल में टैनिन, शर्करा और एक भूरे रंग का गोंदीय पदार्थ पाया जाता हैं ।

मुख्यभोगः– काञ्चनारगुग्गुलु, काञ्चनादिक्वाथ, काञ्चनगुटिका
चन्दनासव, उशीरासव, विडंगासव ।

वक्तब्यः– चरक केटीकाकार चक्रपाणी ने कोविदार एंव कर्बुदार को पृथक-2 माना हैं । कोविदार स्वनाम ख्यातः शरदि पुष्पति" अश्मन्तक भी इसी कुल की वनस्पति हैं । अधिकतर विद्वानों ने Bauhinia racemosa को अश्पत्रक माना हैं, वमने अश्मतंकम्"

134 अश्मन्तक

द्रब्यनाम	संस्कृत	अश्मन्तक, यमलपत्रक, श्लक्ष्णत्वक् ।
	हिन्दी...........	सिरहटा,
	लैटिन...........	Bauhinia malabarica Roxb. B. Vahlii W.A.

गण :– अश्मन्तक शब्द का उल्लेख चरक में क्षीरीवृक्ष एवं मूलसंग्रहणीय दशक में मिलता है । इन ग्रंथों के टीकाकारों ने अश्मन्तक नामक द्रव्य से भिन्न-भिन्न अर्थ किया है । देखिये वक्तव्य में,

स्वरूपपरिचय :

यद्यपि यह संदिग्ध द्रव्य है तथापि आधुनिक विद्वानों ने इसे कञ्चनार के जातियों में से Bauhinia-malabarica को अश्मन्तक स्वीकार किया है । इसके मध्यम आकार के वृक्ष पाये जाते हैं । पर्ण दो आपस में जुड़े हुये युगलपत्रक होते हैं । काण्ड की छाल रक्ताभ श्वेत वर्ण की रेसेदार होती है । पत्रों के चबाने पर कुछ अम्ल रस की प्रतीती होती है । पुष्प-श्वेताभ वर्ण के बड़े होते हैं । फली-चपटी 4 से 6"तक लम्बी 1" चौड़ी होती है । फली–अम्ल–मधुर ।

पुष्पकाल ....मई, जून,
फलकाल ....मूल, छाल, पत्र, पुष्प ।

प्राप्तिस्थान : भारत के मैदानी भागों के उष्ण प्रदेशों पत्र तत्व उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में उपलब्ध हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

भिन्न-भिन्न ग्रंथों के आधार पर गुण कर्म भिन्न है । इसी कारण इस द्रव्य के विनिश्चय हेतु शोध कार्य किये जा रहे हैं । तथापि यह रस-कषाय, वीर्य-शीत कफ पित्तनाशक, वामक, विषघ्न एवं जीवाणुनाशक है । अर्श में अश्मन्तक के पत्रक्वाथ में मस्से वाले रोगी को बिठाकर रखने से लाभ होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य :

सुश्रुतटकीकाकार डल्हण ने अश्मन्तक नामक द्रव्य से निम्न अर्थ किया है–
1. अश्मन्तक कोविदार सद्यश युग्मपन्त्रलता विशेष अश्मन्तकमाचक्षते । । सु० सू० अ० 25
2. अश्मन्तक अम्म्लोटक सद्यश वृक्ष : । । सु० सू० अ० 22
3. यमलपत्रक : आसन्त इतिलोके । । सु० सू० अ० 45
4. अश्मत्रक अम्लोटकानुसारी । । सु० क० अ० 5

चरक टीकाकार चक्रपाणी के मतानुसार– अश्मन्तक अम्लोटः "इति" अश्मन्तक भालायु सद्यशोपत्रो वृक्ष :" आदि कतिपय टीकायें मिलती हैं । जिससे यह स्पष्ट तथ्य नहीं मिलता है । मुख्यरूप से क्षीरीवृक्ष विशेष होने से यह Ficus की जाति विशेष की भी सम्भावना है । अश्मन्तक का प्रयोग मूर्वा के प्रसङ्ग में भी मिलता है । इन सभी द्रव्यों पर शोध कार्य चल रहा है ।

135 अशोक

द्रव्यनाम	संस्कृत	अशोक, शोकनाशन, स्मराधिवास, रक्तपल्लव,
	हिन्दी...........	अशोक,
	लैटिन...........	Sarca indica Linn.

गण (1):– चरक के वेदनास्थापन महाकषाय एवं कषायस्कन्ध में तथा सुश्रुत के रोध्रदिगण में अशोक का उल्लेख है ।

निरुक्ति :

अशोक :– यह विशेष कर महिलारोगियों के रोग को दूर करने के कारण शोकनाश है ।

रक्तपल्लव :– इसके पुष्प स्वर्णाभ वर्ण के अतिसुन्दर होने से एवं दौहद वृक्ष विशेष होने से कामदेव को प्रिय है तथा इसके पुष्प स्वर्णाभिवर्ण के होने से हेमपुष्पक कहते हैं ।

स्वरूप परिचय :– अशोक के वृक्ष आम्रसद्यश एवं मध्यम आकार के सदाहरित होते हैं । पर्ण-आम्रपत्रसद्यश 3 से 6 संख्या में युग्म, तरंगायितपत्र आरंभ में ताम्र वर्ण के एवं मृदु होते हैं । पुष्प-सुंदर सघनगुच्छों में प्रथम पीताभ रक्तवर्ण के एवं पूर्णतः विकसित होने पर रक्त वर्ण के होते हैं । इसकी फली चपटी, चौड़ी एवं अर्धगोल होती है । आजकल नकली अशोक Polyalthia longifolia की छाल का विशेष उपयोग है ।

पुष्पकाल ....मई, जून,
फलकाल ....पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग ....छाल,

प्राप्तिस्थान :– इसके वृक्ष मध्य एवं पूर्व हिमालय के निम्नवर्ती प्रदेश, बंगाल, दक्षिण भारत में स्वयं उत्पन्न या लगाये हुये पाये जाते हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान 2):

इस कषाय, तिक्त, गुण-लघु, रुक्ष, विपाक-कटु वीर्य-शीत, कर्म-पित्तकफशामक, रक्तरोधकर, शोथहर, गर्भाशयवल्य, विशेषकर रक्तप्रदर में उपयोगी ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग :

छाल का उपयोग प्रदर, गर्भाशय शोथ, असृग्दर, रक्तविकार, अतिसार, प्रवाहिका हिक्का, त्वचा के रोग एवं मूत्राघात्त आदि में उपयोगी है । अशोकपुष्प चूर्ण रक्तातिसार में उपयोगी है ।

रासायनिक संगठन :

त्वचा (छाल) में टैनिन, कैटेचिन, लौह तथा हीमे टैक्सिलीन आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग : अशोकारिष्ठ, अशोकघृत ।

136 अम्लिका (इमली)

द्रव्यनाम	संस्कृत	अम्लिका, चिञ्चा, तिन्तिडी ।
	हिन्दी...........	इमली,
	लैटिन...........	Tamarindus indicus L.

गण :- चरक सूत्र अध्ययास 29 में उल्लेख है ।

निरुक्ति :

अम्लिका :- "अम्लो रसोऽस्य इति" अर्थात् फल अम्लरस प्रधान होता है ।

चिञ्चा :- "चिमू इति अव्यक्तं शब्दं चिनोति इति" इसके खाने से मुख खट्टा होता है ।

तिन्तिड़ी :- तिम् आर्द्रीभावे" अर्थात् इसके देखते ही मुख से पानी छूटने लगता है ।

स्वरुपपरिचय :

इमली के ऊंचे वृक्ष पाये जाते हैं । पर्ण-सपत्रक 10 से 20 युग्म, पत्रक अभिमुख क्रम में स्थित, रेखाकार, आयताकार, कुण्ठिताग्र, अग्रभाग कुछ कटा सा, चिक्रने,चर्मिल सम होते हैं । पुष्प-पीताभ वर्ण के लालधारियों से चित्रित गुच्छवद्ध क्रम में खिलते हैं । फली 3 से 8 तक लम्बी, लम्बगोल, चपटी तथा अस्फोटी होती है । बाहरी छिलका कड़ा खाकी रंग का गूदा गाढ़े भूरे रंग का एवं बीज कठोर चपटे होते हैं ।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त,
फलकाल ....अप्रैल, मई,
प्रयोज्यअंग ....फल का गूदा, बीज, पत्र, सार,
बीज चूर्ण की मात्रा 1 से 3 माशा ।

प्राप्तिस्थान : भारत के सभी प्रान्तों में इसके सघन छायादार वृक्ष सड़कों के किनारे लगाये हुये पाये जाते हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः (1)

गुण-गुरु, रुक्ष, रस-परिपक्व, मधुर-अम्ल, विपाक-अम्ल, वीर्य-उष्ण, प्रधानकर्म-रोचन, छर्दिनिग्रहण, दीपन, यकृदुन्तेजक, भेदन, हृद्य; मूत्रजनन, पुष्प-शोथघ्न एवं रक्तसंग्राहक है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग :

बीज-प्रमेहनाशक, वीर्यदोष में उपयोगी, क्षार-मूत्रल उदरशूल एवं गुल्मनाशक है । इमली का गुदा पिपासाशामक, दाहशामक एवं आनुलोमिक है ।

रासायनिक संगठन :-

इसमें सिट्रिक अम्ल, 4 से 6% टार्टरिक एसिड पोटेशियम वाइटाट्रेट एवं कुछ अंश में शर्करा आदि तत्व पाये जाते हैं ।

139 आवर्त्तिकी

द्रव्यनाम	संस्कृत	आवर्त्तिकी, पीतपुष्पा, चर्मरङ्गा,
	हिन्दी...........	तरवड़, आवल,
	लैटिन...........	Cassia auriculata linn.

स्वरुपपरिचयः-आवल के वहुशाखीय गुल्म होते हैं । पर्ण सनाय पत्र सघश एवं पुष्प पीत वर्ण के सुन्दर होते हैं । फली-शिम्बी में एवं इसमें चपटे बीज संख्या में 10 से 20 तक होते हैं । छाल चमड़े के रंगनें के काम में आती है इसी लिये इसे चर्मरड़्ड़ा भी कहते हैं ।

पुष्पकाल	जून, जुलाई
फलकाल	पुष्पकाल के बाद,
प्रयोज्यअंग	छाल, पुष्प, बीज,

प्राप्तिस्थान :- इसकी उष्ण प्रदेशों में विशेषकर इसकी खेती मध्यप्रदेश, राजपुताना आदि स्थानों पर की जाती है । शुष्क प्रदेशों में यह स्वयंजात भी मिलता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :(1)

रस-तिक्त, कषाय, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, कर्म-कफ-पित्तघ्न, कण्डूघ्न, शोथघ्न, कफघ्न, ज्वरघ्न, कृमि एवं शूलघ्न है ।

आमयिक प्रयोग :

पुष्प-मधुमेह एवं तृषाशमन में उपयोगी है । अत्यार्त्तव एवं जीर्ण आंव में पंचाग क्वाथ उपयोगी माना जाता है । अतिसार में ग्वाले लोग मूल चबाते हैं ।

वाग्भट्ट ने कुष्ठ चिकित्सा हेतु आवर्त्तकी घृत्त का उल्लेख किया है ।

मूलत्वचा का क्वाथ अण्डवृद्धि में उपयोगी माना जाता है ।

चक्षुपीड़ा होने पर त्वक्स्वरस को आंख में डालने से लाभ होता है ।

मुखपाक, गुमचोट एवं फोड़े पर लेप करने से वेदना कम होती है । यकृतशोथ में भी यह उपयोग माना जाता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

138 मार्कण्डिका (सनाय)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... मार्कण्डिका, मार्कण्डी
हिन्दी.......... सनाय,
लैटिन.......... Cassia angustifolia Vahl.

स्वरूप परिचय :-

सनाय के तलोत्थ सीधे क्षुप या गुल्मक होते हैं। शाखायें पाण्डुवर्ण की प्रायः गोलाकार, या कभी कोणाकार होती है। पर्ण-सपत्रक एवं समपक्षवत् होती हैं। पत्रक-अण्डाकार, भालाकार, सवृन्तक एवं मसृण होते हैं। पुष्प-पीतवर्ण के, पत्रकोणोद्भूत, मञ्जरियों में खिलते हैं। फली-चपटी, एवं पकने पर कृष्णाभ वर्ण की होती है। पर्ण-पीताभ हरित वर्ण के।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त,
फलकाल ....पुष्पकाल के बाद,
प्रयोज्यअंग ....पत्र, फली,

प्राप्तिस्थान :- यह अरब आदि देशों का आदिवासी पौधा है। अब भारत के मदुरई एवं त्रिचुनापल्ली आदि स्थानों पर इसकी प्रचुर मात्रा में खेती की जाती है। आजकल बाजारों में Cassia acutifolia आदि के पत्रों की मिलावट की जाती है। इन पत्तियों का भी संग्रह चाय की पत्तियों की भांति किया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (1)

गुण-लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस-तिक्त, कटु, वीर्य-उष्ण, प्रधानकर्म-वामक, अनुलोमन, स्रंसन, रक्त-शोधन, कृमिनाशन, यूनानीमतानुसार यह दूसरे दर्जे में गर्म एवं खुश्क है।

आमयिक प्रयोग :-

कब्ज के रोगियों को कोष्ठशुद्धि के लिये सनाय उपयोगी औषधि है। पित्तज्वर में सनाय, अमलतास आदि का जुलाब देने से लाभ होता है। यह वामक वातरोग, कृमि, खांसी, गुल्म एवं उदररोग में उपयोगी है।

रासायनिक संगठनः-

पत्र में तीन प्रकार के तत्त्व पाये जाते हैं।

1. कैथार्टिक एसिड, 2. फाइसोफेनिक एसिड 3. एवं इमोडीन आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

म्युसिलेज, कैल्सियम आवजलेट एवं रास आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :-

स्वादिष्ट विरेचनपूर्ण।

बब्बूलादिवर्ग MIMUSACEAE

वर्गलक्षणः-

इस वर्ग पौधौं वृक्षों के पत्रः पिच्छसदृश विभाजित होते हैं। द्विवीजपर्ण, विभक्तदल, पर्ण-सदल, पक्षाकार, पुष्पविन्यास प्रायः कन्दुकाकार, पुष्प-सूक्ष्म, कलगी जैसे पुष्परचना के आभ्यन्तर भाग में अत्यन्त पास-2 में आये हुये

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

होते हैं । इस वर्ग की फली-शिम्बीसघश एवं सन्धियों से टूटने वाली होती है । इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः ग्राही कृमि अतिसार एवं रक्तविकारों में उपयोगी है ।

139 बब्बूल (कीकर)

द्रब्यनामः- संस्कृत ....बब्बूल, आभा ।
हिन्दी ....कीकर, बबूल ।
लैटिन ....Acacia arabica wild.

निरुक्तिः

बब्बूलः- बाधयति संयच्छति "बध्नातिमलं ग्राहित्यात्" अर्थात् ग्राही होने के कारण यह मल को बांधता है।
आभाः- आसन्तात् भातिपीतः पुष्पैः" यह पीले फूलों के कारण चारों ओर से सुशोभित होता है ।

स्वरुपपरिचयः-बबूल के मध्यम कद के वृक्ष पाये जाते हैं । काण्डत्वक् गाढे भूरे रंग की या कालिमा लिये हुये होती है । छाल में लम्बाई के रुख में लिये हुये दरारें होती हैं। शाखायें गोल सरल तथा झुकी हुई होती है। अनुपत्रों का कांटों में रुपान्तर होता है। पर्ण- द्विपक्षवत्, उपपक्ष या पक्षक युग्म में पलक 10 से 25 संख्या में रेखाकार एवं चिकने होते हैं । पुष्प- गोलाकार, मुण्डकों में पीत वर्ण के होते हैं । फली-शिम्वी सघश चपटी, खाली रंग की, बीज चपटे एवं संख्या में 8 से 12 तक होते हैं । तने से गोंद प्राप्त किया जाता है। गोंद लालिमा लिये हुये सफेद रंग का होता है ।

पुष्पकाल..............................अप्रैल, मई, ।
फलकाल..............................सितम्बर, अक्टूबर, ।
प्रयोज्यअंग..............................छाल, गोंद, फल, पल ।

प्राप्तिस्थानः भारत के उष्ण प्रदेशों के जंगलों में इसके वृक्ष सर्वत्र सुलभ हैं, सिन्ध एवं राजस्थान में इसके बड़े जंगल होते हैं । छाल का उपयोग चमड़ा सिझाने के काम में किया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः- (1) गुण-गुरु, रुक्ष, रस-कषाय, विपाक-कटु वीर्य-शीत, गौंद-शीत, मधुर, कषाय रस-मधुर, विपाक एवं वीर्य-शीत । कर्म-कफ पित्तशामक, व्रणरोपण, स्तम्भन, संकोचक, रक्तरोधक गर्भाशयशोथ एवं स्त्रावहर, विषघ्न, गोंद-वात-पित्तशामक, ग्राही, मूत्रल, वृष्य एवं वल्य है ।

आमपिकप्रयोगः-कोमल पत्तियाँ श्वेतप्रदर, शुक्ररोग एवं अतिसार में दिया जाता है । छाल का उपयोग अतिसार एवं प्रवाहिका हर आदि क्वाथों में किया जाता है । गोंद का उपयोग फुफ्फुसाव्रण, उरःक्षत, प्रवाहिका आदि रोगों में किया जाता है ।

छाल के क्वाथ से मुखरोग दाँतों के छिलने और गले की शिथिलता में कुल्ले करते हैं । गुदभ्रंश में वाहर आये हुये अंग पर छाल के क्वाथ में कपड़ा भिगोकर रखते हैं। कषाय अर्श, कुष्ठ, एवं खांसी में उपयोगी हैं।

रासायनिकसंगठनः वव्बूल के गोंद का उपयोग तथा टैवलेट, पिल्स आदि में होता है । पत्र एवं फलियों में काफी मात्रा में टैनीन पाया जाता है।

मुख्ययोगः बब्बूलारिष्ठ, लवंगादिवटी,

140 खदिर, (खैर)

द्रब्यनामः. संस्कृत..............................खदिर, गायत्री, वालपत्र, कदर, दन्तधावन, सोमवल्क,
हिन्दी ....खैर, कत्था,.
लैटिन..............................Acacia Catechu wild.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गणः–चरक ने कुष्ठघ्नमहाकषाय, एवं कषायस्कन्ध में सुश्रुत ने सालसारादिगण में खदिर का उल्लेख किया है ।

निरुक्तिः–

गायत्रीः "गायत्रं त्रयते इति" अर्थात् खदिर कण्ठशोधक होने से गायन करने वालों के लिये उपयोगी है इसलिये इसे गायत्री कहते हैं ।

खदिरः खदति इति, खद् स्थैर्ये" अर्थात् यह दान्तों को स्थिर बनाता है ।

कदरः कं जलं घृणान्ति" कफ हरत्वात् कदर" यह कफहर होने से कास में उपयोगी है ।

बालपत्रः सूक्ष्मपत्र होने से इसे वालपत्र कहते हैं ।

स्वरुप परिचयः

खदिर के मध्यम आकार के कण्टकितवृक्ष होते हैं । अनुपत्रों का रुपान्तर मृदुकण्टकों के रुप में पाया जाता है ये दो दो के जोड़ों में अग्र मुड़े हुये चमकदार भूरे रंग के होते हैं पत्तियाँ लम्बी, कण्टकित, पत्रक $1\frac{1}{3}$" लम्बे एवं प्रत्येक प्रपत्रक 60 से 100 तक की संख्या में होते हैं। पुष्प –पीताभ एवं क्रीम रंग के कोणोदभूत, गोल मञ्जरियों में खिलते हैं । फली–लम्बी, चपटी, सीधी, चमकदार गाढ़े भूरे रंग की होती है। फली में 5 से 6 बीज होते हैं।

पुष्पकाल..............................मई, जून,
फलकाल..............................सितम्बर. अक्टूबर।
प्रयोज्यअंग..............................छाल, काष्ठसार (कत्था)

प्राप्तिस्थानः–भारत के उष्णप्रान्तों, हिमालय की निचली घाटियों, पंज्जाब, उत्तर पश्चिम हिमालय, मध्यभारत विहार, कोंकण आदि स्थानों में इसके घने वन पाये जाते हैं । कत्था प्राप्त करने के लिये वन विभाग इसके वृक्षों का रोपण कार्य भी करता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, प्रभाव–कुष्ठघ्न । प्रधान कर्म–रक्तशोधक, रक्तस्तम्भक, ग्राही, कासशामक, शोथहर एवं स्तम्भक है ।

आमयिकप्रयोगः–

1-कुष्ठ में खदिरमूल एवं काष्ठसार का प्रयोग लाभदायक है । कुष्ठ वाले रोगी को खाने, पीने, नहलाने. मालिश आदि प्रत्येक कार्य में खदिर का उपयोग रसायन का काम करता है ।

2- मुखरोग में खदिरसाधित तैल का कवल एवं गण्डूष धारण करने से मुखविकार में लाभ होता है एवं दांत द्यठ होते हैं दन्तरोगों में खदिरक्वाथ का गण्डूष धारण करते हैं ।

3- गले की जलन खांसी में खदिरसार (कत्था) लाभ करता है । यह स्वरभेद में उपयोगी माना गया है ।

4- यह कण्डू, व्रण, अरुचि, मेद, प्रमेह, ज्वर, आम, रक्तविकार एवं पाण्डुरोग में उपयोगी है।

5- अकेला कत्था मुख के रखने पर गले की शिथिलता से उत्पन्न सूखी खांसी में लाभ होता है।

6 गर्भाशय की शिथिलता से उत्पन्न प्रदर, रक्तस्त्राव एवं योनिशैथिल्य में समभाग कत्था और बोल की गोलियाँ गुणकारक है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिकसंगठनः

कत्थे 50% तक कैटेकू–टैनिकएसिड, होता है जो इसका सक्रिय घटक है । इसमें कैटेकोल, क्वर्सिटिन एवं कैटेक्यूरेड आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोगः खदिरादिवटी, खदिरारिष्ठ, सुन्दरीकल्क, खदिरासव, खदिर घृत, दशमूलारिष्ठ, म० मरिच्यादितैल, पत्रंगासव।

वक्तव्यः कुछ लोग खदिरसार से कत्था अर्थ करते हैं वह वास्तव में भ्रम है। खदिरसार वह तरलपदार्थ है जो स्वयं प्राचीन वृक्षों से तरल के रुप में प्राप्त होता है । खदिर के पर्यायों में सोमवल्क का उल्लेख मिलता है। धन्वन्तरि निघण्टुकार ने इसे खदिर का भेद माना है एवं राजनिघण्टुकार ने खदिर, सोमवल्क ताकण्टक, विट्खदिर एवं अरिभेद पांच प्रकार खदिर के बतलाये हैं। अमरकोषकार ने खदिर, अरिभेद एवं कदर तीन भेद माने हैं ।

141 इरिमेद

द्रव्यनामः संस्कृत..............................अरिमेद, इरिमेद, विट्रखदिर
हिन्दी.............................. गन्धीलोखैर, इरिमेद, सफेदकीकर,
लैटिन..............................Acacia leucophloea wild.

गणः चरक उदर्दप्रशमन महाकषाय में उल्लेख किया है ।

निरुक्तिः— **अरिमेदः**–अरिः दुसहो मेदः स्त्रावोस्य इति अरिमेदः" अर्थात इसका मेद सार या गोंद दुर्गन्धित होता है जो कि शत्रू के सदृश प्रतीत होता है इसलिये इसे अरिमेद कहते हैं ।

विट्खदिरः—विष्ठावत् दुर्गन्धित्वात् विट्खदिर " इसमें विष्ठासघश बदबू आती है इसलिये विट्खदिर कहते हैं ।

स्वरूप परिचयः

बबूल सघश मध्यमाकार वृक्ष, त्वक् कृष्ण एवं धूसर वर्ण की शाखायें मृदु, कण्टकित, पर्ण–बबूलसघश कृष्णहरित, पुष्प–पत्रकोणोद्भूत. पुष्पदण्डाग्र, पीत मुंडाकार, सुगन्धित, शिम्बी–पतली अनेक बीज मुक्त । छाल बदबूदार होती है ।

पुष्पकाल..............................अप्रैल, मई।
फलकाल..............................जून, जुलाई ।
प्रयोज्यअंग..............................छाल, बीज।

प्राप्तिस्थानः–प्रायः भारत के उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः

गुण–रुक्ष, रस–कषाय, तिक्त, वीर्य–उष्ण, विपाक–कटु, कर्म वात–कफघ्न, व्रणघ्न, पूतिहर, रक्तशोधक, स्तम्भन ।

आमयिकप्रयोगः–पूयदन्त, दन्त एवं कण्ठ रोगों में छाल के क्वाथ का गण्डूष करते हैं। विसर्प व्रण में लेप, अतिसार कृमि, रक्तविकार, कुष्ठ, विसर्प, पूममेह में छाल का उपयोग किया जाता है ।

मुख्ययोगः—खदिरादिगुटिका में अरिमेद की योजना है।

वक्तव्यः—चरक, सुश्रुत वाग भट्ट एवं धन्वन्तरि आदि निघण्टुग्रन्थों में खदिर एवं अरिमेद दोनों की अलग–अलग गणना की है। आसवयोनि सूचि में सार–आसव में अरिमेद गणना की है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

142 शिरीष (सिरष)

द्रव्यनामः
संस्कृत..............................शिरीष, मृदुपुष्प, शुकपुष्प, कपीतन।
हिन्दी..............................सिरष,
लैटिन..............................Albizia lebbeek benth

गणः— (1) चरक में विषघ्न, वेदनास्थापन महाकषाय एवं शिरोविरेचन द्रव्यों में शिरीष का उल्लेख है। सुश्रुत के कषायस्कन्ध, एवं शालसादिगण में शिरीष का उल्लेख है।

निरुक्तिः—

शिरीषः— श्रृणाति शीर्यति वा इति "श्रृहिंसायाम्" अर्थात् यह दोषों एवं शोथ आदि का संहार करता है ।

मृदुपुष्पः— इसके पुष्प अत्यन्त कोमल होते हैं ।

कपीतनः— "तनोति इति तनुविस्तारे" अर्थात शिरीष का वृक्ष काफी बड़ा होता है ।

स्वरुप परिचयः—

शिरीष के पर्णपाती मध्यमआकार से लेकर विशाल वृक्ष पाये जाते हैं। शाखायें चारों ओर को फैली होती हैं। छाल का वाह्यतल भूरे रंग खुरदरा एवं विदीर्ण होता है । छाल का अन्तर भाग हलके रक्तवर्ण का एवं खुरदरा होता है। पर्ण–द्विधापक्षवत्, पर्ण देखने में इमली के पत्तों सद्यश पत्रक संख्या में 16–22 तक, पुष्प–अवृत्त, पीताभ–हरित, चंवर जैसे सुगन्धित होते हैं। शिम्बी–लम्बी, पतली चपटी, बीज संख्या में 6 से 12 तक होते हैं।

पुष्पकाल..............................अप्रैल. मई।
फलकाल..............................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग..............................बीज, छाल, पुष्प, पत्र ।

प्राप्तिस्थानः— समस्त भारत के उष्ण भागों में इसके वृक्ष सड़कों के आसपास लगाये हुये या वनों में स्वयंजात सर्वत्र सुलभ है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः (2)

गुण—लघु, रुक्ष, एवं तीक्ष्ण, रस–कषाय, तिक्त, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–ईषद् उष्ण कर्म– त्रिदोषशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, वर्ण्य, विषघ्न, चक्षुष्प, शिरोविरेचन, कफघ्न, वृष्य, कुष्ठघ्न है ।

आमयिकप्रयोगः—

शिरीष–त्रिदोषहर, कुष्ठ, कण्डू, श्वास एवं कास में उपयोगी है,। फूल का उपयोग शुक्रस्तम्भन में करते हैं। छाल चूर्ण धृत के साथ वृहण के रुप में करते हैं। बीजों का गण्डमाला में लेप करते हैं।
श्वास में शिरीष के पुष्प का स्वरस पिप्पली एवं मधु के साथ देने से लाभ होता है ।
कुष्ठ में त्वचा का लेप करने से लाभ होता है ।
सर्पविष में विषघ्न के रुप में श्रेष्ठ है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठनः-

छाल में सैपोनिन, टैनीन, एवं रालीय तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोगः-शिरीषासव

वक्तव्यः- शिरीष की कई जातियां पाई जाती हैं।
जिसमें **Albizia odoratissima, A. procera** श्वेतशिरीष (किणिही) एवं शिरीषभेद **A. amara** कहते हैं । शिरीष को विषघ्न गुणों में श्रेष्ठ बतलाया है ।

143 शमी (छोंकर)

द्रब्यनामः
संस्कृत.............................शमी, अग्निगर्भा, मंगल्या, शमीर।
हिन्दी..............................छोंकर
लैटिन..............................**Prosopis spicigera Linn**

वर्ग :— वटादिवर्ग भा० प्र० चरक आसवयोनि द्रव्यों में शमीसार।

निरुक्ति :— शमी- शमयति रोगान् इति "शमु उपशये" अर्थात् यह वनस्पति श्वास, कास, भ्रम आदि रोगों का शमन करती है .

मंगल्मा :— यह रोगों के निवारण में मंगलदायक है. इसी कारण इसे शिवा भी कहते हैं।

अग्निगर्भा :— याज्ञिक कर्म हेतु इसके काष्ठ से अग्नि तैयार की जाती है ।

स्वरुप परिचय :

शमी के मध्यम आकार के वृक्ष पाये जाते हैं । शाखायें पतली कांटेदार, शंक्वाकार, सीधे कुछ चिपटे हुये होते हैं। इसके काष्ठ में तीव्रताप होता है इसी कारण इसे अग्निगर्भा कहते हैं । गुप्तवास के समय इसी वृक्ष पर पाण्डवों ने अपने अस्त्र छिपाये थे। यह देव वृक्ष माना जाता है। पर्ण-द्विपक्षवत् प्रत्येक जोड़ों में एक-एक ग्रन्थी होती हे। पत्रक 8 से 12 जोड़ों में, अवृत्र, तिर्यगायताकार, तीक्ष्ण। पुष्प-पीताभ, छोटे, लम्बी मञ्जरी में खिलते हैं। फली-लटकी हुई बीच-बीच में संकुचित 5 से 10" तक लम्बी अनेकः बीनों वाली होती है ।

पुष्पकाल............................अप्रैल, जून ।
फलकाल............................पुष्पकाल के वाद
प्रयोज्यअंग............................फली, पत्र छाल,

प्राप्तिस्थान :— यह पंजाब, सिन्ध, राजपुताना, बुन्देलखण्ड, एवं गुजरात, राजस्थान आदि स्थानों के वन्य प्रदेशों में सुलभ हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेनकर्मज्ञान :— (1)

रस-कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, कर्म-वात कफनाशक, केश्य, मेध्य रोचक, कृमिघ्न छाल-ग्राही।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिकप्रयोग

कास, भ्रम, श्वास, कुष्ठ, अर्श एवं कृमिरोग में उपयोगी है। छाल संग्राहक एवं रक्त पित्तशामक मानी जाती है। गर्भपात न हो इसके लिये फूलों को पंजाब के ग्रामीण खाते हैं।कूटकर मिश्री के साथ मिलाकर गर्भिणी को देने से लाभ होता है । कच्ची फलियों का शाक गुरु एंव स्वादिष्ठ होता हैं।

वक्तव्यः–शमी वृक्ष का संस्कृत साहित्य के कतिपय स्थलों में उल्लेख मिलता है। चरक ने आसव योनि की सूची में शमीसार की गणना की है। एवं विमान अध्याय 8 के कषाय–स्कन्ध–द्रव्यों के साथ शमी का उल्लेख है। अतिसार एवं अन्य द्रव यों के साथ शमी का उल्लेख है सुश्रुत ने रोमशातन के लिये अन्य द्रव्यों के साथ शमी का निर्देश किया है।

144 वीरतरु

द्रव्यनामः

संस्कृत..............................वीरतरु वैल्लन्तरु, वीरवृक्ष,
हिन्दी..............................वरतुली, खेरी,
लैटिन..............................**Dichrostachyas cinerea W.of A.**

स्वरुपपरिचय :—

इसके मध्यम आकार के गुल्म–नुमा वृक्ष पाये जाते हैं। काण्ड एवं शाखायें कण्टकित होती हैं । पर्ण–द्विपक्षवत्, सूक्ष्म, तिर्यगु, पत्रक–12–से 20 जोड़ों में, पुष्प–पीताभ, रक्तवर्ण के एवं मञ्जरी में खिलते हैं ।फली–लम्बी चपटी, गहरे भूरे रंग की तथा पकने पर ऐंठी रहती है। बीज 6–12 की संख्या में । काष्ठ बहुत कठोर होता है इसी कारण इसे वीरतरु कहते हैं।

पुष्पकाल..............................जुलाई, अगस्त,
फकाल..............................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग..............................मूल त्वचा (छाल) ।

प्राप्तिस्थान :

यह पश्चिमोत्तर प्रदेश, गुजरात के मरुस्थली भूमि में, दक्षिणी महाराष्ट्र, उत्तरीकन्नड से सिलोन तक पाया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेनकर्मज्ञान

रस एवं विपाक में तिक्त, वीर्य–उष्ण, कफनाशक, तृष्णाहर, मूत्राघात एवं अश्मरी में उपयोगी, मूत्रकृच्छ्र, योनिरोग एवं सन्धिशूल नाशक है । ग्राही एवं जाठराग्नी दीपक है। सन्धिवात एवं शोथ पर इसके मूल को घिस कर लेप करने से लाभ होता है। नेत्र विकार में इसके कोमलपत्रों का लेप किया जाता है। मूठगर्भ में वीरतरु तैल को उपयोगी माना है ।

वक्तव्यः–

चरक में वीरतरु का उल्लेख नहीं मिलता है सुश्रुत में आमपाचनार्थ एवं वाताभिष्यन्द की चिकित्साहेतु उल्लेख है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

145 लज्जालु (छुई–मुई)

द्रव्यनामः संस्कृत..............................लज्जालु, नमस्करी, अञ्जलकरिका,
हिन्दी..............................छुईमुई, लालबन्ती ।
लैटिन..............................**Mimosa pudica** Linn.

वर्ग — (1) चरक ने सन्धानीय एवं पुरीषसंग्रहणीय महाकषाय में और सुश्रुत के प्रियङ्गवादिगण, अम्बस्ठादिगण में लज्जालु का उल्लेख है।

निरुक्तिः— लज्जालु— (2) लज्जते स्पर्शात् इति" अर्थात् इस वनस्पति को स्पर्श करने से शरमा जाने वाली स्वभाव होने से लज्जालु कहते हैं।

नमस्करीः— नमः करोतोत्तित्येवंशीला नम्रत्वात् " यह नमन करने के स्वभाव वाली होती है। जो स्पर्श मात्र करने से नत हो जाती है ।

अञ्जिल अञ्जलिकारिकाः–अर्थात छूने पर अज्जलीकर नमस्कार करती है। यह रक्तपित्त आदि रोगों को नष्ठ करती है इसलिये इसे समङ्गा कहते हैं। इसे खदिरपत्रिका भी इसलिये कहते हैं कि पर्ण की आकृति इनसे मिलती जुलती है ।

स्वरुपपरिचयः—

परिसृत कण्टकित गुल्मकनुमा वनस्पति है। पत्रक रेखाकार खदिर एवं शमी पत्र सद्यश छूने पर पत्रक संकुचित हो जाते हैं। पुष्प–गुलाबी रंग के पर्णकोणोद्मूत. मुण्डक में खिलते हैं । शिम्बी, छोटी संधियों पर एवं सूक्ष्म कांटेदार होते हैं ।

पुष्पकाल..............................सितम्बर, अक्टूबर ।
फलकाल..............................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग..............................मूल पंञ्चाग ।

प्राप्तिस्थानः—वर्षाकालीन एक वर्षायु पौधा है । भारत के उष्ण भागों में सर्वत्र सुलभ है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान 3

रस–कषाय, तिक्त, वीर्य–शीत, विपाक–कटु, कर्म–कफ –पित्तघ्न, पुरीषसंग्रहणीय, रत्तपित्त अतिसार, रोगनाशक हैं ।

आमयिकप्रयोगः— रक्त एवं पित्त प्रधान रोगों में लज्जालु का प्रयोग करते हैं। योनिरोगों में यह विशेष उपयोगी है विषशान्ति के लिये मूल का हाथ में लेपन कर विषैले सर्पों को भी पकड़ा जा सकता है। मण्डली सर्प विष में लज्जालु मूल को तण्डुलोदक में देने से लाभ होता है।

रासायनिक संगठनः—
इसमें माइमोसीन नामक क्षाराभ कषाय द्रव्य, भस्म पाया जाता है ।

वक्तव्य :–चरक सुश्रुत में प्रायः छुई–मुई के लिये समङ्गा शब्द आया है! वाग्भ्ट्ट ने अम्बष्ठादिगण में नमस्करी शब्द का निर्देश किया है समङ्गा शब्द अनेकार्थ बोधक है। मुख्यरुप से मंजिष्ठा के लिये सहिताकारों ने समङ्गा का निर्देश किया है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

146 शिकाकाई (सातला)

द्रव्यनामः संस्कृत..............................भूरिफेना
हिन्दी.............................शिकाकाई, विचारणीय,
लैटिन ....**Acacia concinna** Dc.

वानस्पति क स्वरुप :

शिकाकाई का कण्टकित, परिसृत झाड़ीनुमा–गुल्म एवं मध्यम आकार का वृक्ष होता है। पर्ण–खदिर वत, पत्रक संख्या में 20–24 तक, पुष्प–पीत–श्वेताभ गुलाबी, मुण्डक में खिलते हैं। शिम्बी को मलने पर एवं पानी में भिगोने पर रीठा के समान फेन निकलता है। इसीकारण इसे भूरि–फेना, चमड़े को कषने के कारण चर्मकषा भी कहते हैं।

पुष्पकाकल.............................अप्रैल, मई,
फलकाल.............................. शीतकाल,
प्रयोज्यअंग.............................. छाल, फली,

प्राप्तिस्थानः–

यह दक्षिण भारत के जंगलों एवं उष्णकटि बन्धीय प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ है ।

दोष अधिष्ठान भेदने कर्मज्ञान :—

इसे शास्त्रीय सप्तला (सातला) को अधिकतर विद्वानों से नहीं माना है जिसके कारण उसके गुणधर्मों का निर्देश यहाँ पर नहीं किया गया है शास्त्रीय सातला **Euphorbia** जाति का वनस्पति है जिसका कि उल्लेख एरण्डकुल में किया गया है । शास्त्रीय सातला उभयतोभागहर गण की वनस्पति है। डल्हण ने सातला को सहुण्ड का भेद माना है कुछ टीकाकार यवतिक्ता भेद (शंखिनी) को सातला स्वीकार करते हैं। भूरिफेना एवं चर्मकर्षा पर्याय होने के कारण लोगों ने शिकाकाई को सपृला (सातला) मान लिया है। लेखक के विचार से शिकाकाई से भिन्न द्रव्य शास्त्रीय सातला है देखिये एरण्डकुल में।

पद्मकादिवर्ग R0SACEAE

वर्गलक्षण :– इस वर्ग में क्षुप, गुल्म, एवं वृक्ष पाये जाते हैं । वनस्पतिशास्त्र के आधार पर कई किस्मों की वनस्पतियों इस वर्ग तें मिलती हैं। पर्ण–विभ्निन्न प्रकारके सादे, संयुक्त कदाचित अभिमुख एवं दन्तुर होते हैं। पुष्प–प्रायः नियमित स्त्री–पुंसयोगी, पुष्पों की वाह्यदल एवं अन्तदल वरावर पांच–पांच संख्या में होते हैं, पुंकेशर अनियमित। इस वर्ग में उपयोग में वाताम, पदमाख, गुलाब, नाशपाती, आलुवुखार आदि द्रव्य एवं फल पाये जाते हैं ।

147 पद्मक

द्रव्यनाम संस्कृत.............................पद्मक, पद्मकाष्ठ, सुप्रभ केदार
हिन्दी.............................पदमाख,
लैटिन.............................**Prunus cerasoides** D.Don.

गण– चरक के वर्ण्य, वेदनास्थापन महाकषाय एवं सुश्रुत के सारिवादि एवं चन्दनादिगण में पद्मक का उल्लेख है,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरुपपरिचयः- 2

पद्माख के मध्यम आकार के पर्णपाती वृक्ष पाये जाते हैं छाल हल्का, भूरापन लिये हुये, चिकनी, पतली चमकीली पपड़ियों वाली होती है। काण्ड गोलाकार रक्ताभ एवं कुछ गंधयुक्त होता है। पर्ण-भालाकार, लट्वाकार, लम्बे नोकवाले मसृण पत्रधार कुछ दन्तुर एवं सवृन्त होते हैं। पुष्प-श्वेत-गुलाबी अनेकरंग के पत्रकोणोद्भूत एवं गुच्छों में खिलते हैं। पुष्पों से भी कमल सदृश हल्की सी गन्ध आती है। फल-अष्ठिफल, अण्डाकार, पीला या लाल दोनों सिरों पर कुण्ठित होता है।

पुष्पकाल..............................मार्च, अप्रैल,
फकाल..............................मई, जून,
प्रयोज्यअंग..............................छाल, काष्ठसार, बीजमज्जा।

प्राप्तिस्थानः—हिमालय के समशीतोष्ण स्थानों के 1,800 मीटर की उँचाई तक उत्ताखण्ड, हिमाचल जम्बुकश्मीर राज्य में सर्वत्र सुलभ है

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान—3

गुण-लघु, स्निग्ध, रस-कषाय, तिक्त, विपाक-कटु, शीत, प्रभाव-त्रिदोषहर, प्रधानकर्म-स्तम्भन, पित्तशामक, कटुपौष्टिक, वेदनाशामक, रक्तशोधक, बीजमज्जा-अश्मरीघ्न ।

आमयिकप्रयोगः—

रक्तपित्त, ज्वर, वमन, विष, मूर्च्छा, दाह, भ्रम, कुष्ठ, विसर्प आदि रोगों में उपयोगी है।
रक्तपित्त में पद्मकाष्ठ एवं चन्दन का चूर्ण तण्डुलोदक एवं मधु मिलाकर चटाना चाहिये । गर्भस्थापन हेतु सिद्धयोग में इसकी योजना की गई है ।

रासायनिकसंगठन :
काण्डत्वक् में एमिग्डोलेन, प्रनेसेटिन एवं हायड्रोसायनिकएसिड नामक तीव्र विषाक्त सत्व पाया जाता है ।
मुख्ययोगः-पद्मकादि चूर्ण, पद्मकादि तैल ।

148 बाताम (बदाम)

द्रब्यनामः– संस्कृत..............................वाताम
हिन्दी..............................बदाम
लैटिन..............................Prunus amygdalus Bats.

चरक सू० अ 29 में एवं सुश्रुत सू० अ० 46 में बादाम का वल्य, वंहण के रुप में उल्लेख है ।
स्वरुपपरिचयः
इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पर्ण-भालाकार एवं वारीक कंगूरेदार होते हैं। इसके वृक्ष आड़ू के सदृश दिखाई देते हैं। पुष्प-श्वेताभ वर्ण के गुलाबी रंग लिये हुये फल-लम्बाई युक्त गोल, बीज अण्डाकार चिपटे, कश्मीर में कच्चे फलों को विशेषतया खाया जाता है । इसके शुष्कबीजों को बदाम कहते हैं ।

पुष्पकाल..............................अप्रैल, मई,
फलकाल..............................अगस्त. सितम्बर ।
प्रयोज्यअंग..............................बीज. गिरी, तैल ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थानः— काश्मीर, ईरान, युरोप, अफगानिस्तान । भारत के काश्मीर राज्य में इसकी विशेषतया खेती की जाती है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः—

गुण–गुरु, मधुर, स्निग्ध, रस–मधुर, वीर्य–उष्ण, विपाक–मधुर, कर्म– वातहर, पित्तश्लेषकर वृंहण, व्रल्य हैं।

आममिकप्रयोगः—

मिगाकर बादाम का सेवन करना रसायन है । स्त्रियों में इसकी पेया से कमर का दर्द एवं श्वेतप्रदर ठीक होता है। मज्जा मधुर, वृष्य, एवं वीर्य दोष में उपयोगी है। उष्ण होने के कारण रक्त पित्त के रोगियों को हितकर नहीं है। बदाम के कवच को जलाकर दन्तमञ्जन बनाया जाता है कड़वा वादाम सविष होता है इसमें हाइड्रोसियानिक एसिड पाया जाता है वादामतैल मुख्य योग है ।

149 तरुणी (गुलाव)

द्रव्यनाम
संस्कृत..............................तरुणी, शतपत्री, रामतरुणी ।
हिन्दी.............................. गुलाब
लैटिन..............................अ० Rosa centifolia Linn.
वा० or _ R. damascena Mill

स्वरुपपरिचय :

गुलाब की कंटीले झाड़ीदार गुल्म होते हैं इस समय भारत में गुलाब की अनेक किस्में उपलब्ध हैं। इसके कांटेदार आरोही क्षुप भी पाये जाते हैं। कांटे मजबूत और टेढे होते हैं। पुष्पों में पांच दलपत्र जो श्वेत, हलके गुलावी रंग के पीताभ श्वेत एवं गुलाबी रंग के होते हैं। पुष्पों से अर्कगुलाब, दूत्र एवं गुलुकन्द समाकिया जाता हैं।

पुष्पकाल..............................बारहमास, मुख्यरूप से जुलाई, सितम्बर।
प्रयोज्य अंग..........................पुष्प ।

प्रप्तिस्थानः—

गुलाब मूलतः सीरिया का आदिवासी पौधा है, भारत में इस समय इसकी कई किस्मों की खेती की जाती है ।

दोषअधिष्ठानभेदेन कर्मज्ञानः—

गुलाब रस में तिक्त, कटु,–कषाय, मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–दुर्गन्ध–नाशक वर्ण्य, व्रणरोपण, शोथहर, मनःप्रसादकर, वलप्रदः दाहप्रशमन, ज्वरघ्न, ह्मध, शीणितस्थापन, एवं पित्त की तीक्ष्णता को शान्त करने वाला होता है दलपत्र–सारक होते हैं।

आममिकप्रयोगः—

गुलाव शीतस्वभावी आनुलोमिक है। इससे दस्त साफ होता है। भूख लगती है, अन्न पचता है, शरीर पुष्ठ होता है, बच्चों एवं गर्भिणियों को गुलुकन्द उपयोगी है। यूनानी मतानुसार पुष्प–हृद्य, यकृत आमाशय, आतों को बलप्रद पित्तशामक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्यः–

संहिताकालीन जंगली गुलाब कुब्जक का उल्लेख प्रायः मिलता है। तरुणी, एवं शतपत्री अनेकार्थ–वोधक है तथापि यह विशेष उपयोगी द्रव्य होने से इसका औषध चिकित्सा में विशेष महत्व है। तरुणी शब्द से गुलाव को ही विद्वानों ने स्वीकार किया है ।

पाषाणभेदादिवर्ग **SAXIFRAGACEAE**

वर्गलक्षणः— इस वर्ग में वृक्ष, वृक्षक, गुल्म एवं शाकीय पादप पाये जाते हैं । पर्ण–एकान्तर, कभी–कभी सलग्न उपपत्र भी पत्रवृक्ष के साथ होते हैं । पुष्प–प्राय–स्त्री पुंसोपयोगी, पुंकेशर नियमित, संख्या में पुष्पदल के बराबर अथवा उनसे द्विगुण होते हैं । पुष्प–सुन्दर, अनेक रंग के, फल–शिम्बी या आवृतकोष में होते हैं । इस वर्ग में पाषाणभेद जैसे उपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं ।

150 पाषाणभेद

द्रव्यनाम : संस्कृत ....पाषाणभेद, अश्मभिद्, शिलाभेद ।
हिन्दी ....परवानभेद ।
लैटिन ....**Bergenia ligulata** (Wall) Engl.

गण–(1):– चरक ने मुत्रविरेचनीयगण, सुश्रत ने वीरतर्वादिगण, बातसंशमन एवं कषाय वर्ग में उल्लेख किया है ।

निरुक्ति :

पाषाणभेदः– अर्थात यह वनस्पति पथरीली जमीन पर ही पैदा होती है या जो पथरी को तोड़ने में सक्षम हो उसे अश्मभिद् कहते हैं । (पाषाणोमिधते ऽनेन पाषाणभेद)

स्वरूपपरिचय :

इसके बहुवर्षायु भौमिक काण्ड वाले कोमल क्षुप होते हैं । चट्ठानों के बीच के दरारों से इसका काण्ड बाहर निकलता है इसी कारण इसे पाषाण भेद कहते हैं । मूलकाण्ड बाहर से रक्ताभवर्ण का एवं तोड़ने पर सफेद रंग का स्वाद में कषैला ।" मोटा होता है । इसमें बारीक उपमूल भी रहते हैं । पर्ण–लट्वाकर या कुछ गोल 2 से 6" तक लम्बे मांसल, चिकने, किनारे मृदुरोमश एवं सूक्ष्म सघन दन्तुर सवृन्त होते हैं । पत्र मूल से ही निकलते हैं जो संख्या में इसे 3 से 4 तक होते हैं । पुष्प–गुलाबी–सफेद रंग के अनेक गुच्छों में सवृन्त होते हैं । इसकी दुसरी किस्म भी विशेष– ऊँचाई वाले स्थानों पर मिलती है जिसे **Bergenia strachyi** कहते हैं ।

पुष्पकाल......................................मार्च, अप्रैल ।
फलकाल...................................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग...................................मूलकाण्ड ।

प्राप्ति स्थान :–यह हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों के 1500 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2,800 मीटर की ऊँचाई तक उत्तराखण्ड कश्मीर, भुटान, सिक्किम, आदि पार्वत्य प्रदेशों के पथरीली जमीन पर सर्वत्र पाया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान - (2)

गुण लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, रस–काषाय, तिक्त, विपाक, कटु, वीर्य–शीत, प्रभाव–अश्मरीभेदन, प्रधानकर्म–त्रिदोषशामक, रक्तपित्तशामक, अश्मरीभेदन, मूत्रल, ज्वरघ्न, कफनिस्सारक, हृद्य ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमायिकप्रयोगः–अश्मरी, मुत्रकृच्छ्र, मूत्राघात अर्श, योनिरोग, हृद्रोग, आदि विकारों में उपयोगी है ।

रासायनिकसंगठन :—

मूल में टैनिक एसिड, गैलिक एसिड, ग्लुकोज, म्युसिलेज, वर्जिनिन, मोम, स्टार्च, खनिजलवण एवं एलव्युमिन आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोगः– पाषाण–भेदादिचूर्ण,

वक्तव्यः–

प्रदेश भेद से बाजारों में कई किस्म के द्रव्य पाषाणभेद के नाम से मिलते हैं । जिसके कारण इस द्रव्य के विषय में काफी संदिग्धता विद्यमान थी । आधुनिक परीक्षणों के आधार पर यह देखा गया है कि वजरजीनियाँ–लीगुलाटा एवं एर्वालेनाटा गोरखगांजा, में अश्मरी भेदन, भूत्रल , वासंसशमन गुण विद्यमान हैं। आचार्य प्रियवर्त शर्मा ने एर्वालेनाटा को प्रधान पाषणभेद स्वीकार करने सुझाव दिया है मेरे विचार से इसे प्रतिनिधि द्रव्य के रूप में स्वीकार करना चाहिये। निघण्टुग्रन्थों में पाषाणभेद के चार भेद वर्णित हैं । यथा 1. पाषाणभेद, 2. वटपत्री, 3. श्वेतशिला, 4. चतुष्पत्री । निघण्टुरत्नाकर ने 3 भेद माने हैं । वनस्पतिशास्त्र के आधार पर इसका अध्ययन किया जा रहा है ।

पर्णबीजादिवर्ग CRASSULACEAE

पर्णलक्ष्णः–इस कुल में शाकीय वनस्पति एवं काष्ठीय गुल्मक भी पाये जाते हैं । पर्ण, मांसल, अखण्डित कभी–कभी पालियुक्त एकान्तर या अभिमुख पाये जाते हैं । पुष्प–द्विबीजपर्ण, नियमित, विभक्तदल, टरमिनल साईम, पुष्पवाह्यकोष के दल 4–8 पखड़ियों में होते हैं।

151 पर्णबीज (पाथरचूर)

द्रव्यनाम..........संस्कृत ....पर्णबीज ।
हिन्दी ....पथरचूर, जरव्मेहयात ।
लैटिन .... **Kalanchoe** pinnata pers
syn. **Bryophyllum. calycynum.**

स्वरूपपरिचयः–

यह मांसल बहुवर्षायु क्षुप है । काण्ड –चिकना 1 से 4 फुट तक ऊँचा, पोला, पर्ण–साधारण, संयुक्त, अभिमुख अण्डाकार संयुक्त दन्तुर होते हैं । पुष्प 2" लम्बे नालिकाकार रक्ताभ–हरितवर्ण के नीचे को झुके हुये गुच्छों में खिलते हैं । फल–कागज जैसे पतले, पुष्पदलों से आवृत, बीज–छोटे, अण्डाकार, चिकने, अनुलम्ब रेखाओं से युक्त होते हैं । पत्तियों को लगाने पर ही नया पौध निकल आता है यह इसकी विशेषता है ।

पुष्पकाल......................सितम्बर, अक्टुबर,
फलकाल....................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग................. पत्र।

प्राप्ति स्थानः– यह भारत के उष्णप्रदेशों में एवं विशेषकर उद्यानों, वाटिकाओं में लगाया हुआ मिलता है । मूलतः यह पौधा अफ्रिका का आदिवासी है । अब भारत में भी अनुकूल–प्रकृति में खूब मिलता है ।

दोषअधिष्ठानभेदेनकर्मज्ञानः–

व्रणशोधन, रक्तसंग्राहक, रक्तस्कन्दन, सभी प्रकार के व्रणों के रोपण करने में यह उपयोगी है । रक्तमिश्रित प्रवाहिका में पत्रस्वरस लाभ करता है । रक्तार्श प्रदर, अश्मरी, विसूचिका में भी उपयोगी है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठन :

इसके पत्तों में मैलिक आइसोसाइट्रिक एवं साइट्रिक अम्ल पाया जाता है। पत्तों में कैल्सियम सल्फेट आग्जलेट, तथा एसिडटार्टरेट आफ पोटेशियम पाया जाता है।

वक्तव्य :

संहिता ग्रन्थों में पर्णबीज नामक द्रव्य का उल्लेखनहीं हैं। सम्भवतः निघण्टुकाल में यूनानी हकीमों ने इसका प्रचलन भारत में किया होगा। यह घरेलू चिकित्सा की उपयोगी वनस्पत्ति है। कुछ लोग भ्रम से इसे पाषाणभेद मानते हैं। अभाव द्रव्यों या प्रकार भदों में इसकी गणना की जा सकती है।

तुरूष्कादिर्का HAMAMELIDACEAE

वर्गलक्षणः— यह वर्ग 18 कुटुम्ब और पचास प्रकारों में विभक्त है, इस वर्ग में वृक्ष, वृक्षक, गुल्म पाये जाते हैं। पर्ण–एकान्तर; कभी–कभी अभिमुख, सादे एवं पर्णपाती होते हैं । उपवृन्त प्रायः युग्म, पुष्प छोटे, पुंकेशर– संख्या में चार या अधिक, परागकोष दो खानों वाला होता है फल–शिम्बी रूप में बीज– छोटे एवं बड़े दोनों रूप में मिलते हैं । इस वर्ग के द्रव्य उत्तेजक, कफहर, कण्डूघ्न, स्वेदनाशक होते हैं ।

152 सिल्हक (शिलारस)

द्रव्यनाम....... संस्कृत ....सिल्हक, तुरुष्क।
हिन्दी ....शिलारस ।
लैटिन ....**Altingia excelsa** Norncha.

गुण (1):– सुश्रुत ने एलादिगण में तुरुष्क का उल्लेख किया है । चरक ने वातव्याधि के वलातैल में उल्लेख किया है ।

निरुक्ति : सिल्हकः– रिनह प्रीतौ "स्निह्ययातिमधुरत्वात्" अर्थात यह मधुर एवं वीर्य वर्धक होन के कारण लोगों को प्रीति देने वाला है ।

तुरुष्क :– तुतौति त्वरां करोति "तुर त्वरणे" यह जल्दी कान्ति को बढाता है ।

स्वरुपपरिचय : (2)

शिलारस के पर्णपाती वृक्ष होते हैं । काष्ठ कठोर एवं मजबूत होता है । इस वृक्ष की त्वचा पर क्षत करने पर शिलारस प्राप्त होता है। नयां शिलारस मधु के समान गांठे, अर्धघन स्वरुप का, जल से भारी, अपारदर्शक तथा खाकी भूरे रंग का होता है । सुगन्धित गाढे भूरे रंग के रैजिन को बन्द थैलियों में रख दिया जाता है ।

पुष्पकाल..........................मार्च, अप्रैल,
प्रयोज्यअंग........................गोंद, निर्यात

प्राप्ति स्थान :—

यह दक्षिण पश्चिम टर्की का आदिवासी वृक्ष है । इसकी देशी किस्म के वृक्ष पूर्वी बंगाल, आसाम, भूटान में भी पाये जाते हैं । इसके अलावा यह ब्रह्मा, चीन, मलाया, जावा आदि देशों में पाया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (3)

गुण–स्निग्ध, लघु, रस–तिक्त, कटु, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–कफवात शामक, पूतिहर, जन्तुघ्न, व्रणरोपण, कुष्ठघ्न, वेदनास्थापन उत्तेजक, श्लेष्महर कान्तिकर एवं सुगन्धित है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिकप्रयोग :—

शिलारस का प्रयोग अश्मरी, मूत्राघात, श्वास, ज्वर एवं स्वेदाधिक्य में किया जाता है । जीर्ण कफ रोग एवं क्षय में शिलारस को मधु के साथ मिलाकर देते हैं । जीर्णपूयमेह (सुजाक) में मुलेठी के साथ शिलारस देते हैं । कण्डू आदि त्वचा के विकार में तिलतैल के साथ सेवन करते हैं । अण्डवृद्धि में शिलारस को धतूरे के पत्ते में लगाकर बांधते हैं ।

रासायनिकसंगठन :—

इसमें एक उड़नशील तैल, सिन्नेमिक एसिड, बेंजोइक एसिड, राल प्रभृति द्रब्य, स्टाइरोल आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोगः– पञ्चगुणतैल, बलातैल ।

हरीतक्यादिवर्ग COMBRETACEAE

वर्गलक्षण : —

इस वर्ग के लगभग 16 कुटुम्बों में 480 प्रकार की वनस्पत्तियाँ पाई जाती हैं । इस वर्ग में बड़े वृक्ष एवं गुल्म पाये जाते हैं । पर्ण–प्रायः अभिमुख, या एकान्तर, 3–4 पत्रों के चक्र में एवं सादे । पुष्प मञ्जरी के रुप में, पुष्पवाह्यकोष के दल नीचे से जुड़े हुये गर्भाशय के साथ संलग्न, पुष्पाभ्यन्तर कोष की पंखुड़ियाँ 4–5 अथवा बिल्कुल होती भी नहीं है स्त्रीकेशर गर्भाशय के अधः–स्थायी एवं एक खाने वाले होते हैं । फल–प्रायः फांक सद्दश धारवाले, बैंगन की आकृति में एक बीज वाले होते हैं । इस वर्ग के त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला) अर्जुन, असन, धव आदि मुख्य वृक्ष पाये जाते हैं ।

153 हरीतकी (हरड़)

द्रव्यनाम....... संस्कृत ....हरीतकी, पथ्या, अभया, शिवा ।
हिन्दी ....हरड़, हर्रे ।
लैटिन ....Terminalia chebula Retg

गुण :— (1):– चरक के अर्शोघ्न, कुष्ठघ्न, कासहर, ज्वरहर, प्रजास्थापन एवं वयःस्थापन महाकषायों में उल्लेख है । सुश्रुत ने परुषकादि एवं आमलक्यादि गण में हरीतकी का उल्लेख किया है ।

निरुक्ति :–(2)

अभया :— न भयं अस्या इति" आर्थात् इसके सेवन से किसी प्रकार का भय नहीं रहता है । इसीकारण इसे अव्यथा भी कहते हैं यह रोगी के व्यथा को दूर करने में समर्थ है

पथ्या :— पथ्योनपेता इति" इसका सेवन स्वास्थ्य के लिए हितकर है ।

हरीतकी :— हरतिरोगानू इति" यह रंग में हरितवर्ण की होतीं है एवं सभी रोगों का हरण करती है इसलिये इसे हरीतकी कहते हैं।

शिवा :— शिवं करोत्ति" इसका सेवन करने से पूर्ण कल्याण होता हैं अतः इसे श्रेयकर होने से श्रेयस भी कहते हैं ।

स्वरुप परिचय–

वृक्ष ऊँचा प्रकाण्ड लम्बा, अनेक शाखों वाला, पर्ण– 2 से 3" लम्बे, मसृण, हरित, अभिमुख क्रम में स्थित, सवृन्त, वासा पत्र सद्दश होते हैं । पुष्प–पीताभ–मञ्जरी में खिलते हैं । फल 2" से 3" तक लम्बा, कठोर, धारीदार एक गुठली वाला होता है । इस जाति में कई प्रकार वनस्पति शास्त्र के आधार पर होती हैं ।

पुष्पकाल........................अप्रैल, मई,
फलकाल...................... जुलाई, अगस्त

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोज्यअंग..................... फल, इसके फल साधारणतया तीन रूपों में प्राप्त होते हैं, **पक्वफल**–(वड़ीहरड़) या इसे अमृतसरी हरड़ भी कहते हैं । **अर्धपक्वहरड़** (2 पीलीहरड) भी कहते हैं । इसका रंग भूरा, पीला लम्बाई में लगभग 1" एवं धारीदार होता है । **अपक्वहरड़**– इसे छोटी हरड़ या जंगीहरड़ कहते हैं । इसका रंग भूरा, काला आकर में छोटा, एवं एक सिरे पर वृन्तक के चिन्ह दिखाई देते हैं । छोटी हरड़ प्रायः गन्धहीन एवं स्वाद में कषाय–तिक्त होती है ।

प्रप्ति स्थान :–

यह भारत के हिमालय की निचली घाटियों से लेकर उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, हिमाचल, महाराष्ट्र आदि सभी राज्यों में सुलभ है ।

दोषआधिष्ठान भेदेनकर्मज्ञान 3

गुण–लघु, रूक्ष–लवण रस को छोड़ कर शेष सभी पांचोरस मिलते हैं। विपाक मधुर, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–त्रिदोषहर, कर्म–दीपन, पाचन, मृदुरेचन, रसायन, मेध्य ।

आमयिकप्रयोग :

1 अर्श में भोजन से पूर्व नियमित रुप से हरीतकी चूर्ण का सेवन गुड़ के साथ करना चाहिये । अतिसार एवं उदररोग में हरीतकी उपयोगी मानी जाती है । मन्दाग्नि, अजीर्ण, रक्तपित्त, कामला, तमकश्वास, गुल्म, हिक्का, आमाजीर्ण आदि कतिपय रोगों में हरीतकी का प्रयोग उपादेय है ।

सभी किस्मों के नेत्र रोगों में यह उपयोगी है अजीर्ण में भोजन से पूर्व हरीतकी एवं शुष्ठी का चूर्ण लाभ करता है । त्रिफलाचूर्ण चक्षुष्य, रसायन, रेचक, पाचक है ।

रासायनिकसंगठन

फलों में टैनिक एसिड, गैलिकएसिड एवं राल आदि तत्व पाये जाते हैं ।

प्रकारभेद :– निघण्टुग्रन्थों में गुण एवं आकर भेद से हरीतकी के सात किस्मों का वर्णन वर्णित है ।

1. जीवन्ती, 2. पूतना, 3. अमृता, 4. विजया, 5. अभया, 6. रोहिणी, 7. चेतकी

मुख्ययोग – हरीतक्यादिचूर्ण, हरीतक्यादिक्वाथ, हरीतकीअवलेह, अभयादिमोदक, अगस्त्यहरीतकी, अभयारिष्ठ, शिवाक्षारपाचन चूर्ण, त्रिफलाचूर्ण, त्रिफलाघृत, त्रिफलातैल, त्रिफलाक्वाथ । आरोग्यवर्धनी, चन्द्रप्रभावटी, योगराजगुग्गुलू, चित्रकहरीतकी, त्रिफलागुग्गुलू, रक्तशोधकवटी ।

154 बिभीतक (वहेड़ा)

द्रव्यनाम....... संस्कृत ....बिभीतक, अक्ष, कर्षफल।
हिन्दी ....बहेड़ा ।
लैटिन ....**Terminalia belerica** Roxb.

गण — 1 चरक के विरेचनोपग एवं ज्वरहर महाकाषाय में तथा सुश्रुत के मुस्तादिगण में त्रिफला का उल्लेख है ।

निरुक्ति :

बिभीतक :— विगतं भीतं रोगभय मस्मात् इति" इससे रोगों का भय दूर होता है अर्थात त्रिफला में बहेड़ा होने से सभी रोगों में उपयोगी है ।

अक्ष :— अक्षति इति, अक्षव्यापौ धातु से अक्ष शब्द बना है । अर्थात् इसका वृक्ष विशाल होता है ।

कर्षफलः– कर्षःफलमस्य अर्थात इसका फल वजन में 1 तोला होता है ।

कलिद्रुभ :— कले द्रुमः इति" अर्थात् यह कलियुग का वृक्ष कहलाता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूपपरिचय :—बहेड़े के बड़े वृक्ष होते हैं । काण्डस्कन्ध लम्बा, सीधा व्यास में 3 से 6 मीटर तक शाखायें झुकी हुई छायादार होती हैं । पर्ण–एकान्तर, रूपरेखाक्रम में महुए की वृक्षों की भांति प्रतीत होते हैं । पुष्प– छोटे–छोटे हरिताभ–पीतवर्ण के मञ्जरी में पत्रकोणोंद्मूत, नरपुष्प एवं उभयलिंगी दोनों क्रम में पाये जाते हैं । फल–लम्बा, गोल 9" तक पकने पर खाली भूरे मखमली रंग का होता है । व्यवहार में गुठली रहित फलमञ्जा का उपयोग होता है ।

पुष्पकाल..........................अप्रैल, मई ।
फलकाल..........................अगस्त, सितम्बर ।
प्रयोज्यअंग..........................फलमञ्जा ।

प्राप्ति स्थानः– यह हिमालय की उष्णघाटियों से लेकर भारत के उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ है ।

दोषअधिष्ठानभेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण, रुक्ष, लघु, रस–कषाय, विपाक मधुर, वीर्य–उष्ण प्रधानकर्म–फल श्वास, कास एवं स्वरभेदनाशक चक्षुष्य त्वग्रोगनाशक दीपन, पाचन, अनुलोमन् संग्राही, मेध्य ।

आमयिकप्रयोग :—

श्वासकास पर बिभीतक चूर्ण मधु के साथ खाने से लाभ होता है । शोथपर बहेड़े के मींग का लेप करने से लाभ होता है । यह गुल्म, उदावर्त, शोष, पाण्डुरोग, अर्श, ग्रहणीरोग, प्रमेह, उदररोग, कृमी, श्वयथु अरुचेः आदि में उपयोगी है । यह व्रणरोपण एवं वयः स्थापन में भी उपयोगी है । इसके सेवन से भूख लगती, अन्न पचता है और दस्त साफ होता है ।

रासायनिकसंगठनः– इसके फल में टैनिन पाया जाता है तथा स्थिरतैल एवं कुछ अंश में सैपोनिन आदि तत्व पाये जाते हैं

मुख्ययोग –त्रिफलाचूर्ण, विभीतक तैल, फलात्रिकादिक्वाथ लवंगादिवटी कासवटी, चन्द्रप्रभावटी, गन्धकरसायन, आरोग्यवर्धनी, रक्तशोधकवटी ।

155 अर्जुन (कोह)

द्रव्यनाम....... संस्कृत ....अर्जुन, पार्थ, ककुभ।
हिन्दी ....अर्जुन, कोह ।
लैटिन ....**Terminalia arjuna** W & A .

गण – (1) चरक के उदर्दप्रशमन महाकषाय, कषायस्कन्ध एवं सुश्रुत के सालसारादिगण, और न्यग्रोधादिगण में अर्जुन का उल्लेख है ।

निरुक्तिः

अर्जुनः— अर्जति इति" अर्ज् अर्जने" अर्थात् इसका काण्ड लालिमा किये हुये सफेद रंग का होता है ।
ककुभः— ककुभः सन्त्यस्य, दिग्व्यापकत्वात् ककुभः" अर्थात् इसके वृक्ष की शाखायें चारों तरफ को फैलाती हैं।
नदीसर्जः— नदी के तटों पर होने वाला वृक्ष विशेष है । इसे वीरतरू भी कहते हैं ।

स्वरूपपरिचयः

अर्जुन के पर्णपाती विशाल वृक्ष होते हैं । छाल बाहर से श्वेताभ अन्दर से गुलाबी रंग की चिकनी मोटी होती है। शाखायें चारों तरफ को परिसृत एवं झुकी हुई, पर्ण–अभिमुख, रुपरेखा में दीर्घवत्, आयताकार या अण्डाकार,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुण्ठिताग्र, नुकीली एवं चर्मिल । पर्णवृन्त छोटा, दो ग्रन्थियों से युक्त। पुष्प–पीताभ वर्ण के शाखाग्रों पर खड़ी पुष्पगुच्छमय, मञ्जरियों में खिलते हैं । फल–देखने में कमरख की तरह 5–9– पंख सदृश उभारों में लम्बे कठोर होते हैं ।

पुष्पकाल................................अप्रैल, मई ।
फलकाल.............................शीतकाल ।
प्रयोज्यअंग ....छाल.

प्राप्ति स्थानः– समस्त भारत के हिमालय की तराई में विशेषतः बुन्देलखण्ड, मध्यप्रदेश, छोटानागपुर, बम्बई, मद्रास के जंगलों में इसके वृक्ष सवयं जात पाये जाते हैं

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–कषाय, विपाककटु, वीर्य–शीत, प्रभाव–हृद्य, कर्म–रक्तस्तम्भक, हृद्य, रक्तपित्तशामक, प्रमेहनाशक,

आमयिकप्रयोगः

अर्जुन की छाल क्षीरपाक विधि से हृदयरोग में देने से विशेष लाभ होता है । इससे रक्तवाहिनियों का संकोचन होता है । रक्तवाहिनियों का संकोचन होने से रक्तभिसरण का दबाव बढ़ता है । हृदय की पोषण क्रिया अच्छी होती है । हृदय को बल मिलता है । रक्त–पित्त एवं जीर्णज्वर में रक्त के दूषित होने पर अर्जुन छाल का प्रयोग कराते हैं । इससे रक्तस्त्राव बन्द होता है । अर्जुन हृदयोत्तेजक, हृदयवल्य, रक्तसंग्रहिक शोणितस्थापन, शोथघ्न, संघानकर एंव व्ररोपण करने वाला है । यह ग्रहणी कुष्ठ, अर्श, मूत्रघात, शुष्ककास आदि रोगों में भी लाभ करता है ।

रासायनिक संगठनः— छाल में अजुनिन, नामक रंगहीन क्रिस्टलाईन तत्व अर्जुनेटिन, लेक्टोन, टैनिन, एक उत्पन्लतैल मैग्नीशियम साल्ट, आर्गेनिकएसिड, एवं रंजकतत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोगः– अर्जुनारिष्ठ, अर्जुनघृत, ककुभादिं चूर्ण, सारिवादिवटी, अर्जुनक्षीरपाक, पुष्यानुकचूर्ण, अश्वगन्धारिष्ठ, प्रभाकरवटी ।

वक्तव्यः– डल्हण के कुछ स्थलों पर कुकम एवं अर्जुन का अलग–अलग उल्लेख किया है तथा ककुभ को सुगन्धमूल वृक्ष विशेष माना है । आर्तगल से अर्जुन को संदिग्ध बना दिया है । परन्तु परीक्षणों के आधार पर शास्त्रीय अर्जुन Terminalia arjuna है।

156 असन

द्रव्यनाम.............. संस्कृत ....असन,।
हिन्दी ....असना ।
लैटिन ....**Terminalia tomentosa** W. of A..

स्वरुपरिचयः– असन का वृक्ष विशाल, पर्णपाती, बहुशाखीकीय होते हैं । पर्ण–क्रमानुसार, दीर्घवृताकार, दीर्घायत, अघोमुख अण्डाकार, सवृन्त, पत्राग्र–कुण्ठिताग्र होता है । पुष्प उभयलिङ्ग पीताभ वर्ण के, अवृत्त पत्रकोणोद्भूत, मञ्जरीसदृश होते हैं । फल पांच धारियों में, पंखसदृश या उभारों में कठोरबीज वाला होता है ।

पुष्पकाल...............................अप्रैल, मई ।
फलकाल..............................शीतकाल ।
प्रयोज्यअंग..............................छाल, काष्ठ ।

प्राप्ति स्थानः– भारत में शिवालिक वनखण्ड से लेकर उष्ण प्रदेशों के वनों में इसके वृक्ष स्वयंजात सर्वत्र पाये जाते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य :

संहिताग्रन्थों के टीकाओं की संदिग्धता के कारण कुछ विद्वान बीजक एवं असन को भिन्न–भिन्न द्रब्य स्वीकार करते हैं । आधुनिक शोध एवं परीक्षणों से पता चलता है कि बीजक (विजय सार) का ही पर्याय असन है । इसलिये असन एवं बीजक भिन्न–भिन्न द्रब्य नहीं हैं । सम्भवतः असन (शालभेद) या सर्ज का भेद हो सकता है । इस वृक्ष का असन, असना लोक प्रचलित नाम होने से भी असन, एवं बीजक दोनों को लोग भिन्न–भिन्न द्रव्य स्वीकार करने लगे हैं । बम्बई प्रान्त के वैद्य व्राडीलिया रैदूसा को असन स्वीकार करते हैं । लेखक के विचार से संहिताओं के मुलसन्दर्भ स्थलों पर सभी गम्भीरता से विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि बीजक का ही पर्याय असन है । गुणधर्म देखिये बीजक में ।

157 धव (धौ)

द्रव्यनाम............... संस्कृत ....धव, शकटाह्यय।
हिन्दी ....धौ।
लैटिन ....**Anogeissus latifolia.** wall

गणः– चरक ने विमानस्थान अध्याय 8 में कषायस्कन्ध उष्णों में इसकी गणना की है । सुश्रुत ने सालसारादिगण एवं मुस्कादिगण में धव का उल्लेख किया है ।

निरुक्ति : (2)
धवः– धवति पांण्डु धूपते वा प्रमे हादि" अनेन इति अर्थात् यह पाण्डुरोग एवं प्रमेह को दूर करता है।

शकटाख्य :– धवकाष्ट का उपयोग गाड़ी के पहियों की धुरी बनाने के लिये श्रेष्ठ माना गया है ।

स्वरूपपरिचय :–
धव के विशाल पर्णपाली वृक्ष होते हैं । काण्ड त्वक् फीके सफेद रंग के होते है । पर्ण–क्रमानुसार एवं कभी–कभी विपरीत क्रम में, दीर्घवृताकार, दीर्घायत, भालाकार पत्रतट कुण्ठित, सवृन्त पुष्प–सूक्ष्म पीताभ रक्त, कुछ गोलाई लिये हुये, लम्बी नोक वाले होते हैं । फल–'चमकदार, पंखसद्दश, एक–एक बीज वाले ।

पुष्प काल..............................मई, जून,
फलकाल..............................शीतकाल,
प्रयोज्यअंग..............................छाल, काष्ठ पुष्प निर्यास

प्राप्ति स्थान :–
भारत के उष्णकटी प्रदेशों के वनों में ये वृक्ष प्रायः सभी प्रान्तों में सुलभ हैं । इसकी अन्य कई किस्में भी इसके साथ पा ई जाती हैं ।

दोषआधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान 3

रस–मधुर, कषाय, कटु, वीर्य–उष्ण, विपाक–कटु, कर्म–कफघ्न प्रमेहघ्न , दीपन। निर्यास–वल्य, विषघ्न

आमयिकप्रयोग :–
कुष्ठ, रक्तपित्त, पाण्डु, प्रमेह, अतिसार प्रवाहिका आदि में उपयोगी है । वाहय प्रयोग में शोथ एवं क्षतवणों में त्वक्क्वाथ का प्रक्षालन उपयोगी है । चरक ने कुष्ठ में खादिर एवं धव के सार का लेप उपयोगी बतलाया है विसर्प में धव की त्वचा जल में घिसकर लेप करने से लाभ होता है । व्रणरोपण हेतु सुश्रुत ने कातिपय स्थलों पर धव का उल्लेख

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

किया है । जलशोधक द्रव्यों के साथ धव का वर्णन संहिताओं में मिलता है । नेत्ररोगों में धव के पुष्पों का अञ्जन किया जाता है ।

लवङ्गादिवर्ग MYRTACEAE

वर्गलक्षण :-

इस वर्ग में लगभग 200 किस्मों की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। इस वर्ग में वृक्ष, वृक्षक एवं क्षुप भी पाये जाते हैं । इनके पर्ण प्रायः अभिमुख क्वचित् एकान्तर, सादे अखण्डित किनारे वाले एवं पत्रसवृन्त होते हैं । पर्ण-सुगन्धित, तैलबिन्दु वाले । पुष्पबाह्य कोष के पत्र मिलकर नालिकाकार बन जाते हैं । पुष्पों की पंखुड़ियाँ 4-5 में, परागकोष छोटे तथा 2 रध्रवाले होते हैं । फल-विकासी या अविकासी होते हैं । बीज-कोण या धारवाले गोल या बैठे हुये होते हैं । इस वर्ग के द्रव्य सुगन्धित, दीपन-पाचन, स्वेदजनन, पौष्टिक एवं तैल जन्तुघ्न होता है ।

158 लवंग (लौंग)

द्रव्यनामः- संस्कृत	....	लवंग, देवकुसुम, वारिसम्भव ।
हिन्दी	....	लौंग ।
लैटिन	....	**Syzygium aroumaticum** (L.) Merr Syn. **Caryophyllum aromaticus** L.

गण :- चरक ने सूत्र अध्याय 5 में लौंग को मुखशुद्धिकर एवं रुचिकर माना है । सुश्रुत ने मुखशुद्धिकर एवं दुर्गन्धिनाशक माना हैं। महाकषायों एवं गुणों में उल्लेख नहीं है ।

निरूक्तिः-

लवङ्गः- लुनाति छिन्नाति कफं अर्थात् यह कफ एवं पित्त नाशक है ।
देवकुसुम :- देवानां कुसुमं यद्धा कुसुमेषु दे इव" अर्थात् यह देवों का प्रिय पुष्प माना जाता है ।
वारिसम्भवः- अर्थात् जलीय प्रदेशों (द्वीपों) में पैदा होने वाला द्रव्य विशेष होने से वारिसम्भव कहते हैं । कालिदास ने भी अपने काव्यों में द्वीपसमूहों से लाये गये लवङ्ग पुष्पों का उल्लेख किया है।

स्वरूप परिचयः-

लौंग के मध्यम आकार के सदा हरित वृक्ष पाये जाते हैं। पत्र सुगन्धित, शाखायें सघन, झुकी हुई, छायादार होती हैं । पर्ण-सवृन्त्त, अभिमुखक्रम में 10 से. मी. लम्बे 5 से. मी. तक चौड़े, लट्वाकार, आयताकार सरलधार युक्त चमकीले हरितवर्ण के (7) पर्ण-मसलने पर सुगन्धित । पुष्प-हलके छोटे बैंगनी रंग के अन्यन्त सुगन्धित शाखाग्रों में सगुच्छ मञ्जरियों में खिलते हैं । कलिकाये लालिमा लिये हुये नालिकाकार । कलिकाओं को संग्रह कर अलग किया जाता है एवं वृन्त अलग इसी वृन्त को लौंग कहते हैं । अविकसित शुष्क कलिकायें बिना तैल निकाली हुई श्रेष्ठ होती हैं । बाजारों में तैल निकाली हुई लौंग मिलती हैं ।

पुष्पकाल................................वर्षाकाल के बाद ।
फलकाल................................शीत काल ।
प्रयोज्यअंग..............................अविकासित कलि कायें, तैल ।

प्राप्ति स्थान :-

लवंग मलक्का द्वीप पुञ्ज का आदिवासी पौधा है । यह सुमात्रा, मलाया, जांजिवार, जावा, बोर्नियो आदि देशों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है । लंका तथा मौरीशस एवं दक्षिण भारत के प्रान्तों के द्विप समूहों में निरुनलवेल्ली, भदुराई, नीलगिरि में भी उत्पन्न होता है। भारत में इसका आयात विशेष रूप से जंजिवार के टापुओं से होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषआधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, कटु, वीर्य–शीत, प्रभाव–शीत, प्रधानकर्म–कफपित्तहर, अल्पमात्रा में लालाप्रसेक जनन, दीपन, यकृदुत्तेजक, कफ निस्सारक, शूलप्रशमन, मूत्रजनन, आमपाचन, ज्वरघ्न, वाजीकर।

आमयिकप्रयोग :

लोंग वमन, अफारा, हैजा, छर्दि, शूल, कास, श्वास, दन्तशूल, दन्तकृमि, शिरोवेदना, सन्धिवातशूल, गलशोथ आदि में रोगों में उपयोगी है ।

रसायनिकसंगठन :

लौगें में 15 से 20% उत्पन्न तैल पाया जाता है । इसके अतिरिक्त यूजिनोल, टैनिक एसिड, केरियोफइलीन, फइटोस्टेरोल आदि तन्तुमय अंश भी पाया जाता है ।

मुख्य योग –

लवंगादिवटी, लवंगादिचूर्ण, अविपत्तिकरचूर्ण, द्राक्षासव, दशमूलारिष्ठ, कासवटी, सुपरीपाक, खदिरारिष्ठ, द्राक्षासव, वव्वूलारिष्ठ ।

159 जम्बू (जामुन)

द्रव्यनाम........... संस्कृत ....जम्बु, नादेयी, भूमिजब्मूका ।
हिन्दी ....जामुन, कालाजामुन ।
लैटिन ....**Syzygium cumini** (L.) Skeles.

गण (1)

चरक – छर्दिनिग्रहण, पुरीषविरजनीय, मूत्रसंग्रहणीय, महाकषाय एवं सुश्रुत के न्यग्रोधदिगण में जामुन का उल्लेख है ।

निरुक्ति :

जम्बूः– जम्यते भक्ष्ते सर्वे अस्याफलं इति " जमू अदने " इस फल को स्वादिष्ट एवं खाने योग्य होने से जम्बू कहते हैं ।

नादेयी – नदी जाता " यह नदी के तट पर होता है ।

भूमिजम्बुकाः– भूमौजम्यते अद्यते इति " अर्थात् इसके छोटे किस्म के भी वृक्ष पाये जाते हैं ।

स्वरूप परिचय :–

जामुन के सदाहरित उँचे वृक्ष पाये जाते हैं । 3 से 6" तक लम्बे $2\frac{1}{2}$" तक चौड़े, लट्वाकार, आयताकार भालाकार, लम्बाग्र बनावट में चर्मिल, सवृन्त, पत्तियों को मसलने पर कुछ सुगन्ध आती है । पुष्प–छोटे, सुगन्धित, हरिताभ श्वेतवर्ण के गुच्छों में खिलते हैं फल –लम्बगोल पूर्ण पकने पर काले रंग के होते हैं । इसका रसदार गूदा खाया जाता है । गुठली संख्या में एक होती हे । इसकी छोटी किस्म भी पाई जाती है जिसे क्षुद्रजम्बू कहते हैं ।

पुष्पकाल....................................अप्रैल, मई ।
फलकाल..................................जून, जुलाई ।
प्रयोज्य अंग..................................छाल, गुठली, फलरस, फल,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थानः–

जामुन के वृक्ष भारत के सभी उष्ण प्रदेशों में स्वयंजात एवं लगाये हुये पाये जाते हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–कषाय, मधुर अम्ल, वीपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–कफ–पित्त शामक किन्तु वायुवर्धक । दीपन, पाचन, मूत्रल यकृदुत्तेजक, कोमलपत्र–छर्दिनिग्रहण, रक्तपित्तशामक, गुठली चूर्ण–मधुमेहनाशक अश्मरीनाशक, रक्तप्रदर एवं रक्तातिसारशामक, छाल–स्तम्भन ।

आमयिकप्रयोगः–

मधुमेह में यकृत की क्रिया बिगड़ने पर इसकी गुठली के प्रयोग से यकृत की क्रिया सुधरती है । इसका विशेष उपयोग शर्करा के पाचन में होता है । फलों का आसव एवं सिरका उदररोगों में उपयोगी है । विशेषकर अतिसार, संग्रहणी, आंव में दिया जाता है । इसके अतिरिक्त यह प्रदर, पाण्डुरोग, रक्तपित्त, आदि व्याधियों में भी उपयोगी हैं ।

रासायनिक संगठनः–

बीज में जम्बुलीन नामक ग्लुकोसाइड अल्प मात्रा में उड़नशील तैल, गैलिक एसिड, क्लोरोफिल, वसा एलब्युमिन आदि तत्व पाये जाते हैं । जामुन की गुठली की मधुमेह नाशक क्रिया ग्लुकोसाइड के कारण होती है । छाल में टैनीन पाया जाता है ।

मुख्ययोगः–

मधुमेहारियोग, उशीरासव, जम्बुफलासव, पुष्यानुक चूर्ण, चन्दनादिचूर्ण, न्यग्रोधादिचूर्ण ।

वक्तव्यः–

निघण्टुकरों में फल की आकृति के अनुसार राजजम्बु (बड़ा जामुन) काकजम्बू (छोटा जामुन) एंव भूमिजम्बू तीन भेद माने हैं । डल्हण आदि टीकाकारों ने जम्बूद्वय का उल्लेख किया है । चरक ने जामुन वातल माना है यही कारण है कि जामुन का सेवन भोजनोपरान्त करना चाहिये । पक्व फल अश्मरीनाशक है । न्यग्रोधादिचूर्ण मूत्र विकार में उपयोगी हैं ।

160 हिन्जल (समुद्रफल)

द्रव्यनाम...............	संस्कृत	................................हिन्जल, समुद्रफल, निचुल ।
	हिन्दी	................................समुद्रफल ।
	लैटिन	................................**Barringtonia acutaniguola** (L) Gaeutn.

गण (1)

चरक ने वमनोपगा महाकषाय में निचुल एवं सुश्रुत ने उर्ध्वभागहर गण में हिन्जल की गणना की है ।

निरुक्तिः–

हिन्जलः– हि गतौ "वृद्धौ च " हित् जलमस्य " अर्थात् यह जलयुक्त प्रदेश में आसानी से बढ़ता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समुद्रीफलः– समुद्री कोंकण तटों पर इसके वृक्ष पाये जाते हैं ।

निचुलः– चुल समुच्छ्राये" अर्थात् इसका वृक्ष काफी ऊँचा होता है ।

स्वरुप परिचयः– हिञ्जल के मध्यम ऊँचाई के सदाहरित वृक्ष होते हैं । पर्ण– सामान्यतः 5 से 6" तक लम्बे 2 से 3 " तक चौड़े, लम्बगोल, अभिलट्वाकार, पत्रतट–सूक्ष्मदन्तुर, आरावत् । पुष्प–रक्ताभ वर्ण के, मञ्जरी में, सवृन्तकाण्डज एवं नीचे को लटके हुये होते हैं । फल–लम्बगोल, चतुष्कोणाकार, एक बीज वाला होता हे ।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त ।
फलकाल ....शीतकाल ।
प्रयोज्य अंग ....बीज, मूल, पत्र ।
मात्रा ....फलचूर्ण–3 से 6 माशा

प्राप्तिस्थानः– इसके वृक्ष प्रायः उद्यानों में लगाये हुये सर्वत्र मिलते हैं । बिहार, उड़ीसा, बंगाल एवं दक्षिण भारत के जलीय प्रदेशों में इसके स्वयंजात वृक्ष पाये जाते हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, रिक्त, मधुर ; फल–कटु, वीर्य–उष्ण। प्रभाव–वमन, प्रधानकर्म, बामक, रेचक, कफनिस्सारक, कफ पित्तसंशोधक, शिरोविरेचन, ज्वरघ्न, कामलानाशक

आमयिकप्रयोगः–

कास, श्वास में इसके बीज चूर्ण का प्रयोग करने से वमन होने से कफ निकल जाता है एवं रोग की शान्ति होती है । आमातिसार में पत्रस्वरस को मधु मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है । शीत से बच्चों की पसलियाँ चलने पर इसके फल का लेप किया जाता है । बच्चों के पेट में आध्मान होने पर बीज चूर्ण को 1 माशा तक की मात्रा में देने से लाभ होता है । श्वास में भी यह उपयोगी है । फल चुर्ण को पानी में डालकर खूब हिलाने से झाग आता है।

रासायनिक संगठनः– इसमें सैपोनिन की भांति एक तत्व बैरिङ्गरोनिन पाया जाता है । इसमें स्टार्च, वसा, क्षार, लवण आदि तत्व पाये जाते हैं ।

वक्तव्यः– चरक में समुद्रफल का उल्लेख निचुल के नाम से मिलता है, एवं सुश्रुत में हिञ्जल के नाम से उल्लेख है । टीकाकारों ने निचुल शब्द से जलवेतस, बेतस अर्थ किया हैं ।

161 तैलपर्णि (नीलगिरि)

द्रव्यनाम............... संस्कृत....................तैलपर्णि, नीलगिरि ।
हिन्दी.................... तिक्तपटस, नीलगिरि ।
लैटिन.................. **Eucalyptus globulus** Labier

स्वरुप परिचयः–

युकेलिप्टस के ऊँचे–ऊँचे वृक्ष होते हैं । काण्ड सकन्ध लम्बा, मसृण एवं सीधा होता है । पर्ण–रुपरेखा में होंसिया सद्दश, सवृन्त नीलाम हरित वर्ण के मसलने पर पत्र सुगन्धित तैलग्रन्थी वाले होते हैं इसी कारण इसे तैल पर्णि' कहते हैं । पुष्प–गुच्छों में श्वेताभ वर्ण के पत्रकोणों-दमूत होते हैं । फल–गुच्छों में कोषयुक्त एवं अनेकः बारीक बीज वाले होते हैं । इसकी कई किस्में होती हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल..................................जुलाई, अगस्त ।
फलकाल..................................जनवरी, मार्च ।
प्रयोज्य अंग..................................पत्र नीलगिरि तैल।

प्राप्तिस्थानः– यह आस्ट्रेलिया का आदिवासी वृक्ष हैं । भारत मे सर्वत्र इसके वृक्ष रोपित किये मिलते हैं । सुन्दरता के लिये भी सड़कों के किनारे में वृक्ष लगाये हुये पाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः–

गुण– लघु, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफवात शामक जीवाणुवृद्धिरोधक, जीवाणुनाशक, कफघ्न, मूत्रजनन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, पार्श्वशूलघ्न, संधिशोथ आदि में सर्षप तैल के साथ मिलाकर लगाने से लाभ होता है । प्रतिश्याय, जीर्णकास एवं दुर्गन्धित कफ में रुमालपर तैल छिड़क कर सुंघते हैं । प्रसूति के बाद योनिमार्ग से होने वाले स्त्राव की गन्ध को दूर करने के लिये इसकी वर्ती का उपयोग किया जाता है ।

धातक्यादिवर्ग LYTHRACEAE

वर्गलक्षणः–इस वर्ग में वृक्ष, वृक्षक एवं शाकीय वनस्पतियाँ पायी जाती है। इनकी शाखायें कोमल एवं प्रायः चौधारी होती है। पर्ण–अभिमुख गुच्छों में या चक्ररुप में, पुष्प–एकाकी या विभाजित रचना में संगठित होते हैं। पुष्प वाह्यकोष अथवा विभाजित रचना में संगठित होते हैं। पुंकेशर प्रायः 4 से 8 दतक पंखुड़िया नीचे को आयी हुई, तन्तुसूत्र लम्बाई में छोटे बड़े होते हैं। स्त्री केशर की नलिका लम्बी, नलिकाग्र मुख में और दो भागों में विभक्त होता है। फल में 2 से 6 तक कोष्ठ होते हैं। बीज–गोल या कोणयुक्त धारयुक्त एवं पक्षयुक्त होते हैं। इस वर्ग के द्रव्य ग्राही, प्रवाहिका एवं अतिसार में उपयोगी है। इसके अतिरिक्त कुछ द्रव्य दाहक गुणों वाले होते हैं।

162 धातकी (धाय)

द्रव्यनाम........... संस्कृत..................धातकी, ताम्रपुष्पी, मदकरा
हिन्दी..................धाय, धातकी ।
लैटिन..................Woodfordia Fruticosa Kurz

गण– (1) चरक सन्धानीय, पुरीष संग्रहणीय, मूत्रविरजनीय–महाकषाय में तथा सुश्रुत के प्रियङगवादि एवं अम्वष्ठादि गण में धातकी का उल्लेख है ।

निरुक्तिः– **धातकीः**–धातु शरीरं पुष्ठिं करोति इति" अर्थात् यह शरीर का धारण पोषण करता हे।

अग्निज्वालाः–अग्ने ज्वालेव" इसके पुष्प अग्नि सदृश रक्त वर्ण के होते हैं ।

मदकराः–पुष्पों में किण्वीकरण (फर्मेन्टेशन) की प्रक्रिया होती है इसी कारण इसे मदकरा कहते हैं।

स्वरुप परिचयः–इसके झाड़ीनुमा गुल्मक होते हैं। शाखायें लम्बी फैली हुई होती हैं । पर्ण–अभिमुख, कभी 2 3 के चक्रों में स्थित होते हैं। रुपरेखा में यह भालाकार, या लट्वाकार–भालाकार आधार गोल या हृदयाकार पत्राग्र नुकीला एवं सरलधार वाले होते हैं। पुष्प–चमकीले लालरंग के, पत्रकोणोद्भूत गुच्छों में निकलते हैं। फल–अण्डाकार एवं वाह्य कोष नलिका के अन्दर छिपा होता है ।

पुष्पकाल..................अप्रैल, मई,
फलकाल................पुष्पकाल के वाद ।
प्रयोज्य अंग...............पुष्प. मूल ।
मात्रा....................पुष्पचूर्ण 1 से 3 माशा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थानः–भारत में यह हिमालय की निचली घाटियों से लेकर मैदानी भागों में यह स्वयंजात सर्वत्र पाया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–लघु , रुक्ष, रस–कषाय, कटु, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–कफ पित्त शामक, दाहप्रशमन. ज्वरघ्न, शीतग्राही, दीपन, पाचन, हृघ ।

आमयिक प्रयोगः– अत्यर्त्तव अतिसार एवं पुरानी आव में पुष्प उपयोगी माने जाते हैं। वह शूल, आध्मान, अजीर्ण, कृमि, गुल्म एवं उदररोग में उपयोगी है। श्वेतप्रदर में 1 तोला धातकी पुष्पचूर्ण तण्डुलोदक के साथ देने से लाभ होता है। ज्वरातिसार में शुष्ठी एवं दाडिम के साथ देते हैं।

रासायनिक संगठनः–पुष्पों में लगभ्ग 20% टैनिक एसिड होता है ।

मुख्ययोगः–धातक्यादिक्वाथ, धातकी चूर्ण, पुष्यानुकचूर्ण दशमूलारिष्ठ, अश्वगन्धारिष्ठ, द्राक्षासव, अर्जुनारिष्ठ, अशोकारिष्ठ ।

163 मदयन्तिका (मेंहदी)

द्रव्यनाम....... संस्कृत..................मदयन्तिका, रागांगी ।
हिन्दी..................मेहन्दी ।
लैटिन..................Laswonia Inermis Linn

गण (1) –सुश्रुत ने महानीलधृत योग में एवं अष्ठाङ्गहृदय के रक्तपित्त चिकित्सा में मदयन्तिका का उल्लेख है।

निरुक्तिः– मदयन्तिकाः–मेंहदी इति लोके यस्या पिष्ठैः पत्रैर्नखानांरागं स्त्रिय उत्पादयन्ति" स्त्रियाँ इसके पत्रों का लेप नख एवं हस्ततल पर रंगने हेतु करती हे। पुष्पों में मदकारी सुगन्धी होने से मदयन्तिका कहते हैं।

स्वरूपपरिचयः– मेंहदी के झाड़ीदार गुल्म पाये जाते हैं। शाखायें कण्टमय नुकीली होती हैं। पर्ण–अमिमुख क्रम में, लम्बे, सनायपत्र सद्यश, आधार एवं अग्र की ओर कम चौड़ी कुठिताग्र, चर्मिल एवं सरलधार वाले होते हैं। पत्तियाँ पीस कर हाथ–पांव में लाल रंग रंगने के काम में स्त्रियाँ उपयोग करती हैं। पुष्प–हरिताभ श्वेत, गुच्छों में सुगन्धित शाखाग्र खिलते हैं। फल–गोल, कई बीजों वाले होते हैं।

पुष्पकाल..................जून से सितम्बर ।
फलकाल..................पुष्पकाल के वाद ।
प्रयोज्य अंग..................पत्र, पुष्प, बीज ।

प्राप्तिस्थानः–इसके गुल्म मैदानी भागों के उद्यानों में सर्वत्र सुलभ है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–लघु, रुक्ष , रस–तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–कफ पित्त शामक, पत्र लेप के रुप में स्थानिक प्रयोग से वेदनास्थापन दाहप्रशमन, केश्य, केशरञ्जक, शोथहर, व्रणशोघन एवं रोपण का कार्य करता है। आभ्यन्तर प्रभाव में यकृदुत्तेजक, पुष्प–निद्राजनन, शोथहर एवं ज्वरघ्न । बीज–स्तम्भक, अतिसार एवं प्रवाहिका में उपयोगी है। मेहन्दी के पत्र एवं पुष्पों से तैयार किया घनसत्व कुष्ठ में उपयोगी है। पत्रस्वरस कामला में उपयोगी माना जाता है

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठनः– पत्र में रंजकद्रव्य, टैनिकएसिड एवं रालीय जैतूनी हरे रंग का एलकोहल में विलेय पदार्थ पाया जाता है। पुष्पों में सुगन्धित तैल (इत्र) पाया जाता है।

दाडिमादिवर्ग PUNICACEAE

वर्गलक्षणः– इस वर्ग में वृक्षक एवं प्रसर वल्ली किस्म की वनस्पतियाँ पाई जाती है। पर्ण–प्रायः अभिमुख एवं सगुच्छक, पुष्प–स्त्री–पुंसोपयोगी, एकाकी, सगुच्छक्रम में, पुष्प वाह्यकोष के दल रंगीन, नलिकाकार गर्भाशय के साथ संलग्न, संख्या में 5 से 9 एक दूसरे पर चढते उतरते होते हैं। परागकोष दो कोष वाले, गर्भाशय के अधोभाग में स्थित तथा अनेक कोष्ठ युक्त होते हैं। फल–रसाल अनेक बीजों वाले। इस वर्ग के द्रव्य ग्राही, दीपन एवं हृध होते हैं ।

164 दाडिम (अनार)

द्रव्यनाम.................. संस्कृत..................दाडिम लोहितपुष्पक ।
हिन्दी..................अनार. दाडिम (वीदाना अनार)
लैटिन..................Punica granatum Linn.

गण (1) – चरक के हृध, छर्दिनिग्रहण महाकषाय में तथा सुश्रुत के परुषकादिगण में दाडिम का उल्लेख है।

निरुक्तिः–दाडिम–दल्यते दाडयते वा इति दाडिमः' अर्थात् इसका फल पकने पर स्वयं फट जाता है। या इसके फलों में स्थित दाने आसानी से अलग–अलग किये जा सकते हैं।

लोहितपुष्पकः—दाडिम के पुष्प रक्तवर्ण के होते हैं।

स्वरुपपरिचयः(2) –दाडिम के पर्णपाती गुल्मनुमा वृक्ष होते हैं। पर्ण–अभिुख, विपरीतक्रम से, आयताकार, दीर्घवत्, अभिलट्वाकार या अभिप्रासवत्, कुण्ठिताग्र, भसृण पत्रतट –अखण्डित, पुष्प–एकल, रक्तवर्ण के अवृन्त। फल–गोलाकार, फलाभ्यन्तर–झिल्लीदार पर्दो द्वारा अनेक कोष्ठ में विभक्त, बीज पकने पर गुलावी लाल रंग के दन्ताकार होते हैं। अनार रस भेद से अम्ल एवं मधुर दो किस्म का होता है। मीठे अनार को वीदाना कहते हैं एवं खट्टे अनार को अनार बीज कहते हैं।

पुष्पकाल..................अप्रैल, मई ।
फलकाल..................अगस्त,. सितम्बर ।
प्रयोज्य अंग..................छाल, पुष्प, बीज, फल ।
मात्रा..................फलत्वक् 2 से 3 माशा ।

प्रप्तिस्थानः– हिमालय की उष्णघाटियों में इसके गुल्म स्वयंजात पाये जाते हैं। भारत में अनार के गुल्म उद्यानों में सर्वत्र पाये जाते हैं। कावुल एवं कन्धार का अनार उत्तम माना जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (3)

गुण—लघु, स्निग्ध, रस–मधुर, कषाय अम्ल, वीर्य–अनुष्ण, प्रधानकर्म–त्रिदोषघ्न, हृद्य वातघ्न. ग्राही, मेध्य, कफनिस्सारक, शोणित स्थापन, दीपन–पाचन, शुक्रल है। पुष्प–अतिसार एवं प्रवाहिका–नाशक, छाल–ग्राही, तिक्त, प्रवाहिकानाशक एवं कृमिघ्न है।

आमयिक प्रयोगः—मीठा दाडिम त्रिदोषनाशक और खट्टा वात एवं पित्तनाशक है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नकसीर फूटने पर दाडिम के फूल स्वरस नाक में डालने से लाभ होता है । अर्श (खूनी ववासीर) में अनार फल छिलका चूर्ण तक्र के साथ सेवन करने से लाभ होता है। अरुचि में अनार का रस सैन्धव लवण एवं मधु मिलाकर सेवन करने पर लाभ होता है । अतिसार एवं प्रवाहिका में अनारपुष्प एवं फलछिलका चूर्ण विशेष लाभ करता है। मूलत्वक् चूर्ण चपटे कृमियों (Tape Worm) मे विशेष उपयोगी है ।

रासायनिक संगठनः —फलत्वक् में 28% तक टैनिकएसिड तथा पीत रञ्जकतत्व पाया जाता है। काण्डत्वक् एवं मूल्त्वक् में एल्केलाईडस पाये जाते है जिसमें पेलीटियेरिन मुख्य है। इसके अतिरिक्त टैनिक एसिड होता है।

मुख्ययोगः-- दाडिमाष्ठक चूर्ण या दाडिमादिक्वाथ, दाडिमादिघृत, दाडिमावलेह, कासवटी, पियूषवल्लीरस, कृमिकुठाररस, मरिच्यादिवटी, विल्वादितैल, सोमराजीतैल।

श्रृंङ्गटकादिवर्ग ONAGRACEAE

वर्गलक्षणः—इस वर्ग में प्रायः शाकीय वनस्पतियाँ पाई जाती है। वृक्ष बहुत कम देखने को मिलते हैं। शाकीय पौधे विशेषरुप से जलीय पाये जाते हैं। पर्ण–सादे, अभिमुख या एकान्तर क्रम में। पुष्प–पत्रकोण से निकलते हैं। गर्भाशयअधः स्थायी होता है। विशेष रुप से इस वर्ग के द्रव्य शुक्रल, पौष्टिक एवं रुचिकर होते हैं।

165. श्रृंगाटक (सिंघाड़ा)

द्रव्यनाम........... संस्कृत..................श्रृंगाटक, जलफल ।
हिन्दी..................सिंघाड़ा ।
लैटिन..................Trapa bispinosa Roxb

गण (1)– चरक सूत्र अध्याय 29 के फलशाकों में एवं सुश्रुत सूत्र अध्याय 46 में सिघाड़ा का उल्लेख है।

निरुक्तिः–श्रंगाटक–फल त्रिकोणाकार सींग सदृश होने से इसे श्रृंगाटक कहते हैं ।

जलफलः–यह वनस्पति पानी में पैदा होने से इसे जलफल कहते हैं।

स्वरुपपरिचयः–सिंघाड़ा के पौधे तालावों में पानी पर तैरते रहते हैं। पर्ण–काण्ड के उर्ध्वभाग में एकान्तर क्रम से स्थित होती है। रुपरेखा में चतुष्कोणाकार, पत्रतट–सूक्ष्म, दन्तुर, उर्ध्वतल हरा लाल शिराओं से युक्त, अधः पृष्ठ लालिमा लिये हुये बैगनीरंग का तथा सघन रोमवृत होता है। पुष्प–श्वेत रंग के गुच्छों में पत्रकोणोद्भूत होते हैं। फल–जल में लटके हुये, चपटे, तिकोने होते हैं, फलों पर चोंचदार नुकीला उत्सेध होता है। फलकोष में बीज होता है जिसे सिंघाड़ा कहते हैं।

पुष्पकाल..................अगस्त, सितम्बर ।
फलकाल..................सितम्बर, अक्टूबर ।
प्रयोज्यअंग..................फलमज्जा (गिरी)।

प्राप्तिस्थानः–भारत के प्रायः सभी प्रान्तों के तालावों एवं जलाशयों में इसके पौधे लगाये जाते हैं। कच्चे ताजे फल खाये जाते हैं । सूखे फलों का आटा बनाया जाता है जिसे सिंघाड़ें का आटा कहते हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः(2)–गुण–रुक्ष, लघु, रस–मधुर, कषाय, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–पित्तशामक, दाहप्रशमन, वल्य, विष्ठम्भी, वृष्प प्रजास्थापन, मूत्रल ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोगः– मूत्रकृच्छ्र में सिंघाड़े का क्वाथ उपयोगी माना जाता है। स्तन्यजनन में इसका विशेष उपयोग है। इसके अतिरिक्त विसर्प, प्रमेह एवं तृष्णा आदि रोगों में इस द्रव्य का प्रयोग किया जाता है।

सिंघाड़े की आटे की रोटियाँ एवं हलवा त्यौहारों पर बनाया जाता है ।

सप्तचक्रादिवर्ग SAMYDACEAE

वर्गलक्षणः–इस वर्ग की वनस्पतियाँ वृक्ष एवं गुल्म के आकार के पर्णपाती होते हैं। पर्ण–क्रमानुसार, एकान्तर जामुन के पत्र सघश होते हैं । पुष्प–नियमित छोटे, द्विवीजपर्ण, विभक्त दल में, फल–एक गुठली वाला, कठोर, 2 से 5 तक रेखाकार या धारीदार होता है। इस वर्ग के द्रव्य प्रायः मृदुरेचक, कासहर, प्रमेहनाशक होते हैं।

166. सप्तचक्रा

द्रव्यनामः....... संस्कृत............सप्तचक्रा
हिन्दी.............सत्त्परंगी चिला ।
लैटिन.............Casearia Esculenta Roxb

स्वरुपपरिचयः–मध्यम आकार के गुल्माकृति वृक्ष होते हैं। मूल वाह्यत्वक् पीत वर्ण का काटने पर अनेकों रंग से दिखाई देते हैं। इसी कारण इसे भी सपृरंगी कहते हैं । पर्ण–एकान्तर, भालाकार दन्तुर, पुष्प–गुच्छाकार, हरिताभश्वेत, फल–दीर्घ, अण्डाकार नारंगी रंग के होते हैं। हिमालय की निचली उष्ण घाटियों एवं शिवालिक वनखण्ड में अन्य किस्में भी पाई जाती है जिसे चिला, चिल्हक (हपुषा) कहते हैं। वनस्पति शास्त्र के आधार पर इसे Casearia Tomentosa Roxb कहते हैं ।

पुष्पकाल..................मार्च, मई ।
फलकाल..................जून, जुलाई ।
प्रयोज्य अंग................मूल, फल ।

प्राप्तिस्थानः–दक्षिण भारत में सपृरंगी पाई जाती है। चिल्हक शिवालिक वनखण्ड में पाया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः–रस–तिक्त, कषाय गुण–तीक्ष्ण, रुक्ष विपाक–कटु वीर्य–उष्ण, कर्म–मकृदुत्तेजक मधुमेहनाशक, शोथहर, अर्शोघ्न, पैत्तिक विकार, रक्तविकार, प्रमेह आदि रोगों में उपयोगी है।

रसायनिक संगठनः–मूल में टैनिकएसिड, स्टार्च , रंजक द्रव्य, एवं छाल में टेनीन पाया जाता है ।

वक्तव्यः–सपृरंगी का मधुमेह पर विशेष प्रभाव देखा गया है। कुछ लोग जुनिपरस क्युमिनिस को हपुषा मानते हैं। वास्तव में शास्त्रीय आकृतिक एवं गुणधर्मों की साम्यता चिला Casearia Tomentosa में मिलती है ।

एरण्डकर्कटी वर्ग CARICACEAE

वर्गलक्षणः–इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः गुल्मक के आकार में होती है पर्ण–काफी बड़े सर्वत्र पञ्जाकृति में, पुष्प नर और मादा के अलग–अलग पाये जाते हैं। नारीजातीय पुष्प नियमित, एकाकी, एवं चमरी के आकार में खिलते है, नरपुष्पों का पुष्प बड़ा विभक्त पंखड़ियों वाला होता है। फल–बड़ा, रसाल, एककोषी एवं पांचकोषीय वाला होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

167 एरण्डकर्कटी (पपीता)

द्रव्यनाम....... संस्कृत................एरण्डकर्कटी
हिन्दी................पपीता ।
लैटिन................Carica Papaya Linn

स्वरुपपरिचयः–इसके छोटे गुल्मनुमा वृक्ष होते हैं। भारत में इसकी खेती की जाती है । पर्ण–संवृत खण्डित पालियुक्त होते हैं। पुष्पगुच्छों में श्वेताभ वर्ण के फल, लम्बगोल, नारियल फलसदृश, एवं बीज संख्या में अनेक होते है। पुष्प–नर एवं मादा अलग–अलग होते हैं।

पुष्पकाल................प्राय सालभर पुष्पित होता है।
फलकाल................पुष्पकाल के वाद ।
प्रयोज्य अंग................क्षीर, पत्र, फल ।

प्राप्तिस्थान :—भारत के उष्ण भागों में इसकी सर्वत्र खेती की जाती है। यह भारत का आदिवासी पौधा नहीं है। वनस्पतिशास्त्र के आधार पर इसकी कई किस्में पाई जाती है ।

दोषअधिष्ठानभेदेन कर्मज्ञान :—

रस–मधुर, वीर्य–उष्ण, विपाक–मधुर, कर्म–त्रिदोषघ्न, कासश्वासहर, यकृत प्लीहा एवं उदररोगों में उपयोगी पाचक, कृमिघ्न, वेदनास्थापन, स्तन्यजनन कुष्ठघ्न, उदर रोग नाशक, बीजों का गर्भपात में उपयोग किया जाता है ।

वक्तव्यः– अधिकतर विद्वानों ने गोपलकर्कन्टी से पपीता अर्थ लिया है। संहिताग्रन्थों में एरण्ड कर्कटी का उल्लेख नही मिलता है। कुछ विद्वानों ने इसका नाम जालपर्णी रखा है ।

कोशातक्यादिवर्ग–CUCURBITACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में 800 प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं । ये वनस्पतियां वेलों के रुप में होती हैं। पर्ण–एकान्तर एवं वहुधा खर होते हैं। पर्ण–वृक्ष के पास हृदयाकृति में पत्रतट सकोण अथवा उच्चायुक्त होते हैं। नर एवं मादा पुष्प एक ही वेल पर अलग–अलग भी होते हैं । पुष्पों का रंग पीला या सफेद होता है। पुष्प वाह्यकोष के दल संख्या में 5 नरजातीय पुष्पों में स्त्रीकेशर गर्भाशय के साथ लगा होता है। पुष्पाभ्यन्तरकोष की पंखड़िया भी पांच होती है, फल–रस से भरपूर, अनेक बीजों से युक्त स्वविकासी, अथवा अविकासी होते हैं । बीज–चपटे, चिकने होते हैं ।

इस वर्ग की वनस्पतियाँ विरेचक, पौष्ठिक मूत्रल, शोथघ्न होते है इस वर्ग में पटोल, वन्यपटोल इन्द्रावारुणी, कोषातकी, करेला, देवदाली बिम्बी, शिवलिंगी आदि कतिपय वनस्पतियाँ पाई जाती है ।

168 कूष्माण्ड (पेठा)

द्रव्यनाम.......... संस्कृत...............कूष्माण्ड, वल्लीफल, वृहत्फल,
हिन्दी................पेठा,
लैटिन................Benincasa hispida (Thunb) cong

गण :— चरक सूत्रस्थान अध्याय 29 एवं सुश्रुत सूत्रस्थान 46 में कूष्माण्ड का उल्लेख है।

निरुक्ति :— कुष्माण्ड–कु ईषत् उष्मा अण्डेषु, बीजेसु यस्य तार पित्तलत्वात्" अर्थात इसके बीजों में उष्णता पाई जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वृहत्फल :— इसका फल काफी बड़ा होता है। इसकी वेल होने से इसे वल्लीफल भी कहते हैं।

स्वरुप परिचय :— पेठा की लम्बी–लम्बी आरोही एवं परिसृत लतायें होती हे। काण्ड कोंणाकार एवं कर्कश सफेद रोंयेदार होते हैं। स्त्री एवं नरपुष्प अलग–अलग खिलते हैं ये पुष्प पीत वर्ण के होते हैं फल खरवूजसद्यश, बड़े वजनदार एवं धारीदार होते हैं । फल का गूदा सफेद रंग का होता है ।

पुष्पकाल..................अगस्त, सितम्बर।
फलकाल.................शीतकाल ।
प्रयोज्य अंग...............फल, गूदा, बीज ।

प्राप्तिस्थान :— पेठा मलेशिया का आदिवासी पौधा है। भारत के मैदानी भागों एवं हिमालय की निचली घाटियों में इसकी खेती की जाती है। घरों के आसपास छप्परों पर इसकी बैलें चढ़ी रहती हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—

गुण–लघु, स्निग्ध, रस–मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, प्रभाव–मेध्य, तृषानिग्रहण, अनुलोमन, हृद्य, रक्तपित्तशामक, मूत्रजनन, शुक्रल, वृंहण एवं संन्तापहर है। बीजों से प्राप्त तैल उदर कृमिनाशक है ।

आमयिकप्रयोग :— यह मूत्रधात, प्रमेह, मूत्रकृच्छ, अश्मरी, तृषा, अरुचि एवं पित्तविकार नाशक है। यह रक्तपित्तप्रशमन होने से रक्तवाहिनियों का संकोचन करते हैं। उन्माद, अपस्मार में भी यह उपयोगी माना जाता है। बीज तैल स्फीतकृमी (Tape worm) में उपयोगी है। बड़ी मात्रा में प्रयोग करने से दस्त साफ होते हैं ।

मुख्ययोग :— कूष्माण्ड- खण्ड, कूष्माण्डधृत, कूष्माण्डचूर्ण, कूष्माण्ड- कल्याणक । पेठे की अधिकतर मिठाई बनाई जाती है ।

169 इन्द्रवारुणी

द्रव्यनाम......... संस्कृत...............इन्द्रवारुणी, गवाक्षी, विशाला, ऐन्द्री ।
हिन्दी...............इन्द्रायण ।
लैटिन...............Citrullus Colocynthis Schrad.

गण :— चरक ने 16 मूलिनी द्रव्यों में गवाक्षी का नाम विरेचन द्रव्यों के साथ उल्लेख किया है। सुश्रुत ने श्यामादिगण एवं अधोभागद्रव्यों के साथ इंद्रवारुणी का उल्लेख किया है ।

निरुत्ति :—

इन्द्रवारुणी :— इन्द्रं वारयति देवतारुपेण इति" अर्थात् इसका फल इन्द्र को प्रिय है ।
विशाला :— विशेषेंण शलनि–चलति कामलादिरोगान्निवा रयितुं पृथिका" अर्थात् यह कामला आदि रोगों के निवारण के लिये उपयोगी है। या इसकी लतायें जमीन पर खूब फैलती हैं ।
गवाक्षी :— गामू भूमिम्र अक्ष्णोति व्यापृनोति इति" अर्थात् यह जमीन पर खूब फैलती है।

स्वरुपपरिचय :—
यह लता जाति की परिसृत बहुवर्षायु मूल वाली वनस्पति है। काण्ड–द्विधा, त्रिधा, विभक्त सूत्रयुक्त, पत्र–के दोनों पृष्ठों पर रोमश, उपरीपृष्ठ पीताभ हरित, श्वेतधारियों से युक्त पत्रतट–खण्डित पालियुक्त तीक्ष्णाग्र होते हैं। पुष्प–श्वेतवर्ण के, फल–आकार में लम्ब–गोल–पक्वफल–पीताभवर्ण के, बीज–कृष्ण गोल चपटे संख्या में कई होते हैं।

पुष्पकाल...............अगस्त. सितम्बर ।
फलकाल...............शीतकाल ।
प्रयोज्यअंग...............मूल, फल, पत्र ।
मात्रा...............फलमज्जा 1 से 2 माशा। मूलचूर्ण 2 से 3 माशा ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान :— यह समस्त भारत के उत्तर पश्चिमी रेगीस्तान मध्यप्रदेश, गुजरात आदि सभी प्रान्तों में सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—

गुण– लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–तित्त, कटु विपाक–कटु, वीर्ण–उष्ण, कर्म तीव्ररेचक, कफ–पित्तनाशक, कृमिहर, शोथघ्न उदररोगनाशक, कामला नाशक, श्वास–कासहर, कुष्ठघ्न, गुल्मनाशक, गर्भाशियोत्तेजक, प्रमेहघ्न, विषघ्न ।

आमयिक प्रयोग :— कामला में इन्द्रायणमूल का चूर्ण गुड़ के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है। सन्धिवात में इन्द्रायणमूल को पिप्पली एवं गुड़ के साथ सेवन कराते हैं। प्लीहोदर, उन्माद, गण्डमाला में मूलचूर्ण का प्रयोग लाभदायक है। आंख दुखने पर इन्द्रायण के फल का विन्दुरुप में डालने पर लाभ करता है। मवेशियों में लाल एवं पीला दोनों इन्द्रायण उदररोगों में विशेष उपादेय है। बीजों का उपयोग गर्भस्त्राव के लिये किया जाता है। नव्यमत से यह यकृत, उदर, शोथ जलोदर आदि विकारों में वमन विरेचन हेतु प्रयोग किया जाता है ।

वक्तव्य :— शास्त्रकारों ने तीन प्रकार की इन्द्रवारुणी का उल्लेख किया है। वृ० इन्द्रवारुणी, लघु इन्द्रवारुणी एवं गवादनी हैं।

रासायनिकसंगठन :— इसमें कोलोसिंथिन, कोलोसिंथिटीन, पेक्टिन, गोंद एवं भस्म आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :— नारायणचूर्ण, अभयारिष्ठ, लोध्रासव, बहुशालगुड, म० मन्जिष्ठाद्यासव ।

170 महाकाल (लाल इन्द्रायण)

द्रव्यनाम......... संस्कृत................महाकाल, विशाला, रक्त इन्द्रवारुणी
हिन्दी................लाल इन्द्रायण ।
लैटिन...............Trichosanthes bracteata (lam)voigh.

गण :— चरक विरेचन द्रव्यों में एवं सुश्रुत के उभयतोभाग-हर द्रव्यों में गवादनी द्वय का उल्लेख है ।

स्वरुप परिचय :— यह कूष्माण्डकुल की आरोही लताजाति की वनस्पति है । पर्ण–एकान्तर, पालियुक्त, सवृन्त, पत्राग्रतीक्ष्ण, कर्कश । पुष्प–श्वेतवर्ण के पर्णकोणोदूत, फल–लम्बगोल पकने पर रक्तवर्ण के गूदेदार, बीज–चपटे काले होते हैं।

पुष्पकाल................अगस्त, सितम्बर,
फलकाल................शीतकाल,
प्रयोज्य अंग................फल, मूल, बीज ।

प्राप्तिस्थान :— इसकी आरोही लतायें हिमालय की निचली घाटियों में 1, 500 मीटर की उँचाई तक सर्वत्र सुलभ हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—

संहिताग्रन्थों में रक्त एवं पीत भेद से इन्द्रायण का उल्लेख है। गुणधर्म दोनों के समान है। विशाला महाकाल, महाफल सभी नाम फल के आकार एवं स्वरुप पर आधारित है। देखिये इन्द्रवारुणी ।

171 पटोल (परवल)

द्रव्यनाम......... संस्कृत...............पटोल, कुलक कर्कशच्छद ।
हिन्दी................पखल ।
लैटिन...............Trichosanthes dioica Roxb.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण :— चरक तृप्तिघ्न, तृष्णनिग्रहण महाकषाय में तथा सुश्रुत के आरग्वधादि एवं पटोलादिगण में पटोल का उल्लेख है ।

निरुक्ति :—

पटोल :— पटति गच्छति पाचनात्वादिगुणान् इति " पट्गतौ " अर्थात् यह पाचन आदि गुणों में श्रेष्ठ माना जाता है ।

कुलक :— कोलति सम्यक् स्त्यायति वृष्यत्वादि श्रेष्ठगुण त्वात् " अर्थात यह वृष्य आदि गुणों के कारण विशेष गुणों को धारण करता है ।

कर्कशच्छद :— कर्कशाः छदा यस्य स, पटोल के पत्र कर्कश एवं खर होते हैं। फल पकने पर पाण्डुवर्ण के होने से इसे पाण्डुफल कहते हैं

स्वरुप परिचय :— परवल की एक वर्षायु आरोही लता होती है । काण्ड कर्कश, रोमावृत, एवं शाखाओं का रुपान्तर तन्तु या (Tendrils) में होता है । पर्ण 9.5 से 10 से० मी० लम्बे, 5 से० मी० चौड़े, लट्वाकार, आयताकार, हृ-दयाकार, पत्राग्र–नुकीला, पत्रतट–लहरदार दंतुर एवं पत्र के दोनों तट कर्कश होते हैं । पुष्प–एकलिगीं श्वेताभ वर्ण के, फल– लम्बगोल दोनों शिरों कुल नुकीला सा होता है । इसकी एक वन्य जाति वर्षाऋतु के बाद स्वयंजात पाई जाती है जिसे वन्यपटोल **Trichosanthes Cucumerina** Linn. कहते हैं । इसकी आरोही लतायें खेतों के बाड़ों पर विशेष रुप से मिलती हैं । फल–लम्बगोल, अग्रभाग नुकीला होता है कच्चाफल श्वेताभ हरित पकने पर रक्त वर्ण का होता है। फलों पर सफेद धारियाँ होती हैं । जंगली पटोल का पंचांग काफी तिक्त होता है ।

पुष्पकाल..................................अगस्त, सितम्बर
फलकाल..................................सितम्बर, अक्टूबर
प्रयोज्य अंग..............................अंग फल, पंचांग ।

प्राप्तिस्थान :— भारत के मैदानी भागों में इसकी वन्य एवं कृषिवाली दोनों किस्में सर्वत्र सुलभ है । कृषिजन्य पटोल का फल तिक्त नहीं होता है । इसका शाक बनाया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–त्रिदोषशामक, केश्य, वर्णशोधन, रोपण, रोचन, दीपन, पाचन, तृष्णानिग्रहण, पित्तसारक, अनुलोभन, कृमिघ्न, ज्वरघ्न (विशेषकर पित्तज्वरनाशक) विषघ्न, कुष्ठघ्न कफघ्न एवं कटुपौष्ठिक है ।

आमयिक प्रयेग :—

पित्तधान रोगों में वन्य पटोल के पंचांग को विरेचन के लिये देते हैं । पित्तज्वर, जीर्णज्वर, कामला, शोथ, उदररोग में इससे विरेचन होकर पाचन क्रिया में सुधार होता है । त्वचा के रोगों में पटोल चूर्ण को गिलोय क्वाथ में देते हैं । इसके अतिरिक्त यह रक्तपित्त, शोथ, शिरोरोग, वातव्याधि, मदात्य एवं विषरोगों में उपयोगी है । प्रायः सभी रोगियों में पटोल का शाक पथ्य माना गया है ।

रासायनिक संगठन

परवल के मूल में एक अक्रिस्टल सेयोनिन एक तिक्त सत्व जो ग्लुकासाइड स्वभाव का होता है। अल्पमात्रा में उत्पल तैल आदि तत्व पाये जाते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोग :—

पटोलादिक्वाथ, पटोलाद्यचूर्ण, अरविन्दासव, उशीरासव, पुनर्नवादिक्वाथ, चन्दनासव ।

172 कुटुतुम्बी (कड़वी लौकी)

द्रव्यनाम............. संस्कृत ....कुटुतुम्बी, अलाबु, इश्वाकु ।
हिन्दी ....कड़वीलौकी, कडंवीतुम्बी
लैटिन ....**Lagenaria siceraria** Standl

गण (1) चरक के 19 फलिनी एवं वमन द्रव्यों में तथा सुश्रुत ने उर्ध्वमागहर गण में अलाबु का उल्लेख किया है ।

निरुक्ति :—

कटुतुम्बीः– तुबि अर्दने यद्वा तुम्बति नाश्यति पित्तं कफं चापि इति " अर्थात यह रूचिकर होने के कारण हृदय को अच्छी लगती है । यह पित्त एवं कफ का नाश करती है.कड़वी होने से कटुतुम्बी कहते हैं

अलाबुः– न लम्बते इति" इसका फल जमीन पर लम्बा लटका रहता है ।

स्वरुपपरिचय :—

इसकी आरोही परिसृत लतायें होती हैं । काण्ड पञ्चकोणीय, पर्ण–गोलाकार, पंचकोणाकार, लट्वाकार, हृदयाकार, पत्र के दोनों पृष्ठ सूक्ष्म रोमश होते हैं । पुष्प–एकालिंगी श्वेतवर्ण के । फल–लम्बे, लम्बगोल, कमण्डलू के आकार में होते हैं । इसके मीठे किस्म की खेती की जाती है जिसे लौकी कहते हैं ।

पुष्पकाल........................अगस्त सितम्बर,
फलकाल........................पुष्पों के साथ ।
प्रयोज्य अंग.....................फल, बीज, पत्र ।

प्राप्तिस्थान :— समस्त भारत के उष्ण प्रदेशों में इसकी खेती की जाती है । जंगली किस्म को कटुतुम्बी कहते है चिकित्सा में उपयोग होता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (2)

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, कटु, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–कफपित्तसंशोधक, शिरोविरेचन, वामक, एवं–भेदेन ।

आमयिक प्रयोग :—

यह विष, वमन, पित्त्ज्वर, शोथ, व्रणशूल, वात एवं कफ को दूर करने वाली है । कटुतम्बी का तैल तिक्त, कषाय, अधोभाग दोषहर, दुष्ठव्रणशोधन, कृमि एवं कुष्ठ को नाश करता है । अश्मरी, शोथ, प्रदर, योनिरोग में भी उपयोगी है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठन :— फलों में ऐल्ब्युमिनामड्, कार्बोहाइड्रेड, भस्म, सेपोनिन, तथा बीजों में एक स्निर तैल भी पाया जाता है ।

वक्तव्य :— राजनिघण्टु में तुम्बी के अनेक भेद बताये जाते हैं मधुरतुम्बी आकृति भेद से अनेक किस्म की होती है । एवं कटुतुम्बी के भी कई किस्में होती हैं श्वास रोग में कटुम्बी लाभ करती है ।

173 जीमूतक (देवदाली)

द्रव्यनाम............... संस्कृत ....जीमूतक, देवदाली, गरागरी, ।
हिन्दी ....घघरबेल, बंदाल ।
लैटिन ....**Luffa echinata** Roxb.

गण (1)

चरक ने 19 फलिनी एवं वमन द्रव्यों में देवदाली का उल्लेख किया है सुश्रुत ने ऊर्ध्वभाग हर एवं उभयतो भागहर द्रव्यों में जीमूतक का उल्लेख किया है ।

निरुक्ति :—

देवदाली :— देवेन मेघोदयेन दालं दलनं यस्था सा " अर्थात् इसकी फली वर्षा काल में बादलों के गर्जना के साथ फटते है ।

गरागरी :— गरमू अगिरति इति गरागरि " अर्थात यह चूहे आदि गर विषों में उपयोगी है ।

जीमूतकः:– जीमूतो आह्लाद्" अर्थात यह विषपीड़ित मनुष्यों में उपयोगी है

स्वरुप परिचयः–

देवदाली की प्रसरण शील आरोही लतायें होती हैं । काण्ड–पतले पांच कोनों वाले, कर्कश, काण्डसुत्रद्विधा विभक्त, पर्ण–सवृन्त. वृताकार, गोल, लट्वाकार, हृद्वत, अखण्डित, रोमश 2.5 से० मी० लम्बे होते हैं । पुष्प–पीताभ श्वेत वर्ण के, फल–लम्बे, दीर्घ–वृताभ तथा देखने में रवेखसे के फलों की तरह मालुम होते हैं ।

पुष्पकाल........................अगस्त अक्टूबर,
फलकाल.......................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग.................... फल, काण्ड।

प्राप्ति स्थान :— भारत वर्ष के उष्णकटिबन्ध प्रदेशों के मैदानी भागों में इसकी लतायें स्वयंजात पाई जाती हैं । सुखाये हुए फलों को घघरवेल (वंदाल) कहते हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (2)

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–त्रि दोषहर विशेषतः कफपित्तहर, गर्भाशयसंकोचक, कृमिघ्न, विषघ्न, ज्वरघ्न, व्रणशोधन ।

आमयिकप्रयोग :— ज्वर में देवदाली पंचांग का सूक्ष्म चूर्ण शीतल जल के साथ देने से लाभ होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मूषिकविष पर देवदाली फलचूर्ण दही के साथ देने से लाभ होता है । इससे वमन होकर सभी प्रकार के विषों का नाश होता है। इसके अतिरिक्त कामला, प्रदर, श्वास, हिक्का, पाण्डु, अर्श, कास, अरुचि, क्षय एवं कृमि में उपयोगी है । शिरोरोग एवं कामला में इसका नस्य उपयोगी माना जाता हैं

रासायनिकसंगठन :— फलों में लुफ्फीन नामक तिक्त सत्व पाया जाता है । इसकी क्रिया कोलोसिन्थिन नामक तत्व की भांति तीव्र वामक एवं रेचक गुण पाये जोते हैं ।

मुख्ययोग :— देवदाली चूर्ण, देवदाली कल्प ।

174 कोषातकी

द्रव्यनाम.............. संस्कृत ....कोशातकी, कृतवेधन, जालिनी।
हिन्दी ....तोरी, तोरई ।
लैटिन ....**Luffa acutangula** (liam.) Raxle Var-L- amara

गणः– (1) चरक ने 19 फलिनी वमन द्रव्यों में कड़वी तोरई का उल्लेख किया है । सुश्रुत उर्ध्वभागहर एवं उभयतोभागहर द्रव्यों में कृतवेधन का उल्लेख किया है ।

निरुक्ति :—

कृतवेधनः– कृतं अथस्मिन् येन वा " इसके फलों में वेधनसघश धारियाँ होती हैं,

जालिनीः– जालं यस्यास्ति सः जाली" अर्थात् इसका फल जालीयुक्त होता है ।

स्वस्पपरिचय :—

वह वन्य एवं खेती भेद से दो प्रकार की होती है । जंगली तोरई कड़वी होती है । इसकी आरोही लतायें होती हैं । पर्ण–श्वेताभ, मृदुरोमश, कर्कष अभिअण्डाकार दोनों शिरों पर कुछ फटे हुए । पुष्प–पीतवर्ण के, फल–शक्वाकार, उन्नतधारियों वाले, मांसल फल पकने पर जालीदार, एवं काले बीज वाले होते हैं स्वाद में ये फल एवं बीज तिक्त होते हैं ।.

पुष्पकाल........................अगस्त सितम्बर,
फलकाल......................पुष्पों के साथ ।
प्रयोज्य अंग ....पत्र, फल, बीज, ।

प्राप्तिस्थान :—

भारत के उष्णकटीबन्ध प्रदेशों में इसकी जंगली लतायें सर्वत्र सुलभ हैं । मीठी जाति की सर्वत्र खेती की जाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–अभयतो–भाग–हर, प्रधान कर्म–वामक, रेचक, अल्पमात्रा में कफनिस्सारक, शोथहर, रक्त शोधक, मूत्रजनन, विषघ्न ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आम्यायिकप्रयेगः–

अर्श पर कड़वी तोरई के मूलचूर्ण का लेपन करने से मस्से गिर जाते हैं । कामला में कोषातकी के स्वरस का नस्य देने से लाभ होता है । गण्डमाला में कड़वी तोरई पिप्पली के साथ मिलाकर नस्य देने से लाभ होता है ।

मूषिकविष में पंचांग क्वाथ पिलाने से लाभ होता है । सभी प्रकार के कुष्ठों में इसका फल उपयोगी है । योनिकन्द में स्वरस दही के साथ देने से लाभ होता है ।

रासायनिकसंगठन :—

इसके फलों एवं बीजों में कोलो सिंथीन नामक सत्व के समान एक सत्व एक लुफ्फीन नामक सत्व पाया जाता है । बीज में गहरे भूरे रंग का ललाई जिये स्थीट तैल पाया जाता है ।

वक्तव्य :—

सुश्रुत संहिता के टीकाकार आचार्यडल्हण ने फल की आकृती के आधार पर चार प्रकार माने हैं । यथा– वृहत्फला, अल्पफला, पीतपुष्पा, श्वेतपुष्पा, धार्मांगव ओर कृतवेधन के अलग–अलग भेद बताये हैं । निघण्टुकारों ने कृतवेधन केपर्यायों के साथ धामार्गव का उल्लेख किया है । धामार्गव से कड़वी तोरई का कुछ लोगों ने अर्थ किया है । डल्हण के अनुसार महाकोषातकी (धामार्गव) है । जिसे वनस्पतिशास्त्र के आधार पर Luffa cylyndrica कहते हैं । चरक ने 19 फलिनी नामक द्रव्यों एवं सुश्रुत ने उर्ध्वभागहर गण में धामार्गव का उल्लेख किया है । इसे राज कोषातकी भी कहते हैं ।

175 कारवेल्लक (करेला)

द्रव्यनाम............. संस्कृत ....कारवेल्लक, सुषवी, कारवेल्ली ।
हिन्दी ....करेला, कारेली । ।
लैटिन ....**Momordica charantica Linn.**

गण :— (1) चरकविमान अध्याम तिक्तस्कन्ध में एवं सुश्रुत के शाकवर्ग में इस का उल्लेख है ।

निरुक्ति :—

करवेल्ल :— कारं ज्वरादिवधं– प्रतिवेल्लति इति " अर्थात् यह ज्वर आदि रोगों को नाश करने में समर्थ है ।

कारवेल्ली :— अर्थात् इसकी वर्षायु लतायें चारों तरफ फैलती है ।

स्वरुपपरिचयः–

इसकी आरोही एवं प्रसरणशील लतायें होती हैं । करैला बरसाती, वैशाखी दो प्रकार का होता है । आकृति भेद से भी छोटा एवं बड़ा दो प्रकार का होता है । पर्ण– कटे हुये सवृन्त होते हैं । पुष्प श्वेताभ पीत वर्ण के, फल–धारी एवं उभारदार, बीज वाले होते हैं । स्वाद में फल तिक्त होते हैं ।

पुष्पकाल.......................अगस्त सितम्बर,
फलकाल.....................सितम्बर, अक्टुबर, ऋतु अनुसार साल भर ।
प्रयोज्य अंग....................फल, पत्र ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थान :— समस्त भारतवर्ष में करैले की खेती की जाती है । इसकी दो फसलें होती हैं । बरसाती एवं वैशाखी । इसकी अन्य किस्में भी पाई जाती हैं जिसमें कर्कोटक **Momordica dioica** मुख्य है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–रोचन, दीपन, पाचन, मधुमेह–नाशक, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, आर्तवजनन, चक्षुष्य, मूत्रल ।

आम्नायिक प्रयोग :—

ज्वर वाले रोगी को करैले का शाक पथ्य है । मधु मेह में करैले का फलस्वरस विशेष उपयोगी है । मसूरिका में करैले के पत्रस्वरस को हरिद्राचूर्ण के साथ मिलाकर देना चाहिये । करैला दीपन भेदन, कफ पाण्डुरोग, व्रण, कृमि, श्वास, प्रमेह, अश्मरी, कुष्ठ, कास एवं वायु का नाश करने वाला है ।

रासायनिक संगठन :— करैले में प्रोटीन, खनिज पदार्थ, कैरोटीन, निकोटिनिक एसिड, पोटेशियम आदि तत्व पाये जाते हैं ।

वक्तव्य :— सुश्रुत ने सुषकी को उभयतो भाग हर माना है । सुषकी जीरक के लिये भी आया है । विरेचन के लिये करेले का पत्रस्वरस को उत्तम है ।

176 त्रपुष

द्रव्यनाम.............. संस्कृत ....त्रपुस, तिक्तकर्कटिका ।
हिन्दी ....कड़वी ककड़ी ।
लैटिन ....**Cucumis sativus** Linn

गणः– (1) चरक के 19 फलिनी वामक द्रव्यों में त्रपुष का उल्लेख किया है । सुश्रुत ने भी वामक द्रव्यों में त्रपुस का उल्लेख किया है ।

स्वरुपपरिचयः– इसकी भी वन्य एवं कृषिभेद से कई किस्में पाई जाती हैं । कड़वी ककड़ी आरोही लता जाति की वनस्पति है । पर्ण–दीर्घ, पत्रवृन्त पर गोलाकार, पंच कोणीय, सघन, रोमश, पुष्प–एकलिंगी, पीतवर्ण के । फल–दीर्घ–स्थूल श्वेत, हरिताभ, या हरिताभ–पीत, फल के पार्श्व भाग कण्टकसघश, ग्रन्थियुक्त, बीज ककड़ी सद्यश, इसकी अन्य किस्में भी पाई जाती हैं **Cuiumuis melo** var.**utilissimus** कर्कटी कहते हैं ।

पुष्पकाल........................जौलाई, अगस्त,
फलकाल.......................पुष्पकाल के साथ,
प्रयोज्य अंग.....................बीज, फल।

प्राम्ति स्थानः– सर्वत्र भारत के उष्णकटीबन्ध प्रदेशों के रेतली जमीन पर सर्वत्र सुलभ है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः– (2)

रस–मधुर तिक्त रुक्ष, वीर्य–शीत, विपाक–मधुर, कर्म–वामक, रेचक,, पित्तशामक, आस्थापनोपग, मुत्रकृच्छ्र, अश्मरीनाशक, वत्ति–शूलहर, एवं मुत्रवस्तिाशोधक है ।

वक्तव्यः– सुश्रुत टीकाकार डल्हण ने त्रपुस को कर्करी भेद लिखा है । निघण्टु ग्रन्थों में कर्कटी (ककड़ी) के अनेक (1) किस्मों का उल्लेख किया है । सभी प्रकारों का उल्लेख निघण्टु एवं संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

177 बिम्बी (कुंदरु)

द्रव्यनाम.............. संस्कृत ....विम्बी, तुण्डी, तुण्डीकेरी ।
हिन्दी ....कुंदरु ।
लैटिन ....Coccinia indica W. & A.

गण (1) चरक ने सोलह मूलिनी द्रब्यों में एवं सुश्रुत ने उर्ध्वभागहर द्रव्यों में बिम्बी का उल्लेख किया है

निरुक्तिः–

ब्रिम्बी :— बिम्बायाफलं विम्वं तदस्ति अस्या इति" अर्थात् कुन्दरु के फल लालिमा लिये हुये होते हैं यही कारण है कि बिम्बफल की उपमा ओष्ठों से की गई है । इसी कारण इसे ओष्ठोपमफला भी कहते हैं ।

तुण्डीकेरी :— तुण्डमस्ति एषामित्ति तुण्डिका "पक्षिणः" अर्थात् इसके पके हुये फलों को पक्षि अपने चञ्जुओं से नोचते हैं । इसी कारण इसे तुण्डी भी कहते हैं ।

स्वरूप परिचय :—

इसकी बहुवर्षायु एवं आरोहणशील लता होती है । काण्ड कोमल एवं नालीदार होता है । पर्ण–रुपरेखा में आधार से हृदयाकार, पांच खण्डों में विभक्त, एवं करतलाकार होते हैं । पुष्प–श्वेतवर्ण होते हैं, फल–अण्डाकार, बेलनाकार, पकने पर रक्तवर्ण के होते हैं ।

पुष्पकाल........................जुलाई, अगस्त
फलकाल......................सितम्बर, अक्टुबर ।
प्रयोज्य अंग....................फल, मूल, पत्र ।

प्राप्तिस्थान :— यह भारत के उष्णकटीबन्ध प्रदेशों के वन्य एवं ग्रामीणक्षेत्रों के समीप सर्वत्र सुलभ है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–दीपन, कटुपौष्ठिक, यकृदुत्तेजक, वामक, रेचक, शोथहर, कफनिस्सारक, मूत्रसंग्रहणीय, मधुमेहनाशक, स्वेदजनन, ज्वरघ्न है ।

आमायिक प्रयोग :— कड़वी कुन्दरु की लता वमन करने वाली तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, शोध, पाण्डुरोग एवं ज्वरनाशक है फल–श्वास, कास और वात, कफ नाशक है । मधुमेह में इसका शाक हितकर है । विम्बी का प्रभाव भी रक्त मूत्रगत शर्करा कम करने में उपयोगी है ।

178 शिवलिंगी

द्रव्यनाम.......... संस्कृत ....शिवालिंगी, चित्रफला।
हिन्दी ....शिवलिंगी।
लैटिन ....Bryonopsis locinissa (Linn.) Nand.
Syn. Bryonia lociniosa L.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरुक्ति :—

शिवलिंगी :— शिवस्यलिंगमिव आकृतिमस्या, अर्थात इसके बीजों की आकृति शिव के लिंग सदृश्य होती है । फल चित्रित होता है इसलिये चित्रफला भी कहते हैं ।

स्वरुपपरिचय :—

यह एकवर्षायु वर्षाकालीन लता जाति की वनस्पति है । काण्ड–मृदु, मसृण, पर्ण–सवृंत तनुयुक्त पत्र आधार से हृदयाकार मृदुरोमिल=खण्डित, तीक्ष्णाग्र होते हैं, पुष्प–पीताभ हरितवर्ण के, फल–हरे=पील, पकने पर रक्त चित्रित, मांसल, बीज–शिवलिंग, सदृश आकृति में तैलीय होते हैं ।

पुष्पकाल........................सितम्बर, अक्टूबर
फलकाल.......................शीतकाल ।
प्रयोज्य अंग.....................बीज।

प्राप्तिस्थान :— भारत के उष्णकटीबन्ध प्रदेशों में इसकी लतायें वर्षाकाल के बाद ग्रामीण क्षेत्रों के वाड़ों पर स्वयंजात सर्वत्र पाई जाती हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण–कटु, उष्ण रस–तिक्त, रसायन, पुत्रदा, पारद का बन्धन करने वाला, एंव सर्वसिद्धिदायक है । फल–यकृत, प्लीहा विकार नाशक ।

शिवलिंगी के पत्तों का लेप शोथ पर उपयोगी है । बीजों को केले के फल के साथ रजोधर्म के बाद सम दिनों में सेवन करने से पुत्र होता है ।

जीरकादिवर्ग UMBELLIFERAE

वर्गलक्षण : –

इस वर्ग में 2800 किस्मों के करीब वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। इस वर्ग में विशेष रूप से शाकीय पौधे, झाड़ियाँ पाई जाती हैं वृक्षः प्राय नहीं पाये जाते हैं। पर्ण – मुख्यतया सादे, एकान्तर, या सादे होते हैं। पुष्प – स्त्रीपुंसंयोगी, छत्राकार, सूक्ष्म, बीज – सुगन्धित, द्विअन्तरालयुक्त, होते हैं।

इस वर्ग में विशेषरूप से जीरकद्वय, यवानी, अजमोदा, ब्राह्मी, शतपुष्पा, चोरक, मिश्रेया, धान्यक, हींग, आदि कतिपय सुगन्धित द्रव्य पाये जाते हैं। कुछ वनस्पतियाँ, दीपन, वल्य, वातघ्न, उत्तेजक, होती हैं एवं कुछ दाहक, मादक, और सविष होती हैं। इस वर्ग के अधिकतर द्रव्यों का प्रयोग मसालों के रूप में किया जाता है।

179 जीरक (सफेद जीरा)

द्रव्यनाम ....संस्कृत...................जीरकम्, शुक्लाजाजी, अजाजी, जरण।
हिन्दी.................... सफेद जीरा।
लैटिन......................... **Cuminum Cyminum Linn.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण : –

चरक ने शिरोविरेचन एवं शूलप्रशन महाकषाय तथा सुश्रुत के पिप्पल्यादि गण में जीरक का उल्लेख है।

निरुक्ति : –

जीरक : – जवति वेगेन ग‍च्छति शरीरं गुणैः, जिवाति, वयो – हानिं करोति वा रोगाणाम्" अर्थात् यह अपने उत्तेजक गुणों के कारण वेग से सारे शरीर में पहुँचता है।

अजाजी : –अजं स्वाभाविकं मन्दाग्नित्वं अजति क्षिपति इति" यह दीपन गुणों के कारण मन्दाग्नि का नाश करता है।

शुल्काजाजी : – इसके बीज श्वेताभवर्ण लिये हुये होते हैं इसलिए इसे श्वेतजीरक कहते हैं।

स्वरूप परिचय : –

श्वेतजीरक के 30 से0 मी0 तक ऊँचे एक वर्षायु शाकीय पौधे होते हैं। काण्ड से छोटी–छोटी मृदु शाखा एवं प्रशाखायें निकलती हैं। पर्ण – हरितवर्ण के द्विधा–द्विधा विभक्त, सूत्राकार, आधार की ओर से काण्डसंसक्त होते हैं। पुष्प – सफेद हलके गुलाबी रंग के छत्राकार होते हैं। बीज हलके भूरे या खाकस्तरी रंग के रम्भाकार, एवं दोनों सिरे पतले एवं चपटे सुगन्धित होते हैं। व्यवहार में फलों को ही बीज कहते हैं।

पुष्पकाल..........................जनवरी, फरवरी ।
फलकाल........................फरवरी, मार्च ।
प्रयोज्य अंग........................फल (बीज) ।

प्राप्तिस्थान : –

भारत के उष्णप्रदेशों में प्रायः इसकी सर्वत्र खेती की जाती है। विशेषकर यह गुजरात, उत्तरप्रदेश एवं पंजाब में प्रचुरमात्रा में बोया जाता है। भारत में जीरे का आयात एशियामाइनर, तथा फारस से भी होता है।

दोषअधिष्ठान भेदेनकर्म ज्ञान : –

गुण–लघु, रुक्ष, इस–कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण। प्रधानकर्म–लेखन, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, शूल–प्रशमन, मूत्रल, रक्तशोधक, गर्भाशयोत्तेजक, वल्य ।

आमयिक प्रयोग : –

विषमज्वर में जीरकचूर्ण को गुड़ के साथ सेवन करने से मन्दाग्नि एवं वायुविकार का नाश होता है।

वातकफज्वर, अतिसार, मदात्यय, उदररोग, श्वास, कास, हिक्का पीनस आदि विकारों में यह उपयोगी है। जीरक चूर्ण पीने से पाचन उत्तम होता है। यकृत एवं आन्त्रों को बल मिलता है । योनि रोगों में भी जीरक का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन : –

बीजों में उड़नशील तेल $2\frac{1}{2}$ से 4% तक पाया जाता है। इसमें क्युमैल्डिहाइड एवं जमनेवाला तैल पाया जाता है। जीरे की स्वाद एवं सुगन्ध इसी पर निर्भर करती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोग : –

जीरकारिष्ठ, जीरकादिमोदक, जीरकाद्यचूर्ण, जीरकाद्यतैल, हिंग्वष्ठकचूर्ण, लवणभास्करचूर्ण, अग्निमुखचूर्ण, लशुनादिवटी, क्षुधाकारीवटी ।

180 जीरक (कृष्ण) (स्याहजीरा)

द्रव्यनाम......................संस्कृत..........................कृष्णजीरक, जरणा, कारवी, काश्मीरजीरक
हिन्दी..........................कालाजीरा, स्याहजीरा।
लैटिन..........................**Carum Carvi Linn.**

गण : – चरक सू0 अ0 29 में कारवी का उल्लेख है।

निरूक्ति : –

कृष्णजीरक : – यह उत्तेजक गुणों के कारण वेग से सारे शरीर में पहुँचता है। रंग में इसके बीज कृष्णाभ वर्ण के एवं उग्रसुगन्धित होते हैं।

कारवी : – बीज कृष्णवर्ण के एवं उग्रसुगन्धित होने से इसे कारवी कहते हैं।

काश्मीरजीरक : – काश्मीर क्षेत्र में उपलब्ध होने से इसे काश्मीर जीरक कहते हैं।

स्वरूप परिचय : –

कृष्णजीरक के वहुशाखीय एकमीटर तक लम्बे शाकीय पौधे होते हैं। पर्ण – सोये के सदृश्य सूत्रवत् एवं खण्डित होते हैं। पुष्प – श्वेत वर्ण के छत्रकों में, बीज (फल) श्वेत जीरे से पतले कुछ वक्र, रेखाकार – उत्तयताकार और सुगन्धित होते हैं। इसकी दूसरी किस्म भी हिमालय क्षेत्र में पाई जाती है जिसे Carum Bulfocastanum Koch कहते हैं।

पुष्पकाल..........................अगस्त, सितम्बर ।
फलकाल........................सितम्बर, अक्टुबर ।
प्रयोज्य अंग........................फल (बीज)

प्राप्तिस्थान : –

भारत में इसकी किस्में उत्तरीहिमालय में 3000 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,800 मीटर की ऊँचाई तक प्रायः जम्मूकश्मीर राज्य के लद्दाख क्षेत्र, वारामूला, एवं हिमाचल प्रदेश के चम्बावनखण्ड कांगड़ोंवनखण्ड, लाहुलस्फीती, उत्तराखण्ड गढ़वाल में कहीं–कहीं सुलभ हैं युरोपीय देशों में यह काफी पाया जाता है। भारतीय बाजारों में कृष्णजीरक, ईरान, अफगानिस्तान, आदि देशों से आयात किया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेनकर्मज्ञान : –

गुण–लघु, रूक्ष, रस–कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–वातकफशामक, रोचन, दीपन, पाचन, ग्राही, वातानुलोमक, हृद्य, मूत्रल, गर्भाशयोत्तेजक, स्तन्यजनन, ज्वरघ्न एवं कोष्ठगतवातप्रशमन ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग : –

यह आध्मान, उदरशूल, कुपचन एवं पेचिस में विशेष उपयोगी है। जीर्णज्वर में अन्नपाचन तथा क्षुधावर्धन के लिए स्याहजीरा का प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन : –

इसमें उड़नशील तैल पाया जाता है। सुखाये हुये बीजों में रंगहीन तथा हल्के पीले रंग का द्रव्य पाया जाता है।

मिलावट : –

स्याहजीरा मंहगा होने के कारण व्यापारी विशेष रूप से मिलावट करते हैं। कभी–कभी व्यापारी जंगली किस्मों के इससे साम्यता मिलने वाले बीजों का मिलावट करते हैं तथा सोया या सफेद जीरे को भी भूनकर स्याहजीरे के नाम से बेचते हैं। या स्याहजीरे का तैल निकाल कर बेचते हैं।

मुख्ययोग : –

हिंग्वाष्ठकचूर्ण, लवणभास्करचूर्ण, गर्भपालरस, नारायणचूर्ण।

181 यवानी (अजवायन)

द्रव्यनाम.....................संस्कृत.........................भूतिक, दीप्यक, यवानक, यवानी,
हिन्दी..........................अजवायन ।
लैटिन.........................**Trachyspermum ammi (L) Sprague Sym. Carum Copticum** Benth.

निरूक्ति : –

यवानिका : – यह अरब आदि देशों में अधिक रूप से पैदा होने यवानिका या यवानी कहते हैं।

दीप्यक : – दीप्पते दीपयति जाठराग्नि वा अनलं इति" यह उष्ण होने से जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

उग्रगन्धा : – बीजों से विशेष सुगन्धी आती है।

गण : – चरक के शीतप्रशमन महाकषाय, उल्लेख हैं।

स्वरूप परिचय : –

अजवायन के क्षुप 30 से0 मी0 1–30 मीटर तक ऊँचे, मसृण एवं मृदुशाखाओं वाले होते हैं। पर्ण सोया के पत्रों सद्यश 2–3 पक्षाकारी होते हैं। पुष्प – शाखा प्रशाखों में छत्रक के रूप में श्वेत वर्ण के होते हैं। बीज रुपरेखा में अजमोदा के समान धूसर वर्ण के वाह्यतल खुरदार एवं सूक्ष्म उभारदार होता है। प्रत्येक खण्ड पर 5 उन्नत रेखायें होती हैं। इन बीजों में तीव्र उग्रसुगन्धी होती है।

पुष्पकाल.................. फरवरी, मार्च ।
फलकाल ....मार्च, अप्रैल ।
प्रयोज्यअंग ....बीज (फल) पत्र, तैल, अर्क ।
मात्रा ....फलचूर्ण 1 से 3 माशा
तैल ....15 से 30 बूंद
सतअजवाइन $\frac{1}{4}$ से 2 र. $3\frac{1}{2}$ ग्रा. से $\frac{1}{4}$ ग्राम ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान : –

अजवाइन की खेती प्रायः समस्त भारत के उष्णप्रान्तों के पंजाब, बंगाल, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तों में की जाती है। विशेषरूप से यह अफगानिस्तान, ईरान एवं मिश्र में पाया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –

गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण । प्रधानकर्म–दीपन, पाचन, वातानुलोमक, शूलप्रशमन । जीवाणुनाशक, गर्भाशयोत्तेजक, उदर कृमिनाशक, दुर्गन्धनाशक, व्रणरोपक, श्लेषमहर, ज्वरहर ।

आमयिक प्रयोग : –

प्रसूता स्त्रियों को अजवाइन देने से भूखलगती है एवं अन्न का पाचन होता है। सूतिकाज्वर में यह उपयोगी है। शीतपित्त में सात दिन तक पुराने गुड़ के साथ यवानी चूर्ण का सेवन करना चाहिए। इससे समग्र शरीर पर होने वाले शीतपित्त में लाभ होता है। दन्तशूल में वचा एवं यवानी को मुँह में चवाने से लाभ होता है। अर्क एवं तैल विशूषिका, उदरशूल एवं अजीर्ण में प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन : –

फलों में उड़नशील तैल 4–6% होता है। इसमें थाइमोल नामक सत्व पाया जाता है। इसके अतिरिक्त क्युमिन, टर्पीन तथा थाइमीन नामक तत्व पाया जाता है।

मुख्ययोग : –

यमानीषाडव, यमान्यादिचूर्ण, यवानीसत्व यवानिका क्वाथ, हिंग्वाष्ठक चूर्ण, चित्रकादिवटी, गैसान्तकवटी, अग्नितुण्डीवटी, अग्निसंदीपन चूर्ण :, शंखवटी।

वक्तव्य : –

यवानी के निघण्टुकारों ने चार प्रकार भेद से वर्णन किया है। यथा – यवानी (अजवाइन) पारसीकयवानी (खुरासानी) अजमोदा (अजमोद) किरमाणी (यह भी अजवाइन ही है)

182 अजमोदा (अजमोद)

द्रव्यनाम......................संस्कृत ....अजमोदा, दीप्यक, खराश्वा, कारवी, वस्तमोदा ।
हिन्दी.........................अजमोद ।
लैटिन.........................**Apium graveolens** Linn.

निरूक्ति : –

गण : – चरक के दीपनीय एवं शूलप्रशमन महाकषाय में तथा सुश्रुत के पिप्यल्पादि गण में अजमोद का उल्लेख है।

दीप्यक : – दीप्यो ऽग्निदीपनः" अर्थात् यह जाठराग्नि को दीपन करती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

खराश्वा : – 'खरैः अश्यते इति वा'' अश्व भोजने'' इसके काण्ड को गर्दभ अधिक खाते हैं।

वस्तमोदा : – इसके बीजों से वस्तसदृश सुगन्ध आती है।

स्वरूप परिचय : –

अजमोदा के एक वर्षायु पौधे होते हैं। ऊँचाई में ये पौधे 30 से 90 सेन्टी0 मी0 होते हैं। काण्ड देखने में अजवाइन सदृश होते हैं। पर्ण 2–3 भागों में पक्षाकार होते हैं। पुष्प– छत्राकार श्वेतवर्ण के होते हैं। फल (बीज) गोलाकार, रूपरेखा में अजवाइन के बीज से बड़े , धूसरवर्ण के होते हैं । प्रत्येक फलखण्ड में 5 उन्नत रेखायें होती हैं । जिनमें तैल नलिकायें पाई जाती हैं। बीजों को मसलकर सूंघने से विशिष्ठ प्रकार की सौंफ सदृश सुगन्धी आती है। इसके बीजों में कभी–कभी मिलावट पाई जाती है।

पुष्पकाल.........................फरवरी, मार्च ।
फलकाल.......................मार्च, अप्रैल ।
प्रयोज्यअंग......................बीज (फल), मूल ।
मात्राबीज........................9 से 3 ग्राम ।

प्राप्तिस्थान : –

भारत के विशेषकर दक्षिणभारत तथा बंगाल में इसकी खेती की जाती है। अन्य सभी प्रान्तों के उष्णभागों में कहीं–कहीं इसकी खेती की जाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –

गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–रोचन, दीपन, शूलप्रशमन, वात–कफ नाशक, कृमि, अरोचक एवं उदररोग नाशक।

आमयिक प्रयोग : –

बीजों का उपयोग ज्वर, तृषा, दाह, क्कास, श्वास, वमन, अर्श एवं कृमी में किया जाता है। यह हृदय एवं पित्तशामक भी है। ज्वर एवं उदरशूल में धनियाँ के फाण्ट (शीतकषाय) के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है। यकृत एवं प्लीहा के विकारों में इसका उपयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन : –

बीजों में उड़नशील तैल पाया जाता है।

मुख्ययोग : –

अजमोदादिचूर्ण, योगराजगुग्गुलु, नारायणचूर्ण, कृमिमुद्गरस, सारस्वतचूर्ण ।

183 शतपुष्पा (सोया)

द्रव्यनाम.....................संस्कृत.............शताह्वा, शतपुष्पा।
हिन्दी..............सोया, सोआ।
लैटिन.............**Anethum Sowa Kurz.Syn. Peucedanum graveolens L.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गण : – (1) चरके आस्थापनोपग एवं अनुवासनोपग महाकाव्य में इसका उल्लेख है ।

निरूक्ति : – शतपुष्पा : – जीरकादिवर्ग की वनस्पति होते पुष्प छत्रक के आकार में कई संख्या में होते हैं। इसे शताह्वा भी कहते हैं।

स्वरूप परिचय : –

सोया के पौधे 30 से 90 से0 मी0 ऊँचे एवं कोमल होते हैं। पर्ण–द्वित्रिविभक्त, रेखाकार, पर्ण सौंफ सदृश, अपेक्षाकृत छोटी तथा सुगन्धित होते हैं। पुष्प – छत्रक युक्त पीताभवर्ण के होते हैं। बीज (फल) चपटे, 4 मि0 मि0 लम्बे 2 मि0 मि0 चौड़े एवं दोनों शिरों पर बारीक झिल्ली लगी होती है। पृष्ठतल पर रेखाएं अधिक उन्नत एवं स्पष्ट होती हैं। बीज उग्रसुगन्धित एवं स्वाद में तिक्त, तीक्ष्ण होते हैं।

पुष्पकाल.........................दिसम्बर, जनवरी ।
फलकाल.........................फरवरी, मार्च ।
प्रयोज्य अंग.......................फल (बीज) ।

प्राप्तिस्थान : –

समस्त भारत के उष्ण प्रान्तों में इसकी सर्वत्र खेती की जाती है। पत्रों का शाक में प्रयोग किया जाता है। इसके पके हुये पक्व बीजों को शतपुष्पा कहते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –

गुण – लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, रस – कटु, तिक्त, विपाक – कटु, वीर्य – उष्ण, कर्म – कफवातशामक, वेदनास्थापन, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, कृमिघ्न, शोथहर, हृदययोत्तेजक, कफघ्न, मूत्रल, आर्तवजनन, स्तन्यजनन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, शुक्रनाशन ।

आमयिक प्रयोग : –

सोयाबीज को प्लीहावृद्धि में सर्षप तैल के साथ कामला, पाण्डु एवं शोथ से पीड़ित व्यक्ति को भैंस के दूध, और मूत्र के साथ गुल्मी को एरण्ड तैल के साथ कुष्ठी को खदिरक्वाथ के साथ शुष्कविट वाले मनुष्य को मांसरस के साथ सोयाचूर्ण का सेवन करना चाहिए। वाताधिक्य वातरक्त में सोया को दूध में पीसकर शूलयुक्त भाग में लेप करने से लाभ होता है। बच्चों के पेटदर्द और अफारे में सोयाअर्क को सुधामण्ड के साथ देते हैं। पक्षाघात, अर्दित तथा संधिशूल में सोया के तैल की मालिश करते हैं और कर्णशूल में कान में डालते हैं। यूनानी मतानुसार सोया बीज गरम और खुश्क है।

रासायनिक संगठन : –

सोया के बीजों में 3–4% एक उड़नशील तैल पाया जाता है। तैल में एपिओल, एनीथीन, नामकद्रव्य हाइड्रोकार्बन तथा कारबोन से मिलता जुलता तत्व पाया जाता है।

मुख्ययोग : –

अर्कशतपुष्पा, रजप्रवर्तनीवटी, एरण्डपाक, म0 लाक्षादितैल, वृ0 सैन्धवादितैल, सौभाग्य शुष्ठीपाक ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

184 मिश्रेया (सौंफ)

द्रव्यमान......................संस्कृत..........................मिश्रेया, मिशी, मधुरिका ।
हिन्दी.......................... सौंफ, सोंफ ।
लैटिन.......................... **Foeniculum Vulgare** Mill.

गुण : – सुश्रुत ने आस्थापनोपगवर्ग मिशि का उल्लेख किया है। अमरकोषकार ने मधुरिका का निर्देश किया है।

निरुक्ति : –

मिश्रेया : – मिश्रयति स्वमिन् अन्यगुणान्" यह अपने में अन्य औषधियों के गुणों को मिश्रित कर लेती है।

मिशी : – मस्यति परिणमति उष्णतया इति मिशिः" यह परिपाक काल में उष्णरूप में परिणित होती है।

मधुरिका : – मधुरो रस अत्यस्या इति मधुरिका" अर्थात् यह मधुररस एवं मधुर विपाकी होता है।

स्वरूप परिचय : –

सौंफ के एक मीटर तक ऊँचे पौधे होते हैं। काण्ड हरित प्रशाखों युक्त एवं बहुवर्षायु भी होता है। पर्ण – खण्डित, पक्षाकार, सोयापत्र सदृश। एवं सुगन्धित होते हैं। पुष्प – छत्राकार, श्वेत – पीताभ, फल हरिताभ, लम्बे रेखाकार, तैलीय बिन्दुओं से युक्त सुगन्धित होते हैं।

पुष्पकाल..........................दिसम्बर, जनवरी ।
फलकाल.........................मार्च, अप्रैल ।
प्रयोज्यअंग........................बीज, (फल) अर्क ।

प्राप्तिस्थान : –

भारत के सभी प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –(2)

गुण–मधुर, कटु, तिक्त, स्निग्ध, रस मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–नात्युष्ण, कर्म–त्रिदोषघ्न, वातहर, मूत्रविरजनीय, दीपन मूत्रल आमपाचन, हृद्य, वृष्य वल्य, कासघ्न, स्तन्य।

आमयिक प्रयोग : –

मूत्र का दाह कम करने के लिये सौंफ चूर्ण एवं अर्क का प्रयोग करते हैं। आंव, उल्टी एवं अजीर्ण युक्त जुलाव में सौंफ उपयोगी है। पेट के मरोड़ को नष्ट करने के लिये कच्ची–पक्की सौंफ का उपयोग करते हैं। यह अग्निमांद्य, योनिशूल, अर्श, रक्तविकार, कास 'क्रेमी आदि रोगों में उपयोगी है। यह अतिसार आमातिसार में उपयोगी है। गर्भाशय के एवं योनिरोगों में भी विशेष उपयोगी है ।यकृत, प्लीहा एवं गुर्दो के अवरोध को दूर करने के लिये सोंफ का प्रयोग किया जाता है। दूध वठाने के लिये सोंफ चूर्ण देते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठन : –

इसमें सुगन्धित तैल पाया जाता है। तैल 1–3% स्थिरतैल 8.8% उड़नशील तैल एनीथाल फेनकोनतत्व होता है। इसमें प्रोटीन, वसा आदि तत्व भी पाये जाते हैं।

मुख्ययोग : –

मिश्रेयाअर्क, मिश्रेयाचूर्ण पंचसकारचूर्ण, अभयारिष्ठ, जन्मघूटी, कुमार्यासव, नारायणचूर्ण, सारस्वतारिष्ठ।

वक्तव्य : –

सुश्रुत में मिश्रेया (मिशि) शब्द का उल्लेख मिलता है। अमरकोषकार ने मधुरिका, मिसि, मिश्रेया, छत्रा ये नाम दिये हैं। जीरकादि वर्ग में प्रायः सभी द्रव्यों के पुष्प एवं फल छत्राकार होते हैं। डल्हण आदि टीकाकारों ने छत्रा शब्द से द्रोणपुष्पीद्वय एवं अजाजी, मधूलिका वा" यह अर्थ किया है। शतपुष्पा से अनेक विद्वानों ने सौंफ अर्थ किया है। वास्तव में शतपुष्पा सोया के प्रयुक्त हुआ है। छत्रा, अतिछत्रा से सौंफ एवं वन्यसोंफ अर्थ करना कुछ तर्कसंगत मालुम् होता है। संहिता ग्रन्थों में छत्रा एवं अतिच्छत्रा दोनों अलग–अलग वनस्पतियों प्रयोग करने का भी स्पष्ट निर्देश है।

185 धान्यक (धनियाँ)

द्रव्यनाम..................संस्कृत.....................धान्यक, कुस्तुम्बरु, वितुन्नकम्।
हिन्दी......................धनियाँ ।
सिंहली..................... ।
लैटिन.......................**Coriandrum Sativum L.**

गण : – चरक ने तृष्णानिग्रहण, शीतप्रशमन महाकषाय तथा सुश्रुत के गुडूच्यादिगण में उल्लेख है।

निरुक्ति : –

धान्यक : – घन शब्दे भक्षणे इत्यर्थः" इसको उपयोग खाने में किया जाता है इसलिए धान्यक कहते हैं।

कुस्तुम्बुरू : – कुत्सितं ज्वरादिकं रोगं तुम्बति अर्दयतिइति " यह दुष्ठ ज्वरादिरोगों को नष्ठ करता हैं।

वितुन्नक : – विगतं तुन्न ज्वरादि रोगदुःखम् अस्मात्" अर्थात् शीतप्रधान होने से ज्वरादिरोगों को नष्ट करता है। भक्ष्यद्रव्यों के साथ बीजों का उपयोग चूर्ण रूप में किया जाता है इसलिए वितुन्नक कहते हैं।

स्वरूप परिचय : –

यह एकवर्षायु कोमल शाखाओं वाला शाकीय पौधा है। पर्ण – खण्डित, रेखाकार, पत्रतट – दन्तुर एवं सुगन्धित। पुष्प – पुष्प श्वेत – गुलाबी रंग के छत्रकों में खिलते हैं। फल (बीज) गोलाकार व्यास में 2 मिलिमिटर और पकने पर पीताभ भूरे रंग के होते हैं। फलों को दवाने से दो खण्डों में विभक्त होते हैं। हरे पौधे के पंचाग में विशिष्ठ सुगन्ध होती है।

पुष्पकाल.........................दिसम्बर, जनवरी ।
फलकाल.........................फरवरी, मार्च ।
प्रयोज्य अंग........................बीज (फल) पंचांग ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान : –

धनियाँ की भारत के सभी प्रान्तों में खेती की जाती है। धान्यक भूमध्य सागर का आदिवासी पौधा है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –

लघु, स्निग्ध, रस–कषाय, तिक्त, मधुर, विपाक – मधुर, वीर्य – उष्ण, कर्म – त्रिदोषहर, ज्वरघ्न, शोथहर, वेदनास्थापन, रोचन, दीपन, पाचन, ग्राही, यकुदुत्तेजक, रक्तपित्तशामक, हृद्य, कफघ्न, मूत्रविरजनीय। यूनानी मतानुसार दूसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष है।

आमयिक प्रयोग : –

ज्वर में दाह हाने पर धान्यक हिम का प्रयोग करने से दाह एवं शमन होता है। कफ पित्त ज्वर में धान्यक पटोलादि क्वाथ के साथ सेवन करने से लाभ होता है। आमाजीर्ण और शूल में धान्यक एवं शुष्ठी का क्थाथ लाभ करता है। वातरक्त में धनियाँ, जीरा और स्याहजीरा तीनों समभाग चूर्ण पाक विधि से गुड़ के साथ पका कर सेवन करने से लाभ होता है। इसके अतिरिक्त यह दाह, कास, श्वास, वमन, अर्श आदि रोगों में उपयोगी है।

मुख्ययोग : –

धान्यकादिहिम, धान्यपन्चक – क्वाथ, धान्यचतुष्क, लवणभास्करचूर्ण, अभयारिष्ठ, सुपारीपाक, कुमार्यासव, चन्द्रप्रभावटी।

रासायनिक संगठन : –

हरे धनिये में विटामिन ए0 एवं सी0 पाया जाता है। कैरोटीन, कैल्सियम, फास्फोरस एवं लौह आदि तत्व पाये जाते हैं। धनिये का तैल औषधियों को सुगन्धित करने के काम में आता है।

186 मण्डूकप्रर्णी (ब्राह्मी)

द्रव्यनाम......................संस्कृत..........................मण्डूकपर्णी,
हिन्दी...........................ब्राह्ममी, व्रिह्ममीबूटी,
सिंहजी..........................लोनूवेला
लैटिन..........................**Centella asiatica** (L.) Syn. **Hydrocotyle asiatica** urban L.

गण : – चरक के वयः स्थापनमहाकषाय एवं तिक्तस्कन्ध में सुश्रुत के तिक्तवर्ग में मण्डूकपर्णी का उल्लेख है।

निरुक्ति : –

मण्डूकपर्णीः मण्डूकद्रव पर्ण मस्या" अर्था इसके पर्ण मण्डकसघश कुछ चिन्हित एवं जलीय प्रदेश में होते हैं।

स्वरूप परिचय : –

मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी) के छोटे–छोटे छत्तेदार परिस्सृत पौधा होता हैं। काण्ड सपर्ण नमदार – जलीय जमीन पर फैलता है। काण्ड के प्रत्येक ग्रन्थी मूल पर पुष्प एवं फल लगते हैं। पर्ण–गोलाकार– वृक्काकार व्यास में 1.25 से 6. 25 से0 मी0 मसृण, किनारे सरल गोल कहीं–कहीं दन्तुर, हरित वर्ण के स्वाद में कुछ तिक्त होते हैं। पुष्प–विनाल, वृक्ष सहित पुष्प श्वेताभ रुप वर्ण के फल – गुच्छों में छोटे–छोटे होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल........................दिसम्बर, मार्च,
फलकाल........................पुष्पकाल,
प्रयोज्य अंग....................पत्र।

प्राप्तिस्थान : –

मण्डूकपर्णी हिमालय की निचली घाटियों में 1,800 मी0 की ऊँचाई तक एवं भारत के शीतप्रधान एवं नमदार भूमि पर नदी नालों एवं नहरों के किनारे पाई जाती है।

दोषअधिष्ठान भैदेने कर्मज्ञान : –

गुण – लघु, सर, रस – तिक्त, अनुरस – कषाय – मधुर, वीर्य – शीत, प्रभाव – मेघ्य, प्रधानकर्म – मेघ्य, हृदय, स्तम्भन, शोथनाशक, मूत्रल, रक्तशोधक, कुष्ठघ्न, वल्य, रसायन।

आमयिक प्रयोग : –

मेघ्य एवं रसायन एवं उन्माद, अपस्मार हेतु ब्राह्मी का मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है। रक्त पित्त, कुष्ठ, प्रमेह, कास, रक्तविकार आदि रोगों में भी उपयोगी है। मानसिक रोगों में विशेषरूप से प्रयोग है ।

रासायनिक संगठन : –

पत्रों में हाइड्रोकोरिजिन नामक ऐल्कलाइड, एशियारिकोसाइड, नामक ग्लाइकोसाइड, वेल्लेरीन, नामक क्रस्टलीयतत्व, उड़नशील एवं स्थिरतैल पाया जाता है। सूखे पौधों में सेन्टोइकएसिड, तथा सेन्टेलिक एसिड भी पाये जाते हैं।

मुख्ययोग : –

ब्राह्मीपाक, ब्राह्मीपानक, ब्राह्मीतैल, ब्राह्मीघृत, ब्राह्मरसायन, सारस्वतारिष्ठ, सारस्वतघृत, ब्राह्मीवटी, सोमनाथरस, स्मृतीसागररस, उन्मादगजकेशरी ।

वक्तव्य : –

ब्राह्मी एवं मण्डूक पर्णी नामक द्रव्यों में प्रायः मतभेद है कुछ विद्वान दोनों को भिन्न–भिन्न द्रव्य मानते हैं ब्राह्मी – Bacopa monnieri Rennell जलनीम को मानते हैं। अधिकतर विद्वानों की यही धारणा है। यादव जी त्रिविक्रम आदि आचार्यो का विचार है कि मण्डूपर्णी के आकृति एवं रचना के अनुसार एक ही किस्म के पौधे है जोकि भिन्न नहीं है। जलनीय एवं मण्डूकपर्णी (ब्रह्मीवूटी) पर शोध कार्य चलरहे दोनों ही उपयोगी वनस्पति है।

187 हिङ्गु (हींग)

द्रव्यनाम......................संस्कृत..........................हिंङ्गु रामठ. बाह्लीक, सहस्त्रवेधी
हिन्दी..........................हींग ।
सिंहली.........................पेरून्क्यांग
लैटिन..........................**Ferula foetida** Regle.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गण : –

चरक ने दीपनीय, श्वासहर, एवं संज्ञास्थापन महाकषाय में तथा सुश्रुत ने पिप्पलादिवर्ग एवं शिरोविरेचन वर्ग में उल्लेख किया है।

निरूक्ति : –

हिङ्गु : – हिनोति शीघ्रंगच्छति नांसां वर्धते च स्वुगणै" वा "हि गतौ वृच्छौच" यह नाक अपने गंध विशेष के कारण नासिका में प्रविष्ठ कर जाता है।

रामठम् : – रमठे उदीच्य देश विशेषे भवम्" रमते वा जना अनेन यह रमठ नामक उत्तर देश विशेष में अधिक पैदा होता है, या उत्तम मसाले के रूप में यह आहार में रूचि उत्पन्न करके अग्नि को प्रदीप्त करता है।

वाल्हीक : – वाहली के उदीच्य देशे भवतीति" यह वाल्हीक नामक देश विशेष में विशेष रूप से उत्पन्न होता है।

जतुक : – जायते प्रादुर्भवाति वृक्षस्य रस रूपेण इति जतु जतुकं वा" अर्थात् यह रस या निर्यास के रूप में प्रयोग किया जाता है।

स्वरूप परिचय : –

हींग का 1 मी0 से 3 मीटर तक ऊँचा वहुवर्षायु पौधा होता है। काण्ड मृदु बहुशाखीय होता है। मूल–रालीय एवं गंध युक्त पर्ण–रोमश, संयुक्त, 2–4 पक्षयुक्त, अन्तिम खण्डों के पत्रतट मुड़े हुये, सरलधार वाले या सूक्ष्मदन्तुर एवं पत्रधार काण्ड संसक्त होते हैं। फल–वेलाकार नलिकाकार। हींग के फलों को यूनानी में अग्नुदान कहते हैं। औषध उपयोग में इस पौधे के काण्ड काण्ड एवं मूल में चीरा लगाकर राल या गोंद प्राप्त किया जाता है जिसें हींग कहते हैं। चीरे लगाये हुये पौधे से सफेद दूध जैसा गाढा रस निकलता है । इस स्त्राव को मिट्टी आदि कंकड़ से वचने के लिये स्वच्छ वर्तनों एवं थैलियों में एकत्रित किया जाता है । 4–5 वर्ष के आयु के पौध से हींग का संग्रह किया जाता है।

पुष्पकाल..........................सितम्बर, अक्टुबर ।
फलकाल.........................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग......................नियसि (गोंद) फल ।
मात्रा.............................नियसि – 1 से 4 रत्ती।

प्राप्तिस्थान : –

यह अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, जम्मूकश्मीर के सीमान्तक्षेत्रों में कहीं–कहीं पाया जाता है। लद्दाख क्षेत्र में इसकी अन्य किस्में पाई जाती है। भारतवर्ष में हींग का आयात मुख्यरूप से अफगानिस्तान एवं फारस से होता है। पाकिस्तान से भी हींग आयात की जाती है।

मिलावट : –

बाजारों में कई किस्म की हींग मिलती है, कभी–कभी राल की तरह जमी हुई हींग देखने को मिलती है। हींग का कराहुआ भाग पीताभवर्ण का, पारभासी या सफेदरंग का अपारदर्शक होता है। जो उत्तरोत्तर गुलाबी तथा लाल रंग का अन्ततः लालिमा लिये हुये भूरे रंग का होता है। फारस से हींग चमड़े के थैलों में बांध कर अन्य देशों को भेजी जाती है। इसके थैले खोजने पर शुद्ध हींग अर्धघन द्रव के रूप में होती है। व्यापारी इसे पृथक कर हीराहींग के नाम से विक्रय करते हैं। हींग में लहसुन की तरह उग्र स्थायी गंध होती है स्वाद में यह कटु–निम्न होती है। उत्तम हींग

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

को जल में घोलने से पूर्ण रूप से घुल जाती है। इसका विलयन दुधिया घोल जैसा होता है। दियासलाई लगने पर उत्तम हींग प्रायः पूरी की पूरी जल जाती है, इसको जलाने पर 3 से 5% तक भस्म प्राप्त होती है। परीक्षा आम हींग सल्फ्यूरिक एसिड के सम्पर्क से इसका गाठे लाल रंग का या लालिमा लिये हुये लाल रंग का हो जाता है। पुनः जल में एसिड को साफ करने पर बैंगनी रंग का हो जाता है। हींग के ताजे कटे हुये तल पर नाइट्रिकएसिड डालने पर उसका रंग हरा हो जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –

गुण–लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, सर, रस–कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफ–वातशामक, पित्तवर्धक, उत्तेजक, वेदनास्थापन, आक्षेपहर, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, शूलप्रशमन, कृमिघ्न, जन्तुघ्न, कफनिस्सारक, आर्तवजनन, कटुपौष्ठिक, वल्य, ज्वरघ्न, यूनानी मतानुसार हींड्गु चौथे दर्जे में गरम एवं दूसरे दर्जे में रूक्ष है।

आमयिक प्रयोग : –

अग्निमाघ, अजीर्ण, अरोचक, आध्मान कृमि गुल्म तथा उदररोगों में विशेष उपयोगी है, फुफुसरोगों में हींग विशेष गुणकारी है, गृध्र सी अर्दित, मन्यास्तम्भ, पक्षाघात, अपतन्त्रक आदि वातव्याधियों में यह उपयोगी है। शीतज्वर में हींग उपयोगी है। इससे नाड़ी की गति में सुधार होता है हींग से गर्भाशय का संकोच होकर ऋतु स्त्राव होता है और पेट का दर्द कम होता है। प्रसुता स्त्री को हींग देना अच्छा है । दन्तकृमि में हींग को जरा फुलाकर कृमिवाले दांत में दवाने से लाभ होता है। कामला में हींग का आंख में अञ्जन करने से लाभ होता है। मन्जातन्तु के विकारों में भी उपयोगी है।

रासायनिक संगठन : –

हींग में 40–64% तक रालीयअंश, 25% गोंद, एवं 6 से 17% तक उत्पन्न तैल पाया जाता है, इसमें टर्पीन्स, डायसन्सल्फाइड, आदि तत्व पाये जाते हैं। रालीय अंश का आसवन करने से अम्बेलिफेरोन नामक तत्व प्राप्त होता है।

मुख्ययोग : –

हिंग्वादिवटी, हिंग्वष्ठकचूर्ण, रजःप्रवर्तनीवटी, हिंगुकर्पूरवटिका, चित्रकादिवटी, गैसान्तकवटी, शंखवटी, लशुनादिवटी ।

188 चोरक (चोरा)

द्रव्यनाम......................संस्कृत..........................चोरक, तस्कर।
हिन्दी..........................चोरा, गढ़वाली–चोरा
लैटिन..........................**Angelica glauca Edgew.**

गण : –(1) सुश्रुत ने एलादिगण में चोरक का उल्लेख है। डल्हण ने ग्रन्थिपर्ण सदृश सुगन्धिद्रव्य विशेष को चोरक लिखा है। अष्ठांगसंग्रह कार ने संज्ञास्थापन में उल्लेख किया है।

स्वरूप परिचय : –

यह हिमालय में उपलब्ध वहुवर्षीय मूल वाला 2 से 4 मीटर तक ऊँचा पौधा है। मूल–गांठदार, नवीन जड़े 1 फुट से 2 फुट तक लम्बी, एवं उग्रसुगन्धित होती हैं। काण्ड–मृदु रोमिल, नालदार, पर्ण – पत्रकों में त्रिपत्रक, 6 से 9 ई0 तक लम्वा, पत्रतट – दन्तुर । पुष्प – शाखाओं पर छत्रक में श्वेताभ वर्ण के , बीज–सोया सघश, चपटे, रेखाकार इसकी दूसरी किस्म भी हिमालय में पाई जाती है जिसे कठचोरा Angelia archangelica Linn. कहते हैं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल..........................अगस्त, सितम्बर।
फलकाल.........................सितम्बर, अक्टूबर।
प्रयोज्य अंग.........................मूल (Rhizome)

प्राप्तिस्थान : –

यह उत्तराखण्ड हिमालय में 3,000 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,800 मीटर की ऊँचाई तक प्रायः नमदार ढलानों पर सुलभ है। इसके अतिरिक्त कश्मीर राज्य के वारामूला, खिलनमर्ग, सोनमर्ग, कुमाँयू, सिक्किम भूटान हिमाचल प्रदेश आदि स्थानों पर सुलभ है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –(2)

मूल–कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, दीपन, पाचन, एवं उत्तेजक है। अजीर्ण एवं विवन्ध में इसका प्रयोग किया जाता है। चोरक लघुपाकी, हृद्य बात, कण्डूनाशघ्न कासघ्न, रुधिरविकार, कृमि एवं भूतवाधा हर है।

मुख्ययोग : –

महासुगन्धिअगद, वालसूर्यअगद।

189 गर्जर (गाजर)

द्रव्यनाम : ....संस्कृत .... गृञ्जनक, गर्जर नारङ्गवर्णक।
हिन्दी .... गाजर।
लैटिन .... **Daucus Carota** Linn. Var. D satira Dc

गण :– (1) चरक ने चिकित्सा स्थान के कतिपय स्थलों पर गाजर का उल्लेख किया है। अर्शोघ्न एवं अतिसारहर महाकषायों में भी उल्लेख मिलता है।

स्वरूप परिचय :–

गाजर के एक वर्षायु एवं द्विवर्षायु क्षुप होते हैं। पर्ण पृश्नवत्, अनेक भागों में विभक्त, कटे हुये, पुष्प–श्वेत–पीताभ, 'छांत्राकार, गुच्छों में, बीज 1/8 इंच लम्बे, आयताकार एवं रोमश होते हैं। मूल–मूली सघश नारंगी वर्ण का मांसल, मधुर या लाल चमकीला होता है।

पुष्पकाल ....अगस्त, सितम्बर ।
फलकाल.......................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग.................... मूल, बीज ।

प्राप्तिस्थान :–

गाजर की भारत के सभी प्रान्तों में खेती की जाती है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : – (2)

रस–मधुर, कषाय, विपाक–मधुर, वीर्य–उष्ण, कर्म–वात–कफघ्न। संग्राही, बीज–गर्भस्त्रावकर, उत्तेजक ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग : –

गाजर का शाक शोथ में उपयोगी है। अतिसार में गाजर का यूष उपयोगी है। अर्श, उदररोग में गाजर का शाक पथ्य है। गाजर का मद्य भी तैयार किया जाता है। कच्ची गाजर कृमिघ्न होती है। रक्तातिसार, शूल, प्रवाहिका शोथ एवं ग्रहणी विकार में प्रयोग किया जाता है। सलाद, अचार, शाक एवं हलवा आदि बनाने में गाजर का प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन :–

गाजर में प्रोटीन, स्नेह, केल्सियम, फासफोरस, लौह, विटामीन्स, निकोटिनिक एसिड आदि कतिपय तत्व पाये जाते हैं। हरी गाजर विशेष उपयोगी है।

190 भूतकेशी (भूतकेश)

द्रव्यनाम......................संस्कृत..........................भूतकेशी, लोमशा, भूतजटा ।
हिन्दी...........................भूतकेश ।
लैटिन............................**Selinium Vaginatum** C.B. Cl.

गण :– चरक ने महापैशाचिक घृत में भूतकेशी का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :–

भूतकेशी=भूतइवकेशं" अर्थात् भौमिककाण्ड घने रोम वाला होने से भूतकेश कहते हैं। लोमशा एवं भूतजटा आदि पर्याय भी भौमिक काण्ड के आकृति बोधक है।

स्वरूप परिचय :–

यह हिमालय में उपलब्ध बहुवर्षायु मूलवाला एवं काण्ड एकवर्षायु वाला पौधा है। काण्ड 1 मी0 से 2.5 तक ऊँचा शाखीय होता है। भौमिक काण्ड घने वालों वाला, सुगन्धित, मूल लम्बा विचित्रगन्ध वाला होता है। पर्ण– द्वि, त्रिपत्रक, बारीक गाजर के सदृश सुगन्धित होते हैं। पुष्प छात्रकार गुच्छों में श्वेताभवर्ण के होते हैं। फल (बीज) रेखाकार, सौंफ सदृश। इसके अलावा अन्य किस्म भी हिमालय में पाई जाती जिसे मूर या मुरामांसी **Selinium Wallichisnum** (Dc.) Riz. कहते हैं। इस वनस्पति का भौमिक काण्ड घने रोमदार एवं सुगन्धित होता है।

पुष्पकाल...................... जुलाई, अगस्त ।
फलकाल......................अगस्त, सितम्बर ।
प्रयोज्य अंग......................भौमिकाण्ड (मूल) ।

प्राप्तिस्थान :–

ये दोनों वनस्पतियाँ हिमालय की घाटियों उत्तराखण्ड गढ़वाल, हिमाचलप्रदेश, जम्मु कश्मीर राज्य, कुमांयू, आदि पर्वतीय क्षेत्रों में 2,800 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,600 मीटर की उँचाई तक सर्वत्र सुलभ है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष अधिष्ठान मर्दन कर्मज्ञान ?

भूतकेशी, तिक्त, शीत, कटुविपाक, कर्म–त्रिदोषघ्न, वर्ण्य, भूतवाधाहर, रक्तपित्त, शोथ, नाड़ीव्रण आदि रोग नाशक, उन्माद, अपस्मार में इस द्रव्य का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। जटामांसी के समान प्रायः इसके गुणधर्म मिलते हैं।

वक्तव्य :– संहिता एवं निघण्टु ग्रन्थों में मांसी द्वय एवं मासीत्रय के नाम से अलग–अलग उल्लेख है। अधिकतर विद्वानों ने जटामांसी का ही पर्याय भूतकेशी मान लिया है। लेखक के विचार से जटामांसी, भूतकेशी एवं **भूरामांसी (आकाशमांसी)** तीनों अलग–अलग द्रव्य हैं।

1. मांसी द्वयं कषयं, वर्ण्य पितकफापहम् ।
रसोघ्नं च सगंधीस्पात्, वातघ्न केशामुत्तमम् ।। रा. नि.
आकाशमांसी हिमा शोथ व्रण नाड़ीरूजापहा ।
लूतागर्दभ जालादि हारिणी, वर्णकारिणी ।। रा. नि.

मंजिष्ठादिवर्ग (RUBIACEAE)

वर्गलक्षण :– इस वर्ग में बड़े वृक्ष–वृक्षक, क्षुप, लतायें आदि वनस्पतियां पायी जाती हैं। पर्व–अभिमुख या सगुच्छ होते हैं। ये पत्र सादे अखण्ड अभिमुख किनारे वाले होते हैं। उप पर्ण दो पत्रों के युगल के मध्य में शाखा पर निकलते हैं। पुष्पाभ्यान्तर कोष की ४–५ पंखुड़ियां होती हैं। पुंकेशर संख्या में पंखुड़ियों के समान और उनके ऊपर के भाग में आये हुये होते हैं। गर्भाशय अद्यःस्थल और फल की तरह होते हैं। इस कुल में कई हजार वनस्पतियां पायी जाती हैं। औषध उपयोग में विशेष रूप से मंजिष्ठा मदन फल, गन्धप्रसारिणी, नाड़ीहिंगु आदि हैं। उस वर्ग की वनस्पतियां ज्वरघ्न, रक्तशोधक, सारक, मादक और विषघ्न है।

१९१– नाड़ीहिंगु (डीकामाली) (DECAMALI)

द्रव्य नाम– संस्कृत – नाड़ीहिंगु, हिंगुशिवाटिका,
हिन्दी – डीकामाली, सिंहली, गेलित
लैटिन –

निरुक्ति– **हिंगुशिवाटिका** – हिंगु न इव शिरां, पत्रशिरां अरति इति
अर्थात् पत्रकलिकाओं में हींग सद्यशगन्ध होती हैं। हिंगुपानी भी है। गन्ध बोधक है।

स्वरूप परिचय :

डीकामाली के बहुशाखीय मध्यम आकार के वृक्षक होते हैं। पौधा ३ मीटर से ५ मीटर तक ऊँचा होता है। पर्ण – ५ से. मी. से लेकर १२ सेंटीमीटर तक लम्बे होते हैं। पर्णवृन्त के मध्य में दो छोटे उपपर्ण होते हैं। पत्रकलिकाओं को तोड़ने पर रस निकलता है, जिसमें हींग सदृश्य गन्ध होती हैं जिसके कारण इसे नाड़ीहिंगु कहते हैं। पुष्प–पीताभ–हरित वर्ण के सुगंधित होते हैं। पौधे से जो निर्यास निकलता है उसे नाड़ीहिंगु कहते हैं।

पुष्प काल – दिसम्बर, मार्च,
फलकाल – पुष्पकाल के बाद
प्रयोज्य अंग – गोंद (निर्यास)
मात्रा – १/२ र. २ र.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान :–

भारत के प्रायः उद्यानों में इसके वृक्षक मिलते हैं। गुजरात, काठियावाठ मद्रास में इसके गुल्म पाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान मेदेन कर्मज्ञान :

रस–कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म– कफ–वातघ्न, दीपन, विष्ठम्भ एवं आध्माननाशक है। संकोच प्रतिबन्धक, कोष्ठ–वातप्रशमन, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, श्लेष्म–निःस्सारक, और त्वग्दोषहर है। आंतों के रोगों में डीकामाली का प्रयोग करने से वायु का सरण होता है एवं वेदना शान्त होती है। गोलकृमि केंचवे, में यह उत्तम औषध है। कुपचन एवं पेट के आध्मान में इसको सुगन्धित द्रव्यों के साथ देते हैं। जीर्णत्वचा के रोगों एव व्रणों में भी यह उपयोगी है। चरक ने उन्माद, अपस्मार की चिकित्सा में इस द्रव्य का उपयोग किया है।

192 मञ्जिष्ठा (मंजीठ)

द्रव्यनाम......................संस्कृत.........................मञ्जिष्ठा, विकसा, योजनवल्ली, रक्तांगा, समङ्गा ।
हिन्दी......................... मंजीठ ।
सिंहली..........................वेल्लमदाता।
लैटिन.......................... **Rubia cordifolia Linn.**

गणः (1) : चरक के वर्ण्य, विषघ्न, एवं ज्वरहर महाकषाय तथा सुश्रुत के प्रियङ्गवादिगण एवं पित्तसंशमन गण में मञ्जिष्ठा का पाठ है।

निरुक्तिः

मञ्जिष्ठा :– मञ्जौ शोभने वर्णे पीष्ठाति इति'' यद्वाअतिशयेन मञ्जु इति'' अर्थात् यह रक्तशोधक होने से सुन्दरता को प्रदान करता है।

विकसा – विकसति दूरं इति'' अर्थात् आरोही होने के कारण लता काफी दूर तक फैली रहती है।

योजनवल्ली :– सुदूर प्रसरात्'' योजन वल्ली अस्याः इति'' इसकी वेल खूब विस्तार से फैलती है, मृदु काण्ड होने से इसे समङ्गा कहते हैं।

रक्ताङ्गा :– मूल जड़े रक्तवर्ण की होती हैं।

स्वरूप परिचय :–

अतिप्रसरी बहुवर्षायु लता जाति की वनस्पति है। काण्ड– चतुष्कोणीय, रक्ताभ, पर्ण– सवृन्त, खर, हृदयाकार, चार–चार चक्रों में लट्वाकार– ताम्बूलाकार, नुकीले होते हैं। पुष्प– छोटे–छोटे श्वेताभ रक्तवर्ण के गुच्छों में खिलते हैं। फल– गोल, मांसल पकने पर कृष्णााभ रक्तवर्ण के होते हैं। मूल– 15 से0 मी0 30 सेन्टिमीटर लम्बा मृदु, रक्तवर्ण का होता है।

पुष्पकाल..........................जून, जुलाई ।
फलकाल.......................सितम्बर, अक्टूबर ।
प्रयोज्य अंग......................मूल ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान :–

यह पर्वतीय प्रदेशों में 900 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,000 मीटर की ऊँचाई तक, उत्तराखण्ड, कुमांयु, हिमाचलप्रदेश, जम्मु कश्मीर, सिक्किम, दार्जिलिंग आदि स्थानों पर सर्वत्र सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :(2)

रस–मधुर, तिक्त, वीर्य–उष्ण, विपाक–कटु, कफ–वातघ्न, वर्ण्य, विषघ्न पित्तसंशमन शोथघ्न, रक्तविकार, योनिरोग, प्रमेह एवं व्रणरोपक आदि विकार नाशक है।

आमयिक प्रयोग :

मञ्जिष्ठादिक्वाथ चर्मरोग एवं रक्तविकार में विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। गर्भाशय संकोच होने से प्रसव के बाद गर्भाशय की शुद्धि के लिये पिप्पलीमूल आदि द्रव्यों के साथ प्रयोग करने पर लाभ होता है। रक्तप्रदर, प्रमेह, कुष्ठ में इसका प्रयोग किया जाता है।

मिलावट :

बाजार में मंजीठ के नाम से कई द्रव्य मिलते हैं। सही मंजीठ रक्तवर्ण की भंगुर पानी में डालने पर आसानी से रंग नहीं छोड़ती है तोड़ने पर अन्दर से भी रक्त होती है। सिन्ध एवं अफगानिस्तान से भारत में मंजीठ आती है।

रासायनिक संगठन :–

मूल में राल, गोंद, शर्करा, चूने के योग एवं रञ्जक पदार्थ पाये जाते हैं। पीत ग्लुकोसाइड मंजिस्टिन आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :–

महामञ्जिनष्ठादिक्वाथ, महामञ्जिनष्ठाद्यासव, खदिरारिष्ठ,

193 मदन (मैंनफल)

द्रव्यनाम……………………संस्कृत………………………मदन, पिण्डीतक, राठ, छर्दन, फल,
हिन्दी…………………………, मदनफल ।
सिंहली…………………………कुथरुमेन।
लैटिन…………………………**Randia dumetorum Lam.**

गण (1)

चरक के 19 फलिनी द्रव्यों में एवं सुश्रुत के आगवधादि, मुष्कादि और उर्ध्वभागहरगण में मदन का उल्लेख है।

निरुक्ति : (2)

मदन :– मदयति इति मदन'' यह वामक आदि गुणों के कारण नशा सा पैदा करता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पिण्डीतक :– पिण्डीं इतः इति पिण्डीतकः" यह पिंडाकृति में वृद्धि करता है। पिण्डाकार में वृद्धि होने से पिण्डीतक कहते हैं।

करहाटक :– करं हन्ति इति वा दुःस्पर्शत्वात्" करं हयति इति वा" अर्थात् इसके वृक्ष कण्टकित होने से स्पर्श करने पर हाथों पर चूभते हैं। फल झागदार होने से हाथ पैर साफ होते हैं।

स्वरूप परिचय :–

वृक्ष गुल्मजातीय, कांटेदार, एवं काण्ड बहुशाखीय मध्यम आकार का होता है। शाखायें तीक्ष्ण कण्टकयुक्त, पर्ण–वृत्त, मसृण, हरित, अपामार्ग के पत्रों सदृश। पुष्प–छोटे, सुगन्धित, श्वेताभ–पीत, फल–छोटे पिण्डाकार, अमरुद सदृश, पकने पर पीतवर्ण के चिकने कठोर बीजों वाले होते हैं। फलों के चूर्ण को पानी में डालने पर साबुन की तरह झाग देता है।

पुष्पकाल......................मार्च, अप्रैल।
फलकाल....................पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग.....................फल, बीज।
मात्रा–...................फल – 1 से 2 ग्राम।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :– (2)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–मधुर, कषाय, कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–वामक, लेखन आस्थापनोपग, अनुवासनोपंग, वातानुलोमक, ।

आमयिक प्रयोग :–

यह प्रतिश्याप, ज्वर, विद्रधि, कुष्ठ, गुल्म शोथ, आनाह एवं व्रण का नाश करने वाला है। मैनफल उत्तम वामक द्रव्य माना जाता है। चूर्ण को पानी में भिगोकर एवं स्वरस में मधु, सेंधानमक मिलाकर खाली पेट लेने से एक दो अच्छे वमन होते हैं। कभी–कभी उलटी के बाद दस्त भी होते हैं। चरक ने वमन, आस्थापन एवं अनुवासन के लिये मदनफल को श्रेष्ठ माना है।

रासायनिक संगठन :–

फलों में सैपोनिन, वलेरिक एसिड, (राल) रेजिन, तथा कुछ रञ्जक पदार्थ पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :– मदनादिलेप, मदनकल्प।

वक्तव्य :–
लेखक के विचार से मदन, करहाटक एवं महापिण्डी तीनों भिन्न–भिन्न द्रव्य है। करहाटक से **Gardenia turgida Roxb.** एवं महापिण्डी **Randis uliginosa Dc.** कहते हैं। निघण्टुकारों ने भी मदन, करहाटक एवं पिण्डीतक तीनों द्रव्यों को अलग–अलग स्थलों पर भी उल्लेख किया है।

194 प्रसारिणी

द्रव्यनाम......................संस्कृत..........................प्रसारिणी, भद्रबला, सरणा,
हिन्दी..........................गन्ध - प्रसारिणी, प्रसारण वेल,
सिंहली..........................आपसकुमान्दी।
लैटिन.........................**Paederia foetida Linn.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरूक्ति :–(1)

प्रसारिणी– प्रसार्यति अङ्ग अनया इति" अर्थात् इसकी लता प्रर्सणशील होती है, या अपने गुणों के कारण वात आदि का नाशकर सन्धियों में चेष्ठा प्रदान करता है। सारणा, प्रतानिनी, आदि शब्द इसी अर्थ के बोधक है। सभी शब्द गत्यर्थ बोधक हैं।

स्वरूप परिचय :–

यह आरोही लता जाति की वनस्पति है। इस लता की शाखायें प्रसरणशील गन्ध वाली होती हैं। तना, लम्बा, पतला एवं कुछ स्निग्ध होता है। पर्ण–अभिमुख, 5 से 15 सें0 मी0 लम्बे 2–5 से0 मी0 चौड़े, लट्वाकार, नुकीले एंव सवृन्त होते हैं। पत्रों को मसलने पर बदबूदार गन्ध आती है। पुष्प–गुलाबी रंग के मञ्जरियों में खिलते हैं। फल–चपटा, धारीदार, चिकना एवं एक बीज वाला होता है।

पुष्पकाल........................फरवरी, मार्च ।
फलकाल......................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग......................काण्ड, मूल।

प्राप्तिस्थान :–

शिवालिक वनखण्ड, देहरादून आदि स्थानों पर यह वनस्पति पाई जाती है। भारत के प्रायः सभी प्रदेशों में यत्र, तत्र यह देखने को मिलती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

रस–तिक्त, वीर्य–उष्ण, विपाक–कटु, कर्म–वात पित्तनाशक, त्रिदोषघ्न, वर्ण्य, वातव्याधिहर।

आमयिक प्रयोग :

सन्धिवात एवं वातव्याधि में क्वाथ, कल्क दुग्ध या तैल साधित सेवन करने से लाभ होता है। मूत्रकृच्छ्र में प्रातः काल नारियल के पानी में प्रसारिणी का रस पीने से लाभ होता है। बालकों की हिक्का में स्वरस लेप या नस्य के रूप लाभ करता है। यह वातरक्त, आमवात, शोथ, सन्धिवात, आदि रोगों में उपयोगी है।

रासायनिक संगठन :

इसके मूल एवं पत्रों में दुर्गन्धित उड़नशील तैल तथा अल्फापेडिरिन, बिटापेडिरिन नामक क्षार पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :

प्रसारिणीतैल, महानारायणतैल, महापैशाचिक घृत, माषतैल, बलारिष्ठ, प्रसारिणीलेह, कुब्जप्रसरिणीतैल।

वक्तव्य :

प्रदेश भेद से प्रसारिणी के सन्दर्भ में मतभेद है। कुछ विद्वान प्रसारिणी एवं गन्ध प्रसारिणी दोनों भिन्न–भिन्न द्रव्य मानते हैं। संहिता ग्रन्थों में प्रसारिणी के नाम से उल्लेख मिलता है। राजस्थान के वैद्य खीप नामक वनस्पति को गन्ध प्रसारिणी मानते हैं। लेखक के विचार में **Paederoa foeteda Linn.** शास्त्रीय प्रसारिणी है। दक्षिण भारत में **Merremia hastata** को प्रसारिणी मानते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

195 कदम्ब (कदम)

द्रव्यनाम..................संस्कृत.........................नीप, कदम्ब, राजकदम्ब, धाराकदम्ब, प्रियकः हलप्रिय ।
हिन्दी.........................कदम, कदम्ब ।
सिंहली.......................अम्बुल वाकमी ।
लैटिन.........................**Anthocephalus indicus A. Rich.**

गुण : (1)

चरक ने शुक्रशोधन एवं वेदना स्थापन महाफषाय एवं कषायस्कन्ध में उल्लेख किया है। सुश्रुत ने न्यग्रोधादि एवं रोध्रादिगण में उल्लेख किया है।

निरूक्ति :–

नीप–नयति नीयते वा इति" नीप अर्थात् यह मधुरता आदि गुणों को धारण करता है।

कदम्ब :– कदति हिनस्ति वद्धकोष्ठता सरत्वात् इति" अर्थात् यह सर होने के कारण विवन्ध को नष्ट करता है।

प्रियक :– प्रीणति इति प्रियकः" अर्थात् पुष्प की सुगन्ध मन को प्रिय होती है।

स्वरूप परिचय :

वृक्ष मध्यम आकार का बहुशाखीय होता है। पर्ण–स्निग्ध, महुये के सद्दश, सघन पत्र होते हैं। पुष्प–गोल, नारंगी वर्ण के कठिन विशिष्ठ सुगन्धी वाले । फल–कठिन, गोल, गांठदार होता है।

पुष्पकाल........................मई, जून ।
फलकाल......................शीत काल ।
प्रयोज्य अंग.....................त्वक्, पत्र, फल ।

प्रप्तिस्थान :

इसके वृक्ष प्रायः उद्यानों में लगाये हुये पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त जंगली किस्म भी सर्वत्र वनों में पाई जाती है जिसे धाराकदम्ब **Mitragyna parvifolia** कहते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेने कर्मज्ञान :(2)

रस–त्तिक्त, कटु, वीर्य–शीत, विपाक–कटु कर्म–वात पित्तघ्न, शुक्रवर्धन, ज्वरघ्न, वेदना-स्थापन।

आमयिक प्रयोग :

व्रण प्रक्षालन के लिये पत्रक्वाथ का उपयोग होता है। मूत्रकृच्छ एवं रक्तातिसार में मूल एवं त्वचा का क्थाथ घृत एवं सोंठ के चूर्ण के साथ प्रयोग करते हैं। रक्तपित्त, अश्मरी एवं मूत्राघात में भी प्रयोग होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

196 हरिद्रु (हलदू)

द्रव्यनाम......................संस्कृत..........................हारिद्र, पीतदारु, कदम्बपुष्प।
हिन्दी..........................हलदू,
लैटिन..........................**Adina cordifolis (Roxb) Benth.**

निरुक्ति :

पीतदारु– पीतं काष्ठमस्य" अर्थात् इसका काष्ठ पीले रंग का होता है इसी कारण इसे हारिद्र भी कहते हैं।

कदम्बपुष्प : इसके पुष्प कदम्ब पुष्प सदृश होते हैं।

स्वरूप परिचय :

इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। काण्ड सीधा, अनेक शाखाओं युक्त, काष्ठसार पीतवर्ण का, पर्ण–अभिमुख 8 से से0 मी0 20 से0 मी0 लम्बे–चौड़े, हृदयाकार पत्राग्र तीक्ष्ण सवृन्त होते हैं। पुष्प–कदम्ब पुष्प सदृश गोलाकार होते हैं।

पुष्पकाल.........................अप्रैल, मई ।
फलकाल........................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग.......................काष्ठ, पत्र ।

प्राप्तिस्थान :

भारत के उष्ण प्रदेशों में इसके वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :(2)

गुण– तिक्त, कटु विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, वर्ण्य, व्रणशोशन, त्वचाविकारनाशक, कफहर।

जटामांस्यादिवर्ग VALERIANACEAE

वर्गलक्षण :–

इस वर्ग में बहुवर्षायु या वर्षायु पौधे पाये जाते हैं। इनके मूल या भौमिक काण्ड तीव्र सुगन्धित, पर्ण–मूलोद्भव, अभिमुख, अनेक, उपपत्ररहित, पुष्प–स्त्रीपुंसोपयोगी, अथवा नर–मादा पृथक–पृथक पुष्पपंखड़ियाँ संयुक्त, नलिकाकार, पुंकेशर ऊपर आये हुये संख्या में प्रायः 4 होते हैं। परागकोश दो अन्तराल वाले, गर्भाशय अधःस्थित, फल–अस्फोटी एवं शुष्क होते हैं। इस वर्ग में जटामांसी, तगर, आदि कतिपय उपयोगी वनस्पतियां पाई जाती हैं। इस कुल की वनस्पतियाँ मेध्य, वर्ण्य त्रिदोषघ्न, नाड़ीवल्य होती है।

197 जटामांसी (मांसी)

द्रव्यनाम.....................संस्कृत.........................जटामांसी, मांसी, जटिला, सुलोमशा ।
हिन्दी.........................जटामांसी, वालछड़ ।
सिंहली..........................जरामांसी ।
लैटिन.........................**Nardostachys jatamansi DC.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गण :

चरक ने संज्ञास्थापन एवं कण्डूघ्न, महाकषाय में जटामांसी का उल्लेख किया है। सुश्रुत ने व्रणितोपासनीय अध्याय में जटिला का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :

मांसी– मन्यते ज्ञायते मेध्यादिगुण विशेषयुक्ता" अर्थात् मूल में मेध्य आदि गुण विद्यमान हैं ।

जटामांसी – जटासदृश भौमिक काण्ड संज्ञास्थापन एवं मेध्य आदि गुणों वाले होते हैं। रोयेंदार, मूल होने से इसे जटिला, सुलोमशा भी कहते हैं।

स्वरूप परिचय :

जटामांसी के बहुवर्षायु भौमिक काण्डवाले, एकवर्षायु शाकीय पौधे होते हैं। काण्ड 10 से0 मी0 तक ऊँचा मृदु शाखीय होता है। पर्ण–मूलोद्भव, संख्या में अनेक, 15 सें0 मी0 से 18 से0 मी0 लम्बे, शिरायें लम्बाई के रुख में पत्र–आधार से बड़े उपर की ओर कम, रूपरेखा में आयताकार या कुछ लट्वाकार, विनाल, पुष्प–मुण्डक में शाखाग्र संख्या में अनेक, गुलाबी–श्वेत रंग के सुगन्धित, मूल–भौमिक काण्ड तीव्र सुगन्धित लोमश गुच्छो में रक्ताभवर्ण के जटा सदृश सघन रेशोंदार। मूल बारीक पतला खाकी रंग का होता है।

पुष्पकाल......................अगस्त, सितम्बर ।
फलकाल......................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग......................भौमिक काण्ड।

प्राप्तिस्थान :

यह हिमालय में 3,000 मीटर की ऊँचाई से लेकर 4,000 मीटर की ऊँचाई तक प्रायः उत्तराखण्ड गढ़वाल, कुमायुँ, जम्मू कश्मीर सिक्किम, भूटान, नेपाल आदि बर्फीले पर्वतमालाओं में इसके क्षुप पाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

गुण–लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, रस–तिक्त, कषाय, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–शीत। प्रभाव–मानसिक दोषहर, भूतघ्न, कर्म–कफ पित्तशामक, संज्ञास्थापन, मेध्य, बल्य, वेदनास्थापन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, हृघ, हृदयोत्तेजक, रक्तस्तम्भन, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, मूत्रल, शोथहर।

आमयिक प्रयोग :

शिरोरोग एवं मानसिक विकारों में जटामांसी विशेष उपयोगी औषधि है। रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) में कारगर है। इसके अतिरिक्त उन्माद, अपस्मार, ग्रहवाधा, विसर्प, वातरक्त, नाड़ीदौर्वल्य में उपयोगी है। निन्द्रानाश में जटामांसी श्रृतशीतकषाय का प्रयोग किया जाता है।

चरक ने मूत्रल द्रव्यों के साथ जटामांसी का उल्लेख किया है यही कारण है कि अश्मरी चिकित्सा में मांसी का उल्लेख है। रक्ताभिसरण क्रिया को ठीक करने के लिये यह उपयोगी है। भूतावशेष जैसी चेष्टाओं में जटामांसी, ब्राह्मीस्वरस बच और मधु मिलाकर देने से लाभ होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठन :

जटामांसी में उड़नशीलतैल एवं जटामांसीन नामक तत्व पाया जाता है। इसमें क्रिस्टलाइन अम्ल एवं रालीय तत्व पाया जाता है।

मुख्ययोग :

मांस्यादिस्वाथ, मद्यपैशाचिकघृत, अरविन्दासव, पीप्पल्यासव, ब्राहमीवटी, मांस्यादिपौष्ठिकरसायन।

198 तगर (सुगन्ध-वाला)

द्रव्यनाम............................संस्कृत............................तगर, कुटिल, नत, वक्र।
हिन्दी............................तगरमूल।
सिंहली......................थूबराला।
लैटिन............................**Valeriana** wallichii DC.

गण : (1) चरक ने शीतप्रशमन महाकषाय, तिक्तस्कन्ध में एवं सुश्रुत के एलादिगण में तगर का उल्लेख है।

निरूक्ति :

तगरः– गीर्यन्ते प्राणाः अनेन इति'' गरं विष' गृ निगरणे'' अर्थात् यह प्रसिद्ध विषनाशक वनस्पति है।

नतः– नम्यते सुगन्धि द्रव्यै विशेषत्वात्'' यह द्रव्य अन्य सुगन्धि द्रव्यों से श्रेष्ठ है।

कुटिलः– कुटाति वक्रता प्राप्नोति पुष्पे'' कुट कौटील्ये'' अर्थात् मूल गांठें वक्र एवं कुटिल होती हैं।

स्वरूप परिचय :

इसके बहुवर्षायु शाकीय रोमश पौधे होते हैं। मूलस्तम्भ गांठदार, सुगन्धित, जड़े पतली, कई संख्या में, गुच्छेदार, पर्ण–मूलोद्मवा, स्थायी, सवृन्त, रूपरेखा में हृदयाकार–लट्वाकार 2 सें0 मीं0 से 5 सें0 मी0 लम्बे 3 सें0 मी0 चौड़े, पत्रतट–दन्तुर, लहरदार, काण्ड–पत्र संख्या मे कम एवं मूलोद्भवा पत्रों की अपेक्षा छोटे होते हैं। पुष्प शाखाग्र–गुच्छों में गुलाबी श्वेत वर्ण के होते हैं। पुष्प प्रायः एकलिंगी होते हैं।

पुष्पकाल.........................मई, जुलाई।
फलकाल.......................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग.......................मूलस्तम्भ, जड़ें।

प्राप्तिस्थान :

यह हिमालय प्रदेश के अनुष्णशीत घाटियों में 1,200 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,000 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

गुण–लघु, स्निग्ध, सर, रस–तिक्त, कटु, मधुर कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधान कर्म–त्रिदोषहर, वेदनास्थापन, आक्षेपहर, मेध्य, दीपन, शूलप्रशमन, सारक, यकृदुत्तेजक, कफघ्न, श्वासहर, हृदयोत्तेजक, मूत्रजनन, चक्षुष्य, कुष्ठघ्न।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग :

यह नेत्ररोग, शिरोरोग, विष, रक्तविकार, अपस्मार आदि रोगों में उपयोगी है। इसके काण्ड से हृदय की शक्ति और नाड़ी की गति बढ़ती है। संज्ञावह एवं चेष्टावह नाड़ियों पर इसका प्रभाव देखा गया है। श्वास नलिका के संकोच विकास से उत्पन्न श्वास में तगर का अच्छा उपयोग होता है धूपन एवं हवन सामग्री में तंगर पंचाग का उपयोग किया जाता है। यह वातरक्त, राजयक्ष्मा, उन्माद, कुष्ठ और उरूस्तम्भ में प्रयोग किया जाता है। निन्द्रानाश में तगरचूर्ण लाभ करता है।

रासायनिक संगठन :

मूल में उड़नशील तैल पाया जाता है जो इसका मुख्य सक्रिय तत्व है। इसमें वलेरिक एसिड, टर्पीन एलकोहल, आदि तत्व पाये जाते हैं। इसमें फैटी एसिड आदि तत्व भी पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :

दशांगलेप, तगरचूर्ण, ब्राह्मीवटी।

वक्तव्य :

बाजार में कभी-कभी तगर के नाम से तगरकाष्ठ बिकता है जो अशुद्ध प्रतीत होता है। वलेरियन की जड़ें इसमें श्रेष्ठ हैं। भावप्रकाश ने नततगर एवं पिण्डतगर भेद से तगरद्वय का उल्लेख किया है।

भृङ्गराजादिवर्ग COMPOSITAE

वर्गलक्षण :

इस वर्ग की वनस्पतियाँ छोटे पौधों के रूप में अधिक एवं कुछ वृक्षक के रूप में पाई जाती हैं पर्ण-एकाकार, कदाचित् अभिमुख, या गुच्छाकार होते हैं। ये पत्र सादे या विभाजित होते हैं उपपत्र नहीं होते हैं। पुष्प- अनेक संख्यक मुण्डक के रूप में, ये छोटे-छोटे पुष्प एक चौड़ी परिधि में होते हैं। ये नर एवं मादा दोनों किस्म के होते हैं। कभी-कभी नर एवं मादा पुष्प अलग-अलग पाये जाते हैं। फल- प्रायः कृष्णवर्ण के जीरक सदृश, इन्हीं फलों को बीज भी कहते हैं। इस वर्ग के प्रायः मूल एवं पत्र सुगन्धित होते हैं।

इस वर्ग में कुष्ठ, पुष्करमूल, गोरखमुण्डी, कुसुम्ब, रास्ना, सहदेवी, अफसन्तीन, अकरकरा आदि उपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं।

199 भृंगराज (भंगरा)

द्रव्यनाम.......................... संस्कृत......................... भृंगराज, मार्कव, केशराज।
हिन्दी......................... भंगरा, भंगरा,
सिंहली......................... किकरिन्दी
लैटिन......................... **Ecilipta alba** Hassk.

गण : (1)

चरक ने कफज कास में एवं सुश्रुत ने कासश्वास में भृंगराज का उल्लेख किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरूक्ति :

भृंगराजः– भृङ्गान् रञ्जयति इति" अर्थात् यह भ्रमरों की तरह वालों को काला करता है।

मार्कवः– मारयति केशशौक्ल्यं विनाशयति" अर्थात् यह शिर के बालों की श्वेतता का नाश करता है। इसी कारण इसे केश रञ्जन एवं केशराज भी कहते हैं।

स्वरूप परिचय –

इसके एक वर्षायु, प्रसरणशील एवं कभी–कभी तलोत्थ बहुशाखीय पौधे होते हैं। काण्ड– खर रोमश, एवं श्वेताभरोमश, पर्ण–अभिमुख, आयताकार या भालाकार या अण्डाकार, छोटे वृन्तयुक्त, पुष्प–मुण्डक में श्वेताभवर्ण के होते हैं। पत्तियों को हाथ पर मसलने पर कृष्णाभ वर्ण का होता है।

पुष्पकाल......................अक्टूबर,नवम्बर।
फलकाल......................पुष्पकाल के साथ–साथ ।
प्रयोज्य अंग......................पंचाग

प्राप्तिस्थान : यह समस्त भारत के 1,600 मीटर की ऊँचाई तक नमदार एवं जलीय स्थानों पर सर्वत्र सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

गुण–रूक्ष, लघु, रस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–वातकफनाशक, शोथहर, वेदनास्थापन, रसायन, चक्षुस्य, केश्य, व्रणरोपण, केशवर्धन, दीपन, शूलप्रशमन रक्तशोधक, रक्तवर्धक, ज्वरघ्न।

आमयिक प्रयोग :

इसकी मुख्य क्रिया यकृत पर होती है पित्तस्त्राव ठीक होता है। आमाशय एवं पक्वाशय की पाचन क्रिया में सुधार होता है। यह आमवात, शिरःशूल में लाभ करता है। कफज कास में भांगरे का रस मधु से मिलाकर देने से लाभ होता है। रसायन के रूप में भांगरे का स्वरस विशेष उपादेय है। इसके सेवन से यकृत की क्रिया में सुधार होता है। कामला, पाण्डु आदि रोगों में उपयोगी है। उपदंश एवं श्वेत कुष्ठ में यह लाभ करता है। इसके अतिरिक्त पलित योनिशूल में उपयोगी है।

रसायनिक संगठन :

इसमें एक्लिप्टीन नामक ऐल्कलायड एवं क्षारोद पाया जाता है।

मुख्ययोग :

भृंगराजजैल, भृंगराजघृत, भृंगराजासव, गन्धकरसायन, षड्विन्दुतैल, अश्वकंचुकीरस, सूतशेरखररस, आनन्दभैखरस (कास) ।

वक्तव्य :

आयुर्वेद में रंग भेद से 3 प्रकार के भृंगराज का उल्लेख मिलता है। श्वेत, पीत, एवं कृष्ण। अभी तक कृष्ण भृंगराज के विषय में मतभेद है। पीत भृंगराज **Wedilia calendulacea** कहते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

200 कुष्ठ (कूठ)

द्रव्यनाम..................संस्कृत..........................कुष्ठ, गद, पाकल, काश्मीरज, राक् ।

हिन्दी..........................कूठ,कुठ।

सिंहली..........................गोदामहनेल।

लैटिन............................**Saussurea lappa** c.B.cl.

गण : (1) चरक के लेखनीय, शुक्रशोधन, आस्थास्यापनोपग महाकषाय एवं सुश्रुत के एलादिगण में कुष्ठ का उल्लेख है।

निरूक्ति : कुष्ठ– कुष्णाति रोगं इति!! यह वात आदि विकारों को दूर करता है।

पाकल– पाकं लाति इति' पाकल व्याधित्वात्'' यह उष्ण होने के कारण रोगों को जल्दी पाक करता है।
काश्मीरजः – यह कश्मीर प्रदेश में पैदा होता है।

वाष्प– वाष्यां भवं इति'' यह शीत स्थानों एवं जलीय प्रदेशों में होता है।

स्वरूप परिचयः कूठ का पौधा 09 मी0 से 2.10 मीटर तक ऊँचा मूल बहुवर्षायु सुगन्धित होता है। प्रतिवर्ष नयें मूल निकलते हैं। काण्ड सघन, मृदु बहुशाखीय। पर्ण–मूलोद्भव, रुपरेखा में त्रिकोणकार, हृदयाकार मूलपत्र काफी लम्बे–चौड़े 15 सेन्टी0 से 30 सेन्टीमीटर लम्बे चौड़े, मूलोद्भव पत्र बड़े एवं शाखीय पत्र छोटे कम चौड़े होते है। पुष्प–मुण्डक में अनेक गुच्छों में गोलाकार, शाखाग्र एवं पत्रकोणोद्मव, बैगनी रंग के होते हैं। बीज यवसद्यश मसृण एवं कठोर होते हैं। औषध प्रयोग में मूल का व्यवहार होता है। मूल–कन्द्रिल खुरदरा तोड़ने पर श्वेताभ रालीय, उग्रसुगन्धित स्वाद में तिक्त एवं चरपरा होता है।

पुष्पकाल........................अगस्त,सितम्बर,

फलकाल.......................पुष्पकाल के बाद।

प्रयोज्य अंग.......................मूल, औषध संग्रहकाल–अक्टूबर,

प्रप्तिस्थान : इसकी विशेष रूप खेती हिमाचल प्रदेश के लाहुलस्पीति, जम्बुकश्मीर, उत्तराखण्ड गढ़वाल के 2,900 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,600 मीटर की ऊँचाई तक उपलब्ध है। इन प्रदेशों में कूठ की खेती की विशाल योजना है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः (2)

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, कटु, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–कफनिस्सारक, श्वासहर, कफघ्न, शुक्रशोधन, रसायन, जन्तुघ्न, आर्तवजनन शूलप्रशमन

आमयिक-प्रयोग :

कुष्ठ – में धनियाँ एवं कूठ का लेप करते हैं अपस्मार में कूठ एवं वचा को मधु के साथ सेवन करते हैं। शिरोवेदना में मस्तक पर इसका लेप लाभ करता है। रसायन एवं भूतवाघाहर के रूप में कूठ का प्रयोग लोक में है। व्रणपर. लेप करने से व्रणजन्तु मर जाते हैं। आमवात में कूठ का चूर्ण एरण्ड तैल के साथ मिलाकर देने से लाभ होता है। कास, श्वास, उदरशूल, आध्मान, अतिसार, जलोदर आदि रोगों में उपयोगी है। उन्माद, अपस्मार, संन्यास आदि मानसिक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रोगों में कूठ का व्यवहार होता है। उत्तेजक एवं स्वेदजनन होने से वातादिज्वरों में देते हैं। श्वास पर भी इसका विशेष प्रभाव देखा गया है।

रासायनिक संगठन :

मूल में उत्पलतैल (वोलाटाइल आइज, 2.5% प्रतिशत कुष्ठीन (सास्युरोन) नामक क्षारोद, इन्सूलिन, टैनिन, स्थिरतैल, पोटासियमनाइट्रेट, एवं शर्करा आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :

कुष्ठादिचूर्ण, दशमूलारिष्ठ, सारिवाघारिष्ठ, कुमार्यासव, च्यवमप्राश, नारायणचूर्ण।

वक्तव्य :

वाजार में प्रायः कूठ के मूल के साथ अन्य वनौषध द्रव्यों के मूल का मिश्रण किया जाता है इन मिलावट वाले द्रव्यों में Inula royleana, Salvia lanata एवं senecio jacquemonti-anus आदि द्रव्य मुख्य हैं। अतः उपयोग करते समय सावधानी बरतनी चाहिये।

201 पुष्करमूल (पोहकरमूल)

द्रव्यनाम.................... संस्कृत.....................पुष्करमूल, पौष्कर काश्मीर
हिन्दी.....................पोहकरमूल, लद्दाखी....मानू
लैटिन.....................Inula racemosa Hook. f.

गण : – (1) चरक के श्वासहर एवं हिक्कानिग्रहण महाकषाय में उल्लेख किया है।

निरुक्ति : – पुष्करमूल – पुष्करइव मूल" अर्थात् कमलमूलसघश इसकी जड़ें होती हैं।

काश्मीर : – कश्मीर प्रदेश में यह पाया जाता है।

स्वरूप परिचय : – पौकरमूल के 30 से0 मी0 से लेकर 2 मीटर तक ऊँचे बहुवर्षायु शाकीय पौधे होते हैं। पर्ण मूलोद्मव, आकार में, बड़े, शाखाओं के पत्र अपेक्षाकृत छोटे, रूपरेखा में अंडाकार, भालाकार, सवृन्त एवं काण्ड संसक्त होते हैं। मूल वहुवर्षायु, कन्दिल, सुगन्धित कूठ की जड़ों से मिलता जुलता होता है। पुष्प–मुण्डक में अनेक, शाखाग्र, पीतवर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल....................अगस्त, सितम्बर।
फलकाल..................पुष्पकाल के वाद।
प्रयोज्य अंग..................मूल।

प्राप्तिस्थान : – यह उत्तरी हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों में 2,600 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,000 मीटर की ऊँचाई तक इसकी खेती पाई जाती है। जम्बू कश्मीर राज्य में सरकारी नियन्त्रण में कूठ के साथ–साथ इसकी खेती की जाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –(2)

गुण–लघु, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफवातशामक, शोथहर, वेदना–स्थापन, नाड़ीवल्य, कास – श्वासहर, हिक्कानिग्रहण, पार्श्वशूल नाशक, दीपन–पाचन, अनुलोमन, वाजीकर, गर्भाशयोत्तेजक आमपाचन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग : – पुष्कर मूल का उपयोग हिक्का, कास, श्वास, पार्श्वशूल, अरुचि, शोथ, पाण्डुरोग, श्वासनलिकाशोथ, एवं सभी प्रकार के वातरोगों में उपयोगी है।

रासायनिक संगठन : –मूल में उत्पलतैल एवं एलकेलाइड पाया जाता है। कम मात्रा में वेंजोइक एसिड भी होता है।

मुख्ययोग : – पुष्करादिचूर्ण, दशमूलारिष्ठ, नारायणचूर्ण, म0 सुदर्शन चूर्ण।

वक्तव्य : – बाजार में कभी–कभी पुष्पकर मूल के नाम से कूठ एवं आइरिस के मूलजड़ों की मिलावट की जाती है। मूल की पहिचान गन्ध एवं आभ्यन्तर रचना से की जाती है। अभाव में कूठ का मूल लिया जाता है।

202 सहदेवी

द्रव्यनाम.................संस्कृत ....सहदेवी
हिन्दी ....सहदेवी
सिंहली.........................मुनाकुटुम्बिया,
लैटिन..........................Vernonia cinerea Less.

स्वरूप परिचय : – सहदेई के स्वावलम्बी सशाखीय 60 से0 मी0 से 1 मीटर तक ऊँचे पौधे होते हैं। काण्ड–पतला, मृदु शाखाओं वाला एवं मृदु होता है। पर्ण– बहुरूपिक, रेखाकार, अण्डाकार, लट्वाकार या अमिलट्वाकार, अवृन्त, पत्रतट–अखण्ड मृदुरोगिल होते हैं। पुष्प हलके जामुनी रंग के। बीज–बारीक काले जीरे से मिलते जुलते हैं। यह श्वेत एवं नील पुष्प भेद से दो प्रकार की होती है।

पुष्पकाल..........................जुलाई, अगस्त।
फलकाल.........................पुष्पकाल।
प्रयोज्य अंग.......................पंचांग, मूल

प्राप्तिस्थान : –इसके पौधे वर्षाकाल के बाद सर्वत्र सुलभ होते हैं। ये पौध ज्वार, मकई आदि खेतों में स्वयंजात होते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –(1)

गुण–लघु, रूक्ष, रस–कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–ज्वरघ्न, कर्म–शोथहर, वेदनास्थापन, ज्वरघ्न, अनुलोमन, कृमिघ्न, रक्तशोधक, अश्मरीभेदन, मूत्रल, स्वेदजनन, कुष्ठघ्न।

आमयिक प्रयोग : –

सहदेवी विषमज्वर नाशक है। ज्वर एवं भूतग्रह आदि रोगों में मूल को शिर में धारण करने से या दाहिने बाजू पर बांधने से ज्वर, ग्रहवाधा, भूतवाधा का नाश होता है।

सहदेवी स्वरस उत्तम ब्रणरोपक है। सहदेवी को तुलसी पत्र के साथ देने से ज्वर एवं वृकअश्मरी में लाभ होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

203 अरण्यजीरक (कालीजीरी)

द्रव्यनाम......................संस्कृत..........................अरण्यजीरक, वन्यजीरक, तिलजीरक ।
हिन्दी...........................कालीजीरी ।
लैटिन...........................**Centratherum anthelminticum (willd.) Kunt.**

स्वरूप परिचय : –कालीजीरी के 2 मीटर तक ऊँचे एक वर्षायु पौध होते हैं। काण्डपर अनुलम्बदिशा में रेखायें एवं कहीं–कहीं बैंगनी चिन्ह भी होते हैं। पर्ण–भालाकार या भालाकार–लट्वाकार, लम्बेनोक वाले, पत्रतट–दन्तुर, एवं लम्बाई में 6 से० मी० से 15 सेन्टीमीटर होते हैं। पुष्प–मुण्डक में शाखीय बैंगनी–गुलाबीरंग के होते हैं। बीज–जीरक सघश, कृष्णवर्ण के स्वाद में तिक्त होते हैं। पुष्पएकीन ही बीज बनते हैं जिनका चिकित्सा में प्रयोग होता है।

पुष्पकाल..........................अगस्त, सितम्बर।
फलकाल........................पुष्पकाल के वाद।
प्रयोज्यअंग........................बीज।
मात्रा.......................... 6 ग्राम, बच्चों को 0.62 ग्रा. से 1.25 ग्राम।

प्राप्तिस्थान : – समस्त भारत के उष्णप्रदेशों के गांवों के आसपास इसके पौध स्वयंजात पाये जाते हैं। कहीं–कहीं इसकी खेती की जाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –

गुण–लघु, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–कटुपौष्ठिक, ज्वरघ्न, वातानुलोमन, कृमिघ्न, वाह्यलेप–शोथविलयन।

आमयिक प्रयोग : – यह व्रणरोपक, ज्वर, कृमि एवं आध्मान नाशक है। कृमि, जीर्णज्वर, प्रसूताविकार एवं त्वचारोगों में कालीजीरी का विशेष उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन : – बीजों में स्थिर तैल, उड़नशील तैल, पीले रंग का तिन्क्तसत्व, टैनीन, रेजिन, फ्लोबाफीन आदि तत्व पाये जाते हैं।

204 दमनक (दमना)

द्रव्यनाम......................संस्कृत..........................दमनक, गन्धोत्कट,
हिन्दी...........................दौना, गठवाजी, कुंणजा ।
सिंहली ....सनीन्यान
लैटिन...........................**Artemisia Vulgaris** Linn.

स्वरूप परिचय : – दौना के बहुवर्षायु गुल्मीय पौधे होते हैं। काण्ड बहुशाखीय, मृदु, श्वेताभवर्ण का 3 मीटर तक लम्बे होते हैं। पत्र – लट्वाकार, द्विपक्षाकार क्रम से विच्छिन्न, रोमश, अधः पृष्ठ श्वेत वर्ण का, रेखाकार, सरलधार वाले सुगन्धित होते हैं। पुष्प मन्जरी में श्वेताभ हरितवर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल........................जुलाई, अगस्त।
फलकाल.........................पुष्पकाल के बाद्र।
प्रयोज्यअंग........................पत्र, मूल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान : – भारत के हिमालय की निचली घाटियों से लेकर 2,800 मीटर की ऊँचाई तक यह सर्वत्र सुलभ है। हिमालय में इसकी कई किस्में पाई जाती हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः – (1)

रस – कषाय तिक्त, सुगन्धित, दीपन, व्रणरोपक, त्रिदोषनाशक, रक्तविकार, कुष्ठ, खुजली आदि रोगों में उपयोगी है।

क्वाथ से दुष्ठव्रणों का प्रक्षालन किया जाता है। कर्णशूल में स्वरस का प्रयोग करते हैं। बालकों की उदर – सम्बन्धी रोगों आध्मान, कृमि आदि में उपयोगी है।

क्वाथ से दुष्ठव्रणों का प्रक्षालन किया जाता है। कर्णशूल में स्वरस का प्रयोग करते हैं। बालकों की उदर सम्बन्धी रोगों आध्मान, कृमि आदि में उपयोगी है।

वक्तव्य : – हिमालय क्षेत्र में Artemisia की कई किस्में पाई जाती हैं जिसमें Artemisia albesnithimu, Artemisia maritima मुख्य हैं इनमें सेण्टोनीन नामक कृमिघ्न तत्व पाये जाते हैं।

205 रास्ना

द्रव्यनाम.......................संस्कृत ....रास्ना, सुरसा, श्रेयसी।
हिन्दी.............................रासना, वायसुरई।
सिंहली .... आरात्थे।
लैटिन.............................**Pluchea lanceolata** oliver

निरुक्ति : –

रास्ना : – रासृशब्दे' यज्ञ रस्यते आस्वाद्यते शोथादिरोगिभिः रस आस्वादने कफ वातजित् ''इति' ' यह एक प्रकार की प्रसिद्ध औषधि है जो शोथ, वातादि रोगों को नष्ट करता हैं।

सुरसा : – सुस्ड्ः रस अस्या इति'' अर्थात् इसका रस उत्तम होता है।

श्रेयसी : – अतिशयेन प्रशस्ता सर्ववात रोगेषु'' अर्थात् सब प्रकार के वात रोगों में यह उत्तम माना जाता है।

स्वरूपपरिचय : –(1)

रास्ना के 80 से0 मी0 से 1 से0 मी0 ऊँचे एक वर्षायु पौध होते हैं। काण्ड बहुशाखीय गुल्मक में, शाखायें पतली एवं सूक्ष्म रोमावृत होती है। पर्ण–रूपरेखा में आयताकार या भालाकार, कुण्ठिताग्र, चर्मिल, आधार की ओर उत्तरोत्तर कमचौड़ी, पत्र–पृष्ठ सूक्ष्म रोमावृत, अवृन्त एवं सूक्ष्मधार वाले होते हैं। पुष्प – समशिख, संयुक्त मुण्डक में बैंगनी रंग के होते हैं। पत्रों का चिकित्सा में प्रयोग होता है। निघण्टु ग्रन्थों में मूल, पत्र एवं तृण भेद से तीन प्रकार की रास्ना का उल्लेख है।

पुष्पकाल........................जून, जुलाई।
फलकाल......................पुष्पकाल के वाद।
प्रयोज्य अंग....................मूल, पात्र।

प्राप्तिस्थान : – वायसुरई के पौधे, आगरा, मथुरा, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश के अन्य जिलों एवं पंजाब आदि प्रान्तों में स्वयंजात पाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –(2)

गुण–गुरु रस–तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफवातशामक, आमपाचन, अनुलोमन, रक्तशोधक, शोथनाशक, ज्वरघ्न, श्वास–कासहर, विषघ्न एवं सभी प्रकार के वातरोगो में उपयोगी।

आमयिक प्रयोग : – रास्ना का प्रयोग वातव्याधि, आमवात, पक्षाघात, गृध्रसीवात, एवं अर्श आदि रोगों में किया जाता है।

मुख्ययोग : – रास्नासपृकक्वाथ, महारास्नादिक्वाथ, रास्नागुग्गुलु, रास्नादिघृत, रास्नादितैल।

वक्तव्य : – रास्ना एक संदिग्ध द्रव्य है। बंगाल में रास्ना के नाम से Vanda roxburghii R. Br. प्रयोग करते हैं। कुछ स्थानों पर Saccolabium एवं बम्बई आदि प्रान्तों में Tylophorleia indica के मूल का प्रयोग किया जाता है आधुनिक अनुसन्धानों से यह देखा गया है कि वायसुरई (पुचियालेन्सुलियेटा) का पंचाग विशेष उपयोगी है। गंधरास्ना एवं गंधनाकुली विचारणीय है। शास्त्रकारों ने पत्र, मूल एवं तृण रास्ना भेद से तीन प्रकारों का उल्लेख किया है।

206 आकरभ (अकरकरा)

द्रव्यनाम......................संस्कृत..........................आकरभ, आकल्लक ।
हिन्दी.......................... अकरकरा ।
सिंहली .... अकरपट्टा ।
लैटिन......................... **Anacyclus pyrethrum** DC.

निरुक्ति : – अकरकरा–ब्रणं करोति इति" अर्थात् ज्यादा समय तक मुख में रखने पर ब्रण (घाव) पैदा करता है।

स्वरूप परिचय : –

अकरकरा एकवर्षायु मूल बहुवर्षायु कोमल शाखीय पौधे होते हैं। पत्र मूलोद्मव, शाखायें जमीन पर परिसृत, होती है। पुष्प – मुण्डकों में पीताभवर्ण के मुख में रखने में चरपराहट होती हैं मूल – वेलनाकार, टुकडें झुरीदार, मुख में रखने पर तीव्र लालास्त्राव उत्पन्न करने वाला, एवं चरपराहट होती है। गले में चुनचुनाहट एवं कांटे से चुभते हैं।

पुष्पकाल.........................दिसम्बर, जनवरी ।
फलकाल.......................पुष्पकाल के वाद ।
प्रयोज्यअंग.......................मूल । मात्रा, $\frac{1}{4}$ग्राम से 1 ग्राम

प्राप्तिस्थान : –

यह उत्तरी अफरीका, अलजीरिया, एवं अरब में काफी मात्रा में पाया जाता है। भारत में इन्हीं प्रदेशों से इसका आयात होता है। नकली किस्म को भारत में उगाया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –

गुण–रूक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–वातकफनाशक, कटुपौष्ठिक, लालास्त्रावजनक, नाड़ीवल्य, वेदनास्थापन, कामोद्दीपक।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग : –

अकरकरा का मुख की बेचैनी, मुखपक्षाघात मूत्रकृच्छ्र, कम्पवात, अपतानक, अपस्मार, में उपयोग होता है। वाजीकरण हेतु इसके प्रयोग का विधान है। अकरकरा का सेवन आद्रक स्वरस के साथ प्रयोग करने से तन्द्रा एवं जड़ता नष्ठ होती है। अर्धावभेदक कृमिजन्य दन्तशूल, जिव्हास्तम्भ, गलक्षत, मूक आदि में यह उपयोगी है।

पीनस एवं प्रतिश्याय में नस्य देते हैं। स्वरभंग में इसके क्वाथ का गण्डूष धारण कराते हैं।

रासायनिक संगठन : –

अकरकरा की जड़ में मुख्य सक्रिय तत्व पेलिटोरीन, पाइरेथ्रीन, नामक सत्व होता है। जोकि रंगहीन क्रिस्टल के रूप में प्राप्त होता है। अकरकरा में तीक्ष्णता एवं लातास्लाव इसी क्रिया द्वारा होता है। इसमें उत्पल तैल एवं स्थिर तैल पाया जाता है।

मुख्ययोग : – आकरभादिचूर्ण, आकल्लादिवटी,

वक्तव्य : – चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि ग्रन्थों में इस द्रव्य का उल्लेख नहीं है। मदनपाल निघण्टु में इसका उल्लेख है। सम्भवतः यह मिश्र आदि देशों का आदिवासी पौधा है। इसकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये 12वी शदी के निघण्टु कारों ने इस द्रव्य का समावेश किया है।

207 मुण्डी (गोरखमुण्डी)

द्रव्यनाम......................संस्कृत..........................मुण्डितिका, मुण्डी, श्रावणी, भूकदम्ब
हिन्दी............................गोरखमुण्डी,
सिंहली ....
लैटिन............................**Sphaeranthus indicus** Linn.

गण : – चरक ने इन्द्रोक्त रसायन में श्रावणी एवं महाश्रावणी का उल्लेख किया है।

निरुक्ति : –

मुण्डी : – मुण्डति खण्डयति मण्डादीन् रोगानू इति" अर्थात् गांठवाले रोगों को नष्ठ करता है।

भूकदम्ब : – भुवि कदम्ब इव पुष्प मस्य" इसके पुष्पों की आकृति कदम्व सद्यश होती है। श्रावणी एवं महाश्रावणी नाम संहिताकारों ने उल्लेख किया है।

स्वरूपपरिचय : – यह सुगन्धित प्रसरणशील एवं 30 से0 मी0 तक ऊँचा एकवर्षायु पौधा है। काण्ड–सपक्ष, रोमिल, अभिलद्वाकार या अभिप्रासवत् 2.5 से0 मी0 से 5 से0 मी0 लम्बे, दन्तुर, अवृन्त, विनाल तथा काण्डसंसक्त होते हैं। पुष्प–मुण्डक में कदम्व पुष्प सद्यश गुलाबी रंग के होते हैं।

पुष्पकाल.......................अक्टूबर, नवम्बर।
फलकाल.......................पुष्पकाल के वाद।
प्रयोज्य अंग.......................पुष्प, पंचांग,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान : – भारत के सभी उष्ण प्रदेशों में इसके पौधे खेतों के आसपास स्वयंजात पाये जाते हैं। धान के खेतों एवं नमदार स्थानों पर अधिक मिलते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –(1)

गुण – लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, कटु, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–त्रिदोष शामक, शोथहर, वेदनास्थापन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, मेध्य नाड़ीवल्य, मूत्रल, उवरघ्न, स्वेदजनन, रक्तशोधक।
आमयिक प्रयोग : –

रक्तविकार जन्य त्वचा के रोगों में मुण्डी अर्क का प्रयोग करते हैं। वातरक्त में गोरखमुण्डी के पंचाग का चूर्ण मधु– घृत के साथ देते है। अपची, गण्डमाला में मुण्डी का स्वरस देते हैं। सन्धिवात, योनिशूल, कण्ठमाला, अर्धावभेदक, कामला आदि रोगों में मुण्डी का प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन : –

पुष्पों में उत्पल तैल पाया जाता है। इसमें स्फिरैन्थीन नामक ऐलकोजाइड पाया जाता है।

वक्तव्य : – चरक सुश्रुत में श्रावणी एवं महाश्रावणी का उल्लेख है। चरक ने इसे जीवनीय एवं रसायन माना है। मुण्डी श्रावणी है यह अभी विचारणीय है।

208 दुग्धफेनी

द्रव्यनाम......................संस्कृत..........................दुग्धफेनी, फेनी ।
हिन्दी............................दुधीला, कानफूल ।
लैटिन...........................Taraxacum officinale weber

स्वरुप परिचय : – मूलवहुवर्षायु, काण्ड 10 से0 मी0 20 मी0 तक ऊँचा प्रसर, मूल–कन्दिल स्वाद में निम्न, पंचांग दुग्धिल होता है। पर्ण – मूलोद्‌मव, पत्र काण्डमूल से संख्या में कई, मसृण, वृन्तरहित, सादे, दन्तुर होते हैं। पुष्प – शाखाग्र पीत वर्ण के होते हैं। फल – रोंयेदार

पुष्पकाल.......................जुलाई, अगस्त ।
फलकाल.......................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग.........................मूल।

प्राप्तिस्थान : – यह हिमालय में 1,800 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,600 मीटर की ऊँचाई तक उत्तराखण्ड गढ़वाल, कुमांयू, हिमाचल–प्रदेश, जम्मू काश्मीर राज्य के पहाड़ी प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ है।

गुणधर्म : – उदररोगों में मूल का अच्छा प्रभाव देखा गया है। मूल पित्तनिस्सारक, कटुपौष्ठिक, रसायन, यकृत एवं प्लीहावृद्धि में विशेष उपयोगी है। कामला एवं त्वचा के विकारों में भी मूल का प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन : –

मूल में शर्करा निर्यास, गोंद, स्टार्च आदि तत्व पाये जाते हैं। इसमें इन्सुलीन नामक तत्व भी पाया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

209 आयापान

द्रव्यानाम......................संस्कृत......................... आयापान,
हिन्दी.............................आयापान
लैटिन............................**Eupatorium triplineuve** Vahl

स्वरूप परिचय : – यह प्रसरणशील एवं 60 से0 मी0 तक ऊँचा शाकीय पौधा है। काण्ड मृदु बहुशाखीय, हरित होता है, पर्ण– सुगन्धित, भालाकार, लदट्वाकार तीक्ष्णाग्र, पुष्प– बैंगनी रंग के मञ्जरी में ।

पुष्पकाल..........................शीतकाल ।
फलकाल........................पुष्पकाल के वाद।
प्रयोज्य अंग........................पंचांग,

प्राप्तिस्थान : – यह मूलतः अमेरिका का आदिवासी पौधा है। भारत में शोभा के लिये यह उद्यानों में लगाया जाता है।

गुणधर्म : – रोचक, उत्तेजक, ग्राही, वामक।

पंचाग अल्पमात्रा में उत्तेजक एवं वल्य है। बड़ी मात्रा में लेने से यह रेचक है। इसका क्वाथ स्वेदल एवं वामक है। स्वरस का प्रयोग व्रणरोपण हेतु होता है। रक्ततिसार, एवं आत्यार्तव में किया जाता है। काण्ड का सेवन करने से शरीर में उष्णता आती हैं एवं पसीना छूटता है। विशूचिका में शरीर में उष्णता लाने के लिये बंगाल के वैद्य आयापान का व्यवहार करते हैं।

रासायनिक संगठन : –

इसमें आयापानीन आल्काजाइड, टैनीन, एवं उड़नशील तैल पाया जाता है।

210 झण्डु (गेंदा)

द्रव्यनाम...................संस्कृत.........................झण्डू ।
हिन्दी...........................गेंदा ।
लैटिन..........................**Tagetes erecta** Linn.

स्वरूप परिचय : –

इसका 60 से0 मी0 से 2 मीटर तक ऊँचा पौधा होता है। काण्ड–मसृण, मृदु, शाखीय होता है। पर्ण–सुगन्धित, अवृन्त, लट्वाकार होते हैं। पुष्प–पीतवर्ग के सख्या में कई होते हैं

पुष्पकाल..........................सितम्बर, जनवरी।
फलकाल ....पुष्पकाल के वाद।
प्रयोज्य अंग.......................पत्र, पुष्प।

प्राप्तिस्थान : – इसके पौध बागों में सर्वत्र पाये जाते हैं।

गुणधर्म : – कटु, कषाय, ज्वरघ्न, फूलों का रस रक्तार्श में उपयोगी है। पत्रों का लेप शोथ में उपयोगी है। नेत्र विकार एवं व्रण में वाह्य लेप करते हैं। कर्णशूल में फलस्वरस उपयोगी है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

211 मयूरशिखा

द्रव्यनाम..................संस्कृत.........................मयूरशिखा, गोजिह्वा ।,
हिन्दी..........................संहसमूली, मयूरजुटी,
सिंहली..........................
लैटिन..........................**Elephantopus scaber** Linn.

स्वरूपपरिचय : – इसके स्वावलम्बी 15 से0 मी0 से 40 सेन्टीमीटर तक ऊँचे पौधे होते हैं। शाखायें द्विविभक्त, रोमश, पर्ण–मूलोद्भव, रूपरेखा में अभिलट्वाकार या अभिप्रासत्, रोमश, पत्रतट–दन्तुर, आधार की ओर क्रमशः कम चौड़ी एवं पर्णवृन्त में रुपान्तरित होते हैं। पुष्प–मुण्डक में समूह वक्ष के रुप में, बैगनी रंग होते हैं। मूल गुच्छों में शतावरी मूल सदृश।

पुष्पकाल.......................अगस्त, सितम्बर।
फलकाल.....................पुष्पकाल के वाद।
प्रयोज्य अंग.....................भूल, पंचांग ।

प्राप्तिस्थान : – भारत के उष्णप्रदेशों में इसके क्षुप सर्वत्र पाये जाते हैं। मूल ग्रामीण लोग अपनी परम्परागत चिकित्सा में प्रयोग करते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, कषाय, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–कफपित्तशामक, स्तम्भन, कृमिघ्न, रक्तपित्तहर, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न।

आमयिक प्रयोग : –

स्थानिक परम्परा में मूल का उपयोग वल्य एवं रसायन के रूप में होता है। ज्वराक्रान्त रोगियों में भी पंचांग का उपयोग किया जाता है।

वक्तव्य : – मयूरशिखा के नाम से स्थानिक चिकित्सक एक्टिनोप्टेरिस रेडियाटा एवं एडियेन्टम काउडाटुम् के पंचाग का उपयोग करते हैं। कभी–कभी सिलोसिया क्रिस्टाटा का पंचाग भी मयूरशिखा के नाम से प्रयुक्त होता है। कुछ विद्वानों ने इसे गोजिहवा लिखा है। स्थानिक नामों एवं प्रयोगों के आधार पर इसे मयूरशिखा स्वीकार करना तर्कसंगत है। गोजिहवा (गाजवान) भी निघण्टु अनुवादकों ने अर्थ किया है। चरक सुश्रुत ने गोजिह्वा को व्रणरोपक एवं उपदंश तथा विसर्प में शाक रूप प्रयोग करने को लिखा है।

212 कासनी

द्रव्यनाम..............संस्कृत...................... कासनी
हिन्दी ....कासनी
लैटिन........................**Cichorium endivia Linn C. inteubeduus** Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप परिचय : –

कासनी के बहुवर्षायु शाकीय पादप होते हैं। काण्ड–कोणाकार, शाखाएं परिसृत । पर्ण – मूल शाकीय पत्र अपेक्षा कृत बड़े होते हैं पर्ण – भालाकार, दन्तुर अकेले या पत्रकोणोद्भूत होते हैं। पुष्प–मुण्डक में चमकीले नीले रंग के होते हैं।

पुष्पकाल........................जुलाई, अगस्त।
फलकाल......................पुष्पकाल के वाद।
प्रयोज्य अंग ....पंचाग, बीज, जड़, पुष्प।

प्राप्तिस्थान : –

भारत में प्रायः इसकी सर्वत्र खेती की जाती है। पंजाब एवं कश्मीर आदि राज्यों में इसकी विशेष रूप से खेती की जाती है। यह एशिया, इरान, एवं युरोप आदि देशों में स्वयंजात होता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–कफ–पित्तशामक, निद्राजनन, दीपन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, तृष्णा–निग्रहण, हृद्य, रक्तशोधक, भूत्रल, ज्वरघ्न, कटुपौष्ठिक, दाहप्रशमन ।

आमयिक प्रयोग : –

कासनी शीत और स्निग्ध है। बीज वल्य और हृद्य हैं। पुष्प का शर्बत यकृत विकारों में उपयोगी है। बीज चूर्ण का सघन क्वाथ पित्त की उल्टी बन्द करने में प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन : –

कासनी के पुष्पों में स्फटकीय ग्लुकोसाइड, सिकोरिन एवं लैकटुसिन नामक तिक्त सत्व पाये जाते हैं जड़ में इन्सुलिन, एवं भ्युसिलेज, तिक्तसत्व, पोटेशियम सल्फेट एवं नाइट्रेट आदि तत्व पाये जाते हैं।

213 छिक्किका (नरवछिकनी)

द्रव्यनाम......................संस्कृत.........................छिक्किका, श्रवक, छिक्कणी ।
हिन्दी..........................नखछिकनी
सिंहली...... ....विषातुली ।
लैटिन..........................**Centipeda minima** (Linn.) A. Br.

गण : – (1) चरक ने शिरोविरेचनोपग में एवं सुश्रुत ने सुरसादिगण क्षवक का उल्लेख किया है।

स्वरूप परिचय : –

इसके भूमि पर परिसृत सुगन्धित शाकीय क्षुप होते हैं। शाखायें मूल से निकल कर जमीन पर ही फैलती हैं। पर्ण–अमिप्रासवत् या लट्वाकार, आयताकार, दन्तर $1\frac{1}{2}$ से 0 मी0 तक लम्बे होते हैं। पुष्प मुण्डक में, उभयलिंगी, नालाकार पीताभ वर्ण होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल........................अक्टूबर, जनवरी।
फलकाल........................पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग ....पंचांग।

प्राप्तिस्थान : – यह प्रायः भारत के उष्णप्रदेशों के आर्द्रभूमि पर सर्वत्र सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : –(2)

गुण – तीक्ष्ण रस – कटु, वीर्य – उष्ण, अग्नि तथा पित्त – जनन, वातरक्त, शिरोवेदना, कृमि, कुष्ठ आदि रोगों में उपयोगी है। प्रतिश्याय, सिर के भारीपन एवं अर्धावभेदक में इसके स्वरस एवं चूर्ण का नस्य देते हैं। इससे छींके आकर आराम मिलता है। दन्तशूल में पंचांग के कल्क का लेप करते हैं। सुश्रुत ने अतिसार एवं विशूचिका में उपयोगी लिखा है।

श्वास–कास एवं रक्तपित्त में भी यह लाभदायक है।

रासायनिक संगठन :–इसमें क्षाराभ एवं कम मात्रा में सेपोनिन ग्लाइकोसाइड, उड़नशीलतैल, माइरियोगानिन कड़वाद्रव्य पाया जाता है।

मुख्ययोग – छिक्किकानस्य,

चित्रकादिवर्ग (PLUM BAGINACEAE)

वर्गलक्षण :–

इस वर्ग की वनस्पतियाँ क्षुप, वृक्षक एवं शाकीय रूप में पाये जाती हैं। पत्र–एकान्तर एवं गुच्छ के रूप में होते हैं। पुष्प–श्वेत, लाल, बैंगनी रंग के, पुष्पबाह्यकोष अधः स्थायी नलिका सद्दश, पुष्पाभ्यन्तर कोष की पंखड़ियों 5, पुंकेशर पंखड़ियों के अभिमुख, परागकोश–अण्डाकार, गर्भाशय ऊर्ध्वयी, अन्तराल 1, पांचकोण में, फल–पतले, चिपचिपे, बीज–लम्बा और नली जैसा होता है।

इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः विदाही, पाचक, उत्तेजक एवं ग्राही गुण वाले होती हैं जिसमें चित्रक मुख्य है।

214 चित्रक

द्रव्यनाम......................संस्कृत.........................चित्रक, अग्नि, दहन, अनल।
हिन्दी...........................चिता ।
सिंहली ....सुदुरीतूल ।
लैटिन...........................**Plumbago zeylanica** Linn.

गण : (1)

चरक के लेखनीय, भेदनीय, दीपनीय, अर्शोघ्न, तृप्तिघ्न, शूलप्रशमन, महाकाषाय कटुकस्कन्ध एवं सुश्रुत ने आरग्वधादि, वरूणादि, मुष्ककादौ, पिप्पल्पादौ, आमलक्यौ गण में उल्लेख है।

निरुक्ति :

चित्रक :– चित्रं बुद्धिं त्रयते इति" चेतश्चित् चितो जनान् त्रयते इति" अर्थात् यह अग्नि को प्रदीप्त करने वाला होने के कारण बुद्धि की रक्षा करता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अग्नि :– मूल में दाहक गुण होने के कारण यह अग्नि प्रदीप्त करने वाला द्रव्य विशेष होने से इसे अग्नि एवं दहन भी कहते हैं।

स्वरूप परिचय :

चित्रक के बहुवर्षायु गुल्म होते हैं। मूल का भीतरी भाग चरपरा एवं पीताभ वर्ण का, काण्ड एवं शाखायें रक्ताभ, रेखायुक्त, पर्ण–एकान्तर, पतली, लट्वाकार, आधार की ओर से एकाएक कम चौड़ी, 3.65 से0 मी0 से 10 से0 मी0 तक लम्बी, सवृन्त होते हैं। पुष्प–श्वेतवर्ण शाखाग्रों पर एवं चिपचिपा, मञ्जरियों में।

पुष्पकाल.........................फरवरी, मार्च।
फलकाल......................पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग....................मूलत्वक्।

प्राप्तिस्थान :–

श्वेतचित्रक भारत के उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ है। विशेषकर यह बंगाल, उत्तरप्रदेश, दक्षिण भारत में पाया जाता है। लाल एवं नील चित्रक उद्यानों में लगाया हुआ पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :– (2)

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–लेखन, विस्फोटजनक, दीपन, पाचन, अर्शोघ्न, तृप्तिघ्न, शूलप्रशमन।

आमयिक प्रयोग :–

यह वात कफ, शोथ, शूल, उदररोग, अर्श, ग्रहणी, कृमि एवं पाण्डुनाशक है। पाचन क्रिया पर इसका अच्छा प्रभाव देखा गया है। गर्भाशय पर चित्रक की विशेष क्रिया देखने को मिलती है उष्ण होने से इससे रक्तस्त्राव होता है। 8–9 मास तक का गर्भपात इससे देखा गया है। चित्रक के ताजे मूल के लेप से छाले पड़ते हैं। अरोचक, अग्नि-मांद्य, कुपचन, अफारा में चित्रक चूर्ण लाभ करता है।

रासायनिक संगठन :–

जड़ में पलम्बेजिन नामक तीक्ष्ण दाहजनक क्रिस्टली तत्व पाया जाता है। अधिक मात्रा में इसके प्रयोग करने से मृत्यु भी हो सकती है। साधारण मात्रा में पलम्बेजीन समस्त शरीर के अनैच्छिक पेशीसूत्रों की आकुञ्चनगती को बढ़ाता है।

मुख्ययोग :–

गैसान्तक वटी, दशमूलारिष्ठ, यकृद्दारीलौह, कुमार्यासव, लोहासव, चित्रकादिगुटिका, चित्रकादिचूर्ण, चित्रकहरीतकी, चित्रकघृत।

वक्तव्य :–

पुष्प भेद से रक्त, नील एवं श्वेत तीन प्रकार का होता है। औषध चिकित्सा में श्वेत चित्रक का विशेष रूप से प्रयोग होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विडङ्गादिवर्गः MYRSIANACEAE

वर्ग लक्षण :–

इस वर्ग में वृक्ष, वृक्षक एवं लतायें भी देखने को मिलती हैं। पर्ण–एकान्तराल, सादे, वहुधा ग्रन्थियों पर से चित्रित सादे, पुष्प छोटे, द्विबीजपर्ण, संयुक्तदल, स्त्रीपुंसोपयोगी पुंकेशर पुष्प की पंखड़ियों के अभिमुख समसंख्यक, ऊर्ध्वस्थगर्भाशय, फल–एक या थोड़े बीज वाले अस्फोटी एवं रंगीन धारीदार होते हैं।

इस वर्ग के फल एवं बीज कृमिघ्न, वामक ज्वरघ्न एवं रेचक होते हैं। मुख्यरूप से विडङ्ग कृमिघ्न के रूप में प्रमुख है।

215 विडङ्ग (वायविडङ्ग)

द्रब्यनाम..................संस्कृत...................... कृमिघ्न, कृमिरिपु, विडङ्ग, वेल्ल, चित्रतण्डुला।
हिन्दी..........................वायविडङ्ग ।
सिंहली..........................गलगल्मवेल्ला ।
लद्दाखी.........................चितांग ।
लैटिन..........................**Embelia ribes** Burm. f.

गण :– (1)

चरक के शिरोविरेचन द्रव्यों में, तृप्तिघ्न, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न महाकषायों में एवं सुश्रुत के सुरसादि पिप्पल्यादि गण में विडङ्ग का उल्लेश है।

निरूक्ति :–

विडङ्ग :– विडति भिनत्ति इति विडङ्गम्" यह रोगों का भेदन करती है, अर्थात् यह शूल कृमि एवं आध्मान आदि रोगों के भेदन करने में समर्थ है।

वेल्ल :– वेल्लति चलति उदरकोष्ठे रोगवारणार्थम्" अर्थात् यह उदरकोष्ठ की कृमियों को मारने में सक्षम है। इसी कारण इसे अमोघा भी कहते है।

तण्डुल :– तन्तुं कृमि सूत्रं लाति इति" अर्थात् यह कृमिसूत्रों को बाहर निकालता है। इसी कारण इसे कृमिघ्न एवं कृमिरिपु भी कहते हैं।

स्वरूप परिचय :

विड्ङ्ग के आरोही स्वभाव के गुल्म होते हैं। इसकी शाखा प्रशाखायें, लम्बी, पतली, लचीली एवं रूपरेखा में बेलनाकार, काण्डचक्र पर जगह–जगह वातरन्ध्र के चिन्ह पाये जाते हैं। पर्ण–चर्मिल सवृन्त रूपरेखा में अण्डाकार या भालाकार, पत्राग्र–सहसानुकीला, सरलधार वाले होते हैं। फलक के दोनों पृष्ठ चिकने होते हैं। उर्ध्व पृष्ठ चमकदार तथा अधःपृठ फीके रंग का होता है जिस पर सूक्ष्मलाल बिन्दु पाये जाते हैं। पुष्प–छोटे तथा हरिताभ पीतवर्ण के और पंचभागीय होते हैं। मञ्जरियों शाखाग्रों पर निकलती हैं। फल मरिच की भांति गुच्छों में व्यास में 1/2 से 1/6" तक चिकने तथा कुछ मांसल होते हैं। पकने पर ये फल कालिमा लिये हुये रक्तवर्ण के होते हैं। बीज–गोल धारीदार एवं उभार युक्त होता है।

पुष्पकाल........................मार्च, अप्रैल।
फलकाल.......................पुष्प काल के बाद।
प्रयोज्य अंग....................बीज।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान :–

भारत के उष्ण प्रदेशों आसाम, बंगाल, उड़ीसा के वनों में इसके गुल्म विशेष रूप से पाये जाते हैं। उत्तरप्रदेश के विन्ध्याचल के वनों एवं मध्यप्रदेश में **Embelia robusta** के गुल्म विशेष रूप से पाये जाते हैं इन क्षेत्रों से इसके फलों का संग्रह किया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :– (2)

गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधान कर्म–दीपन, पाचन, उदर कृमिघ्न, अनुलोमन, शिरोविरेचन, नाड़ीवल्य, मूत्रल कुष्ठनाशक।

आमयिक प्रयोग :– (3)

कृमिनाशक के रूप में विडङ्ग सर्वोत्तम औषध है। कुष्ठ जन्य कृमि में विडङ्ग का आभ्यन्तरिक एवं बाह्य लेप स्नान आदि प्रयोग उपादेय है। रसायन के रूप में विडङ्ग एवं यष्ठिमधु का समभाग चूर्ण शीतल जल के साथ सेवन करना लाभदायक है। विडङ्ग शूल, आध्मान, उदररोग एवं विबन्ध में प्रयोग होता है। गोल एवं चिपटे कृमि के लिये 1 तो0 विडङ्ग चूर्ण देते हैं। पीनस एवं अधविभेदक में नस्य देते हैं।

रासायनिक संगठन :–

विडङ्ग में 2.5 से 3.1 प्रतिशत विडंगाम्ल या एम्बेलिक एसिड या एम्बेलिन पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अल्पमात्रा में एक उत्पलतैल रालदार पदार्थ, रंजकद्रव्य क्रिस्टेम्बीन नामक एंल्केलाइड पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :–

विडङ्गरिष्ठ, विडगादिचूर्ण, विडंगलौह, विङ्गतैल, लोहासव, कुमार्यासव, दशमूलारिष्ठ, जन्मघूंटी, नारायणचूर्ण, अविपत्तिकरचूर्ण, अग्नितुण्डीवटी।

वक्तव्य :–

विडङ्ग की कई किस्में पाई जाती हैं। ये किस्में भारत के छोटा नागपुर, सिलहट, आसाम, देहरादून आदि क्षेत्रों में सुलभ हैं। इन किस्मों का मिश्रण वाय विडङ्ग में होता है। इसके अतिरिक्त **Myrsine africana** एवं कम्पील्ल के बीजों का भी मिश्रण किया जाता है।

मधुकादि वर्ग SAPOTACEAE

वर्गलक्षण : इस वर्ग में वृक्ष एवं वृक्षक पाये जाते हैं। इस वर्ग की कुछ द्रव्यों में दूध भी निकलता है। पर्ण-एकान्तर, दृढ़ एवं अखण्ड किनारे वाले, पुष्प वाह्य कोष अधःस्थायी 4 से 8 पत्र पुष्प, प्रायः एक दूसरे पर आये हुये अथवा दो श्रेणियों ग्रथित होते हैं। पुष्पाभ्यन्तर कोष की नलिका छोटी परन्तु उसका अन्तिम भाग 4 से 8 भाग में विभक्त अथवा पुष्प वाह्य कोष के पत्र के दो चार गुने अधिक भागों में विभक्त होता है। पुंकेशर तन्तु प्रायः छोटे होते हैं। गर्भाशय उर्ध्व स्थायी 2 से 8 अन्तरालयुक्त, स्त्रीकेशर नलिका सूक्ष्म और नलिकाग्र मुखबिन्दु सदृश होता है। फल-अविकासी, 1 से 8 बीजयुक्त तथा बीज प्रायः मसृण होते हैं। इस वर्ग में मधूक, बकुल (मौलसरी), राजादन (खिरनी) आदि द्रव्य आते हैं।

216 मधूक (महुआ)

द्रव्यनाम : संस्कृत........................मधूक, गुड़पुष्प, मधुस्त्रव, मधुद्रुम
हिन्दी..........................महुआ
लैटिन.........................**Madhuca indica J.F.**

निरुक्तिः– मधूक मह्यते मन्यते वा" विशेष गुणों से युक्त होने के कारण इसकी प्रशंसा की जाती है।

गुडपुष्प :– गुड़द्रव पुष्पाणि अस्येति" इसके पुष्प गुड़ के समान मधुर होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूपपरिचय : इसके पर्णपाती वृक्ष होते हैं। पर्ण-शाखाग्रों पर समूहबद्ध 12.5 से. मी. 17.5 से. मी. चौड़े, रूपरेखा में अण्डाकार, आयताकार, अंडाकार अग्रनुकीला या कुण्ठित, चर्मिल, पत्र आधार की ओर क्रमशः कम चौड़े स्फनाकार, सवृन्त होते हैं। पुष्प–श्वेत, मांसल, रसमय मधुर स्वाद वाले होते हैं इसी कारण इसे गुड़पुष्प, मधुद्रुम भी कहते हैं।

फल—लम्बा पिंलाई लिये हुये सफेद रंग का मांसल, रसदार होता है।

बीज—मसृण लम्बगोल तैलीय होता है। ताजे पुष्प दूध में उबाल कर खाये जाते हैं। सूखे पुष्प मुन्नका की तरह हो जाते हैं।

पुष्पकाल.........................अप्रैल, मई।
फलकाल.........................मई, जून।
प्रयोज्य अंग.....................फूल, फल, बीज, तेल।

प्राप्तिस्थान : भारत के उष्ण प्रदेशों विशेषकर बुन्देलखण्ड, लखनऊ, फैजाबाद, मध्यप्रदेश, आदि प्रान्तों में इसके वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं। इसकी दूसरी जाति दक्षिण पश्चिम भारत के कर्नाडा, मालावार, मैसूर में पाया जाता है जिसे **Madhuka longifolia** (Linn) Mar कहते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :(1)

गुणःगुरू, स्निग्ध, रस.मधुर, कषाय, विपाक.मधुर, वीर्य.शीत (शुष्क पुष्प उष्ण) कर्मःवात पित्तशामक, नाड़ीवल्य, कफनिस्सारक,

वृष्य, वल्य, वृंहण, मून्त्रल, दाहप्रशमन, बीजमञ्जा—आर्तवजनन, तेल—वेदनास्थापन, कुष्ठघ्न ।

आमयिक प्रयोग : मधुक त्वचा का क्षार मधु के साथ देने से लाभ होता है। पित्त शिरोरोग में मधूक पुष्प स्वरस द्राक्षा एवं सिता के साथ मिश्रण कर नाक में बिन्दु टपकाने से लाभ होता है। हिक्का, वमन, गंडमाला में मधुक क्षार का नस्य देते हैं। यह दाह श्वास, क्षत एवं क्षय को दूर करने में उपयोगी है।

रासायनिक संगठन : बीजों में 50–55 प्रतिशत गाढ़ा स्थिर तेल पाया जाता है। जिसमें 40% ओलिकएसिड, पामिरिकएसिड, लिनोलिकऐसिड, मिरिस्टिकएसिड पाये जाते हैं। खली में माडरिन नामक ग्लाइको साइडल सैपोनिन नामक तत्त्व पाया जाता है। शुष्क पुष्पों में इमुशर्करा जो शीघ्र मद्य में परिणत होती है। फलों में काफी मात्रा में किण्व एवं खमीर के तत्त्व पाये जाते हैं। फल में सेक्रोज, माल्टोज, तथा टैनीन आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :—मधुकासव, मधूक हिम ।

217 बकुल (मौलसरी)

द्रव्यनाम :—
संस्कृत...........................बकुल, केसर
हिन्दी ....मौलसरी, सिंहली.....मुन्नेमल,
लैटिन.........................**Mimusopus elengi** Linn.

निरूक्ति : **वकुल** :– बङते गच्छति कफ पित्त विषविकारनाशकानू विशिष्ठ गुणानू धारयति इति" अर्थात् यह विशिष्ठ गुणों को धारण करने के कारण कफ, पित्त एवं विष के विकारों को नष्ट करता है। या कवियों ने इसका खूब गुणगान किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

केसर :– के जले सरित इति वा" इसके पुंकेशर जल में तैरते हैं।

स्वरूप परिचय :– इसके सघन, चिकने मध्यम कद के वृक्ष होते हैं। काण्डस्कन्ध अपेक्षाकृत छोटा तथा सीधा होता है। इसकी शाखा प्रशाखा निकल कर चारों ओर फली रहती है। पण—सघन, मसृण 6.25 से 10 से. मी. लम्बे, रूपरेखा में अंडाकार, तथा अग्रभाग एकाएक नुकीले, फलक गोलाकार अथवा उत्तरोत्तर कम चौड़ा होता है। पुष्प—सुगन्धित, श्वेतवर्ण के अकेले या मञ्जरियों में निकलते हैं। फल–लम्बा, अण्डाकार एवं पकने पर नारंगी पीत वर्ण का होता है। स्वाद में कषाय–मधुर होता है। बीज–चपटा चमकीले भूरे रंग का होता है।

पुष्पकाल..........................मई से अगस्त।
फलकाल..........................शीतकाल।
प्रयोज्य अंग.......................त्वक्, पुष्प, फल।

प्राप्तिस्थान :– भारत के सभी उद्यानों एवं सड़कों के आसपास इसके वृक्ष लगाये हुये सर्वत्र पाये जाते हैं। संस्कृत साहित्य में बकुल का विशेष उल्लेख मिलता है।

दोष अधिस्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

गुण—गुरू, रस–कटु, कषाय, विपाक—कटु वीर्य—अनुष्ण, कर्म—कफ पित्तशामक, ग्राही, रक्तस्तम्भक, दांतों के लिये हितकारी, ग्राही, रक्तस्तम्भक, स्त्रावस्तम्भक शुक्रस्तम्भक, गर्भाशय शैथिल्यहर, ज्वरघ्न, विषघ्न, पुष्प—मस्तिष्क बल्य, सौमनस्यजनन, हृद्य, यह योनिस्त्राविनाशक, सवं शुक्रमेहघ्न है।

आमयिक प्रयोग : हिलते दांतों में बकुल त्वचा के क्वाथ में पिप्पली, मधु एवं धृत डालकर कवल एवं गण्डूष करते हैं। इससे दांत मजबूत एवं दन्तशूल नष्ट होता है। चलदन्त में बकुलमूल त्वचा का प्रातःकाल दातौन करना लाभदायक है। दांतों को दृढ़ करने के लिये बकुल प्रसिद्ध है। यह शुक्र मेहघ्न है।

चरक ने आसव योनि फलवर्ग में बकुल का उल्लेख किया है। सुश्रुत ने कषाय वर्ग में बकुल की गणना की है। संस्कृत साहित्य में बकुल के सुगन्धित पुष्पों का विस्तृत रूप से उल्लेख मिलता है।

रासायनिक संगठन :– छाल में टैनीन, रंजकद्रव्य, मोमीय पदार्थ स्टार्च एवं क्षार एवं भस्म पाये जाते हैं। पुष्पों में एक उड़नशील सुगन्धित तैल पाया जाता है। बीजों में एक स्थिर तेल पाया जाता है। फल मज्जा में शर्करा तथा सौपोनिन पाया जाता है।

मुख्य योग :– बकुलाद्यतैल, बकुलपुष्पार्क, बकुलदन्तमञ्जनचूर्ण। इस कुल में अन्य उपयोगी वृक्ष राजादन (खिरनी) भी है। जिसे **Mimusops hexandra** कहते हैं। राजादन का सुश्रुत के परुषकादिगण में उल्लेख है।

लोधादिवर्गः SYMPLOCACEAE) styraceae

वर्गलक्षण :– इस वर्ग में वृक्ष, वृक्षक एवं क्षुप पाये जाते हैं। पर्ण–एकान्तर उपपत्रविहीन, साधारण, सपुस्प, द्विबीजपर्ण, संयुक्तदल, उर्ध्वस्थगर्भाशय, 2 से 5 अन्तराल युक्त, स्त्री केशर नलिका मृदु होती है। फल के साथ पुष्पवाह्यकोष के पत्र सलंग्न होते हैं। प्रत्येक अन्तराल में एक–एक बीज होता है। फल मांसल होता है।

218 लोध्र (त्नोध)

द्रव्यनाम :– संस्कृत..........................लोध्र, रोध्र, शावरक, अक्षिभेषज, गालव, तिरीटक
हिन्दी..........................लोध, सिंहली........लोथसुम्बुलु
लैटिन..........................**Symplocos racemosa Roxb.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गण :– (1) चरक ने संधानीय, पुरीषसंग्रहणीय, शोणितस्थापन महाकषाय एवं कषायस्कन्ध में तथा सुश्रुत ने लोध्रादि, अम्बष्ठादि एवं न्यग्रोधादि गण में लोध्र का उल्लेख किया है।

निरूक्ति :–

रोध्र :– रुणद्धिं व्रणं इति रोध्रः" अर्थात् यह व्रणंरोहण में अच्छा कार्य करता है।
शावरक :– शावरक देश विशेष में अधिक होने के कारण इसे शावरक कहते हैं।
तिरीट :– तिरयति रोगानू इति तिरीट"यह अतिसार एवं शोथ आदि रोगों का नाश करता है।
मार्जन :– इसकी छाल का उपयोग उबटन, मार्जन के लिये किया जाता है। छाल लम्बी पतली होने से पट्टिकालोध्र कहते हैं।

अक्षिभेषज :– इसकी छाल का उपयोग नेत्र विकारों में भी किया जाता है इसलिये अक्षिमेषज कहते हैं।

स्वरूपपरिचय :–

लोध्र के मध्यम आकार के सदाहरित वृक्ष पाये जाते हैं। छाल खुरदरी, गाढ़े रवाकीस्तरी रंग की, वाह्यस्तर कार्कयुक्त एवं पतले छिलकेदार होती है। पर्ण—अण्डाकार, आयताकार, रूपरेखा लिये हुए लट्वाकार, कुण्ठित, कुण्ठिताग्र, सूक्ष्मगोल, दन्तुर, आरावत् एवं एकान्तर क्रम से स्थित होते हैं। पुष्प—पीताभ—श्वेत, सवृन्त होते हैं। अष्ठिफल,—आयताकार या कुछ गोलाकार सा, मांसल, कृष्णाभ बैंगनी रंग का होता है।
इसकी अन्य किस्म पहाड़ों में पाई जाती हैं जिसे पट्टिकालोध्र **symplocos paniculuta wall** कहते हैं। इसकी छाल श्वेताभवर्ण की पतली लम्बी होती है। स्थानिक लोग इसे लोध कहते हैं।

पुष्पकाल..........................मई, जून।
फलकाल.........................अगस्त, सितम्बर।
प्रयोज्य अंग...................छाल, फल।

प्प्तिस्थान :– इसके वृक्ष कुमांयू से लेकर आसाम, बिहार, बंगाल, छोटानागपुर, उड़ीसा एवं दक्षिण के प्रदेशों में सर्वत्र पाये जाते हैं। **Symplocos paniculata** उत्तराखण्ड, गढ़वाल, हिमाचलप्रदेश, जम्मूकश्मीर में 1,800 मीटर की ऊंचाई तक सर्वत्र पाया जाता है। स्थानिक बाजारों में **Symplocos racemosa** की छाल उपलब्ध होती है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

गुण—लघु, रूक्ष, रस—कषाय, विपाक—कटु, वीर्य—शीत, प्रधानकर्म–संग्राही, रक्तस्तम्भन, व्रणरोपण, शोथहर, आभ्यन्तर सेवन से स्तम्भन, रक्तशोधक, शोथहर, गर्भाशय शोथनाशक, चक्षुष्य, शोथघ्न, ज्वरघ्न, वर्ण्य एवं कुष्ठघ्न है।

आमयिक प्रयोग :– (3) लोध्र का प्रयोग श्वेतप्रदर में विशेष रूप से किया जाता है। इसके प्रयोग से गर्भाशय की शिथिलता कम होती है और रक्तवाहिनियों का संकोच होता है। प्रसूतावस्था में योनि में क्षत हुये हों तो लोध्र का लेप करते हैं। लोध्र के क्वाथ की उत्तरवस्ति भी उपादेय है। त्वचा के रोग एवं व्रणों में लोध्र खाने को दिया जाता है। आंख की लाली एवं सूजन कम करने के लिये आंख पर इसका लेप करते हैं इसी कारण इसे अक्षिभेषज कहते हैं।
अतिसार, प्रवाहिका, रक्तविकार एवं ज्वर में छाल उपयोगी है।

रासायनिक संगठन :– छाल में लोटूरिन, लोटूरुडीन, तथा कोल्योटूरीडीन नामक एलक्केलाइडस् पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें क्रिस्टलाईन तत्त्व एवं लालरञ्जक नामक द्रव्य भी पाया जाता है।

मुख्ययोग :– लोध्रासव, सुन्दरीकल्प, दशमूलारिष्ठ, प्रदररिपुरस, गंगाधररस, पुष्यानुकचूर्ण ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य :– संहिता एवं निघण्टुग्रन्थों में शावरक एवं पट्टिकालोध्र का उल्लेख मिलता है। दोनों का उल्लेख यहाँ पर किया गया है। कुछ विद्वानों ने लोध्र एवं तिल्वक को एक ही द्रव्य माना है। वास्तव में दोनों अलग–2 द्रव्य हैं। लोध्र मुख्यरूप से संग्राही, पुरीषसंग्रहणीय एवं शोणितस्थापन है। तिल्वक का मुख्य कर्म विरेचन है। यही कारण है कि चरक ने तिल्वककल्प से स्वतन्त्रकल्प चिकित्सा का उल्लेख किया है। शास्त्रीय तिल्वक (वाइवरनमनरवोसम) है जोकि हिमालय में मिलता है।

तिन्दुकादिवर्ग **EBENACEAE**

वर्गलक्षण :–

इस कुल के द्रव्य वृक्ष एवं वृक्षक के रूप में पाये जाते हैं। इसमें पर्ण बहुधा एकान्तर, अखण्डित एवं पत्रतट दृढ़ होते हैं। नर एवं मादा पुष्प अलग–2 होते हैं। पुष्पवृन्त सन्धियुक्त, पुष्प—वाह्यकोष के पत्र 3 से 9 बहुधा संयुक्त होते हैं। पुष्प—आभ्यन्तरकोष की पंखुड़ियाँ भी संख्या में 3 से 7 होती हैं। गर्भाशय उर्ध्वस्थायी, फल–दृढ़ रसाल एवं अविकासी, बीज–काले, बड़े फल–पर पुष्पवाह्यकोष बढ़कर नीचे की ओर स्थिर होते हैं।

इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः ग्राही, कषाय, कृमिघ्न एवं ज्वर प्रतिरोधक होते हैं।

219 तिन्दुक (तैंदू)

द्रव्यनाम :–

संस्कृत..........................तिन्दुक, कालस्कन्ध, स्फूर्जक,
हिन्दी..........................तैंदू, सिंहली........तिम्बिरी
लैटिन..........................**Diospyros peregrina** Gurke

गण :– (1) चरक ने उदर्दप्रशमन महाकषाय एवं सुश्रुत ने न्यग्रोधादिगण में तिन्दुक उल्लेख किया है।

निरुक्ति :– तिन्दुक :– तिम्यति आद्रीभवति इति तिन्दुक" अर्थात् यह हमेशा नमदार स्थानों में पैदा होता है।

कालस्कन्ध :– इसका तना अगुरू के सदृश कृष्णवर्ण का होता है।

स्वरूप परिचय :– इसके मध्यम आकार के सदाहरित वृक्ष होते हैं जो नमदार स्थानों पर होता है। काण्ड-कृष्णाभवर्ण का, एवं छाल भूरे रंग की होती है। पर्ण– अण्डाकार, आयताकार, चिकने, चर्मसदृश और चमकीले होते हैं। पुष्प–श्वेताभ वर्ण के गुच्छों में, फल –गोलाकार, पकने पर लालरंग का, बीज संख्या में 4–8 तक होते हैं। इसके अतिरिक्त तैंदू की अन्य औषध उपयोग की किस्में भी होती हैं जिन्हें — **Diospyros montana** एवं **Diospyros tomentosa** कहते हैं।

पुष्पकाल............................अप्रैल, मई।
फलकाल.........................सितम्बर, अक्टूबर।
प्रयोज्य अंग.......................फल, छाल, पुष्प ।

प्राप्तिस्थान :– भारत के सभी प्रान्तों के वनों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

रस–कषाय, मधुर, वीर्य–शीत,विपाक–कटु, कर्म–कफ पित्तघ्न, एवं शीतल, लघु व्रणरोपक।

आमयिक प्रयोग :– (3) अग्निदग्ध होने पर तिन्दुक छाल के क्वाथ में घृत मिलाकर दग्ध भाग में लेप करने से लाभ होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शिशुओं की हिक्का में तिन्दुक पुष्प एवं फल का सूक्ष्म चूर्ण को मधु एवं घृत के साथ चटाने से लाभ होता है। कर्णस्त्राव में तिन्दुकफलरस की बूँदें कानों में डालते हैं । इसके अतिरिक्त यह मुखपाक, अतिसार, प्रमेह, रक्तदोष–नाशक है।

रासायनिक संगठन :– फलों एवं छाल में टैनीन तथा पैक्टिन पाया जाता है।

पील्वादिवर्ग SALVADORACEAE

वर्गलक्षण :– इस वर्ग में वृक्ष एवं वृक्षक पाये जाते हैं। पर्णविन्यास अभिमुख, पर्ण–अखण्ड, चर्मसदृश, चमकीले, पुष्प–छोटे, पीत एवं श्वेत वर्ण के, द्विबीजपर्ण, संयुक्तदल, उपरिस्थगर्भाशय, पुष्पवाह्यकोष के दल 3–5, पंखुड़ियाँ 4, पुंकेशर 4, स्त्रीकेशर 1 फल–मांसल।

220 पीलू

द्रव्यनाम :–

संस्कृत..........................पीलू, गुडफल, शीतफल
हिन्दी..........................पीलु (बड़ा)
लैटिन..........................**Salvadora persica** Linn.
लघुपीलु **Salvadora oleoides** Dcne.

गुण :– (1) चरक ने शिरोविरेचन, विरेचन महाकषाय, ज्वरहर महाकषाय एवं सुश्रुत ने शिरोविरेचन गुण में उल्लेख किया है।

निरूक्ति :–

पीलू :– इसको इसलिये कहते हैं कि इसका फल पकने पर पीताभ वर्ण का होता है।

गुड़फल :– फलों में शर्करा पाई जाती है इसलिये गुड़फल कहते हैं।

स्वरूप परिचय :– पीलू के बड़े–बड़े गुल्म या छोटे टेढ़े–मेढ़े वृक्ष होते हैं। शाखायें नीचे की ओर झुकी हुई होती हैं। पर्ण–आमने सामने, रूपरेखा में अण्डाकार, आयताकार, चर्मिल एवं दोनों सिरों पर गोल होते हैं। पुष्प–सूक्ष्म हरिताभ, श्वेत, फल– एक बीज वाला तथा मांसल होता है। पकने पर फल रक्त एवं पीतवर्ण का होता है । **S.Oleoides** के पुष्प हरिताभ पीत वर्ण के, फल अपेक्षाकृत छोटा होता है। स्वाद में फल मीठा एवं चटपटा होता है।

पुष्पकाल..........................दिसम्बर, जनवरी
फलकाल..........................मार्च, अप्रैल
प्रयोज्य अंग..........................मूल, पत्र, फल, बीजतैल ।

प्राप्तिस्थान :– इसके गुल्म पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश, कच्छ, बिहार, उत्तरप्रदेश, कोंकण एवं कर्नाटक में स्वयंजात पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदन कर्मज्ञान :– तिक्त, कटु, तीक्ष्ण, विपाक-कटु, वीर्य उष्ण कर्म–स्निग्ध, सारक, शिरोविरेचन, विरेचनोपग, ज्वहरहर, कफवातहर,अर्शोघ्न (1) पीलु के फल का रस मधुर, तीक्ष्ण, गुल्म एवं अर्शनाशक है। छोटा पीलु- कटु, कषाय, सारक, दीपन, गुल्म एवं अर्शनाशक है। बड़ा पीलु मधुर, वृष्य, रुचिकर, दीपन, पित्तप्रशमन तथा विष एवं आमनाशक है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बीजों के तेल की मालिश संधिवात में करते हैं। मूल की छाल स्वेदजनन एवं मूत्रल है। छाल क्वथ ज्वर में जब रोगी प्रलाप करता हो या अशक्त हो तो चेतनावर्धन हेतु देते हैं। छोटे पीलु के फल सनाय सदृश रेचक है एवं बड़े पीलु के पत्र वातनाशक, मूत्रजनन एवं क्षीर जनन है। संधिवात एवं प्लीहा वृद्धि में फल देते हैं।

रासायनिक संगठन :- मूल त्वक् में राल, रंजकतत्त्व, ट्राइमेथिलेमीन, सैल्वेडोरीन, नामक क्षारोदभस्म प्राप्त होती हैं। इसमें क्लोरीन भी प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। फल में शर्करा, वसा एवं रंजकतत्त्व पया जाता है।

जात्यादिवर्ग OLEACEAE

वर्गलक्षण :- इस वर्ग की वनस्पतियाँ वृक्ष, वृक्षक एवं लता के रूप में पाई जाती हैं। इस वर्ग में पत्र अभिमुख, अथवा एकान्तर, सादे त्रिपत्री, पिच्छसदृश, विभागित, अखण्डित, अथवा दन्तुर किनारे वाले एवं पर्ण उपपत्र रहित होते हैं। पुष्पवाह्यकोष 4 या 5 अथवा 9 विभागों वाला, पुंकेशर 2 गर्भाशय पृथक एवं द्विअन्तरालयुक्त होता है। फल- बड़े हुये, फटकर विकसित होने वाले तथा बीज पतले और कठिन कवचयुक्त होते हैं। इस वर्ग की वनस्पतियाँ तिक्त, ग्राही, वल्य एवं ज्वरघ्न होते हैं। पुष्प आक्षेपहर होते हैं।

221 जाति (चमेली)

द्रव्यनाम :- संस्कृत..........................जाति, सौमस्यायनी, सुमना, वर्षाभवा।
हिन्दी...........................चमेली, सिंहली ....
लैटिन...........................**Jasminum Officinale** Linn.Var J. grandiflorum.

गुण :- (1) चरक ने कुष्ठघ्न महाकषाय में जाति का उल्लेख किया है।

निरूक्ति :-

जाति / जाती — जायते इति जाती" यह अपने गुण विशेषों के होने से व्रण एवं मस्तिष्क आदि रोगों में उपयोगी है।

सुमना — सुष्ठुमन्यते इति सुमना मनोज्ञत्वात्" इसके पुष्प-सुगन्धित होने से मन को अच्छे लगते हैं।

स्वरूप परिचय :- यह गुल्मक नुमा आरोही लता है। काण्ड-धारीदार, पर्ण-विपरीत, संयुक्त, 5 से. मी. से 10 से. मी. लम्बे, पत्रक संख्या में 7 से 11, अग्रपत्रक बड़ा, पत्रक विनाल तथा अग्र के जोड़े का आधार मिला हुआ रहता है। पुष्प-सुगन्धित, श्वेत वर्ण के होते हैं। पीले पुष्पवाली जाति को स्वर्ण जातिका कहते हैं।

पुष्पकाल..........................दिसम्बर, मार्च।
फलकाल........................पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग......................पत्र, पुष्प

प्राप्तिस्थान :- इसकी लतायें उत्तरी हिमालय की निचली घाटियों में स्वंयजात होते हैं। भारत के सभी स्थानों के बागों में यह लगाया हुआ मिलता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :- (2) तिक्त, कषाय, उष्ण, लघु, शिर, आंख, मुख एवं दांतों के रोगों को दूर करने वाला है। यह कुष्ठ तथा रक्त विकारों में उपयोगी है। यह शीत तिक्त, व्रणशोधन, व्रणरोपण, मूत्रजनन एवं आर्तवजनन है। चमेली के पुष्पों का लेप त्वचा के रोगों में कण्डू कम करने के लिये करते हैं। कान से पीव आने पर चमेली के पत्तों से साधित तेल कान में डालते हे। नेत्र रोगों में फूलों का लेप करते हैं। मुखपाक में जातिपत्रों के क्वाथ से कुल्ले करने से लाभ होता है। फुफ्फुस एवं श्वासनलिका शोथ में मालती का प्रयोग करते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठन :- पुष्पों में उड़नशील तेल एवं पत्तों में एक एकक्षाराभ एवं सोलेसिक अम्ल पाया जाता है।

मुख्ययोग :- जात्यादितेल, जात्यादिघृत ।

222 यूथिका (जूही)

द्रव्यनाम ....संस्कृत.........................यूथिका, गणिका, पीता,
हिन्दी...........................जूही
लैटिन...........................**Jasminum auriculatum** Vahl.

निरूक्ति :—**युथिका**-अर्थात् इसके पुष्प गुच्छों में खिलते हैं।
गणिका— गणिकेव चित्ताकर्षकत्वात्" अर्थात् इसके पुष्प वैश्या सदृश मन को आकर्षण करने वाले होते हैं।
हेमपुष्पिका— इसके पीले फूलों वाली किस्म होती है जिसे हेमपुष्पिका या पीता कहते हैं।

स्वरूप परिचय :- यह आरोही गुल्मकनुमा लता जाति की वनस्पति है। पर्ण-साधारण, कभी-कभी त्रिपत्रक, इसमें नीचे के पत्रक छोटे, अण्डाकार, गोल, मसृण एवं मृदु रोमिल होते हैं। पुष्प-श्वेत, सुगन्धित गुच्छों में। इसकी अन्य किस्में हिमालय की निचली घाटियों में पाई जाती हैं।

यथा— स्वर्णजाति...........................**Jasminum humile** Linn.
स्वर्णयूथिका........................**Jasminum.**
मालती / मल्लिका / मोतिया **Jasminum sambac** Ait.
कुन्द **Jasminum multiflorum** And
गणिका **Jasminum officinale** L.

इसके कतिपय प्रकारों का उल्लेख शास्त्रकारों ने किया है।

प्राप्तिस्थान :- हिमालय की निचली घाटियों, एवं उद्यानों में इसकी लतायें लगाई हुई पाई जाती हैं

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :- (1) यह मुत्राघात, मुत्रकृच्छ्रं में उपयोगी हैं। पुष्प शीतल, कटु, लघु, मधुर, हृद्य, पित्तनाशक, व्रण, मुखपाक, अक्षिविकार एवं शिरोरोग में उपयोगी है। मालती (मल्लिका) कटु, तिक्त, बाजीकर, चक्षुष्य, कण्डू, व्रणनाशक है।

वक्तव्य :- संस्कृत साहित्य में इनको देवताओं के पुष्प कहे गये हैं। एवं कतिपय स्थलों पर इनके पुष्पों का उल्लेख मिलता है। चरक सुश्रुत ने यूथिका का उपयोग अतिसार, रक्तपित्त एवं प्रमेह में किया है। मालती (मोतिया) के पुष्प, मूल का विशेष उपयोग है।

223 पारिजात (हरसिंगार)

द्रव्यनाम :- संस्कृत..........................शेफालिका, पारिजात, रागपुष्पी, खरपत्रक
हिन्दी..........................हरसिंगार
लैटिन..........................**Nyctanthes arbortristis** Linn.

निरूक्ति :- (1) **रागपुष्पी** :— इसके पुष्प श्वेताभ-गुलाबी वर्ण के होने से इसे रागपुष्पी कहते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

खरपत्रक :– हरसिंगार के पत्र खुरदरे होते हैं।

स्वरूप परिचय :– इसके वृक्ष झाड़ीदार एवं मध्यम कद के वृक्ष होते हैं। काण्डछाल भूरे रंग की खुरदरी होती है। पर्ण-विपरीत, स्पर्श में अत्यन्त रूक्ष, खर, नुकीले, अण्डाकार, आधार की तरफ गोल, पत्रतट अखण्ड, एवं दन्तुर, पुष्प-केसरियावर्ण के सुगन्धित, फल-चपटे, गोल, हरे रंग के होते हैं।

पुष्पकाल..............................फरवरी–जून ।
फलकाल............................शीतकाल ।
प्रयोज्य अंग.....................पत्र, पुष्प, बीज ।

प्राप्तिस्थान :– यह भारत के सभी उष्ण भागों एवं हिमालय की निचली घाटियों में सर्वत्र सुलभ है।

दोष अधिष्ठान भेदन कर्मज्ञान :– (2)

रस-तिक्त, वीर्य-शीत, विपाक-कटु, कर्म-कफ-पित्तघ्न, ज्वरघ्नन, कफघन, यकृदुत्तेजक, मृदुविरेचक

आमयिक प्रयोग :– इसके पत्तों का बनाया हुआ क्वाथ गृध्रसी वात में उपयोगी है। शेफालिका शब्द निर्गुण्डी के लिये आया है। जीर्णज्वर एवं मलेरिया आड्कस्वरस के साथ देने से लाभ होता है। बच्चों के कृमि के लिये पत्र स्वरस का प्रयोग करते हैं। इसके बीजों को जल में पीस कर सिर के गंज पर लगाते हैं। प्लीहोदर, उदकमेह में पंचाग क्वाथ का प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन :– इसके पुष्पों में एक सुगन्धित उड़नशील तेल रहता है। इसके पत्रों में निक्टेन्थाइन नामक क्षाराभ तत्त्व पाया जाता है।

224 मुष्कक (सफेद मोखा)

द्रव्यनाम :– संस्कृत...........................मुष्कक, मोक्षक, श्रारश्रेष्ठ,
हिन्दी...........................मोखा (श्वेत)
लैटिन...........................**Schrebera swietenioides Roxb.**

गुण :– (1) सुश्रुत ने मुष्ककादिगण में एवं चरक ने मुष्ककं घण्टापाटलम्" यह अर्थ किया है ।

स्वरूप परिचय :– मोखा के मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। काण्डत्वक् मसृण श्वेताभ वर्ण का होता है। पर्ण-विपरीत, पक्षवत्, पत्रक से 9 की संख्या में मसृण होते हैं। पुष्प- पीताभ-गुलाबी रंग के, बहुवर्ध्यक्ष, पुंकेशर दलचक्र नलिका के अग्रभाग में निविष्ठ, फल–घण्टाकार, लटके हुये कठोर, बीज 3 से 4 तक होते हैं।

पुष्पकाल..............................अप्रैल, मई।
फलकाल............................अगस्त, सितम्बर
प्रयोज्य अंग.........................काष्ठसार, क्षार ।

प्राप्तिस्थान :– मोखा के वृक्ष भारत के उष्ण भागों में सर्वत्र स्वयंजात होते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदन कर्मज्ञान :– (2) कटु, तिक्त, ग्राही, विष, मेद, गुल्म कण्डू, वस्तिसम्बन्धी रोग कृमि एवं शुक्रनाशक है। श्वेतमोखा की जड़ से साधितघृत कुष्ठ में लाभदायक है। इसका क्षार सबसे श्रेष्ठ माना गया है। विहार के आदिवासी बच्चों के अण्डकोष बढ़ने पर फलों को कमर में बांधते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य :– (3) संहिता काल में पाटला एवं मोक्षक दोनों भिन्न–भिन्न द्रव्य रहे हैं। निघण्टुकारों ने पाटला के पर्यायों में एवं भेदों में मुष्कक का समावेश किया है। घण्टापाटली एवं काष्ठपाटला से भ्रम हो गया है। संहिताकारों ने श्वेत एवं कृष्ण दोनों मोखा वृक्ष का अगल–अलग वर्णन किया है।

यथा— श्वेत मुष्कक..........................**schrebera swietenioider**
कृष्ण मुष्कक..........................**Elaeodendron glaucum**

इनमें श्वेत मुष्कक को अधिक उपयोगी माना गया है।

कुटजादिवर्ग APOCYNACEAE

वर्गलक्षण :– इस वर्ग में वृक्ष, वृक्षक, लता एवं क्षुप सभी प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। इस वर्ग के द्रव्य सविष, दूध-युक्त एवं सुन्दर पुष्पों वाले होते हैं। पर्ण-चमकदार, मसृण, अभिमुख, किंवा चक्राकार, पर्ण-सादे, अखण्ड एवं उपपत्र रहित, अखण्डकिनारे वाले होते हैं। पुष्प लाल, गुलाबी, श्वेत, पीत, अनके रंग वाले होते हें। ये पुष्प–द्विबीजपर्ण, संयुक्तदल, उपरिस्थगर्भाशय, पुष्पाभ्यन्तरकोश एवं पुष्पवाह्यकोश दल 4–5 पुंकेशर 4–5, फल-लम्बगोल या सेम को आकार के एवं एक वृन्त पर फली संयुक्त जोड़े में होती है। काण्ड–पत्र, पुष्प को तोड़ने पर श्वेताभ दुग्ध निकलता है। बीज अनके आकार में होते हैं।

इस वर्ग में मुख्य रूप से कुटज, सपृपर्ण, करबीर (कनेर) सर्पगन्धा, करमर्दक आदि द्रव्य आते हैं।

225 कुटज (कूड़ा)

द्रव्यनाम संस्कृत..........................कुटज, इन्द्रयव (बीज), वत्सक, गिरिम, मल्लिका, वृक्षक, शक्र, कलिंगक (बीज) शक्रयव।
हिन्दी..........................कूड़ा (कड़वा) कुरैया ।
लैटिन..........................**Holarrhena antidyenterica** wall.

गुण :– (1) चरक ने अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, स्तन्यशोधन एवं आस्थापनोपग महाकषाय, तथा सुश्रुत ने आरग्वधादि, पिप्पल्यादि, हरिद्रादि, वृहत्यादि, लाक्षादि एवं उर्ध्वभागहर द्रव्यों में कुटज का उल्लेख किया है।

निरूक्ति :–

कुटज :– कुटिलो जायेत इति कुटजः वा कूटे श्रृगे जायते इति" अर्थात् यह छोटी–छोटी पहाड़ियों में विशेष रूप से पैदा होता है।
वत्सक :– वदति, वदव्यक्तायां वाचि" अर्थात् यह दीपन' पाचन आदि गुणों के कारण उदररोगों में उपयोगी है।
शक्र :– अतिसारादिरोगाम्र निवारयितु शबलोतीति" अर्थात् यह अतिसारादि रोगों के निवारण में समर्थ है।
गिरिमल्लिका :– इसके पुष्प सुगन्धित एवं सुन्दर होने से पर्वतों पर मल्लिका के सदृश शोभायमान होते हैं।
इन्द्रयव :– यवाकार बीज होने से इसे इन्द्रयव कहते हैं। बीज कल्याणकारी हाने से भद्रयव भी कहते हैं।

स्वरूप परिचय :– कुटज के बड़े गुल्म एवं मध्यम आकार के क्षीरी वृक्ष होते हैं। छाल-धूसरवर्ण की स्वाद तिक्त, पर्ण-लट्वाकार या अण्डाकार-आयताकार, लम्बाई में 15 से 30 से. मी. आमने–सामने कतारों में, पुष्प-श्वेत, सुगन्धित, गुच्छों में, पाली–संयुक्त, पतली–लम्बी।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बीज :– रेखाकार-आयताकार, यवसदृश, मसृण, एवं स्वाद में तिक्त, इन्हीं बीजों को इन्द्रयव या भद्रयव भी कहते हैं। मीठा कुटज (राइटिआटोमेन्टोजा) के बीज तिक्त नहीं होते आकार में कोई विशेष अन्तर नहीं है। कुटज कड़वा की छाल बाहर से श्वेताभ, कपिश या भूरे रंग की, बाहरीतल पर लम्बाई में झुर्रियां पड़ी होती हैं।

पुष्पकाल.............................अप्रैल से जुलाई।
फलकालण्...........................शीतकाल ।
प्रयोज्य अंगण.......................छाल, बीज, पुष्प।
मात्राछाल............................2 से 5 तोला
बीजचूर्णः..............................2 से 4 माशा (2 से 4 ग्राम)

प्राप्तिस्थान :– यह हिमालय की निचली उष्ण घाटियों से लेकर भारत के सभी प्रदेशों में सर्वत्र पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :– (2) गुण-लघु, रूक्ष, रस-तिक्त, कषाय, विपाक-कटु, वीर्य-शीत, प्रधानकर्म-अतिसार, प्रवाहिकानाशक, दीपन, स्तम्मन एवं ज्वरघ्न, अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, स्तन्यशोधन, कृमिघ्न।

आमयिक प्रयोग :– (3) कुटज छाल एवं बीज अमीविकडिसेन्ट्री (प्रवाहिका) अतिसार में विशेष उपयोगी है। रक्त प्रवाहिका में कुड़ा की छाल विशेष उपादेय है। बच्चों के रक्तातिसार कुटज, इन्द्रयव एवं नागरमोथा का क्वाथ देते हैं । संग्रहणी, रक्तविकार, ज्वर, वातरक्त, विसर्प, रक्तार्श में उपयोगी है। आंवजन्य जीर्ण, प्रवाहिका में यह विशेष लाभ करता है। योनिरोगों में भी कुटज का प्रयोग होता है।

रासायनिक संगठन :– कुटज त्वक् में कोनेसीन, कोनेसिमाइन, आइसोकोनेसिमाइन, कुरचीन, कुरचीसीन, आदि ऐल्केलाइड एवं अनेक सक्रिय तत्त्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :– कुटजारिष्ठ, कुटजावलेह, वत्सकादिक्वाथ, कुटजधनवटी, विडङ्गासव, गंगाधररस, पीयूषवल्लीरस, प्रदारीलौह, महासुदर्शन चूर्ण।

वक्तव्य :– संस्कृतसाहित्य में श्वेतकुटज एवं आसितकुटज इन दो भेदों का उल्लेख मिलता है। असितकुटज को मीठाकुटज कहते हैं इसके बीज तिक्त नहीं होते हैं। डल्हण के अनुसार पुंकुटज (कड़वा कुटज) एवं स्त्रीकुटज की अपेक्षा अतिसार में उपयोगी है।

226 सपृपर्ण (छितवन)

द्रव्यनाम :— संस्कृत........................सपृपर्ण, शारद, विशालत्वक् विषमच्छद ।
हिन्दी.........................छितवन, सतौना
लैटिन.........................**Alstonia scholaris** R. Br.

गुण :– (1) सुश्रुत ने आरग्वधादिगण, लाक्षादिगण, एवं अधोभागहर द्रव्यों में सपृपर्ण का उल्लेख किया है। चरक ने कूष्ठघ्न, उदर्दप्रशमन एवं शिरोविरेचन द्रव्यों में गणना की है।

निरुक्ति (2) सपृपर्णः— काण्डे काण्डे सपृपर्णानि अस्य इति" इसके शाखा के अग्रभाग में सात–सात पत्रों का समूह होता है।

विशालत्वक्— विशाला महती त्वक् अस्य" अर्थात इसकी छाल मोटी एवं स्थूल होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शारद —शरदिपुष्पाणि जायन्ते अस्मिन् इति शारदः" इसके शरद् ऋतु में पुष्प खिलते हैं। इसे गुच्छपुष्पक एवं विषमच्छद भी कहते हैं।

स्वरुपपरिचय :— सपृपर्ण के सदाहरित ऊंचे एवं सदाहरित सुन्दर वृक्ष होते हैं। काण्ड दुग्धमय उपर भाग की अपेक्षा अधोभाग मोटा होता है। पर्ण—चक्रिमक्रम में, रुपरेखा में अभिलट्वाकर, अण्डाकार, आयताकार, या आयताकार-भालाकार, मसृण, चर्मिल, प्रत्येक चक्र में 3 से 9 पत्तियाँ, पर्णवृन्त छोटे होते हैं। काण्ड एवं पर्ण को तोड़ने पर दूध निकलता हैं। पुष्प छत्राकार, गुच्छों में हरिताभ, सुगन्धित होते हैं। पत्तियाँ-संयुक्त, या अलग—अलग, लम्बी नीचे की ओर लटकी होती हैं। बीज- पतले, चपटे, रुई से आवृत होते हैं।

पुष्पकाल .... जनवरी, फरवरी।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग .... छाल, घनसत्व।
क्वाथ ....1 से 2 तोला।

प्राप्तिस्थान :— भारत के उष्ण एवं नम प्रदेशों में विशेषतः दक्षिण भारत के पश्चिमीय तटप्रदेशों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं। इसके वृक्ष सड़कों के किनारे एवं पुराने बगीचों में भी लगाये हुये पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— (2) गुण-लघु, स्निग्ध, रस-तिक्त, कषाय, विपाक-कटु, वीर्य—उष्ण, कर्म—कफ वातशामक, व्रणशोधन, रोपण, दीपन, स्तम्भन, अनुलोमन, कटुपौष्ठिक, विषमज्वरघ्न, कृमिघ्न, कफघ्न, स्तन्यजनन, रक्तशोधक, एवं हृद्य ।

आमयिक प्रयोग :— सपृपर्ण की छाल विषमज्वर की उत्तम औषधि है। इस रूप में इसकी क्रिया कुनैन की तरह होती है। साथ ही इस दवा का कुप्रभाव नहीं होता हे। इसके लिये इसका फाण्ट, क्वाथ एवं घनसत्व का प्रयोग किया जाता हे। जीर्णज्वर, चिरकालीन विषमज्वर, एवं ज्वरोत्तरकालिक दौर्बल्य, अग्निमांघ आदि में इसका प्रयोग किया जाता है। चिरकालीन अतिसार, प्रवाहिका एवं वृहदान्त्र की श्लैष्मिक कलाशोथ में इसकी छाल उपयोगी है। कुष्ठ रोगी के स्नान, पान में सपृपर्ण का क्वाथ उपयोगी है। दन्तकृमि में सपृपर्ण का दूध दांतों में भरने से लाभ होता है। त्वचा पर सपृपर्ण की उत्तेजक क्रिया होती है। पुराने व्रणों पर छाल का लेप किया जाता है।

रासायनिक संगठन :— छाल में एकिटेनीन, एकिटामिडिन, एवं एल्कैलाइड पाये जाते हैं।
मुख्ययोग :— सपृपर्णसत्वादिवटी, मलेरियासंहारवटी, सपृच्छदारिक्वाथ।

227 करवीर (कनेर)

द्रव्यनाम — संस्कृत .... करवीर, अश्वमारक, हयमारक,
हिन्दी .... कनेर, करेण,
लैटिन .... **Nerium indicum** Mill.

गुण :— (1) चरक ने कुष्ठघ्न महाकषाय, तथा तिक्तस्कन्ध में एवं सुश्रुत ने लाक्षादिवर्ग एवं शिरोविरेचन द्रव्यों में करवीर का उल्लेख किया है।

निरूक्ति :— **करवीर** :— करं पत्रं वीरयति इति" अर्थात् यह विषैला होने से वीर सदृश है।
हयमारक :— हयानां मारक इति" अर्थात् विषैला होने के कारण यह घोड़ों को मार डालता है।
श्वेतपुष्प— इसके पुष्पा श्वेत एवं रक्तवर्ण के होते हैं इसलिये इसे रक्तपुष्प भी कहते हे।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप परिचय :– कनेर के गुल्मजातीय सदाहरित छोटे वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण-समूह रूप में 3 या 4 की संख्या में 10 से 15 से. मी. लम्बे, रूपरेखा में रेखाकार–भालाकार, अथवा आयताकार, लम्बाग्र, चमकीले, गाढ़े हरे रंग के होते हैं। पुष्प सफेद गुलाबी एवं रक्त वर्ण के होते हैं। पुष्प भेद से श्वेत, रक्त एवं पीत तीन प्रकार का होता है। पीत कनेर के **Thevetia nerifolia** कहते हैं। पीत करने के घण्टिकाकार पुष्प होते हैं। फल-गोलाकार चतुष्कोणाकार एवं हरे रंग का होता है। फल में कड़ी गुठली होती है। सफेद कनेर की फलियाँ लम्बी एवं पतली होती हैं।

पुष्पकाल.............................मार्च, जून, अगस्त।
फलकाल............................शीतकाल।
प्रयोज्य अंग........................मूलत्वक्, पत्र।

प्राप्तिस्थान :– यह पश्चिमी हिमालय प्रदेश, उत्तरप्रदेश, सिन्ध एवं मध्यभारत के सभी प्रदेशों के उद्यानों में यह पाया जाता है। पीला कनेर पश्चिमी द्वीप समूह का आदिवासी पौधा है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :– (2) गुणृलघुरूक्ष, तीक्ष्ण, रसृकटु, तिक्त विपाकृकटु, वीर्यउष्ण, प्रधानकर्म वातकफनाशक, व्रणशोधन एवं रोपण, रक्तशोधक, कुष्ठनाशक, भेदन।

आमयिक प्रयोग :– करवीर पंचांग क्वाथ से कुष्ठ के रोगी को स्नान कराना चाहिये। अल्पमात्रा में आभ्यन्तर प्रयोग भी उपादेय है। इन्द्रलुप्त में करवीर स्वरस का लेप करना हितकारी है। उपदंश में करवीर के मूल को जल के साथ पीस कर अथवा घिसकर लेप करने से वेदना कम होती है। पीली कनेर के मूलत्वक् चूर्ण विषमज्वर में उपयोगी है। आधुनिक खोजों के आधार पर यह हृदयरोगों में भी उपादेय है।

रासायनिक संगठन :– सफेद तथा लाल कनेर की जड़ में (नेरियोडोरिन) करवीरीन नामक अक्रिस्टलीय तत्त्व पाये जाते हैं। ये दोनों तत्त्व हृदय के लिये हानिकर हैं। इसके अतिरिक्त इसमें नेरिईन नामक पदार्थ पाया जाता है। पीली कनेर में थेवेटीन नामक विषैला तत्त्व पाया जाता है।

मुख्ययोग :– करवीरयोग, करवीरादितैल ।

228 सर्पगन्धा

द्रव्यनाम :– संस्कृत.......................सर्पगन्धा
हिन्दी.......................धवलरुआ, छोटा चांद,
लैटिन.......................**Rauwalfia serpentina** Benth.

स्वरूप परिचय :– सर्पगन्ध के 2.5 से. मी. से लेकर 5.60 से. मी. तक ऊँचे गुल्म पाये जाते हैं। काण्ड बेलनाकार, तोड़ने पर पाण्डुवर्ण के एवं चिपचिपा दूध जैसा रस निकलता है। पर्ण-चमकीले 3–4 पर्ण एक साथ चक्र में, अभिलट्वाकार, भालाकार, आयताकार छोटे पर्णवृन्तयुक्त होते हैं। पुष्प-छोटे गुच्छों में श्वेत-गुलाबी रंग के, फल-रक्ताभ एवं पकने पर कृष्ण वर्ण के मांसल, बीज मसृण रेखाकार होता है। मूल–स्वाद में कटु, गन्धयुक्त वाह्यस्वरूप झुर्रीदार, अनियमित, धारीदार होता है। इसकी दूसरी किस्म भी बगीचों में पाई जाती है जिसे **Rauwolfia Canescens** कहते हैं। इसके गुण भी सर्पगन्धा के समान हैं। मूल तोड़ने पर खट से टूटती है टूटातल अनियमित पीताभ भूरे रंग का होता है।

पुष्पकालण............................अगस्त, सितम्बर।
फलकाल............................अक्टूबर, नवम्बर।
प्रयोज्य अंग........................मूल ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान :– भारतवर्ष में यह उष्ण एवं आर्द्र भूमि पर प्रायः हिमालय की तराई में रूहेलखण्ड, अवध एवं गोरखपुर के क्षेत्रों में पाया जाता है। इसकी किस्में पाकिस्तान, अण्डमान, लंका, बर्मा, कोचीन, चीन, जापान आदि प्रदेशों में पाया जाता है। भारतवर्ष में बिहार, आसाम, उत्तरप्रदेश में बहुतायद से इसकी खेती की जाती है।

दोष अधिष्ठान भेदन कर्मज्ञान :– मूल–रस में तिक्त एवं कटु विपाकी होता है। मूल में निन्द्राकर प्रभाव पाया गया है, तथा रक्तचाप की यह कारगर वनस्पति है। अल्पमात्रा में कटुपौष्टिक, पित्तसारक एवं ज्वरघ्न है। पागलपन को दूर करने के लिये इसके मूल का प्रयोग ग्रामीण लोग करते हे।

रासायनिक संगठन :– मूल में अजमलीन, अजमलिसीन, सर्पेन्टीन, सर्पेन्‌एनीन राओल्फीन आदि मुख्य तत्त्व पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त स्टार्च, गोंद तथा लवण भी पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :– सर्पगन्धादि चूर्ण, सर्पगन्धावटी, सर्पगन्धायोग।

229 करमर्दक (करौंदा)

द्रव्यनाम :– संस्कृत.........................करमर्दक,
हिन्दी.........................करौंदा,
लैटिन.........................**Carissa Carandas Linn**.

स्वरूप परिचय :– करौंदा के सदाहरित झाड़ीदार गुल्म होते हैं। काण्ड एवं शाखाओं पर तीक्ष्ण एवं युग्म कांटेदार, पर्ण-मसृण 3 से. मी. से 5 से. मी. तक लम्बे एवं आयताकार होते हैं । 4 पुष्प-श्वेतवर्ण के सुगन्धित, फल-झड़वेरी सदृश, काले श्वेताभ रक्तवर्ण एवं स्वाद में खट्टे होते हैं। इसकी अन्य किस्में भी पाई जाती हैं।

पुष्पकाल.............................मार्च, अप्रैल
फलकाल.............................पुष्पकाल के बाद
प्रयोज्य अंग.........................मूल, फल ।

प्राप्तिस्थान :– भारत के उद्यानों में प्रायः इसके गुल्म पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदन कर्मज्ञान :– (1) रस-अम्ल, तिक्त, वीर्य-उष्ण विपाक-अम्ल। यह शीतल, रक्तपित्तशामक, एवं हृद्य है। मूल-कटु, तिक्त, वामक एवं मूत्रजनन है। पक्वफल यकृत के विकारों में उपयोगी है। इसके फलों का अचार भी बनाया जाता है। नव्यमत से पक्वफल शीतल, मधुराम्ल एवं पित्त के रोगियों में उपयोगी है। बार–बार आने वाले ज्वर में पत्रक्वाथ देने से लाभ होता है।

वक्तव्य :– चरकसंहिता के हृद्य दशेमानि में करमर्द का उल्लेख है। कण्टकाख्य पंचमूल में करमर्द का उल्लेख है।

अर्कादिवर्ग ASCLEPIADALEAE

वर्गलक्षण :– इस वर्ग में गुल्म, लता एवं शाकीय क्षुप पाये जाते हैं। काण्ड दुग्धिल, रसदार, पर्ण-अभिमुख, चक्राकार, उपपत्ररहित, अखण्डित, पुष्प-नियमित, द्विबीज पर्ण, उभयलिंगी, पुष्पवाह्यकोष एवं पुष्पाभ्यन्तरकोष, पांच–पांच, फल-युग्म कोषमय, बीज रोमश रुईयुक्त । इस वर्ग में प्रायः अर्क (मदार) सारिवाकृष्ण, अनन्तमूल, मूर्वा, आदि कतिपय वनस्पतियाँ आती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

230 अर्क (आक)

द्रव्यनाम :– संस्कृत..........................अर्क, शुल्कार्क, शुकफल
हिन्दी..........................आक, मदार.
लैटिन..........................**Calotropis procera (AIT). R.Br.**
श्वेत अर्क......................**Calotropis gigantea. (Linn.) R.Br.**

गुणः– (1) चरक ने भेदनीय, स्वेदोपग, वमनोपग महाकषाय में एवं सुश्रुत ने अर्कादिगण तथा अधोभागहरगण में अर्कद्वय का उल्लेख किया है।

निरूक्ति :– अर्क- द्रव पुष्पमस्य इति" अर्थात् इसका पुष्प सूर्य के सदृश रक्ताभ गोल होता है। दुग्धमय होने से भी आक शब्द का प्रयोग है।

शुकफल :– शुकइव फलमस्य" तोते के नासा सदृश इसका फल होता है।

शुल्कार्क् :– इसकी एक किस्म श्वेतपुष्प वाली होती है। रक्त एवं श्वेत पुष्प भेद से यह दो प्रकार का होता है।

स्वरूप परिचय :– आक का गुल्म के आकार का बहुशाखीय दुग्धमय पौधा है। काण्ड की शाखायें पतली, हल्की, पीताभवर्ण की मृदुरोमिल, पर्ण अभिमुख अभिलट्वाकार, आयताकार, दीर्धवत्, चर्मिल, ह्रदयकार पत्र का अर्धः स्तल पर रूई की भांति रोमावृत पुष्प बैंगनी लाल रंग के पत्रकोणोंद्भूत, समशिखगुच्छों के होते हैं। इसकी दूसरी किस्म के पुष्प बाहर से श्वेत वर्ण के होते हैं जिसे श्वेतअर्क **Calotropis gigantea** (Linn.) R.Br. कहते हैं। फल कोषयुक्त, बीज रुईदार संख्या में अनेक।

पुष्पकाल........................फरवरी, मई।
फलकाल.....................पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग..................मूल, पत्र, पुष्प, क्षीर।

प्राप्तिस्थान :– यह भारत के उष्ण एवं रेतिली भूमि पर प्रायः सभी प्रान्तों में सुलभ है। लाल आक की अपेक्षा सफेद आक कम मिलता है।

दोष अधिष्ठान भेदन कर्मज्ञान :– (2) गुण-लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, रस-कटु, तिक्त विपाक-कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म-वेदनास्थापन, शोथघ्न, व्रणशोधन, कुष्ठघ्न, वमनोपग, दीपन–पाचन, श्वासहर ।

आमयिक प्रयोग :– मूल की छाल कटु, तिक्त, उष्ण, पित्तस्त्रावी, स्वेदजनन, संकोचविकास प्रतिबन्धक, छाल का अल्पमात्रा में प्रयोग करने से आमाशय में उत्तेजक एवं बड़ी मात्रा में प्रयोग करने से आमाशय में दाह होता है। यह कुष्ठ, गुल्म एवं उदररोगों में उपयोगी है। अर्कपुष्प दीपन, कफघ्न और संकोचविकास प्रतिबन्धक है। कास दमा, क्षुधानाश, कुपचन में लाभ होता है। वाह्य कर्णशूल, दंतशूल, कृमि, अर्श, खालित्य त्वग् रोग में क्षीर पत्ररस, लेप व्रणशोथ में प्रयोग करते हैं। उपदंश, विषमज्वर, आमवात आदि रोगों में उपयोगी है।

रासायनिक संगठन :– मूलत्वक् में पीताभ तिक्त सत्व अल्पमात्रा में किण्वतत्व व मदार एल्वन और फ्लूयेविल पाया जाता है। इसमें पपेन की भाति प्रोटीन विलायक किण्व सा तत्त्व पाया जाता है।

मुख्ययोग :– अर्कलवण, अर्कतिल, कनकासव, महाविषगर्भतिल, अग्निवर्धकवटी ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

231 सारिवाश्वेत (अनन्तमूल)

द्रव्यनाम :- संस्कृत.........................सारिवाश्वेत, अनन्ता, गोपी, गोपकन्या, दुग्धगर्भा
हिन्दी.........................अनन्तमूल,
लैटिन.........................**Hemidesmus indicus R.Br.**

गण :- (1) चरक के स्तन्यशोधन, पुरीषसंग्रहणीय, ज्वरहर, दाहप्रशमन, महाकषाय, मधुरस्कन्ध तथा सुश्रुत के विदारिगन्धादिगण, एवं सारिवादि वल्ली पञ्चमूल में उल्लेख है।

निरूक्तिः- (2) **अनन्ताः**— नास्तिअन्तमूलयस्य अर्थात् अनन्तमूल की जड़ें काफी लम्बी एवं गहरी होती हैं।

गोपी—मूल गहराई में होने से गोपी एवं गोपकन्या भी कहते हैं।

दुग्धगर्भा—पंचांग दुग्धमय होने से दुग्धगर्भा कहते हैं एवं लता कुछ कृष्णाभवर्ण की होती है जिसे कृष्णावल्लरी भी कहत हैं।

शिविफला—फल युग्म में शिंवि के आकार में एवं बीज रुईदार होने से तूलबीजा भी कहते हैं।

स्वरूप परिचय :- सारिवा की बहुवर्षायु, बहुशाखी लता होती है। इसकी लतायें आरोही या जमीन पर परिसृत होती हैं। शाखायें गोल, चिकनी अथवा मृदुरोमावृत, या अनुलम्ब दिशा में सूक्ष्म धारियों युक्त होती हैं। पर्ण-अभिमुख क्रम से रूपरेखा में अंडाकार-आयताकार से लेकर रेखाकार-भालाकार एवं विभिन्न आकार में, कुण्ठिताग्र, गाढ़े हरे रंग के एवं उर्ध्वपृष्ठ पर श्वेत चित्रित होते हैं काण्ड एवं पत्र को तोड़ने पर दूध निकलता है। पुष्प-नीलारुण, पत्रकोणों के अभिमुख, विनाल एवं गुच्छकों में निकलते हैं। फलीश्रृंगाकार दो–दो एक साथ, लम्बे बेलनाकार 3 से 5 इन्च तक लम्बे अग्रभाग पतला एवं नुकीला, बीज रूईदार पतले होते हैं। मूल-गाढ़े भूरे रंग के सुगन्धित होते हैं। इसी कारण इसे सुगन्धमूला भी कहते हैं।

पुष्पकाल..................,.........जून, जुलाई ।
फलकाल................,.........शीतकाल,
प्रयोज्य अंग... ....मूल ।

प्राप्तिस्थान :- यह गंगा के उत्तरी मैदानी भागों से लेकर पूरब में बंगाल तक तथा दक्षिण में मध्यप्रदेश, उड़ीसा आदि प्रान्तों में इसकी स्वयंजात लतायें पाई जाती हैं।

दोष अधिष्ठान भेदन कर्मज्ञान :- (3) गुरू, स्निग्ध, रस-मधुर, तिक्त विपाक-मधुर, वीर्य-शीत, प्रधानकर्म-त्रिदोषशामक, दाहप्रशमन, रक्तशोधक, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, दीपन-पाचन, मूत्रजनन, स्तन्यशोधन, चर्मरोगनाशक, पुरीषसंग्रहणीय।

आमयिक प्रयोग :- क्षुधानाश एवं कुपचन रोग में अनन्त मूल देने से आमाशय की शक्ति बढ़ती है एवं भूख लगती हैं। अन्न में रुचि उत्पन्न होती है। यह प्रदर, जीर्णआमावात, रक्तविकार कास, पाण्डु आदि रोगों में उपयोगी है। यह वातव्याधि, वातरक्त, उपदंश आदि विकारों में उपयोगी है। इसके अतिरिक्त यह श्वास, व्रण, नेत्ररोगों में भी उपादेय है।

रासायनिक संगठन :- अनन्तमूल की ताजी जड़ों में उड़नशील तेल, तथा हेमिडेस्टेरोल एवं हेमिडेस्मोल नामक दो स्टेरोल तथा, रैजिन्स, टैनिन्स, शर्करा, सैपोनिन तथा अल्पमात्रा में एक ग्लाइकोसाइड आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :- सारिवादिक्वाथ, सारिवाद्यासव, दशमूलारिष्ठ, सारिवादिवटी, रक्तशोघकवटी, चन्द्रकलारस, अश्वगन्धारिष्ठ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

232 सारिवा कृष्ण (कालीसारिवा)

द्रव्यनाम :– संस्कृत..............................कृष्णसारिवा, जम्बूपत्रा, सारिवा ।
हिन्दी...........................कालीसारिवा ।
लैटिन..........................**Cryptolepis buchanani** Roem.

गुण :– चरक ने स्तन्य शोधन, पुरीषसंग्रहणीय, ज्वरहर, दाहप्रशमन महाकषाय में एवं सुश्रुत के विदारिगन्धादिगण एवं सारिवादिगण में सारिवाद्धय का उल्लेख है।

निरूक्ति :– (1) कष्णसारिवा इसकी लतायें कृष्णवर्ण की होती हैं।
जम्बूपत्रा :– पर्ण जामून के पत्रसदृश होने से जम्बूपत्रा कहते हे।

स्वरूप परिचय :– इसकी दुग्धयुक्त, परिसृत्तत् काष्ठीय लतायें होती हैं। काण्डत्वक् बैंगनी आभा लिये हुये, पतले पर्त के रूप में छूटती है। पर्ण जम्बूपत्रा सदृश चमकीले, मसृण, रुपरेखा में अंडाकार, आयताकार, 8.5 से.मी. से 19.5 से. मी. लम्बे 1.5 से. मी. चौडे सवृन्त एवं अधः पृष्ठ श्वेताभ वर्ण का होता है पुष्प–हरित पीताभवर्ण, पर्णकोणोदभूत फलियाँ दो–दो एक साथ निकलती है। बीज वारीक चपटे तूलसधृश होते हैं। कुछ स्थानों पर कृष्णसारिवा के नाम से **Inchnocarpus frutescens R.Br.** का प्रयोग हैं।.

पुष्पकाल..............................मार्च, मई,
फलकाल...........................शीतकाल,
प्रयोज्य अंग.........................काण्ड, मूल ।

प्राप्तिस्थानः– इसकी गुल्म स्वभाव की लतायें भारत के उष्णप्रदेशों एवं हिमालय की निचली घाटियों में सर्वत्र सुलभ है। उत्तर भारत के बाजारों में इसे काण्ड के टुकड़े कृष्णसारिवा के नाम से उपलब्ध होते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदन कर्मज्ञान :–गुण–गुरु, स्निग्ध, रस, मधुर, तिक्त, विपाक-मुधर, वीर्य-शीत, कर्म त्रिदोषशामक, दाहप्रशमन, रक्तशोधक कुठघ्न, मूत्रजनन, चर्मरोगनाशक। गुणधर्म अनन्तमूल के ही सधश है।

रासायनिक संगठनः– काली सारिवा की जड़ में एक रालीय तत्त्व पाया जाता है जोकि इसका सक्रियतत्व माना जाता है।

233 जीवन्ती (डोडीशाक)

द्रब्यनाम ....संस्कृत .... जीवन्ती, शाकश्रेष्ठा, जीवनीया।
हिन्दी .... डोडीशाक, जीवन्ती।
लैटिन .... **Leptadenia reticulata** W.of A.

गुणः–(1) चरक ने जीवनीय महाकषाय, मधुरस्कन्ध तथा सुश्रुत ने काकोत्यादि गुण में जीवन्ती का उल्लेख किया है।

निरुक्तिः–
शाकश्रेष्ठाः– इसकी कच्ची कलियों का शाक श्रेष्ठ माना गया है इसलिये इसे शाकश्रेष्ठा कहते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जीवन्ती:- जीवनीय एवं वल्य गुण होने से इसे जीवनीय कहते हैं। दुग्धपीतवर्ण का होने से इसे स्वर्णजीवन्ती कहते हैं।

स्वरुप परिचयः

जीवन्ती की चक्रारोही लतायें होती हैं। पुराना काण्ड कार्कयुक्त एवं कोमल भाग श्वेताभ मृदुरोमश होता है। पर्ण-चर्मिल, 3.75 से0 मी0 से लम्बे लट्वाकार आयताकार या अण्डाकार नुकीले, सरलधार एवं मध्यपृष्ठ नीलाभ श्वेत, पुष्प-पीताभ-हरित, पर्णकोणोदमूत छत्राकार, गुच्छको में निकलते हैं। कलियाँ प्रायः एकाकी 5 से0 मी0 से 8 से0 मी0 तक लम्बी, चिकनी, कठोर, अग्रभाग चोंचदय, कच्ची कलियाँ स्वाद में मधुर स्वादिष्ठ शाक वाला, बीज, रूईदार तथा काण्ड को तोड़ने पर पीला सा दूध निकलता है।

पुष्पकाल........................अप्रैल, मई।
फलकाल ....पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग...................काण्ड, मूल।

प्राप्तिस्थानः-

इसकी लतायें शिवालिक वन खण्ड, सहारनपुर, देहरादून, पंजाब उत्तरप्रदेश में तराई वालें भागों में सर्वत्र सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदन कर्मज्ञानः- (2)

मधुर, स्निग्ध, लघु, वीर्य शीत, चक्षुष्य, वल्य, रसायन, हृघ, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, त्रि दोषनाशक, मूत्रजनन, शोथघ्न, अनुलोमन एवं दाह को दूर करने वाला है।

आमयिक प्रयोगः

हृध एवं रसायन हेतु जीवन्ती का उपयोग किया जाता है। जीवन्ती का उपयोग रक्तपित्त, क्षय, दाह, ज्वर, विष दोष, नक्तान्ध्य, एवं व्रण में किया जाता है। ज्वरजन्य दाह में इसके मूल के क्वाथ में धृत्त मिलाकर पीने से लाभ होता है। अतीसार में दही एवं अनार के साथ जीवन्ती शाक लाभ करता है।

रासायनिक संगठनः

काण्ड में लेप्टिडीन नामक दुग्ध बढ़ाने वाला तत्व पाया जाता है।

मुख्यप्रयोगः- जीवन्त्यादिघृत, च्यवनप्राश,

वक्तव्य

जीवन्ती को शास्त्रकारों ने शाकश्रेष्ठ बतलाया हे। निघण्टुकार जीवन्ती, स्वर्णजीवन्ती एवं दीर्घजीवन्ती आदि भेद मानते हैं। बाजार में दार्जिलिंग आदि स्थानों से संग्रहित **Dendrobium macraci** का प्रयोग स्वर्णजीवन्ती के नाम से किया जाता है, जोकि एक वृक्षों पर होन वाला पराश्रयी आर्किड है। यह वनस्पति सिक्किम, खसिया एवं पूर्वी बंगाल में अधिक पाई जाती है। इसके साथ-साथ फालिटोडा आर्टिकुलेटा भी जीववन्ती के नाम से प्रयोग किया जाता है। श्रीयुत यादव जी ने हालेस्ट्मिा हिडिआनम को जीवन्ती लिखा है। जिसे अधिकतर विद्वानों ने अर्कपुष्पी माना है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

234 मेषश्रृंगी (गुड़मार)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... मेषश्रृङ्गी मधुनाशिनी।
हिन्दी .... गुड़मार, आफो।
लैटिन .... **Gymnema sylvestre** Br

गणः–(1) सुश्रुत के वरुणादिगण एवं सालसारादिगण में तथा चरक ने तिल्वक कल्प एवं शीतज्वराक्त अगुर्वादितैल में उल्लेख किया है।

स्वरुप परिचयः

गुड़मार की वहुशाखीय चक्रारोही लतायें होती हैं। ये लतायें वृक्षों की सहायता से काफी दूर तक परिसृत होती हैं। पर्ण 2.67 से0 मी0 से 5 से0 मी0 लम्बे 9.25 से0 मी0 से 2.69 तक चौड़े, रुपरेखा में लट्वाकार, अंडाकार, भालाकार, पन्त्राग्र–नुकीला आधार की ओर गोलाकार, मृदुरोमश होते हैं। पुष्प–सुक्षम, पीताभवर्ण के समस्थमूर्धज क्रम में निकले हुये होते है। फलियाँ प्राय एकाकी या जोड़े में एवं अग्र की ओर क्रमशः संकुचित होकर चोंच जैसी हो जाती है। पत्र को मुख में चबाने से मधुर स्वाद ग्रहण की शक्ति नष्ट हो जाती है इसीलिये इसे गुड़मार कहते है।

पुष्पकाल .... अगस्त, सितम्बर।
फलकाल ....दिसम्बर, · जनवरी।
प्रयोज्य अंग .... पत्र।

प्राप्तिस्थान :–

गुड़मार उत्तरप्रदेश के विन्ध्याचल के वनों मध्यप्रदेश एवं राजस्थान, बिहार आदि सभी प्रान्तों में सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदन कर्मज्ञानः (2)

गुण–लघु, रुक्ष रस–कषाय, कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, यकदुत्तेजक, हृदयोत्तेजक, मूत्रक, कटुपौष्ठिक, अग्निदीपन, एवं नेत्रशूलनाशक है।

आमयिक प्रयोगः

पत्र का चूर्ण 1 से 2 माशा की मात्रा मधुमेह में उपयोगी है, इससे यकृत की क्रिया में सुधार होता है। अक्षिविकार, कास, कुष्ठ, कृमि, व्रण एवं विष को नष्ठ करने वाला है। सर्पदंश में मूल का सेवन तथा लेपन का विधान है। इससे वमन विरेचन होकर विष कम होता है। पत्रों का झाग मवेशियों के नेत्रगत व्रणों पर लगाने से विशष लाभ होता है।

रासायनिक संगठनः

पत्रों में जिम्नेमिकएसिड नामक एक पदार्थ होता है। इसके अलावा इसमें अन्थ्राक्विनोनकम्पाडड भी पाया जाता है। शर्कशपाचक किण्व तथा भस्म में फैरिकआक्साइड एवं मैगनीज आदि तत्व पाये जाते है।

235 मूर्वा (मरुवावेल)

द्रब्यनाम ....संस्कृत .... मूर्वा, मोरटा, चोरस्नायु।
हिन्दी .... मूर्वा, मरुवावेल।
लैटिन .... **Marsdenia tenacissima** W of A.

गुणः– (1) चरक ने तृपिघ्न, स्तन्यशोधन महाकषाय एवं तिक्तस्कन्ध में तथा सुश्रुत ने आरग्वधादिगण, पटोलादिगुण, पित्तसंशमनवर्ण्ग एवं विरेचनकल्प में मूर्वा का उल्लेख किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरुक्तिः–

मूर्वा– अर्थात इसके रेशें का उपयोग धनुष की रस्सी बनाने के लिये किया जाता है। रेशें बहुत मजबूत होने से इसको चोरस्नायु कहते हैं।

स्वरुप परिचयः

मरुवावेल की मोटी काण्ड की दुग्धयुक्त स्वभाव की चक्रारोही लतायें होती है। नवीन शाखा मृदुरोमश, काण्डत्वक् धूसर, कार्कयुक्त, पर्ण–10 से0 मी0 15 से0 मी0 लम्बी 1 5से0 मी0 12 5 से0 मी0 चौड़ी, फलक–गहरा, हृद्वृत, ताम्बूलाकार, दो विच्छेदोंवाला, लम्वाग्र या तीक्ष्ण नोकवाले सवृन्त होते हैं। पुष्प–छोटे, पीताभ वर्ण के हलकी अरुचिकर गन्धयुक्त एवं समाशिख गुच्छों में निकलते हैं। फलियाँ मोटी 10 से0 15 से0 मी0 तक लम्बी, रोमश, लट्वाकार होती है। मूल श्वेताभ वर्ण का एवं नवीन मूल भंगुर होते हैं। इसेकी अन्य किस्म भी हिमालय की घाटियों में पाई जाती है जिसे **Marsdenia royli** कहतें हैं। इसकी नवीन शाखाओं के रेशों से मजबूत रेशें निकलतें हैं इन रेशों का उपयोग धनुष डोरी (मौर्वी) बनानें में करते हैं।

पुष्पकाल .... मई, जून।
फलकाल ....पुष्पकाल के बाद।,
प्रयोज्य अंग .... मूल।

प्राप्तिस्थान :–

यह हिमालय की तराई से लेकर, विन्ध्याचल, मध्यप्रदेश, बिहार, में चम्पारन, हजारीबाग, आदि क्षेत्रों में सर्वत्र उपलब्ध है। बाजार में इसके मूल श्वेत निशोथ के नाम से मिलते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

स्वादिष्ठ, तिक्त रसयुक्त, सारक, गुरु, रक्त विकार, प्रमेह, त्रिदोष, तृषा, कण्डू, कुष्ठ एवं ज्वरनाशक है। बिहार के आदिवासी मूल का कुष्ठ में प्रयोग करते हैं।

मूर्वा एक संदिग्ध द्रब्य है। यह द्रब्य सुश्रत के टीकाकार डल्हण के समय से ही संदिग्ध रहा है। डल्हण की टीका से माल्हूम होता है। कि उन्होंने भिन्न–भिन्न स्थानों पर अलग–अलग द्रब्यों का उल्लेख किया है।

यथा 1 मूर्वा चोरस्नायुः यथापूर्व देशे गुणान् कुर्वन्तिधनुषाम्। (सु0 सु0 अ0 22)

2 मूर्वा कन्दलीसघशः स्वव्यस्यविटपः हगौड़ इतिलोके।।
मूर्वा धनुगुर्णोपयोग्या दुघऊ इत्तिलोके। (सु0 सु0 अ0 22)

3 अन्ये कोविदार युग्म पत्र लताविशेषां मूर्वामाचक्षते।।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि यह मजबूत रेशेवाली लता विशेष द्रब्य है। मूर्वा के नाम से कतिपय स्थलों पर निम्न द्रब्यों का उपयोग होता है।

(i) **Marsdenia Royli,**

(ii) **Sansevieria rokburghiana**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(iii) **Bauhinia Vahlie**

(iv) **Clematis gouriana**

(v) **Maerua arenaria**

(vi) **Dregea Volubilis**

आदि कतिपय द्रव्यों का स्थान भेद से मूर्वा केनाम से ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। निघण्टुकारों ने भी मूर्वा के लिये जो मधुरसा, स्त्रुवा, मधूलिका पीलूपर्णी आदि कतिपय नाम दिये है वह लेखक के विचार से मूर्वा के लिये नहीं हैं। संदिग्धता के कारण अन्य द्रव्यों का मूर्वा के पर्यायों का समावेश हो गया है।

विषतिन्दुकादिवर्ग **LONGANIACEAE**

वर्गलषणः—इस वर्ग में वृक्ष एवं वृक्षक आते हैं। पर्ण—अभिमुख, भसृण, चमकीले, अखण्ड, द्विबीजपर्ण, संयुक्तदल, पुष्प शाखाग्र, मञ्जरियों में, उपरिस्थगर्भाशय, फल—मांसल, बीज—गोल एवं चपटे होते हैं।

236 कुपीलु (कुचला)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... विषतिन्दुक, कास्कर, कुपीलु, काकतिन्दुक,
हिन्दी .... कुचला, कुचिला,
लैटिन .... **Strychnos nuxvomica** Linn.

निरुक्ति :– तिन्दुकइव फलमस्य इति" अर्थात् इसके फल गेंद की तरह गोल सविष होते हैं।

स्वरुप परिचयः

कुचला के मध्यमकद के एवं सदाहरित वृक्ष होते हैं। पर्ण अभिमुख, लट्वाकार, कुण्ठिताग्र, चमकदार हरितवर्ण की शिरायें स्पष्ट, सवृन्त, पुष्प—हरिताभ श्वेत, अधोलम्बी मञ्जरियों में निकलते हैं। फल—गोलाकार या गूदेदार होता है जो पकने पर बाहर से नारंगी रंग का मालूम पड़ता है। बीज— वटनसधश चपटे, विषैले उन्नतोदर, एवं मखमली रेशों से युक्त होते हैं।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त, सितम्बर।
फलकाल ....फरवरी, मार्च।
प्रयोज्य अंग ....बीज एवं छाल।
मात्रा शु० बीज 1/2 र० से 2र० तक।

प्राप्तिस्थान :–

यह समस्त भारत के उष्णप्रदेशों में विशेष रुप से मद्रास, कोचीन, द्रावनकोर, कोंकण, मालावार, बंगाल, बिहार, एवं उड़ीसा में इसके वृक्ष काफी मात्रा में पाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—(1)

गुण—रुक्ष, लघु, तीक्ष्ण, रस—तिक्त, कटु, विपाक—कटु, वीर्य—उष्ण प्रधानकर्म—दीपन, पाचन, नाड़ीवल्य, आमवातनाशक, वाजीकरण एवं शूलप्रशमन, स्वेदोपग आदि है यह कफज एवं वातज व्याधिनाशक, सारक, वस्तिवलदायक, रक्तप्रसाधन एवं त्वचारोगनाशक हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग :—

कुचला अल्पमात्रा में बलकारक, दीपन और कामोत्तेजक है। कुचला से शरीर के सब अवयवों की क्रियायें उत्तेजित होती हैं। नाड़ी संस्थान के ऊपर इसकी विशेष क्रिया होती है। मस्तिष्क के ऊपर इसकी विशेष क्रिया नहीं होती, परन्तु मस्तिष्क के नीचे जो जीवनयीय केन्द्र हैं उन पर और पृष्ठवंश की नाड़ियों पर इसकी विशेष उत्तेजक क्रिया होती है। श्वासोच्छ्वास के केन्द्रस्थान को उत्तेजना मिलने से रोगी की श्वांस लेने की शक्ति बढ़ती है। हृदय और रक्तवाहिनियों के केन्द्र स्थान को उत्तेजना मिलने से हृदय के संकोच के विकास की क्रिया ठीक होती है, रक्तवाहिनियों की क्रिया सुधरती है और रक्त का दबाव बढ़ता है। आमाशय की अपेक्षा विशेषतः बड़ी आंतों पर कुचला की जोरदार क्रिया होती है। अर्दित, अर्धांग वात, आदि नाड़ियों के रोगों में जो मतिभ्रंश और ज्ञानभ्रंश होता है उसमें कुचला देते हैं। बच्चों के शय्यामूत्र, अतिमैथुन से उत्पन्न नपुंसकता मूत्राशय की अशक्ता मानसिक थकावट से उत्पन्न अनिद्रा आदि रोगों में कुचला से लाभ होता है। राजयक्ष्मा में कुचला से रात्रि को स्वेद आना बन्द होता है। विषमात्रा में सेवन करने से यह मारक विष है। इसमें आक्षेप होने पर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

रासायनिक संगठन :—

कुचले के बीजों में स्ट्रिकनीन, ब्रूसीन, नामक दो महत्व के ऐल्केलाइड, (क्षारोद) पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त वामिसीन, कोलुकिन, लोगानिन, नामक ग्लाइकोसाइड एवं वसामय तत्व भी पाये जाते हैं। छाल में केवल ब्रूसीन ही पाया जाता है।

मुख्ययोग :—

अग्नितुण्डीवटी, विषमुष्ठ्यादिवटी, म० विषगर्भ तैल, शूलहरणयोग।

वक्तव्य :— विषाक्तप्रभाव :—

अशोधित रूप में अथवा मात्रातियोग में कुचले का सेवन करने से पेशियों में आक्षेप आने लगता है और धनुस्तम्भ जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं विषाक्तता होने पर औषधि सेवन के आधे में ही आक्षेप आदि लक्षण होने लगते हैं तथा श्वांसावरोध होने पर रोगी की मृत्यु हो जाती है। विषाक्त दशा में अविलम्ब आमाशय प्रक्षालन एवं विषनाशक चिकित्सा करनी चाहिये।

239 कतक

द्रव्यमान....................संस्कृत.......................कतक, अम्बुप्रसादन।
हिन्दी....................... नर्मली।
लैटिन.......................**Strychons potatorum** Linn. f.

निरूक्ति :—
अम्बुपप्रसादन :— अर्थात् इसके बीज जलशोधन के काम में आते हैं इसलिये अम्बुप्रसादन कहते हैं।

कतक :— इसके फल खरगोश के मल की आकृति में होते हैं।

स्वरूप परिचय :—

निर्मली के मध्यम कद के झाड़ीदार, सदाहरित वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण–लट्वाकार या अण्डाकार, पत्राग्र–कुछ लम्बे नोक वाली रचना में चर्मिल, मसृण और चमकीली होती है। इनमें 3 से 5 शिरायें होती हैं। पुष्प–छोटे, पीताभ हरितवर्ण के एवं पत्रकोणोद्भूत समूहवद्ध रूप में खिलते हैं। फल–रूपरेखा में कुचला की तरह किन्तु अपेक्षा कृत छोटा, गोल, पकने पर काला मांसल होता है। फल में 1–2 छोटे मटमैले, मृदुरोमावृत बीज निकलते हैं।

पुष्पकाल.......................... अगस्त, सितम्बर।
फलकाल....................... मार्च, अप्रैल।
प्रयोज्यअंग...................... बीज
मात्रा........................... बीज 1 ग्राम से 2 ग्राम।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान :—

निर्मली के वृक्ष मध्यभारत, विन्ध्याचल, बिहार, उत्तरीकर्नाटक एवं बंगाल आदि प्रान्तों में इसके वृक्ष स्वयंजात होते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—

गुण–लघु, विशद, रस–मधुर, कषाय, तिक्त, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, प्रभाव–चक्षुष्य, कर्म–कफवात शामक, जलशोधक लेखन, स्तम्भन, वामक, मूत्रजनन, जलशोधन के लिये निर्मली उत्तम द्रव्य माना जाता है। नेत्ररोगों में इसका अञ्जन भी बहुत उपयोगी है। बीजों का उपयोग वमन कराने के लिये किया जाता है। मधुमेह एवंजीर्ण अतिसार में बीज उपयोगी है।

रासायनिक संगठन :—

निर्मली बीजों में कुचिले के बीजों की भांति ब्रूसीन, नामक एलकेल्वाइड पाया जाता है। इसमें स्ट्रीकनीन नहीं होता है।

किरातादिवर्ग GENTIACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में प्रायः एकवर्षायु शाकीय पौधे एवं बहुवर्षायु क्षुपक पाये जाते हैं। काण्ड–चतुष्कोणीय, पर्ण–अभिमुख, सादे, अखण्ड, उपपत्ररहित, कभी–कभी क्रमानुसार, पुष्प–द्विबीजपर्ण, संयुक्तदल, उपस्थिगर्भाशय, पुष्प–नलिकाकार, पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल तथा नरकेशर 5–5 फल–नीरस, एवं वारीक बीज वाले होते हैं। इस वर्ग की वनस्पतियां कटु, तिक्त, ज्वरघ्न, रक्तशोधक एवं दाहनाशक होती हैं। मुख्यरूप से इस वर्ग में किराततिक्त, त्रायमाण आदि कतिपय उपयोगी द्रव्य हैं।

238 किराततिक्त (चिरायता)

द्रव्यमान ....संस्कृत ....किराततिक्त, भूनिम्ब, किरात,
हिन्दी ....चिरायता,
लैटिन.........................**Swertia chirata** Buch-Ham.

गण :—

चरक के स्तन्यशोधन, तृष्णानिग्रहण महाकषाय तथा तिक्तस्कन्ध एवं सुश्रुत के आरग्वधादिगण में किराततिक्त का उल्लेख है।

निरुक्ति :—

किरात :— किरातदेशो, स्तिजन्मस्थानमस्य" अर्थात् यह वनस्पति किरात, भिल्ल आदि लोगों के बसने वाले स्थानों पर पाई जाती है।

भूनिम्ब :— भुवो निम्वद्रव" अर्थात् यह एक वर्षायु क्षुप होने पर नीम के सद्यश तिक्त गुणकारी हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप परिचय :—

चिरायते के एक वर्षायु क्षुप पाये जाते हैं। काण्ड–स्थूल, कोणीय, गोलाकार, मृदु शाखाओं वाला, पर्ण–चौड़े–भालाकार 10 से. मी. लम्बे 3.75 से0 मी0 चौड़े, अभिमुख क्रम में स्थित होते हैं। पुष्प–हरिताभ, पीतवर्ण के तथा बैंगनी रंग के चित्रित आभायुक्त, पुष्प–वाह्य एवं आभ्यन्तर कोष 4–4 खण्डोंवाला, फल–छोटे–लम्बगोल, बारीक बीज वाले होते हैं। इस कुल में कई किस्में हिमालय में पाई जाती हैं जिनमें **Swertia angustifolia S. alata, S. purpuraascens** कहते हैं।

पुष्पकाल	....	अगस्त, सितम्बर
फलकाल	....	पुष्पकाल के बाद
प्रयोज्य अंग	....	पंचांग

प्राप्तिस्थान :–

ये किस्में उत्तराखण्ड हिमालय, जम्मूकश्मीर, सिक्किम, भूटान, नेपाल, दार्जिलिंग की पहाड़ियों पर 1,200 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,000 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :. (2)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–कटुपौष्टिक, विषमज्वरनाशक, रक्तशोधक, कृमिनाशक, सारक, स्तन्यशोधन, कफ–पित्त नाशक, दाहप्रशमन, आनुलोमिक है।

आमयिक–पय्रोग

चिरायता दीपन पाचन एवं कटुपौष्ठिक होने से आमाशयिक रस को बढ़ाता है। यह जीर्णज्वर एवं विषमज्वर में लाभ करता है। शोथ, अर्श, कास, श्वास, कुष्ठ, कृमि, एंव व्रण विकारों में उपयोगी हैं। श्वास नलिकाओं के शोथ और संकोच विकास के उत्पन्न दमा में इससे लाभ होता है। आमाशय शिथिलता में यह उत्तम औषध है। इससे दस्त साफ होता है।

रसायनिक संगठन :

इसमें चिरेटिन एवं ओफेलिक एसिड, नामक दो तिक्त सत्व पाये जाते हैं। इसमें चिरेटिन प्रधान सक्रिय घटक हैं।

मुख्ययोग :

सुदर्शनचूर्ण, किराततिक्तादिक्वाथ, चन्द्रप्रभावटी, चन्दनासव, सर्वज्वरहरलौह, पथ्यादिक्वाथ, लोध्रासव, म0 मन्जिष्ठादिक्वाथ।

वक्तव्य

वनौषध विक्रेता चिरायता के नाम से कालमेघ के पंचाग का व्यवहार भी करते हैं। ॅमतजपं की कई किस्में बाजार में चिरायता के नाम से मिलती हैं।

239 त्रायमाण (गाफिसदेशी)

द्रव्यमान ....संस्कृत........................ त्रायमाण, त्रायन्त्री, गिरिसानुजा।
हिन्दी ....त्रायमाण।
लैटिन.........................**Gentiana Kurroo Royle.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण :—

चरक ने तिक्तस्कन्ध तथा सुश्रुत ने लाक्षादिगण में त्रायमाण का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :—

त्रायमाण :— अर्थात् यह रोगों से रक्षा करता है।

गिरिसानुजा :— पर्वतों पर पैदा होने पर इसे गिरिसानुजा तथा वर्षाकाल में होने से वार्षिक कहते हैं।

स्वरूप परिचय :—

इसके एकवर्षायु काण्ड एवं मूल बहुवर्षायु क्षुप होते हैं। काण्ड 10 से 25 से0 मी0 ऊँचा शाखारहित, भौमिक काण्ड, कृष्णाभवर्ण का राइजोमसघश, स्वाद में तिक्त पर्ण–मूलोद्भूव 9.5 से 12 से0 मी0 तक लम्बी, कम चौड़ी रेखाकार होती है। पुष्प–नीले रंग के सुन्दर गुच्छों में निकलते हैं। मूल का औषध प्रयोग में व्यवहार होता है। मूलस्तम्भ टेढ़े–मेढ़े अनुलम्बदिशा में झुर्रीदार, सूत्राकार उपमूलों के चिन्हों से युक्त होते हैं।

पुष्पकाल .... सितम्बर, अक्टूबर,
फलकाल .... पष्पुकाल के बाद।
प्रयोज्यअंग .... मूलस्तम्भ एवं पत्र, पुष्प

प्राप्तिस्थान :—

त्रायमाण उत्तराखण्ड हिमालय, जम्मूकाश्मीर, हिमाचल प्रदेश में 2,400 मी. से 3,000 मीटर की ऊँचाई तक पहाड़ियों पर यह सर्वत्र पाया जाता है। इन घाटियों में **Gentiana** की कई किस्में पाई जाती हैं जिसमें **Gentiana tenella** मुख्य हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफवातशामक, पित्तसंशोधन, दीपन–आमपाचन, पित्तसारक, रक्तशोधक, शोथहर, ज्वरघ्न, आर्तवजनन, स्तन्यशोधन, कुष्ठघ्न, व्रणशोधन एवं रोपण करने वाला है।

आमयिक प्रयोग :—

मूल–यकृत आमाशयिकशोथ, पाण्डुरोग, जीर्णज्वर, कण्डू, रक्तविकार एवं इन्द्रलुप्त में प्रयोग किया जाता है। यह तिक्त होने से कुपचनरोग में और अग्निमांद्य जनित शरीरशैथिल्य में कटु पौष्टिक रूप में इसका उपयोग करते हैं। इससे दस्त साफ होता है। प्लीहोदर, जलोदर एवं यकृदुदर में इसे देते हैं।

मुख्ययोग :—

त्रायमाणघृत, त्रायमाणक्वाथ।

रासायनिक संगठन :—

त्रायमाण की जड़ों में एक तिक्तसत्व तथा 20% तक पीले रंग का रेजिन पाया जाता है। अन्यनकली प्रजातियों में रेजिन का अभाव होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

श्लेष्मतकादिवर्ग BORAGINACEAE

इस कुल में वृक्ष, गुल्म एवं शाकीय वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। पर्ण–एकान्तर, कभी–कभी अभिमुख, अखण्ड, खर, बहुधा लोम युक्त, एवं उपपत्ररहित होते हैं। पुष्प–द्विलिंगी, संयुक्तदल, उर्ध्वस्थगर्भाशय, पुष्पवाह्यदल एवं आभ्यन्तरदल संख्या में 5, पुष्प अनेक वर्ण के, पुंकेशर 4–8, 1 इस वर्ग में श्लेष्मातक, अधःपुष्पी, गाजवान रतनजोत आदि वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। ये वनस्पतियाँ प्रायः विषघ्न, कुष्ठघ्न, केश्य, विसर्प एवं व्रणरोपक होती हैं।

240 श्लेष्मातक (लिसोड़ा)

द्रव्यमान ....संस्कृत ....श्लेष्मातक, शेलू।
हिन्दी ....लिसोड़ा।
लैटिनः.......................**Cordia dichotama** Forsit.
Sy. Cordia myxa Linn.
बड़ा लिसोड़ा **Cordia wallichii** G. Don.

गणः– (1) चरक ने विषघ्न महाकषाय में श्लेष्मातक का उल्लेख किया है।

स्वरूप परिचय :– लिसोड़े के मध्यम ऊंचाई के पर्णपाती वृक्ष होते हैं।
पर्ण 8.5 से0 मी0 से 15 से0 मी0 लम्बे 10 से0 मी0 चौड़े, लट्वाकार, गोलदन्तुर, लहरदार, चर्मिल, आधार गोलाकार, या उत्तरोत्तर कम चौड़ा सवृन्त होता है। पुष्प–श्वेताभ वर्ण के पंचभागी, एवं मञ्जरियों में खिलते हैं। पुष्प एकालिंगी एवं उभयलिंगी दोनों किस्म के पाये जाते हैं। फल–पकने पर पीताभ वर्ण के गाढा–चिपचिपा गुदावाला, बीज कठोर होता है। कच्चे फलों का शाक बनाया जाता है। बड़े लिसोड़े के फल काफी बड़े होते हैं।

पुष्पकाल....................... मार्च, अप्रैल,
फलकाल.......................मई, जून,
प्रयोज्य अंग...................फल, पत्र, छाल

प्राप्तिस्थान :—

भारत के सभी उष्णप्रान्तों में इसके वृक्ष सर्वत्र स्वयंजात एवं लगाये हुये पाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— (2)

गुण–स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल, रस–मधुर, वीर्य–शीत, प्रभाव–विषघ्न, कर्म–फल–वातपित्तशामक, कफवर्धक, व्रणशोधन, कुष्ठघ्न, स्नेहन, तृष्णानिग्रहण, रक्तपित्तशामक,, कफनिस्सारक, छाल–कफ पित्तशामक, कटुपौष्टिक, ज्वरघ्न, ग्राही। नव्यमत से छाल संग्राहक और पौष्ठिक तथा फल स्नेहन एवं संग्राहक, कफको पतला करने वाला होता है।

रासायनिक संगठन :—

फल के गूदे में शर्करा, निर्यास और भस्म तथा छाल में टैनिन पाई जाती है।

241 – अधःपुष्पी (अन्धाहुली)

द्रव्यमान............संस्कृत ....अधःपुष्पी।
हिन्दी ....अन्धाहुली।
लैटिन ....**Trichodesma indicum** R. Br.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप परिचय :—

यह एकवर्षायु जमीनपर परिसृत शाकीय वनस्पति है। काण्ड रोमिल बहुशाखीय मृदु, पर्ण—एकान्तर, खरस्पर्श, रोमिल होते हैं। पुष्प—नीले—श्वेताभ वर्ण के नीचे की तरफ होते हैं इसी लिये इसे अधः पुष्पी कहते हैं।

पुष्पकाल .... दिसम्बर, फरवरी।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग .... पंचाग।

प्राप्तिस्थान :—

इसके पौधे मैदानी भागों (में) की रेतली जमीन पर सर्वत्र सुलभ हैं।

गुणधर्म :— (1)

यह शोथहर, मूत्रल एवं विषघ्न है। सन्धिशोथ एवं फोड़े फुन्सी पर इसका मूल पीस कर लेप करते हैं। सर्पविष में मूल का उपयोग किया जाता है। नेत्रगत विकारों एवं मूढगर्भ में उपयोगी है।

242 – गाजवान (गोजिह्वा)

द्रव्यमान ....संस्कृत ....गोजिह्वा,
यूनानी ....गाजवान,
लैटिन....................... **Onosma bracteatum wall.**

स्वरूप परिचय :—

इसका काण्ड एकवर्षायु, मूल बहुवर्षायु होता है। काण्ड रोमिल, खरस्पर्श, पर्ण—एकान्तर, स्पर्श करने पर खुरदरे, श्वेतबिन्दुयुक्त, रोमिल होते हैं। पुष्प—बैंगनी रंग के होते हैं। मूल रक्ताभ वर्ण का होता है। हिमालय की घाटियों में इसकी अन्य औषध उपयोग की किस्में पाई जाती हैं जिन्हें रतनजोत **Onosma echioides linn.** एवं लालजड़ी **Microtomia benthami** कहते हैं।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग .... मूल, पत्र।

प्राप्तिस्थान :—

यह उत्तराखण्ड हिमालय, जम्मूकाश्मीर राज्य, हिमाचल प्रदेश लद्दाख, आदि क्षेत्रों में 3,000 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,600 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है। गाजवान अफगानिस्तान में विशेष होती है।

गुणधर्म :— (1)

मूल का उपयोग तेल आदि रंगने के लिये किया जाता है। ग्रामीण लोग मूल का लेप चोट, व्रणविकारों में लेप के रूप में करते हैं। मूल चूर्ण का प्रयोग आमाशयिक शूल पर किया जाता है। मूल का परीक्षण कैन्सर पर किया जा रहा है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

त्रिवृतादिवर्ग CONVOLVULACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में गुल्म, लता एवं शाकीय क्षुप पाये जाते हैं। काण्ड प्रायः परिसृत, पर्ण–एकान्तर, साधारण अखण्डित, या पालियुक्त, हृदयाकार, उपपत्ररहित, पुष्प–नियमित, द्विबीजपर्ण, संयुक्तदल, पुष्प आकार में फनल सघश, पत्रकोणोद्भूत, या धण्टिकासघश, वाह्यकोष स्थायी, पुंकेशर 5, बीज कोष 2 खण्ड़ों वाला एवं बीज 4 होते हैं। इस वर्ग में काफी किस्म की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। मुख्य रुप से इसमें त्रिवृत, वृद्धदारुक, शंखपुष्पी, आकाशवल्ली, आदि कतिपय औषध उपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं। इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः कषाय, कटु, सारक, ज्वरघ्न, उदर, एवं मानसिक रोगों में उपयोगी होती है।

243 त्रिवृत (निशोथ)

द्रव्यमान..................**संस्कृत** ....त्रिवृत, श्यामा, त्रिभंडी,
हिन्दी ....निशोध,
लैटिन......................Operculina turpethum (L.) Silva

गण :— चरक ने भेदनीय महाकषाय तथा सुश्रुत ने श्यामादिगण एवं अधोभाग हरगण में त्रिवृत का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :—

श्यामा :— इसको इसलिये कहते हैं कि मूल का वाह्य आकार कृष्णवर्ण का होता है।

त्रिवृत :— त्रीन् अवयान् वृणोति इति "वा त्रिपुटत्वाद्वा" अर्थात् निशोथ का काण्ड तीन एवं चार धारियों वाला होने से त्रिवृत कहते हैं सारक होने से इसे रेचनी कहते हैं।

स्वरूप परिचय :—

निशोथ की वहुवषार्यु बड़ी–बड़ी आरोही लतायें होती हैं। काण्ड प्रायः काष्ठीय, तथा इसपर 3–4 धारियों का पंखसघश उभार होते हैं। काण्ड या पत्र को तोड़ने पर दूध जैसा स्त्राव निकलता है। पुराना काण्ड भूरे रंग का नवीन काण्ड रक्ताभ वर्ण का पर्ण–चौड़ाई लिये हुये लट्वाकार, हृदयाकार, 15 से0 मी0 तक लम्बे 10 से0 मी0 तक चौड़े, लम्बाग्र, आयताकार, कुण्ठित सवृन्त होती है। पुष्प–श्वेतवर्ण के फनल के आकार में गोलाकार व्यास में, फल–कोषयुक्त–बीज संख्या में 4–5 एवं काले वर्ण के होते हैं। मूल–कृष्णाभ–धूसरवर्ण का तोड़ने पर श्वेताभ एवं रेजीन युक्त होता है।

पुष्पकाल .... अगस्त, सितम्बर,
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद,
प्रयोज्य अंग .... मूल।

प्राप्तिस्थान :—

भारत के उष्णप्रदेशों में इसकी लताये बुंन्देलखण्ड वनक्षेत्र के ललितपुर, मिर्जापुर, चित्रकूट, बिहार, उड़ीसा एवं उद्यानों में इसकी लतायें पाई जाती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :—

गुणः—लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस—तिक्त, कटु, मधुर, विपाक—कटु, वीर्य—उष्ण, प्रधानकर्म—पित्त कफ शामक, भेदन, सुखविरेचन, शोथहर, लेखन, ज्वरघ्न, पैतिक एवं कफ व्याधियों में यह उत्तम सुखविरेचन औषधि है।

आमयिक प्रयोग :—

यह कृमि, ज्वर, उदररोग, शोफ, पाण्डुरोग, प्लीहावृद्धि और व्रण का नाश करने वाली है। जलोदर, आमवात अर्श और वातरक्त में यह विशेष लाभप्रद है। सुखविरेचन हेतु निशोथ और बड़ी हर्रे का चूर्ण अच्छा कार्य करता है।

रासायनिक संगठन :—

त्रिवृतमूल में 5 से 10 प्रतिशत तक एक राल पाया जाता है। यह इसका सक्रिय अंश है। इसका कुछ अंश ईथर में घुलनशील होता है उसे टर्पेथिन कहते हैं।

मुख्ययोग :—

त्रिवृतादिचूर्ण, त्रिवृतादिघृत, अविपत्तिकरचूर्ण, अश्वगन्धारिष्ठ, पुनर्नवादिमण्डूर, दशमूलारिष्ठ, नारायणचूर्ण चन्द्रप्रभावटी, अभयारिष्ठ, योगराजगुग्गुल।

वक्तव्य :—

चरक ने रक्त एवं श्याम दो प्रकार की निशोथ का उल्लेख किया है। भावप्रकाश ने श्वेत निशोथ का भी उल्लेख किया है। व्यवहार में अरुणाभ श्वेत का ही प्रयोग होता है। बाजार में सफेद निशोथ के नाम से **Marsdenia tanacissima** के मूल बिकते हैं जो शास्त्रीय नहीं हैं।

244 वृद्धदारुक (विधारा)

द्रव्यनाम :

संस्कृत	....	वृप्द्दारुक, छत्रलान्त्री, वृष्यगन्धिका,
हिन्दी	....	विधारा,
लैटिन	....	**Ipomoea petaloidea** chois.

गण— सुश्रुत के अधोभाग हर गण में विधारा का उल्लेख किया है।

निरुक्ति : – वृद्धदारुक–वृद्धत्वंदत्यति क़ा'' अर्थात बुढ़ापे को नष्ट करता है।

स्वरूप परिचय :

यह परिसृत लता जाति की वनस्पति है । काण्ड मसृण एवं त्रिवृत सदृश 2–4 तक उभरी हुई रेखायें अथवा पंख सदृश धारियाँ होती हैं। पर्ण–लट्वाकार, प्रासवत्-आयताकार, 15 से0 मी0 तक लम्बे एवं 12 से0 मी0 तक चौड़े लम्बे वृत्त वाले रक्ताभवर्ण के होतेहैं ।

पुष्प– श्वेताभ-पीत फनल आकार के होते हैं । फल-अण्डाकार एवं लहरदार बीज काले होते हैं । मूल–त्रिवृत सदृश बाहर से धूसर वर्ण के तोड़ने पर श्वेताभ रेजिन युक्त होता है । बाजार में प्रायः **Argyreia specioa** sweet के मूल का उपभोग विधारा मूल से होता है । इसकी भी वेल होती है जिसकी बड़ी–बड़ी परिसृत लतायें वाटिकाओं एवं घरों की शोभा हेतु लगाई जाती है । आम भाषा में इसे घावपत्ता कहते हैं । इसके कण अण्डाकार चिकने एवं बीच रोमश, तीनधारवाले, सफेद-भूरे रंग के होते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल	....	जुलाई, अगस्त,
फलकाल	....	पुष्पकाल के बाद,
प्रयोज्य अंग	....	मूल, पत्र, बीज ।

प्राप्ति-स्थान :

यह चित्रकूट, मिर्जापुर, ललितपुर आदि क्षेत्रों में पाया जाता है । प्रचलित विधारा उद्यानों एवं घरों में सौन्दर्य हेतु लगाया हुआ मिलता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

गुण-लघु, स्निग्ध, रस-तिक्त, कषाय, विपाक-मधुर, वीर्य-उष्ण, प्रधानकर्म-कफ वातशामक, व्रणपाचन, दारण, शोधन, रोपण, मेध्य, नाड़ीवल्य, आमपाचन, अनुलोमन, रेचन, शोथहर, प्रमेहघ्न, वल्य, रसायन, शुक्रजनन ।

आमयिक प्रयोग

आमवात तथा संधिशोथ में इसकी जड़ देते हैं तथा पत्तों को पीसकर लेप करते हैं । जलोदर, उदरशूल तथा कास में इसका पत्र स्वरस पिलाते हैं । मूलचूर्ण को 3 से 6 माशे की मात्रा में देने से दस्त साफ होते हैं । समभाग विधारा और असगंध चूर्ण 3 माशा दूध के साथ सेवन करने से श्वेतप्रदर ठीक होते है ।

रासायनिक संगठन

मूल में अम्लीय राल तथा टैनिन की भांति तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग :- अश्वगन्धादिचूर्ण, धातुपौष्ठिकचूर्ण ।

वक्तव्य :—

यह संदिग्ध द्रव्य हैं देश-भेद से निम्न द्रव्यों का विधारा के नाम से प्रयोग एवं निर्देश मिलता है ।

दक्षिण भारत में (i) **Ipomoea biloba** Forsk. Convolvulaceae

उत्तरी भारत में (ii) **Argyreia speciosa** Sweet Convolvulaceae

डा. बलवन्त सिंह ने (iii) **Ipomoea petaloida** Convolvulaceae को शास्त्रीय विधारा माना है ।

245 शंखपुष्पी (शंखाहुली)

द्रव्यनाम :

संस्कृत	....	शंखपुष्पी, क्षीरपुष्पी,
हिन्दी	....	शंखाहुली,
लैटिन	....	**Convolvus pluricaulis** Chois.

गुण– चरक के चिकित्सा स्थान अध्याय 2 के मेध्य द्रव्यों में शंखपुष्पी का उल्लेख है ।

निरुक्ति :– शंखपुष्पी-शंखद्रव पुष्पमस्य "अर्थात् शंख सदृश श्वेतवर्ण के इसे पुष्प होते हैं इसीकारण इसे क्षीरपुष्पी कहते हैं।"

स्वरूप परिचय :

शंखपुष्पी के प्रसरणशील घास सदृश पौधे होते हैं । मूलस्तम्भ प्रायः बहुवर्षायु है । पर्ण–रेखाकार नीचे की ओर कुछ अभिप्रासवत् या प्रतिभालाकार, अवृन्त, सूक्ष्मरोमश 9.30 से0 मी0 से 3.75 तक लम्बी एवं तीन-तीन शिराओं से युक्त होती हैं । पुष्प-श्वेत वर्ण के एवं हल्के गुलाबी रंग के, कुप्पी के आकार के कुछ मृदुरोमश होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल .... अप्रैल, जून ।
फलकाल .... पुष्प के साथ ।
प्रयोज्य अंग .... पंचांग ।

प्राप्ति स्थान :

यह समस्त भारत की पथरीली एवं रेतली भूमि में विशेष रुप से मथुरा, वृन्दावन, आगरा, विन्ध्याचल वनक्षेत्र आदि स्थानों पर स्वयं जाता होता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

गुण–स्निग्ध, पिच्छिल, सर, रस-कषाय, कटु, तिक्त, विपाक-मधुर, वीर्य-शीत, प्रभाव-मेध्य, कर्म-त्रिदोषहर विशेषतया वातपित्त संशमन, मेध्य, मस्तिष्क–शामक, नाड़ीवल्य, दीपन, पाचन, अनुलोमन, सारक, हृद्य, ज्वरघ्न दाहप्रशमन, प्रजास्थापन, रसायन एवं वल्य ।

आमयिक प्रयोग :

यह मानस रोग, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, कृमि, विष, अनिद्रा और भ्रम को दूर करने वाली है । उन्माद में 2 से 4 तोला शंखपुष्पी स्वरस देते हैं ।

मुख्ययोग– शंखपुष्पी पानक, अमृतादिरसायन, शंखपुष्पी तैल, ब्राह्मीवटी, ब्राह्मीघृत, सारस्वत चूर्ण, ब्रेनटेवलेट ।

वक्तव्य :

शंखपुष्पी, विष्णुक्रान्ता एवं अपराजिता में प्रान्त भेद से कुछ मतभेद है । दक्षिण के वैद्यों ने अपराजिता (श्वेत) को शास्त्रीय शंखपुष्पी स्वीकार किया है । लेखक के विचार से सभी भिन्न द्रव्य हैं । यथा

(1) अपराजिता – **Clitoria ternatea** Linn.
(2) शंखपुष्पी – **Convolvulus pluricaulis** Chois.
(3) विष्णुक्रान्ता – **Evolvulus alsinoides** Linn.

इसके अतिरिक्त कतिपय क्षेत्रों में **Canscora decussata** दाकुनी के पंचांग का प्रयोग शंखपुष्पी के नाम से किया जाता है । आधुनिक आमयिक परीक्षणों से यह देखा गया है कि शास्त्रीय शंखपुष्पी **Convolvulus pluricaulis** उपयुक्त है ।

246 कृष्णबीज (कालादाना)

द्रव्यनाम : संस्कृत .... कृष्णबीज (कालाञ्जनी)
हिन्दी .... कालादाना
लैटिन .... **Ipomoea hederacea** (L) Jacq.

स्वरूप परिचय :—

कालादाना की एक वर्षायु आरोही लता होती है । इसका काण्ड प्रायः रोमश होता है । पूर्ण–व्यास में 5 से0 12 से0 मी0 लम्बे, लट्वाकार, रूपरेखा में निश्चित् हृदयाकार, प्रायः तीन खण्डों में पुष्प गुलाबी लिये हुये नीले रंग के,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नलिकाकार तथा उर्ध्व भाग फनल के आकार का होता है । प्रत्येक फल में बीज 3–4 तक चिकने भूरापन लिये हुये काले रंग के होते हैं । बीज नत्तोदर अनुलम्बदिशा में होते हैं ।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त ।
फलकाल ....नवम्बर, दिसम्बर ।
प्रयोज्य अंग ....बीज ।

प्राप्ति स्थान :—

समस्त भारत वर्ष के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में इसकी लतायें स्वयंजात पाई जाती है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (1)

गुण-लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस-कटु, मधुर, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, प्रधान कर्म-तीव्र विरेचन, वात-कफ नाशक, कृमिघ्न रक्तशोधक, आर्तवजनन, कालादाना बाजू के साथ भाड़ में भून कर चूर्ण को चीनी के साथ प्रयोग करते हैं । यह शोथ, जलोदर, आमवात और वातरक्त में उपयोगी है ।

रासायनिक संगठन :—

कालादाना में 80% तक रेजिन पाया जाता है । जिसे कृष्णबीजीन या फार्वितटिसीन कहते हैं । इसमें सैपोनिन आदि म्युसिलेज तत्त्व पाये जाते है ।

मुख्ययोग : कृष्णवीजादि चूर्ण

वक्तव्य : - राजनिघण्टुकार ने कालाञ्जनी नाम से इसका उल्लेख किया है ।

247 आखुकर्णी (मूसाकर्णी)

द्रव्यनाम : संस्कृत .... आखुकर्णी, आखुपर्णी ।
हिन्दी .... मूसाकानी ।
लैटिन .... **Ipomoea renioformis** chois.

वर्ग : भावप्रकाश गुडूच्यादिवर्ग ।

स्वरूप परिचय :

मूसाकनी की आरोही क्षुपसदृश लता होती है । काण्ड की प्रत्येक गांठ से जड़े निकलती हैं । पर्ण–वृताकार, दन्तुर, गोल, चूहे के कान से मिलते जुलते 2 से0 4 से0 मी0 तक लम्बे होते हैं । पुष्प–छोटे पीतवर्ण के, फल–कोषीय–दो बीजों वाला होता है । हिमाचल प्रदेश में मूसाकनी के नाम से प्रयुक्त होने वाली बूटी को **Didymocarpus pedicellata** कहते हैं । इसके पत्र चूहे के कान से मिलते हैं ।

पुष्पकाल.........................अगस्त, सितम्बर ।
फलकाल.......................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग ....पंचांग ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थान

भारत के सभी प्रान्तों में इसकी छोटी–छोटी लतायें पाई जाती है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (1)

गुण–कटु, तिक्त, कषाय, रस–कटु, विपाक कटु, लघु, कर्म–कफघ्न, कृमिघ्न, मूत्रल, त्वक्‌दोषहर, एवं आनुलोमिक है ।

आमयिक प्रयोग :

इसका प्रयोग त्वचा के रोगों में किया जाता है, इससे पाखाना साफ होता है तथा शारीरिक शिथिलता दूर होती है । कृमि में स्वरस के प्रयोग करने का विधान है ।

वक्तव्य : आखुकर्णी संदिग्ध वनस्पति है इस वनस्पति के उपयोग में मतभेद है । संहिताकारों के टीकाकारों ने भिन्न–भिन्न अर्थ किया है ।

248 आकाशवल्ली (अमरवेल)

द्रव्यमान :

संस्कृत	....	आकाशवल्ली, अमरवल्ली
हिन्दी	....	अमरवेल, आकाशवेल
लैटिन	....	**Cuscuta reflexa Roxb.**

स्वरूप परिचय :

आकाशवेल की पत्ररहित परोपजीवी लता होती है । यह हरियाली लिये पीले या लाल रंग की डोरी सदृश कांटेदार झाडियों या अन्य वृक्षों पर आवृत्त होती है । पुष्प–छोटे, सफेद रंग के घंटाकृति तथा एकलक्रम में छत्राकार गुच्छकों में निकलते हैं । फल–गोल–गोल काले चिकने एवं बारीक बीज होते हैं ।

पुष्पकाल	....	मार्च, अगस्त, दिसम्बर ।
फलकाल	....	पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग	....	पंचांग ।

प्राप्ति स्थान

आकासवेल की पराश्रयी लता समस्त भारत में हिमालय की घाटियों तक पाई जाती है ।

दोषअधिष्ठानभेदेन कर्मज्ञान : (1)

गुण–लघु, रस, पिच्छिल, रस–तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–कफपित्तहर, वेदनास्थापन, शोथहर, केश्य, ग्राही, यकृद्‌उत्तेजक, रक्तशोधक, हृद्य, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, कटु-पौष्ठिक, यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे में उष्ण एवं रुक्ष है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठन :

काण्ड एवं बीज में कस्कुटीन नामक एलकेलाइड पाया जाता है । इसके अतिरिक्त क्वर्सेटीन, तथा रालीय तत्त्व भी होता है । बीजों में अमर वेलिन नामक रंग्जक तत्त्व पाया जाता है ।

वक्तव्य :

कतिपय हकीम **Cassytha filiformis** (Lauraceae) के पंचांग का उपयोग आकाश वेल के नाम से करते हैं । यूनानी हकीम विदेशी किस्म Cuscuta europa को अफ्तीमून के नाम से प्रयोग करते हैं ।

कण्टकार्यादि वर्ग (SOLANACEAE)

वर्ग लक्षण :- इस वर्ग में शाकीय पौधे एवं गुल्मक पाये जाते हैं । गुल्म प्रायः उर्ध्वसंस्थित, पर्ण-एकान्तर क्रम में, साधारण, कभी-कभी विभक्त, उपपत्ररहित, पुष्प-पत्रकोणोद्भूत, किंवा शाखाग्रों पर, पुष्प वाह्मकोष स्थायी, 5 खण्डवाला, आभ्यन्तर कोष के दल भी 5, आपस में मिले हुये, फनल के आकार में पुंकेशर 5 स्त्रीकेशर 9 द्विबीजपर्ण, संयुक्तदल, उसरिस्थित गर्भाशय, फल-मांसल, गोल या चारकोषीय, बीज-चपटे एवं संख्या में अनेक होते हैं । इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः कासघ्न ज्वरघ्न, हृदयरोगनाशक, वातवेदनानाशक, प्रतिश्याय एवं वेदनाशामक होते हैं । इसमें मुख्य रूप से कण्टकारी, वृहती, काकमाची, अश्वगन्धा, धतूरा, वैलाडोना, खुरसानी-अजवाईन आदि द्रव्य मुख्य हैं।

249 कण्टकारी (कटेली)

द्रव्यमान :

संस्कृत	....	कण्टकारी, क्षुद्रा, व्याघ्री, दुःस्पर्शा,
हिन्दी	....	कंडियारी, कटेली, भटकटैया,
लैटिन	....	**Solanum zanthocarpum** Schrad.

गण : (1)

चरक के कण्ठय्, हिक्का-निग्रहण, कासहरमहाकषाय, शोथहर महाकषाय, शीतप्रशमन, अङ्गमर्दप्रशमन महाकषायों में एवं सुश्रुत ने वृहत्यादिगण, वरुणादिगण, एवं लघुपञ्चमूल गण में कण्टकारी का उल्लेख किया है ।

निरुक्ति :-

कण्टकारी-सम्पूर्ण पंचांग कँटिदार होने के कारण इसे कण्टकारी कहते है ।

दुस्पर्शा-अर्थात् इसके पोधे कांटेदार होने से स्पर्श करने में कठिनाई होती है । इसी कारण इसे व्याघ्री भी कहते हैं ।

स्वरुप परिचय :-

कण्टकारी की जमीन पर परिसृत क्षुप होते हैं जो छत्ते की भांति भूमि पर आच्छादित करके फैले होते हैं । इसकी सम्पूर्ण शाखाओं एवं पत्तों पर तीक्ष्ण एवं प्रचुर कांटे होते हैं । शाखायें टेड़ी-मेढ़ी निकल कर चारों तरफ फैलती हैं। पर्ण एकान्तर सूक्ष्मरोमावृत, कण्टकित, सूक्ष्म पर्णवृत्तयुक्त पत्र 5 से0 मी0 से 10 से0 मी0 तक लम्बे होते हैं। पुष्प-समूह में चमकीले बैंगनी रंग लिये हुये नीले वर्ण के होते हैं। फल गोलाकार, मांसल कांटेदार, पकने पर ये फल पीले रंग के एवं अनेक बीज वाले होते हैं। मूल वहुवर्षायु होता है। इसकी श्वेत पुष्प वाली प्रकार भी कहीं-कहीं पाई जाती हैं जिसे सफेद कण्टकारी कहते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल .... दिसम्बर, मार्च।
फलकाल............... पुष्पों के साथ।
प्रयोज्य अंग .... पंचांग, मूल।

प्राप्ति स्थान :– कण्टकारी सम्पूर्ण भारतवर्ष की रेतीली एवं शुष्क जमीन पर इसके पौधे सर्वत्र पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :– (2)

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, कटु, विपाक-कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–प्रतिश्याय, कास, श्वास, पार्श्वशूल एवं स्वरभेद में उपयोगी 1 बीज–वेदनास्थापन है ।

आमयिक प्रयोग :–

यह श्वास, कास, पीनस, प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, ज्वर एवं हृदयरोग को नाश करने वाली है। इससे गले और श्वास नलिका का सूखापन कम होकर कफ छूटने लगता है इसलिये गले और श्वासनलिका के शोथ की प्रथम अवस्था में इसका प्रयोग करते हैं। आधुनिक परीक्षणों के आधार पर यह देखा गया है कि यह तमकश्वास में उपयोगी है।

रासायनिक संगठन :–

पंचांग में पोटेशियम नाइट्रेट, पोटेशियम क्लोराइड, लोहांश सेन्द्रिय अम्ल एवं सालेनीन क्षार पाया जाता है ।

मुख्ययोग :– निदिग्धिकादिक्वाथ, कण्टकारीघृत, व्याघ्रीतैल, व्याघ्रीहरीतकी, दशमूलारिष्ठ, दशमूल, च्यवनप्राश, कासामृत, अमृतारिष्ठ, कफकुठाररस।

250 बृहती (बड़ी कटेरी)

द्रव्यनाम :–

संस्कृत .... बृहती, भण्टाकी,
हिन्दी .... बड़ी–कटेरी
लैटिन .... **Solanum indicum Linn.**

गण :– (1) चरक ने कण्डूघ्न, हिक्कानिग्रहण, शोथहर, अंगमर्दप्रशमन महाकषाय एवं सुश्रुत ने बृहत्यादिगण तथा लघुपंचमूल में बृहती का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :–

बृहती :– अर्थात् कण्टकारी सदृश होने पर भी यह गुल्मनुमा होता है इसलिये बृहती कहते हैं।

भण्टाकी :– फल एवं काण्ड बैंगन सदृश होने से इसे भण्टाकी कहते हैं।

स्वरूप परिचय :–

बड़ी कटेली गुल्मक आकार में 1 मीटर से लेकर 2 मीटर तक ऊँचा होता है। शाखायें श्वेत रोमश, टेढे एवं मृदु कण्टकों से युक्त होती हैं। पर्ण– लट्वाकार, या आयताकार, लहरदार या खंडित तटवाली, अधःपृठ रोमश, श्वेताभवर्ण का सवृन्त एवं कुछ कंण्टकित पत्रकोण वाले पर्ण होते हैं। पुष्प– नीलाभ वर्ण के फल–गुच्छों में गोल (Berry) में पकने पर पीले रंग के एवं पतले चपटे बीज वाले होते हैं। इसकी अन्य कई किस्में पाई जाती हैं जिनमें निम्न किस्मों का प्राय: बृहती के नाम से प्रयोग होता है यथा - **Solanum torvum, Solanum melongana** (जंगली बैंगन) का व्यवहार प्राय: होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल ....दिसम्बर, मार्च
फलकाल ....मई, अगस्त
प्रयोज्य अंग ....पंचांग

प्राप्ति स्थान :–

इसके गुल्मक शिवालिकवनखण्ड, हिमालय की निचली घाटियों में सर्वत्र सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :–

गुण– लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण कर्म–कफवातशामक, वेदनास्थापन, ग्राही, शोथहर, रक्तशोधक, हृदयोत्तेजक, कफघ्न, कास-श्वासहर, मूत्रल, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न, बीज–गर्भाशय संकोचक ।

आमयिक प्रयोग :–

बृहती ज्वर, कुष्ठ, श्वास, कास, अरोचक एवं शूल में उपयोगी है। मूल कफ रोग में उपयोगी है। इसके प्रयोग से ज्वर कम होता है। पेट का वायु का दर्द एवं मरोड़ कम होती है।

रासायनिक संगठन :–

इसके मूल एवं फल में सोलेनीन एवं सोलेनिडीन तथा मोमीय पदार्थ एवं वसाम्ल आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्य योग :–

वृहत्यादिक्वाथ, दशमूलारिष्ठ, अमृतारिष्ठ, दशमूलतैल, च्यवनप्राश।

251 काकमाची (मकोय)

द्रव्यनाम :–
संस्कृत .... काकमाची, वायसी, काकमाता
हिन्दी .... मकोय
लैटिन .... **Solanum nigrum L.**

गुण :– चरक (1) ने तिक्तस्कन्ध, में काकमाची का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :—
काकमाची– काकान् मञ्चते " मचि धारणोच्छ्राय पूजनेषु " अर्थात् पंचांग काक सदृश कृष्णवर्ण का कोणाकार होता है या यह कुष्ठ आदि रोगों का भी रञ्जन करता है। वायसी शब्द भी काक से सम्बन्धित है।

स्वरूप परिचय :–

मकोय के एकवर्षायु, द्विवर्षायु 30 से 90 से. मी. ऊँचे शाकीय पौधे होते हैं। काण्डकोणाकार कृष्णवर्ण का एवं काकसदृश टांग वाला होता है, इसी कारण उसे कामाची कहते हैं।

पर्ण– 2.5 से0 मी0 से 9.5 से0 मी0 लम्बे रुपरेखा में लट्वाकार, आयताकार पत्रतट– सरल या अखण्डित, लहरदार कुछ दन्तुर एवं सवृन्त होते हैं। पुष्प–श्वेतवर्ण के जो समशिख गुच्छों में निकलते हैं। फल–गोल मांसल, पकने पर काले एवं रक्तवर्ण के एवं स्वाद में कुछ खट्टापन लिये हुये मधुर होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल .... दिसम्बर, मई
फलकाल .... पुष्पकाल के साथ–साथ
प्रयोज्य अंग ....पंचांग, फल।

प्राप्ति स्थान :–

यह भारत के सभी प्रान्तों के खेतों के समीप, बगीचों एवं गृहउद्यानों के आसपास स्वयंजात पाया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :–

तिक्त, कटुरस, त्रिदोषशामक, स्निग्ध, उष्ण, शोथघ्न, चक्षुष्य मूत्रल रसायन, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न है।

आमयिक प्रयोग :–

काकमाची कोष्ठस्थ अंगों की सूजन विशेषतः यकृतशोथ अमाशय–शोथ, जलोदर आदि में विशेष काम करता है। सूजन में वाह्य लेप के रूप में इसका व्यवहार होता है। पत्तियों का शाक भी देते हैं। मकोय के फल ज्वर, नेत्ररोग एवं हृदयरोग में उपयोगी है। मूत्रल होने से यह शोथ में लाभ करता है। इससे शौच भी साफ होता है। जीर्ण–चर्म रोग, दाद में शाक लाभदायक है। यह उरुस्तम्भ, वातरक्त, अर्श आदि में भी लाभ करता है।

रासायनिक संगठन :–

समस्त पौधे में विशेषतः फलों में काकमाची या सोलेलीन नामक एल्केलाइड पाया जाता है। इसके अतिरिक्त सपोनिन भी पाया जाता है।

मुख्य योग :– अर्कमकोय, पुनर्नवादि मण्डूर।

252 अश्वगन्धा (असगंध)

द्रव्यनाम :–

संस्कृत .... अश्वगन्धा, वाजिगन्धा
हिन्दी .... असगंध
लैटिन .... **Withania somnifera Dunal.**

गण :– (1) चरक ने वृंहणीय, वल्य एवं मधुरस्कन्ध में अश्वगन्धा का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :– अश्वगन्धा – अश्वद्वलस्यगुण "इति" "अश्वस्यगन्धएकदेशोमेढ्रमिव मूत्रमस्य " अर्थात् यह घोड़े के सद्दश बलवान् गुणों वाला होता हैं या ताजे पौधे की गन्ध तोड़ने पर अश्वमूत्रसद्यश होने से अश्वगन्धा कहते हैं।

स्वरूप परिचय :–

असगंध के बहुवर्षायु सीधे बहुशाखीय गुल्मक होते हैं। पर्ण जोड़ों में 5 से 10 से. मी. लम्बे, लट्वाकार अग्र भाग क्रमशः कम चौड़े पत्रतट– अखण्डित, मसृण एवं पत्रवृन्त छोटा श्वेतरोमावृत होता है। पुष्प–हरिताभ-पीताभ वर्ण के फलकोणोद्भूत, छत्रक समगुच्छकों में खिलते हैं। वाह्यदलपुंज घंटिकाकार तथा मृदुरोमावृत होता है फल– छोटे पकने पर रक्तवर्ण के मसृण मटराकार, झिल्लीवत् और शिखरपर खुले होते हैं। बीज चपटे संख्या में अनेक होते हैं।

पुष्पकाल ....दिसम्बर, मार्च
फलकाल............................पुष्पकाल के बाद
प्रयोज्य अंग..........................मूल, बीज ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थान :–

यह समस्त भारत के उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों के मैदानी भागों एवं हिमालय की निचली उष्णघाटियों में सर्वत्र सुलभ है। बाजार में असगंध नागोरी नाम से जो मृदु एवं भंगुर वसामय मूल मिलते हैं उसकी प्रायः खेती की जाती है। यह असगंध सर्वोत्तम मानी जाती हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :–

गुण–लघु, स्निग्ध, रस–मधुर, कषाय, तिक्त, विपाक–मधुर, वीर्य–उष्ण प्रधानकर्म–वातकफनाशक, नाड़ीवल्य , दीपन, पाचन, रसायन, वाजीकर, वृंहण ।

आमयिक प्रयोग :–

यह उत्तम पौष्ठिक है। स्त्रियों के कमर दर्द एवं श्वेत प्रदर में अच्छा लाभ करता है । बच्चों के लिये यह उत्तम औषध है इसके सेवन से बच्चों का सूखना बन्द होता है। बीज स्वापजनन एवं मूत्रजनन है तथा बड़ी मात्रा में विषैला प्रभाव होता है।

रासायनिक संगठन :–

अश्वगन्धा की जड़ में एक उड़नशील तैल तथा वियेनियोल, नामक तत्व पाया जाता है। इसके अतिरिक्त सोम्निफेरीन नामक क्रिस्टलाइन नामक एलकेल्वाइड एवं फाइस्टास्टेरोल नामक आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्य योग :–

अश्वगन्धाचूर्ण, अश्वगन्धाघृत, अश्वगन्धारिष्ठ, धातुपौष्ठिक चूर्ण, शातावर्यादिचूर्ण, स्वर्णमकरध्वज, रसराजरस ।

253 धत्तूर (धतूरा)

द्रव्यनाम :–	संस्कृत	धत्तूर, कनक, उन्मत्त, धूर्त, शिवप्रिय
	हिन्दी	धतूरा (श्वेत)
	लैटिन	**Datura** metel Linn.
	कृष्णधत्तूर............	**Datura Stramonium** Linn.

गुण :– अष्ठाङ्गहृदय उत्तर 38 "

निरुक्ति – धत्तूर – घयतिधातून विषजातिस्वभावात्" अर्थात् विषैला होने से यह धातुओं का नाश करता है।
कनक – विषैला होने से स्वर्ण सदृश मादकता आ जाती है
शिवप्रिय – शंकर भगवान का यह प्रिय पुष्प है।

स्वरूप परिचय :–

धतूरा के एक वर्षायु, मूल बहुवर्षायु एवं मसृण काण्ड वाले पौध होते हैं। काण्ड ऊँचाई में 60 से0 मी0 से 1.5 से0 मी0 लम्बे होते हैं। पर्ण– लट्वाकार या भालाकार, लम्बाग्र या अग्रभाग कुछ नुकीला, पत्रतट–लहरदार, दन्तुर, मृ. दुरोमश, मसृण होते हैं। पुष्प श्वेत वर्ण के खड़े, नालिकाकार, कोणाकार, 5 से. मी. लम्बा पांचखण्डों से युक्त होता है फल– लम्बगोल, नीचे की ओर झुके हुये तथा उस पर छोटे–छोटे उभारदार कांटे होते हैं। पक्व– फलों का स्फुटन अनियमित रूप से, बीज चपटे संख्या में अनेक एवं विषैले होते हैं। इसकी दूसरी किस्म हिमालय की निचली घाटियों में

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1,500 मीटर की ऊँचाई तक पाई जाती हैं जिसे कालाधतूरा Datura stramonium कहते हैं। इसके काण्ड गुल्मक नुमा होते हैं। फल–सीधे, पत्रकोणीय, कण्टकित एवं बीज काले रंग के होते हैं।

पुष्पकाल............................ जून, जुलाई,
फलकाल ....सितम्बर, अक्टूबर
प्रयोज्य अंग ....मूल, पत्र, पुष्प, बीज ।
मात्रा बीजचूर्ण –65 से0 मी0 ग्राम से 130 मि0 लि0 ग्राम ।

प्राप्ति स्थान :–

यह समस्त भारत के उष्णप्रदेशों में इसके पौधे स्वयंजात पाये जाते हैं। कालाधतूरा हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल, कुमांयू आदि क्षेत्रों में विशेष रूप से पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :– (1)

गुरु, रुक्ष, रस–कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म-कफनाशक, स्थानिक प्रयोग से अवसादक, वेदनास्थापन एवं शोथहर है। आभ्यन्तर सेवन से दीपन, शूलहर, श्वासघ्न, कासनाशक, एवं अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर मादकता उत्पन्न करता है।

आमयिक प्रयोग :–

यह कुष्ठ, कण्डू, श्वास, ज्वर, कृमि, व्रण आदि विकारों में उपयोगी है। यह संकोचविकास प्रतिबन्धक, नियत कालिकज्वर प्रतिबन्धक और शोथहर है। बड़ी मात्रा में उग्र विष है। श्वासमार्ग के संकोचविकास प्रधान रोगों में धतूरे का विशेष प्रयोग है। श्वासनलिका शोथ एवं दमा में धतूरा खाने को देते हैं तथा पत्रों का धूम्रपान कराते हैं। उदरशूल वृकशूल में धतूरा लाभ करता है। शोथ में धतूरे के पत्तों या मूल को गोमूत्र में पीसकर लेप करते हैं।

वक्तव्य :–

धतूरा अधिक मात्रा में सेवन करने पर ज्ञानेंद्रियाँ अस्थिर और बुद्धि लुप्त होती हैं। जीभ और कण्ठ सूखने लगता है। नेत्ररक्त एवं पुतली विस्तृत होती हैं। रोगीप्रलाप करने लगता है। अन्त में श्वास एवं हृदय की गति बन्द होकर रोगी मर जाता है।

सावधानी :–

प्रारम्भ में वामक औषध देकर वमन कराना चाहिये। बाद में मक्खन एवं दूध देना चाहिए।

रासायनिक संगठन :–

धतूरे के पत्ते एवं बीज में हायोसायमसनाइगर (खुरसानी अजबाईन में पाये जाने वाले हायोसयमीन और हायोसीन नामक एलकेलाईड्स् पाये जाते हैं। बीजों में रालीयतत्व एवं 15 से 30% तक स्थिरतैल भी पाया जाता है। यह वैलाडोना का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य हैं।

मुख्य योग :– कनकासव, म0 विषगर्भतैल, त्रिभुनकीर्ति–रस, कफकुठाररस, जयमंगलरस।

254 पारषीकयवानी (खुरसानी अजवायन)

द्रव्यनाम :– संस्कृत .... पारषीकयवानी, यावनी, तुरुष्का, मदकारिणी
हिन्दी .... खुरसानी अजवायन
लैटिन .... Hyoscyamus niger Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरुक्ति :–

पारसीकयवानी – अरब देशों, खुरासान एवं तुरुष्क आदि देशों का मुख्य पौधा होने के कारण पारसीक यवानी एवं तुरुष्का कहते हैं।

मदकारिणी :–

बीज एवं पत्ते मादक एवं विषैला होने से इसे मदकारिणी कहते हैं।

स्वरूप परिचय :–

खुरासानी अजवायन यूनानी हकीमों की उपयोगी दवा है जिसे भारतीय चिकित्सकों ने पारसीकयवानी के नाम से प्रयोग किया है। इसका काण्ड एक वर्षायु एवं मूल बहुवर्षायु 30 से0 मी0 से 1.5 से. मी. तक लम्बा होता है। काण्ड–रोमश, चिपचिपा, उग्रगन्ध-युक्त, पर्ण– धतूरे के समान रोमिल, चिपचिपे, गन्ध युक्त, पत्रतय–दन्तुर, सवृन्त आयताकार, अण्डाकार होते हैं। पुष्प–हरित पीताभवर्ण के पत्ते कोणोभूत एवं मन्जरीसदृश एवं कुछ बैंगनी रंग के होते हैं। बीज भूरे घूसर, वृकाकार धारीहीन एवं खाकी रंग के गन्धहीन होते हैं। बीज फलकोष के अन्दर पाये जाते हैं। इसकी अन्य किस्में भी हिमालय में विशेषकर लद्दाख क्षेत्र में पाई जाती है जिसे **Hyoscymus muticus Linn.** (वज्रभंग) कहते हैं ।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त
फलकाल............................सितम्बर, अक्टूबर
प्रयोज्य अंग ....बीज, पत्र, मूल
मात्रा – बीज 1/2 ग्राम से 1 ग्राम "

प्राप्ति स्थान :–

खुरासानी अजवायन जम्बु काश्मीर प्रदेश– गुलमर्ग, पहलगांव, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड हिमालय में 2,900 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,600 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है। इसी से मिलती जुलती अन्य किस्म हिमालय में पाई जाती हैं जिसे **Physochlaina praealta** कहते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :– (1)

गुण–गुरु, रुक्ष, रस–तिक्त, कटु, कषाय विपाक–कटु, वीर्य उष्ण, प्रभाव, मादक, प्रधानकर्म– अवसादक, स्वांपजनन, निद्राकर, रक्तस्तम्भन, ग्राही, अग्निदीपन है। यह बहुत अच्छा वेदना हर एवं निद्राकर है। इसकी क्रिया बैलाडोना की तरह होती है। लेकिन इससे मस्तिष्क कम उत्तेजित होता है। सुषुम्ना एवं आन्त्र पर इसकी अवसादक क्रिया होती है, इसका उपयोग उन्माद, अपस्मार, अपतन्त्रक, निन्द्राभंग , नाड़ीशूल एवं मानसिक अस्वस्थता में किया जाता है। यह अफीम की अपेक्षा उत्तम निन्द्राजनक औषध है।

अधिक मात्रा में यह मादक विष है जिससे प्रलाप सन्यास आदि होकर मृत्यु होती है।

रासायनिक संगठन :

इसमें हायोसायेमिन एवं अल्पमात्रा में हायोसीन, स्कोपोलामाइन, एट्रोपिन, हायोसिप्रन नामक विषैले–एलकेलाइड पाये जाते हैं। इसकी अलग किस्मों में अलग–अलग मात्रा में एलकेल्वाइड पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :— सुपारीपाक, मुस्तादिरस, अमृतभल्लातक–पाक, मल्लतैल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य : शास्त्रकारों ने चार प्रकार की यवानी का उल्लेख किया है। यथा

1. यवानी (अजवायन) 2. अजमोदा, (अजमोद) 3. वन्ययवानी, 4. पारसी कयवानी (खुरासानी)

यह यूरोप और मध्य एशिया का आदिवासी पौधा है। अरवी एवं तिब्बी ग्रंथों में इसका उल्लेख मुख्य रूप से मिलता है। वृन्दमाधव ने कृमिघ्न के रुप में सर्वप्रथम उल्लेख किया है। धन्वन्तरिनिघण्टु ने यवानीविशेषः" के रुप मे उल्लेख किया है। यावनी तुरुष्का आदि पर्याय यवन देशों के स्थानों पर आधारित है।

255 सूची (वेलाडोना)

द्रव्यनाम :–

संस्कृत	....	सूची,
हिन्दी	....	वेलोडोना (देशी)
लैटिन	....	**(A) Atropa acuminata** Royle
		(B) Atropa belladonna Linn.

स्वरूप परिचय :

यह हिमालय में उपलब्ध एकवर्षायु काण्ड वाला पौधा है। काण्ड 1 मीटर से लेकर $2\frac{1}{2}$ तक लम्बा बहुशाखीय, मसृण, पर्ण–एकान्तर, कभी–कभी अभिमुख, मृदुलोमश, लट्वाकार–अभिलट्वाकार एवं तीक्ष्णाग्र होते हैं। पुष्पहरिताभवर्ण के पत्रकोणोद्भूत, फल–मांसल गोल, पकने पर काले चमकीले वर्ण के, बीज–संख्या में अनेक चपटे होते हैं। इसकी विदेशी किस्म की भी खेती की जाती है जिसे **Atropa belladonna** कहते हैं।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त
फलकाल..............................सितम्बर, अक्टूबर
प्रयोज्य अंग ....पत्र, मूल
मात्रा – 1 ग्राम से 3 ग्राम ,

प्राप्ति स्थान– इसके पौधे हिमालय में 2,900 मीटर की ऊंचाई से लेकर 3,000 मीटर की ऊँचाई तक उत्तराखण्ड गढवाल, हिमाचलप्रदेश, जम्मूकश्मीर राज्य में पाया जाता है। इन क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

स्वापजनन, वेदनाहर, कासहर, श्वासहर, संकोचविकास प्रतिबन्धक, हृदयबल्य, नाड़ीशैथिल्यकर, कननिकाविकासी मूत्रजनन, स्तन्यनाशन, एव त्वचा को सुन्न करनेवाला है। कालीखांसी एवं हृदय के अशक्त होने पर वैलाडोना का प्रयोग करते हैं। क्षय एवं हृदय के अशक्त होने पर वैलाडोना का प्रयोग करते हैं। क्षय एवं अन्य ज्वरों में जब पसीना अधिक आता है तो इसे यशदभस्म के साथ देते हैं। दूध बन्द करने के लिये इसे देते हैं। मूत्रावरोध, शिश्न स्तब्धता, शय्यामूत्र, वस्तिशोथ, एवं कफ मेह आदि रोगों में वेलाडोना देते हैं।

अधिकमात्रा में प्रयोग करने पर मुंह, गला एवं चर्म में सुन्नता तथा नेत्रकनीनिका का विकास, चक्कर आना आदि लक्षण होते हैं।

रासायनिक संगठन :

वैलाडोना में एट्रोपीन, हायोसायमीन, स्कोपोलेमाईन होमेट्रोपीन आदि एलकेलाइड पाये जाते हैं। कनीनिकाविकासी द्रव्य के रुप में एट्रोपीन का अधिक प्रयोग होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

256 ताम्रपर्ण (तम्बाकू)

द्रव्यनाम :–
संस्कृत .... ताम्रपर्ण,
हिन्दी .... तम्बाकू,
लैटिन .... **Nicotiana tabacum Linn.**

स्वरूप परिचय :–

इसकी खेती समस्त भारत में की जाती है, यह विदेशी पौधा है। काण्ड–मसृण, रोमिल, 30 से0 मी0 से 1 मीटर तक लम्बा पर्ण–मूलोद्भव, काफी चौड़े, मांसल होते हैं। पुष्प समूह में पीत-वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल ....दिसम्बर, जनवरी,
फलकाल..........................पुष्पकाल के बाद
प्रयोज्य अंग ....पंचांग

गुणधर्म–(1) यह विषैली एवं मादक वाला द्रव्य है। शोथ पर इसके पत्तों का सेक लाभ करता है। पत्र–कृमिघ्न, दन्तशूल नाशक एवं वातवेदनाहर है। दन्तमञ्जन के रूप में इसका विशेष प्रयोग होता है। पंचांग का उपयोग हिक्का, कफ आदि विकारों में भी किया जाता है। व्यवहार में तम्बाकू बिड़ी, सिगरेट एवं पान के साथ अधिक किया जाता है।

257 कटुवीरा (लालमिर्च)

द्रव्यनाम :–
संस्कृत .... कटुवीरा,
हिन्दी .... लालमिर्च
लैटिन .... **Capsicum frutescens Linn.**

स्वरूप परिचय :

मीर्च लाल उष्णकटिबन्धीय प्रदेश अमेरिका का आदिवासी पौधा है। जापान, मिस्त्र, मलेशिया आदि प्रदेशों में इसकी अनेक किस्में पाई जाती हैं। मसालों के रुप में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है।

गुणधर्म : मीर्च दीपन पाचन आमाशमिक रस को बढ़ाने वाला, मुखस्त्राव को बढ़ानेवाला एवं वातानुलोमक है। वातिकपीड़ा नाशक एवं लूता, आदि विषों में इसका बाह्यप्रयोग है। अधिकमात्रा में सेवन करने से आमाशयिक झिल्ली पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। नाड़ीवल्य, मूत्रल, उत्तेजक है

तिक्तादिवर्ग SCRO PHULARIACEAE

वर्गलक्षण – इस वर्ग में शाकीय क्षुप एवं गुल्म पाये जाते हैं। पर्ण– साधारण एकान्तर या अभिमुख, उपपत्ररहित, द्विपालि में, पुष्प–द्विबीजपर्ण, संयुक्तदल, उपरिस्थगर्भाशय, पुष्पवाह्यकोष ज्वलन्त, पुष्पआभ्यन्तरकोष नलिकाकार चार एवं पांच पालिमें, पुकेशर 4, उनमें से एक जोड़ी छोटी और बड़ी होती है। पुष्प पीले, लाल, श्वेत, नीले रंग के सुन्दर होते हैं। फल–कोषीय या मांसल बीज, बारीक, गोल या चपटे संख्या में अनेक होते हैं। इसका वर्ग में कुटकी, ब्राह्मी, डिजटेलिस आदि उपयोगी वनस्पतियाँ आती हैं। ये वनस्पतियों प्रायः ज्वरघ्न, रक्तशोधक, यकृतविकारनाशक, एवं सारक होती हैं।

258 कुटकी (कटुका)

द्रव्यनाम :–
संस्कृत .... कुटकी, कटुका, तिक्ता, कटुरोहिणी।
हिन्दी .... कटुका, कुटकी,
लैटिन .... **Picrorhiza Kurroa Royle**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गण – चरक के ने लेखनीय, भेदनीय, स्तन्यशोधन महाकषाय, तिक्तस्कन्ध एवं सुश्रुत ने पिप्पल्पादिगण, पटोलादिगण, एवं मुस्तादिगण में कुटकी का उल्लेख किया हैं।

निरूक्ति :

कटुका - कटुगुणमस्य" अर्थात् यह स्वाद में कटु तिक्त होता है इसलिये इसे कुटकी एवं कटुका कहते हैं।

स्वरूप परिचय :

कुटकी के जमीन पर परिसृत शाकीय वनस्पति है। भौमिककाण्ड बहुवर्षायु एवं काण्ड ग्रंथियों से मूल निकलते हैं तथा काण्ड 2 मीटर तक फैलता जाता है। पर्ण 5 से0 मी0 से 10 से0 मी0 तक लम्बे, आधार की ओर क्रमशः कम चौड़ी पत्रतट–सूक्ष्मदन्तुर, अग्रगोलाकार, चर्मिल होती हैं। पुष्प–शूकीवत् मञ्जरी में, हरित नील वर्ण के, फल–सामान्य, स्फोटी प्रकार का होता है। सम्पूर्ण काण्ड तिक्त होता है। ये काण्ड छोटे टुकड़ों में बाजार में मिलते हैं। बाह्य छिलका पतला खाकीस्तरी रंग का होता है। तोड़ने पर गोलबिन्दु दिखाई देते हैं।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त
फलकाल..............................सितम्बर, अक्टूबर,
प्रयोज्य अंग ....काण्ड, मूल,
मात्रा चूर्ण ....2 से 3 ग्राम

प्राप्तिस्थान –

भारत में यह उत्तराखण्ड हिमालय, जम्मूकश्मीर राज्य, सिक्किम, हिमाचलप्रदेश की 2,600 मीटर की ऊंचाई से लेकर 3,600 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–रुक्ष, लघु, रस–तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–शीत प्रधानकर्म–ज्वरघ्न, यकृतविकारनाशक, भेदन, रक्तशोधक, कफ निस्सारक, स्तन्यशोधन, दीपन, कृमिघ्न।

आमयिक प्रयोग :

कुटकी कटुपौष्टिक होने से कामला में विशेष उपयोगी है इसके अतिरिक्त यह ज्वर, रक्तविकार, कुष्ठ, दाह, विषमज्वर, प्रमेह आदि रोगों में उपयोगी है। उदरविकार एवं कुपचन में कुटकी चूर्ण देने से दस्त साफ होते हैं। मूत्र क्वाथ देने से डिजिटेलिस के समान क्रिया होते हैं हृदय की गति कम होती है परन्तु शक्ति बढ़ती है।

रासायनिक संगठन :–

इसमें पिक्रोरहाजिन नामक तिक्त क्रिस्टलाइन ग्लाइकोसाइड पाया जाता है। यह जल, ऐल्कोहल, एसिटोन, आदि में घुलनशील है। इसके अतिरिक्त केथार्टिक एसिड भी पाया जाता है।

मुख्ययोग :

आरोग्यवर्धनी, तिक्तादिक्वाथ, रक्तशोधकवटी, योगराजगुग्गुलु,
कुमार्यासव, साह्निवाधारिष्ठ, म.सुदर्शनचूर्ण, सर्वज्वरहरलौह।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

258 ब्राह्मी (जलनीम)

द्रव्यनाम :–

संस्कृत	....	ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी,
हिन्दी	....	ब्राह्मी (उत्तरप्रदेशीय) जलनीम,
लैटिन	....	(अ) **Bacopa monnieri Pennell.**
मण्डूकपर्णी		(ब) **Centella asiatica Linn.**

मण्डूकपर्णी :–

गण–चरक ने वयःस्थापन महाकषाय, में मण्डूकपर्णी, का उल्लेख किया है।

स्वरूप परिचय :

(अ) जलनीम (ब्राह्मी नमदार स्थानों पर पैदा होने वाली प्रसरणशील बहुवर्षायु शाकीय वनस्पति है। पर्ण–चिक्कण मांसल, कुण्ठिताग्र, सरल तट में तथा काली बिन्दुकित, मण्डूक के सदृश चिह्नों वाले पत्र होते हैं। ये पत्र 6.25 मि0 मी0 2.5 से0 मी0 लम्बे, स्वाद में कुछ तिक्त होते हैं।

पुष्प – श्वेताभ नीले वर्ण के पत्रकोणोद्भूत एकल रूप में होते हैं। फल– छोटे, लम्बेगोल कोणीय होते हैं। काण्ड ग्रन्थी से सूत्र निकलकर फैलता है। इसे वंगीय ब्राह्मी कहते हैं।

पुष्पकाल ....दिसम्बर, मार्च,
फलकाल............................पुष्पकाल के बाद

(ब) उत्तरप्रदेश, हिमाचल में ब्राह्मी **Centella asiatica** नामक वनस्पति को शास्त्रीय ब्राह्मी (मण्डूकपर्णी) कहते हैं। इसके भी नमदार जमीन पर परिसृत छत्तेदार पौधे होते हैं। इसका तना जमीन पर फैलता है। पर्ण–हरितवर्ण के गोलाकार, वृक्काकार, चिक्कण, पत्रतट–सरल दन्तुरधार में, होते हैं। पुष्प–विनाल,–रक्ताभवर्ण के पत्रकोणोद्भूत होते हैं।

पुष्पकाल ....फरवरी, मई,
फलकाल............................पुष्पकाल के बाद,

प्राप्ति स्थान :

दोनों किस्म की ब्राह्मी भारतवर्ष के सभी शीतप्रधान एवं नमदार भूमि पर विशेषकर हिमालय की निचली घाटियों, नदी, नालों, एवं नहरों के किनारे, उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब आदि प्रदेशों में पाई जाती है। हिमालय में **Centella asiatica** के अतिरिक्त दूसरे से मिलती जुलती अन्य दो किस्में पाई जाती हैं जिन्हें **Hydrocotyle javanica Thunb.** एवं **Hydrocotyle rotundifolia Roxb.** कहते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन :(2)

गुण–लघु, सर, रस–तिक्त, अनुरस–कषाय, मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, प्रभाव–मेध्य, प्रधानकर्म मेध्य, हृद्य, शोथनाशक, कुष्ठघ्न, रक्तशोधक, वल्य एवं रसायन है

रासायनिक संगठन :

जलनीम (ब्राहमी) में ब्राहमीन नामक एलकेलवाइड पाया जाता है। इसमें तीन भास्मिक तत्व एवं स्टेरोल पाया जाता है। मण्डकपर्णी (ब्राहमी) में हाइड्रोकोटेलिन, नामक एलकेलाइड, एशियाटिकोसइड नामक ग्लाइकोसाइड, वेल्लेरीन नामक तत्व एवं उड़नशील तैल, स्थिर तैल, रालीय तत्व; एस्कोरविकएसिड आदि तत्व पाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोग :

ब्राह्मरसायन, ब्राह्मीघृत, ब्राह्मी–तैल, सारस्वतारिष्ठ, सारस्वतघृत, व्राहमीवटी, ब्रेनटोन।

वक्तव्य :

मण्डूकपर्णी एवं ब्राहमी दोनों द्रव्य आज भी संदिग्ध बने हुये हैं। कुछ लोगों का विचार है कि ये दोनों भिन्न–भिन्न द्रव्य हैं। लेखक के विचार से ब्राह्ममी का ही पर्याय मण्डूकपर्णी हैं। एवं मेध्य तथा कुष्ठ, आदि विकारों में **Bacopa monnieni** (जलनीम) काफी कारगर हैं। अतः शास्त्रीय ब्राहमी इसी को स्वीकार किया जाना चाहिये। **Centella asiatica** को अभाव द्रव्य में स्वीकार किया जाना चाहिये। आभ्यन्तर प्रयोग में जलनीम प्रभावकारी है।

260 हृत्पत्री

द्रव्यनाम :–	संस्कृत	हृत्पत्री, तिलपुष्पी
	हिन्दी	डजिटलिस
	लैटिन	**Digitalis lanata** Ehrh.

स्वरूप परिचय :– यह विदेशी पौधा है। भारत में हिमालय की घाटियों में इसकी खेती की जाती है। काण्ड 1 से0 मी0 तक लम्बा, तलोत्थ, मृदु होता है। पर्ण–लट्वाकार, भालाकार, एकान्तर होते हैं। पुष्प–तिलपुष्पसदृश, श्वेताभ–गुलाबी वर्ण के फल–कोषीय, बीज खाकी धूसरवर्ण के होते हैं। इसकी दूसरी किस्म की भी खेती की जाती है। जिसे **Digitalis purpurea** Linn. कहते हैं।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त,
फलकाल.............................अगस्त, सितम्बर,
प्रयोज्यअंग ....पत्र, मूल।

प्राप्ति स्थान :

उत्तराखण्ड हिमालय, जम्मू कश्मीर राज्य, एवं हिमाचल प्रदेश में 2,400 मीटर की ऊंचाई से 2,700 मीटर की ऊंचाई तक इसकी खेती की जाती है।

गुणधर्म : पत्र–हृदयावसादक, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, बड़ी मात्रा में दाहजनक एवं मादकविष है। डिजिटेलिस की क्रिया हृदय, रक्तवाहिनियों और रम्क्ताभिसरण पर होती है। इससे हृदय की गति कम होकर हृदय को बल मिलता है। दमा, खांसी, क्षय, फुफ्फुस से रक्तस्त्राव होना एवं फुफ्फुसशोथ में डिजिटेलिस लाभ करता है।

रासायनिक संगठन :

पत्रों में डिजिटेलीन नामक एलकेलाइड पाया जाता है। यह हृदयोत्तेजक एवं बल्य है तथा कई किस्मों के ग्लाइकोसाइड पाये जाते हैं।

श्योनाकादिवर्ग BIGNONIACEAE

वर्गलक्षण :– इस वर्ग में वृक्ष एवं वृक्षक पाये जाते हैं। पर्ण–अभिमुख, बहुधासंयुक्त, उपपत्र रहित, एवं बड़े पालियुक्त होते हैं। पुष्प–विगुल की आकृति में, द्विबीजपर्ण, पुष्प–वाह्यकोष 5 दलों का घण्टाकृतिका, पंखुड़ियाँ 5 नीचे से जुड़ी हुई, पुंकेशर 4 दो छोटे दो बड़े, फली लम्बी, चपटी सेम जैसी, बीज–चपटे पतले पंखसदृश होते हैं। इस वर्ग में श्योनाक, पाटला, रोहीतक आदि उपयोगी द्रव्य आते हैं। ये द्रव्य ग्राही, दीपन, उदररोगनाशक, वातनाशक, वेदनास्थापन एवं स्वेदजनन होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

261 श्योनाक

द्रव्यनाम :– संस्कृत .... श्योनाक, कट्वङ्ग, दीर्घवृन्त, पृथुशिम्ब, असिफल
हिन्दी .... तरलु, सोनापाठा,
लैटिन .... Oroxylum indicum Vent.

गण :–(1) चरक ने अनुवासनोपग, पुरीषसंग्रहणीय, शोथहर, शीतप्रशमन महाकषाय तथा कषायस्कन्ध, एवं सुश्रुत ने अम्बष्ठादिगण एवं वृहत्पञ्चमूलगण में श्योनाक का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :

कट्वङ्ग : कटून्यङ्गनस्य रौक्ष्यात्'' अर्थात् यह कटु रस प्रधान होता है।

श्योनाक : शुकइव पुष्पमस्य'' अर्थात इसके पुष्पों की आकृति शुकनासा के सदृश होती है।

दीर्घवृन्त : दीर्घवृन्तमस्य'' अर्थात् पत्रवृन्त इसके काफी लम्बे होते हैं।

स्वरूप परिचय :

श्योनाक के मध्यम आकार के पर्णपाती वृक्ष पाये जाते हैं।

पर्ण–काफी लम्बे 80 से0 मी0 तक, छि या त्रिपक्षाकार, तथा अभिमुख क्रम में स्थित होते हैं। नीचे की पत्तियाँ प्रायः त्रिपक्षाकार तथा मध्य की द्वि–पक्षाकार, पत्रक–रुपरेखा में चौड़े, लट्वाकार लम्वाग्र, अखण्ड, मसृण, एवं पत्रदण्ड में दाने से होते हैं। पुष्प–बहुत बड़े मांसल, जामुनीरंग के होते हैं। ये पुष्प–सवृन्त काण्डज क्रम से एवं मञ्जरियों में निकलते हैं।

फली– तलवार सदृश, चिकनी 30 से0 मी0 से ५५ से0 मी0 तक लम्बी, कठोर होती है। बीज–चपटे, सफेद–झिल्लीदार, पंखसदृश होते हैं। छाल, हरित पीताभ वर्ण की होती है।

पुष्पकाल ....जून, जुलाई,
फलकाल............................दिसम्बर, मार्च,
प्रयोज्य अंग ....छाल, मूल तक

प्राप्ति स्थान :

इसके वृक्ष शिवालिकवनक्षेत्र, हिमालय की निचली उष्ण घाटियों, उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, पंजाब आदि सभी प्रान्तों में सुलभ हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–त्रिदोषशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, व्रणरोपण, दीपन–पाचन, ग्राही, मूत्रल, स्वेदजनन, ज्वरघ्न एवं अल्पमात्रा में कटु पौष्टिक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिकप्रयोग :

मूलछाल का उपयोग आमवात, वातप्रधान रोग, अतिसार, कास, शोथ, अरुचि, वस्तिगतविकार में प्रयोग करते हैं। अतिसार में छाल का पुटपाक करके निकाला हुआ रस देते हैं।

रासायनिकसंगठन :

इसके मूलत्वक् में ओरोक्सीलिन नामक क्रिस्टलाइन स्वरूप का तिक्त ग्लुकोसाइड, एक कटुतत्व, पेक्टिन, वसा एवं अल्प मात्रा में सीट्रिकएसिड आदि कतिपय तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :– वृहत्पञ्चमूल, दशमूलारिष्ठ, दशमूलत्तैल, अमृतारिष्ठ, च्यवनप्राश, महानारायणतैल।

वक्तव्य : राजनिघण्टुकार ने श्योनाक एवं अरलू भेद से दो भिन्न–भिन्न द्रव्यों का उल्लेख किया है। संहिता ग्रन्थों में के संदर्भ स्थलों के आमयिक प्रयोगों से स्पष्ट संकेत मिलता है कि श्योनाक, अरलू एवं शुकनासा तीनों भिन्न–भिन्न वनौषधियाँ हैं यथा अ–श्योनाक **Oroxylum indicum**, (ब) अरलू **Aillanthus excelsa Roxb** (स) शुकनासा–**Corallocarpus epogaeus Berth.**

262 पाटला (पाडल)

द्रव्यनाम :–

संस्कृत	....	पाटला, अमोघा, ताम्रपुष्पी
हिन्दी	....	पाडल
लैटिन	....	**Stereospermum suavelens Dc.**

गण :– चरक ने शोथहर महाकषाय तथा सुश्रुत ने आरग्वधादि महत्पञ्चमूल एवं अधोभागहरगण में पाटला का उल्लेख किया है।

स्वरुपपरिचय :

पाटला के पर्णपाती बड़े वृक्ष होते हैं। नवीन शाखायें, चिपचिपे, रोमश एवं ग्रन्थिमय होते हैं। छाल–चिकनी, धूसरवर्ण की ताजी हल्के पीले रंग की, सूखने पर झुर्रीदार, खुरदरी होती है। पर्ण–30 से 60 से0 मी0 तक लम्बे, विपरीत क्रम में, अयुग्मपक्षाकार या विषमपक्षवत्, पत्रक–संख्या में 5–8, रुपरेखा में चौड़े, अण्डाकार या आयताकार, अवृन्त, चर्मिल, कर्कश, दन्तुर, अखण्ड या सरलधार वाले होते हैं। पुष्प–लाल एवं भीतर से पीताभ रंग के होते है इसी कारण इसे ताम्रपुष्पी कहते है। ये पुष्प त्रिधाविभक्त, शाखाग्र एवं गुच्छवत् मञ्जरियों में खिलते हैं। फली– 30 से0 मी0 तक लम्बी, टेढी या ऐंठी हुई सी बेलनाकार एवं चार स्पष्ट धाराओं से युक्त होती है। प्रत्येक फली में बीज 15 से 30 की संख्या में सपक्ष होते हैं।

पुष्पकाल ....मई, जून,
फलकाल.............................सितम्बर, अक्टुबर
प्रयोज्यअंग ....मूलत्वक्, छाल, सार, पुष्प
क्षार की मात्रा $\frac{1}{2}$ ग्राम से $1\frac{1}{2}$ ग्राम

प्राप्ति-स्थान :

पाटला के वृक्ष उत्तरी भारत, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, एवं सभी प्रान्तों के उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में सुलभ हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, कषाय, विपाक–कटु वीर्य–उष्ण, पुष्प एवं फल–कषाय, मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–त्रिदोषशामक, वेदनास्थापन, व्रणरोपण, रुचिवर्धक, तृष्णाशामक, ग्राही, यकृदुत्तेजक, शोथहर, मूत्रल, अश्मरीनाशन, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, पुष्प–हृद्य, पौष्टिक एवं वाजीकरण है।

आमयिक प्रयोग :–

(1) फूलों का रस मधु के साथ हिचकी में प्रयोग करते हैं।
(2) मधुमेह, अश्मरी एवं मूत्राघात में इसके पंचांग का सार तैल के साथ खिलाते हैं। कफ तथा वातप्रधान रोगों में पाटला का प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन :– पुष्पों में ऐल्ब्युमिन, शर्करा, म्यूसिलेज तथा मोमीय पदार्थ पाया जाता है। छाल में टैनीन पाई जाती है।

मुख्ययोग :– यह दशमूल का मुख्य घटक है। दशमूलारिष्ठ, दशमूलतैल, च्यवनप्राश, महानारायणतैल।

वक्तव्य :– निघण्टु ग्रन्थों में पाटला एवं सितपाटला का उल्लेख है। वनस्पतिशास्त्र के आधार पर पाटला एवं काष्ठपाटला दोनों भिन्न–भिन्न वर्ग के वृक्ष हैं। काष्ठपाटला को मोक्षक या (मोरवा) **Schrebera** swieteniodies Rokb.कहते हैं। देखिये मोक्षक में। भावप्रकाश कार ने मोक्षक का स्वतन्त्र वर्णन किया है।

263 रोहीतक (रोहड़ा)

द्रव्यनाम :– संस्कृत .... रोहीतक, लौहशत्रु, दाडमीपुष्प।
हिन्दी .... रोहिड़ा
लैटिन .... **Tecomella undulata**

निरुक्ति :–रोहीतक – "रोही–रक्तस्वभावात्" अर्थात् छाल एवं पुष्प रक्तवर्ण के होते हैं। "लोहितवर्ण इति हेमाद्री"

लौहशत्रु – अर्थात् यह रक्तविकारों में उपयोगी है।

दाडिमीपुष्प – पुष्प दाडिम पुष्प सद्यश होते हैं।

स्वरूप परिचय :

रोहीतक के छोटे वृक्ष या गुल्म होते हैं। जिनकी शाखायें नीचे की ओर झुकी रहती हैं। पर्ण–आयताकार, अपेक्षाकृत कम चौड़ी, पत्राग्र–कुण्ठित तथा पत्रतट लहरदार, पत्तियाँ सूक्ष्मरोमावृत, दाडिमपत्र सद्दश, पुष्प–नारंगी एवं पीताभ वर्ण के दाडिमपुष्प सद्दश, रक्तवर्ण के होते हैं। फली–लम्बी, टेढ़ी एवं नुकीली होती है।

पुष्पकाल ....फरवरी, अप्रैल,
फलकाल............................पुष्पकाल के बाद
प्रयोज्य अंग ....छाल।

प्राप्ति स्थान :– इसके वृक्ष राजस्थान, पंजाब, गुजरात काठियावाड़, उत्तरप्रदेश आदि स्थानों पर स्वयंजात या लगाये हुये पाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण–लघु, स्निग्ध, रस–कटु, तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, प्रभाव–भेदन, प्रधानकर्म–रोचन, दीपन, अनुलोमन, भेदन, प्लीहा–यकृतवृद्धिनाशक, रक्तशोधक, मूत्रसंग्रहणीय, लेखन, विषघ्न। प्लीहोदर में विशेष उपादेय।

मुख्ययोग

रोहीतकारिष्ठ, रोहीतकलौह,

वक्तव्य : बाजार में रोहीतक के नाम से **Amoora rohituca** निम्बकुल के वृक्ष विशेष की छाल का उपयोग होता है। कभी–कभी बाजार में फरहद की छाल भी मिश्रण के रूप में मिलती है। राजनिघण्टुकार ने श्वेत तथा रक्तभेद से दो प्रकार का उल्लेख किया है।

तिलादिवर्ग PEDALIACEAE

वर्ग लक्षण :

इस वर्ग में शाकीयक्षुप एवं गुल्मक आते हैं। पर्ण–अभिमुख, अखण्ड, उपपत्ररहित, सपुष्प, द्विबीजपर्ण, संयुक्तदल, उपरिस्थ बीजकोश, पुष्प–पंखुड़ियाँ 5, नीचे से जुड़कर नलिकाकार, पुंकेशर 4, दो छोटे, दो बड़े, बीजकोष दो खंड़ों का और पुष्फलबीज मुक्त होता है। इस वर्ग की वनस्पतियाँ केश्य, बल्य, मधुर, गुरु, शूलप्रशमन, गर्भाशयशोधन, बस्तिशोधन, प्रमेहनाशक। इस कुल में तिल, बड़ागोखरु आदि द्रव्य आते हैं।

264 तिल

द्रव्यनाम :–	संस्कृत	तिल, (स्नेहनद्रव्य विशेषात्)
	हिन्दी	तिल,
	लैटिन ....,...	**Sesamum indicum Linn. (S.orientale L.)**

स्वरूप परिचय :

इसके एक वर्षायु मृदु क्षुप पाये जाते हैं जिसकी खेती की जाती है। पौधे पर जगह–जगह पर स्त्रावी ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। पर्ण–अभिमुख क्रम से स्थित, खण्डित, काण्ड के मध्यभाग में लट्वाकार, तथा किनारे दन्तुर, उपरीभाग की पत्तियाँ प्रायः सरल रुपरेखा में भालाकार, आयताकार एवं एकान्तर क्रम से स्थित होती हैं। पुष्प – बैंगनी–श्वेताभ्रवर्ण के नलिकाकार, फली–कोषीय, लम्बगोल चतुष्कोणाकार तथा अग्रसर कुण्ठित सा होता है। संख्या में अनेक, चपटे तैलीय, रंग भेद से तीन किस्म के तिल पाये जाते हैं। कृष्ण (काला), लाल, श्वेत।

पुष्पकाल	अगस्त, सितम्बर
फलकाल..............	सितम्बर, अक्टुबर,
प्रयोज्य अंग	बीज, तैल।

प्राप्ति स्थान :

समस्त भारतवर्ष में तिल की सर्वत्र खेती की जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :(1)

गुण–गुरु, स्निग्ध, रस–मधुर, अनुरस–कषाय, तिक्त, विपाक–मधुर, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–केश्य, कर्म–वातशामक, स्नेहन, सन्धानीय, व्रणशोधन एवं रोपण, मेध्य, शूलप्रशमन, बाजीकरण, आर्तवजनन, मूत्रसंग्रहणीय, चक्षुष्य, लेखन। यह शरीर की स्थूलता को कम करने वाला, कफ को न बढ़ाने वाला, वातघ्न द्रव्यों में श्रेष्ठ, बलकारक, त्वचा के लिये हितकर है। अर्श रोग में तिलों को पीस कर गरम करके अर्श के ऊपर बांधते हैं तथा मक्खन के साथ मिलाकर खाने को देते हैं।

रसायनिक संगठन :

बीजों में स्थिरतैल (Fatty oil) प्रोटीन तथा अल्पमात्रा में कोलीन, सेक्रोज एवं लेसिथीन आदि तत्व पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त बीजों में सिसेमिआ, सिसेमोलीन, लाइपेज एवं निकोटिनिकएसिड आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग– तिलादिगुटिका, तिलाष्ठक, च्यवनप्राश, आयुर्वेदिक तैलकल्कों में प्रधानतः तिलतैल का प्रयोग किया जाता है।

265 बृहद्गोक्षुर (बड़ागोखरु)

द्रव्यनाम :–

संस्कृत	....	वृ. गोक्षुर.
हिन्दी	....	बड़ा गोखरु
लैटिन	....	**Pedalium murex** Linn.

स्वरूप परिचय :

बड़े गोखरु के छोटे–छोटे पौधे होते हैं जिसकी शाखायें जमीन पर फैलती हैं। पर्ण–काफी रसदार, पर्ण के अधःपृठ पर कोमल, ओंस जैसी सफेद रचना होती है। पर्ण अण्डाकार, कुण्ठित, दन्तुर होते हैं। पुष्प–पत्रकोणोद्भूत, छोटे श्वेताभ वर्ण के, फल पकने पर पीताभ वर्ण के सम्पूर्ण पौधे से अजीब किस्म की गन्ध आती है एवं पौधे को पानी में डालने से गाढा एवं पिच्छिल लुवाव निकलता है। फल–मांसल, अधोलम्बी, आधार की ओर चौड़े, चनुष्कोणाकार से होते हैं। प्रत्येक कोण पर कण्टक होते हैं।

पुष्पकाल	अगस्त, सितम्बर
फलकाल......................	शीतकाल
प्रयोज्य अंग	फल, पंचांग
मात्रा फल चूर्ण	3 ग्राम से 6 ग्राम।

प्राप्ति स्थान :

इसके पौधे दक्षिण भारत, विशेषतः गुजरात, कोंकण तथा लंका आदि समुद्र तटों में पाया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

स्निग्ध, रुक्ष, मधुर, दीपन, बलकारक, बस्तिशोधन, वृष्य, पौष्टिक, शर्करा, अश्मरी, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर आदि रोगों में उपादेय है। बड़ा गोखरु मूत्रजनन, बल्य एवं वाजीकर है। इसका मूत्रजनन कर्म मुख्य हैं। पेशाब की जलन कम करने के हेतु क्वाथ को मुलेठी के साथ देने से लाभ होता है। स्वप्न में वीर्य स्त्राव का होना, पेशाब अपने आप होना, कामशक्ति कम होना आदि में फलों के फाण्ट को शक्कर, दूध एवं घी के साथ सेवन करने से लाभ होता है। यकृत, प्लीहा वृद्धि में पंचाग का रस या क्वाथ पिलाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठन :

फल में हल्के हरी रंग की चर्वी, अल्पप्रमाण में रास, एक क्षारोद एवं निर्यास आदि तत्व पाये जाते हैं।

वासादिवर्ग ACANTHACEAE

वर्गलक्षण : इस वर्ग में शाकीयक्षुप, गुल्म एवं गुल्मक पाये जाते हैं। पर्णविन्यास अभिमुख, उपपत्र रहित, द्विबीजपर्ण, पुष्प का आकार दो ओष्ठों के समान, पुष्पबाह्यकोष एवं पुष्पआभ्यन्तर कोष के दल 5–5 पुंकेशर दो या चार, गर्भाशय उपरिस्थित और दो खण्डों वाला होता हैं। इस वर्ग में अडूसा, कालमेघ, उटंगन, इक्षुर आदि द्रव्य मुख्य है। इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः कासघ्न, ज्वरघ्न, रक्तपित्तनाशक, बल्य, रुचिकर, मूत्रजनन एवं कोमोत्तेजक होते हैं।

267 आटरुषक (अडूसा)

द्रव्यनाम :– संस्कृत .... वासा, वासक, वृष, आटरुषक,
हिन्दी .... वांसा, अड्सा
लैटिन .... **Adhatodia vasica Nees.**

गण – चरक सूत्र अध्याय 29 में एवं सुश्रुत ने सू0 अ0 46 में वासा का उल्लेख किया है।

निरुक्तिः

वासा– ''वासमति वस्ते आच्छादमति वा'' अर्थात् इसके काण्ड ग्रामीण क्षेत्रों में एवं बस्ती के आसपास पाये जाते हैं।

आटरुषक– वासोगृहेऽप्यवस्थाने वासास्यारुटरुषके'' अर्थात् यह कासनाशक प्रसिद्ध औषधि है।

स्वरूप परिचय :

अड्सा के सदा हरित गुल्म होते हैं जिनमें कुछ दुर्गन्ध सी होती है। पर्ण–10 से 20 से0 मी0 लम्बी, 3.75 से0 मी0 चौड़े, भालाकार या अण्डाकार, अग्रभाग नुकीला एवं पत्रसवृन्त होते हैं। पुष्प–श्वेत वर्ण के, द्वि औष्ठिय एवं सिंहमुखाकृति में होते हैं, इसी कारण इसे सिंहास्य भी कहते हैं। फल–मुद्गराकार एवं अनुलम्ब दिशा में होते हैं।

पुष्पकाल ....दिसम्बर, मार्च
फलकाल...............................पुष्पकाल के बाद
प्रयोज्य अंग ....पत्र, पुष्प, छाल, पंचांग

प्राप्ति स्थान :

अडूसा के पौधे समस्त भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में 1,200 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–कफनिस्सारक, श्वास, कास एवं रक्तपित्तनाशक एवं क्षयनाशक। पुष्प– तिल, शीतवीर्य, कटुविपाकी।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिकप्रयोग :

अडूसा–श्वास, कास, क्षय एवं रक्तपित्त नाशक है। यह उत्तेजक, कफः निःस्सारक और संकोचविकास प्रतिबन्धक है। मूत्र–ज्वरघ्न, कासघ्न, श्लेष्मनिःसारक, कृमिघ्न एवं कोथ प्रतिबन्धक है। पत्र की अपेक्षा मूत्र में कफ निःसारक गुण अधिक है। कफ को पतला करना एवं कास के वेग को कम करने में विशेष प्रभाव है।

अडूसा की सूखी पत्तियों के मोटे चूर्ण में थोड़ी धतूरे की पत्ती का चूर्ण मिलाकर धूम्रपान कराने से दमा का वेग शान्त होता है।

रासायनिक संगठन :

पत्र एवं मूलछाल में वासीन या वासीसीन नामक क्रिस्ट्रलीय ऐल्केलाइड पाया जाता है। यह काफी तिक्त होता है। इसका रासायनिक स्वरूप बहुत कुछ हरमल में पाये जाने वाले क्षारोद या ऐल्केलाइड से मिलता जुलता है। इसके अतिरिक्त पत्र में अढाटोडिक एसिड, उत्पल–तैल, वसा, रैजिन, एवं पीतरंजक तत्व पाया जाता है।

मुख्ययोग :

वासावलेह, वासारिष्ठ, वासापानक, वासादिवटिका, वासाचन्दनादितैल, वासाक्षार, च्यवनप्राश, जन्मघुंटी, वसन्तकुसुमाकर, गुलवन्यसादिक्वाथ।

268 इक्षुरक (तालमखाना)

द्रव्यनाम :–
संस्कृत .... इक्षुरक, कोकिलाक्ष,
हिन्दी .... तालमखाना
लैटिन .... **Asteracantta longifolia Nees.**

गण –(1) चरक ने शुक्रशोधन महाकषाय में इक्षुरक का उल्लेख किया है।

निरुक्ति–

इक्षुर– "इक्षुमिशुगन्धं रातीसुरः" अर्थात् पौधा गन्ने की गन्ध सदृश एवं तीक्ष्ण काटों वाला होता है।

कोकिलास :– कोकिलस्यासीव रक्तमशि पुष्पं मस्य" अर्थात् इसके पुष्प कोयल के नेत्र सदृश रक्तवर्ण के होते हैं।

स्वरूप परिचय :

तालमखाना के कंटीले, द्विवर्षायु 60 से0 मी0 से 1 मीटर ऊँचा होता है, काण्डईख के सदृश गन्ध एवं पर्वयुक्त, शाखारहित तलोत्थ, एवं प्रायः चतुष्कोणाकार सा कण्टकित होता है। पर्ण–विनाल, आयताकार–भालाकार, या अभिप्रासवत् तथा आधार की ओर उत्तरोत्तर कम चौड़ा एवं पत्र काण्ड पर्व पर 5–6 की संख्या में एक साथ होते हैं। पर्णकोण पर पीतवर्ण के तीक्ष्ण कांटे होते हैं। पुष्प–समूह में बैगनी रंग लिये हुये नीले रंग के होते हैं। फल–कोणीय, रेखाकार, लम्बगोल तथा अग्र की ओर नुकीला होता है। बीजछोटे–छोटे 4 से 8 तक की संख्या में होते हैं जिन्हें तालमखाना कहते हैं। मखाना इससे भिन्न द्रव्य है जो कमल फूल का है।

पुष्पकाल ....नवम्बर, जनवरी,
फलकाल..............................पुष्पकाल के बाद
प्रयोज्य अंग ....बीज, पंचांग, क्षार।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति-स्थान :

तालमखाना सम्पूर्ण भारत के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों के नमदार स्थानों पर सर्वत्र सुलभ हैं। जलाशयों के आस पास तथा धान के क्षेत्रों में यह विशेष रूप से पाया जाता है।

दोषअधिष्ठानभेदेन कर्मज्ञान(2)

गुण–स्निग्ध, पिच्छिल, रस–मधुर, तिक्त, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, बीज–वल्य, वाजीकर एवं यकृदुत्तेजक है।

आमयिकप्रयोग :

बीज–शुक्रशोधन, सन्तर्पर्ण, रुचिकारक, अश्मरी, आमवात, अरुचि एवं रक्तविकार को दूर करने वाला है। मूल का प्रयोग मूत्रल के रुप में किया जाता है। सुजाक एवं वस्तिशोथ में पंचांग का क्वाथ देते हैं।

रासायनिकसंगठन :–

बीजों में 23% पीताभवर्ण का स्थिर तैल, डायस्टेज, लाइपेज, प्रोटिएस आदि किण्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग – पौष्टिकचूर्ण

269 कालमेघ

द्रव्यनाम :– संस्कृत .... कालमेघ, यवत्तिक्ता
हिन्दी .... कालमेघ
लैटिन .... **Androgaphis Paniculata Nees.**

स्वरूप परिचय :

कालमेघ के, एकवर्षायु, बहुशाखीय 30 से 90 से0 मी0 भी ऊँचे पौध होते हैं। काण्ड–चौपहल, सपक्ष, प्रायः गाढ़े हरे रंग का होता है। पर्ण–आकार में भालाकार, चतुर्पर्स्मिक अभिमुख क्रम में मसृण, पत्रतट–अखण्डित, सवृन्त होते हैं। पुष्प–सवृन्त– काण्डज, श्वेताभ–बैगनी रंग के, पिरामिड आकार के होते हैं। फल–सामान्य, स्फोटी प्रकार का तथा द्विकोष्ठी होता है। फल की आकृति यव बीज सद्यश होता है इसी कारण इसे यवत्तिक्ता कहते हैं। पंचांग स्वाद मै उत्पन्न तिक्त होता है।

पुष्पकाल ....जुलाई, सितम्बर,
फलकाल............................पुष्पकाल के बाद
प्रयोज्य अंग ....पंचांग
मात्रा क्वाथ 2 से 4 तोला, चूर्ण 1 से 3 ग्राम,

प्राप्ति स्थान :

इसके पौधे समस्त भारत के उष्ण प्रदेशों में स्वयं जात या लगाये हुये पाये जाते हैं। बंगाल में विशेष रूप से मिलता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–दीपन, यकृदुत्तेजक, ज्वरघ्न, रक्तशोधक एवं कटुपौष्टिक है।

यकृत वृद्धि, जीर्णशोथ, विषमज्वर में यह विशेष लाभ करता है। बंगाली कविराज यकृतविकार एबंज्वर में इस बूटी को विशेष प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन :

पंचाग में कालमेघीन नामक तिक्तक्षत्व पाया जाता है। इसमें लेक्टोन, एन्ड्रोग्रेफोजिड तथा एन्ड्रोग्रेफाइड आदि तिक्त तत्व पाया जाता है। यही कारण है यह यकृत विकार में उत्तम औषधि है।

270 उटंगन

द्रव्यनाम :– हिन्दी .... उटंगन, चतुष्पत्री
लैटिन .... **Blepharis edulis Pers.**

स्वरूप परिचय :

उटंगन के गुल्मीय, बहुशाखीय एवं प्रसारी काण्ड होते हैं। पर्ण–प्रत्येक ग्रंथि पर चार–चार के चक्रों में, अण्डाकार, अण्डाकार–आयताकार तथा पत्रत्तट कुछ दन्तुर होते हैं। पुष्प– सफेद वर्ण के अवृन्त काण्डज क्रम में निकल रहते हैं। फलों– में चपटे श्वेत बीज होते हैं, इन्हीं बीजों को उटंगन बीज कहते हैं।

पुष्पकाल ....जुलाई, अगस्त,
फलकाल..............................शीतकाल,
प्रयोज्य अंग ....बीज,

प्राप्ति स्थान : इसकी विदेशी किस्म पंजाब, सिन्ध, ब्लूचिस्तान में पाई जाती हैं। भारत में इसकी अन्य किस्में पाई पाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान

इसके बीजों का प्रयोग हकीम लोग विशेष रूप से करते हैं। यह मधुर, स्निग्ध, बल्य एवं वाजीकर, मूत्रल एवं ज्वरघ्न है।

रासायनिक संगठन :

बीज में तिक्त क्रिस्ट्रलाईन तत्व, ब्लेफेरीन, केटिकाल एवं टैनीन, सेपोनीन आदि तत्व पाये जाते हैं।

सैरेयकादिवर्ग ERICACEAE

वर्गलक्षण :

इस वर्ग में वृक्ष एवं गुल्मक नुमा वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण–एकान्तर, अखण्डित, मसृण, अधःपृष्ठ श्वेताभ वर्ण के, पुष्प–नियमित, द्विलिंगी, पत्रकोणोंद्भूत, समूह में पुष्पवाहयदल संख्या में पांच, आभ्यन्तरकोष, दल 5, घण्टिकाकार, या

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नलिकाकार स्टेमेन्स संख्या में 10, गर्भाशय 5 से 10 कोष में एवं पुष्प प्रायः सुगन्धित सुन्दरवर्ण के होते हैं। इस वर्ग में हिमालय क्षेत्र में पाये जाने वाले वृक्ष पाये जाते हैं।

271 सैरेयक (सहचर)

द्रव्यनाम :– संस्कृत .... सैरेयक, कुरण्टक, कुरुवक,
हिन्दी .... सैरेयक, गढवाली–बुरांस
लैटिन .... (कुरुवक) **Rhododendron arboreum Sm.**

स्वरूप परिचय :

हिमालय क्षेत्र में उपलब्ध मध्यम आकार का वृक्ष है। पर्ण–आयताकार–भालाकार, मसृण, अखण्डित, पत्रका अधःपृष्ठ श्वेताभवर्ण का सवृन्त होते हैं। पुष्प–गुच्छों में बड़े घण्टिकाकार खिलने पर सुन्दर एवं रक्तवर्ण के होते हैं। इसके अतिरिक्त हिमालय की घाटियों में पुष्पभेद से श्वेत, रक्त, पीत, नील किस्में पाई जाती हैं जिन्हें **Rhododendron anthopogon D.Don.**(रक्तसैरेयक) **Rhododendron lepidotum wall.** (पीतसैरेयक) **Rhododendron campanulatum Don** (नील सैरेयक) कहते हैं।

पुष्पकाल .... अप्रैल, जुलाई,।
फलकाल................ पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग .... पत्र, पुष्प।

प्राप्ति स्थान :

उत्तराखण्डगढवाल, हिमाचलप्रदेश, जम्मूकश्मीर राज्य, सिक्किम, भूटान आदि क्षेत्रों में इसकी किस्में 1,500 मीटर की ऊंचाई से लेकर 3,600 मीटर की ऊंचाई तक सर्वत्र सुलभ हैं।

गुणकर्म :— रस–तिक्त, मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, वातपित्तशामक, वेदनाशमन, वल्य, कुष्ठ, कण्डू, रक्तदोषनाशक, कासघ्न।

वक्तव्यः— निघण्टुकारों न सैरेयक को पुष्प भेद से 4 प्रकार का माना है। संहिताग्रन्थों में भी सैरेयक के प्रकारों में काफी विवाद हैं। स्पष्ट रुप से अभी कहा नहीं जा सकता है । मेटेरियामेडिका में सैरेयक के जो वानस्पत्तिक नाम दिये हैं वे निम्न प्रकार से हैं ।

1. दासीकुरण्टक – **Barleria cristata** Linn.
2. कुरण्टक (पीतवासा) **Barleria prionitis** Linn
3. कुरबक **Balaria cristata** Linn
4. सैरेयक (श्वेतपुष्प)

सैरेयक, बाण, झिण्टी, कुरण्टक आदि द्रव्यों के विषय में विस्तृत चर्चा विस्तार भय से यहाँ पर सम्भव नहीं है। इन द्रव्यों के नामरुपपरिचय के सन्दर्भ में अनुसन्धान कार्य चल रहा है।

निर्गुण्डयादिवर्ग VERBENACEAE

वर्गलक्षणः—इस वर्ग में शाकीयक्षुप एवं गुल्मकनुमा बनस्पतियाँ पाई जाती हैं। पर्ण–अभिमुख, प्रायः साधारण, मसृण, पत्राग्र तीक्ष्ण, सपुष्प, द्विबीजपर्ण, संयुक्तदल, उपरिस्थगर्भाशय, पुष्प–छोटे, मञ्जरी में, पुष्पवाह्यकोष नलिकाकार, स्थायी, फल–एकबीजी, अथवा बहुबीजी एवं मांसल होते हैं। इस वर्ग में निर्गुण्डी, प्रियंगु अग्निमन्थ, भारंगी गम्भारी, आदि कतिपय द्रव्य आते हैं। इस वर्ग के द्रव्य प्रायः कटु, तिक्त, वातघ्न, कृमिघ्न, विषघ्न, कुष्ठघ्न, शूलघ्न, दीपन, एवं भग्नसंधान कर कर होते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

272 निर्गुण्डी (सम्भालू)

द्रव्यनाम :–	संस्कृत............	निर्गुण्डी, सिन्दुवार,
	हिन्दी.............	सम्भालू,
	लैटिन.............	**Vitex Negundo Linn.**

गणः—चरक ने विषघ्न, कृमिघ्न महाकषाय एवं सुश्रुत ने सुरसादिगण में निर्गुण्डी का उल्लेख किया है।

निरुक्तिः—

सिन्दुबार–सिन्धु गजमदं वारयति तिक्तत्वात्" सिन्दुवार श्वेतपुष्पः सिन्दुकः सिन्धुवारितः" अर्थात् वातादिरोगों को नाश करने में उपयोगी है।

स्वरूप परिचयः—

निर्गुण्डी के बहुशाखीय पर्णपाती गुल्म होते हैं। पर्ण–सपत्रक जिनमें पत्रक संख्या 3–5 होती है। पत्रक–प्रासवत् 2. 5 से0मी0 12.5 से0मी0 लम्बे, $\frac{20}{6}$ से0 मी0 चौड़े, लम्बाग्र, प्रायः सरल किन्तु कभी–कभी गोलदन्तुर होते हैं। पत्रकों की संख्या 3 से 5 तक होती है। पुष्प–छोटे –छोटे नीलाभ वैंगनी रंग लिये हुये श्वेत वर्ण के पुष्प–गुच्छों में या मज्जरीसदृशशाखाग्र में लगते हैं। फल–गोलाकार, मांसल, अष्ठिफल पकने पर धूसरवर्ण के होते हैं। पुष्प भेद से यह दो प्रकार का होता है। कभी–कभी बाजार में बीज रेणुका के नाम से निर्गुण्डी के बीज मिलते हैं।

पुष्पकाल.................जनवरी, मई,
फलकाल...............पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग.............पत्र, छाल, बीज, मूल ।

प्राप्ति स्थानः— सम्पूर्ण भारतवर्ष में इसके गुल्म गांवों के आसपास, बगीजों एवं खेतों के मेड़ों पर झाड़ी के लिये लगाये जाते हैं। नालों के आसपास इसकी झाड़ियाँ स्वयं जात पाई जाती है।

दोष अधिष्ठानभेदेन कर्मज्ञानः–

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, कटु, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–वातकफशामक, वेदनास्थापन शोथहर, व्रणशोधन, रोपण, केश्य, जन्तुघ्न, रोपण, दीपन, आमपाचन, यकृदुत्तेजक, कफघ्न, कासहर, शोथघ्न, भग्नसंधान–कर, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न ।

आमयिक प्रयोगः—

यह बात, कृमि, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहा के रोग गुल्म, अपची, क्षय, कण्डु, शूल, कास, वातव्यधि प्रदर आदि नाशक है। किसी भी प्रकार की बाहरी या भीतरी सूजन में सम्भालू के प्रयोग करने से लाभ होता है। शोथ में पत्रस्वरस या मूलक्वाथ मिलाते हैं। तथा पत्तियों को गरम करके सूजन पर बांधते है। आन्त्रकलाशोथ संधिशोथ, आमवात, वृषणशोथ आदि में निर्गुण्डी से लाभ होता है। संभालू के पत्रस्वरस से सिद्ध किया हुआ तैल पूयकर्ण में लाभ करता है । गर्भाशय सूजन एवं सूतिका ज्वर में खाने को देते हैं।

रासायनिक संगठनः—पत्र में रंगहीन उड़नशील तैल पाया जाता है । बीजों में चरपराराल, एक कषाय सेन्द्रीय अम्ल, क्षारोद तथा अल्पमात्रा में रज्जक द्रव्य पाया जाता हे।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोगः—निर्गुण्डी तैल, निर्गुण्डीकल्प,

वक्तव्यः—

शास्त्रकारों ने निर्गुण्डी के श्वेत एवं नील भेद से दो प्रकारों का उल्लेख किया है। धन्वन्तरि निघण्टुकार ने भी सिन्दुवार का श्वेत एवं नील भेदों का उल्लेख किया है। निर्गुण्डी के पर्यायों में शेफाली का उल्लेख किया है। वास्तव में यह विचारणीय विषय है लेखक के विचार से शेफलिका के नाम से हारसिंगार **Nyctanthes arbortristis** का प्रयोग शास्त्रसंगत है। निर्गुण्डी के मूल पर एक उपयोगी पराश्रयी द्रव्य पाया जाता है जिसे **Alectra Parasitica A.** var. chitrakutensis कहते हैं, जो गलित्कुष्ठ की कारगर औषधि है ।

273 प्रियङ्गु

द्रव्यनाम :-	संस्कृत................	प्रियङ्गु, गन्धप्रियंगु, फलिनी,
	हिन्दी................	प्रियङ्गु, दईया,
	लैटिन................	**Callicarpa Macrophylla** vahl.

गणः— चरक ने पुरीषसंग्रहणीय, मूत्रविरजनीयगण में तथा सुश्रुत ने अज्जनादिगण, प्रियङ्ग्वादिगण में प्रियङ्गु का उल्लेख किया है।

निरुक्तिः–

प्रियङ्गुः–प्रियंगच्छति" स्व नामख्यात सुगन्धलता" अर्थात् इसकी लतासदृश गुल्म फल–पुष्प सुगन्धित एवं मन के प्रिय होती है।

फलिनी— इसके गुल्म फलों से विशेष आवृत होने से फलिनी गन्धप्रियङ्गु धान्यविशेष द्रव्य होने से इसे गन्धप्रियङ्गु कहते हैं।

स्वरूप परिचयः—

प्रियङ्गु के बहुशाखीय गुल्म होते हैं। शाखायें झुकी हुई एवं अनियमित रुप से झुकी हुई होती है। काण्ड, शाखा एवं पर्ण–श्वेताभ सघन रोमिल, पर्ण–अण्डाकार, कभी–कभी लट्वाकार, प्रासवत् तथा लम्बाग्र पत्रतट–गोल–दन्तुर, सवृन्त 12 से0 मी0 से 25 से0 मी0 तक लम्बे गन्धयुक्त होते हैं। पुष्प–पत्रकोणोद्भूत द्विबिभक्त, मुण्डाकार, छोटे–छोटे हल्के गुलावी रंग के सघन गुच्छों में खिलते हैं। फलमांसल, श्वेतवर्ण का कौणीधान्य सदृश बीज वाला सुगन्धित गुच्छों में होते हैं। इन फलों के गुच्छों से डांलियां झुक जाती है एवं भार से ये डालियाँ झुकी रहती है ।

पुष्पकाल........................मार्च, जून।
फलकाल.......................सितम्बर, अक्टूबर।
प्रयोज्य अंग....................फल (बीज)

प्राप्ति स्थानः—

इसके गुल्म हिमालय की तराई में उत्तराखण्ड, कुमांयु, देहरादून, हिमाचल प्रदेश, जम्मूकश्मीर आदि क्षेत्रों में 1,800 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः 2

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण –गुरु, रुक्ष, रस–तिक्त कषाय, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–त्रिदोषशामक, दाहप्रशमन, वेदनास्थापन, दीपन, अनुलोमन, स्तम्भन, रक्तशोधक, मूत्रविरजनीय, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, त्वग्दोषहर, ।

आमयिक प्रयोगः—यह भ्रम, रक्तपित्त, पित्तपिकार, मूर्च्छा, दाह, ज्वर, एवं मुखजड़ता को नष्ठ करता है, प्रियङ्गु का प्रयोग वेदनायुक्त कुपचन, आमाशयक्षत एवं अर्बुद में करते हैं।

रासायनिक संगठनः— फलों में सुगन्धित उड़नशील तैल एवं कैलिकार्पोन नामक तत्व पाया जाता है।

मुख्ययोगः—प्रियङ्गवादि तैल ।

वक्तव्यः—प्रियङ्गु के सम्बन्ध में अब भी मतभेद है। भावप्रकाश ने प्रियङ्गु एवं गन्धप्रियङ्गु दो भेदों का उल्लेख किया है। कगुंगधान्य का पर्याय प्रियङ्गु होने से अधिक भ्रम हो गया है। वास्तव में कडगुधान्य से स्वरुप की समानता होने से प्रियंगुनाम दोनों के लिये प्रयुक्त किया गया है। बाजार में प्रियंगु के नाम से निम्न द्रव्य मिलते हैं ।

बम्बई में प्रचलित प्रियङ्गु **Prunus Mahaleb.** के फलों का प्रयोग किया जाता है। दक्षिण के कविराज **Aglaia roxburghiana** वृक्ष के फलों का प्रयोग प्रियङ्गु के नाम से करते हैं। फलिनी, महिलाह्वया, कृशांङ्गी गन्धफला आदि कतिपय पर्यायों की समानता विशेष रुप से **Callicarpa macrophylla** में मिलती है ।

अतः अधिकतर विद्वानों ने इसे शास्त्रीय प्रियङ्गु माना है ।

294 अग्निमन्थद्वय (अरणी)

द्रव्यनाम :–

संस्कृत.............	बृहद्र–अग्निमन्थ, तर्कारी, गणिकारिका
हिन्दी..............	वकार, अरणी, अगेथु,
लैटिन..............	**Premna integrifolia** Linn
लघुअग्निमन्थ...........	**Clerodendrum phlomidis** Linn f.

गणः—चरक ने अनुवासनोपग, शोथहर, शीतप्रशमन महाकषाय तथा सुश्रुत के वरुणादिगण, वीरतर्वादिगण, महत्पञ्चमूलगण तथा वातसंशमन वर्ग में अग्निमन्थ का उललेख है।

निरुक्तिः— अग्निमन्थः अग्नये मध्यतेसौ स्वनाम–प्रसिद्ध वृक्षः" अर्थात् जिसके गणिकारिका शब्द भी अग्निबोधक है।

स्वरूप परिचयः—

अरणी के मध्यम आकार के वृक्ष पाये जाते हैं। इसके शाखा एवं तने पर कांटे होते हैं। पर्ण–दुर्गन्ध युक्त प्रायः लट्वाकार, कभी–कभी अण्डकार, मृदुरोमश होते है। पुष्प–पत्रकोणोद्भूत, छोटे, गुच्छों में श्वेताभ वर्ण के होते हैं। फल–गोल एवं अग्रभाग कुछ दवा होता है। इसके अतिरिक्त इसकी छोटी किस्म होती है। जिसे लघुअरणी **Clerodendrum Phlomidis fem** कहते हैं। इसके झाड़ीदार वहुशाखीय गुल्म होते हैं। पर्ण–अण्डाकार, लट्वाकार होते हैं। पुष्प–श्वेतवर्ण के मज्जरीसद्यश एवं गुच्छों में होते हैं ।

पुष्पकाल....................सितम्बर, जनवरी, मार्च।
फलकाल...................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग..................मूल, पत्र, छाल ।

प्राप्तिस्थानः—वृहद अग्निमन्थ के वृक्ष समुद्र के तटवर्तीय प्रदेशों में विशेष रुप से पाये हैं। इसके अतिरिक्त इसकी अन्यकिस्मिें शिवालिक वनक्षेत्र में पाई जाती है। जिसे **Premna latifolia** एवं **Premna barbeta** कहते हैं। लघु अग्निमन्थ (टेकार) की झाड़ियाँ, उत्तरप्रदेश, बिहार आदि सभी प्रान्तों में पाई जाती है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः—2

गुण–रस, लघु रूक्ष–तिक्त, कटु, कषाय, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधान कर्म– कफवातशामक, वेदनास्थापन, शोथहर, दीपन, पाचन, अनुलोमन, कटुपौष्टिक, रक्तशोधक, कफघ्न, प्रमेहघ्न, अनुवासनोपग ।

आमयिक प्रयोगः—अग्निमन्थ का वात, कफ, शोथप्रधान रोगों में विशेषरुप से प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त पाण्डु, अग्निमांद्य आदि विकारों उपयोगी है।

मुख्ययोगः—वृहत्पञ्चमूल, दशमूलतैल, दशमूलघृत, दशमूलक्वाथ, दशमूलारिष्ठ, च्यवनप्राश ।

295 भांङर्गी (भारंगी)

द्रव्यनामः–	संस्कृत...............	भारङ्गी भार्गी, ब्राह्मणयष्ठिका ।
	हिन्दी...............	भारङ्गी,
	लैटिन...............	**Clerodendron serratum** (Linn) Moon.

गणः—सुश्रुत ने पिप्पल्यादिगण में भारंगी का उल्लेख किया है।

निरूक्ति—**भार्गी**–भृज्जति भार्गी स्वनाम ख्यात क्षुपः" अर्थात् यह कास आदि रोगों का दमन करता है। निघण्टुकारों ने फज्जी कासघ्नी, अंङ्गाखल्ली आदि पयार्य भी इसके लिये दिये हैं।

स्वरूप परिचयः—

इसके बहुवर्षायु गुल्म होते हैं। काण्ड पर से अनियमित क्रम में चौपहल शाखायें निकलती हैं। पर्ण –7.5 से0 मी0 20 से0 मी0 तक लम्बी, रेखाकार, आयताकार, अण्डाकार, अभिलेखाकार या अभिप्रासवत् पत्रतट–तीक्ष्ण–दन्तुर, पर्ण–आमने सामने या तीन–तीन पत्तियाँ प्रति चक्र में होती है। पुष्प–नीलाभ सफेद रंग के होते हैं। ये पुष्प शाखाग्रों पर गुच्छों में एवं सुगन्धित होते हैं। फल–मांसल परस्पर संयुक्त जामुनी कालेरंग के होते हैं।

पुष्पकाल.....................मई, जून ।
फलकाल...................जुलाई, अगस्त ।
प्रयोज्य अंग.................मूल, पंचांग ।

प्राप्तिस्थान—इसके क्षुप प्रायः समस्त भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में पाये जाते हैं। विशेषकर यह हिमालय की तराई में उत्तराखण्ड, देहरादून, कुमांयू, बुन्देलखण्ड आदि क्षेत्रों में पाया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः 2

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, कटु, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण प्रधानकर्म –कफवात शामक, शोथहर, व्रण पाचन, दीपन, अनुलोमन, ज्वरघ्न, कासघ्न, श्वास–कासहर, स्वेदजनन ।

आमयिक प्रयोगः—भारंगी का प्रयोग कास, श्वास, शोथ, व्रण, कृमि, दाह, ज्वर, गुल्म, रक्तविकार एवं पीनस आदि रोगों किया जाता है। कण्ठशोथ एवं कफयुक्त-दमा में सोंठ एवं वच के साथ भारंगी मूल का सेवन कराते हैं।

रसायनिकसंगठनः—मूल में रालीय, वसामय तथा क्षारोद स्वभाव के तत्व पाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोग:—भाङ्र्गीगुड़, भाङ्गयादिक्वाथ, दशमूलारिष्ठ, कनकासव,

वक्तव्य:—

आजकल स्थानिक फार्मिसियों में भारंगी के नाम से भिन्न-भिन्न द्रव्यों का प्रचलन है। उत्तरप्रदेश, विहार, मध्यप्रदेश आदि कतिपय प्रान्तों में भारंगी के नाम से **Gardenia turgida** Roxb एवं **Gardenia latifolia** की छाल का व्यवहार होता है जिसे शास्त्रीय करहाटक कहते हैं । कुछ क्षेत्रों में **Picrasma quassioides** Bennet की छाल का प्रयोग किया जाता है । लेखक के विचार से वामनहाटी **Clerodendron siphonanthus** की साम्यता शास्त्रीय भाङ्र्गी में मिलती है । अतः इसका उपयोग प्रतिनिधि द्रव्य के रुप में भी किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य वातनाशक द्रव्य पाया जाता है जिसे भण्डीर **Clerodendron infor tunatum** कहते हैं ।

296 गम्भारी (गंभार)

द्रव्यनाम:— संस्कृत.................. गम्भारी, श्रीपर्णी, काश्मरी ।
हिन्दी.................. गंभार, गम्हारी ।
लैटिन.................. **Gmelina arborea** Linn.

गण:—चरक ने विरेचनोपग, दाहप्रशमन एवं श्वयथुहर महाकषाय में तथा सुश्रुत के महत्पञ्चमूल एवं सारिवादिगण में काश्मरी का उल्लेख है ।

निरुक्ति:—काश्मरी-कृश्यति तनूकरोति काश्मरी" अर्थात् यह शरीर को कृश करता है ।

स्वरूप परिचय:—

गम्भार के वृक्ष मध्यम ऊँचाई के होते है जिसकी टहनियाँ श्वेताभ एवं मसृण होती है। पर्ण-10 से0 मी0 22.5 से0 मी0 लम्बे रुपरेखा में चौड़े लट्वाकार, प्रायः हृद्वत, लम्बाग्र सवृन्त, अभिमुख क्रम में होते हैं। पुष्प -प्रायः पर्णकोणोद्भूत, सगुच्छ मज्जरीसद्यश, घण्टिकाकार या नलिकाकार पीताभ वर्ण के होते हैं। फल-अण्डाकार या आयताकार तथा पकने पर पीला तथा स्वाद में मधुर कषाय, मांसल एवं चर्मिल होता है ।

पुष्पकाल......................मार्च, अप्रैल ।
फलकाल.....................जून, जुलाई ।
प्रयोज्य अंग.....................मूलत्वक्, छाल, फल ।

प्राप्तिस्थान:—गम्भारी के वृक्ष भारतवर्ष के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में विशेषतः शिवालिक वनक्षेत्र, देहरादून, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश आदि राज्यों में पाया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान:— 2

गुण-गुरु, रस-तिक्त, कषाय, मधुर विपाक -कटु, वीर्य-उष्ण, (फल-शीतवीर्य) प्रधानकर्म- त्रिदोषशामक, फल-तृष्णाशामक, दीपन, अनुलोमन, हृद्य रक्तपित्तशामक, सन्धानीय, बल्य, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, दाहप्रशमन छाल-शोथहर, कटुपौष्ठिक ज्वरघ्न, विषघ्न, पत्तियाँ-शीतल, स्नेहन, मूत्रल ।

आमयिक प्रयोग:—इसके छाल का प्रयोग दाह, ज्वर, रक्तविकार, भ्रम, अर्श, शूल एवं वातविकारों में किया जाता है नव्यमत से गम्भारी के कोमल पत्र शीतल, स्नेहन, फल तृषाहर, दाहप्रशमन, और स्नेहन, मूल-तिक्त, दीपन और अनुलोमन है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठन:—जड़ में पीतवर्ण का गाठातैल, राल, अल्पमात्रा में एक ऐल्केलांइड तथा वेंजोइक एसिड एवं क्षारतत्व एलीयतत्व, कषायद्रव्य, एवं शर्करा आदि तत्व पाये जाते है।

मुख्ययोग:—वृहद्र पच्चमूल, दशमूलक्वाथ, दशमूल तैल, दशमूलधृत, दशमूलारिष्ठ, च्यवनप्राश, चन्दनासव, उशीरासव ।

277 शाक (सागौन)

द्रव्यनाम :–	संस्कृत..................	शाक, साग, खरपत्र ।
	हिन्दी..................	सागौन, सागवन ।
	लैटिन..................	**Tectona grandis** Linn

गण:—सुश्रुत ने सालसारादिगण में सागौन का उल्लेख किया है।

निरुक्ति:—शाक–मसृण कर्कशोदर पृष्ठ वृहद्धलो वृक्ष विशेषः" अर्थात् इसका पता कर्कश बड़ा दल वाला होता है,। इसी कारण इसे खरपत्र कहते हैं।

गृहद्रुम:—काष्ठ का प्रयोग गृहनिर्माण कार्य हेतु किया जाता है इसलिये इसे गृहद्रुम भी कहते हैं ।

स्वरूप परिचय:—

सागौन के विशाल पर्णपाती वृक्ष होते हैं। इसके पर्ण बहुत–लम्बे चौड़े, उपर से खुरदरे एवं अधःपृठ श्वेताभ, मृदुरोमिल होता है। पुष्प– श्वेताभ वर्ण के गुच्छों में, फल–छोटे व्यास के गोलाकार कोषीय बीज–रोमिल कठोर होता है ।

पुष्पकाल....................जुलाई, अगस्त ।
फलकाल..................शीतकाल ।
प्रयोज्य अंग.................छाल, बीज, पुष्प ।

प्राप्ति स्थान:—इसके वृक्ष दक्षिण तथा मध्यभारत में सर्वत्र पाये जाते हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : 2

यह कषाय, शीतवीर्य रक्त एवं पित्तशामक, पुष्प–कषाय, तिक्त, रुक्ष, विशद, लघु, वातप्रकोपक, प्रमेह एवं कफ और पित्तशामक, शोणितस्थापन, छाल–पित्तनाशक, शोथघ्न एवं कृमिघ्न है। छाल या काष्ठ का शोथ एवं शिरःशूल में लेप किया जाता है ।

रासायनिक संगठन:—इसके काष्ठ में क्विनीन सदृश पदार्थ टेक्टोकिवनीन, उड़नशील तैल, एवं राल आदि तत्व पाये जाते हैं।

तुलस्यादिवर्ग LABIATAE

वर्गलक्षण:—इस वर्ग में शाकीय क्षुप एवं झाड़ीदार गुल्म पाये जाते हैं। इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः सुगन्धित मृदु एवं एकवर्षायु होती है। पर्ण– अभिमुख, उपपत्ररहित, सुगन्धित, द्विबीजपर्ण, पुष्प–छोटे–छोटे द्विओष्ठीय, श्वेत, रक्त, नील, वर्ण के पुंकेशर 4, बीजकोश–4 खण्डवाला एवं प्रत्येक खण्ड में एक –एक बीज वाला होता है। बीजों को जल में

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भिगोने से पिच्छिल लुआव निकलता है। इस वर्ग में तुलसी, पुदीना, वन्ययवानी, द्रोणपुष्पी, जूफा आदि उपयोगी वनस्पतियाँ मिलती है। इस वर्ग के द्रव्य प्रायः कफघ्न, ज्वरघ्न, दीपन, पाचन, विषघ्न होते हैं।

278 सुरसा (तुलसी)

द्रव्यनामः—

संस्कृत.................	सुरसा, तुलसी, भूतहा, सुरभी,
हिन्दी..................	तुलसी ।
लैटिन.................	**Ocimum Sanctum** Linn .

गण:—सुश्रुत ने सुरसादिगण में सुरसा का उल्लेख किया है।

निरुक्ति:—सुरसा–सुखेन रस्यते आस्वाद्यते इति सुरसा" अर्थात् आसानी से इसके रस का सेवन किया जाता है ।

बहुमञ्जरी:—लम्बी एवं सुन्दर मञ्जरी होने से इसे बहुमञ्जरी कहते हैं। किटाणूनाशक होने से इसे भूतघ्नी एवं अपेतराक्षसी कहते हैं। ।

स्वरूप परिचयः–

तुलसी के कोमल काण्डीय छोटे पौधे होते हैं। काण्ड बहुशाखीय मृदु रोमिल, पर्ण–सुगन्धित सर्वत्र लट्वाकार, पुष्प–मञ्जरी में शाखाग्रों पर 12.5 से 15 से० मी० लम्बी होती है। डालियाँ कृष्ण एवं श्वेत भेद से दो प्रकार की होती है ।

पुष्पकाल.................अगस्त, सितम्बर,
फलकाल.................सितम्बर, अक्टूबर ।
प्रयोज्य अंग...............पत्र, बीज, पंचांग,

प्राप्ति स्थान:—

तुलसी सर्वत्र सुलभ है। इसके पौधे बगीचों एवं घरों में सर्वत्र लगाये हुये पाये जाते है । इसकी अन्य कई किस्में पाई जाती है जिन्हें **Ocimum basilicum** Linn. **Ocimum gratissimum** कहते हैं । जंगलों में अन्य किस्में भी पाई जाती हैं जिसमें **Ocimum americanum** Linn,वृन्दातुलसी कहते हैं । कर्पूरतुलसी को ओसिमम क्लेरिमेन्डेलिकम कहते हैं।

दोषअधिष्ठानभेदेन कर्मज्ञान:—

गुण–लघु, रूक्ष, रस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, बीज–पिच्छिल एवं शीतल, कर्म –कफवातशामक, जन्तुघ्न, दुर्गन्धनाशक, दीपन–पाचन, अनुलोमन, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, रक्तशोधक, स्वेदजनन, शोथहर, बीज–मूत्रल एवं बल्य हैं।

आमयिक प्रयोग:—तुलसी पत्र स्वरस एवं क्वाथ का उपयोग प्रतिश्याय वातश्लैस्मिक ज्वर एवं विषमज्वर में किया जाता है। कतिपय रोगों में तुलसी स्वरस अनुपान के रूप प्रयुक्त किया जाता है। विषमज्वर में तुलसी एवं कालीमिर्च के साथ देने से विशेष लाभ होता है । आंतों पर तुलसी का वातप्रशमन एवं कृमिघ्न प्रभाव होता है। यह पार्श्वशूल, विष, कृमिविकार, कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र आदि विकारों में तुलसी उपयोगी है।

रासायनिक संगठन:— पत्तियों में पीताभ हरितवर्ण का उत्पलतैल पाया जाता है। जो शुष्क होने पर क्रिस्टलीय हो जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोगः— तुलस्यादियोग, देशीचाय, ज्वरघ्नीवटी ।

वक्तव्यः—इसकी जातियों में अन्य कतिपय किस्में पाई जाती है जिनमें पर्णास, फणीज्भक, अर्जक, मरुबक आदि द्रव्य मुख्य है,। मरबक को **Majorana hor-tensis** Moench कहते हैं। इसकी खेती की जाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में इसके वन तुलसी भी कहते हैं ।

279 पूतिहा (पुदीना)

द्रव्यनामः—

संस्कृत...............	पूतिहा,
हिन्दी................	पुदीना,
लैटिन................	**Mentha arvensis** Linn.

स्वरूप परिचयः—

पुदीना के बहुवर्षायु क्षुप प्रायः नमदार स्थानों पर पाये जाते हैं। काण्ड प्रसरणशील एवं कुछ जमीन से उठा हुआ होता है। पर्ण–सुगन्धित, हतितवर्ण के एवं तैलीय ग्रन्थि वाले होते हैं। इसकी अन्य जंगली किस्म भी पाई जाती है। जिसे **Mentha longifolia** Huds कहते हैं। जोकि हिमालय में पाई जाती है। अन्य किस्मों में **Mentha piperita** Linn. इसकी काफी मात्रा में खेती की जाती है ।

पुष्पकाल.................जून, जुलाई।
फलकाल................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग.............पंचांग, पत्र ।

प्राप्ति स्थानः— भारतवर्ष में प्रायः पुदीना लगाया हुआ पाया जाता है। हिमालय की निचली घाटियों में यह स्वयंजात होता है ।

गुणधर्मः 1

यह कटु रोचन, दीपन, उदरशूलनाशक, उल्टी को रोकनेवाला, अफारा एवं कृमिनाशक है। यह वातप्रशमन, आर्तवजन, संकोचविकास प्रतिबन्धक एवं उत्तेजक है। यह अजीर्ण, कुपचन, उदरशूल. आध्मान एवं वमन में लाभ करता है। प्रसूतिज्वर में पूदीना स्वरस बहुत लाभ करता है। कफज्वर, अतिसार, वातरोग एवं अश्मरी में भी स्वरस देने से लाभ होता है।

रासायनिक संगठनः— इसमें सुगन्धित उत्पलतैल, एवं मैन्थोल आदि तत्व पाये जाते हैं ।

वक्तव्य :— पिपरमेन्ट (**Mentha piperata** Linn.) यह उत्तरी अमेरिका, यूरोप तथा एशिया के वन्य क्षेत्रों में स्वयंजात होता है। भारत में इसकी खेती की जाती है। पुदीना मूलतः पश्चिमी हिमालय एवं तिब्बत आदि क्षेत्रों का आदिवासी पौधा है। शालिग्राम निघण्टु कर्पूरादिवर्ग में इसका उल्लेख है।

280 बन्ययवानी

द्रव्यनामः—

संस्कृत.............	वन्ययवानी
हिन्दी.............	बनअजवइन ।
लैटिन.............	**Thymus Serpyllum** Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप परिचयः–

इसके सुगन्धित, प्रसरणशील एकवर्षायु क्षुप होते हैं। ये क्षुप पथरीली जमीन पर फैलते हैं। काण्ड–मृदु, पर्ण–अभिमुख छोटे–छोटे चने के पत्र सद्यश सुगन्धित होते हैं। पुष्प–गुच्छों में गुलाबीवर्ण के होते हैं । बीज वारीक कृष्णवर्ण के ।

पुष्पकाल................जून, जुलाई ।
फलकाल...............पुष्प काल के बाद ।
प्रयोज्य अंग.............पंचांग

प्राप्ति स्थान:—इसके क्षुप उत्तराखण्ड हिमालय में 2,400 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,600 मीटर की उँचाई तक सर्वत्र सुलभ है ।

गुणधर्मः

कटु, रोचक, दीपन, पाचन, उदरशूलनाशक, कृमिघ्न, अफारानाशक, उल्टी रोकने वाला है। इसके गुण अजवाइन से मिलता है। शास्त्रकारानों ने चार प्रकार की यवानी का उल्लेख किया है। यथा–यवानी, अजमोदा, खुरासानी अजवाइन एवं बन्ययवानी, अधिकतर विद्वानों ने **Thymus serphllum** का बन्ययवानी माना है ।

रासायनिक संगठनः पत्रों में सुगन्धित उड़न शील तैल एवं थाईमोल नामक तत्व पाया जाता है।

मुख्ययोगः अमृतधारा, मुख्य है। अन्यकतिपय–बालामृत आदि योगों में थाईमोल का प्रयोग किया जाता है ।

281 द्रोणपुष्पी (गुमा)

द्रव्यनामः– संस्कृत................ द्रोणपुष्पी, फलेपुष्मा ।
हिन्दी................. गुमा,
लैटिन................ **Leucas cephalotes** Spreng

गण:— चरक ने सूत्रस्थान 29 एवं सुश्रुत ने शाकवर्ग में द्रोणपुष्पी का उल्लेख किया है।

स्वरूप परिचयः–

द्रोणपुष्पी एकवर्षायु, मृदु, सीधा एवं वहुशाखीय वनस्पति है। काण्ड–छतदार, चौकोर, खुरदरा, रोमिल। पर्ण–7.5 से0 मी0 लम्बी रेखाकार, लम्ब कुण्ठिताग्र, किनारे सरल या गोलदन्तुर, पुष्प–गोल, चक्राकार, गुच्छों में श्वेतवर्ण के रोमिल होते हैं। इसकी कई किस्में पाई जाती हैं।

पुष्पकाल............अगस्त. सितम्बर ।
फलकाल............पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग............पंचांग ।

प्राप्ति स्थानः–गूमा के पौध समस्त भारतवर्ष के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में विशेषकर वर्षा काल के बाद सर्वत्र खेतों में सुलभ है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान 2

गुण–गुरु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, लवण, मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–ज्वरनाशक, पित्तशोधन, रक्तशोधक, विषघ्न, आर्तवजनन, वातशमन, कफघ्न ।

आमयिक प्रयोगः–यह अग्निमांद्य, ज्वर एवं कामलानाशक है। ज्वर में गूमास्वरस के साथ शु0 टंकण एवं मधु के साथ देने से लाभ होता है। आध्मान एवं उदरशूल में स्वरस पिलाते हैं। शिरःशूल में इसका नस्य देते हैं ।

रासायनिक संगठनः–इसमें अल्पमात्रा में उड़नशील तैल तथा ऐल्केलाइड पाया जाता है ।

282 जूफा (दयाकुञ्जी)

द्रव्यनामः–	संस्कृत..................	दयाकुञ्जी ,
	हिन्दी–यूनानी............	जूफायाविस, लद्दाखी–डियांकू
	लैटिन....................	**Nepeta longibractea, Hyssopus officinalis Linn.**

स्वरूप परिचयः

जूफा के एक वर्षायु क्षुप होते हैं। काण्ड मृदु, रामिल एवं सुगन्धित, पर्ण–साधारण, प्रायः सरलधारवाली एवं अभिमुख क्रम में स्थित होते हैं। लद्दाखी एमची इस वनस्पति को डियांकू कहते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रन्थकारों ने **Hyssopus officinalis** एवं **Nepeta** की किस्मों का जूफा नाम से उल्लेख किया है ।

पुष्पकाल....................सितम्बर, अक्टूबर ।
फलकाल...................पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग................पंचांग, पुष्प ।

प्राप्ति स्थान:— डियांकू मुख्यरूप से लद्दाखक्षेत्र के खरदुंगला, एवं टंगलंगला, लाहुलस्पीती के वरालाचा पास, आदि स्थानों में पाया जाता है। भारत में जूफा का आयात फारस आदि देशों से होता है ।

गुणधर्मः

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, कटु विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफ वातशामक, पित्तसारक, लेखन, श्वास–कासनाशक, प्रतिश्याय, कृच्छ्रश्वास, कफ–कास आदि कमें इसका क्वाथ या शर्वत का प्रयोग किया जाता है। हकीम लोग जूफा-माविस का विशेष रूप से उपयोग करते हैं।

वक्तव्यः–जूफा के नाम से वाजार में कई किस्म के द्रव्य मिलते हैं। ग्रन्थकारों ने भी भिन्न–भिन्न वानस्पतिक नाम जूफा के लिये दिया है, तथा जिसका आयात भारत में फारस आदि देशों से किया जाता है। लेखक के विचार से लद्दाख क्षेत्र में उपलब्ध डियांकू उपयोगी वनस्पति है जोकि शास्त्रीय जूफा है ।

ईसवगोलादिवर्ग PLANTAGINACEAE

वर्गलक्षणः–इसवर्ग में शाकीय एकवर्षायु वनस्पतियाँ पाई जाती हे। इसवर्ग की वनस्पतियों के काण्ड मृदु, पर्ण–तलोत्थ, संयुक्तदल लम्बी–रेखाकार, आयताकार होते हैं। पुष्प–मज्जरी में, पुष्पवाह्य कोष एवं आभ्यन्तरकोष के दल 4–4, पुंकेशर 4, फल विदारी, बहुवीज में एवं पानी में भिगोने पर लुवावदार । इस वर्ग में मुख्यरुप से औषधोपयोगी द्रव्य ईसवगोल है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

283 ईसबगोल

द्रव्यनामः–	संस्कृत............	अश्वकर्णबीज, स्निग्धजीरक ।
	हिन्दी...............	ईसवगोल ।
	लैटिन............	**Plantago ovata Forsk.**

स्वरूप परिचयः–

ईसवगोल एक वर्षायु शाकीय वनस्पति है। काण्ड 60 से0 मी0 तक लम्बा, तलोत्थ, मृदु रोमावृत, पर्ण–लम्बी–रेखाकार तथा अग्र की ओर नुकीला या कमचौड़ी फलक में तीन स्पष्ट नाड़ियों में होती है, पुष्पदण्ड–लम्बा मञ्जरी में श्वेताभ पुष्प होते है, बीज–वारीक–चपटे कठोर, नौकाकार जीरक सद्यश एवं पानी में डालने पर लुवावदार होता है, बीजों की भूसी भी श्वेत–मृसृण एवं स्निग्ध होती है। इसकी हिमालय में स्वयं जात कई किस्में पाई जाती हैं जिनमें **Plantago Magor. P. lanceolata L.** आदि मुख्य हैं ।

पुष्पकाल................ फरवरी, मार्च ।
फलकाल............... पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग...............बीज, भूसी ।

प्राप्ति स्थानः

यह फारस का आदिवासी पौधा है। भारत के विभिन्न प्रान्तों विशेषतः गुजरात के सिद्धपुर नामक स्थानों पर इसकी खेती की जाती है। अन्य प्रदेशों में भी इसकी खेती की जा रही है। इसवगोल की कतिपय वन्य किस्में हिमालय की घाटियों में स्वयंजात होते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

गुण – स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल, रस–मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–स्नेहन, मार्दवकर, अतिसार–प्रवाहिकानाशक, भूसी–बल्य, मृदुसारक ।

आमयिक प्रयोग :

इसवगोल का प्रयोग प्रायः एकौषाधि के रूप में किया जाता है । दौर्वल्य एवं विवन्ध युक्त अवस्थाओं में यह एक उत्तम सहायक औषधि है । यह मल की मात्रा बढ़ाकर विवन्ध में लाभ करता है । जीर्णअतिसार, प्रवाहिका, शुष्ककास, ज्वर एवं तृषा में इसका उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन :–

बीजों में काफी मात्रा में म्युसिलेज, ऐल्ब्युमिन तत्त्व, फाइस्टास्टेरोल नामक ग्लूकोसाइड पाया जाता है ।

पुनर्नवादिवर्ग NYCTAGINACEAE

वर्गलक्षण :

इस वर्ग में शाकीयक्षुप, प्रसरणशील पौधे एवं गुल्म पाये जाते हैं। पर्ण–सादे, अभिमुख, अनियमित आकार में सवृन्त, द्विबीजपर्ण, पुष्प–सादे, छोटे, पर्णकोणोद्भूत, पुंकेशर–अनियमित, बीजकोश उपरिस्थ, एक खंड वाला, होता है । इस वर्ग में औषधोपयोगी द्रव्य पुनर्नवा मुख्य है, तथा ये द्रव्य प्रायः भूत्रल, शोथघ्न, वातप्रशमन, एवं यकृतविकार नाशक होते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

284 पुनर्नवा (गदहपूरना)

द्रव्यनाम :– संस्कृत .... पुनर्नवा, वर्षाभ्रू, कठिल्लक ।
हिन्दी .... गदहपूरना, बिषखपरा,
लैटिन .... **Boerhaavia diffusa** Linn.

गण – (1) चरक ने स्वेदोपग, अनुवासनोपग, कासहर वयःस्थापन महाकषाय तथा सुश्रुत ने विदारीगन्धादिगण में पुनर्नवा का उल्लेख किया है ।

निरुक्तिः

पुनर्नवाः– पुनरेवाछिन्नत्वात् नवं करोति इति" स्वनामख्यात पत्रशाकविशेषः" अर्थात् इसे काटने पर पुन नवीनशाखाओं को धारण करता है या इसके सेवन से शरीर नयाँ होता है ।

वर्षाभूः वर्षाकाल में यह विशेष रूप से पाया जाता है इसलिये इसे वर्षाभू कहते है । शोथनाशक एवं मूत्रल होने से इसे शोथघ्नी कहते हैं ।

अरुणा–रक्ताः– काण्ड रक्त होने से अरुणा कहते हैं ।

श्वेता – इसके अन्य प्रकार का मूल श्वेत होता है इसी कारण श्वेता नाम कहते हैं ।

स्वरूप परिचयः

पुनर्नवा के परिसृत काण्ड वाले पौधे होते हैं । मूल प्रायः बहुवर्षायु एवं वर्षाकाल के बाद नये पौध निकलते हैं । पर्ण–अभिमुखक्रम में, प्रत्येक पर्व की दोनों पत्तियाँ एक छोटी तथा दूसरी बड़ी होती हैं, काण्ड रक्ताभ वर्ण का होता है । पुष्प छोटे–छोटे, श्वेताभ या हलके गुलाबी रंग के एवं ये पुष्प छत्रक सम गुच्छकों के रूप में होते हैं । फल छोटे $\frac{1}{4}$ इन्च लम्बे एवं बारीक बीज वाले होते हैं । मूल 30 से0 मी0 तक लम्बा, ताजी अवस्था में अंगुली के बराबर मोटी एवं स्वाद में कुछ तीखी और उल्केशकारी होती है ।

पुष्पकाल ....अगस्त, सितम्बर ।
फलकाल .... पुष्प के साथ 2 ।
प्रयोज्य अंग ....मूल, पंचाग ।

शास्त्रकारों ने श्वेत पुनर्नवा के नाम से दूसरी वनस्पति का भी उल्लेख किया है जिसे **Trianthema portulacastrum** Linn. कहते हैं । इस के पौधे वर्षाकाल के बाद नमदार स्थानों पर सर्वदा पाये जाते हैं । कतिपय चिकित्सक प्रतिनिधि द्रव्य के रुप में इसका उपयोग करते हैं । कुछ विद्वानों का मत है कि श्वेत पुनर्नवा से **Boerhaavia repanda** willd का ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि इसका मूल कन्दसदृश एवं भंगुर होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थान :

पुनर्नवा के क्षुप वर्षाकाल के बाद उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में सर्वत्र पाये जाते हैं । वनस्पति शास्त्र के आधार पर इसकी कई किस्में पाई जाती हैं । संहिता ग्रन्थों के आधार पर भी वर्षाभू, वाशिर एवं पुनर्नवा एक ही द्रव्य न होकर भिन्न–भिन्न द्रव्य है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

गुण–लघु, रूक्ष, रस–मधुर, तिक्त–कषाय, विपाक–मधुर, वीर्य–उष्ण, कर्म–त्रिदोषहर, लेखन, क्षोभहर, दीपन, अनुलोभन, रेचन, मूत्रजनन, चक्षुष्य, कासहर, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न, रसायन, विषघ्न, 1 मुख्य रूप से शोथ एवं पाण्डु रोग में प्रभावकारी है ।

आमयिक प्रयोग :

पुनर्नवा शोथ, रक्तपदर, पाण्डु रोग, हृद्रोग, उरःक्षत एवं शूल को दूर करने वाला है । मूत्रविरेचन होने से यह शोथहर हैं। इसके प्रयोग से हृदय की संकोचन क्रिया बढ़ती है। रक्त का दबाव बढ़ने से पेशाब का प्रमाण बढ़ता है ।

रासायनिक संगठनः

इसमें पुनर्नवीन नामक ऐल्केलाइड पाया जाता है । पुनर्नवा में पोटेसियम नाइट्रेस, सल्फेट, एवं क्लोराइडस् आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोगः – पुनर्नवादिमण्डूर, पुनर्नवासव, पुर्नवाष्ठक, पुनर्नवादिक्वाथ, पुनर्नवागुग्गुलु, च्यवनप्राश, दशमूलारिष्ठ, कुमार्यासव ।

अपामार्गादिवर्ग AMARANTHACEAE

वर्गलक्षणः

इस वर्ग में शाकीयक्षुप एवं गुल्म पाये जाते हैं । पर्ण–सादे उपपत्ररहित, एकान्तर, काण्ड–कोणीय, रोमश, मृदु, बहुशाखीय, प्रसर होता है । पुष्प–गुच्छों में शाखाग्र या पत्रकोणीय, व फल–स्थायी, चिपचिपे, वस्त्रों पर प्राय चिपकने वाले होते हैं । इस वर्ग में अपामार्ग, तण्डुलीयक, चौलाई, शितिवारक आदि कतिपय उपयोगी वनस्पतियाँ पाई जाती है । इस कुल को द्रव्य प्रायः मूत्रल, शीतल, सारक, दीपन, पाचक, कफनाशक होते हैं ।

285 अपामार्ग (चिरचिटा)

द्रव्यनामः–	संस्कृत	अपामार्ग, शिखरी, खरमञ्जरी
	हिन्दी	चिरचिदा, मयूरक, पुटकंटा,
	लैटिन	**Achyranthes aspera** Linn.

गणः– चरक ने शिरोविरेचन, कृमिघ्न, शिरोविरचनोपग, वमनोपग महाकषाय में तथा सुश्रुत ने अर्कादिगण में अपामार्ग का उल्लेख किया है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरुक्तिः

अपामार्ग – अपमृज्यते व्याधिरने नेत्तिवा" स्वनाम ख्यात क्षुपः" अर्थात् यह व्याधियों का नाश करता है । **खरमञ्जरी** – या मार्गो के चारों तरफ फैलता है । इसकी फल मञ्जरी, खुरदरी, एवं कंटीली सी होती है । मञ्जरी से भी यही अभिप्रायः है कि इसकी पुष्प मञ्जरी काफी लम्बी होती है ।

स्वरूप परिचयः

यह एक वर्षायु सड़कों के आसपास मिलने वाला क्षुप विशेष पौधा है । पौधे 45 से0 मी0 से लेकर 90 से0 मी0 तक ऊँचे होते हैं । शाखायें स्वावलम्बी एवं कुछ प्रसरणशील होती हैं । पर्ण–अभिमुखक्रम में अण्डाकार, अभिलट्वाकार, किञ्चित् वृताकार, लम्वाग्र सामान्यतः 3.75 से0 मी0 लम्बी 1.25 से 3.65 से0 मी0 चौड़ी होती है। पुष्प हरिताभ श्वेत अधोमुख, अवृन्त लम्बी मन्ञ्जरियों में, बीज कोषीय स्निग्ध एवं मसृण होते हैं इन्हीं बीजों को क्षुधानाशक एवं तृषानाशक कहते हैं। साधुसन्त बीजों का सेवन कर कई दिनों तक भूखे रहते हैं। निघण्टु कारों ने श्वेत एवं रक्त भेद से दो प्रकार का बताया है। श्वेत अपामार्ग को Acyranthes bipinata कहते हैं। काण्ड धारीदार चौकोना, रोमिल होता है।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त।
फलकाल .... अक्टूबर, नवम्बर।
प्रयोज्यअंग .... पंचांग, बीज, क्षार।

प्राप्ति स्थान :—यह भारत के सभी प्रान्तों के उष्णकटिबन्धीय स्थानों पर सर्वत्र सुलभ है। श्वेत अपामार्ग हिमालय की निचली घाटियों में पाया जाता है, जिसे Acyranthes bipinata कहते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–मूत्रल, अश्मरीनाशक, श्वासकास हर, पित्तसारक, स्वेदजनन, कटुपौष्ठिक, विषघ्न, शोथहर, लेखन, शिरोविरेचन, बीज–बल्य, क्षुधानाशक, एवं विष्ठम्भी।

आमयिक प्रयोग :— अपामार्ग कफ, मेद, वात, अर्श, कण्डू उदर, आम, शूल, हिक्का, और अपची को नाश करने वाला है। भोजन से पहिले अपामार्ग देने से आमाशय का पाचक रस बढ़ता है। आमाशय की पीड़ा कम होती है। यकृत की क्रिया सुधरती है। मूत्रजनन एवं अश्मरी नाशक है। यह जीर्ण आमवात संधिशोथ, गण्डमाला, अश्मरी, वस्तिशोथ, मूत्रपिण्डकशोथ, श्वासनलिका–शोथ, प्लीहावद्धि में उपयोगी है। आंख की फूली में अपामार्ग मूल को शहद के साथ घिस कर लगाते हैं। दन्तशूल एवं दन्तकृमी में मूल एवं पंचांग लाभ करता है।

रासायनिक संगठन :— पंचांग एवं बीजों में अधिक मात्रा में क्षारीय भस्म पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें पोटास भी पाया जाता है।

मुख्य योग :— अपामार्गक्षारतैल, अपामार्गक्षार, सौभाग्यवटी, कासामृत, अगत्यहरीतकी।

चुक्रादिवर्ग POLYGONACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में मुख्य रूप से शाकीय, एकवर्षायु वनस्पति पाई जाती है। काण्ड–गोल, कुछ अम्लता लिये हुये, कभी–कभी सुषिर, पर्ण–एकान्तर, सवृन्त, मसृण, प्रायः स्वाद में अम्ल, अण्डाकार, आयताकार होते हैं। पुष्प–समूह में, मन्जरीसद्दश, पुंकेशर 5, 9 किंवा 2 चक्रों में बीजकोश 2–3 खण्डवाला, उपरिस्थ होता है। इस वर्ग में चुक्र, रेवन्दचीनी, पालक आदिकतिपय उपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं। इस कुल की वनस्पति प्रायः दीपन, पाचन, रूचिकर, सारक, व्रणरोपक होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

286 चुक्र (चूका)

द्रव्यनाम	संस्कृत	....	चुक्र, चुक्रिका।
	हिन्दी	....	चूका।
	लैटिन	....	**Rumex Vesicarius Linn.**

निरुक्ति :— चुक्र–चक्यतेनेन वा चकतृप्तौ प्रतिघाते च अम्लद्रव्य विशेष" अर्थात् अम्लप्रधान एवं रुचिकर द्रव्य होने से इसे चुक्र कहते हैं।

स्वरूप परिचय :— चुक्र के एकवर्षायु शाकीय क्षुप 15 से 30 से0 मी0 ऊँचे होते हैं। काण्ड–पाण्डु हरित, मांसल, एवं मूल से द्विविभक्त होता है। पर्ण–सवृन्त, रूपरेखा में अण्डाकार, लट्वाकार, या आयताकार, कुन्तवत्, पुष्प–मञ्जरीसद्यश, रक्ताभ–श्वेत वर्ण के एवं वृत्ताकार होते हैं। बाजार में इसके फल गुलहम्माज के नाम से बिकते हैं। यह एक प्रसिद्ध खट्टा शाक है।

पुष्पकाल......................अगस्त, सितम्बर।
फलकाल....................पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्यअंग.....................पंचांग, बीज।

प्राप्ति स्थान :— भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में इसके पौध लगाये हुये पाये जाते हैं। कतिपय स्थानों पर यह स्वयंजात भी प्राप्त होता है। पहाड़ों पर कई किस्में पाई जाती हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— लघु, वीर्य–उष्ण, रूचिकर, दीपन, शोथघ्न, वेदनास्थापन, स्त्रंसनकर है। चूका पाचननलिका के दाह, आंव तथा उलटी बंद करने और भूख लगाने के लिये दिया जाता है। सूजन एवं वृश्चिकदंश पर पत्तियों का लेप किया जाता है। चूका के बीज ग्राही, लेसदार, एवं दाहप्रशमनकर हैं। यह कामला, आमशयशोथ, तथा मूत्रभार्ग के दाह में उपयोगी है।

रासायनिक संगठन :— जड़ में रुमिसिंन एवं लैपाथिन नामक तत्व पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त ऐल्व्युमिनायड, कार्बोहाइड्रेट तथा क्षार आदि तत्व भी पाये जाते हैं।

287 – अम्लपर्णी (रेवन्दचीनी)

द्रव्यनाम ....संस्कृत		....	अम्लपर्णी, पीतमूला।
	हिन्दी–यूनानी	....	रेवन्दचीनी, आर्चा।
	लैटिन	....	Rheum emodi wall.

निरुक्ति :—

रेवन्दचीनी :— यह फारसी नाम है। इसका निर्यात् अरब, ईरान, चीन आदि देशों से होता था, इसलिये इसे रेवन्दचीनी कहते हैं।

अम्लपर्णी :— इसको इसलिये कहते हैं कि इसके पत्र खट्टे होते हैं। एवं मूल पीत वर्ण का होने से पीतमूला कहते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरुप परिचय :— इसके मूल बहुवर्षायु एवं काण्ड एकवर्षायु होता है। काण्ड सशाख पत्रमय, पर्ण–मूलोद्भव व्यास में काफी चौड़ी–लम्बी एवं सवृन्त, गोलाकार, लट्वाकार होते हैं। पर्णवृन्त बाजार में कभी–कभी अम्लवेतस के नाम से मिलते हैं। मूल–का भौमिककाण्ड मोटा, मांसल, पींतवर्ण का होता है। पुष्प–मन्जरी सद्यश, गुच्छों में श्वेताभ, गुलाबी रंग के होते हैं। इसकी अन्य किस्में भी हिमालय में पाई जाती हैं जिनमें Rheum webbianum एवं Rheum moorcroftianum Royle कहते हैं।

पुष्पकाल	....	जुलाई, सितम्बर।
फलकाल	....	सितम्बर, अक्टुबर।
प्रयोज्य अंग	....	मूल (भौमिककाण्ड)

प्राप्ति स्थान :— इसकी किस्में हिमालय में 3,000 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,800 मीटर की ऊँचाई तक उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, लद्दाख, सिक्किम, भूटान, नैपाल आदि स्थानों पर सर्वत्र पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, कटु–विपाक, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–कफपित्तहर, अल्पमात्रा में लालाप्रसेक–जनक, दीपन, यकृदुत्तेजक, सारक, व्रणरोपक, कटुपौष्ठिक एवं कफनिस्सारक है। इसमें रेचन क्रिया– क्राइसोफेनिकएसिड, एवं एमोडिन के प्रभाव से होती है। अल्पमात्रा में प्रयोग करने पर लालास्त्राव एवं आमाशयिकरस बढ़ता है। भूख लगती है अन्य का पाचन ठीक होता है। यकृत की क्रिया सुधरने पर पित्तस्त्राव ठीक होता है। वातरक्त के रोगी को विरेचन देने हेतु यह उत्तम औषधि है। बच्चों के आमाशयिक विकृति, एवं कुपचन में यह गुणकारी दवा है। यूनानी मतानुसार यह शोथविलयन और वेदनाहर है। अल्प मात्रा में यह कफनिःसारक, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक, मूत्रल और आर्तवजनन है।

रासायनिक संगठन :— रेवन्दचीनी में एन्थुक्विनोन के यौगिक पाये जाते हैं। इसमें क्राइसोफेनिक एसिड, एमोडीन, टैनिक एसिड, राल, स्टार्च, कैल्सियम औक्जलेट आदि तत्व पाये जाते हैं।

ईश्वर्यादिवर्ग ARISTOLOCHIACEAE

वर्ग लक्षण :— इस वर्ग में शाकीय क्षुप एवं आरोही लता एवं गुल्म पाये जाते हैं। पर्ण–सादें, अवृन्त, एकान्तर, उपपर्णरहित, द्विबीजपर्ण होते हैं। पुष्प–बड़े, अधस्थगर्भाशय, पुंकेशर संख्या में 6, स्त्रिकेशर नलिका के नीचे चक्राकार में लगे हुये, गर्भाशय 6 खण्डवाला, फल–नीरस एवं प्रत्येक खण्ड में काफी बीज पाये जाते हैं। इस वर्ग में इसरमूल, कीटमारी आदि द्रव्य पाये जाते हैं। इस कुल के द्रव्य मुख्यरूप से विषघ्न एवं कृमिघ्न होते है।

288 – ईश्वरी (इसरमूल)

द्रव्यनाम............	संस्कृत.....................	ईश्वरी, नाकुली।
	हिन्दी.....................	इसरमूल, इसरौल" कालीपाड़।
	लैटिन.....................	**Aristolochia indica** Linn.

निरुक्ति :— नाकुली–नकुलानांप्रिया, न आकुलत्व यया वा" स्व नाम ख्यात महाकन्दशाक विशेष" एषा नाकुली द्विधा, गन्धनाकुली च" अर्थात् नेवलों को यह बूटी विषनाशक होने से प्रिय है।

स्वरूपपरिचय :— इसरमूल की बहुवर्षायु आरोही लता पाई जाती है। मूलस्तम्भ, कन्दसद्यश, काष्ठीय, सुगन्धित, पर्ण 5 से 10 सेन्टीमीटर, लम्बी मसृण, हरितवर्ण की मसलने पर सुगन्धित, लम्बाग्र होती है। पुष्प–बड़े विचित्र आकृति में बैंगनी रंग के एवं पत्रकोणोंद्भूत, प्रासवत् एवं लम्बाग्र होते हैं। फल–गोल–चौड़ा, आयताकार, धारीदार एवं हवाई छतरी सद्यश होते हैं। बीज–चपटे, त्रिकोण एवं सपक्ष होते हैं। इसकी औषध उपयोग की दूसरी किस्म पाई जाती है जिसे

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कीटमारी **Aristoloclia bracteata Retz** कहते हैं। इसकी भी आरोही लतायें होती हैं। पुष्प जामुनी रंग के एवं पत्र, मूल स्वाद में तिक्त होता है।

पुष्पकाल....................	सितम्बर, अक्टूबर,
फलकाल....................	शीतकाल,
प्रयोज्यअंग..................	मूल, पत्र।

प्राप्ति स्थान :— समस्त भारतवर्ष के निचली घटियों के पहाड़ी क्षेत्रों में विशेषकर बुन्देलखण्ड, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, बंगाल आदि प्रदेशों में पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–त्रिदोषहर, कृमिघ्न, विषघ्न, कफवातशामक, वेदनास्थापन, कटुपौष्ठिक, मूत्रल, रक्तशोधक, स्वेदजनन, कफनिःस्सारक, गर्भाशयोत्तेजक है।

2–कीटमारी :— रुचिकारक, दीपन, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, स्वेदजनन, कासघ्न है।

रासायनिक संगठन :— इसमें उड़नशील तैल, ऐरिस्टोलोकीन नामक ऐल्केलाइड तथा कुछ नाइट्रोजनघटित अम्लयौगिक पाये जाते हैं।

वक्तव्य :— नाकुली नामक द्रव्य विचाराधीन हैं। ग्रन्थकारों ने इसे रास्ना भेद लिखा है तथा प्रचलित सर्पगन्धा Rauwolfia serpentina को नाकुली माना है।

वास्तुकादिवर्ग CHENOPODIACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में शाकीय वनस्पति एवं बहुशाखीय गुल्म पाये जाते हैं। पर्ण–एकान्तर, पालियुक्त, दन्तुर, रोमिल, सुगन्धित पुष्प–द्विलिंगी, अवृन्त, पर्णकोणोदभूत– मन्जरीसद्यश, उर्ध्वस्थगर्भाशय, गर्भाशय–स्वतन्त्र, एक कोषीय फल गुच्छों में, बीज–वारीक, होते हैं। इस वर्ग में वास्तूक, सुगन्धवास्तूक आदि कतिपय उपयोगी द्रव्य पाये जाते है। इस कुल के द्रव्य प्रायः कृमिघ्न, सारक, दीपन एवं रक्त वर्धक होते हैं।

289 वास्तूक (बथुआ)

द्रव्यनाम...........	संस्कृत.....................	वास्तूक, शाकराट्,
	हिन्दी......................	बथुआ,
	लैटिन......................	**Chenopodium album Linn.**

निरुक्ति :— वास्तूक – वसन्त्यस्मिन् गुणा इति पत्र शाक विशेषः" अर्थात् वथुवा का शाक अनेकों गुणवाला होता है।

स्वरूप परिचय :— बथुआ के एकवर्षायु शाकीय पौध गेहूँ की खेतों में प्रायः मिलते हैं। यह सर्वविदित पत्रशाक है। पर्ण आकार में छोटे, बड़े त्रिकोणाकार, दन्तुर, मांसल, रोमिल होते हैं। काण्ड बड़ा होने पर रक्त वर्ण का होता है। पुष्प–हरित–रक्ताभ वर्ण के गुच्छों में लगते हैं। इसकी अन्य कतिपय जंगली किस्में में पाई जाती हैं जिसमें सुगन्धवासूचक Chenopodium ambrosiodes कहते हैं। इसके पत्र विशेष सुगन्धित होते हैं। पर्ण आयताकार, प्रासवत् एवं दन्तुर होते हैं। ग्रन्थकारों ने श्वेत, हरित एवं रक्त तीन भेद माने हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल......................जून, जुलाई,
फलकाल....................पुष्प के वाद,
प्रयोज्य......................अंग पत्र, पंचांग।

प्राप्ति स्थान :— भारत के सभी प्रान्तों में गेंहूँ की खेती के साथ–2 इसके पौध स्वयं जात पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— यह विपाक – में कटु, लघु, पाचक, सारक, रूचिकारक, क्षारयुक्त, अग्निदीपक, बल्य, प्लीहाविकारनाशक, कृमिघ्न, त्रिदोषघ्न, अर्श एवं रक्तपित्त नाशक है। जलने पर इसका लेप दाह शान्ति के लिये किया जाता है। कब्ज में इसका शाक दिया जाता है।

रासायनिक संगठन :— इसमें कैरोटीन तथा विटामिन–सी. पाया जाता है।

पिप्पल्यादिवर्ग PIPERACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में एक–वर्षायु क्षुप, प्रसरणशील लतायें एवं गुल्मनुमा पौधे पाये जाते हैं। पर्ण–एकान्तर, अखण्डित, हृदयाकार, मसृण होते हैं। पुष्प–छोटे, कांड पर एक स्थान पर जमे हुये, पत्रकोण या पत्र के सामने, वाह्याभ्यन्तर संयुक्त कोश में, फल–एकल बारीक बीजों वाला चरपरा–सा होता है। इस वर्ग में, पान पिप्पली, मरिच, कंकोल आदि कतिपय उपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं। इस कुल के द्रव्य कटु, दीपन, पाचन, रुचिकर, कफवातघ्न, एवं उदरविकार नाशक होते हैं।

290 पिप्पली (पीपल)

द्रव्यनाम............ संस्कृत......................पिप्पली, कणा, मागधी, तीक्ष्णतण्डुला।
हिन्दी......................पीपल।
लैटिन......................Piper longum Linn.

गण :—चरक ने शिरोविरेचन द्रव्यों, वमनद्रव्यों, दीपनीय, तृप्तिघ्न, हिक्कानिग्रहण, कासहर, शूल प्रशमन महाकषाय में एवं सुश्रुत ने पिप्पल्यादिगण, ऊर्ध्वभागहरगण, एवं शिरोविरेचन गण में पिप्पली का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :— पिप्पली—पिपर्त्ति पिप्पली "पृ पालन पूरणयोः" अर्थात् यह पालन पोषण हेतु उपयोगी द्रव्य है।

मागधी :— मगध देश में होने से इसे मागधी कहते हैं।

कणा :— पिप्पली के बीज तण्डुल के कणों सद्दश एवं तीक्ष्ण होते हैं। इसे उपकुल्या, शौण्डी, भी कहते हैं।

स्वरूप परिचय :— पिप्पली के बहुवर्षायु, बहुशाखीय, आरोही एवं प्रसरणशील, भूशायी लतायें पाई जाती हैं। शाखायें निकल कर एवं चारों तरफ फैलती हैं। शाखापर्वों से मूल निकल कर काण्ड आगे परिसृत होता है। पर्ण– 5 से 7 से. मी. लम्बे, एकान्तर हृदयाकार, लट्वाकार या वृताकार, अवृन्त, काण्ड संसंक्त तीक्ष्णाग्र एवं मूल–सुगन्धित, चरपरा होता है। पुष्प–एकलिंगी, कोणपुष्पक, निष्पत्रक, गोलायत होते हैं। पुष्प अवृन्त काण्डज शूकी में, इसी कारण इसे शौण्डी भी कहते हैं। फल–लम्ब–गोल शुण्डाकार, देखने में शहतूत सद्दश, पकने पर इनका वर्ण कृष्णाभ, धूसर होता है। स्वाद में ये फल तीक्ष्ण, चरपराहट वाले होते हैं।

पुष्पकाल...................... जुलाई, अगस्त।
फलकाल...................... अगस्त, सितम्बर।
प्रयोज्यअंग...................... फल, मूल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थान :— पिप्पली भारत के छायादार एवं नमस्थानों पर विशेषकर, बिहार में चम्पारन, पूर्निया, सिंगभूमि, शिवालिकवनखण्ड, देहरादून, आसाम, पूर्वीबंगाल में इसकी खेती की जाती है। इसके अतिरिक्त यह लंका, फिलीपाईन द्वीपसमूहों में पाई जाती है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— गुण–लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, रस–कटु, विपाक–मधुर, वीर्य–अनुष्णशीत, इसका आर्द्रफल गुरू, मधुर रस, शीतवीर्य, कर्म–वातकफशामक, आर्द्रफल–वात कफवर्धक, एवं पित्तशामक, मेध्य, दीपन, वातानुलोमन, शीतप्रशमन, यकृदुत्तेजक, प्लीहावृदिहर, रक्तवर्धक, रक्तशोधक, कास–श्वासहर, हिक्कानिग्रहण, शिरोविरेचन, मूत्रल, ज्वरघ्न, एवं रसायन हैं।

आमयिक प्रयोग :— पिप्पली उर्ध्व–भागदोषहर, हिक्का, कास, शूल, उदर रोग, ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, अर्श, आमवात, को नष्ट करने वाला है। मूल गर्भाशय संकोचक एवं पचनेन्द्रिय पर इसका अच्छा प्रभाव है। पिप्पलामूल–प्रसूति ज्वर, शीतज्वर, आमवात, गृध्रसी, एवं कफ ज्वर में लाभ करता है। पिप्पली आनाह, उदरविकार, क्षय, कृमि एवं श्वास में उपयोगी है।

रासायनिक संगठन :— इसमें 10 से 20 प्रतिशत तक उत्पल तैल पाया जाता है। जिसमें पिप्पलीन, पाइपेरीन, पाइपेरीडीन नामक ऐल्केलाइड एवं तीक्ष्ण रालीय सत्व एवं स्टार्च आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्य योग :— पिप्पल्यासव, पिप्पलीखण्ड, गुड़पिप्पली, पिप्पलीवर्धमान रसायन संजीवनीवटी, कासवटी, च्यवनप्राश, आनन्दभैरव कनकासव, चन्द्रप्रभावटी।

वक्तव्य :— वनस्पतिशास्त्र के आधार पर Piper की कई किस्में पाई जाती है। बाजार में छोटीपीपल एवं बड़ीपीपल के नाम से दो किस्में मिलती हैं। इसके अतिरिक्त कई किस्मों की पिप्पली बाजार में आकृति भेद से पाई जाती है। इन्हीं के मूल को पिपलामूल कहते हैं जिसकी जड़े ग्रथिल, कड़ी, बाहर से कृष्णाभवर्ण की एवं तोड़ने पर श्वेत तथा चखने पर चरपराहट वाली होती है। इससे अतिरिक्त गजपिप्पली होती है जिसे सिन्डेप्सिस औफिसनेल कहते हैं।

291 मरिच (कालीमिर्च)

द्रव्यनाम............. संस्कृत......................कृष्णमरिच, मरिच, उषण, कटुक, कोल।
हिन्दी......................कालीमिर्च, गोलमिर्च।
लैटिन......................**Piper nigrum** Linn.

गण :—(1) चरक ने शिरोविरेचन द्रव्य, दीपनीय, कृमिघ्न, शूलप्रशमन महाकषाय एवं सुश्रुत ने पिप्पल्यादिगण, त्र्यूषणगण में मरिच का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :— मरिच—म्रियते विषमनेन "स्वनामख्यान वणिक्द्रव्यम्" अर्थात् यह विषघ्न कटु गुणप्रधान द्रव्य है।

कटु :— यह स्वाद में कटु एवं उष्ण होती है। लता होने से इसे वल्लीजम् कहते हैं।

स्वरूप परिचय :— कालीमिर्च की आरोही लतायें होती हैं। काण्ड प्राय रम्भाकार तथा पर्वो पर अधिक मोटा होता है। पर्ण 10 से 16 से0 मी0 लम्बा 5 से 10 से0 मी0 चौड़े लट्वाकार, आयताकार आधार पर हृदयाकार एवं सवृन्त होते हैं। पुष्प–लम्बी मन्जरियों पर निकलते हैं जिनपर गोल, छोटे–छोटे फल निकलते हैं। फल सूखने पर रक्ताभ कृष्णवर्ण के होते हैं। श्वेतवर्ण की मरिच पाई जाती है जिसे श्वेतमरिच कहते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल...................... अगस्त, सितम्बर।
फलकाल..................... पुष्प काल के बाद।
प्रयोज्य अंग.................... फल।

प्राप्ति स्थान :— कालीमिर्च पूरवी भारतीय द्वीप, दक्षिणभारत, मालावार, द्रावनकोर, मलायाद्वीप समूह में खेती की जाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2) : – गुण–लघु, तीक्ष्ण, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, आद्रफल–गुरू, मधुर विपाक एवं अनुष्ण होता है। प्रधानकर्म–दीपन, पाचन, ज्वरनाशक, वातपित्तशामक, नाड़ीवल्य, विषघ्न, प्रतिश्याय, श्वास–कास–नाशक, शिरोविरेचन, छेदन, शोषण।

आमयिक प्रयोग :— कालीमिर्च उष्ण, दीपन, वातनाशक, नियतकालिक–ज्वरप्रतिवन्धक, शूलप्रशमन एवं कृमिनाशक है। यह नेत्र रोगों में भी उपयोगी है। कुपचन, आध्मान, अर्श, मूत्रविकार आदि में उपयोगी है।

रासायनिक संगठन :— इसमें पाइपरीन नामक एल्केलाइड, रालमय तेल जिसमें मिर्च–गंधी उत्पल तैल होता है। इसके अतिरिक्त चविसीन पाइपेरिडीन, स्टार्च तथा अल्पमात्रा में स्थिर तैल आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :— मरिचादिगुटिका, मरिचादितैल, मरिचाद्यघृत, हिंग्वाष्ठकचूर्ण, लशुनादिवटी, शंखवटी, लवंगादिवटी, त्रिभुवनकीर्ति रस, अग्निमुखचूर्ण।

वक्तव्य :— मरिच श्वेत एवं कृष्ण फल भेद से दो प्रकार की होती है। व्यवहार विशेषरूप से कृष्ण मरिच का उपयोग होता है कुछ लोगों का विचार है कि छिलका रहित फल ही श्वेतमरिच है। आजकल पपीता के बीजों का मिश्रण प्रायः किया जाता है। पानी में डालने पर ये बीज तैरने लगते हैं तथा स्वाद में कटु, तीक्ष्ण नहीं होते हैं।

292 कंकोल (कबाबचीनी)

द्रव्यनाम............... संस्कृत......................कंकोल, कंकोल्ल।
हिन्दी.......................कवावचीनी, शीतलचीनी
लैटिन.......................**Piper cubeba Linn. f.**

स्वरूप परिचय :— शीतलचीनी की बहुवर्षायु आरोही लता होती है। काण्ड–मसृण, लचीला एवं जोड़दार होता है। पर्ण–अखण्ड सवृन्त, आयताकार, आयताकार–लट्वाकार, नोकीले, चर्मवत् तथा चिकने होते हैं। पुष्प–अवृन्त, काण्डज, पुष्प–मञ्जरीसद्यश, गुच्छों में फल–गोल, अष्ठिफलसद्यश, सुगन्धित होते हैं। फल के अन्दर बीज होता है। बीज–विशिष्ठ गन्धवाला, तीक्ष्णमसालेदार, स्वाद में कड़वा, चरपरा होता है। इसके पतले छिलके वाले फलों को शीतलचीनी एवं मोटे छिलके वाले फलों को कवावचीनी कहते हैं। वास्तव में एक ही द्रव्य के ये फल हैं।

पुष्पकाल...................... अगस्त, सितम्बर।
फलकाल..................... फलकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग.................. बीज, तैल।

प्राप्ति स्थान :— भारत के दक्षिण के प्रान्तों में मैसूर आदि स्थानों पर इसकी खेती की जाती है। इसकी लताये जावा, सुमात्रा, वोर्नियों में स्वयंजात पाई जाती हैं। लंका में इसकी प्रचुर खेती होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1) :— गुण–कटु, तिक्त, लघु, तीक्ष्ण, वीर्य–उष्ण, वृष्य, मूत्रजनन, वातनाशक, एवं दुर्गन्धनाशक है।

आमयिक प्रयोग :— शीतलचीनी, बातरोग, अर्श, एवं पुराने कफरोग में उत्तेजक एवं कफघ्न क्रिया होती है। सुजाक में कवावचीनी का तैल शक्कर में मिलाकर देते हैं। गले की शिथिलता एवं मुखपाक में इसे चूसने को देते हैं।

रासायनिक संगठन :— इसमें उड़नशीलतैल क्यूबेविन, राल, स्टार्च, क्यूबेविक एसिड तथा कैल्सियम औक्जलेट, फास्फेट, मेग्नेशियममंलेट आदि तत्व पाये जाते हैं। इसका हरित–पीताभ रंग का तैल विशिष्ठ गन्धयुक्त तथा कर्पूरवत् स्वाद वाला होता है।

293 चव्य

द्रव्यनाम............. संस्कृत......................चव्य, चाविका,
हिन्दी......................चव्य,
लैटिन......................**Piper chaba** Hunter

स्वरूप परिचय :— इसकी आरोही लता होती है। काण्ड पिप्पली–सदृश बहुशाखीय होता है। पर्ण–ताम्बूल के आकार में पाये जाते हैं। फल बड़ी पिप्पली सदृश होते हैं भावप्रकाश के मतानुसार चव्य के फलों को गजपिप्पली कहते हैं। इसके साथ–साथ निघण्टुकारों गजपिप्पली का स्वतन्त्र रूप से भी उल्लेख किया है। जिसकी विस्तृत परिसृत आरोही लता होती है कहते हैं। जिसे scindapsus officinalis कहते हैं। इसकी लताये हिमालय की निचली घाटियों में पाई जाती है।

पुष्पकाल...................... अगस्त, सितम्बर।
फलकाल...................... पुष्पकाल के वाद।
प्रयोज्यअंग.................... मूल, फल।

प्राप्तिस्थान :—चव्य मुख्य रूप से मलाया द्वीप समूह में पाया जाता है। दक्षिण में भी इसकी लतायें रोपित पाई जाती हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1) :— गुण–लघु रुक्ष, रस–कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफवातशामक, पित्तवर्धक, तृप्तिघ्न, दीपन–पाचन, शूलघ्न, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, कफघ्न।

मुख्ययोग :— पंचकोल फाण्ट, चव्यादिघृत, प्राणदागुटिका, कांकायनमोदक।

294 नागवल्ली (पान)

द्रव्यनाम............. संस्कृत......................ताम्बूलवल्ली, नागवल्ली।
हिन्दी......................पान।
लैटिन......................**Piper betel** Linn

वर्ग :— सुश्रत ने सूत्रअध्याय 46 में पान का उल्लेख किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप परिचय :— इसकी वहुवर्षायु लता होती है, भारत में इसकी कई किस्में पाई जाती है। इसकी लतायें एक दूसरे के सहारे चढती हैं। कोमल काण्ड मसृण एवं पर्ण 7.5 से 20 से0 मी0 लम्बे, लट्वाकार या हृदयाकार तथा पत्राग्र नुकीले होते हैं। पुष्प–छोटे, मन्जरीसद्यश एकलिंगी, अवृन्तकाण्डज।

पुष्पकाल...................... अप्रैल, मई।
फलकाल...................... पुष्प काल के वाद।
प्रयोज्यमांग.................... फल, मूल।

प्राप्ति स्थान :— यह भारत का आदिवासी पौधा है। उष्ण एवं नम प्रदेशों में इसकी खेती की जाती है। भारत में मघईपान, बंगलापान, महोवा, कपूरी, देसीपान आदि किस्मों की खेती प्रचूर मात्रा में की जाती है। भारत से विदेशों को भी पान का निर्यात किया जाता है।

दोषअधिष्ठान मेदेन कर्मज्ञान (1) :— गुण–लघु, तीक्ष्ण, विशद, रस–तिक्त, कटु, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–वातकफशामक, किन्तु पित्तप्रकोपक, जीवाणुनाशक, शोथहर, वेदनास्थापन, उत्तेजक, पूतिहर, मुखवैशद्यकारक. पाचन, अनुलोमन, हृदयोत्तेजक, शीतःप्रशमन, ज्वरघ्न, कफनिस्सारक, वाजीकरण, एवं कटुपौष्ठिक हैं।

आमयिक प्रयोग :— कफ प्रधान रोगों में पान उपयोगी है। यह उत्तम पाचन, दीपन, शोथघ्न, वेदनास्थापन और व्रणरोपण है। दमा, फुफुसनलिका, शोथ, एवं श्वासमार्ग–शोथ में पान का रस उपयोगी है। भोजन के बाद पान खाने से लालास्त्राव का प्रमाण बढ़कर आमाशय को उत्तेजना मिलती है।

रासायनिक संगठन :— पत्तों में उड़नशील तैल पाया जाता है जो पीले रंग का सुगन्धित, तीक्ष्णदाहक, स्वादयुक्त एवं उष्ण होता है।

मुख्ययोग :— अर्कताम्बूल, ताम्बूलपत्र–स्वरस।

जातीफलादिवर्ग MYRISTICACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में वृक्ष एवं वृक्षक पाये जाते हैं। काण्ड बहुशाखीय, मसृण, पर्ण–द्विबीजपर्ण, एकान्तर, अखण्ड, उपपत्ररहित, मसलने पर सुगन्धित पुष्प–श्वेतरंग के, पुष्प वाह्यकोष के दल 3, पुंकेशर 10, बीजकोष एक खण्डवाला, फल–मांसल बीज–बड़े एवं तैलयुक्त होते हैं। इस वर्ग में जातीफल, जावीत्री आदि उपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं। इस कुल के द्रव्य कटु, तिक्त, कफघ्न, तीक्ष्ण, दीपन, ग्राही, कृमिघ्न एवं वृष्य होते हैं।

295 जातीफल (जायफल)

द्रव्यनाम....... संस्कृत......................जातीफल, जातीकोष।
हिन्दी......................जायफल।
लैटिन......................Myristica fragrans Houtt.

गण :—सुश्रत सूत्रस्थान 46 में जातीकोष का उल्लेख किया है।

स्वरूपपरिचय : – जायफल के बहुशाखीय, मसृण काण्ड के वृक्ष होते हैं। पर्ण–सवृन्त रूपरेखा में जामुन पत्र सघश सुंगन्धित, उर्ध्वपष्ठ गहरे हरे रंग का एवं अधः पृष्ठ कुछ पीताभ धूसर वर्ण के होते हैं। पुष्प– छोटे, पीताभ वर्ण के लम्बगोल, अमरूद के पुष्प सद्यश होते हैं। फल–लम्बे–छोटे पकने पर रक्ताभ एवं पीतवर्ण के एवं नीचे की ओर झुके हुये होते हैं। फल–फटने पर बीज बाहर निकल आता है जिस पर लाल रंग का जालीदार , बीजोपांग आवृत होता हैं। इसी को जावित्री कहते हैं। जावित्री को अलग करने पर गुठली नुमा बीज प्राप्त होता है जिसे जायफल कहते हैं।

पुष्पकाल...........................अप्रैल, जून।
फलकाल...........................जुलाई, अगस्त।
प्रयोज्य अंग......................बीजकोष (जावित्री) एवं बीज–जायफल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान :— जायफल की मलाया, सिंगापुर, लंका, पूर्विभारतीय द्वीपसमूह एवं जंजीबार में प्रचुरता से इसकी खेती की जाती है। भारत में नीलगिरी के क्षेत्रों में इसके वृक्षों का रोपण किया गया है। विदेशों से इसका आयात होता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1) :— गुण–लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफवात शामक, वेदनास्थापन, मुखदुर्गन्धनाशक, रोचन, दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक, हृदयोत्तेजक, कटुपौष्ठिक, कफनिःसारक, कफघ्न, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, आर्तव-जनन, वाजीकर।

आमयिक प्रयोग :— जायफल अतिसार, ज्वरातिसार, प्रवाहिका एवं ग्रहणी में उपयोगी है। जावित्री–कटु, तिक्त रूचिकर, कास, श्वास, बमन, कृमि एवं विषनाशक है। जावित्री–वेदना–स्थापन है। पुराने संधिशोथ में जावित्री के तेल की मालिश करते हैं। शिर के दर्द एवं प्रसवोत्तर कालीन कटिशूल में जायफल को पानी या मधु के साथ घिसकर लगाते हैं। पचनसंस्थान पर जायफल के प्रयोग से आमाशय का पाचकरस बढ़ता है एवं भूख खूब लगती हैं तथा अधोवायु का सरण होता है।

रासायनिक संगठन :— जायफल में उड़नशील सुगन्धित तैल पाया जाता है जो इसका मुख्य सक्रिय घटक है। मुख्यतः इसमें यूजिनोल पाया जाता है, इसके अतिरिक्त मायरिस्टिकएसिड, 69 प्रतिशत, पामिटिक, ओलिइक, लीनोलिक, एवं लारिकएसिड वसाम्ल पाया जाता है।

मुख्य योग :— जातीफलादिचूर्ण, जातीफलादिवटी, कर्पूरादिवटी, पूर्णचन्द्रामृतरस, आनन्दभैरवरस, सुपारीपाक, द्राक्षासव, दशमूलारिष्ठ, जावित्री– कफकर्तकीरस, पीयूषवल्लीरस, खदिरादिवटी, मूशलीपाक, मन्मथरस, ब्राह्मीवटी।

कर्पूरादिवर्ग LAURACEAE

वर्गलक्षण :– इस वर्ग में वृक्ष एवं गुल्मनुमा वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। गुल्म–बहुशाखीय, मसृण, पर्ण–सादे, सदाहरित, तैलग्रन्थियुक्त सुगन्धित होते हैं। पुष्प–शाखाग्रोंद्भूत, वाह्याभ्यन्तर संयुक्त कोष, आकार में छोटे होते हैं। इस पर्ण में कर्पूर, दालचीनी, तेजपत्ता, मेदालकड़ी आदि कतिपय उपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं। इस कुल के द्रव्य प्रायः चक्षुष्य, विषघ्न, दीपन, रुचिकर, अरुचि, पीनस एवं कफ, वात शामक होते हैं।

296 कर्पूर (कपूर)

द्रव्यनाम.........संस्कृत......................कर्पूर, घनसार, चन्द्र।
हिन्दी...................... कपूर।
लैटिन...................... Cinnamomum Camphora Nees.

गण– चरक ने सूत्रस्थान के अध्ययाय 5 में कर्पूर का उल्लेख किया है।

निरुक्तिः– कर्पूर– "शुभ्रतरनिर्वास रुपं स्वनाम ख्यात गन्ध द्रव्यम्" अर्थात यह श्वेतवर्ण का सुगन्धित सार द्रव्य विशेष है। श्वेत वर्ण का होने से इसे घन एवं चन्द्र भी कहते हैं।

स्वरुप परिचय :—

इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। भारत में बड़े पैमाने पर इन वृक्षों का रोपण किया जाता है । इसे कैम्फर वृक्ष भी कहते हैं। काण्ड–बहुशाखीय, पर्ण–तैल ग्रंथियुक्त सुगन्धित होते हैं। पुष्प पर्णकोणोद्भूत, छोटे, श्वेताभ वर्ण के होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल.......................... अगस्त, सितम्बर।
फलकाल......................... पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग.......................पत्र, घनसार।

प्राप्ति स्थान :—

कर्पूर के वृक्ष चीन, जापान तथा फार्मोसा द्वीप समूह में बहुतायत में पाये जाते हैं। भारतवर्ष में देहरादून, सहारनपुर, नीलगिरी, कलकत्ता आदि स्थानों पर बड़े पैमाने में इसकी खेती की जाती है। बाजार में कृत्रिम कर्पूर प्रायः मिलता है। वह इसका घनसार नहीं है। इसके अतिरिक्त तुलसीकुल की वनस्पति ओंसिमम केलिमेन्डेरिकम् नामक वनस्पति से कपूर तैयार किया जाता है। भारत में इसकी भी खेती की जाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1) :—

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, कटु एवं मधुर, विपाक–कटु एवं वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–वेदनास्थापन, चक्षुष्य, दीपन–पाचन, वात्तानुलोमन, जन्तुघ्न, हृदयोत्तेजक, रक्तभारवर्धक, कफनिस्सारक, श्वास–कासहर, स्वेदजनन, अल्पमात्रा में बाजीकरण किन्तु अधिक मात्रा में कामावसादक, आक्षेपहर है।

आमयिक प्रयोग :—

कपूर रक्तगत श्वेतकणों की वृद्धि करने वाला, कफघ्न, ज्वरघ्न द्रव्य है। औषधीय मात्रा से अधिक मात्रा में कपूर प्रयोग से दाहजनक एवं मादक विष की क्रिया होती है। इसे मुंह में रखने से लाल –स्त्राव अधिक होता है एवं उष्णता पैदा होती है। अमाशयरस के वृद्धि के साथ–साथ पाचन बढ़ता है। कपूर उत्तम वात्तहर, दीपन एवं पूर्त्तिहर है। श्वसनसंस्थान एवं हृदय पर भी इसकी उत्तेजक क्रिया होती है।

रासायनिक संगठन :—

कपूर एक उड़नशील तैल है जो ठोस या घन अवस्था में रहता इसे प्राकृतिक कपूर कहते हैं। आजकल बाजार में कृत्रिम कपूर (Synthetic Comphor) मिलता है। भीमसैनी कपूर सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है।

मुख्ययोग :—

कर्पूररस, कर्पूरासव, अर्ककपूर, अमृतबिन्दु, पंचगुणतैल, अमृतधारा, कर्पूरादिवटी, खदिरादिवटी, कासवटी, षड्विन्दुतैल।

297 दालचीनी

द्रव्यनाम.........संस्कृत...................... त्वक्, वराङ्ग, चोंच।
हिन्दी....................... दालचीनी।
लैटिन....................... **Cinnamomum zeylanicum** Blume

गण –(1) सुश्रुत ने एलादिगण में त्वक् एवं पत्रक का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :— चोंचं तमालपत्रम् इति" त्वक शब्द छाल वाचक है अर्थात् दालचीनी नामक द्रव्य चीन आदि देशों में उपलब्ध वृक्ष विशेष छाल है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरुपपरिचय :—

इसके मध्यम आकार के सदाहरित वृक्ष पाये जाते हैं। शाखायें मसृण, चपटी एवं मृदु होती हैं। छाल–पतली, मटमैले–पीताभ भूरे रंग की, जगह–जगह छोटे चिह्न, विशिष्ट प्रकार की सुगन्धियुक्त, चबाने पर स्वाद में मीठी, तीक्ष्ण एवं सुगन्धित होती है। उत्तम छाल में सुगन्धित उड़न शील तैल पाया जाता है। बाजार में कई किस्मों की मिलावट पाई जाती है। पर्ण–अभिमुख कभी–कभी एकान्तर क्रम में, चर्मिल, 9.5 से 20 से0 मी0 तक लम्बी, चर्मिल, लट्वाकार, भालाकार, उर्ध्व पृष्ठ चमकदार, गहरे हरे वर्ण का एवं अधः पृष्ठ फीके रंग का सुगन्धित सवृन्त होते हैं। पुष्प–धूसर वर्ण के नम्य–मञ्जरियों में फल–लम्बगोल, या अंडाकार, गहरे बैंगनी रंग के होते हैं। इसकी कई किस्मों की छालों का मिश्रण बाजार में प्रायः पाया जाता है।

पुष्पकाल...................... अप्रैल, मई।
फलकाल......................अगस्त, सितम्बर।
प्रयोज्यअंग..................... छाल, तैल।

प्राप्तिस्थान :—

दालचीनी मुख्य रूप से सिंहली द्वीप का आदिवासी पौधा है। इसकी फ्रेंच, ब्राजील, गायना आदि द्वीपसमूह में खेती की जाती है। भारत के दक्षिण के प्रान्तों के शीतल प्रदेशों में इसकी खेती की योजना है। यही कारण है कि आज भी भारत मै असली दालचीनी विदेशों से आयातित की जाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान(2) :—

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु,तिक्त, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–उत्तेजक, वेदनास्थापन, नाड़ीसंस्थान उत्तेजक, दीपन–पाचन, अनुलोमन, ग्राही, यकृदुत्तेजक, जन्तुघ्न, हृदयोत्तेजक श्लेष्महर, यक्ष्मानाशक, मूत्रजनन, गर्भाशयसंकोचक, वाजीकरण।

आमयिक प्रयोगः

यह अग्निमांद्य, वात, आध्मान, आक्षेप, वमन, उत्क्लेश, कण्डू, हृदयरोग, मुखरोग, कृमि, वस्तिरोग, अर्श, पीनस, कुष्ठ, कास आदि रोगनाशक हैं। नव्यमत से यह वातहर, गर्भाशियोत्तेजक, शोणितस्थापन, रक्तगत श्वेतकणों की वृद्धि करने वाला और उत्तेजक है। इसके प्रयोग से आमाशमिक जठररस की वृद्धि होती है एवं अन्न का परिपाक ठीक होता है। आध्मान, पेचिश, कृमिदत्त में दालचीनी के तैल का प्रयोग उपयोगी है। राजयक्ष्माजन्य व्रण में तेल उपयोगी है।

रासायनिक संगठनः

छाल में उत्पलतैल, टैनीन, पिच्छिलद्रव्य, शर्करा, स्टार्च आदि तत्व पाये जाते हैं। तैल में सिन्नेमेल्डिहाइट 60% से 75% प्रतिशत तथा यूजिनोल पाया जाता है।

मुख्ययोग :

सीतोपलादिचूर्ण, दशमूलारिष्ठ, अश्वगन्धारिष्ठ, लवण–भास्करचूर्ण।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

298 पत्र (तेजपत्र)

द्रव्यनाम...........	संस्कृत	पत्र, तज, तमालपत्र, पत्रक।
	हिन्दी	तेजपत्ता, तेजपत्र।
	लैटिन	**Cinnamomum tamala Nees.**

गण–(1) कर्पूरादिवर्ग के त्रिजात एवं चतुर्जात द्रव्यों के साथ तेजपत्र का उल्लेख है। सुश्रुत ने एलादिगण में उल्लेख किया है।

स्वरूप परिचय :

इसके छोटे मध्यम आकार के सदाहरित वृक्ष पाये जाते हैं। छाल–पतली, शिकनदार तथा गाढ़े भूरे रंग की होती है। छाल बाहर से श्वेत रेखांकित एवं स्वाद में मधुर सुगन्धित तथा चबाने पर लसदार होती है। छाल को तज कहते हैं। पर्ण–एकान्तर एवं अभिमुख, 10 से 15 से0 मी0 लम्बे, लट्वाकार, आयताकार, पत्र–आधार से पत्राग्र तक तीन शिराओं से युक्त सुगन्धित तैलीय ग्रन्थियुक्त होते है। पुष्प–पीताभ–श्वेत, प्रायः एकलिंगी, मृदुमञ्जरियों में, फल–लम्बे, गोल, मांसल, अण्डाकार, पकने पर बैंगनी, काले रंग के होते हैं।

पुष्पकाल	मई, जून।
फलकाल	अगस्त, सितम्बर।
प्रयोज्य अंग...........................	छाल (तज), पत्र।

प्राप्तिस्थानः

तज हिमालय की समशीतोष्ण घाटियों में 900 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2,400 मीटर की ऊँचाई तक, उत्तराखण्ड, कुमांयु, हिमाचल प्रदेश, चकराता, जम्मूकश्मीर राज्य आदि प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ हैं। बाजार में सुखाये हुये पत्र तेजपात के नाम से मिलते हैं तथा छाल तज एवं देसी दालचीनी के नाम से उपयोग किया जाता है। सूखे फलों को दक्षिण में नागकेशर कहते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2):

गुण–लघु, तीक्ष्ण, रस–कटु, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–लेखन, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, आमाशयवल्य, कासघ्न, बलप्रद, सौमनस्यजनन, सौगन्धिक हृद्य, तेजपात–कफ एवं आमाशय प्रधान रोगों में, आध्मान, अतिसार एवं पाचन संस्थान, एवं गर्भाशय के विकारों में उपयोगी है। पत्र को तेजपात के नाम से भारतीय मसालों में विशेष रूप से उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन :

पत्तियों में उड़नशील तैल पाया जाता है। जिसमें मुख्य रुप से युजिनोल पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें टर्पीन तथा सिन्नेमिक ऐल्डिहाइड भी पाया जाता है।

मुख्ययोग –

सीतोपलादिचूर्ण, लवणभास्करचूर्ण, कासवटी, व्राह्मीवटी।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

299 मेदासक (मैदालकड़ी)

द्रव्यनाम..............	संस्कृत	.........................मेदासक।
	हिन्दी	.........................मैदालकड़ी।
	लैटिन	.........................**Litsea chinensis Lam. syn. L. sebifera Pers.**

स्वरूप परिचय :

इसके मध्यम आकार के सदाहरित वृक्ष पाये जाते हैं। छाल–बाहर से कार्की एवं अन्दर से रक्ताभ वर्ण की होती है। पर्ण–अभिप्रासवत्, सवृन्त, पत्र मसलने पर सुगन्धित, लम्वाग्र एवं अधः पृष्ठ धूसरवर्ण का होता है। पुष्प–सवृन्त, मूर्द्धज गुच्छों में, फल–गोलाकार, व्यास में $\frac{1}{3}$ होता है।

पुष्पकाल	....	जून, अगस्त।
फलकाल	....	शीतकाल।
प्रयोज्य अंग	....	छाल।

प्राप्ति स्थान

इसके वृक्ष भारत के उष्णकटिबन्ध प्रदेशों के वनों, सहारनपुर, देहरादून, मिर्जापुर, पंजाब, बंगाल, बिहार आदि प्रदेशों में पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :

गुण–स्निग्ध, रस–कटु, तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफ–वातशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, नाड़ीवल्य, आक्षेपहर, दीपन, ग्राही, कफ निस्सारक भग्नसंधानकर।

आमयिक प्रयोग :

छाल का उपयोग कटिशूल, आमवात, गृध्रसी, आक्षेप, अपस्मार, उन्माद आदि रोगों में उपयोगी है। तरुण शोथ में फूलों का उपयोग किया जाता है। मोच, चोट एवं रक्त–स्त्राव पर वाह्य लेप करते हैं।

रासायनिक संगठन– छाल में लारोटेटानीन नामक क्षारोद पाया जाता है। फल में स्थिर तैल पाया जाता है।

बन्दाकादिवर्ग LORANTHACEAE

वर्गलक्षण –

इस वर्ग में शाकीय वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। ये वनस्पतियाँ प्रायः परोपजीवी होती हैं। पर्ण–अभिमुख, मांसल, अखण्ड, उपपत्र–रहित, द्विबीजपर्ण, पंखड़ियाँ 4 से 8 विभक्त किंवा संयुक्त, अधःस्थ बीजकोश, फल–मांसल एक बीजवाला अथवा बहुबीजी होते हैं। इस वर्ग में वांदा आदि कतिपय वनस्पतियाँ पाई जाती हैं।

300 बन्दाक (बांदा)

द्रव्यनाम............	संस्कृत	बन्दाक, वृक्षादनी।
	हिन्दी	बांदा।
	लैटिन	**Dendrophthoefalcata (L.F) Etti. Syn. Loranthus longiflorus**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गण –(1) चरक ने मूत्रविरेचनीम महाकषाय तथा सुश्रुत ने वीरतर्वादिगण में वृक्षादनी का उल्लेख किया है।

निरुक्ति – वृक्षादनी– इसको इसलिये कहते हैं क्योंकि यह दूसरे वृक्षों पर पैदा हो कर अपना भोजन लेता है। अर्धपराश्रयी पौधा होने से इसे बन्दाक कहते हैं।

स्वरुप परिचय :

वांदा आम, महुआ, आदि कतिपय वृक्षों पर उगने वाला अर्धपरोपजीवी पौधा है। काण्ड–बहुशाखीय, नीचे की ओर झुकी हुई, पर्ण–मांसल, मसृण, अनेक आकार में होते हैं। पुष्प–गुलाबी, नारंगी रंग के गुच्छों में नालाकार, फल–मांसल, पकने पर लाल रंग के बीज–स्निग्ध, चिपचिपे होते हैं। इसकी कई किस्में पाई जाती हैं जिसमें Viscum album Linn. मुख्य हैं।

पुष्पकाल .... मई, जून।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग .... पत्र, पुष्प।

प्राप्ति स्थानः

यह भारत के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों के वृक्षों पर सर्वत्र पाया जाता है। जिन वृक्षों पर यह वनस्पति उगती है उनसे स्वयं अपना भोजन ग्रहण करती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :(2)

गुण–तिक्त, कषाय, मधुर, वीर्य–शीत, कफघ्न, वातनाशक, मूत्रविरेचनीय, रक्तविकारनाशक, व्रणरोपक।

आमयिक प्रयोग– शोथ एवं सूजन पर पुष्प एवं पत्रों का लेप लाभ करता है। इसके पुष्पों का प्रभाव हृदय एवं रक्तवाहिनियों पर होता है। यह श्वास, फुफ्फुसशोथ, रक्तपित्त, अपस्मार, उन्माद एवं ज्वर में लाभ करता है। हृद्रोग एवं जलोदर में इसे देने से लाभ होता है। अत्यार्त्तव एवं प्रसवोत्तर रक्तस्त्राव में देने से लाभ होता है।

अगुर्वादिवर्ग THYMELAEACEAE

वर्गलक्षण :–

इस कुल में वृक्ष एवं वृक्षक पाये जाते हैं। पत्र–द्विबीज पर्ण,–चर्मिल, पुष्प–वाह्याभ्यन्तर संयुक्त कोष, गर्भाशय 2 खण्ड वाला, फल–शुष्क एवं विदारी। इस वर्ग के वृक्षों का काष्ठसार प्रायः सुगन्धित होता है। इसमें अगुरु आदि कतिपय उपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं। ये द्रव्य–वातकफशामक, बेदनास्थापक, शोथहर एवं मुखदुर्गन्ध नाशक होते हैं।

301 अगुरु (अगर)

द्रव्यनाम.......... संस्कृत .... अगुरु, कृमिजग्ध, लोह।
हिन्दी .... अगर, अगुरु।
लैटिन .... **Aquilaria agallocha Roxb.**

गण –(1) चरक ने श्वासहर, शीतप्रशमनमहाकषाय, तिक्तस्कन्ध एवं शिरोविरेचन द्रव्यों में अगुरु का उल्लेख किया है। सुश्रुत ने एलादिगण तथा सालसारादिगण में अगुरु का उल्लेख किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरुक्ति :

अगुरु – स्वनाम ख्यात सुगन्धिकाष्ठविशेष :"

लौह – इसका काष्ठ लोहे के सद्यश कृष्णवर्ण का एवं सुगन्धित होता है।

कृमिजग्ध – इसलिये कहते हैं यह विशेष प्रकार की कृमि द्वारा निर्मित विकृतिजन्य परिणाम है।

स्वरुपपरिचय :

अगुरु के सदाहरित मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। काण्ड की छाल पतली चमकीली, भोजपत्र सद्यश, पर्ण–अभिमुख, आयताकार, भालाकार होते हैं। पुष्प–श्वेतरंग के गुच्छों में, एवं फल मृदु रोमावृत अभिअण्डाकार होते हैं।

पुष्पकाल	....	मई, जून।
फलकाल	....	पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग	....	काष्ठसार, तैल।

प्राप्तिस्थान :

आसाम, बंगाल, पूर्वी हिमालय, खासिया पर्वत, भूटान, सिल्हट, मालाबार, मणिपुर तथा दक्षिण प्रायद्वीप में इसके वृ क्ष पाये जाते हैं।

दोष अधिष्ठिान भेदेन कर्मज्ञान :(2)

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–वातकफशामक, शोथहर, वेदानास्थापन, नाड़ी संस्थान पर उत्तेजक, वल्य, मुखदुर्गन्धनाशक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, हृदयोत्तेजक, मूत्राशयशैथिल्यहर, त्वच्य, दुष्टवणशोधन है।

आमयिक प्रयोग :

अगुरु का उपयोग श्वास, कर्णरोग, नेत्ररोग, कृमि, कुष्ठ एवं वात्तवेदना में किया जाता है। नव्यमत से यह आमवत वातरक्त मै खाने को देते हैं। शोथ पर इसका लेप करते हैं । ज्वर, वमन, अतिसार, एवं पाचन विकृति में अगुरुचूर्ण का प्रयोग करते हैं। अगरु के लेप से कण्डू, त्वचा के रोग एवं पीड़ा शान्त होती है। दमा में 1 से 2 बूँद पान में लगाकर खाने से आराम होता है। हिचकी में मधु के साथ इसका चूर्ण खिलाया जाता है। वाजीकरण हेतु पुराने इत्रतैल का सेवन पान के साथ करते हैं।

रासायनिक संगठन :

अगरु में एक उड़नशील एवं ईथर में विलेय तैल तथा एक रालीय पदार्थ पाया जाता है।

मुख्ययोग :

अगुर्वादितैल, च्यवनप्राश, शंखपुष्पीतैल, इरिमेदादितैल, लवंगादिचूर्ण।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य :

प्रायः कम से कम 20 वर्ष पुराने अगुरु वृक्ष के कृमिज काष्ठसार श्रेष्ठ माना जाता है। इसी काष्ठ में विशेष प्रकार की गन्ध पाई जाती है। बाजार में नकली अगुरु की लकड़ी प्रायः मिलती है। सिलहट का अगुरु सबसे श्रेष्ठ माना गया है।

चन्दनादिवर्ग SANTALACEAE

वर्गलक्षण :

इस वर्ग में वृक्ष एवं वृक्षक दोनों प्रकार के वनौषध पाये जाते हैं। पर्ण–द्विबीजपर्ण–उपपत्र रहित, अभिमुख, सादे, मसृण, अभिलट्वाकार होते हैं। पुष्प–जामुनीरंग के, पुष्पवाह्यकोशदल 4–5, पुंकेशर–4–5, वाह्याभयन्तर संयुक्त कोष, बीजकोष–अधःस्थ। इस वर्ग में चन्दन आदि द्रव्य मुख हैं। इस वर्ग की वनस्पतियाँ प्रायः कण्डूघ्न, विषघ्न, शीतल, रक्तप्रसादन एवं कृमिघ्न होती हैं।

302 चन्दन

द्रव्यनाम.............	संस्कृत	....	चन्दन, भद्रश्री, श्रीखण्ड, श्वेतचन्दन।
	हिन्दी	....	चन्दन–सफेद।
	लैटिन	....	**Santalum album Linn.**

गण–(1) चरक ने वर्ण्य, कण्डूघ्न, विषघ्न, तृष्णानिग्रहण, दाहप्रशमन, अङ्गमर्दप्रशमन महाकषाय एवं तिक्त स्कन्ध में उल्लेख किया है। सुश्रुत ने सालसारादिगण, पटोलादिगण, सारिवादिगण, प्रियङ्गवादिगण गुडूच्यादिगण तथा पित्तसंशमन वर्ग में चन्दन का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :

चन्दन – चन्द्यते हलाद्यतेनेन चन्दनम् "परमसुगन्धिकाष्ठः स्वानामख्यातः वृक्षः" सुगन्धित काष्ठविशेष वृक्ष होने से इसे चन्दन कहते हैं। इसमें ग्रन्थिकोटर संयुक्त चन्दन श्रेष्ठ माना जाता है।

भद्रश्री :– मांगल्य एवं कल्याणकारी होने से इसे भद्रश्री एवं श्रीखण्ड कहते हैं। श्वेतवर्ण का होने से इसे श्वेत चन्दन कहते हैं।

स्वरुप परिचय :

चन्दन के सदाहरित मध्यमकद के वृक्ष पाये जाते हैं। शाखायें पतली एवं नम्य होती हैं। पर्ण–सवृन्त, रुपरेखा में अण्डाकार, भालाकार, अग्र की ओर नुकीले एवं सरलधार वाले होते हैं। काष्ठसार पीताभ वर्ण का सुगन्धित होता है। इसी काष्ठ से सुगन्धित उत्पलतैल प्राप्त किया जाता है। पुष्प–नीलारुणवर्ण के पत्रकोणोद्भूत एवं छोटी मञ्जरियों में खिलते हैं। फल–गोलाकार–कालिमा लिये हुये जामुनी रंग के गुठालीदार होते हैं।

पुष्पकाल	....	फरवरी, जून।
फलकाल	....	शीतकाल।
प्रयोज्य अंग	....	काष्ठसार, तैल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान :

चन्दन के वृक्ष दक्षिण भारत, मैसूर, मलाबार, आदि क्षेत्रों में प्रचुर में स्वयंजात पाये जाते हैं। भारत के अन्य प्रान्तों में इसके वृक्षों का रोपण कार्य किया जा रहा है। उद्यानों में प्रायः इसके वृक्ष देखने को मिलते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :(2)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–कफपित्तशामक, सौमनस्यजनन, मेध्य, तृष्णानिग्रहण, ग्राही, हृद्य, रक्तशोधक, श्लेष्मपूर्तिहर, मूत्रजनन, स्वेदजनन, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, दुर्गन्धहर, त्वग्दोषहर।

आमयिक प्रयोग

घिसा हुआ चन्दन शीतल स्वेदजनन, दाहशामक, पिपासाहर हृदयसंरक्षक एवं शान्तिप्रद होता है। यह पित्तसंशमन एवं अन्तर्दाह को नष्ट करने वाला है। पित्तज्वर, जीर्णज्वर चन्दन देने से पसीना आता है और शरीर का दाह कम होता है।

रासायनिक संगठन :

काष्ठ में सुगन्धित उत्पलतैल, शल, टैनिकएसिड, प्रभृति तत्व पाये जाते हैं। तैल में सैन्टेलोल, सैन्टेलिल एसिटेट पाया जाता है।

मुख्ययोग – चन्दनादिचूर्ण, चन्दनासव, चन्दनादिवटी, दशमूलारिष्ठ, अश्वगन्धारिष्ठ, अशोकारिष्ठ, च्यवनप्राश, चन्द्रप्रभावटी, सुपारीपाक, वसन्तकुसुमाकर, चन्द्रकलारस।

एरण्डादिवर्ग EUPHORBIACEAE

वर्गलक्षण :– इस वर्ग में वृक्ष एवं शाकीय वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। पर्ण विन्यास–एकान्तर या अभिमुख, पर्ण–उपपत्र युक्त, या उपपत्ररहित, द्विबीजपर्ण, पर्ण सादे, खण्डित, विभक्त, दुग्धिल होते हैं। पुष्प–छोटे, उपरिस्थ तीन खण्डवाले, बीज, चिकने, चमकीले, चित्रित और गोलाई लिये हुये लम्बे होते हैं। प्रायः काण्ड को तोड़ने पर दूध निकलता है। इस वर्ग में एरण्ड, दन्ती, आमलकी, भूम्यामलकी, स्नूही, कम्पील्लक, जयपाल, नागदन्ती, सातला आदि कतिपय उपयोगी द्रव्य आते हैं। इस कुल की वनस्पतियाँ प्रायः भेदन, वातसंशमन, उदररोगनाशक, अधोभागहर होते हैं।

303 एरण्ड (रेंडी)

द्रव्यनाम............	संस्कृत	एरण्ड, गन्धर्वहस्त, उरुवक, पञ्चाङ्गुल।
	हिन्दी	रेंडी, अरंड।
	लैटिन	Ricinus Communis Linn.

गण –(1)

चरक ने भेदनीय, स्वेदोपग, अङ्गमर्दप्रशमन तथा मधुरस्कन्ध में तथा सुश्रुत ने विदारिगन्धादि, अधोभागहर ए वातसंशमनवर्ग, गण में एरण्ड का उल्लेख है।

निरुक्ति –

एरण्ड – "ईरयति वायुं मलं वा, ईर गतौ कम्पने च" अर्थात् यह वायु को नष्ट करता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उरुवुक – "उरं महान्तं वायु वायति" अर्थात् यह सभी प्रकार के वातव्याधियों का शमन करता है।

गन्धर्वहस्त – "गन्धर्वस्य मृगभेदस्य हस्तः पादइव पत्र यस्य" अर्थात् गन्धर्वमृगविशेष के हाथ एवं पांव की आकृतिसद्यश इसके पत्र होते हैं।

पचांगुल – "पञ्च अंगुलयइव पत्राकाश यस्य" अर्थात् एरण्ड के पर्ण पालि पांचों अंगुली सद्यश आकार में विभक्त होती है।

स्वरूप परिचय :

एरण्ड के गुल्म वहुवर्षायु, काण्ड–मृदु पोला एवं मसृण होता है। शाखायें–हरित–श्वेत, मध्यमाकारी, दण्डाकृति, पर्ण–चौड़े, पांच से सात फांक युक्त, पत्रवृन्त 25 से0 मी0 35 से0 मी0 लम्बा, और पोला होता है। पुष्प–एकलिंगी, रक्ताभ बैंगनी या पीताभ वर्ण के होते हैं। फल–कण्टकयुक्त, बढ़े गुच्छों में, प्रत्येक फल में बीज 3 तक की संख्या में चित्रित बीजमञ्जा–श्वेत, स्निग्ध होती है। इन्हीं बीजों से तैल निकाला जाता है जिसे कैस्टराइल कहते हैं। श्वेत, रक्त पुष्पभेद से यह दो प्रकार का होता है।

पुष्पकाल	....	जुलाई, अगस्त।
फलकाल	....	शीतकाल।
प्रयोज्य अंग	....	मूल, पत्र, बीजमज्जा, तैल।
बीर्यकाल	....	बीज दो वर्ष, तैल 1 वर्ष।

प्राप्ति स्थान :

भारत के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में प्रायः सर्वत्र स्वयंजात एवं खेती के रुप में पाया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–गुरु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, रस–मधुर, कटु, कषाय, विपाक–मधुर, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफवातशामक, पित्तवर्धक, तैल–पित्तशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, अंगमर्दप्रशमन भेदन, स्नेहन, कृमिनिःस्सारक, कफघ्न, मूत्रविशोधन, स्तन्यजनन, गर्भाशयशोधन, स्वेदोपग, स्वेदजनन, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न एवं निरापद रेचन करने वाला है।

आमयिक प्रयोग –

यह उत्तम वातशामक औषधि है। इसलिये वातव्याधियों में यह उपयोगी माना गया है। यह गुल्म, प्लीहोदर, उदर, आनाह, कटि–बस्ति और शिरःशूल, प्रमेह, ज्वर, आमवात, रक्तविकार, शोथ आदि विकारों में उपयोगी है। एरण्ड तैल–मधुर, कटुकषायानुरस, मधुर विपाक, उष्णवीर्य, स्त्रोतोविशोधन, त्वचा, वयः स्थापन, अधोभागदोषहर, वातरक्त, हृद्रोग एवं जीर्णज्वरनाशक है। एरण्ड तैल से आंतों की श्लेष्मल त्वचा मृदु होती है और मल की गांठे बाहर निकल आती हैं। पुराने कब्ज में यह उपयोगी है। शोथ एवं गुमचोट आदि में एरण्डपत्र को बांधने एवं सेक करने से लाभ होता है।

रासायनिक संगठन –

बीज में स्थिरतैल, रिसनीन, रिसीन, श्वेतसार, म्युसिलेज, शर्करा एवं क्षार आदि तत्व पाये जाते हैं। तैल में वसाम्ल, रिसिनोलिक अम्ल, औलिक अम्ल, लिलोनिक अम्ल आदि तत्व पाये जाते हैं। जो तत्व बीजों में पाया जाता है प्रायः वही तत्व मूल एवं पत्रों में पाया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोग :

एरण्डादिक्वाथ, रास्नादिक्वाथ, बृ0 सैन्धवादितैल, एरण्डपाक।

वक्तव्य – एरण्डतैल में एक अरुचिकर गन्ध आती है जिसके कारण आसानी से इसे पीने में कठिनाई होती है। इसलिये तैल के साथ गरम दूध मिलाकर सेवन करना चाहिये। बाद मै इलायची या मीठा पान चबाना चाहिये जिससे मुख का जायका ठीक रहता है।

304 दन्ती

द्रव्यनाम............	संस्कृत	दन्ती, कुंभीक, प्रत्यगश्रेणी।
	हिन्दी	दंती।
	लैटिन	**Baliospermum montanum muell.**

गण –

चरक ने षोठश मूलिनी द्रव्यों में प्रत्यग्श्रेणी (दन्ती) द्रवन्ती, नागदन्ती का उल्लेख किया है। सुश्रुत ने श्यामादिगण में दन्ती आदि द्रव्यों का उल्लेख किया है।

निरुक्ति –

दन्ती – दाम्यन्त्यनया दोषा वा "स्वनाम ख्यात क्षुपः" अर्थात् यह वातादिदोषों का दमन करता है इसलिये इसे दन्ती कहते हैं। मूल का चर्वण करने से दान्तों की शोभा बढ़ती है। कुम्भीक–दन्ती बीज"

स्वरुप परिचय –

दन्ती के बहुशाखीय मध्यम आकार के 2 मीटर तक ऊँचे गुल्म होते हैं। शाखा मूलोद्भव, मूलस्तम्भ काष्ठीय, पर्ण–एकान्तर क्रम स्थित, अनियमित आकार में, भालाकार पक्षाकार, शिराजालयुक्त नीचे की ओर लट्वाकार, प्रायः करतलाकार 3 से 5 विच्छेदों में एवं कुछ पर्ण उदुम्वर पत्र सद्यश होते हैं। पुष्प–एकलिंगी, छोटे हरिताभ पीतवर्ण के होते हैं। पुष्प मंजरियाँ ऊपर की पत्तियों के कोणों से निकलती हैं। फल–तीनखण्डों वाला, बीज–चित्रित, मसृण कोष में होते हैं।

पुष्पकाल	....	मई, जून।
फलकाल	....	जुलाई, अगस्त।
प्रयोज्य अंग	....	मूल, बीज, पत्र।

प्राप्ति स्थान :

इसके गुल्म हिमालय की निचली उष्णघाटियों से लेकर विन्ध्याचल, बिहार, उत्तरप्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों के आसपास सर्वत्र कहीं–कहीं सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान –

गुण–गुरु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफपित्तहर, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, विरेचन, कृमिघ्न, शोथहर, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, विकाशी, विषघ्न, कुष्ठघ्न, मूल एवं बीज का लेप शोथहर एवं वेदनास्थापन है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग –

यह कफ, पित्त, उदर, आनाह, शोथ, गुल्म, अश्मरी, कृमि, शूल, अर्श, विदाह, कण्डू, कुष्ठ, रक्त विकार नाशक है। दन्ती बीज जमालगोटे के सदृश तीव्र रेचन है। दन्तीमूल शोथघ्न एवं ज्वरघ्न है। यह जलोदर, यकृद्दुदर आदि विकार नाशक है।

रासायनिक संगठन –

दन्तीमूल में रैजिन तथा स्टार्च पाया जाता है। बीजों से एक स्थिरतैल प्राप्त होता है। बीजों में झागदार तत्व भी पाया जाता है।

मुख्ययोग – दन्त्यरिष्ठ, दन्त्यादिचूर्ण, दन्तीहरीतकी। यकृतप्लीहारिलौह, अभयारिष्ठ, कुर्मायासव, अर्शकुठारस।

वक्तव्य – संहिता ग्रंथों में दन्ती, द्रवन्ती एवं नागदन्ती इन तीनों द्रव्यों का एक साथ उल्लेख मिलता है। इनके गुणधर्म भी समान हैं। द्रबन्ती को **Jatropha Curcas** linn. तथा नागदन्ती को **Croton oblongifolius** कहते हैं। नागदन्ती के मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं जोकि आसाम, बंगाल, बिहार आदि प्रान्तों में पाये जाते हैं। द्रबन्ती के गुल्म गांवों के आसपास खेतों के मेड़ों पर सर्वत्र सुलभ हैं। बीज का उपयोग जमालगोटे की तरह किया जाता है।

305 जयपाल (जमालगोटा)

द्रव्यनाम...........	**संस्कृत**	जयपाल, जेंपाल, दन्तीबीज।
	हिन्दी	जमालगोटा।
	लैटिन	**Croton tiglium** Linn.

स्वरुप परिचय :–

जयपाल के सदाहरित, मध्यम ऊँचाई के वृक्ष होते हैं। पर्ण–मसृण 5 से 10 से० मी० लम्बे, लट्वाकार, लम्बाग्र, दन्तुर, 3 से 5 शिराओं से युक्त, पुष्प–एकलिंगी, छोटे, शाखाग्र, मञ्जरियों में निकलते हैं। फल प्रायः अण्डाकार, लम्बा, त्रिकोणयुक्त एवं त्रिकोष्ठीय होता है। बीज–श्वेताभ तैलीय एवं विषैला होता है।

पुष्पकाल	अप्रैल, मई।
फलकाल	पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्यअंग	बीज एवं बीज तैल।
मात्रा	बीजचूर्ण $\frac{1}{4}$ से 190 तैल 1 बूंद।

प्राप्ति स्थान :

जयपाल चीन का आदिवासी पौधा है। आसाम आदि प्रान्तों में इसकी खेती की जा रही है। भारत में काफी समय पूर्व जैट्रोफा कर्कास के बीजों का उपयोग जयपाल के बीजों के अभाव में किया जाता रहा है।

दोषअधिष्ठानभेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण–गुरु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, रस–कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–तीव्ररेचन, कर्म–स्फोटजनन, तीव्ररेचन, शोथहर, ज्वरघ्न, लेखन, विषघ्न।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आमयिक प्रयोग

यह तीव्र रेचन और बड़ी मात्रा में विष है। बिवन्ध, आनाह में शुद्ध जैपाल बीज का प्रयोग किया जाता है। विरेचन अधिक होने पर कत्था पानी में मिलाकर या नींबू का शर्बत पिलाना चाहिये। आमवात, जलोदर एवं कफ विकारों में प्रयुक्त किया जाता है।

रासायनिक संगठन –

बीज में क्रोटन रेजिन पाया जाता है जोकि विस्फोटजनक होता है। बीज में स्टियरिक, पामिटिक ओलिइक, लिनोलिक एवं टिग्लिकएसिड आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग – इच्छाभेदी, जलोदरारिरस, नाराचरस, ज्वरमुरारिरस।

वक्तव्य – औषध उपयोग में शुद्ध जयपाल का प्रयोग करना चाहिये। बीजों के शोधन हेतु बीजांकुर (जीभ) निकाल कर गोदुग्ध में शोधन करना चाहिये। इसको गर्म पानी से भी धो लेना चाहिये। तैल हाथों पर नहीं लगना चाहिये अन्यथा यह क्षोभक, विस्फोटजनक उपद्रव करता है।

306 आमलकी (आंवला)

द्रव्यनाम........... संस्कृत .... आमलकी, धात्री, वयःस्था।
हिन्दी............................ आंवला।
लैटिन........................... **Emblica officinalis gaertn. Syn (Phyllanthus emblica)**

गण –(1) चरक ने विरेचनोपग, वयःस्थापन महाकषाय में तथा सुश्रुत ने परुषकादिगण एवं त्रिफलागण में आमलकी का उल्लेख किया है।

निरुक्ति :–

आमलकी – आंवले में लवणरस को छोड़कर शेष पांच रस होते हैं। "विद्यादामलके सर्वान् रसान् लवणवर्जितान्"

धात्री – "धयन्त्येनां धत्ते च धात्री" अर्थात् माता की तरह यह अनेकों गुणों को धारण करता है।

व्यःस्था – आयुवर्धक होने से इसे वयस्था कहते हैं।

स्वरूप परिचय :

इसका वृक्ष मध्यम आकार का होता है। काण्ड–धूसर, स्निग्ध, पर्ण–इमली के पत्र सदृश, लम्बगोल, लघुवृन्त युक्त, सघन, द्विपंक्तिक्रम में स्थित, पुष्प–एकलिंगी, श्वेताभ–पीत, नरपुष्प–बहुसंख्यक, स्त्रीपुष्प–अल्पसंख्यक, फल–मांसल, पीताभ, हरित, अण्डाकार, 6 रेखाओं से युक्त बीज–संख्या 3–4, त्रिकोणाकार, कठोर होता है।

पुष्पकाल .... मार्च, मई।
फलकाल .... शीतकाल।
प्रयोज्य अंग .... फल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थान

आंवले के वृक्ष भारत के सभी प्रान्तों के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ हैं। मध्यप्रदेश के वन्य क्षेत्र आंवले के लिये प्रसिद्ध हैं। कलमी आंवलों की बड़ी मात्रा में खेती की जाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :(2)

गुण–लघु, रुक्ष, शीत, लवणरस को छोड़कर पांचों रस विद्यमान हैं। विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–त्रिदोषहर, दीपन, रसायन, चक्षुष्य, केश्य, मेध्य, दाहप्रशमन।

आमयिक प्रयोग

आंवला कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, शोष, पाण्डुरोग, अर्श, ग्रहणी, विषमज्वर, हृदयरोग, शिरोरोग, अतिसार, अरुचि, कास, प्रमेह, आनाह, प्लीहाविकार, प्रतिश्याय, कामला, कृमि शोथ, तमकश्वास आदि विकारों में उपयोगी है। ताजे एवं परिपक्व आंवले पित्तशामक, पौष्टिक, बल्य, कान्तिवर्धक एवं वाजीकर है। सूखे आंवले स्तंम्भन, श्लेष्मघ्न, शोणितस्थापन एवं पित्तस्त्रावक है।

रासायनिक संगठन

फलों में टैनिन, गौलिकएसिड, इलेगिगएसिड पाया जाता है। इसके अलावा पेक्टिन एवं विटामिन सी मुख्य रुप से पाया जाता है।

मुख्ययोग – च्यवनप्राश, आमलकीरसायन, धात्रीलौह, त्रिफलाचूर्ण, त्रिफलाघृत, त्रिफलागुग्गुलु, रक्तशोधकवटी, आरोग्यवर्धनीवटी, चित्रकहरीतकी।

309 भूम्यामलकी (भूंईआंवला)

द्रव्यनाम...........	संस्कृत	भूम्यामलकी, तामलकी, भूधात्री।
	हिन्दी	भूईआंवला।
	लैटिन	**Phyllanthus niruri Linn.**

गण – चरक ने कासहर एवं श्वासहर महाकषाय में भंईआंवला का उल्लेख किया है।

निरुक्ति –

भूधात्री – अर्थात इसके फल आंवले के सद्यश होते हैं इसलिये इसे भूधात्री कहते हैं।

भूम्यामलकी – शाकीय क्षुप आमलकी सद्यश स्वरुप एवं गुणों में सद्यश होने से भूम्यामलकी कहते हैं।

स्वरुप परिचय :

यह एक वर्षायु, मृदु शाकीय क्षुप है। काण्ड–पतले, तलोत्थ, सीधे, रक्ताभ, वर्ण के होते हैं। पर्ण–सघन, द्विपंक्तिक, विनाल, $\frac{5}{8}$ से0 मी0 से $\frac{5}{4}$ से0 मी0 लम्बे, लट्वाकार, या आयताकार, रेखाकार, तीक्ष्णाग्र एवं अधःस्तल फीके रंग के होते हैं। पुष्प–छोटे, एकल, पत्रकोणोद्भूत, सूक्ष्मवृन्तयुक्त एवं पीताभ वर्ण के फल–छोटे, आंवले के सद्यश गोल, व्यास में, एक कतार में निकले होते हैं। इसकी दूसरी किस्में भी पाई जाती हैं। जिसे **Phyllanthus urinaria** कहते हैं । इस वनौषध का भी भूम्यामलकी के नाम से संग्रह किया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल	....	जुलाई, अगस्त।
फलकाल	....	शीतकाल।
प्रयोज्य अंग	....	पंचांग।

प्राप्ति स्थान :

भारत के सभी उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में सर्वत्र इसकी किस्में वर्षा काल में पाई जाती हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, कषाय, मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–कफपित्तशामक, दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक, अनुलोमन, स्तम्भन, रक्तशोधक, कास–श्वासहर, मूत्रल, ज्वरघ्न, वल्य, विषघ्न, गर्भाशयशोथहर, कुष्ठघ्न। वाह्यप्रयोग में लेप कुष्ठघ्न के रूप में किया जाता है।

आमयिक प्रयोग – नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक,, पंचांग क्वाथ को शीत ज्वर मै प्रयोग करने से दस्त साफ होता है, पसीना आता है। इसके प्रयोग से यकृत एवं प्लीहा की वृद्धि कम होती है। मूत्रल होने से पेशाब का प्रमाण बढ़ता है और पेशाब की जलन कम होती है। यह प्रमेह, मूत्रदोष, रक्तविकार, क्षत, तृषा, क्षय आदि रोगों में उपयोगी है।

रासायनिक संगठन

भुँईआंवला के ताजे पत्तों में फिलैन्थीन नामक तिक्त तत्व पाया जाता है। सूखी पत्तियों में हाइपोफिलैन्थरीन तथा फिलैन्थिन नामक तिक्त कार्यकारी तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग – च्यवनप्राश।

308 स्नुही (थोहर)

द्रव्यनाम............	संस्कृत	....	स्नुक्, स्नुही, गुडा, सेहुण्ड, महावृक्ष।
	हिन्दी	....	थूहर, सेहुंण्ड।
	लैटिन	....	**Euphorbia royleana Boirs.**

गण(1)–

चरक ने तीव्र विरेचन द्रव्यों में स्नुहीदुग्ध का उल्लेख किया है एवं सुश्रुत ने श्यामादिगण एवं अधोभाग द्रव्यों में सेहुण्ड का उल्लेख किया है।

निरुक्ति –

सुधा – "सुष्ठुधीमते पीयते अर्प्यति वा" अर्थात् इसके सेवन करने से आसानी से विरेचन होता है।

स्वरुप परिचय :– सेहुण्ड के कण्टकित गुल्म पाये जाते हैं। काण्ड–धारीदार पंचकोणीय, दुग्धमय, अनुपत्र–कण्टकीयुक्त, पर्ण–रुपरेखा में अभिलट्वाकार अधः पत्रावर्त्ति निचक्र, पीताभवर्ण के पुष्प पत्रकोणोंभूत् पीताभवर्ण के, फल–त्रिकोष्ठीय, बीज–छोटे–छोटे सरसों के दानों सघश भूरे रंग के होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य किस्में भी पाई जाती है जिसमें **Eupherbia nivulis** मुख्य है इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। शाखायें, सीधी, रुपरेखा में गोल, खण्डमय एवं चक्राकार क्रम में, पर्ण–अस्थायी, मांसज, सन्नवाकार, कुण्ठिताग्र एवं अवृन्त होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल	....	अप्रैल, जून।
फलकाल	....	पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग	....	मूल, पत्र, क्षीर।
मात्रा	....	$\frac{1}{2}$ ‘80180

प्राप्ति स्थान–

सेहुण्ड के मध्यमकद के वृक्ष भारत के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों के पढारी भागों में प्रायः स्वयंजात सर्वत्र पाये जाते हैं। गांवों के आसपास बाड़ों पर इसके वृक्ष लगाये हुये पाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान 2

गुण–लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, रस–कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म– कफवातहर, लेखन, तीव्ररेचन, शोथहर वेदनास्थापन, कफनिस्सारक, त्वग्दोषहर, विषघ्न।

आमयिक प्रयोग

अधोभाग द्रव्यों में थूहर उत्तम ओषधि है। इसका दूध तीव्र रेचक होता है। भगन्दर, अर्श आदि गुदजव्याधियों में इसके दुग्ध से निर्मित क्षार सूत्र का विशेष प्रभाव है। पाण्डु, उदर, गुल्म, कुष्ठ दूषीविष, शोध आदि रोगों में इसका प्रयोग किया जाता है। त्रिधारा थूहर कफघ्न, ज्वरघ्न रेचन एवं रक्तशोधक हैं। मूल का क्वाथ जीर्ण आमबात, एवं उपदंश में प्रयोग करते है। यह तीव्र रेचन एवं विषैला होने से सावधानी एवं मात्रा से प्रयोग करना हितकर हैं।

रासायनिक संगठनः–

इसमें युफार्वोन, राल, निर्यास, रवड़ एवं कैल्सियम आदि तत्व पाये जातें हैं।

मुख्ययोगः– स्नुहीतैल, वज्रसार, क्षारसूत्र।

309 कम्पिल्लिक (कमीला)

द्रव्यनाम..........	संस्कृत	....	कम्पिल्लक, रजः, रेची,
	हिन्दी	....	कमीला
	लैटिन	....	**Mallotus Phillippinensis Muell.**

गणः–चरक ने विरेचन द्रव्यों तथा सुश्रुत ने श्यामादिगण एवं विरेचन द्रब्यों में कम्पिल्लक का उल्लेख किया हैं।

स्वरुप परिचय–

कमीले के मध्यम आकार के सदाहरित वृक्ष होते हैं। पर्ण–एकान्तर क्रम में, रुपरेखा में लट्वाकार–आयताकार 1. 5 से 20.3 से० मी० लम्बे, आकार प्रकार में भिन्न, पत्र का उर्ध्वतल चिकना, अधःपृष्ठ के आधार पर तीन शिराओं से युक्त सवृन्त होता है। पुष्प–मन्जरियाँ रक्तवर्ण की नरपुष्प एवं स्त्रीपुष्प भिन्न–भिन्न होते है। फल–त्रिदल, संपुटीफल, आकार में गोल गुच्छों में होते है। फलों के पकने पर वाह्यतल रक्तवर्ण का होता है जिसे फलरज या कमीलाचूर्ण कहते है। बीजों का प्रयोग रेणुका के बीज के नाम से किया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल	....	अगस्त, सितम्बर।
फलकाल	....	सितम्बर, मार्च।
प्रयोज्य अंग	....	फलरज, (कमीला) बीज।

प्राप्ति स्थानः-

यह हिमालय के निचली उष्णघाटियों से लेकर भारत के उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में प्रायः इसके वृक्ष स्वयंजात सर्वत्र पाये जाते हैं। उड़ीसा, आसाम, विहार, मध्यप्रदेश, पंजाब में सर्वत्र उपलब्ध हैं।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2):

गुण- लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस-कटु, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण कर्म-उदरकृमिनाशक, रक्त एवं त्वचाविकार नाशक पिच्छल एवं व्रणशोषण एवं रोपणकर है। सब प्रकार के पेट के कृमि के लिये कमीला उत्तम औषध है। इससे कृमि मर कर विरेचन द्वारा वाहर निकल जाते हैं।

रासायनिक संगठन

कमीला का अधिकांश भाग रालीयस्वरुप का एक रञ्जक तत्व होता है। इसका प्रधान तत्व रांटलेरिन होता है जो ललाई लिये पीले रंग के पतले पत्राकार क्रिस्ट्रल्स के रुप में प्राप्त होता है। जल में यह बिलकूल नहीं घुलता, ऐल्कोहाल में भी अंशत घुलता है परन्तु क्षारीय द्रव्यों के विलयन में अच्छी तरह घुल जाता है।

मुख्ययोगः- कृमिघातिनीवटी, कम्पिल्लवटी।

310 पुत्रन्जीव (जियापोता)

द्रव्यनाम...........	संस्कृत	....	पुत्रंजीव, गर्भकर।
	हिन्दी	....	जियापोता।
	लैटिन	....	**Putranjiva roxburghii wall**

स्वरुप परिचयः-

जियापोता के मध्यम आकार के सदाहरित वृक्ष होते हैं। काण्डस्कन्ध, मसृण, हरितवर्ण का, बहुशाखीय, पर्ण-द्विपंक्तियुक्त चमकदार, प्रासवत या आयताकार, पत्रतट प्रायः लहरदार होते हैं, पुष्प, पीताभ, हरित, पत्रकोणीय एवं नरपुष्प तथा स्त्रीपुष्प अलग-अलग होते हैं। पुष्प जंगली बेर की आकृती में छोटे-छोटे गोल, मसृण एवं कठोर होते हैं।

पुष्पकाल	....	मई, जुलाई।
फलकाल	....	दिसम्बर, मार्च।
प्रयोज्य अंग	....	पत्र, फल।

प्राप्ति स्थानः-

इसके वृक्ष भारत के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों के वन्य क्षेत्रों देहरादून, विहार, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश के वनों में या बगीचों में लगाये हुये सर्वत्र पाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण–कटु, लवणरसयुक्त, गुरु, गर्भदायक, रुक्ष, शीतल, वातकफघ्न,। ज्वर एवं प्रतिश्याय में पत्र तथा फलों का क्वाथ दिया जाता हैं। वेदना कम करने के लिये फोड़े फुन्सियों पर लेप किया जाता है। विषघ्न होने से जान्तव स्थावर विषों के प्रभाव को कम करने के लिये बीज का उपयोग किया जाता है। छोटे बच्चों को इसकी माला पहनाने से बच्चों का अरिष्ठ कटता है इसी कारण इसे पुत्रजीव कहते है।

311 दुग्धिका (दुधी)

द्रव्यनाम...........	संस्कृत	....	दुग्धिका, नागार्जुनी, विक्षीरिणी,
	हिन्दी	....	दुधी, दुधियाघास,
	लैटिन	....	**Euphorbia hirta** Linn.
	छोटी दुधी	....	**Euphorbia thymifolia** Linn.

स्वरुप परिचय :—

इसके एक वर्षायु मृदु रोमिल तलोत्थ एवं परिसृत क्षुप होते हैं। काण्ड–चतुष्कोणीय, दुग्धमय, पर्ण–अभिमुख, अनियमित आकार में अण्डाकार, आयताकार–प्रासवत, तीक्ष्ण, दन्तुर, पुष्प–पत्रकोणीय गुच्छों में, फल–गोल समूह में पाये जाते हैं। इसी के पंचांग को बड़ी दुधी कहते हैं। इसके अतिरिक्त इसकी अन्य कई किस्में पाई जाती हैं जिसमें छोटी दुधी **Euphorbia thymifolia** Linn. कहते हैं। इसकी मृदुशाखायें जमीन पर चारों ओर परिसृल होती हैं। पतियाँ–सूक्ष्म, अभिमुख, गोल द्विपंक्तियुक्त, रक्तवर्ण की होती है।

पुष्पकाल	....	जुलाई, अगस्त।
फलकाल	....	अगस्त, जनवरी।
प्रयोज्य अंग	....	पंचाग।

प्राप्ति स्थान

इसके क्षुप भारत के सभी प्रदेशों के उष्णाकटिबन्धीय प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ है। रक्त एवं श्वेत वर्ण की दुग्धिका सर्वत्र सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफपित्तहर, वातवर्धक, अनुलोमन, उत्तेजक, रक्तशोधक, कफघ्न, श्वासहर, मूत्रल, अश्मरीनाशक, मूत्रल, आर्तवजनन, कुष्ठघ्न, विषघ्न ।

आमयिक प्रयोग–

(1) जीर्णकफविकारों एवं तमक श्वास में इसका क्वाथ दिया जाता है। बच्चों की कृमि, उदरविकार तथा कफविकारों में दुधी का सेवन किया जाता है। बमन को रोकने के लिये मूल उपयोगी माना गया है चर्म एवं दद्रुपर दूध का वाहयलेप किया जाता है। हृदय एवं श्वसन क्रिया पर इसका अवसादक प्रभाव पड़ता है। आमशय विकारों में कुछ पेय आदि पदार्थो के सेवन करने के बाद इसे देना चाहिये तथा सुजाक, शुक्रमेह एवं शुक्रतारल्य में प्रयुक्त किया जाता है।

रासायनिक संगठन–दुग्धी में क्वर्सेटिन से मिलता जुलता एक–क्रिस्टली क्षारोदसत्व होता हैं । इसमें गैलिकएसिड, तथा उत्पलतैल एवं क्षारोद प्रभृति तत्व पाये जाते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

312 सातला

द्रव्यनाम........... संस्कृत ....सातला, सपृला,
हिन्दी ....तितली,
लैटिन ....**Euphorbia dracunculoides Lam.**

गणः चरक विरेचन द्रव्यों एवं सुश्रुत ने श्यामादिगण एवं उभयतोभागहर द्रव्यों में उल्लेख किया है ।

स्वरूप परिचयः– सातला के एकवर्षायु शाकीय क्षुप होते हैं । काण्ड– तलोत्थ, सामान्यधूसर वर्ण के एवं पीताभ क्षीर युक्त होते हैं । शाखायें प्रायः द्विविभक्त, क्रम से, पूर्ण–क्रम से पर्ण – अभिमुख, अवृन्त, रेखाकार, प्रासवत् आयताकार, रेखाकार एवं पत्राग्र कुछ तीक्ष्ण होते हैं। पुष्प– पत्रकोणीय द्विविभक्त होते हैं। बीज– तैलीय, फल –धारीदर हिमालय की घाटियों में इसकी उपयोगी किस्म पाई जाती है जिसे **Euphorbia pilosa** कहते हैं। शास्त्रीय सातला के गुण इस द्रव्य में विद्यमान हैं ।

पुष्पकाल ....दिसम्बर, जनवरी।
फलकाल ....जनवरी, फरवरी ।
प्रयोज्य अंग ....पंचांग ।

प्राप्ति स्थानः–सातला भारत के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में प्रायः सर्वत्र गेंहू के खेतों में इसके पौध स्वयं जात पाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान2:–गुण–कटु, लघु, तिक्त रसयुक्त, शोथ, कफ, आनाह, उदावर्त एवं उभयतोभागहर हैं। चर्म रोग में यह उपयोगी हैं।

वक्तव्यः–सातला संदिग्ध वनस्पति हैं। संहिता ग्रन्थों में शंखिनी– एवं यवतिक्ता के साथ सातला का उल्लेख मिलता है। टीकाकारों ने सातला से स्नुहीभेद अर्थ भी किया है। आधुनिक टीकाकारों ने सातला से अंगुलियाथुहर **Euphorbia Tirucalli** l.एवं शिकाकाई **Acacia Concinna** D C. को उल्लेख है। लेखक के विचार से शास्त्रीय सातला **Euphorbia Pilosa** की सम्भावना अधिक है ।

वटादिवर्ग URTICACEAE

वर्गलक्षणः–इस कुल में वृक्ष, गुल्म एवं शाकीय वनस्पतियाँ पाई जाती है पर्ण– एकान्तर, साधारण, उपपत्रयुक्त, दीर्घलोमी, पुष्प–छोटे, एकलिंगी या द्विलिंगाश्रयी, कर्णिका के अन्दर जमे हुए एवं बीज कोष एक खण्डवाला होता है । काण्ड एवं पत्र को तोड़ने पर दूध निकलता है। इस वर्ग में बट, उदुम्बर, पीपल, प्लक्ष आदि कतिपय पच्चक्षीरी वृक्ष आते हैं। इस कुल के द्रव्य ग्राही, रक्तदोषहर, व्रणरोपक, वेदनास्थापन, दाहनाशक होते हैं।

313 वट (बड़)

द्रव्यनाम........... संस्कृत ....वट, न्यग्रोध, वहुपाद, रक्तफल
हिन्दी ....बड़
लैटिन ....**Ficus bengalensis Linn.**

गण (1):–चरक ने मूत्रसंग्रहणीय महाकषाय एवं कषायस्कन्ध में तथा सुश्रुत ने न्यग्रोधादिगण में वट का उल्लेख किया है ।

निरुक्तिः– वट– वटति वेष्ठपति मूलैर्वटः" अर्थात् इसकी जटायें मूलजड़ों की तरह निकलती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

न्यगोधः–न्यक् तिर्यग् गुणद्विमार्ग मूलैरन्य ग्रोहति वा'' अर्थात् मूल की तरह स्थिर होती हैं।

स्वरुप परिचयः–वरगद के छायादार, सदाहरित विशाल वृक्ष पाये जाते हैं। शाखायें मोटी प्रायः चारों तरफ परिसृत वायव्यजड़े निकलकर जमीन की ओर झुकी रहती है इसी कारण इसे वट या न्यग्रोध कहते हैं। पर्ण– एकान्तर, रुपरेखा में अण्डाकार, लट्वाकार, कुण्ठिताग्र, आधार की ओर किंचित् हृदयाकार सवृन्त, पत्रतट सरल एवं चर्मिल होते हैं। नर एवं स्त्री पुष्प एक साथ हाइपैंथोडियम में स्थित होते हैं। पुष्प–पत्रकोणोद्भूत, गोलाकार, जोड़ों में रोमिल पकने पर रक्तवर्ण के होते है।

पुष्प–फलकाल .... अप्रैल, जून ।
प्रयोज्य अंग .... त्वक्, क्षीर, पत्र, वटजटा फल

प्राप्तिस्थानः–इसके वृक्ष हिमालय की तराई से लेकर उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में सड़कों के आसपास या गांवों के निकट सर्वत्र पाये जाते हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2):– गुण– गुरु, रुक्ष, रस–कषाय, विपाक–कटु वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–वेदनास्थापन, व्रणरोपण, शोथहर, चक्षुष्य, रक्तस्तम्भक, रक्तपित्तहर, गर्भाशयशोथहर, शुक्रस्तम्भक, मूत्रसंग्रहणीय, अतिसार प्रवाहिकानाशक, गर्भाशयस्थापन, रक्त एवं श्वेतप्रदर में विशेष उपयोगी है ।

नव्य मत से बड़ का क्षीर वेदनास्थापन एवं व्रणरोपण है। कोमलपत्र श्लेष्मघ्न और छाल स्तम्भनकर है। बहुमूत्र में मूलछाल के क्वाथ का प्रयोग किया जाता है । सड़े हुये दांतों में बड़ का दूध भरने से पीड़ा शान्त होती है । स्वप्न–दोष एवं वीर्य के शीघ्रपतन में वटक्षीर का प्रयोग किया जाता है । वटजटा के लेप से स्तन कठोर एवं चूर्ण को शुक्रमेह में देते हैं ।

रासायनिक संगठनः–छाल एवं शुंङ्ग में टैनीन, मोम एवं रबड़ पाया जाता है। फल– में तैल ऐल्ब्युमिनाइडस्, कार्बोहाइड्रेडस् आदितत्व, पाये जाते हैं ।

मुख्ययोगः– न्यग्रोधादिचूर्ण, न्यग्रोधादिक्वाथ, न्यग्रोधादिघृत ।

314 उदुम्बर (गूलर)

द्रव्यनाम.......... संस्कृत ....उदुम्बर, हेमदुग्ध, यज्ञाङ्ग ।
हिन्दी ....गूलर ।
लैटिन ....**Ficus glomerata Roxb.**

वर्ग (1):–चरक ने मूत्रसंग्रहणीय महाकषाय, कषायस्कन्ध में एवं सुश्रुत के न्यग्रोधादिगण उदुम्बर का उल्लेख है ।

निरुक्तिः– उदुम्बरः–उदति शयेतांवते वा'' उल्लंधित–मंबरमनेन'' अर्थात् इसका विशाल वृक्ष काफी उँचा होता है ।

यज्ञाङ्गः–इसकी काष्ठ यज्ञकर्म में श्रेष्ठ मानी जाती है।

हेमदुग्धः–गूलर काष्ठ का दुग्ध पीताभ वर्ण का होता है। छाल शीतल गुण प्रधान होने से शीतवल्कल कहते हैं। इसे अपुष्पफल भी कहते हैं ।

स्वरुप परिचयः–इसके बड़े क्षीरी वृक्ष होते हैं। काण्ड स्कन्ध अपेक्षाकृत लम्बा एवं मोटा होता है। छाल लालिमा लिये हुये भूरे रंग की एवं वृक्ष को क्षत करने पर दूध जैसा स्त्राव निकलता है जो वाद में पीले रंग का हो जाता है । पर्ण–रुपरेखा में लट्वाकार, अण्डाकार, भालाकार, एकान्तरक्रम में एवं कुण्ठिताग्र होती है। फल एवं पुष्प सगुच्छ शाखा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एवं प्रशाखाओं में लगते हैं पकने पर ये फल रक्तवर्ण के होते हैं। कच्चे फलों की सब्जी भी बनाई जाती है। इस पर सदा फल लगते हैं इसलिये इसे सदाफल भी कहते हैं ।

पुष्प–फलकाल ....जनवरी, अप्रैल ।
प्रयोज्य अंग ....काण्डत्वक्, फल, मूल, पत्र, क्षीर ।

प्राप्ति स्थानः–इसके वृक्ष भारत के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में विहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश एवं हिमालय की निचली घाटियों में सर्वत्र सुलभ है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2):–गुण–गुरु, रुक्ष, रस–कषाय, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–कफपित्तशामक, अपक्व फल–अग्निसादक रक्तपित्तशामक, गर्भाशय शोथहर, शुक्रस्तम्भन, मूत्रसंग्रहणीय, प्रमेहनाशक, दाहप्रशमन, पक्वफल–श्लेष्मःनिस्सारक, मनः प्रसादकर, शीतल, स्तम्भक, पौष्ठिक, शोथहर, पत्रक्वाथ–शोथहर, वेदनास्थापन, वर्ण्य एवं व्रणरोपणकर है। दूध–शीतल, स्तम्भक, रक्तसंग्राहिक पौष्टिक एवं शोथहर है। रक्तस्राव एवं शोथ में गूलर छाल एवं फलों का उपयोग किया जाता है ।

आमयिक प्रयोगः–यह भग्नसंधानकर, रक्तविकार, मूर्च्छा, दाह, तृषा एवं मधुमेह में उपयोगी है। गूलर छाल का फाण्ट अत्यार्त्तव में प्रयुक्त होता है। स्तम्भन होने से रक्तातिसार एवं प्रवाहिका में उपयोगी है। मूत्रसंग्रहणीय होने से वहुमूत्र में उपयोगी है ।

रासायनिक संगठनः–छाल में टैनीन, मोम, काउचूक, फासफोरिकएसिड, रवड़ एवं भस्म आदि तत्व पाये जाते हैं।

योगः–उदुम्बरसार, मधुमेहारियोग, उशीरासव, कर्पूरादिवटी ।

315 काकोदुम्बर (कठगूलर)

द्रवयनाम........... संस्कृत ....काकोदुम्बर, मलपु, जघनेफला, फल्गु।
हिन्दी ....कठगूलर, कठूमर।
लैटिन ....**Ficus hispida Linn.f.**

निरुक्तिः–काकोदुम्बरिका स्वनामख्यात खरपत्र विशेष वृक्ष विशेष" अर्थात् इसके पत्र खरस्पर्श होते हैं।

फल्गुः–फलति फल्गु" इसके फल काफी संख्या में लगते हैं।

स्वरुपपरिचयः–इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। शाखायें मृदु, रोमिल होती है। पर्ण–विपरीत, अण्डाकार, गोलाकार, दन्तुर एवं खरस्पर्श होते हैं। फल–हरिताभ वर्ण के गूलर के समान आकार में काफी संख्या में शाखा एवं काण्ड पर लगते हैं। फल–रोमिल होते हैं।

पुष्प फलकाल .... अगस्त, सितम्बर।
प्रयोज्य अंग .... मूल, फल, छाल।

प्राप्ति स्थानः–इसके वृक्ष भारत के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों के नमदार नालों, के किनारे एवं उद्यानों में सर्वत्र पाया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः–तिक्त, कषाय, रस युक्त, शीतल, वामक, कफ, पित्त नाशक, श्वेतकुष्ठ, पाण्डु अर्श एवं पाण्डु में उपयोगी है। यकृतवृद्धि में इसका उपयोग किया जाता है। विषमज्वर में छाल का चूर्ण दूध के साथ देते हैं। श्वित्र में मूल क्वाथ का वाह्य एवं आभ्यन्तर उपयोग किया जाता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठनः– इसकी छाल में टैनीन, सैपोनिन एवं ग्लुकोसाइड पाया जाता है ।

316 अश्वत्थ (पीपल)

द्रव्यनाम.......... संस्कृत ....अश्वत्थ, पिप्पल, चलपत्र ।
हिन्दी ....पीपर. पिप्पल ।
लैटिन ....**Ficus religiosa Linn.**

गण (1): चरक ने मूत्रसंग्रहणीय महाकषाय एवं सुश्रुत के न्यग्रोधादिगण में पीपल का उल्लेख है ।

स्वरुप परिचयः–पीपल के पर्णपाती विशाल छायादार वृक्ष होते हैं। मुख्यकाण्ड से शाखायें निकल कर चारों तरफ फैलती है । पर्ण–सवृन्त, लट्वाकार, हृदयाकार, चमकदार, मसृण होते हैं। काण्डस्कन्ध को क्षत करने पर दूध निकलता है इसी कारण यह पच्चक्षीरी वृक्षों में आता है। पुष्प एवं फल एक साथ कोषीय होते हैं। फल–पकने पर गाढ़े लाल या बैंगनी रंग के हो जाते है। पीपल के पुराने वृक्ष लाक्षा के लिये उत्तम समझे जाते हैं।

पुष्प एवं फलकाल......................अप्रैल, जून ।
प्रयोज्यअंग ....फल, पत्र, छाल ।
मात्रा ....क्वाथ 4 से 8 तोला, स्वरस 1 से 2 तोला

प्राप्ति स्थानः– पीपल के वृक्ष समस्त भारतवर्ष के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में लगाये हुये मिलते हैं। भारतीयों का यह पवित्र वृक्ष है। पीपल के वृक्ष देवस्थानों पर विशेष रुप से लगाये जाते हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान 2ः–गुण–गुरु, रुक्ष, रस–कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–कफपित्तशामक, शोथहर, वेदनास्थापन व्रणरोपण, वर्ण्य, स्तम्भन, रक्तशोधक, रक्तपित्तशामक कफघ्न–स्नेहन, अनुलोमन, मृदुरेचन, श्वासहर, नव्यमत से छाल स्तम्भन रक्तसंग्रहिक, पौष्ठिक एवं पत्र आनुलोमिक है ।

रासायनिक संगठनः–फलों मे ऐलव्युमिनायडस्, कार्वोहाइड्रेड, वसामयअंश अंश रंजकतत्व, सिलिका, फासफोरस तथा भस्म आदितत्व पाये जाते हैं। छाल में टैनिन 40% रवड़ एवं मोम आदि तत्व पाये जाते हैं ।

317 प्लक्ष (पाकर)

द्रव्यनाम........... संस्कृत .... प्लक्ष, जटी, पर्कटी,
हिन्दी .... पाकर, पिलखन,
लैटिन .... **Ficus Lacor** Buch-Ham. **Ficus Infectoria** Roxb.

गणः–(1) चरक मूत्रसंग्रहणीय महाकषाय, कषायस्कन्ध एवं सुश्रुत ने न्यग्रोधादिगण में प्लक्ष का उल्लेख किया है।

स्वरुप परिचयः– इसके मध्यम आकार के वृक्ष स्वयंजात एवं सड़कों के किनारे रोपित पाये जाते हैं। काण्ड–मसृण, वहुशाखीय एवं छायादार होता है। पर्ण–आम्रपर्ण सद्यश, हरितवर्ण के दुग्धिल, फल–पर्णकोणोद्भूत, छोटे–छोटे, गोल होते हैं। ये फल लाल एवं विन्दुकित होते हैं। इसकी कई किस्में पाई जाती है।

पुष्प फलकाल ....दिसम्बर, मार्च,
प्रयोज्य अंग ....छाल, पत्र ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थानः– पाकर के वृक्ष भारत के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों के सभी क्षेत्रों में स्वयंजात या रोपित हुये पाये जाते हैं।

अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2) :–यह कषाय रस, शीतल, मूत्रसंग्रहणीय, तथा व्रण योनिरोग, दाह पित्त, कफ, आम, शोध, रक्तपित्त, रक्तदोष, मूर्च्छा, प्रलाप और भ्रम नाशक है ।

इसके छाल का क्वाथ व्रणप्रक्षालन एवं गण्डूष के काम में उपयोगी माना जाता है । पञ्चक्षीरी वृक्षों में पाकर का उल्लेख है ।

नोट :–फल्गु अंञ्जीर नामक वृक्ष भी इसी कुल में पाया जाता है । जिसे Ficus Carica कहते हैं ।

तूतादिवर्ग MORACEAE

वर्गलक्षण :–इस कुल में वृक्ष एवं वृक्षक पाये जाते हैं। वर्ण–एकान्तर साधारण, उपपत्रयुक्त, पुष्प–छोटे एकलिंगी या द्विलिंगी, फल मधुर होते हैं।

318 तूत (शहतूत)

द्रव्यनाम...........	संस्कृत	तूत, तूद ।
	हिन्दी	शहतूत ।
	लैटिन	**Morus alba Linn.**

निरुक्ति :–तुद ब्यथने शब्द से तूत बना है। इसे तूद भी कहते हैं जो कि प्रसिद्ध फलदार वृक्ष विशेष है ।

स्वरुप परिचय :–शहतूत के मध्यम आकार के वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण– 3 से 8 से0 मी0 चौड़े, अण्डाकार एवं मञ्जरियों में, फल–मृदु लम्बे दानेदार एवं पकने पर रक्ताभ कृष्ण एवं पीताभ वर्ण के होते हैं। इसकी दो तीन किस्में पाई जाती है। जिसमें **Morus acedosa** कहते हैं ।

पुष्पकाल	............................अप्रैल, मई।
फलकाल	............................जून, जुलाई।
प्रयोज्यअंग	............................फल, त्वक् (छाल)

प्राप्तिस्थान :–शहतूत के वृक्ष उत्तरप्रदेश, आसाम, बिहार, बंगाल आदि प्रान्तों में सर्वत्र पाये जाते हैं। रेशम के कीड़ों को पालने हेतु इसके वृक्षों का विशेष रुप से रोपण कार्य किया जाता है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1) :–फल–गुरु, सारक, शीतल, वातपित्त–हर, दाहप्रशमन, एवं वल्य है। छाल–उदरकृमिनाशक, कण्ठशोथ, रोहिणी, मुखपाक नाशक है। मुखपाक एवं स्वर भंग में पत्तियों के क्वाथ से गण्डूष भी कराया जाता है ।

विजयादिवर्ग CANNABINACEAE

वर्गलक्षण :–इस वर्ग में गुल्म एवं क्षुप पाये जाते हैं। पत्र एकान्तर, मृदुगन्धवाला, पुष्प स्त्रीपुष्प एवं पुरुष भेद से अलग –अलग होता है । इस कुल में भांग मुख्य रुप से पाया जाता है ।

319 बिजया (भांग)

द्रव्यनाम............	संस्कृत	भांग, बिजया, शुक्रनाशन ।
	हिन्दी	भांग ।
	लैटिन	Cannabias sativa Linn..

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निरुक्ति :–**बिजया**– अर्थात् रोगों पर विजय पाने के कारण इसको बिजया कहते हैं।

भांग :–मदकारक होने के कारण इसे भंगा कहते हैं।

स्वरुप परिचय :–भांग के एक वर्षायु, गन्धयुक्त, तलोत्थ क्षुप पाये जाते हैं। स्त्री एवं पुरुष भेद से अलग–अलग पौधे पाये जाते हैं पर्ण–सवृन्त, अभिमुख, एकान्तर क्रम में स्थित, पत्र–एक से 5 तक खण्ड वाले, जिनमें मध्यस्थ खण्ड सबसे बड़ा, पत्रतट–तीक्ष्ण, दन्तुर, सपुष्प–हलके–पीताभ वर्ण के. नरपुष्प–छोटे–छोटे, नम्य–मञ्जरियों में रालदार द्रव्य लगा होता है जिसे गांजा कहते हैं। भांग के पत्तों पर जो रालदार पदार्थ हाथ पर चिपक जाता हे तथा उसे खुरचकर संग्रह किया जाता है उसे चरस कहते हैं। मादा पौधों से ही गांजा तैयार होता है ।

पुष्पकाल	....	जून, जुलाई ।
फलकाल	....	पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग	....	पत्र, बीज, गांजा, चरस ।
मात्रा	....	भांग 1 से 2 र0, गांजा $\frac{1}{2}$ र0 से 4 र0

प्राप्तिस्थान :–इसके पौध हिमालय की तराई वाले भागों में पंजाव से बंगाल तक स्वयंजात पाये जाते हैं। उत्तरप्रदेश बिहार एवं वंगाल में यह विशेष रुप से पाया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :–गुण–लघु, तीक्ष्ण, रुक्ष, रस–तिक्त, विपाक कटु, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–मादक, प्रधानकर्म–वेदनास्थापन निद्राजनन, आक्षेपहर, दीपन–पाचन, ग्राही, पित्तसारक, अधिक मात्रा में मूर्च्छाजनक एवं मदकारी है। यह कामोत्तेजक कफ एवं वात को दूर करने वाली है। पाचन विकृति, अतिसार कालीखांसी, अनिद्रा एवं आक्षेप में भांग का उपयोग किया जाता है। ववासीर की पीड़ा शान्त करने के लिये भांग को दूध में उवालकर एवं पीसकर उसकी टिकिया बांधते हैं।

रासायनिक संगठनः भांग में भूरे रंग का राल, केनाविनोन पाया जाता है। राल में गाठे रंग का चिचिचिपा तैल पाया जाता है । यह तैल अत्यन्त मदकारी होता है।

मुख्ययोग :–जातीफलादिचूर्ण, मदनानन्दमोदक, विजयावटी

चिरविल्वादिवर्ग ULMACEAE

वर्गलक्षण :–इस वर्ग में मध्यम प्रमाण के वृक्ष एवं वृक्षक पाये जाते हैं। इस वर्ग में शाखायें लटकी हुई गुच्छाकार, पर्ण–अण्डाकार एवं लट्वाकार होते हैं। पुष्प–छोटे एवं गुच्छों में खिलते हैं।

320 चिरबिल्व (चिलविल)

द्रव्यनाम............	संस्कृत	....	उदयकीर्य, चिरविल्व ।
	हिन्दी	....	चिलबिल ।
	लैटिन	....	**Holoptelia integrifolia Planch.**

वर्ग :–गुडूच्यादिवर्ग , भा. प्र.

स्वरुप परिचय :–इसके मध्यम आकार के पर्णपाती वृक्ष होते हैं। शाखायें विनम्र, झुकी हुई, गुच्छाकार तथा श्वेताभ वर्ण के होते हैं। पर्ण– दो कतारों में निकले हुये, अण्डाकार या लट्वाकार अखण्ड, दुर्गन्धित, होते हैं। पुष्प–छोटे, हरित, गुच्छों में, फल–सपक्ष, चिपटा, गोल, पंखदार होते है। काण्ड चवाने पर मुखपीत वर्ण का होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल ....फरवरी, मार्च ।
फलकाल ....अप्रैल, मई ।
प्रयोज्य अंग ....छाल, बीज ।

प्राप्तिस्थानः इसके वृक्ष हिमालय के निचले घाटियों से लेकर बुन्देलखण्ड, पञ्जाव, बिहार, आसाम, आदि सभी प्रान्तों में सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1):-यह वमन, पित्त, अर्श, कृमि, कुष्ठ एवं प्रमेह को नष्ट करने वाला है। छाल शोथहर एवं संधिशोध नाशक है। दाद पर बीजको जलाकर लेप करते हैं।

रासायनिक संगठन :-छाल में लुवावदार पदार्थ पाया जाता है ।

321 लकुच (वडहर)

द्रव्यनाम............ संस्कृत .... पनस,
हिन्दी .... कटहल,
लैटिन .... **Artocarpus heterophyllus lam..**
कुल .... N0......................**Moraceae.**

स्वरुप परिचय :-इसके मध्यम आकार के वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण 5 से 12 तक लम्बे 2 से 6 तक चौड़े, सवृन्त, अण्डाकार, खरस्पर्श होते हैं। पुष्प-एकलिंगी, फल-गोल गांठदार 2 से 4 व्यास में पकने पर पीताभ वर्ण के स्वाद में अम्ल होते हैं। फल के अन्दर कटहल के समान रेशा एवं बीज पाया जाता है।

फलकाल .... जुलाई, अगस्त ।
प्रयोज्य अंग .... छाल, फल, बीज ।

प्राप्ति स्थान :-भारत के उष्ण प्रान्तों में प्रायः सर्वत्र उद्यानों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1):-उष्ण, गुरु, मधुर, रस-अम्ल, नेत्रों के लिये अहितकर, पके फल, मधुर तथा अम्ल युक्त पित्त को नाश करने वाला, जठराग्निवर्धक, रोचक, वृष्य एवं विष्ठम्भकर है। बीज विरेचक होते हैं। विरेचन के लिये एक या 2 बीज क्षीर के साथ देते हैं। व्रणपर छाल चूर्ण का प्रयोग किया जाता है। फल अम्ल होने से धातुओं का शोधन मारण के काम में आता है।

अक्षोडादिवर्ग JAGLANDACEAE

वर्गलक्षण :- इस वर्ग गुल्म एवं मध्यम आकार के वृक्ष पाये जाते हैं। वृक्ष प्रायः पर्णपाती, पत्र-अण्डाकार, आयताकार, पुष्प एक लिंगी मञ्जरियों में होते हैं। फल-गोल कठोर, धारीदार होते हैं। इस वर्ग अखरोट आदि उपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं। इस कुल द्रव्य प्रायः वल्य, वृष्य, शोथहर एवं वातशामक माने जाते हैं ।

322 अक्षोड (अखरोट)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... अक्षोट, असोड ।
हिन्दी .... अखरोट ।
लैटिन .... **Juglans regia Linn.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सुश्रुते फलद्रव्येषु अक्षोटक पठ्यते ।

निरुक्ति :–अक्षोड–अक्षः विभीतक इव औडति पत्रैयः वा मदन फलाकार फलः मध्ये किंचिदुन्नत रेखान्वितः पर्वतपीलु आखरोट् इति लोके डल्हणः' अर्थात् इसके फल मदनफल के सदृश धारीदार एवं बादाम की मज्जासदृश गिरी विशेष फल को अखरोट कहते हैं ।

स्वरुप परिचय :–अखरोट के पर्णपाती, गन्धयुक्त मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। छाल, धूसर एवं अबुलम्ब दिशा में दरारदार होती है। मूलछाल को प्रचालित भाषा में दन्दासा कहते हैं। जिसका कि उपयोग दांतवन के रुप में होता है। पर्ण–अयुग्म–पक्षाकार, 15 से0 मी0 से 22 से0 मी0 लम्बे, अण्डाकार, आयताकार एवं सरलधारवाले होते हैं । पुष्प एक लिंगी नम्य, मञ्जरियों में स्त्री पुष्प शाखाओं पर एवं पत्तियों के अभिमुख निकलते हैं। फल लम्बे, गोलाकार, मदनफल के आकार में, फलत्वचा, चर्मिल, सुगन्धित, गुठली–कठोर, रेखायुक्त, दो कोष्ठों वाली गिरीधूसर, श्वेत, टेढी–मेढ़ी, रुपरेखा में मस्तिष्क जैसी, खाने में स्वादिष्ट एवं तैलीय होती है।

पुष्पकाल	....	जुलाई, अगस्त।
फलकाल	....	सितम्बर, अक्टूबर ।
प्रयोज्य अंग	....	गिरी, मूलछाल ।

प्राप्तिस्थान :–इसके वृक्ष हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों में काश्मीर, उत्तराखण्ड, हिमाचलप्रदेश, कुमायूँ, अफगानिस्तान, भूटान, आदि क्षेत्रों में 3, 300 मीटर की उँचाई तक सर्वत्र सुलभ है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1):–गुण– गुरु. स्निग्ध, रस–मधुर, विपाक– मधुर, वीर्य–उष्ण, कर्म–वातशमक, कफपित्तवर्धक, मेध्य, दीपन, स्नेहन, अनुलोमन, कफनिस्सारक, वृस्य, वृंहण, इसका लेप वर्ण्य, कुष्ठघ्न, शोथहर एवं वेदनास्थापन है। अखरोट के तैल का उपयोग बादाम के तैल के समान किया जाता है । मूलछाल का उपयोग दन्दासा के नाम से दाँतौन के रुप में प्रायः होता है। फल के वाहरी छिलका का उपयोग पैरों के पानी के काटने पर लेप के रुप में किया जाता है। अखरोट का उपयोग प्रायः बाजीकर पाकों में प्रयोग होता है। यह प्रसिद्ध मेवा है ।

रासायनिक संगठन :–अखरोट में 40 से 45% तक स्थिरतैल पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें जुगलेंडिकएसिड, एवं रेजिन आदि तत्व पाये जाते हैं।

कटफलादिवर्ग MYRICACEAE

वर्गलक्षण :–इस वर्ग में वृक्ष एवं वृक्षक पाये जाते हैं। पर्ण–एकान्तर सादे, द्विबीजपर्ण, बीजकोष, उपस्थित, एक खण्डवाला एवं फल–मांसल, एकवीजीय होते हैं। इस वर्ग में मुख्य रुप कटः फल पाया जाता है ।

223 कटफल (कायफल)

द्रव्यनाम...........	संस्कृत	....	कट्फल ।
	हिन्दी	....	कायफल, काफल ।
	लैटिन	....	Myrica nagi Linn..

गण :–चरक के सन्धानीय, शुक्रशोथन, वेदनास्थापन महाकषाय तथा सुश्रुत के लोध्रादि एवं सुरसादिगण में कटःफल का उल्लेख है ।

निरुक्ति :–इसका फल स्वाद में कषाय–मधुर एवं गुठली कठोर होने से कटफल कहते हैं ।

स्वरुप परिचय :– इसके मध्यम उँचाई सदाहरित वृक्ष होते हैं । काण्डत्वक् काफी मोटी वाहर से धूसरवर्ण की कृष्णाभ एवं खुरदरी होती है । पर्ण–शाखाग्रों पर समूहवद्ध के रुप में रुपरेखा में भालाकार या कुछ आयताकार,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लट्वाकार एवं अधःपृष्ठ मुरचई रंग के होते हैं। पत्र सरल एवं नवीन पर्ण सूक्ष्म–दन्तुर मसलने पर कुछ गन्ध वाले होते हैं। पुष्प– एकलिंगी छोटे–छोटे नर एवं स्त्री पुष्प अलग–अलग होते हैं। फल–अण्डाकार अष्ठिफल में पृष्ठपर दानेदार पकने पर रक्ताभ–वर्ण का स्वाद में कषाय–मधुर होता है।

पुष्पकाल .... दिसम्बर, जनवरी ।
फलकाल .... अप्रैल, मई ।
प्रयोज्य अंग .... छाल, फल ।

प्राप्तिस्थान :–इसके वृक्ष उत्तराखण्ड हिमालय, हिमाचल प्रदेश कश्मीर, कुमायूँ, नेपाल आदि क्षेत्रों में 1,200 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2,400 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र पाये जाते हैं ।

दोषअधिष्टान भेदेन कर्मज्ञान :–गुण–तीक्ष्ण, रस–कटु तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–शिरोविरेचन, श्वास कास नाशक, रक्तस्तम्भक, वेदनास्थापन, प्रतिश्याय एवं मुखरोग नाशक है। यह ग्राही, स्वेदजनन, कफघ्न, वातहर एवं गर्भाशयोत्तेजक हैं। शिरशूलनाशक, अग्निमांद्य, अरुचि, कुपचन, अतिसार में लाभदायक है ।

रासायनिक संगठन :– टैनीन, मधुरतत्व, लवण, एवं रञ्जकतत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :–कट्रफलादिनस्य, कट्फलादिक्वाथ, कट्फलचूर्ण ।

भोर्जपत्रादिवर्ग BETULACEAE

224 भूर्ज (भोजपत्र)

द्रव्यनाम............ संस्कृत .... भूर्ज, भूर्जपत्र ।
हिन्दी .... भोजपत्र ।
लैटिन .... **Betula Utilis D.Don.**

स्वरुप परिचयः–इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। छाल मसृण, श्वेत या किंचित् लालिमा लिये हुये, सफेद, धब्बेदार, कई पर्त वाली एक साथ सटी हुई होती है जिन्हें भोजपत्र कहते हैं। प्राचीन काल में भोजपत्र का उपयोग कागज के रुप में प्रयुक्त होता रहा है। पर्ण–4से० मी० से 8 से० मी० लम्बे, लट्वाकार, लम्बाग्र, दन्तुर, चिपचिपे होते हैं । पुष्प–मञ्जरियों में छोटे, फल कुछ कठोर से होते हैं । भूर्ज के पुराने वृक्षों पर फंगस की वृद्धि एवं संचय से एक किस्म का द्रव्य पाया जाता है जिसे भूर्जग्रन्थी कहते हैं।

पुष्पकाल .... जून, जुलाई ।
फलकाल .... शीतकाल ।
प्रयोज्य अंग .... छाल, (भोजपत्र) पत्र ।

प्राप्ति स्थानः–इसके वृक्ष उत्तराखण्ड हिमालय में कुमायूँ, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, भूटान, कश्मीर की घाटियों में 3,000 मी० की ऊँचाई से लेकर 3,800 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है ।

दोषअधिष्टान भेदेन कर्मज्ञानः–छाल–कटु, कषाय, उष्ण–वातानुलोमक, उत्तेजक, स्तम्भक, एवं कामला, पैत्तिकज्वर, तथा योषापस्मार में उपयोगी है। कर्णस्राव एवं विषाक्त व्रणप्रक्षालन में भी उपयोग किया जाता है। भूतवाधा एवं ग्रहदोष में इसका धूप दिया जाता है। भूर्जपत्र का उपयोग तन्त्र मन्त्र हेतु अधिक रुप से प्रयुक्त होता है ।

रासायनिक संगठन :–छाल में बेटुलिन एवं उड़नशील तैल पाया जाता है ।

मायापलादिवर्ग (FAGACEAE)

वर्गलक्षणः–इस वर्ग में वृक्ष एवं वृक्षक प्रायः दोनों किस्म के द्रव्य पाये जाते हैं। पर्ण–एकान्तर, पक्षाकार, पुष्प–वाह्याभ्यन्तर संयुक्तकोश, पुंकेशर 5–10 बीज कोष –अधस्थ, फल–कवच वाला पाया जाता है। इस वर्ग में माजूफल, वान आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

325 माजूफल (मायाफल)

द्रव्यनाम.............. संस्कृत .... माजूफल ।
हिन्दी .... मायाफल ।
लैटिन .... Quercus infectoria aliv.

स्वरुप परिचयः–माजूफल वस्तुत फल नहीं हैं। यह Quercus infectoria नामक वृक्ष की डालियों पर एक विशेष प्रकार का कृमि के छिद्र करने और उन छिद्रों पर उसके अण्डे रखने से उन स्थानों पर एक प्रकार की गाढें उत्पन्न हो जाती है इसी दानेदार कीटगृह को माजूफल कहते है औषधि प्रयोग में वह माजू या माजूफल श्रेष्ठ माना जाता है जिसके कि कीट वाहर नहीं निकले होते हैं। Gall उन्नाव के आकार का, नीलाभ वर्ण का उभारदार होता है ।

प्रयोज्य अंग .... वृक्ष–व्रणज कीटगृह (माजूफल) ।
मात्रा .... 1 ग्राम से 2 ग्राम ।

प्राप्ति स्थान :–यह यूनान, तुर्की, सीरिया एवं फारस में पाया जाता है। भारतवर्ष में इसका आयात मुख्य रुप से तुर्की तथा फारस से होता है ।

गुणधर्मः–गुण–लघु, रुक्ष, रस–कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म–स्तम्भन, उपशोषण, रक्तस्तम्भन, व्रणरोपण, केशरंञ्जन, मूत्रसंग्रहणीय तथा योनिस्त्राव को कम करने वाला है । इसके अतिरिक्त यह लेखन तथा विषघ्न है। श्वेतप्रदर एवं रक्तप्रदर में इसके चूर्ण की पोटली कपड़े में वांधकर योनि में रखते हैं एवं इसके क्वाथ की उत्तरबस्ति देते हैं। यह बालों को काला करता है। खिजावों में इसका प्रयोग होता है चूर्ण को पुराने अतिसार एवं संग्रहणी में प्रयुक्त करते हैं।

रासायनिक संगठनः–माजूफल में मुख्यतः टैनिकएसिड अल्प मात्रा में गैलिकएसिउ, शर्करा, स्टार्च, आदि तत्व पाये जाते हैं ।

सोमादिवर्ग GENTACEAE

वर्गलक्षण :–इस वर्ग में बहुबर्षायु गुल्म पाये जाते हैं। पर्ण–अभिमुख, अखण्ड, सिराजालयुक्त, द्विबीजपर्ण एवं संयुक्त कोष वाले होते हैं। फल–कोषीय, सुगन्धित, अष्ठिफल सद्यश होता है। इस वर्ग में मुख्य रुप से प्रचलित सोम (टूटगंठा) आदि श्वासघ्न द्रव्य पाये जाते हैं।

326 सोम (टूटगंठा)

द्रव्यनाम.................. संस्कृत .... सोम, (टूटगंठा)।
हिन्दी .... सोमकल्प।
लैटिन .... **Ephedra gerardiana** wall.

स्वरुप परिचयः–प्रचलित सोम के वहुवर्षायु, सर्पणशील झाड़ीनुमा गुल्म पाये जाते हैं। काण्ड, मजबूत, पतला, ग्रन्थिलसा एवं मूल जड़ों से ही काण्ड परिसृत होता है । प्रति ग्रंथि पर दो और अभिमुख या अनेक चक्र में शाखायें निकलती है । ये हरी एवं रेखांकित होती हैं, ये शाखायें पत्रविहीन मालूम होती हैं । केवल ग्रन्थियों पर शल्कसद्यश पत्र होते हैं। नरपुष्प, विदण्डक, अकेले या गुच्छों में पीताभ वर्ण के, नारीपुष्पों की मञ्जरी अकेली होती है । फल–लट्वाकार, लाल, मांसल, बीज कठोर होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल	....	जुलाई. अगस्त ।
फलकाल	....	सितम्बर. अक्टूबर ।
प्रयोज्य अंग.	....	काण्ड (शाखायें) ।
मात्रा चूर्ण	....	6 से 9 माशे तक ।

प्राप्तिस्थानः–प्रचलित सोम (इफेड्रा) हिमालय प्रदेश, में उत्तराखण्ड, गढ़वाल, कुमांयू हिमाचल प्रदेश जम्मूकश्मीर राज्य के लद्दाख क्षेत्र में 3,000 मीटर की उँचाई से लेकर 3, 800 मीटर की उँचाई तक सर्वत्र सुलभ है । इसकी कई किस्म योरोप, चीन आदि देशों में पाई जाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः–तमकश्वास में इफेड्रीन का प्रयोग किया जाता है। यह मूत्रजनन, यकृदुत्तेजक, ज्वरघ्न, वातहर, आमनाशक, शोथहर है। तमकश्वास के वेग को कम करने के लिये यह उत्तम औषध माना जाता है ।

रासायनिक संगठनः–इसमें 0.28 से 2.8 प्रतिशत इफेड्रीन नामक सक्रिय एल्केलाइड पाया जाता है।

वक्तव्यः–सुश्रुतोक्त सोमकल्प यह नहीं है । तमकश्वास में प्रभावकारी औषध होने से सोम के नाम से इस द्रव्य का चिकित्सा में व्यवहार होता है । 24 प्रकार के सोमों का अध्ययन किया जा रहा है ।

देवदार्व्यादिवर्ग PINACEAE

वर्गलक्षणः–इस वर्ग वृक्ष एवं वृक्षक पाये जाते हैं। पर्ण–सरल, सूच्याकार नोकदार, संकड़े, संयुक्तकोश, द्विबीजपर्ण वाले होते हैं। काण्ड से प्रायः रेजिन निकलता है । पुष्प–नारी एवं पुरुष अलग–अलग होते हैं। इस वर्ग में सरल, देवदार, तालीसपत्र आदि कतिपय उपयोगी द्रव्य पाये जाते हैं ।

327 देवदारु (देवदार)

द्रव्यनाम..................	संस्कृत	....	देवदारु, भद्रदारु, सुराहव ।
	हिन्दी	....	देवदार, दयार ।
	लैटिन	....	**Cedrus deodara (Roxb) Looud..**

गण (1):–चरक ने स्तन्यशोधन एवं अनुवासनोपग महाकषाय में और कटुक स्कन्ध में एवं सुश्रुत के बातसंशमनवर्ग में भद्रदारु का उल्लेख है।

निरुक्ति :

देवदारुः–देवानां प्रियं दारु यस्यतत् काष्ठचन्दनस्य देवप्रियत्वात् स्वनाम ख्यात सुगन्धित काष्ठविशेषः " अर्थात् यह देवताओं का प्रिय वृक्ष है । वृक्ष मंगलकारी होने से इसे भद्रदारु कहते हैं।

स्वरुप परिचयः–देवदारु के सदाहरित उँचे एवं सुन्दर वृक्ष पाये जाते हैं। शाखायें चारों ओर फैली हुई कोमल होती है। प्रकाण्डस्तम्भ सीधा मोटा, छाल लालिमा लिये हुये–भूरे रंग की होती है। पर्ण–सूच्याकार त्रिकोणाकार, चिकने, चमकदार, सघन गुच्छों में निकलती है। नरपुष्प–शाखाग्रों पर, लम्बे, एकाकी, अवृन्त काण्डज, मञ्जरियों में निकलते हैं। फल–पंखे के आकार सदृश, बीज–त्रिकोणाकार, या अर्धचन्द्राकार, सपक्ष होते हैं।

पुष्पकाल	....	सितम्बर, अक्टूबर ।
फलकाल	....	अप्रैल, मई ।
प्रयोज्य अंग	....	काष्ठसार, बुरादा, तैल ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थानः–देवदारु के वृक्ष प्रायः 2,100 मीटर की उँचाई से लेकर 3,600 मीटर की उँचाई तक प्रायः उत्तराखण्ड गढ़वाल, कुमायूँ, हिमाचलप्रदेश, जम्बूकश्मीर आदि हिमालय प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)ः–गुण–लघु, स्निग्ध, रस–तिक्त, कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–वातकफशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, कृमिघ्न, व्रणशोधन–रोपण, दीपन, पाचन, अनुलोमन, कफनिस्सारक, श्वासमार्गशोधक, मूत्रजनन, प्रमेहघ्न, गर्भाशय तथा स्तन्यशोधन, लेखन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न । देवदारु का तैल तिक्त, कटु कषाय, दुष्ठव्रणशोधन, कृमि, कुष्ठ एवं वात को नष्ट करने वाला है। इसके अतिरिक्त तैल उत्तम व्रणशोधन एवं रोपणकर है। काष्ठसार का प्रयोग आध्मान, शोथ, हिक्का, एवं ज्वर आदि में किया जाता है।

रासायनिक संगठनः–काष्ठ में ओलियोरेजिन तथा गहरे रंग का तैल पाया जाता है ।

मुख्ययोगः–देवदार्व्यादिक्वाथ, देवदार्व्यादिचूर्ण, रास्नादिक्वाथ ।

328 सरल (चीड़)

द्रव्यनाम.................... संस्कृत	....	सरल, श्राह्व, श्रीवेष्ठक ।
हिन्दी	....	चीड़ ।
लैटिन	....	**Pinus roxburghi** sorgent.

गणः–चरक ने पुरीषविरजनीयगण एवं सुश्रुत ने एलादिगण में श्रीवेष्ठक का उल्लेख किया है।

निरुक्तिः–सरल पूतिकाष्ठे, देवदारुसद्यशः इति" अर्थात् इसका काष्ठ देवदारु सद्यय सुगन्धित होता है ।

स्वरुपपरिचयः–चीड़ के वृक्ष सीधे लम्वे पर्णपाती एवं प्रायः सघन रुप में पाये जाते हैं। ये वृक्ष दिखने में बहुत सन्दर मालुम पड़ते हैं । पर्ण–लम्बी, सूच्याकार, तथा तीन–तीन एक साथ निकली होती है । काण्डत्वक् वाहर से धूसरवर्ण का होता है । काण्ड पर चीरा लगाने से पारदर्शक गाढ़ा स्त्राव रेजिन निकाला जाता है । यह रैजीन विशेष उपयोगी है इससे तारपीन का तैल एवं विरोजा तैयार होता है। फल–कठोर, शल्कपत्र सद्यश, बीज कोषीय, स्वादिष्ठ होते हैं।

पुष्पकाल	....	मई, जून ।
फलकाल	....	जनवरी. मई ।
प्रयोज्य अंग	....	निर्यास, काष्ठसार ।

प्राप्तिस्थान ः– इसके वृक्ष हिमालय के निचली घाटियों 900 मीटर की उँचाई से लेकर 2,400 मीटर की उँचाई तक प्रायः उत्तराखण्ड गढ़वाल जम्बूकश्मीर, हिमाचलप्रदेश, कुमायूँ आदि प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः(2) ः–

गुण–लघु तीक्ष्ण, स्निग्ध, रस–कटु, रिक्त, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–श्वयथुविलयन, जन्तुघ्न, पूतिहर, व्रणशोधन, रक्तरोधक, मूत्रजनन, नाड़ीउत्तेजक कफनिस्सारक, श्लेष्मपूतिहर, त्वग्दोषहर, गर्भाशयशोथहर, व्रणरोपण में विशेष उपयोग होता है ।

आमयिक प्रयोगः

आध्मान में तारपीन का तेल पेट पर लगाते हैं । जीर्णकास एवं राजयक्ष्मा में गन्धविरोजा बहुत उपयोगी है । इसके प्रयोग से फुफ्फुस और श्वास नलिका का रक्ताभिसरण बढ़ता है । कफ कम होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रसायनिकसंगठन :– इसके निर्यास से तारपीन का तैल एवं 80% प्रतिशत विरोजा प्राप्त होता है ।

329 तालीसपत्र (तालीस)

द्रव्यनाम.................. संस्कृत	....	तालीस, शुकवर्ह आमलकीपत्रम्।
हिन्दी	....	तालीसपत्र।
लैटिन	....	**Abies webbiana Lindl.**

गण (1)–सुश्रुत ने शिरोविरेचन द्रव्यों में तालीस का उल्लेख किया है ।

निरुक्तिः–तालीस–भूम्यामलकी सदृशं स्वनामख्यात सुगन्धित पर्ण द्रव्य विशेष" अर्थात् भूंई आंवले एवं आमलकी पत्र सदृश सुगन्धित द्रव्य विशेष हे । इसी कारण इसे आमलकीपत्र भी कहते हैं ।

स्वरुपपरिचयः–तालीस के सदाहरित ऊँचे वृक्ष पाये जाते हैं । काण्ड–छाल रक्ताभवर्ण की एवं कुछ सुगन्धित होती हैं । पर्ण दो कतारों में 2.5 से० मी० 3.5 से० मी० लम्बी, रेखाकार, चिपटी, नोकीली, उर्ध्वपष्ठ पर गहरे हरे रंग के एवं अधपृष्ठ हलके पीताभ मुरचई रंग के होते हैं। पत्तियों के सूखने पर विशेष प्रकार की सुगन्ध आती है । पुष्प एकलिंगी नरपुष्प एवं नारीपुष्प अलग–अलग वृक्षों पर पाये जाते हैं । फल–कठोर देवदार फल सदृश होते हैं । बीज संख्या में अनेक कोषीय होते हैं । इसकी दूसरी किस्म हिमालय में पाई जाती हैं जिसे थुनेर **Taxus baccata** कहते हैं व्यवहार में इसके पत्र प्रायः तालीस पत्र के नाम से मिलते हैं । इसके अतिरिक्त हिमालय की घाटियों में अन्य किस्म कभी–कभी तालीस के नाम से उपलब्ध होती है जिसे **Rhododendnon anthopogon** कहते हैं । पञ्जाव के वैध प्राय इसी के पत्रों का उपयोग तालीस के नाम से करते हैं ।

पुष्पकाल	....	मई, जून।
फलकाल	....	जनवरी, मई।
प्रयोज्य अंग	....	पत्र।

प्रातिस्थान :–

इसके वृक्ष हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों उत्तरा–खण्ड गढ़वाल, कुमायूं, हिमाचलप्रदेश, जम्मूकश्मीर, सिक्किम, नेपाल आदि क्षेत्रों में पाये जाते हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :–(2)

लघु, तीक्ष्ण, रस–तिक्त, विपाक–मधुर, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–वातकफशामक, वेदनास्थापन, रोचन, दीपन, वातानुलोमन, ज्वरघ्न, श्वासकासहर, मूत्रल एवं वलवर्धक, यह संकोचविकास प्रतिवन्धक, और आर्तवजनन हे । श्वासनलिकाशोथ एवं दमा में तालीसपत्र उपयोगी है । तालीसपत्र का अतिमात्रा में प्रयोग करने से कभी–कभी विषाक्त लक्षण पैदा हो जाते हैं ऐसी स्थिति में वमन एवं मूर्च्छा होती है ।

मुख्ययोग – तालीसादिचूर्ण, तालीसदिवटी, टी० जी० टैवलेट । व्योषादिवटी, सुपारीपाक, नष्ठपुष्पान्तकरस, कनकासव ।

330 हाऊवेर (हपुषा)

द्रव्यनाम.................. संस्कृत	....	हपुषा।
हिन्दी	....	हाऊवेर।
लैटिन	....	**Juniperus communis L.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरुप परिचयः—गुल्म, सदाहरित, सघन, एवं पत्र काण्ड सुगन्धित होते हैं । पर्ण—रेखाकार, अभिप्रासवत्, आयताकार, नुकीले, एवं 3—3 के चक्र में निकलते हैं । शाखा के साथ इनकी स्थिति समकोण होती है । उर्ध्वपृष्ठनतोदर, अर्धपृष्ठ उन्तोदर, गाढ़े हरे रंग का होता है। पुष्प—पत्रकोणोभूदत् नम्र, अवृन्तकाण्डज, पुष्प ब्यूह में खिलते हैं । फल—गोल, मांसल छोटे वेरी सद्यश पकने पर कृष्ण नीलाभ वर्ण के सुगन्धित रेजीन युक्त होते हैं । इसकी कई किस्में हिमालय में पाई जाती हैं जिनमें **juniperus recurva, Juniperus macropoda** आदि मुख्य हैं ।

पुष्पकाल .... मई, जून ,
फलकाल .... सितम्बर, अक्टूबर
प्रयोज्य अंग .... फल, पत्र एवं उड़नशीलतैल ,

प्रतिस्थान :–

इसके गुल्म हिमालय क्षेत्र में प्रायः उत्तरा खण्ड गढ़वाल, हिमाचलप्रदेश, जम्मू—कश्मीर, सिक्किम, भूटान, नैपाल आदि स्थानों में 3,000 मीटर की ऊँचाई से लेकर 4,500 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :– (1)

गुण —रुक्ष, तीक्ष्ण, रस—कटु, तिक्त, विपाक – कटु, वीर्य—उष्ण प्रधानकर्म—कफबातशामक, मूत्रल, आर्तवप्रर्वतक, कफ निस्सारक, दीपन, अनुलोभन, नाड़ीउत्तेजक श्वासकासघ्न, हृद्य ।

आमयिक प्रयोग :–

वाहय—त्वग्—रोग, शोथ, व्रण, आभ्यन्तरगुल्म, उदरशूल, कृमि, श्वास, कास, पील्हावृद्धि, जलोदर, कष्ठार्त्तव, प्रमेह, श्वेतप्रदर, मूत्रकृच्छ्र, एवं विष विकारों में उपयोगी है । नब्यमत से हाउवेर वातनाशक, उत्तेजक, और मूत्रजनन हे । इसकी सीधी क्रिया वृक पर होती है और इससे मूत्र की मात्रा बढ़ती है । सिक्किम, भूटान हिमाचलप्रदेश में इसके परिपक्व फलों का संग्रह किया जाता है उड़न शील तेल का उपयोग शराब में किया जाता है ।

रासायनिक संगठन :–

परिपक्व फलों में उड़नशील, राल, शर्करा, एवं जुनिपेरिन आदि तत्व पाये जाते हैं । पाइनीन, **केडिनीन,** टर्पिनिओल तथा ज्युनिपर कैम्फर - तत्व पाये जाते हैं ।

वक्तव्य :– भावमिश्र ने दो प्रकार के हपुषा का उल्लेख किया है जिसमें एक किस्म को विस्त्रा, विस्त्रगन्धा, पलाश्री आदि नामों से उल्लेख किया है । विस्त्रगन्धा से मलसद्यशगन्ध विशेष द्रव्य का संकेत है जोकि शास्त्रीय द्रव्य **caseria tomentosa** है । इसके परिपक्वफलों में हपुषा के गुणधर्म की काफी समानता है । श्री ठा० बलवन्तसिंह ने भी इस द्रव्य को स्वीकार करने की सिफारिश की है।

हरिद्रादिवर्ग SCITAMINAE

वर्गलक्षणः— इस वर्ग में गुल्म एवं बहुवर्षी कन्दिल पौधे पाये जाते हैं । पर्णक्रम एकान्तर, एकबीजपर्ण, पत्र काण्ड में परिवेष्ठित, पुष्पवाहयकोश एवं पुष्पाम्यन्तर कोष के दल—2—3 पुंकेशर 1, बीजकोश अधःस्थ, और तीन खण्डवाला होता है । इस वर्ग में प्रायः हरिद्रा, शटी, कचूर, एला, केमुक, आद्रक आदि द्रव्य पाये जाते हैं । गुणधर्मो की दृष्ठी से इस वर्ग के द्रव्य वर्ण्य, लेखन, कुष्ठघ्न, पाण्डु, विष, प्रमेह, कास, पीनस आदि में उपयोगी है ।

331 हरिद्रा (हल्दी)

द्रव्यनाम.................... संस्कृत .... हरिद्रा, रजनी, निशा, गौरी, पीता, कृमिघ्नी,
हिन्दी........................ हलदी
लैटिन .... **Curcuma longa Linn.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुण–(1) चरक ने लेखनीय, कुष्ठघ्न कण्डूघ्न, विषघ्न, महाकाषाय तिक्तस्कन्ध एवं शिरोविरेचन द्रव्यों में हरिद्रा का उल्लेख किया है । सुश्रुत ने हरिद्रादि मुस्तादि तथा श्लेष्मसंशमन वर्ग में हरिद्रा का उल्लेख किया है ।

निरुक्ति :–

हरिद्रा–हरित,पीत वर्ण द्राति गच्छति स्वनाम ख्यात कन्द विशेष" अर्थात् यह वर्ण निखारने वाला पीले रंग का होने से हरिद्रा कहते हैं । इसी कारण इसे गौरी पीता भी कहते हैं ।

कृमिघ्नी–मूलकन्द कृमिनाशक होने से इसे कृमिघ्नी कहते हैं ।

स्वरुप परिचय :–

हल्दी के बहुवर्षायु स्वभाव के कोमल काण्डीय 60 से 90 से० मी० ऊँचे पौधे होते हैं । पर्ण मूलोद्भव समूह में पत्रनाल भी प्रायः फलपत्रक के बराबर तथा कोशाकार से होते हैं । पत्र फलक रुपरेखा में आयताकार, मालाकार, अग्र एवं आधार दोनों तरफ उत्तरोत्तर कम चौड़े होते जाते हैं । पुष्प वाहक दण्ड 15 से० मी० तक लम्बा, प्रायः कोशाकार पत्रनालों से आवृत होता है । पुष्प–पीताभ सवृन्त काण्डज, मञ्जरियों में खिलते हैं । भौमिककाण्ड (Rhizome) गांठदार, पीतवर्ण के एवं भौमिक काण्ड से सूत्राकार जड़े निकलती हैं । बाजारों में जो हल्दी मिलती है उसे विशेष ताप विधि से संस्कारित किया जाता हे । हल्दी के मुख्य कन्द प्रायः गोलाकार एवं अंगुली सदृश होते हैं ।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त ,।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्यअंग .... मूलकन्द।
मात्रा .... चूर्ण 1 से 3 माशा।
स्वरस .... 1 से 2 तोला।

प्राप्ति स्थान :–

भारत के सभी प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है । बम्बई प्रान्त में काफी मात्रा में इसकी खेती होती है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञानः–(2)

गुण–रुक्ष, लघु, रस–तिक्त, कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–कफवातशामक, पित्तरेचक, पित्तशामक, वेदनास्थापन, रुचिवर्धक, कटुपौष्ठिक, आमपाचन, अनुलोमन, कृमिघ्न, रक्तप्रसाधन, कफघ्न, कुष्ठघ्न, विषघ्न, शोथहर, वर्ण्य, लेखन एवं व्रणरोपक है ।

आमायिक प्रयोगः–

प्रमेह में मूत्रगदला होने पर हल्दी एवं आंवले के क्वाथ का सेवन करना लाभदायक हे । कास, रक्तविकार, एवं शीतपित्त में हल्दी का सेवन कराने से लाभ होता है, सूजे हुये मस्से पर हल्दी को घीकुमार के रस में पीसकर लगाने से लाभ होता है, हल्दी का चूर्ण मरक्खन में मिलाकर मलने से त्वचा नरम होती है और कतिपय त्वचा के विकार नष्ट होते हैं । व्रण पर हल्दी का चूर्ण छिड़कने से व्रण संकुचित होकर जल्दी रोहण होता है । गुमचोट, आघात आदि में हल्दी एवं गुड़ का दूध के साथ सेवन तथा लेप करने से लाभ होता है । कतिपय श्वसनसम्बन्धी विकारों में हल्दी का उपयोग कारगर सिद्ध हुआ है । यह घरेलू चिकित्सा सामग्री की उपयोगी औषधि है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिक संगठनः–

हरिद्रा में कर्कुमिन नामक स्फटिकीय स्वरुप का पीतरंजक तत्व पाया जाता है । इसमें कपूर जैसी हल्की सुगन्ध आती है । तेल का मुख्य घटक कर्कुमिन नामक टर्पीन होता हे । इसके अतिरिक्त 24% स्टार्च, एवं ऐल्बुमिन नामक तत्व भी पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग–हरिद्रादिखण्ड, दशमूलारिष्ठ, अश्वगन्धारिष्ठ, कुमार्यासव, पुनर्नवामण्डूर, चन्द्रप्रभावटी, दंशांगलेप ।

वक्तव्य – निघण्टुकारों ने हरिद्रा, कर्पूरहरिद्रा, वनहरिद्रा, दारुहरिद्रा भेद से चार का उल्लेख किया है ।

332 आम्रगन्धा हरिद्रा (आमाहल्दी)

द्रव्यनाम...................... सस्कृत .... कर्पूरहरिद्रा, आम्रगन्धा, कर्पूरा।
हिन्दी............................... आमाहल्दी।
लैटिन .... **Curcuma amada** Roxb.

स्वरुपपरिचयः

क्षुप द्विवर्षायु, काण्डहीन, हरिद्राक्षुप के समान, पर्ण 30 से० मी० लम्बे, आयताकार, दीर्घवृताकार, तीक्ष्णाग्र होते हैं। पर्ण को मसलने पर कुछ विशिष्ठ किस्म की गन्ध आती है । पुष्प–हल्के पीताभवर्ण के होते हैं ।

मूल–आद्रक सद्यश आम्रगन्ध सद्यश शंक्वाकार होते हैं । आमाहल्दी को तोड़ने पर टूटा हुआ तल हल्दी की भांति गांठे नारंगी रंग का दिखाई पड़ती हैं । कन्दों से भी कपूर सी उग्र गन्ध आती है । इसकी दूसरी भी वन्य किस्म पाई जाती हे जिसे **curcuma aromatica** कहते हैं जोकि विहार, बंगाल, एवं मध्य हिमालय में पाया जाता है ।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त।
फलकाल............................ पुष्प काल के बाद।
प्रयोज्य अंग .... मूलकन्द।
मात्रा मूल .... 2 से 4 ग्राम।

प्रप्ति स्थान :

इसके क्षुप प्रायः मध्य हिमालय, बंगाल, बिहार, कोंकण, एवं पूर्वि हिमालय क्षेत्र में पाये जाते हैं बंगाल आदि प्रदेशों में इसकी खेती की जाती है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (1)

रस तिक्त, कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, वातानुलोमन, दीपन, पाचान एवं ग्राही है ।

आमायिक प्रयोग :–

चोट एवं खुजली आदि में इसका लेप किया जाता है । लताकरञ्ज के पत्रस्वरस के साथ कृमिरोग में इसका उपयोग किया जाता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिसंगठन :

इसमें एक उड़नशील तेल, राल, शर्करा, गोंद, आर्गेनिक अम्ल आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग :– .... दार्वीरसाञ्जन ।

333 कर्चूर (कचूर)

द्रव्यनाम .... संस्कृत ....कर्चूर, द्रविड़।
हिन्दी ....कचूर, नरकचूर।
लैटिन .... curucuma zedoaria Rosc.

गुण–कर्चूर का चरक सूत्रस्थान अध्याय 29 में उल्लेख है ।

स्वरुप परिचयः

कचूर का पौधा हल्दी सद्यश होता हे, परन्तु इसकी गांठ एवं जड़ों में भेद पाया जाता हे । इसके पौधे 45 से॰ मी॰ तक ऊँचे, पर्ण 30 से॰ मी॰ 40 से॰ मी॰ तक लम्बे, आयताकार, लम्बाग्र, भालाकार, निलारुणवर्ण के होते हैं । पुष्प–पीतवर्ण के, मूलकन्द अल्पगन्धयुक्त, गांठदार सूखने पर कठोर, होते हैं । कचूर एवं नरकचूर को कुछ चिकित्सक वर्ण भेद से अलग–अलग मानते हैं । नरकचूर को **curcum caesia** कहते हैं ।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त।
फलकाल............................ पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग .... मूलगांठ।
मात्रा मूल .... 1 से दो ग्राम।

प्राप्ति स्थान :

इसके पौधे सारे भारत में पाये जाते हैं । पूर्वि हिमालय की तराई चटगांव तथा कनाड़ा में स्वयंजात होते हैं । इसका बड़ा भेद होता है जिसे नर कचूर कहते हैं । बंगाल में नरकचूर की खेती की जाती है ।

दोषआधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (1)

गुण – लघु, तीक्ष्ण, रस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु वीर्य–उष्ण, प्रधानकर्म–शोथहर, वेदनास्थापन, दीपन, अनुलोमन, यकृतदुत्तेजक, आर्तवजनन, श्वासकासहर, यूनानी मत से वातानुलोमन, सौमनस्यजनन, आमाशय को बल देने वाला, आर्तवजनन, श्वयथुविलयन है ।

आमयिक प्रयोग :–

यह कफवात, श्वास, हिक्का, अर्श, पील्हा, गुल्म, कुष्ठ आदि रोगों में उपयोगी है ।

रासायनिक संगठन :

इसमें उड़नशील तेल, रैजिन, करकुमिन, शर्करा, स्टार्च, एवं प्राप्त पीताभ श्वेत और चिपचिपा तथा कपूर की तरह गंध स्वादमय होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोग :- कर्चूर तेल ।

334 तवक्षीर (तीखुर)

द्रव्यनाम .... संस्कृत ....तवक्षीर।
हिन्दी ....तीखुर।
लैटिन .... **curcuma angustifolia** Roxb

स्वरुप परिचय :-

यह अमेरिका आदिवासी पौधा हे । इसका पौधा सीधा, पतला 90 से० मी० तक ऊँचा होता है । पर्ण बड़े, अण्डाकार, भालाकार, पुष्प-श्वेत गुच्छों में कन्द-बड़े मांसल, वेलनकार एवं अभिलट्वाकार, तीखुर यह अत्यन्त श्वेतवर्ण का सूक्ष्म चूर्ण है, जोकि एक किस्म का स्टार्च है ।

प्राप्ति-स्थान -

यद्यपि यह अमेरिका का अदिवासी पौधा हे तथापि उत्तरप्रदेश बिहार, उड़ीसा, बंगाल, आसाम, केरल में यह पाया जाता है ।

आमयिक प्रयोग -

तीखुर का बच्चों एवं रोगियों के लिये सुपाच्य खाद्य के रुप में प्रयोग किया जाता है । स्टार्च के रुप में भी इसका प्रयोग किया जाता है ।

335 शटी (कपूरकचरी)

द्रव्यनाम.................. संस्कृत .... शटी, कर्पूरा।
हिन्दी............................ कपूरकचरी।
लैटिन .... **Hedychium spicatum** Ham- ex Smith.

गण-(1) चरक हिक्का निग्रहगण एवं श्वासहर महाकषाय में शटी का उल्लेख किया है ।

स्वरुपपरिचय :

कपूरकचरी के हल्दी सद्यश बहुवर्षायु कन्द वाले क्षुप होते हैं । पर्ण 30 से० मी० लम्बे रुपरेखा में आयताकार आयताकार-भालाकार एवं मसृण होते हैं । पुष्प-समूह में विदण्डिक, श्वेतवर्ण के सुगन्धित होते हैं । केशर सूत्र हल्के लाल रंग के होते हैं, फल गोलाकार एवं चिकना होता है, मूल जमीन में अनुप्रस्थ दिशा में फेलता है, जोड़ने पर आद्रक सद्यश कन्दों से सुगन्धी आती है । बाजार में कपूरकचरी के नाम से चपटे कटे हुये खण्ड मिलते हैं जिनमें कर्पूर जैसी उग्र सुगंन्धि आती है ।

पुष्पकाल .... जुलाई अगस्त।
फलकाल .... पुष्प काल के बाद।
प्रयोज्य अंग .... मूलकन्द।
मात्रा मूल चूर्ण........................ 1 से 3 ग्राम।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थान :

कपूरकचरी विशेष रुप से उत्तराखण्ड गढ़वाल, कुमांयु, हिमाचल प्रदेश, जम्बूकश्मीर, सिक्किम, नेपाल, भूटान आदि हिमालय के अनुष्णशीत स्थानों के 1,500 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2,700 मीटर की ऊँचाई तक सर्वत्र सुलभ है ।

आमयिक प्रयोग :

कपूरकचरी का प्रयोग कास, श्वास, शूल, हिक्कादीपन एवं वातनाशक है, दन्तशूल को दूर करने हेतु कपूरकचरी का मञ्जन उपयोगी है ।

रासायनिक संगठन :

कपूरकचरी के जड़ में रेजिन, सुगन्धित द्रव्य एवं स्थिरतेल तथा स्टार्च म्युसिलेज, एलब्यूमिन, सेलूलोज, एवं शर्करा प्रभृति तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग :

शठ्यादिचूर्ण, शठ्यादिक्वाथ, हिमांशुतेल,

336 एला (छोटी इलायची)

द्रव्यनाम.................. संस्कृत .... त्रुटि, एला, सूक्ष्मएला।
हिन्दी............................ छोटी इलायची।
लैटिन .... **Elettaria cardamomum** maton.

गुण : चरक के शिरोविरेचनगण, श्वासहर, अङ्गमर्दमहाकषाय, एवं कटुकस्कन्ध में उल्लेख है । सुश्रुत ने एलादिगण में उल्लेख किया है ।

निरुक्ति– एला– एलयति मुखदौर्गन्ध्यि मित्येला" स्वनामख्यातपर्णद्व्यम्" अर्थात् यह मुखशोधक होने के साथ–साथ मुख दुर्गन्धि नाशक है ।

त्रुटि :– यह देश वोधक शब्द है ।

स्वरुप परिचय :

यह एक प्रसिद्ध द्रव्य है । इसकी छोटी एवं बड़ी इलायची के नाम से दो किस्में होती हैं । इसका पौधा 1.30 मीटर से 2.50 मीटर ऊँचे, सदाहरित, बहुवर्षायु, होते हैं । भौमिककाण्ड कन्दवत् भौमिककाण्ड के उर्ध्वभाग से कई पत्र चारों तरफ डालियों के रुप में खड़ी निकलती है । पर्ण–एकान्तरक्रम में 30 से० मी० से 60 से० मी० लम्बे रुपरेखा में आयताकार भालाकार होते हैं । पुष्पवाहक दण्ड काण्ड के मध्यभाग से निकलता है । पुष्प श्वेताभ–गुलाबी रंग के गुच्छों में खिलते हैं । पत्र, पुष्पों को मसलने पर एला की सुगन्ध आती है । फल त्रिकोणीय सामन्य स्फोटी, अण्डाभ, लम्वोतरा होता है । फलों के अन्दर बारीक तीव्र सुगन्धित बीज होते हैं । बीजों में काफी सुगन्धित तैल पाया जाता है ।

पुष्पकाल .... अप्रैल, मई,
फलकाल .... सितम्बर, अक्टूबर
प्रयोज्य अंग .... फल, बीज,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थान :

भारत के दक्षिणी एवं पश्चिमी राज्यों विशेषकर मैसूर, कर्नाटक, ट्रावनकोर, कोचीन के पहाड़ी जंगलों में स्वयंजात होते हैं । आजकल इन प्रदेशों में इसकी खेती की जाती है ब्रह्मा, लंका आदि प्रदेशों में इसकी कई किस्में पाई जाती है । देश भेद से बाजारों में इसकी कई किस्में पाई जाती है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

गुण – लघु रुक्ष, रस–कटु, मधुर, विपाक–दाहशमक, रोचन, अनुलोमन, श्वास–कासहर, तृष्णानाशक, बामकरोधक एवं अङ्गमर्दनाशक है ।

आमयिक प्रयोग :

छोटी इलायची हृदयरोग, श्वास–कास, छर्दि, तृष्णा, एवं क्षयनाशक है । यह रोचन, दीपन, पाचन शिरोरोग, वस्तिरोग एवं मुखरोगों में उपयोगी है ।

रासायनिक संगठनः

बीजों में 3 से 8 प्रतिशत एक उड़नशील तेल पाया जाता है । इसमें प्रधानतः टर्पीनीन, एवं टर्पिनियोल, होता है । उत्पलतैल के अतिरिक्त स्टार्च एवं पीतरजंक आदि तत्व भी पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग :

एलादिगुटिका, एलादिमोदक, एलादिचूर्ण, एलादिक्वाथ, गर्भपालरस, चन्दनादिवटी, कर्पूरादिवटी, चन्द्रप्रभावटी, सारिवाद्यारिष्ठ, सीतोपलादिचूर्ण, तालीसादिचूर्ण ।

339 एला (बड़ी इलायची)

द्रव्यनाम.................... संस्कृत .... वृहदेला, स्थूला, पृथ्वीका।
हिन्दी............................. बड़ी इलायची।
लैटिन .... **Amomum subulatum** Roxb.

गुण–सुश्रुत के एलादिगण से एवं चरक ने शिरोविरेचन द्रव्यों में एला का उल्लेख है ।

स्वरुप परिचयः :

बड़ी इलायची के 2 मीटर से 3 मीटर तक ऊँचे सदाहरित, बहुवर्षायु क्षुप होते हैं । भौमिक काण्ड कन्दोद्भवी, पर्ण–मूलोद्भव एक साथ कई की संख्या में पत्तियों को मसलने पर बड़ी इलायची के सदृश गन्ध आती है । पुष्प, मूलोद्भव, गुच्छों एवं आवरणों युक्त भौमिक काण्ड के उर्ध्वसंस्थित भाग में, फल रक्ताभ, धूसर वर्ण के गुच्छों में लगते हैं । बीज पकने पर कालेवर्ण के मसृण विशिष्ठ सुगन्धिदार, तैलीय होते हैं ।

पुष्पकाल .... जून, जुलाई ।
फलकाल .... सितम्बर, अक्टूबर ।
प्रयोज्य अंग .... बीज ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थापन :

बड़ी इलायची सिक्किम, नेपाल, आसाम की तराई में विशेष रुप से पाई जाती है । सिक्किम प्रदेश बड़ी इलायची की खेती के लिये नौसर्गिक देन हे । इस क्षेत्र में इसकी खेती का मुख्यव्यवसाय है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–कटु, रिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–छोटी एला सद्यश इसके गुणधर्म है । यह सुगन्धित रोचन, दीपन एवं वातनाशक है । श्वास, कफ, रक्तपित्त, हृल्लास, कण्डू, शिरोरोग आदि में उपयोगी है ।

रासयनिक संगठन :

बड़ी इलायची के बीजों में उड़नशील तेल पाया जाता है । इसमें काफी मात्रा में सिनिओल होता है ।

मुख्ययोग :

सीतोपलादिचूर्ण, दशमूलारिष्ठ, द्राक्षासव, गन्धकरसायन, लवणभास्कर।

338 महाभरीवचा (कुलञ्जन)

द्रव्यनाम........................संस्कृत............................ कुलञ्जन, मलयवचा, महाभरीवचा।
हिन्दी.............................. कुलंजन।
लैटिन .... Alpina galanga willd.

स्वरुप परिचय :

यह बहुवर्षायु, सुगन्धित कंदाकार पौधा है । काण्ड 90 से० मी० 2 सेन्टीमीटर तक ऊँचा, एवं पत्रमय होता है, पर्ण–आयताकार, भालाकार, तीक्ष्णाग्र, उर्ध्वपृष्ठ हरे रंग के अधःपृष्ठ पीलेवर्ण का होता है । पुष्प हरिताभ श्वेत वर्ण के, फल पकने पर रक्तवर्ण के आकर्षक होते हैं ।

पुष्पकाल .... अगस्त, सितम्बर ।
फलकाल .... पुष्प काल के बाद ।
प्रयोज्य अंग .... मूल ।

प्राप्ति स्थान :–

यह जावा, सुमात्रा का आदिवासी पौधा है । भारत के पूर्वी हिमालय, बंगाल, सिक्किम, आदि क्षेत्रों में सुलभ है। मालावार आदि क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (1)

कटु, तीक्ष्ण, सुगन्धित, दीपन, रुचिकर, स्वर को सुधारने वाला, कण्ठ्यएवं मुखशोधक, कासनाशक । कुलंजन दीपन, पाचन, वातनाशक, उत्तेजक एवं वाजीकर है । हकले एवं तोतले बच्चों के स्वर ठीक करने में इसका प्रयोग किया जाता हे । मुख की दुर्गन्धी दूर करने एवं मधुमेह में उपयोगी है । पसीना अधिक आने पर यदि शरीर अधिक शीतल होने लगे तो इसके चूर्ण का लेप शरीर पर करते हैं । यूनानी मतानुसार दूसरे दर्जे में गरम और रुक्ष, सौमनस्यजनन, एवं यकृत को बल देने वाला है ।

वक्तव्य : बाजार में देशी कुंलजन के टुकड़े चीनी कुलंजन की अपेक्षा अधिक मोटे होते हैं । बाहर से नारंगी रंग लिये हुये भूरे रंग के होते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

339 केमुक (केवटी)

द्रव्यनाम...................... संस्कृत .... केमुक।
हिन्दी .... केमुआ।
लैटिन .... costus speciosus koemsm.

स्वरुप परिचय :

केमुक का 90 से. मी. से 2 मीटर तक ऊँचा क्षुप होता है । मूल–कन्दिल बहुवर्षायु, काण्ड–एकवर्षायु, पर्णकाण्ड के अग्रभाग पर श्वेत वर्ण के गुच्छों में खिलते हैं । कोणक पुष्प बीज कोष रक्तवर्ण के एवं बीज कृष्णवर्ण के होते हैं । कन्द–आद्रक कन्द सदृश मोटे एवं गन्धहीन होते हैं ।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त ।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्य अंग .... मूल ।

प्राप्तिस्थान :–केमुक के पौध भारत के उष्णप्रदेशों, हिमालय की निचली घाटियों एवं बंगाल, कोंकण आदि स्थानों आद्र या नमदार स्थानों में सर्वत्र पाये जाते हैं ।

गुणधर्म :– (1)

यह शीतल, लघु, कटुरस, विपाक–कटु, ग्राही, शीतल, दीपक, पाचक, कुष्ठ, कास, प्रमेह एवं रक्तविकार में उपयोगी है । वातवेदना, आमवात, संधिशोथ में बाह्य एवं आम्यन्तर प्रयोग से लाभ होता है । गर्भाशय संकोच के गुण इसमें काफी पाया जाता है ।

वक्तव्य :–

केमुक को कतिपय ग्रन्थों ने कुष्ठ एवं कलिहारी के नाम उल्लेख किया है । यह सम्भवतः अशुद्ध है । दक्षिण के वैध कुष्ठ के नाम से उपयोग करते हैं ।

340 आद्रक (शुण्ठी)

द्रव्यनाम...................... संस्कृत .... आद्रक, श्रङ्गवेर, विश्वभेषज, नागर ।
हिन्दी.......................... अदरख, शुष्क–शुंण्ठी
लैटिन .... Zingiber officinale Rose.

गुण–(1) चरक ने दीपनीय, शूलप्रशमन महाकषाय में एवं सुश्रुत ने पिप्पल्यादिगण एवं त्रिकटुगण में आद्रक का उल्लेख किया है ।

निरुक्ति –

आद्रक – आद्रायां भूमौजासं, आद्रयतिजिह्वां वा, अर्दति कफं वा स्वनाम ख्यात कन्दशकविशेषः" अर्थात् यह नमदारस्थानों में पैदा होता है, या जिह्वा में रस उत्पन्न करता है तथा कफ को पिघलाता है । यही अदरख छीलकर सुखा देने से सौंठ कहलाती है ।

स्वरुप परिचय –

मूल– द्विवर्षायु, काण्ड–वार्षिक 80 से० मी० से 90 से० मी० तक ऊँचा बहुशाखीय, पर्ण – वांस के पत्रों के सदृश, स्निग्ध, रेखाकार, पुष्प – हरिताभ, बैंगनी, ओष्ठयुक्त, मंञ्जरियों में, भौमिककाण्ड (कन्द) अनियमित, ग्रन्थियुक्त, घूसरवर्ण के होते हैं । बाजार में यही अदरख छील कर विशेष विधि से सुखाकर सौंठ के नाम से मिलती है । सौंठ–रेखांकित, भुर्रीदार, तोड़ने पर आसानी से टूटने वाले एवं रेशेदार होती हे । सूंघने पर उग्र गन्ध आती है ।

पुष्पकाल .... शीतकाल ।
प्रयोज्य अंग .... भौमिककाण्ड, (कन्द)
मात्रा .... चूर्ण 5 ग्राम।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्ति स्थान :

भारत में प्रायः इसकी खेती चकराता, देहरादून, पंजाब, बंगाल, तमिलनाडू, केरल में की जाती है । इसकी खेती के लिये उर्वरा एवं आद्र भूमि उपयुक्त है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान : (2)

गुण – लघु, स्निग्ध, (सौंठ) आद्रक – गुरु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, विपाक–मधुर, वीर्य–उष्ण, वातकफहर, दीपन, रोचन, शूलप्रशमन, वातानुलोमन, हृद्य, अर्शोघ्न, एवं गर्भाशय शोधक है । वात, कफ एवं विबन्ध में आद्रक स्वरस उपयोगी है ।

आमयिक प्रयोग :

अरोचक, तृषा, अग्निमांद्य, आध्मान, शूल, अर्श, हृच्छूल, कास, शोथ, प्रतिश्याय, आमवात, प्रसवोत्तरदौर्वल्य, आदि विकारों में उपयोगी है । नव्यमत में सोंठ उष्ण वातनाशक, संकोचविकास प्रतिबन्धक, उत्तेजक एवं कफघ्न है । सोंठ, से पाचन क्रिया अच्छी होती है । और पेट में वायु का संचय नहीं होता है । जीर्णसंधिशोथ में 1 तोला सोंठ का फांण्ड रात को सोते समय पीने से नींद अच्छी आती है । ग्रहणीरोग पर अच्छा प्रभाव करता है ।

रासायनिकसंगठन –

उड़नशील तेल 2 प्रतिशत, वसा, ओलियोरेजिन, म्यूसिलेज, कटुसत्व, स्टार्च, भस्म 6% पाया जाता है ।

मुख्ययोग :–

तालीसादिचूर्ण, त्रिकंटुचूर्ण, लवंगचूर्ण, हिंङ्गवाष्ठकचूर्ण, सौभाग्यशुण्ठीपाक, लवणभास्कर, चित्रकादिवटी, अविपत्तिकर चूर्ण, व्योषादिवटी, आनन्दभैरव (ज्वर) संजीवनीवटी ।

कदल्यादिवर्ग (MUSACEAE)

341 कदली (केला)

द्रव्यनाम........................ संस्कृत .... कदली, रम्भा, मोचा ।
हिन्दी............................ केला ।
लैटिन .... **Musa paradisiaca Linn.**
Musa sapientum Linn.

स्वरुप परिचय :–

कदली के मध्यम आकार के गुल्म सर्वत्र पाये जाते हैं । काण्ड, मसृण पर्ण – 90 से० मी० तक लम्बे, चमकीले, पुष्प गुच्छों में समूह रुप से सूर्पाकार होते हैं । इसकी कई किस्में पाई जाती है । पर्वतीकेला, कालाकेला, राजभोग, मानभोग, चीनियाँ आदि किस्में हैं ।

प्रयोज्य अंग .... मूल, काण्डस्वरस, फल, पुष्प

प्राप्ति स्थान : (1)

इसके गुल्म भारत के सभीप्रदेशों में विशेषरुप से आसाम, बंगाल, विहार आदि क्षेत्रों में खेती की जाती है ।

गुणधर्म : (1)

केला–रस में मधुर, कषायानुरस, किंचित् शीतल, रुचिकारक, वृष्य, गुरु, कफकारक, स्निग्ध, रक्तपित्त, पित्त योनिरोग और भ्रम को दूर करने वाला है । केले का कन्द–कषाय, रुक्ष, शीतवीर्य, बलकारक, वातकर, रक्तविकार, कृमि, कुष्ठ कर्णशूल, रजोदोष, एवं सोमरोग को दूर करने वाला हे ।

जल–शीतवीर्य, ग्राही, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अतिसार, रक्तपित्त, दाह एवं रक्तप्रदर में लाभ करता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कदलीपुष्प–तिक्त, कषाय, ग्राही, दीपन, उष्णवीर्य एवं कफनाशक हे । काण्डस्वरस अपस्मार अपतन्त्रक में उपयोगी है । कच्चा केला मधुमेह एवं अतिसार में उपयोगी है । क्षीर का लेप फोड़े को पकाने के लिये करते हैं । कच्चे केले निकाल सुखाकर बनाकर आटा वल्य एवं संग्राहक है । पंचाग को जलाकर क्षार तैयार किया जाता है ।

अन्ननासादिवर्ग BROMELIACEAE

342 अन्ननास

द्रव्यनाम............................ संस्कृत ....अन्ननास ।
हिन्दी.............................. अनानास ।
लैटिन .... **Ananas comosus Linn.**

स्वरुप परिचय :

इसके द्विवर्षायु शाकीय पौधे होते हैं । पर्ण जमीन से उपर धृतकुमारी सद्दश एवं रामवांस के आकृति सद्दश होते हैं । मूल के चारों तरफ से पत्रपुन्ज निकले रहते हैं । प्रकाण्ड पर शंक्वाकार रुपरेखा का अवृन्त काण्डज, पुष्प ब्यूह होता है । फलों पर अनेक छोटे-छोटे शल्कामय पत्रक होते हैं इसे छत्र (Crown) कहते हैं । अनानास का फल $1\frac{1}{2}$ किलो तक वजन में होता हैं । उक्त कण्टकमय पत्र फलों पर तिरछी पंक्तियों में होते हैं । छिलने के बाद अन्दर से पीला या लालिमा लिये गूदा मधुर एवं स्वादिष्ट होता है।

पुष्पकाल .... मई, जून।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्य अंग ....फल ।

प्राप्ति स्थान :

यह ब्राजील एवं दक्षिण अमेरिका का आदिवासी पौधा है । भारत में आसाम, बिहार, बंगाल, पश्चिमी समुद्र तटवर्तीय क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है ।

गुणधर्म :–

गुण– गुरु, स्निग्ध, रस–मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–वातपित्तशामक, रोचन, दीपन, अनुलोमन, रक्तपित्तशामक, अश्मरीभेदन, मूत्रल बल्य, हृद्य, ज्वरघ्न ।

मुख्ययोग –

शर्वतअन्नानास, मुरब्बा अन्नानास, अर्कअन्नानास ।

रासायनिक संगठन –

फलों में व्रामेलीन, नामक तत्व पाया जाता है । ताजे फलों के रस में शर्करा, अम्ल, विटामिन ए० सी० पाया जाता है । मैग्नेशियम्, फास्फोटिक एसिड, आदि लवण पाये जाते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

केशरादिवर्ग (IRIDACEAE)

वर्गलक्षण—इस वर्ग शाकीयक्षुप, वहुवर्षायुभौमिक काण्ड वाले पादप पाये जाते हैं । सपुष्प, एकबीजपर्ण, पर्ण–एकान्तर, लम्बे, विविधरंग के, पुष्पवाह्य कोश के दल 3, नरकेशर 3, बीजकोश 3 खण्डवाला और अधरस्थ होता है । इस वर्ग में केशर, वालवच, आदि द्रव्य आते हैं ।

343 केशर (कुङ्कुम)

द्रव्यनाम	संस्कृत	.... कुङ्कुम, रुधिर, संकोच पिशुन ।
	हिन्दी	.... केशर ।
	लैटिन	.... Crocus sativa Linn.

गण (1) .... चरक ने शणेणितस्थापन महाकषाय एवं सुश्रुत ने एलादिगण में केशर का उल्लेख किया है ।

निरुक्ति—रुधिर, संकोच एवं पिशुन ये शब्द पुष्प के पुंकेशर के आकृतिबोधक है ।

स्वरूपपरिचय—केशर के भेमिककन्द बहुवर्षायु होते हैं । इन्हीं वहुवर्षायु घनकन्दों से प्रतिवर्ष नवीन पोधे निकलते हैं । पर्ण–मूलोद्‌भव रूपरेखा में पतली, लम्बी, खातोदर एवं किनारे पीछे को मुड़े हुए होते हैं । पुष्प-सुन्दर बैंगनीरंग के, एक 2 या गुच्छों में तथा छोटे वृन्तों पर धारण किये जाते हैं । स्त्रीकेशर या योनिसूत्र 3 भागों में विभक्त होता है । ऊपर का रक्ताभ, मांसवर्ण का योनिछत्र होता है । कुछ निचला भग पीताभ सुगध्धित होता है । योनिछत्र में विशेष प्रकार की उग्रसुगन्धी पाई जाती है । केशर के योनिसूत्र के ऊपरी भाग को लच्छाकेशर एवं निचले भाग को मुंगरा केशर कहते हैं । बाजार में केशर के नाम से कई किस्म की मिलावट पाई जाती है । बहुत पहिचान के साथ इसे खरीदना चाहिये ।

पुष्पकाल	.... सितम्बर, अक्तूबर,
फलकाल	.... पुष्पकाल के बाद,
प्रयोज्यअंग	.... योनिछत्र, या कुक्षिभाग ।

प्राप्तिस्थान—केशर दक्षिण योरोप का आदिवासी पौधा है । वनस्पति शास्त्र के आधार पर इसकी कई किस्में पाई जाती हैं । ये किस्में स्पेन, फ्रांस, इटली, टर्की, फारस एवं चीन में पाई जाती है । भारत में जम्मुकशमीर राज्य में इसकी खेती की जाती है । इसके अतिरिक्त उत्तरप्रदेश, जम्मु-कश्मीर राज्य में इसकी प्रायोगिक खेती की परीक्षण किये जा रहे हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदने कर्मज्ञान—(2)

गुण–स्निग्ध, लघु, रस-कटु, तिक्त, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, प्रधानकर्म-त्रिदोषहर, सौमनस्यजनन, मूत्रल, आर्तवप्रवर्त्तक, श्वयथू–विलयन, लेखन, वाजीकरण, नाड़ीवल्य, हृद्यय एवं मस्तिष्क में उपयोगी ।

केशर शरीर की सुन्दरता एवं कांति को सुधारनेवाला तथा कफ, वात, व्रण, नेत्ररोग, शिरोरोग, विष, कृमि आदि रोगों में उपयोगी है । केसर दीपन, पाचन, वेदनास्थापन, संकोच विकास प्रतिबन्धक एवं कोमोत्तेजक है । स्तन पर केसर का लेप करने से दूध बढ़ता है । बच्चों की सर्दी जुकाम में केसर दूध में मिलाकर पिलाते हैं । मसूरिका, रोमांन्तिका आदि में दाने बाहर आने के लिये केसर का लेप करते हैं । यूनानी मत में यह दूसरे दर्जे में गरम पहले दर्जे में खुश्क मनः प्रसाद कर एवं कामोत्तेजक है ।

रासायनिकसंगठन—

इसमें केसरिन या क्रोकिन नाम एक रंगीन ग्लाइकोसाइड तथा पिक्रोक्रोकिन नाम रंगटीन, तिक्तग्लाइकोसाइड, स्थिरतैल एवं उड़नशील तैल पाया जाता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोग—

केशरादिवटी, कुङ्कुमादितैल, ब्राह्मीवटी, स्मृतिसागररस ।

तालमूल्यादिवर्ग (AMARYLLIDACEAE)
344 तालमूली (कालीमुशली)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... तालमूली, कृष्णमुशली ।
हिन्दी .... कालीमुशली ।
लैटिन .... Curculigo Orchioides Gaeston.

स्वरूपपरिचय—

भौमिकाण्ड बहुवर्षायु, काण्ड एक वर्षायु एवं 30 से0 मी0 तक ऊंचा होता है । पर्ण-मूलोद्भव संयुक्त चक्राकार, नवीन ताल पत्र सदृश, उपमूल-मांसल, मृदु, बाहर से कृष्णवर्ण का एवं तोड़ने पर श्वेत वर्ण के होते हैं । पुष्प काण्डस्कन्ध पर संयुक्त पीतवर्ण के कतारों में ।

पुष्पकाल .... जून, जुलाई ।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग .... भौमिककाण्ड (कन्द)

प्राप्तिस्थान—

कालीमूशली भारत के सभी मैदानी प्रदेशों के नमदार एवं छाया वाले स्थानों पर विहार, उत्तरप्रदेश, हिमाचलप्रदेश, बंगाल आदि सभी प्रान्तों के छायादार स्थानों पर सुलभ है ।

दोषअधिष्ठानभेदेन कर्मज्ञान— 1.

मधुर, तिक्तरस, वीर्य-उष्ण, वृंहण, रसायन, मूत्रजनन, बल्य एवं वृष्य, पौष्ठिक एवं वातनाशक है । मूत्रमार्ग पर इसकी विशेष क्रिया होती है । अर्श, कामला, श्वास, अतिसार तथा शूल में इसका उपयोग होता है । अत्यार्त्तव में उपयोगी ।

रासायनिकसंगठन :-

मूल में तैलीयद्रव्य, राल तथा कषाय द्रव्य, गोंद, पिठमय पदार्थ, कैल्सियम औक्जलेट आदि तत्त्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग—

कौंचपाक, शतावरीपाक ।

वाराहीकन्दादिवर्ग (DIOSCORIACEAE)
345 वाराही (गेंठी)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... वाराही, शूकरी, गृठिकाकन्द,
हिन्दी .... वाराहीकन्द,
लैटिन .... Dioscorea Buluofera Linn

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूपपरिचय—

वाराहीकन्द के वामावर्त आरोही लता होती है, काण्ड मसृण, पर्ण–एकान्तर, 3 से. मी. 6 से. मी. लम्बे, ह्रदयाकार, तीक्ष्णाग्र एवं उभरे हुये शिराओं युक्त मसृण होते हैं । नर एवं नारी पुष्प मञ्जरियों में अलग 2 श्वेताभ वर्ण के होते हैं । कन्द रोमश, गोल कृष्णाभ वर्ण के होते हैं । भारत में इसकी कई किस्में पाई जाती हैं आदिवासी इन किस्मों को अपने दैनिक प्रयोग में विशेष रूप से इन सविष एवं निर्विष दोनों किस्मों का उपयोग करते हैं । निघण्टुग्रन्थों में आलुक नाम से उल्लेख है ।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त ।
फलकाल .... पुष्प काल के बाद ।
प्रयोज्यअंग .... मूलंकन्द ।

प्राप्तिस्थान—

भारत के सभी प्रान्तों के नमदार एवं आद्र भूमि पर इसकी कई किस्में सर्वत्रपाई जाती है । कुछ विशेष प्रकार की किस्में डायस्कोरियाडलटखाडिया हिमालय क्षेत्र में 2,600 मीटर की ऊंचाई तक पाया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान—

गुध-मधुर, रस-तिक्त, विपाक-कटु, शुक्रल, रसायन, अग्निदीपन, कुष्ठ, वात, प्रमेह एवं कृमिनाशक है । रक्तसंग्राहक एवं ग्राही है । त्वचा के रोगों में भी प्रयोग किया जाता है ।

रासायनिकसंगठन—

मूल में विषैला ग्लुकोसाइड पाया जाता है । कन्दों में स्टार्च होता है ।

मुख्ययोग :– च्यवनप्राश ।

रसोनादिवर्ग (LILIACEAE)

वर्गलक्षण—

इस वर्ग में शाकीय पादप एवं गुल्म पाये जाते हैं । पादप-सपुष्प एकबीजपर्ण, पर्णविन्यास अभिमुख, पत्रसादे, अवृन्त, विविधरंग के, मनमोहक, मूल-मध्यदण्ड के सिरे पर लगे हुए, पुंकेशर 6 दो चक्रों में, बीजकोष उपरिस्थ 6 खण्डवाला, मूल-कन्दिल, बल्य होते है । इस वर्ग में रसोन, पलाण्डु, धृतकुमारी, लाङ्गाली, शतावरी, मूशली सुरजान आदि उपयोगी द्रव्य हैं ।

246 रसोन (लशुन)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... रसोन, लशुन,
हिन्दी .... लहसुन,
लैटिन .... Allium sativum Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूपपरिचय—

लहसुन की सर्वत्र खेती की जाती है । काण्ड 30 से. मी. तक ऊंचा मृदुकाण्डीय होता है । पर्ण पतले, चपटे, लम्बे एवं मसलने पर उग्रगन्ध आती है । पुष्पदण्ड काण्ड के बीच से गुच्छेदार, श्वेतवर्ण के, बीज चपटे कृष्णवर्ण के होते हैं । कन्द-श्वेत हल्के गुलाबी रंग के आवरणयुक्त, इन कन्दों में यवाकार छोटे 2 कन्द होते हैं । कन्दों को मसलने पर अप्रिय गन्ध आती है ।

पुष्पकाल	....	अप्रैल, मई ।
फलकाल	....	पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग	....	कन्द, पत्र ।
मात्रा	....	कन्द 3 ग्राम से 6 ग्राम तक ।

प्राप्तिस्थान—

भारत के सभी प्रान्तों में लहसुन की खेती की जाती है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान— 1.

गुण—स्निग्ध, तीक्ष्ण, पिच्छिल, गुरु, सर, रस-अम्ल रस को छोड़ कर शेष पोचों रसों वाला होता है । इसीकारण इसे लशुन कहते हैं । विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, कर्म-वात कफ शामक, दीपन-पाचन, अनुलोमन, शूलप्रशमन, कृमिघ्न यकृ दुत्तेजक, उत्तेजक, ह्रदयोत्तेजक, वेदनास्थापन, मेध्य, कफ निस्सारक, कफ–दुर्गन्धीहर, आर्तवजनन, शुक्रल, कोथप्रशमन, चक्षुष्य है ।

आमयिकप्रयोग—

लशुन भग्न, अस्थिसंधान, कफ, वात, कृमि, कुष्ठ, किलास, गुल्म, हृदयरोग, जीर्णजवर, उदरशूल, विवन्ध, कास, अरुचि, राजयक्ष्मा, अर्श, अग्निमांद्य एवं श्वास में उपयोगी है । नाड़ीतन्त्र में लशुन की उत्तम क्रिया होती है । यह गृध्रसी, अर्दित, पक्षवध, एकांगरोग, उरुस्तम्भ संन्धिवात आदि वातरोगों में लशुन का क्षीरपाक उपयोगी है । ह्रद्रोग में लशुन देने से पेट का फूलना कम होकर हृदय पर का दबाव कम होता है । ह्रदय को शक्ति मिलती है तथा पेशाब खुल कर आने लगता है । आयुर्वेद में लशुन कल्प का स्वतन्त्र उल्लेख मिलता है ।

रासायनिकसंगठन—

कन्दों में पीतवर्ण का उड़नशील तैल पाया जाता है, जिसमें गन्धक के सैन्द्रय यौगिक होते हैं । इसके अतिरिक्त श्वेत्तसार, पिच्छिलद्रव्य, ऐल्व्युमिन, कैल्सियम, लौह एवं विटामिन आदि तत्त्व भी पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग–

लशुनादिवटी, लशुनाद्यघृत, रसोनपिण्ड, लशुनतैल, रसोनाष्ठक आदि मुख्य योग हैं ।

348 पलाण्डु (प्याज)

द्रव्यनाम	संस्कृत	....	पलाण्डु ,
	हिन्दी	....	प्याज ,
	लैटिन	....	Allium Cepa Linn.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूपपरिचय—

यह प्रसिद्ध शाकीय कन्द है। पर्ण-रम्भाकार, मांसल, तथा खातोदर होती है। पुष्प-छत्राकार, मुण्डकों में, एवं छोटे सफेदरंग के फल-सामान्य, स्फोटी, त्रिकोष्ठीय, एवं छोटे-2 काले बीज में होते हैं। कन्द-सफेद एवं लाल वर्ण रूपरेखा में गोला, चपटा तथा शंक्वाकार होता है। सफेद प्याज की अपेक्षा लालप्याज अधिक तीक्ष्ण होता है।

पुष्पकाल .... जुलाई अगस्त।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्यअंग .... कन्द, पत्र, बीज।

प्राप्तिस्थान—

भारत के सभी प्रान्तों में इसकी खेती की जाती हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान— (1)

गुण-गुरु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, रस-मधुर, कटु। विपाक-मधुर, बीर्य-उष्ण, कर्म-वातहर तथा पित्त एवं कफ कारक, वाह्य प्रयोग से वेदनास्थापन, शोथहर, व्रणशोथ, पाचन, लेखन, त्वग्दोषहर, दीपन, रोचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, अमेघ्य, हृदयोत्तेजक, कफनिस्सारक, आर्तवजनन, बल्य, त्वगूदोषहर, रक्तस्तम्भक।

प्याज अग्निवर्धक एवं वातघ्न है। यह आंतों की शक्ति बढ़ाकर दस्त साफ लाता है। अर्श, गुदभ्रंश और कामला में यह लाभ करता है। हैजे में प्याज का रस चूने का पानी मिलाकर पिलाते हैं। वाह्यप्रयोग में व्रणशोथ के पाचन में लेप करते हैं। बीज दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क वाजीकर एवं लेखन हैं। बीजों को शहद के साथ पीसकर खालित्य, यंत्र एवं झांई पर लगाते हैं।

रसायनिकसंगठन—

कन्द में उग्रन्धी एवं चरपरा उत्पन्न तैल तथा गंधक पाया जाता है। इसमें स्टार्च, कैल्सियम, लोह एवं विटामिन पाये जाते हैं।

348 कुमारी (धीक्वार)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... कुमारी, कन्या, घृतकुमारी।
हिन्दी .... ग्वारपाठा, घीकुंआर।
लैटिन .... Aloe barbadensis Mill.

स्वरूपपरिचय—

इसके बहुवर्षायु गुल्म नुमा पौधा होता है। पर्ण विनाल, काण्ड पर सघन रूप से, 60 से. मी. तक लम्बे, गोपुच्छाकार, भालाकार, तीक्ष्णाग्र, गूंदेदार, बाहर से चमकीले, हरेरंग के एवं पत्र प्रान्त कुछ मुड़े हुए क्षुद्र कांटे युक्त होते हैं। पत्तों के बीच से पुष्पवाहक दण्ड निकलता है। इसको विशेष प्रक्रियाओं द्वारा सुखाकर जमाने से एलुआ या मुसब्बर कहते हैं। एलुआ गहरे भूरे से लेकर काले रंग का होता है। यह अपारदर्शक कुछ चमकीला होता है।

पुष्पकाल .... दिसम्बर, जनवरी।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्यअंग .... पत्रगूदा, सार।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान—

यह उत्तरी अमेरिका एवं स्पेन का आदिवासी पौधा है । भारत के उद्यानों में सर्वत्र यह पाया जाता है । मैसूर, कठियावाड़ में इसकी खेती की जाती हैं । यह रेतली भूमि में विशेष रूप से फैलता है । इसकी कई किस्में पाई जाती हैं ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण—गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, रस-तिक्त, मधुर, विपाक-कटु, वीर्य-शीत, प्रभाव-भेदन तीक्ष्ण एवं उष्ण, अल्पमात्रा में दीपन, पाचन, कटुपौष्ठिक, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, रक्तशोधक, आर्तवजनन, गर्भस्त्रावकर एवं ज्वरघ्न है ।

यकृतवृद्धि एवं पील्हा वृद्धि में यह विशेष उपयोगी है । ग्वारपाठा का रस स्तनशोथ, नेत्रामिस्यन्द, अर्श, विद्रधि एवं अग्निदग्ध पर हल्दी चूर्ण के साथ मिलाकर लगाने से शोथ एवं दाह कम होता है ।

मुख्ययोग—कुमार्यासव, रजःप्रवर्तनीवटी, कुमारवटी, कुमारपाक ।

349 शतावरी (शतावर)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... शतावरी, शतमूली, अतिरसा ।
हिन्दी .... सतावर ।
लैटिन .... Asparagus Racemosus Wild.

गण—चरक ने वल्य एवं वयःस्थापन महाकषाय, मधुरस्कन्ध तथा सुश्रुत ने विदारीगन्धादिगण, कण्टकपञ्चमूल तथा पित्तप्रशमन वर्ग में शतावरी का उल्लेख किया है ।

निरुक्ति—शतंवीर्याणियस्याः शतवीर्या एवं शतयावृणोति इति मधुरवर्गीय मूलविशेषः" अर्थात् यह मधुर गुणों वाला कई संख्या में कन्दसन्घश मूल विशेष द्रव्य है ।

अतिरसा :– मूल में काफी रस निकलता है इसी कारण इसे अतिरसा कहते हैं ।

स्वरूपपरिचय—

शतावरी के आरोहरणशील कण्टकित, झाड़ीनुमा गुल्म होता है । शाखा चारों तरफ परिसृत, त्रिकोणाकार, रेखांकित, कुछ टेडे कांटेवाला, पर्ण–सूच्याकार, समूह में नोकेदार, हंसिया के आकार के एवं आधाः पृष्ठ नालीदार होते हैं । पुष्प–सुगन्धयुक्त, मञ्जरियों में श्वेत वर्ण के होते हैं । फल–गोलाकार व्यास 3.75 मी. मी. से 6.25 तक ब्यास, पकने पर लाल रंग के, मूल बहुवर्षायु, कन्दसघश गुच्छों में तर्क्काकार होते हैं । हिमालय में इसकी 2–3 किस्में पाई जातीं हैं ।

पुष्पकाल .... सितम्बर, जनवरी ।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग .... मूलकन्द, स्वरस ।

प्राप्तिस्थान—

शतावरी भारत के उष्ण एवं समशीतोष्ण प्रान्तों में सर्वत्र सुलभ है । हिमालय क्षेत्र में यह 1,500 मीटर की ऊंचाई तकसर्वत्र सुलभ है । उद्यानों में सौन्दर्य हेतु इसकी आरोही गुल्म रोपित किये जाते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान—

गुण-गुरु, स्निग्ध, रस-मधु, तिक्त, विपाक-मधुर, वीर्य-शीत, प्रधान-कर्म—वात पित्तशामक, बल्य, नाड़ीवल्य, रसायन, गर्भ—पोषक, स्तन्यजनन, शुक्रल, मेध्य, रक्तपित्तशामक, चक्षुष्य । (1) यह वातनाड़ीबल्य-निन्द्राजनन, एवं रसायन है । आमययिक प्रयोम में यह ग्रहणी, अतिसार, अर्श आदि में उपयोगी है ।

रसायनिकसंगठन—

शतावरी के मूल में म्युसिलेज एवं काफी-काफी मात्रा में शर्करा पाई जाती है । मधुर विशेष होने से यह वृष्य एवं स्तन्यजनन है ।।

मुख्ययोग—

शतावरीघृत, फलघृत, शतमूल्यादिलौह,
शतावरीपानक, नारायणतैल, धातुपौष्ठिकचूर्ण,
शतावरीचूर्ण, सुपारीपाक, लक्ष्मीविलासरस, वसन्त—
कुसुमाकर, सारस्वतारिष्ठ फलकल्याणघृत ।

350 लांङ्गली (कलिहारी)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... लांङ्गली, हलिनी, विशल्या, कलिहारी ।
हिन्दी .... कलिहारी ।
लैटिन .... Gloriosa supenba Linn.

निरुक्ति :— लांङ्गली,—लांङ्गल्याकार पुष्यमस्या इति लांङ्गली, का लांङ्गली, पुष्प विशेषः" अर्थात् इसका पुष्प लांङ्गल्याकार एवं अनेक वर्णों वाला होता है । इसी कारण इसे अग्निज्वाला, अग्निशिखा, रक्तइन्दु-पुष्पिका भी कहते हैं ।
हलिनी-मूलकन्द हलाकार होने से हलिनी एवं गर्भपातक होने से गर्भपातिनी भी कहते हैं ।

स्वरूपपरिचय—

कलिहारी आरोहीलता किस्म की वनस्पति है । मूल कन्दिल बहुवर्षायु, नवीन पौधे वर्षाकाल में जमीन से निकलते हैं । भौमिक कन्द बहुवर्षायु होने से जमीन के अन्दर परिसृत होता है । यह कन्द भंगुर हलाकार, श्वेतवर्ण का होता है । पर्ण-रूपरेखा में आयताकार, भालाकार, लम्वाग्रयुक्त एवं सुत्रमय होता है । पुष्प-पत्रकोणोंभूत, एकल, लम्बे पुष्प वृन्तों को धारण किये हुए, पुष्प परिदलपुंग्ज पीले गाठे लाल रंग तथा कुछ अन्य मिश्रित रंग का होता है । फल-कोषय होता है ।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त ।
फलकाल .... पुष्प काल के बाद ।
प्रयोज्यअंग .... मूलकन्द ।

प्राप्तिस्थान—

इसके पौधे समस्त भारत के उष्ण प्रदेशों में झाड़ी वाले स्थानों में सर्वत्र पाये जाते हैं । हिमालय की निचली घाटियों में भी यह पाया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान—(1)

गुण-लघु, तीक्ष्ण, रस-कटु, तिक्त, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, प्रभाव-गर्भपातन, प्रधानकर्म-अल्पमात्रा में दीपन, कटुपौष्ठिक, ज्वरघ्न, अधिकमात्रा में गर्भनिस्सारक है ।

रासायनिकसंगठन—

मूल में रैजिन, टैनिन एवं तिक्तसत्व पाया जाता है । इस तत्त्व को सुपर्बान कहते हैं । यह अत्यन्त विषैला होता है । ग्लोरियोसिन नामक ऐल्केलाइड तथा स्टार्च पाया जाता है ।

मुख्ययोग—कासीसादितैल, लांङ्गलीरसायन ।

351 सुरज्जान

द्रव्यनाम	संस्कृत	सुरज्जान ।
	हिन्दी	सुरंजान ।
	लैटिन	Colchicum luteum Baken.

स्वरूपपरिचय—

इसका एकवर्षायु मृदु शाकीय पादप होता है, पर्ण रूपरेखा में स्फीताकार, रेखाकार, आयताकार या अभिभालाकार एवं कुण्ठिताग्र होते हैं । पुष्प एकाकी काण्ड के अग्रभाग में खिलते हैं । ये पुष्प पीताभ वर्ण के, फल-कोषीय, स्फोटी, भूरापन लिये हुए सफेद रंग के छोटे-2 बीज वाले होते हैं । ताजे कन्द-सिंघाड़ें जैसे शंक्वाकार, तल–चपटा, उन्नतोदर, मसृण कुछ चमकदार अपारदर्शक होता है । सूखा हुआ कन्द कड़वा एवं भूरापन लिये खाकी रंग का होता है । कड़वा एवं मीठा दो प्रकार का होता है ।

पुष्पकाल	....	अप्रैल, मई ।
फलकाल	....	पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग	....	मूलकन्द ।

प्राप्तिस्थान—

यह भारत के पश्चिमी हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों 2,100 मीटर की ऊंचाई तक हिमाचलप्रदेश, जम्मुकश्मीर, लद्दाख आदि क्षेत्रों के नमदार घास वाले स्थानों पर पाया जाता है । सुरंजान अफगानिस्तान, तुर्कीस्तान में विशेषतया पाया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान—

गुण-लघु, रुक्ष, रस-तिक्त, कटु, विपाक-कटु, बीर्य-उष्ण, कर्म–कफवातशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, व्रणशोधन, पित्तसारक, वामक, वातशामक, अंवसादक, वातरक्तानाशक, मूत्रल, कुष्ठष्ठ । मीठी–सुरंजान बल्य एवं वाजीकरण होता है । यह आमवात एवं अर्श में विशेष उपयोगी है । यकृदुत्तेजक होने से पित्त कास्त्राव ठीक होता है और वृकोत्तेजक होने से मूत्र का प्रमाण बढ़ता है । हकीम मीठी सुरंजान खाने एवं कड़वी को वाह्मय प्रयोग के काम में लाते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य—

सुरंजान वातरक्त के लिये मुख्य औषध द्रव्य माना गया है। इसके प्रयोग में युरिकाम्ल या युरिक एसिड के निस्सरण में वृद्धि नहीं होती तथापि इसके प्रयोग से चमत्कारिकलाभ होता है। यूनानी चिकित्सा में सफेद, पीला एवं काल तीन प्रकार के सुरंजान का उल्लेख है। सफेद एवं कड़वा विशेष गुणकारी माना गया है। मसीही एवं अरबी हकीम काफी समय पूर्व से चिकित्सा में उपयोग करते हैं।

रासायनिकसंगठन—

कड़वे सुरंजान के कन्दों में काल्चिसीन नामक ऐल्केलायड सक्रिय तत्व पाया जाता है। स्टार्च, शर्करा, गोंद, टैनिन एवं रज्जक तत्व पाये जाते हैं।

352 श्वेतमूशली (सफेद मूशली)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... श्वेतमूशली।
हिन्दी .... सफेदमूसली।
लैटिन .... Chlorophytum aurndinaceunem Bake.

निरुक्ति—मूशली-मुष्णाति खण्डयतिदोषान्" अर्थात यह दोषों को दूर करने में विशेष समर्थ है।

स्वरुपपरिचय—

मूशली का पौधा एक वर्षायु, मूल द्विवर्षायु कन्दिल शतावरी सद्दश गुच्छों में, काण्ड-मृदु 30 से. मी. तक ऊँचा, पर्ण–मूलोद्भव, प्रासवत् एवं मसृण, पुष्प-शाखाग्र, श्वेताभवर्ण के, मूलकन्द-गुच्छो में, श्वेत वर्ण के मसृण लुवावदार होते हैं।

पुष्पकाल .... मई, जून।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्यअंग .... मूलकन्द।

प्राप्तिस्थान—

भारत के उष्ण प्रदेशों मे बुन्देलखण्ड, उत्तरप्रदेश के कुमायु, तराईवाले वनखण्डों, विहार, मध्यप्रदेश, आसाम आदि क्षेत्रों में उपलब्ध है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान— (1)

गुण-गुरु, स्निग्ध, रस-मधुर, तिक्त, विपाक-मधु, वीर्य-उष्ण, कर्म–वृष्य, शुक्रल, बल्य, वृंहण, रसायन, नपुंसकता एवं शुक्रमेह में उपयोगी। प्रदर, अतिसार एवं प्रवाहिका में यह उपयोगी है।

वक्तव्य—अधिकतर विद्वानों ने Asparagus adscendes को श्वेतमूशली लिखा है। लेखक का मत इससे भिन्न है।

मुख्ययोग—मूशलीपाक, मूशल्यादियोग।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

353 उशबा (द्विपान्तरबचा)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... द्विपान्तरबचा ।
हिन्दी .... चोपचीनी ।
लैटिन .... Smilax Zeylanica Linn.

स्वरूपपरिचय—

इसकी आरोहीलता होती है, मूल-का भौमिक काण्ड कन्द सदृश, स्वरूप एवं आकार में लंवोतरे आलू सदृश, कुछ चपटा, ग्रन्थिसदृश, भूरे रंग का खुरदरा, भीतर से गुलाबी लिये सफेद कड़ा, स्टार्चयुक्त, लुबावी होता है । काण्ड खुरदरा, कुछ कण्टकमय होता है ।

पुष्प .... श्वेताभ
फल .... मांसल रक्तवर्ण के ।
प्रयोज्यअंग .... मूलकन्द ।

प्राप्तिस्थान—

चीन, जापान में इसकी लतायें पाई जाती हैं । भारत में इसका आयात मुख्य रूप से चीन से होता है । भारत में इसकी अन्य किस्में पाई जाती हैं जिसमें Smilax glabra, Smilax macrophylla (देशी उशवा) हैं । इनके मूल को चोबचीनी का प्रतिनिधि माना जा सकता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान—(1)

गुण-लघु, रुक्ष, रस-तिक्त, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, प्रधानकर्म-शोथहर, वेदनास्थापन, नाड़ीवल्य, वातनाशक, रक्तशोधक, वृष्य, मूत्रल, स्वेदजनन, ज्वनघ्न, उपदंश की द्वितीय एवं तृतीय अवस्था में यह लाभ करता है । वातरोग, अपस्मार, उन्माद, की शरीर की पीड़ा तथा फिरंग में उपयोगी है । वातरक्त में यह उपयोगी है ।

रासायनिकसंगठन—'
जड़ में वसा, शर्करा एवं ग्लूकोसाइड, रंजकद्रव्य निर्यास, श्वेतसार आदि घटक पाये जाते हैं ।

354 कोलकन्द (जंगलीप्याज)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... कोलकन्द, वनपलाण्डु ।
हिन्द्री .... कांदा, जंगली प्याज ।
लैटिन .... Urginea India Kunth.

स्वरूपपरिचय—

जंगलीप्याज के कन्द वहुवर्षायु काण्ड एकवर्षायु होता है । पर्ण-मूलोदभव, समूह में चपटे, रेखाकार, नुकीले, पुष्प–पुष्पदण्ड पर हरितश्वेताभ फण कोषीय, बीज चपटे होते हैं । कन्द-श्वेतवर्ण के होते हैं व्यापरी इन कन्दों को काटकर सुखा देते हैं ।

पुष्पकाल .... दिसम्बर, फरवरी ।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग .... मूलकन्द ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान—

वनपलाण्डु हिमालय की निचली घाटियों से लेकर भारत के सभी प्रान्तों के शुष्क एवं बालुका मय स्थानों पर सर्वत्र सुलभ है । मुख्यरूप से उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, हिमाचलप्रदेश, छोटानागपुर आदि स्थानों पर सुलभ है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)—

गुण-तीक्ष्ण, लघु, रस-तिक्त, कटु, वीर्य, उष्ण, कर्म-वात कफ शामक, पित्तवर्धक, ह्रदयोत्तेजक, शोथहर, कफः निस्सारक, मूत्रल, आर्तवजनन, स्वेदजनन, कृमिघ्न । स्थानिक प्रयोग में यह क्षोभक एवं व्रणकारक है । जंगली प्याज की क्रिया डिजिटेलिस के समान होती है । यह अल्पमात्रा में स्वेदजनन, मूत्रजनन, कफघ्न, और ह्रदयवल्य है, यह विषैला होता है ।

रासायनिकसंगठन—

ताजें कन्द में ग्लाइकोसाइड पाये जाते है । सिलारेन ए-सिजाटेन-बी प्राप्त होते हैं । कोलकन्द में लवाव, कार्बोहाइट्रेड, कैल्सियम आक्जलेट पाया जाता है । यह कांदा विलायती औषधि सिल्ला का उत्तम प्रतिनिधि है ।

नारिकेलादिवर्ग (PALMAE)

355 नारिकेल (नारियल)

द्रव्यनाम .... संस्कृत	....	नारिकेल, नालिकेर ।
हिन्दी	....	नारियल, खोपरा ।
लैटिन	....	Cocos mueifera Linn.

स्वरूपपरिचय—

नारियल के विशाल लम्बे, ताड़सदृश शाखाहीन वृक्ष होते हैं । काण्डस्कन्ध 30 से. मी. 45 से. मी. तक, वलयाकार, अपेक्षाकृत अधिक स्थूल एवं फूला सा होता है । काण्डपर पर्ण गुच्छक एक मीटर से अधिक लम्बे, त्रिपादोत्तर, पक्षवत् होते हैं । पुष्पव्युह–पत्रावृत, अवृन्त, काण्डावृत, एकलिंगी एक साथ-2 नर एवं स्त्रीपुष्प पाये जाते हैं । नरपुष्प छोटे सुगन्धित एवं अधिक संख्या में पाये जाते हैं । फल–प्राय अण्डाकार, त्रिपार्शिक तथा लम्बा होता है । प्रत्येक में एक बीच होता है । कच्चे फलों में द्रव भरा रहता है जिसे डाभ या नारिकेलोदक कहते हैं । कच्चे गोला-गरी दुग्धवत् मृदु एवं सूखने पर कुछ कठोर जलहीन होती है ।

पुष्पकाल	....	दिसम्बर, मार्च ।
फलकाल	....	पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग	....	फलगिरी खोपरा, गिरी का तैल, ताजारस, क्षार ।
मात्रा	....	तगरी 2 से 3 तोला, तेल–10 से 20 बूंद ।

प्राप्तिस्थान—

इसके वृक्ष दक्षिण भारत, मालावारतट, करोमण्डलतट, पूर्वीबंगाल, लंका, बर्मा तथा पूर्विद्वीप समूह में यह पाया जाता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)—

गुण-गुरु, स्निग्ध, रस-मधुर, विपाक-मधुर, वीर्य-शीत, प्रभाव-केष्य, कर्म-वात पित्त शामक, नारीकेलोदक–अग्निदीपन, रक्तपित्तशामक, हिक्कानिग्रहकर, तृषादाहशामक, क्षार-भेदन, शूलप्रशमन, अम्लपित्तनाशक, पक्व फल वाजीकर, आर्तवजनन, तेल-केश्य, कुष्ठघ्न, व्रणरोपक है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रासायनिकसंगठन—

ताजे खोपरे में मांसवर्धक तत्त्व, वसा, द्राक्षशर्करा, इक्षुशर्करा आदि तत्त्व पाये जाते हैं। गिरी में तैल जारिकएसिड पामिरिकएसिड, ग्लिसराइड्स, प्रोटीन, विटामिन पाये जाते हैं।

मुख्यपयोग—नारिकेलखण्ड, नारिकेललवण, नारिकेलामृत।

356 दरियाई नारियल

द्रव्यनाम .... हिन्दी .... दरियाई नारियल
लैटिन .... Lodoicea seychellarum.

स्वरूपपरिचय—

इसके वृक्ष ताड़ वृक्ष सद्यश होते हैं। काण्ड कृष्णवर्ण का काफी ऊंचा बढ़ता है। वृक्ष पुराना होने पर काफी सुन्दर देखने में लगता है। नर एवं मादा पुष्प अलग-2 वृक्ष पर लगते हैं। नर एवं स्त्री मज्जरियों में, फल 5 से 10 की संख्या में नारियल के फलों के सद्यश, वजन में भारी 10 से 15 कीलों तक पुष्प काले फल परिपक्व का लगभग 90 या 99 वर्ष का समय लगता है। फलों के बाहर रेशेदार जटा होती है। अन्दर की गिरी बहुत कठोर होती है। कवच का साधु–महात्मा कमण्डल बनाते हैं।

फलकाल .... शरद्–वसन्त।
प्रयोज्यअंग .... फल।

प्राप्तिस्थान—

· दरियाई नारियल सिचोलिन का आदिवासी वृक्ष है। समुद्र धाराओं के माध्यम से इसका प्रसार अन्य देशों में भी हो गया है। दक्षिण भारत के समुद्रतटवर्ती देशों में यह पाया जाता है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान—

गुण-लघु, रुक्ष, रस-कटु, मधुर, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, कर्म-कफ वातशामक, तृष्णानिग्रहरण, ह्रदयोत्तेजक, विषघ्न, देहोष्मावर्धक, विसूचिका एवं विषनाशक है। वृश्चिक, आदि विषैले जन्तुओं के दंशस्थान पर इसको जल में घिसकर लगाने से सूजन, दाह एवं विष दूर होता है। प्राकृतिक देहाग्नि को उद्दीप्त करने हेतु जहरमोहरा के योग में डालते हैं।

मुख्ययोग—जहरमोहरा पिष्ठी।

359 खूनखरावा (रक्तनिर्यास)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... रक्तनिर्यास।
हिन्दी .... खूनखरावा।
लैटिन .... Dracaena Cinnabari Balf.
कुल .... Liliceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूपपरिचय—

यह निर्यास एक मध्यम आकार के गुल्म नुमा से, चीरा लगाकर स्त्राव के रूप में एकत्र किया जाता है । जोकि विदेशी पौधा है । इस निर्यास का संग्रह चमड़े की थैलियों में किया जाता है । जंजीवार में इसके गुल्म पाये जाते हैं श्रेष्ठ खूनखराबा माना जाता है । इसकी अन्य कई किस्में होती हैं । यह निर्यास मटमैले लाल रंग का चूर्ण सा होता है जिसे तोड़ने पर चमकीले, पारभासी रक्तवर्ण का होता है । इसमें कमी-2 इसके छाल, काष्ठ आदि के भाग भी मिले होते हैं ।

प्रयोज्यअंग – रालीयनिर्यास (रेजिन)

प्राप्तिस्थान—

यह मुख्य रूप से सकोतरा द्वीप समूह, जंजीवार, पूर्वीअफ्रीका एवं दक्षिणी अरब के क्षेत्रों में पाया जाता है । भारत में सकोतरा आदि द्वीपसमूह से इसका आयात होता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान—

गुण-स्निग्ध, गुरू, पिच्छिल, रस-मधुर, तिक्त, विपाक-मधुर, वीर्य-ईषदुष्ण, प्रधानकर्म, कफनिस्सारक, ज्वरघ्न, पुष्ठिकर, वाजीकर, वृंहण, दाहशामक, मसूरिका एवं विशूचिका में उपयोगी, यूनानी हकीम-गुलवन्पशदिक्वाथ, गोजिहवादिक्वाथ आदि योगों में विशेष रूप से प्रयोग करते हैं उरःक्षत्त, रक्तार्श, रक्तप्रवाहिका एवं रक्तप्रदर में विशेष उपयोगी है ।

358 ताल (ताड़)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... ताल, ताड़ ।
हिन्दी .... ताड़ ।
लैटिन .... Borassus flabellifer Linn.

गण—(1) सुश्रुत ने साल सारादिगण में ताल का उल्लेख कियां है । चरक ने बृंहण एवं वल्य द्रव्यों में एवं मधुर स्कन्ध में ताल का उल्लेख किया है ।

स्वरूपपरिचय—

ताड़ के शाखारहित ऊंचे वृक्ष पाये जाते हैं । काण्ड बेलनाकार, कृष्णवर्ण का, मोटाई घेरे में, काण्ड के ऊपरी शिरे में छत्राकार पर्ण काफी संख्या में समूहवृक्ष होकर निकले रहते हैं पर्णवृत गोलाकार, चपटे, मोटे, लम्बे एवं रेशावहुल वाले होते हैं । पर्ण पंखे के समान करतलाकार, खण्डित, कड़े चर्मिल, तथा खंड भालाकर या रेखाकार होते हैं । नर एवं नारी पुष्प अलग-2 वृक्षों पर पाये जाते हैं । नारीपुष्प नरपुष्पों की अपेक्षा बड़े होते हैं । खिलने पर लम्बे स्थूलमञ्जरियों में श्वेताभ वर्ण के होते हैं । इन स्थूलमञ्जरियों के शुष्क होने पर व्यापारी गजपिप्पली के नाम से विक्रय करते हैं । पके फलो का गूदा रेशा बहुत एवं ललाई लिये पीत वर्ण का होता है । प्रत्येक फल में 1-3 आभि ह्रदयाकार बीज होते हैं । यह गूदा मीठा रसीला होता है ।

पुष्पकाल .... फरवरी, मार्च ।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग .... फल, रस, पुष्प, क्षार ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान—

ताड़ के वृक्ष समस्त भारत के उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में प्रायः समुद्र के तटवर्ती क्षेत्रों में स्वयंजात होतें हैं। उद्यानों में शोभा के लिये इसके वृक्ष लगाये जाते हैं।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान—

गुण-गुरू, स्निग्ध, रस-मधुर, विपाक-मधुर, वीर्यशीत, कर्म-वातपित्तशामक दाहप्रशमन, शोथहर, व्रणरोपण, मूत्रल, त्वग्दोषहर, मस्तिष्कबल्य, हृद्य, स्नेहन, बीजमज्जा तृषाशामक वलवर्धक, सौमनस्यजनन, संतापहर, सार-भेदन लेखन, गुल्म एवं प्लीहोदरनाशक, ताड़ का स्वरस मधुर, पारदर्शक, मन्द, मनोरमगन्ध वाला होता है। ताड़ी हल्के पीले रंग का झागदार द्रव होता है। यह स्वाद में खट्टा एवं तीक्षण होता है। इसका पय्रोग नशे एवं मादकता के लिये किया जाता है। ताड़ के रस से चीनी, गुड़ भी तैयार किया जाता है। इसकी चीनी स्वाद में कुछ खारापन लिये मीठी होती है। बाजार में इसी से तैयार की डुई तालमिश्री भी मिलती है।

रासायनिकसंगठन—

ताड़ में मुख्यतः शर्करा, कार्बोहाइड्रेट, अंशत प्रोटीन, वसा, खनिजतत्व एवं विटामिन सी पाया जाता है।

359 खर्जूर (खजूर)

द्रव्यनाम	संस्कृत	खर्जूर, स्वाद्वी।
	हिन्दी	खजूर (पिण्ड खजूर)
	लैटिन	Phoenix dactylifera Linn.
	देशीखजूर	Phoenix sylvestrix Roxb.

स्वरूपपरिचय—

इसके वृक्ष ताड़ एवं नारियल के समान होते हैं। काण्ड-शाखहीन एवं काण्ड के ऊपरी भाग में पर्ण समूह रूप में एक मीटर से 2 मीटर तक लम्बे, पत्राग्र तीक्ष्णाग्र, पत्रक विपरीतक्रम में, पुष्प-एकलिंगी, भिन्न-2 वृक्षों पर, श्वेताभ वर्ण के, फल–गोलाकर, पीतवर्ण के पकने पर रक्ताभ वर्ण के स्वाद में मधुर एवं बीज कठोर होते हैं। इसके शास्त्रकारों ने क्षुद्रखर्जूर एवं पिण्ड खर्जूर का उल्लेख किया है।

छुहारा भी खर्जूर का प्रकार है, यह पश्चिम देशों में अधिक पाया जाता है। इसके वृक्ष से जो रस निकलता है उसे खजूरी कहते हैं। इससे मद्य एवं गुड़ भी बनता है।

पुष्पकाल	....	मार्च, अप्रैल।
फलकाल	....	पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्यअंग	....	फल, रस।

प्राप्तिस्थान—

देशी खजूर भारत के सभी उष्ण प्रदेशों में पाया जाता है। पिण्डखजूर (छुहारा) ईरान, फारस, काबुल आदि देशों में पाया जाता है। अधपके सूखे फलों को छुहारा एवं पके हुये फलो को खजूर कहते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान— (1)

फल–रस एवं विपाक में मधुर, गुरु, शीतल, वृष्य हृद्य, वातपित्तहर, क्षय, अभिघात, दाह एवं रक्तपित्तनाशक है। सुलेमानी खजूर-भ्रम, दाह, मूर्च्छा, रक्तपित्त नाशक है। यह उत्तम मेवा माना गया है। खजूर की ताड़ी मादक, पित्तकर, रुचिकर, दीपन, वीर्यवर्धक, वातनाड़ीवलदायक है।

रासायनिकसंगठन—

फलों में विटामिन ए. बी. डी. पाया जाता है।

360 पूग (सुपारी)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... पूग, गुवाक, पूगफल ।
हिन्दी .... सुपारी ।
लैटिन .... Areca catechu Linn.

निरुक्ति—

पवते पुनाति, वा" पुत्र पवने" अर्थात् यह मुख शोधक होने से इसे पूग कहते है।

स्वरूपपरिचय—

सुपारी के मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पर्ण 80 से. मी. 180 से. मी. तक लम्बे, सुक्ष्म रोमश होते हैं। पुष्पव्युह–अवृन्त काण्डज, रंगीन पत्रकोष से आवृत, पुष्पदण्ड-कठिन अनेक शाखा प्रशाखाओं से युक्त, फल-एक साथ अनेक लगते है, फल-कोषीय रेशेदार कच्ची अवस्था में हरे, पकने पर पीताभ वर्ण के, बीज-कठोर, मसृण, कच्ची सुपारी खाने पर नशा आता है।

पुष्पकाल .... जनवरी, मार्च ।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग .... बीज ।

प्राप्तिस्थान—

यह मलाया का आदिवासी पौधा है। पूर्विफिलिपाइन एवं अफ्रीका में मिलता है। भारत में यह दक्षिण बम्बई, मैसूर, मद्रास एवं बंगाल के समुद्रतटवर्ती प्रदेशों में इसकी खेती की जाती है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान—(1)

गुण-गुरु रुक्ष, रस-कषाय, मधुर, विपाक-कटु, वीर्य-शीत, कर्म-कफ–पित्तशामक, स्तम्भन, व्रणरोपण, नाड़ीबल्य, लालास्त्रावजनक, शुक्रस्तम्भ गर्भाशयशोथहर, मूलसंग्रहणीय, स्वदेजनन। अधिक सेवन करने पर यह आजोनाशक, विकासी एवं धातुओं को शिथिल करता है। कच्चे सुपारी के सेवन से भ्रम एवं नशा सा आने से चक्कर आते हैं।

रासायनिकसंगठन—

सुपारी में टैनिक एवं गैलिक एसिड, स्थिरतैल, गौदीय पदार्थ अल्पमात्रा में उड़नशील तैल तथा लालरंग का रज्जक तत्व पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य एलकेलाइड एरिकोलीन आदि महत्व के हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोग—सुपारीपाक, माजूनसुपारीपाक ।

केतक्यादिवर्ग (PANDANACEAE)

वर्गलक्षण—इस वर्ग में मध्यम प्रमाण के गुल्म पाये जाते हैं । सबीजपर्ण एवं पुष्प-सुन्दर तथा गुच्छों में लगते हैं । मुख्यरूप से इसकी में ओषघ उपयोग का पौधा केतकी है ।

361 केतकी (केवड़ा)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... केतकी, तृणशून्य, सूचिपुष्प ।
हिन्दी .... केवड़ा ।
लैटिन .... Pandanus tectoris soland.

स्वरूपपरिचय—

केवड़े के मध्यम आकार के गुल्म होते हैं । इसके गुल्म से कतिपय वायव्यमूल निकलते हैं । पर्ण 80 से. मी. से 120 से. मी. लम्बे, पत्रतटों पर सूक्ष्म कांटे होते हैं । पर्णों के मध्यभग से मकई के भुट्टा की तरह सफेद सुगन्धित पुष्पव्युह निकलता है । यह पुष्प व्युह स्थूलमज्जरी में होता है । पुष्प मज्जरी को केवड़ा कहते हैं । फल–सुगन्धि, रूपरेखा में अण्डाकार, कठोर, नारंगीवर्ण का होता है ।

पुष्पकाल .... जनू, जुलाई ।
फलकाल .... सितम्बर, अक्तुबर ।
प्रयोज्यअंग .... अर्ककेवड़ा, इत्रकेवड़ा, पुष्प ।

प्राप्तिस्थान—

इसके गुल्म भारत के उष्ण प्रदेशों में उद्यानों में लगाये हुए पाये जाते हैं । विशेष रूप से यह दक्षिण भारत के पूर्वी एवं पश्चिमी समुद्र तटवर्ती प्रदेशों में अण्डमान द्वीप समूह, आसाम, बंगाल, सिक्किम में स्वयंजात होता है ।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान—

गुण-लघु, स्निग्ध, रस-तिक्त, मधुर, कटु, विपाक-कटु, वीर्य-अनुष्णशीत, प्रधानकर्म-सौमनस्य जनन, आक्षेपहर, दीपन पाचन, अनुलोमन, मस्तिष्क एवं ज्ञानइन्द्रियों को बलप्रद, ज्वरघ्न स्वदेजनन, कटुपोष्ठिक, ह्रघ । मुख्य रूप से यह हृदय एवं मस्तिष्क को बल देने वाला है । केवड़े के तेल की मालिश करने से कटिशूल, आमवात और अंगों की थकावट दूर होती है । कान में डालने से कर्णशूल में लाभ होता है और व्रणपर लगाने से रोपण होता है । फूलों से अर्क एवं शर्वत बनाया जाता है ।

रासायनिकसंगठन— केवंड़े के पुष्पों में सुगन्धित उड़नशील तैल पाया जाता है । यह इसका सक्रिय तत्त्व है ।

मुख्ययोग – अर्ककेवड़ा, शर्बतकेवड़ा ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वचादिवर्ग ARACEAE

वर्गलक्षण :– इस वर्ग में प्रायः बहुवर्षायु कन्द वाले एवं भौमिक काण्ड वाले पादप पाये जाते हैं। सपुष्प, द्विबीजपर्ण, पर्ण–एकान्तर, विभिन्न वर्ण के प्रायः सादे, क्वचित् विभक्त, पुष्प एक जातीय, छोटे, अवृन्त, बीजकोश 1-3 खण्डवाला, फल प्रायः मांसल । इस वर्ग में औषध उपयोगी वचा, सूरण, मानकन्द, गजपिपली आदि कतिपय द्रव्य आते हैं। ये औषध द्रव्य मुख्यरुप से दीपन, पाचन, कृमिघ्न, संज्ञास्थापन वामक एवं अर्शोघ्न होते हैं।

362 वचा (घोड़वच)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... वचा, उग्रगन्धा, षड्ग्रन्था
हिन्दी .... वच, घाड़बच ।
लैटिन .... Acorus Calamus Linn.

गण – (1) चरक ने लेखनीय, तृप्तिघ्न, आस्थापनोग, शीतप्रशमन, संज्ञास्थापन महाकषाय एवं शिरोविरेचनद्रव्यों, तिक्तस्कन्ध में तथा सुश्रुत ने वचादिगण, पिप्पत्यादिगण और मुस्तादिगण में वचा का उल्लेख किया है।

निरुक्ति –

वचा – ''वक्त्यनमा वचा, स्वनामख्यात सुगन्धिमूल द्रव्यम्'' अर्थात इससे वागशक्ति बढ़ती हैं ।

उग्रगन्धा – मूलकन्द विशेष उग्रसुगन्धी वाले होने से उग्रगन्धा कहते हैं।

षड्ग्रन्था – मूलखण्ड प्रायः 6 पर्वो में होता है।

स्वरुपपरिचय : वच के बहुवर्षायु भौमिककाण्ड, पर्ण मूलोद्भव, असिवत् या तलवार सद्यश, खड्गाकार, 90 से0 मी0 तक लम्बे, चमकीले मसलने कुछ सुगन्धित, पुष्प-पुष्पव्यूह (स्पाईक) में लम्बा, अवृन्त, बेलनाकार, पीताभ श्वेत, भूल-भौमिक काण्ड, उग्रसुगन्धित, मृदुरोमिल, सूत्राकार जड़ों के बिन्दुसद्यश चिहन, हल्के भूरे रंग का, उर्ध्व तल पर्व की भांति गांठे, उन्नत चिहन वाले कुछ सिकुड़ा हुआ, अनुलम्ब दिशा में अन्दर का भाग श्वेत, स्वाद में चरपरी, तीती और तीक्ष्ण होती है।

पुष्पकाल .... सितम्बर, दिसम्बर ।
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग .... भौमिककाण्ड ।

प्राप्तिस्थान

यह पूर्वी यूरोप एवं मध्य एशिया का आदिवासी पौधा है। भारत के सभी हिमालय की घाटियों में 1,800 मीटर की ऊँचाई तक उत्तराखण्ड, हिमाचलप्रदेश, जम्मूकश्मीर, नेपाल, सिक्किम आदि क्षेत्रों के जलाशयों के समीप एवं दलदल–आद्रभूमि में सर्वत्र सुलभ है।

दोषअधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण-लघु, तीक्ष्ण, सर, रस-तिक्त, कटु, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, प्रभाव-मेध्य, प्रधानकर्म–वाह्यतः वेदनास्थापन, शोथहर, वातकफशामक, पित्तवर्धक, मेध्य, संज्ञास्थापन, वेदास्थापन, दीपन, कटु पौष्टिक, निद्राजनन, हृदयोत्तेजक, कण्ठस्य, वामक, मूत्रजनन, श्वासकासहर, गर्भाशयोत्तेजक, स्वदेजनन, ज्वरघ्न।

वचा संज्ञास्थापन, नाड़ीवल्य एवं स्वापजनन में प्रभावकारी है। प्रतिश्याय, गले की सूजन, एवं श्वासनलिका के शोथ में उपादेय है। गले का टुकड़ा मुँह में रखकर चूसने से सूखी खांशी एवं गले की सूजन कम होती है। बच्चों के दांत

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आने के समय तथा अपस्मार, उन्माद, लकवा और सन्निपात–ज्वर में वचा का प्रयोग कारगर है। वचा से गर्भाशय का संकोचन होता है।

रासायनिक संगठन

इसमें उत्पलतैल, पाइनीन, कैम्फीन आदि तत्व पाये जाते हैं। एसेरोन, एकोरिन नामक चिपचिपा गाढा तथा ग्लाइकोसाइड एवं तिक्त तत्व पाया जाता है। टैनिन, म्यूसिलेज, स्टार्च तथा कैल्सियम आवजलेट आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग – वचाब्राहमीयोग, वचादिचूर्ण, सारस्वतारिष्ठ, सारस्वतचूर्ण, स्मृतिसागररस।

363 सूरण (सूरन)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... सूरण, अर्शोघ्न, कन्दनायक ।
हिन्दी .... सूरन, जिमिकन्द।
लैटिन .... Amorphophallus Campamulatuses Roxb.C.B.c.l.

निरुक्ति :— सूरण–सूरी हिसायाम्'वा सूर्यति अनेन इति सूरणः" कन्द अर्शनाशक होने से अर्शोघ्न कहते हैं ।

स्वरूपपरिचय :— सूरण के बहुवर्षायु पौधे होते हैं । काण्ड मोटा, कोमल एवं भौमिक काण्ड (कन्द) रक्ताभ भूरे रंग के, हीकदार गन्ध, स्वाद में चरपरा तीक्ष्ण होता है । पर्ण–30 से0 मी0 से 80 से0 मी0 तक मोटे, गाढे हरे रंग के पत्रतल पर श्वेताभ चकत्ते, पत्रक–अभिलट्वाकार, आयताकार या नुकीले एवं अनेक स्पष्ट शिरायें वाले होते हैं । पुष्प–उभयलिंगी स्थूल मञ्जरियों में हरिताभ गुलाबी वर्ण के होते हैं । फल लम्ब–गोल रक्तवर्ण के जिनमें 2–3 बीज होते हैं । शाक हेतु रक्त कन्द की अपेक्षा श्वेत वर्ण का कन्द उत्तम होता है । जंगली सूरण का भी औषध में व्यवहार होता है ।

पुष्पकाल .... जनवरी, मार्च ।
फलकाल............ पुष्पकाल के बाद।
प्रयोज्यअंगग.......... मूलकन्द ।

प्राप्तिस्थान :— भारत के सभी प्रान्तों उद्यानों एवं खेतों के बाड़ों में यह लगाया हुआ पाया जाता है । पुराने कन्दों का उपयोग औषध एवं शाक के रूप में प्रयोग होता है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1) :—

गुण–लघु रूक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, प्रभाव–अर्शोघ्न, कर्म–कफ–वातशामक, रूचिवर्धक, दीपन–पाचन, यकृदुत्तेजक, बल्य, रसायन, आर्तवजन, वेदनास्थापन । सूरण का शाक खाने से यकृत की क्रिया में सुधार आता है । दस्त साफ होता है एवं अर्श की रक्तवाहिनियों का संकोचन होता है । यह शूल गुल्म, श्वास–कास एवं प्लीहा के रोगों में गुणकारी है ।

रासायनिक संगठन :— जिमिकन्द में मुख्यतः कार्बोहाड्रेट पाया जाता है । इसके अतिरिक्त एल्व्युमिनायडाक्ष एवं कैलसियम औक्जलेट क्रिस्टलत्स् पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग सूरणमोदक, अर्शोघ्नीवटी,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

364 गजपिप्पली (गजपीपल)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... गजपिप्पली, हस्तिशौण्ठी, कोलवल्ली
हिन्दी .... गजपीपल
लैटिन .... **Scindapsus officinalis schott.**

स्वरूपपरिचय :— इसके एपीफाइट, वृक्षारोही, मोटी एवं मांसल लतायें होती हैं । काण्डोद्‌भव मूलों द्वारा यह लता वृक्षों एवं चट्टानों पर चिपकी हुई परिसृत होती है । पर्ण लट्वाकार या कुछ अण्डाकार सरलधार तथा पुच्छाकार एवं कटे हुये लम्बे नोकवाले होते हैं । मध्यशिरा के दोनों भाग आधार के पास छोटे बड़े होते हैं । पुष्प–स्थूल मञ्जरी में हरे कोषाकार पत्र से ढका रहता है । यही मञ्जरी फल के आकार में पिप्पली सदृश मोटी, स्वतन्त्रदाने एक दूसरे से सटे हुये किन्तु अलग–अलग होते हैं । बाजारों में आजकल ताड़ वृक्ष के शुष्क पुष्पव्युह को गजपिप्पली के नाम से बेचा जाता है । यह अशुद्ध है ।

पुष्पकाल .... जुलाई, सितम्बर
फलकाल .... पुष्प काल के बाद।
प्रयोज्यअंग .... फल,

प्राप्तिस्थान :— इसकी आरोही बहुवर्षायु लतायें देहरादून, उत्तराखण्ड, कुमांयु, मध्यप्रदेश, बिहार, बंगाल आदि सभी प्रान्तों के घने जंगलों में सुलभ है ।

वक्तव्य :— गजपिप्पली के विषय में अभी विवाद बना हुआ है । भाव प्रकाश के मतानुसार चव्य का ही फल गजपिप्पली है । ऐसा स्पष्ट संकेत मिलता है जोकि वनस्पति शास्त्र के आधार पर Piper chaba है । भारत में यह बहुत कम सिक्किम आदि क्षेत्रों में पाया जाता है । भारत में इसका आयात मलाया, सिंगापुर से होता है । इसके फल बड़ी पीपल सदृश होते हैं । निघुण्टुकार ने किस दृष्ठी से एक ही वनस्पति द्रव्य को दो भिन्न–भिन्न द्रव्यों के नाम से प्रयोग किया है यह विचारणीय है । गुणधर्मों में समानता के कारण ऐसा शास्त्रकार ने किया हो ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण–लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–कफवात शामक, पित्तकारक, लालास्त्रावजनक, दीपन, पाचन, ग्राही, यकृदुत्तेजक, वातानुलोमन, कफघ्न, श्वास–कास हर, कण्ठय, स्वेदजनन, ज्वरघ्न ।

365 मानकन्द

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... मानकन्द, कसालु,
हिन्दी .... मानकन्द,
लैटिन .... Alocasia indica shout.

वानस्पातिक स्वरूप :— मानकन्द के बहुवर्षायु भौमिक काण्ड एवं अरबी के पत्र सदृश पर्णो वाला पौधा है । पर्ण मूलोद्‌भव, पत्तियाँ, गाढे हरे रंग की 90 से0 मी0 तक लम्बे, त्रिभुजाकार एवं वाणाकार होते हैं । शीर्ष–स्थिर खण्ड त्रिभुजाकार और पार्श्वीयखण्ड लट्वाकार, पत्रदण्ड–लम्बा, मोटा एवं कठिन होता है । पुष्पवाहक–दण्ड प्रायः अनेक 10 से0 मी0 से 20 से0 मी0 तक लम्बे, नर एवं नारी पुष्प अलग–अलग होते हैं । नर एवं नारी पुष्पब्युह पृथग्–पृथग् पीतवर्ण का होता है । फल–पकने पर लाल रंग का मांसल होता है । मूलस्कन्ध कन्द सदृश होते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल .... मार्च, जून ।
फलकाल .... पुष्प काल के बाद
प्रयोज्यअंग .... कन्दचूर्ण ।

प्राप्तिस्थान :— यह उद्यानों जलाशयों के आसपास, एवं आद्रभूमि में भारत के सभी उष्ण प्रदेशों में यह पाया जाता है । आसाम, बंगाल में इसके पौध स्वयंजात पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान :— (1)

गुण–गुरू, स्निग्ध, रस–मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–वातनाशन, शोथहर, वेदनास्थापन, शूलप्रशमन, वातानुलोमन, मूत्रल, वल्य एवं कण्डू, अरूचि, शोथ एवं रक्तपित्तनाशक है । कन्द का शाक कब्ज एवं अर्श में लाभ करता है । सूखे कन्द के चूर्ण का मंड जलोदर एवं शोथ में लाभ करता है । पत्रवृन्त–स्वरस रक्तसंग्राहक एवं व्रणरोपण करता है ।

रासायनिक संगठन :— मानकन्द में काफी मात्रा में स्टार्च पाया जाता है । मूल में कैल्सियम आकजलेट् क्रिस्टिलस् एवं चूना पाया जाता है ।

मुस्तादिवर्ग CYPERACEAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में बहुवर्षायु भौमिक काण्ड वाले तृणजातीय एवं जलीय प्रदेशों में उत्पन्न होने वाले द्रव्य पाये जाते हैं । सपुष्प, एकबीजपर्ण, सुकृतृणसद्दश पर्वरहित, पर्ण–अवृन्त, पुष्प–छोटे, हरितवर्ण के छत्रों में । इस वर्ग में कशेरू, मुस्ता एवं भद्रमुस्ता आदि द्रव्य आते हैं ।

366 मुस्ता (नागरमोथा)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... मुस्तक प्लव, वन्य, नागर, अम्भोद, भद्रमुस्ता ।
हिन्दी .... नागरमोथा, गोन्द्रा ।
लैटिन .... **Cyperus rotundus** Linn.
नागरमुस्तक ...... **Cyperus pangorei** Rottb.

गण :— (1) चरक ने लेखनीय, तृप्तिघ्न, कण्डूघ्न, स्तन्यशोधन, तृष्णनिग्रहण महाकषाय तथा सुश्रुत ने वचादिगण, मुस्तादिगण में नागरमुस्तक का उल्लेख किया है ।

निरूक्ति :— मुस्तक–मुस्यति खण्डयति रोगान्'' मुस्ता'' अर्थात् यह सभी रोगों को जड़ से नष्ट करता है ।

नागर :— नगर के समीप जलीय प्रदेशों में उत्पन्न होने से उसे नागर कहते हैं ।

अम्भोद, पल्व, धन :— जलीय प्रदेशों में पैदा होने के कारण इसके पर्याय जलवोधक शब्द है ।

स्वरूपपरिचय :— नागरमोथा के मूल मोटे जमीन के अन्दर एवं भूमिशायिकाण्ड होते हैं । वायव्य काण्ड पतला, कोमल, त्रिपार्श्विक एवं मूलकन्द छोटे बकरी के मेंगनीसद्दश 5 से 10 की संख्या में बाहर से कृष्ण वर्ण के एवं तोड़ने पर श्वेतवर्ण के सुगन्धित होते हैं । पुष्प–छोटे, छत्रक के आकार में हरिताभ भूरे रंग के होते हैं ।

इसके अतिरिक्त नदी, जलाशयों के पास बहुवर्षायु भौमिक काण्डवाला तलोत्थ एक वर्षायु काण्ड पाया जाता है जिसे Cyperus pangorei कहते हैं । बाजार में इसी पौधे के मूल नागरमोथा के नाम से मिलते हैं ।

पुष्पकाल .... जून, जुलाई,
फलकाल .... पुष्पकाल के बाद
प्रयोज्यअंग .... मूल ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान :— यह उत्तरप्रदेश, बुन्देलखण्ड, मध्यप्रदेश, बंगाल, बिहार, राजस्थान सभी उष्ण क्षेत्रों में एवं जलाशयों के समीप सर्वत्र पाया जाता है । इसकी कई किस्में पाई जाती है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–लघु, रूक्ष, रस–कटु, तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, कर्म– कफपित्त शामक, दीपन, पाचन, ग्राही, तृष्णानिग्रहण, कृमिघ्न, कफघ्न, स्तन्यशोधन, ज्वरघ्न, वल्य, मेध्य, रक्तविकार, अतिसार, अरूचिनाशक है । आमातिसार, रक्तातिसार, कुपचन में उपयोगी है । दूध बढ़ाने एवं दूध की शुद्धि के लिये नागर मोथा का प्रयोग करते हैं । गर्भाशय के विकारों में भी उपयोगी है । इसके अतिरिक्त कण्डू, कुष्ठ एवं विष को दूर करने वाला है ।

रासायनिक संगठन :— इसकी जड़ में सुगन्धित उत्पलतैल, वसा, शर्करा, कार्बोहाइड्रेट, एलब्युमिन, क्षार आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग :— मुस्तकादि क्वाथ, वत्सकादिक्वाथ, दशमूलारिष्ठ, मुस्तकारिष्ठ, अश्वगन्धरिष्ठ, च्यवनप्राश, वालचातुभद्रचूर्ण, अविपत्तिकरचूर्ण, अशोकारिष्ठ, नवायसलौह ।

वक्तव्य :— निघण्टु ग्रन्थों में मुस्तक, भद्रमुस्तक एवं कैवर्तमुस्तक के नाम से उल्लेख है ।

367 कशेरूक (कसेरू)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... कसेरूक, कशेरू, गुण्डकन्द ।
हिन्दी .... कसेरू
लैटिन .... **Scirpus kyssoor** Roxb.

स्वरूपपरिचय :— कशेरू के पौधे नागरमोथा सद्यश हैं । आद्र एवं जलीय स्थानों में यह पाया जाता है । कन्द–अण्डाकार, गोल, गांठ की तरह बाहर से कृष्ण वर्ण का एवं तोड़ने पर श्वेतवर्ण का स्वाद में मधुर होता है । निघण्टुकारों ने राजकशेरू एवं लघु कशेरू दो प्रकारों का निर्देश है । मूलकन्द–बहुवर्षायु, काण्ड–बहुशाखायी–पर्ण–बेलनाकार लम्बे, पुष्प–पुष्पदण्ड पर–छत्राकार ।

पुष्पकाल ....जनवरी, मार्च, ।
फलकाल ....पुष्पकाल के बाद ।
पय्रोज्यअंग ....मूल कन्द ।

प्राप्तिस्थान :— भारत के उष्ण प्रदेशों के जलीय स्थानों तालाबों में इसके पौधे सर्वत्र पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेने कर्मज्ञान (1)

गुण–रूक्ष, गुरू, रस–मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–पित्तनाशक, दाहप्रशमन, वमन एवं अतिसार नाशक, हृद्य, बल्य । यह शुक्रल, स्तन्य, रक्तविकार, दाह नेत्ररोग, प्रमेह और तृषा को दूर करने वाला है ।

रासायनिक संगठन :— कन्द में 63% स्टार्च, 7% प्रोटीन, 7% गोंदीय तत्व, 6% काष्ठ भाग होता है ।

मुख्ययोग :— कसेरूकादिलेह, कशेरूकादिलेप,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उशीरादिवर्ग GRAMINAE

वर्गलक्षण :— इस वर्ग में तृणजातीय कतिपय उपयोगी द्रव्य आते हैं। सपुष्प, एकबीज पर्ण, पर्ण–अखण्ड, पुष्प–वल्कसद्यश, बीजकोश–पक्षाकार, दो रजोवाहिनी नलियों से आवृत, बीज, शुष्क, मञ्जरी में। इस वर्ग में मुख्य रूप से उशीर, वंश, दूर्वा, यव, इक्षु, कुश, कास, शर, दर्भ आदि कतिपय तृणजातीय उपयोगी बनौषध आते हैं।

368 उशीर (खस)

द्रव्यनाम .... संस्कृत ....उशीर, सेब्य, वीरण, अभय,
हिन्दी .... खस
लैटिन .... **Vetiveria zizanioides** Nash.

गण :—(1) चरक ने वर्ण्य, स्तन्यजनन, छर्दिनिग्रहण, दाहप्रशमन, महाकषाय, सुश्रुत ने सारिवादिगण एवं पित्तसंशमन वर्ग में उशीर का उल्लेख किया है।

निरूक्ति :— उशीर–उश्यते काम्पते इत्युशीरम्'' स्वनामप्रसिद्ध सुगन्ध तृणमूलम्'' वीरणस्य तु मूले स्यादुशीरम्''

स्वरूपपरिचय :— खस तृण जाति की सुगन्धित प्रसिद्ध जड़ है। इसका मूल गुच्छबद्ध बहुवर्षायु होता है। मूल स्तम्भ से अनेक सूत्राकार अनेक लम्बी–लम्बी सुगन्धित जड़े निकलती हैं। इनका व्यवहार खश के नाम से किया जाता है। गरमी में पंखें, खसगृह बनाने के लिये शीतलता के लिये प्रयोग होता है। पत्र–कुश सद्यश, तीक्ष्ण, रोमश होते हैं। पुष्प–मञ्जरी में धूसर वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल .... मार्च, मई
फलकाल .... पुष्प काल के बाद
प्रयोज्यअंग .... मूल।

प्राप्तिस्थान :— भारत के सभी उष्ण प्रदेशों के नमदार एवं नालों के समीप गीली जमीन में यह सर्वत्र पाया जाता है। उत्तरीभारत, मैसूर, बंगाल आदि में यह अधिक पाया जाता है।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–लघु, रूक्ष, रस–तिक्त, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–मूत्रल हृद्य, दाहतृषाशामक, स्वेदापनयन, वमन–अतिसारनाशक। पित्तसंशमन, जल को सुगन्धित करने वाला, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ एवं व्रणरोपक है। खस–शीतल, मूत्रजनन, पिपासाहर, स्वेदजनन, ज्वरों में त्वचा का दाह कम करने वाला और रोचन हे।

रासायनिक संगठन :— जड़ में उड़नशील तैल, रक्त एवं धूसर रालदार पदार्थ पाया जाता है। इसके अतिरिक्त रञ्जक द्रव्य, अम्ल एवं चूने के लवण पाये जाते हैं।

मुख्ययोग :— उशीरासव, उशीरादिचूर्ण, उशीरादिक्वाथ, षडङ्गपानीय, दशमूलारिष्ठ, सर्वज्वरहरलौह, सारिवाद्यारिष्ठ, सारस्वतारिष्ठ, दशांगलेप, लवंगादिचूर्ण।

369 वंश (बांस)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... बंश, वेणु, कीचक, यवफल, शतपर्व।
हिन्दी .... बांस,
लैटिन .... **Bambusa bambos Druee**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूपपरिचय :— बांस के मध्यम आकार के गुल्म पाये जाते हैं । इसका मूल स्तम्भ काफी मोटा होता है । काण्ड प्रायः सीधा खड़ा होता है । अधिक ऊँचा होने पर उर्ध्व भाग नीचे को झुक जाता है । ग्रन्थियों से छोटी–छोटी नुकीली शाखायें निकलती हैं । अन्दर से बांस का काण्ड पोला होता है । पर्ण गहहरे हरे रंग के, रेखाकार, भालाकार तथा पत्राग्र नुकीला होता है । पुष्प सशाख पुष्प दण्डों पर श्वेताभ, फल–आयताकार, लम्ब, गोल, पार्श्व में खातोदर और शीर्ष पर कुक्षिवृन्त के अवशेष लगे रहते हैं । बीज यवाकार होते हैं इसी कारण बीजों वंशयव कहते हैं । नवीन शुङ्ग (कोंपलों) का विशेष रूप से शाक एवं आचार बनाया जाता है ।

पुष्पकाल .... मार्च, मई ।
फलकाल ....पुष्पकाल के बाद ।
प्रयोज्यअंग.............मूल, पत्र, बीज, सार–वंशलोचन ।

प्राप्तिस्थान :— बांस भारत के सभी उष्ण प्रदेशों में पाया जाता है । यह विशेषकर दक्षिण भारत, पश्चिमी घाट की तराई, उड़ीसा, आसाम पूर्वी बंगाल एवं हिमालय की तराई में पाया जाता है । इसके अतिरिक्त मलाया, सिंगापुर एवं पूर्वी द्वीप समूह में वंशलोचन वाला बांस प्रचूर मात्रा में मिलता है । भारत में वंशलोचन का आयात सिंगापुर से होता है । यह वंशलोचन मादा बांस के ग्रन्थि कोटरों से प्राप्त किया जाता है । यह द्रव्य के रूप में संचित होता है । व्यवसायी लोक इस शुष्क द्रव्य को आग में पका कर बेचते हैं । आजकल बाजारों में बनावटी वंशलोचन ही विशेष रूप से मिलता है । प्राकृतिक वंशलोचन कुछ काली आभा लिये मटमैला होता है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

रस–कषाय, मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म , वातपित्तशामक, ग्राही, हृद्य, रक्तस्तम्भक, कफनिस्सारक, श्वासहर, मूत्रल, ज्वरघ्न, बल्य, बृंहण, वेणुयव–मधुर, कटुविपाक, उष्ण, बल्य, मेद, कृमि एवं विषनाशक है । बांस के अकुंर गुरू कफ वातकोपक है ।

यूनानी मतानुसार वंशलोचन शीत एवं रूक्ष है ।

रासायनिक संगठन:— वंशलोचन में 90% तक सिलिका, मंडूर, चूना, ऐलुमिनियम, पोटास आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग :—तालीसादिचूर्ण, सितोपलादिचूर्ण ।

370 कुश (दाभ)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... कुश, सूच्यग्र, यज्ञभूषण ।
हिन्दी .... कुशा, दाभ ।
लैटिन .... **Desmostachya bipinnata Stapf.**

गण :—(1) चरक ने स्तन्यजनन, मूत्र विरेचनीय महाकषाय तथा मधुरस्कन्ध एवं सुश्रुत ने तृणपञ्चमूल गण में कुश का उल्लेख किया है ।

स्वरूपपरिचय :— यह मुञ्ज की जाति की एक प्रकार की घास है । इसका मूल बहुवर्षायु, काण्ड 90 से0 मी0 तक ऊँचा, पत्र मूलोद्भव लम्बे एवं अग्रभाग नुकीला होता है । पत्र तट सूक्ष्मरोमिल एवं तीक्ष्ण धार वाले होते हैं । पुष्पदण्ड–लम्बा, सीधा, बीज अण्डाकार एवं चपटे होते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्पकाल ....जुलाई अगस्त ।
फलकाल ....दिसम्बर ।
प्रयोज्यअंग .... मूल ।

प्राप्तिस्थान :— भारत के उष्ण प्रदेशों के नमदार नदी नालों के आसपास यह सर्वत्र पाया जाता है । इसकी छोटी जाति को कुश एवं बड़ी जाति को दर्भ कहते हैं । संहिता ग्रन्थों में दर्भ एवं कुश दो भिन्न-भिन्न द्रव्यों का उल्लेख है । निघण्टुकारों ने श्वेत दर्भ का गुणकारी बताया है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

मधुर, कषायानुरस, शीतल, वस्तिशोधन (मूत्रल) स्तन्यजनन, मूत्रविरेचन, विसर्प, दाह मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, वस्ति के रोग एवं प्रदर नाशक है । रक्त-प्रदर में मूल को चावल के धोवन के साथ पीस कर देने से लाभ होता है ।

371 काश (कांस)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... काश, कांस, इक्ष्वालिका, सितपुष्प ।
हिन्दी .... कांस
लैटिन .... **Saccharum spontanum Linn.**

वर्ग :— पञ्चतृण द्रव्यों में निघण्टु कारों ने काश का उल्लेख किया है ।

निरूक्ति :— काशते काश" श्वेतचामरपुष्पों नाम तृणविशेष"

स्वरूपपरिचय :— कास बहुवर्षायु तृण जाति का पौधा है । यह घास प्रायः नदी, नालों एवं आद्र स्थानों पर पाया जाता है । इसके काण्ड 3-से 4 मीटर तक लम्बे होते हैं । नदी नालों में चारों तरफ यह फैला होता हैं । पुष्प-मञ्जरी में श्वेत वर्ण का होता है ।

पुष्पकाल .... अगस्त, सितम्बर ।
फलकाल .... पुष्प काल के बाद ।
प्रयोज्यअंग .... मूल ।

प्राप्तिस्थान :— भारत के उष्ण प्रदेशों में नदी, नालों के किनारे समूह रूप में यह स्वयं जात पाये जाते हैं ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण-लघु, स्निग्ध, रस-मधुर तिक्त, विपाक-मधुर, वीर्य-शीत, कर्म-वात-पित्तशामक, मूत्रविरेचनीय, अश्मरीभेदन, दाहप्रशमन, रक्तपित्तशामक, स्तन्यजनन, बल्य ।

मूल का उपयोग रक्तप्रदर मूत्रकृच्छ अश्मरी एवं रक्तार्श में किया जाता है ।

मुख्ययोग :— तृणपञ्चपञ्चमूलक्वाथ ।

372 शर (मुन्ज)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... शर, मुन्ज, बाण ।
हिन्दी .... रामसर, सरपत ।
लैटिन .... **Saccharum munja Roxb.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूपपरिचय :— यह तृण जाति की बहुवर्षायु घास है । मूल भाग से गुच्छों में शाखायें निकलती हैं । काण्ड–अन्दर से ठोस बाहर से चिकने, रेखांकित होते हैं । पर्ण–चमकदार अग्र की ओर कर्कशः धार वाली एवं 1 मीटर से भी अधिक लम्बे पर्ण होते हैं । पत्तियों का उपयोग छप्पर बनाने एवं कागज के लिये किया जाता है ।

पुष्पकाल .... शीतकाल ।
प्रयोज्यअंग .... मूल ।

प्राप्तिस्थान :— यह भारत के उष्ण प्रान्तों सर्वत्र सुलभ है । मुख्यरूप से उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा आदि क्षेत्रों में नदी नालों के मैदानी भागों में समूह रूप से पाया जाता है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण–लघु, स्निग्ध, रस–मधुर, कषाय, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–त्रिदोषहर, तृष्णानिग्रहण, दाहप्रशमन, रक्तशोधक, मूत्रल, स्तन्यजनन, चक्षुष्य, महात्मा लोग मेखला बनाने में विशेष रूप से उपयोग करते हैं ।

मुख्ययोग :— तृणपञ्चमूलक्वाथ ।

निघण्टु कारों ने छोटी एवं बड़ी भेद से दो किस्मों का उल्लेख किया है ।

373 इक्षु (ईख)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... इक्षु ।
हिन्दी .... ईख, गन्ना ।
लैटिन .... **Saccharum officinarum Linn.**

स्वरूपपरिचय :— यह तृण जाति का पादप है । काण्ड में मीठा रस भरा होता है । काण्ड 2 मीटर से 4 मीटर लम्बा, गांठदार एवं काण्ड के अग्रभाग पर समूह रूप में पत्र निकलते हैं । पत्रतट कुछ धारीदार लम्बे, पुष्प गुच्छों में ।

पुष्पकाल सितम्बर, फरवरी ।
फलकाल पुष्प काल के बाद ।
प्रयोज्यअंग मूल, रस, गुड़, शर्करा ।

प्राप्तिस्थान :— भारत के उष्ण कटीबन्धीय क्षेत्रों में मुख्य रूप से उत्तरप्रदेश, बिहार, पंजाब आदि प्रायः सभी प्रातों में इसकी खेती की जाती है । काण्ड एवं रंग भेद से इसकी कई किस्में होती है । ईख, गन्ना, पतला, छोटा एवं कडा होता है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण–गुरू, स्निग्ध, रस–मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–वातपित्तशामक, कफवर्धक, सारक, हृद्य, रक्तपित्तशामक, श्लेश्मनिस्सारक, मूत्रल, बल्य, बृहण, स्तन्यजनन ।

दांतों से दबाकर चूसा हुआ गन्ना मधुर, शीतवीर्य, बल्य एवं बृंहण और वातपित्त नाश होता है ।

रासायनिक संगठन :— ईख इसमें सुक्रोज, राल, वसा एवं जल स्फटकीयचूर्ण, कैल्सियम आक्जलेट पाये जाते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

374 दूर्वा (दूव)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... शतपर्वा, दूर्व्वा, शतवीर्या ।
हिन्दी .... दूव, दुबड़ा ।
लैटिन .... **Cynodon dactylon** Pers.

गण :— (1) चरक ने वर्ण्य दाह प्रशम महाकषाय में दूर्व्वा का उल्लेख किया है तथा सुश्रुत सारिवादिगण एवं पित्तसंशमन वर्ग में ।

निरूक्ति :— दूर्वा–दूरं वाति दूर्ब्वति वा पशुभिर्दूर्व्वा" दूर्वी हिंसायाम्" स्वनामख्यात घास विशेष ।"

शतपर्वा शतं पर्वाणिग्रन्थयो यस्या अर्थात् इसके काण्ड पर सौ पर्व होते हैं ।

स्वरूपपरिचय :— दूब के बहुवर्षायु पतले स्वभाव के काण्ड युक्त प्रसरी पौधे होते हैं । काण्ड जमीन पर आगे को प्रसर करता है । प्रत्येक पर्व पर मूल निकलता है । इसी कारण इसे शतपर्वा भी कहते हैं । पर्ण–रेखाकार, भालाकार, मुलायम नुकीले होते हैं । पुष्प हरिताभ, छोटे नीलारूण होते हैं । निघण्टु ग्रन्थों में श्वेत, नील एवं गडदूर्व्वा भेद से 3 भेदों का उल्लेख है । घोड़ों का यह प्रसिद्ध घास है । हिन्दु धर्म में दूव का पूजन कार्य में विशेष विधान है ।

पुष्पकाल .... जुलाई, सितम्बर ।
फलकाल .... पुष्प काल के बाद ।
प्रयोज्यअंग .... पंचांग ।

प्राप्तिस्थान :— भारत के सभी प्रान्तों के मैदानी एवं हिमालय की निचली घाटियों में सर्वत्र सुलभ है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण–लघु, स्निग्ध, रस–मधुर, कषाय, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–कफ पित्तशामक, व्रणरोपण, दाह प्रशमन, वर्ण्य, छर्दिनिग्रहण, रक्तशोधक, प्रजास्थापन, कुष्ठघ्न, जीवनीय, विषघ्न, यह स्वेद जनन ज्वर में त्वचा का दाह कम करने वाला और रोचन है ।

रासायनिक संगठन :— इसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं रेशे पाये जाते हैं । पोटासियम, मैगनीसियम् एवं सोडियम के लवण भी पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग :— दूर्वादिक्वाथ, दूर्वाद्यघृत, दूर्वाद्यतैल ।

375 रोहिष. (कतृण)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... रोहिष, कतृण ।
हिन्दी .... रूसाघास, मिरचागंध ।
लैटिन .... **Cymbopogon scholnathus** Linn.

गण :— (1) चरक ने स्तन्यजनन महाकषाय में कतृण का उल्लेख किया है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूपपरिचय :— इसकी बहुवर्षायु जड़ें होती हैं, काण्ड–मसृण, रक्ताभ नुकीले, काण्डसंसक्त एवं पत्तों को मलने पर सुगन्ध आती है । पुष्प रक्ताभ वर्ण के मञ्जरियों में ।

पुष्पकाल .... शीतकाल ।
प्रयोज्यअंग .... मूल, पत्र, तैल ।

प्राप्तिस्थान :— इसके काण्ड भारत के उष्ण प्रदेशों के वनों में विशेषकर मुख्य रुप से शिवालिक वनखण्ड, बुन्देलखण्ड, बिहार में पाया जाता है ।

इसके अतिरिक्त अन्य किस्में **Cymbopogan Citratus** भूतृण **Cymbopogon Jawarankusa** भी औषध उपयोगी के है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)
स्वाद में कषाय, रस–तिक्त, विपाक–कटु, उष्ण, स्वेदजनन, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, उत्तेजक, चेतनाकारक, आमवात में इसके तैल का अभ्यङ्ग लाभ करता है । प्रतिश्याम, ज्वर एवं कफ विकारों के उपयोगी है ।

रासायनिक संगठन :— इसकी पत्तियों में उत्पलतैल, सुगन्धित तैल पाया जाता है ।

376 हंसराज (हंसपदी)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... हंसपादी, हंसपदी, कीटमाता ।
हिन्दी .... हंसराज ।
लैटिन .... **Adiantum lunulatum** Buram.
कुल (N.O.) POLY PO DIACEAE

गण :— (1) चरक ने कण्ठयमहाकषाय, मधुरस्कन्ध एवं सुश्रुत ने बिदारीगन्धादिगण में हंसपदी का उल्लेख किया है ।

निरूक्ति :— **हंसपादी**–हंसपदाकार पत्र लता पीत पुष्पा जल युक्त देश जाता हंसपदी इतिलोके प्रसिद्ध ।।

स्वरूपपरिचय :— हंसराज अपुष्पवर्ग की वनौषधि है । इसका काण्ड भूमिशायी होता है । पर्ण–बाहर को निकले रहते हैं । प र्ण रक्ताभ–कृष्णवर्ण के मृदु डंठल पर लगे होते हैं । आकृति में वृताकार, अण्डाकार या आयताकार हरितवर्ण के होते हैं ।

प्रयोज्यअंग .... पंचाग ।
मात्राचूर्ण .... 2 ग्राम से 6 ग्राम ।

प्राप्तिस्थान :— यह सर्वत्र जलाशयों कुओं के आसपास एवं छायादार स्थानों में पाया जाता है । Adiantum की कई किस्में पाई जाती है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (2)

गुण–गुरू, स्निग्ध, रस–मधुर, तिक्त, कषाय, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, प्रधानकर्म–वातपित्तशामक, व्रणरोपण, ग्राही, रक्तशोधक, श्वास–कासहर, उन्माद, अपस्मारनाशक ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यह कासहर कफघ्न, बड़ी मात्रा वामक एवं मूत्रजनन है ।

मुख्ययोग :— हंसपदीपानक ।

नोट :— बाजार में मयूराशिखा के नाम से Actonopteris dickotoma वे पंचांग मिलते हैं । अधिकतर विद्वानों ने Elephantopus scaber को मयूरशिखा माना है ।

377 शैलेय (शिलापुष्प)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... शिलापुष्प, शैलेय ।
हिन्दी .... छड़ीला, छरीला ।
लैटिन .... **Parmelia perforata** Ach.
कुल .... LICH ENS

स्वरूपपरिचय :— यह पत्थरों एवं वृक्षों पर उत्पन्न होने वाला लाइकेन्स है । इसका ऊपरी पृष्ठ काला एवं नीचे का सफेद होता है । अधिक सफेद वाला छड़ीला श्रेष्ठ होता है । इसकी कई किस्में पाई जाती हैं । औषध में सुगन्ध युक्त छड़ीला श्रेष्ठ है ।

प्रयोज्यअंग ....पंचांग ।

प्राप्तिस्थान :— यह हिमालय की घाटियों उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, आसाम, नीलगिरि आदि क्षेत्रों में 2,700 मीटर की ऊँचाई तक सुलभ है ।

दोष अधिष्ठान भेदेन कर्मज्ञान (1)

गुण–लघु, रस–तिक्त, वीर्य–शीत, सुगन्धित, हृद्य, मूत्रल, दीपन, वेदनास्थापन, ग्राही, शोथहर, कफ–पित्त, दाह, तृष्णा वमन, श्वास, कण्डू, कुष्ठ, अश्मरी एवं रक्तविकारों में उपयोगी है ।

पेशाब रूकने पर 1 तोला छड़ीला फाण्ट में मिश्री एवं जीरा मिलाकर पिलाते हैं तथा गरम जल में भिगोकर कमर पर बांधते हैं । शिरःशूल में शीतल जल में पीसकर शिर पर लेप करने से लाभ होता है । यकृत् शूल निवारण के लिये छड़ीला का उपयोग करते हैं ।

रासायानिक संगठन :— इसमें पीत रवेदार पदार्थ, गोंद, लाइचेनिन एवं क्राइसोफेनिक एसिड आदि तत्व पाये जाते हैं ।

378 छत्रक (गुच्छी)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... छत्रक, भूपुष्प ।
हिन्दी .... गुच्छी, खुम्बी ।
लैटिन .... Agaricus campertris
कुल .... Fungi

स्वरूपपरिचय :— यह वर्षाकालीन नम स्थानों एवं पुराने सड़े वृक्षों पर पैदा होने वाला संस्वेदज छात्राकार फङ्गस है । इसकी कई सविष एवं निर्विष किस्में पाई जाती हैं । आदिवासी लोग बल्य एवं रसायन हेतु इन संस्वेदज शाकों का उपयोग करते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान :— गुच्छी हिमालय के क्षेत्रों में विशेषकर उत्तराखण्ड, जम्मु–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, लद्दाख, सिक्किम में पाया जाता है ।

गुणधर्म :— (1) इसका शाग बनाकर खाते हैं । स्वाद में यह स्वादिष्ट एवं पौष्टिक होता है । गुणों में यह मधुर एवं गुरू होता है । मांस के समान गुणकारी पौष्टिक एवं बाजीकर है । क्षय रोग में इसका शाग बनाकर खिलाते हैं ।

379 कंकूष्ठ

कंकूष्ठ एक संदिग्ध द्रव्य है । देश, स्थान भेद से कतिपय शास्त्रकारों एवं विद्वानों ने इसे खनिज द्रव्य (मृदारश्रृङ्ग) एवं औद्भिजद्रब्य (उषारेवन्द) या गैम्बोज, हिमावती स्वर्णक्षीरी, सद्योजात अश्वमल, सद्योजात नाभिनाल आदि को कंकूष्ठ माना है । प्राणिज द्रव्य कंकूष्ठ है यह लेखक के विचार से भ्रामक है ।

मृदारश्रृङ्ग एवं उशारेरेवन्द स्वर्णक्षीरी गार्सिनियाँ मेटेला का निर्यास की विशेष सम्भावना शास्त्रीय कंकूष्ठ की है ।

कंकूष्ठ के शास्त्रीय पर्याय :—

कंकुष्ठम्:— –अर्थात् कुष्ठ रोग में सुखदाय होने के कारण ।
विरङ्गम् :— विशिष्ट रञ्जक (रंगने) वाला पदार्थ होने से ।
रेचकम् :— विरेचन गुणों वाला होने से ।
पुलकम् :— वजन में हलका फलका होने से ।
शोधनम् :— वमन विरेचन द्वारा दो शोधक होने से ।
कालपालकम् :— अर्थात् निश्चित काल में औषधि उपयोग वाला होने से ।
वराङ्गम् :— स्वर्णवत् श्रेष्ठ पीत वर्ण का होने से ।
स्वर्णक्षरी, हैमवती :— इन पर्यायों का भी पीतवर्ण विशिष्ठ द्रव्य होने से कंकूष्ठ के पर्यायों में उल्लेख है । उपर्युक्त सभी पर्यायों की सार्थकता वनस्पति द्रव्य गार्सेनियां मेटेला से मिलते हैं ।

रस ग्रन्थों में मृद्दारश्रृङ्ग के प्रसंग में कंकूष्ठ का उल्लेख है । सम्भवतः स्वर्णाभ पीतवर्ण का स्वरूप साद्दश्य होने के कारण कंकूष्ठ नाम का उल्लेख किया गया होगा । रस बन्धन होने से उपरसों में उल्लेख किया गया है । कतिपय विद्वानों ने रेवन्दचीनी एवं रेवन्द उशारा को कंकूष्ठ स्वीकार किया है । सम्भवतः गुणों की साद्दश्यता एवं आकार में समानता के कारण विद्वानों ने स्वीकार किया है । मेरे विचार से इसे प्रतिनिधि द्रव्य के रूप में स्वीकार करना चाहिये । स्वर्णक्षीरी में रेचक गुण है । डल्हण ने ''अनन्तमूलसद्दश पत्रावली हिमावती हिरवी इति लोके'' ।। यह अर्थ किया है जिसके आधार पर कुछ विद्वानों ने Euphorsbia thompsonia को स्वर्णक्षीरी माना है । वास्तव में मूल में पीत दुग्ध इसका स्पष्ट रूप से नहीं निकलता है । अतः केवल रेचक गुण इसमें है । अतः कंकूष्ठ स्वीकार करना विचारणीय है । अतः स्वर्णशीरी Euphorbia thomponia ही है यह एक विचारणीय है । हिमावती काञ्चनक्षीयौ'' इस की व्याख्या विस्तार भम से यहां पर सम्भव नहीं है । अतः लेखक के विचार से भी गारसीनियाँ मोरेला को ही कंकूष्ठ स्वीकार करना चाहिये ।

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... कंकूष्ठ ।
लैटिन .... **Garcinia morella**
कुल .... Guttiferae

स्वरूपपरिचय :— मध्यम आकार का सदा हरित वृक्ष होता है । शाखा चतुष्कोण प्रशाखा चारों ओर को झुकी रहती है । पर्ण– क्रमानुसार, आयताकार, अभिलट्वाकार, 9 से0 मी0 से 1 3 से0 मी0 लम्बे, चौड़े होते हैं । दोनों किनारे संकुचित होते हैं । पुष्प– एकलिङ्गी, गुच्छों में, चतुष्कोण, स्तम्भाकार । स्त्री पुष्प बड़े, फल–गोलाकार । 2 से0 मी0 व्यास में चार खण्डों से युक्त होता है । बीज–संख्या में 4 अण्डाकार एवं वृक्काकार होते हैं । काण्ड में चीरा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लगाने पर पीले रंग का तरल राल पदार्थ निकलता है । यह तरल–राल सूघने पर पीले रंग का एवं स्वाद में कटु होता है । भारत में इसका आयात किया जाता है ।

प्राप्तिस्थान :— इसके वृक्ष बंगाल के पूर्विभाग, खासिया पहाड़, पश्चिम घाट, दक्षिण में ट्रावन्कोर, लंका, सिंगापुर कम्बोडिया आदि देशों में पाया जाता है ।

संग्रहविधि :— पुराने परिपक्व वृक्षों की शाखाओं पर जुलाई, अगस्त में कुन्तल आकार का चीरा लगते हैं । वृक्ष के नीचे बांस गांठदार लगा देते हैं उन बांसों में स्त्राव एकत्रित होता है । इन बांसों के अन्दर एक मास तक रखते हैं । जिनमें यह जम जाता है । कुछ समय बाद इन बांसों को गरम करते हैं । बांस चटककर अलग हो जाता है भीतर से लम्बा बेलनाकार, रक्ताभ, पीत नारंगीवर्ण का टुकड़ा प्राप्त होता है जिसे नलिकाकार कंकूष्ठ कहते हैं । बाजार में उपलब्ध इन्ही टुकड़ों की लोग भ्रमवश उशारेरेवन्द एवं रेवन्दचीनी का सत्व कहते हैं । कतिपय व्यापारी इसमें मिश्रण करते रहते हैं ।

गुणधर्म :— (1) गुण–तीक्ष्ण, रूक्ष, रस–कटु तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–दीपन, रेचन, उष्ण एवं तीक्ष्ण होने से वातशामक एवं पित्त विरेचक है । पाचन संस्थान में इसकी मुख्यक्रिया आन्त्र पर होती है यह तीव्र विरेचक है । इसके प्रयोग से पित्त का स्त्राव बढ़ता है एवं तीक्ष्णता के कारण पतले दस्त आते हैं । यह उदाशूल, गुल्म, आनाह, आध्मान एवं कृमिघ्न है । रक्त वह संस्थान में हृदय एवं यकृत के विकृति के कारण होने वाले सर्वाङ्गशोथ एवं जलोदर में लाभदायक है । इससे यकृत की क्रिया में लाभ होता है । वातनाड़ी संस्थान में यह आमवात, गृध्रसी वात अर्दित, पक्षाघात में उपयोगी है । कफघ्न एवं कफ निस्सारक है । गर्भाशय संकोचक रजोरोध तथा गर्भपात कराने में उपयोगी है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

खण्ड 2

अतिविषा

1. मुस्त कुष्ठ हरिद्रा दारुहरिद्रा वचातिविषा कटुरोहिणी चित्रक चिरविल्व हैमवत्य इति दशेमानि लेखनीयानि भवन्ति"
कुटज विल्व चित्रक नागरातिविषाभया धन्वयास . . . . . . आदि "
अतिविषा पष्ठयते" च० सू० अ० 4"

2. अतिविषा शुक्लकन्दाऽपराप्रतिविषा ।
घुणप्रिया घुणामाद्री श्यामकन्दा सितारुणा ।।
भंगुरोपविषो विश्वश्रृंगी चोपविषाणिका ।।कैय्यदेव निघण्टु"

3. विषासोष्णा लघुस्तिक्ता दीपनी पाचनी जयेत् ।
कफपित्तातिसाराम विषकासवमिकृमीन् ।। कै० नि०

अतिविषा दीपनीय पाचनीय संग्राहक सर्वदोष
हराणाम् श्रेष्ठा" च० सू० अ० 25"

4. दद्यात्सातिविषां पेयां सामे साम्लां स नागराम्" च० सू० 2
कफपित्त ज्वरामातिसार कासविषापहम्।
यकृद्बान्तितृषां चैव कृमीनशश्चिपीनसम् ।।
पित्तोदरं चातिसारं सर्वव्याधिहरंमतम् ।। नि० र० "

वत्सनाभ

5. सिन्दुवार सद्यक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा ।। भा० प्र०

य : कन्दो गोस्तनाकारो न दीर्धपञ्चमामांगुलात् ।
न स्थूलो गोस्तदूर्ध्व," वत्सनाभं तुपाण्डुरम् ।। र० र० स० "

6. विषं रसायनं वल्यं वातश्लेष्म विकारनुत् ।
कटुतिक्त कषायं च, मदकारी सुखप्रदम् ।।
व्यवायी शतनुद् ग्राही, कुष्ठवातस्त्रनाशनम् ।

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायी च विकाशी च ।
आग्नेयं वातकफ हृद्योगवाही मदावहम् ।। भा० प्र०

7. अग्निमाद्यंश्वास कासं प्लीहोदरभंगदरान् ।
गुल्मपाण्डु ब्रणार्शासि नाशयेद्विबिधिसेवित्तम् ।।
कुष्ठ पाण्डु ज्वरं हन्ति, आमवात प्रणाशनम् ।
विषं विशेषतो वात वेदनाहरमुत्तम्।।

8. अतिमात्रं यदा भुक्तं तदाऽऽज्यं टंकणं पिवेत्
लिहयाद्धा मधुसर्पिभ्यां, सं पिष्ठायर्जुनत्वचम् ।।
जंगमं स्यादद्योभाग मूर्ध्वभागं तु मूलजम्।। रस कामधेनु। च०चि०अ० 23

उपकुञ्चिका

9. कारवी कुञ्चिकाऽजाजी यवानी धान्यतुम्बरु ।
रोचनं दीपनं वातकफ सौगन्ध्य नाशनम् ।। चरक "

10. तीक्ष्णोष्णां कटुकं पाके रुच्यं पित्ताग्निवर्धनम् ।
कटु श्लेष्मानिलहरं, गन्धास्ठ्यं जीरकद्वयम् ।।
कारवी करवी तद्वद्विज्ञेया सोपकुञ्चिका ।। सु० सू० अ० 46 "

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जीरकं त्रितयं कटुष्णं दीपनं लघु ।
संग्राही पित्तलं मेध्यं गर्भाशय विशुद्धिकृत् ।
ज्वरघ्नं पाचनं वृष्यं बल्यं रुच्यं कफापहम् ।।
चक्षुष्यं पवनाध्मान गुल्मछर्घतिसार हृत् ।। भा० नि०
कल्वञ्जिका पाचन दीपनी परा संधानयोग्या कफ वातहारिणी ।। सिद्धभैषजमणिमाला

काण्डीर
11. काण्डीर कटुतिक्तोष्णः, सरोदुष्ठ व्रणार्तिजित् ।
लूता गुल्मोदर प्लीह शूलमन्दाग्निनाशनः ।। ध० नि० ।।

निद्राकरः शोफहरो रूचिकारी च स स्मृतः । ध० नि० ।।

भव्य
12. मधुराम्लकषायं च विष्ठम्भि गुरुशीतलम् ।
पित्तश्लेष्मकरं भव्यं, ग्राहिवक्रविशोधनम् ।। च० सू० अ० 27 फलवर्ग

हृद्यं स्वादु कषायाम्लं, भव्यमास्यविशोधनम् ।
पित्तश्लेष्मकरं ग्राहि, गुरुविष्ठम्भिशीतलम् ।। सु० सू० अ० 46

वालं वातकफापहं, पक्वं तु मधुराम्लं च रुचिकृत् सामशूलहृत् । रा० नि० ।।

चम्पक
13. चम्पक रक्तपित्तघ्नं तिक्तोष्णं कफनाशनम् । सु० सू० अ० 46 ।।
चम्पकः कटुकस्तिक्तः शिशिरो दाहनाशनः ।
कण्डू कुष्ठव्रणहरः कफपित्त विनाशनः ।। रा० नि०
चम्पकं कटुकं तिक्तं कषायं मधुरं हिमम् ।
निहन्ति कफपित्तास्त्र, मूत्रकृच्छ्र विषकृमीन् ।। कै० नि० ।।
चम्पकं कुसुमं शीतं चक्षुष्यं विशदं शुभम् ।। क्षे० कु० ।।

गुडूची
1. अमृता सांग्राहिक-वातहर दीपनीय–श्लेष्म–शोणित विवन्ध प्रशमनानाम् ।। च० सू० अ० 25 ।।
गुडूची कटुका तिक्ता स्वादुपाका रसायनी ।
संग्राहिणी कषायोष्णा, लघ्वी बल्याग्निदीपनी ।।
रसायने गुडूची प्रयोगः" चरकः भा० प्र०

2. गुडूचीसत्वं सुस्वादु पथ्यं लघु च दीपनम् ।
चक्षुष्यं धातुकृन्मेध्यं वयः स्थापनकारकम् ।। रा० नि० ।।

3. वायुं वत्सादनी हन्यात् ।। च० सू० अ० 27
विषमज्वरे–गुडूच्या रसमेव वा ।। च० चि० अ० 30
कामलायां– गुडूच्या वा रसं ।।
वातरक्ते गुडूची रस दुग्धाभ्यां तैलं वातरक्तनुत् ।। च० चि० 29
अर्शःसु एष एव गुडूचीषु च तक्रकल्प ।। च० चि० झ० 6 ।।

मेहे मधुयुक्तं गुडूच्या वा रसम् ।। च० चि० अ० 12
जीर्णज्वरे– गुडूची पिप्पली मधुसंयुक्तः क्वाथ ।। भा० प्र० ज्वर० चिकित्सा
कामलायां गुडूचीपत्र कल्कं वा पिवेत्तक्रेणकामली ।। भा० प्र० चि०
कुष्ठे– छिन्नाया स्वरसं वापि सेवमानो यथावलम् ।। शोठल
सर्वप्रमेहेषु अमृताया रस क्षौद्रयुक्त सर्वप्रमेहजित् ।। शार्ङ्गधर ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वत्सादनी समा पीलुफला तिक्ता च पिच्छिला ।। कैय्यदेवः ।।

2. पाठा तिक्त रसा वल्या, विषघ्नी कुष्ठकण्डुनुत् ।
छर्दिहृद्रोग ज्वरजित्, त्रिदोष शमनीपरा ।। ध० नि०
पाठाऽतिसार शूलघ्नी कफपित्त ज्वरापहा ।। ध० नि०
कुचैला तिक्तरसा, स्वादुपाका हिमालघुः ।
ग्रहिणी वातला पित्तकफ रक्तविनाशिनी ।। कै० नि० ।।

3. अतिसारे—महिषेण तु तक्रेण पाठापत्रं तथैवच ।। वंगसेन ।।
लवणमेहे—पाठागुरुकषायं लवणमेहिनाम् ।। सुश्रुत चि० अ० 11–8
अतिसारे—पाठां पिठवा च गोदघ्ना ।। भा० प्र०
शीतकम्पयुते ज्वरे— पाठा शिफापयः पीतं प्रातरेव दिनैस्त्रिभिः ।
शीतिकां कम्पवहुलां नाशयल्लशुनं तथा ।। वैद्यमनोरमा "

3. सुखप्रवसार्थम्—पाठायास्तु शिफां योनो या नारी संप्रधारयेत् ।
शिरः प्रसवकाले तु सा सुखेन प्रसूयते ।। चक्रदत्त"

अर्धावभेदे—अर्धशीर्ष समंगच्छेत् पाठामूलस्य नस्यतः ।। गदनिग्रह "
सुखपसवार्थम्—पाठा.........नाभिवस्तिभगा लेपात्सुखं–नारीप्रसूयते ।। गदनिग्रह "

छिलहिण्ट
1. छिलहिण्टो महामूल, पातालगरुडाह्वय ।। भा० प्र०

2. छिलहिण्टः परं वृष्य, कफघ्नः पवनापहः ।
वृष्या सन्तर्पणीरुच्या, विषदोष विनाशिनी ।। रा० नि०

दारुहरिद्रा
1. चरक सू० अध्याय 4, लेखनीये अर्शोघ्ने, कण्डूघ्ने गणे ।
सुश्रुत सूत्र स्थान अध्याय 38 ।

2. दार्वी दारुहरिद्रा च, पर्जन्या पर्जनीति च ।
कटंकटेरी पीता च, भवेत्सैव पच्मपचा ।। भा० प्र० "

3. तिक्ता दारुहरिद्रा स्याद्रूक्षोष्णा व्रण मेहनुत् ।
कर्णनेत्र मुखोद्भूतां, रुजं कण्डूञ्चनाशयेत् ।। ध० नि०

कण्डूविसर्प त्वग्दोष, विषकर्णाक्षिदोषनुत् ।। रा० नि० "

4. रसांजनं कटुश्लेष्म विषनेत्र विकारनुत् ।
उष्णं रसायनं तिक्तं, छेदनं व्रणदोषहृत् ।। भा० प्र० "
व्रणरोपणार्थ—दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम् ।। चरक चि० अ० 13 "
सर्वदोषप्रकुपिते नेत्रे कटंकटेर्यासिद्धं क्षौद्रयुत्तं अञ्जनं श्रेष्ठम् ।। वाग्भट्ट–उ० झ० 16 "
मुखरोग असृग्दर–नाड़ीव्रणेषु–स्वरसः क्वथितो दार्व्याः घनीभूता रसक्रिया क्षौद्रा मुखरोगाऽसृग्दोष
नाड़ीव्रणापहा ।। चक्रदत्त " कण्ठ चि०

4. कामलायाम्—दार्व्या निम्बस्य वा रस "
प्रातः माक्षिक संयुक्तः, शीलितः कामलापहः ।। चक्रदत्त पाण्डु चि० ।

श्वेतप्रदरे—पिवेद्दारुहरिद्रायाः क्वाथं वा मधुसंयुतम् ।
पाण्डु प्रदरशान्त्यर्थ, पायेयत्तण्डुलाम्बुना ।। शोठलः प्रदराधिकारे "

वन्यकर्कटी
1. अरण्य त्रपुसं रुक्षं; तिक्तंसंग्राही वामनम् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हन्ती कृच्छ्रकफानाह, अष्ठीलामुदराणि च ।।
शीर्णवृन्त स्वादुतिक्तं, क्षाररुच्यग्निपित्तकृत् ।। "कैय्यदेव निघण्टु"

कमल–कुमुद

1. उत्पल कुमुद पद्मकिञ्जल्कः सांग्राहिक रक्तपित्तपित्तप्रशमनानाम् " च० सू० अ० 25
चरके मूत्रविरेचनीय चगणे पद्मोत्पल नलिनकुमुद सौगन्धिक शतपत्राख्याः षट्कमलभेदाः ।।
तथा सुश्रुते उत्पलादिगणे उत्पलरक्तोत्पल कुमुद सौगन्धिक कुवलय पुण्डरीकाख्या षट्कमल भेदाः पष्ठ्यते ।।

2. उत्पलानि कषायणि रक्तापित्त हराणि च ।
कुमुदोत्पल नालास्तु सपुष्पाः सफलास्मृताः ।।
शीताःस्वादुः कषायाश्च कफमारुतकोपनाः ।
कषायामीषद्विठम्भी रक्तपित्तहरंस्मृतम् ।।
पौष्करं तु भवेद्बीजं मधुरं रसपाकयोः ।।
पुण्डरीकं हिमं तिक्तं मधुरं पित्तनाशनम् ।
दाहाघ्न मस्त्रशोषघ्नं पिपासा भ्रमनाशनम् ।। ध० नि०

3. रक्तपित्ते—उत्पलपद्म कुमुद किंजल्कं संग्राहक–पित्तप्रशमनानाम्" च० सू० अ० 25,
मूत्रकृच्छ्रे—कमलं पिवेत्कषायं कमलोपलानाम् ।। च० चि० अ० 26,
ज्वरातिसारे—उत्पल दाडिमत्वक् च पद्मकिञ्जल्कमेव च ।
पीतं तण्डुलतोयेन ज्वरातीसार नाशनम् ।। भावमिश्र "

मुखप्रवृतेरुधिरे—पद्मकिंजल्कं चूर्णं वा लिहयाद्धासितया पुनः " हारीत "
मूत्रनिरोधे—पद्मकन्द तैलेनपद्मिनी केन्दं पक्वं गोमूत्रमिश्रितम् " हारीत"
गर्भपातनिवारक योगे—सशर्करं नीलसरोजकन्द चूर्ण निपीतं–सहमाक्षिकेण " शोठल"
नासास्त्रुते रक्तस्त्राव—नासास्त्रुत मसृक्स्त्राव चन्दनस्योत्प–लस्य वा " वैद्यमनोरमा"

मखान्न

1. मखान्नं पद्म बीजाभं पानीयफलमित्यापि ।
मखान्नं पद्मबीजस्मय गुणैस्तुल्यं विनिर्दिशेत् ।। भा० प्र० आम्राफल वर्ग ।

स्वर्णक्षीरी

1. स्वर्णक्षीरी हिमादुग्धा स्वर्णाह्वा रुक्मणी तथा । रा० नि०
हेमाह्वा पीत दुग्धा च , तन्मूलं चोक मुच्यते ।। भा० प्र०
स्वर्णक्षीरी हिमा तिक्ता, कृमिपित्त कफापहा ।
मूत्रकृच्छ्राश्मरी शोफ, दाहज्वर हरापरा ।। रा० नि०
हेमाह्वा रेचनी तिक्ता, मदन्युत्क्लेशकारिणी ।
कृमिकण्डु विषानाह, कफपित्तास्त्रकुष्ठनुत् ।। भा० प्र०

2. हेमदुग्धा हिमावती कंकुष्ठ प्रकृति ।। अं० ह० सू० 15 हेमाद्री "
सुवर्णक्षीरी अनंता सघृश पत्रा हयावली इतिलोके कंकुष्ठमित्यपरे, डल्हणः ।। सु० सू० अ० 38

अहिफेन

1. अफूकं शोधनं ग्राहि, श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम् ।। ध० नि०
अहिफेन रसे तिक्तं विपाके कटुकं विषम् ।
स्तम्भनं रुक्षमुष्णं, च वेदनास्थापनं परम् ।।
स्वेदनं स्वाप जननं, कफरोग विनाशनम् ।। भा० प्र०

2. दुग्धेन रवाखसं बीजं प्रलेपात्दारुणं जयेत् ।। शारंगधर

पर्पट

1. पर्पटः तिक्ताः पित्तः कफापहाः ।। सु० सू० अ० 46
शाकं पर्पटकं च यत्, कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विपच्यते ।। सु० सू० अ० 29
पर्पट शीतलस्तिक्तः, पित्तश्लेष्मज्वरापहः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रक्तदाहारुचिग्लानि, मदभ्रम विनाशनः ।। ध० नि०
कृश शाख पर्पटकः सुतिक्तो रक्तपुष्पकः ।
पित्तारि कटुपत्रश्च कवचो अष्ठादशाविधः ।। रा० नि०

चन्द्रशूर

1. दीर्घबीजो रक्तराजी, तथा सिद्धप्रयोजनः ।
दीर्घबीजो वातशूल गुल्मघ्नः स्तन्यपुष्ठिकृत् ।।
वल्योवाजीकर पानात्, लेपाच्छोणितशूलनुत् ।। शोठल "
चन्द्रशूरं हितं हिक्का वातश्लेष्मातिसारिणाम् ।
असृगवातगदद्वेषी, वलपुष्ठिविवर्धनम् ।। भा० प्र०

2. मेथिका चन्द्रशूरश्च कालाऽजीयवानिका ।
एतच्चतुष्ठयं युक्तं चतुर्बीजमितिस्मृतम् ।। भा० प्र०

तोदरी

1. करोति रेतः परिपूरितं जनं, निषेविताभञ्जमति प्रभञ्जनम् ।
वलासजित् पित्तकरी जराहरी, प्रमेहपीडा प्रणुदस्तितोदरी ।। सि० भै० मणिमाला

मूलक

1. मूलकं द्विविधं प्रोक्तं, तत्रैकं लघुमूलकम् ।
नेपालमूलकं चान्यत्त्द्भेद गजदन्तवत् ।। भा० प्र०

2. कटु तिक्तरसा हृद्या रोचनी बह्निदीपनी ।
सर्वदोषहरा लघ्वी, कण्ठया मूल कपोत्रिका ।।
महत्तद्गुरुविष्ठम्भी तीक्ष्णमामंत्रिदोषकृत् ।
त्रिदोषशमनं शुष्कं, विषदोषहरं लघु ।।
विष्ठम्भिवात्तलंशुष्कं, शुष्क मन्यत्रमूलकात्।
पुष्पं च पत्रं च फलं तथैव च् यथोन्तरे ते गुरवः प्रदिष्ठाः ।। सु० सू० अ० 46

वालं दोष हरं वद्धं त्रिदोषं मारुतापहम् ।
स्नेह सिद्धं विशुस्कं, तु मूलकं कफवात जित् ।। च० सू० म० 27

3. शुष्कार्शसु = शुष्कभूलकपिण्डैर्वा स्वेदयेत् पोट्टली कृतैः च० चि० अ० 9

कर्णभूले–मूलकस्य च स्वरसः श्रेष्ठ कटूष्णकर्णपूरणे ।। सुश्रुत ।।
शोफे–मूलकं च तिलेनाशु स्र्वशोफ हरंपरम् । शोठल

राजिका

1. राजिका पीतपुष्पा च तीक्ष्णा स्यान्मूलकच्छदा ।। शिवदत्त "

2. आसुरी कटु तीक्ष्णोष्णा वातप्लीहार्तिशूलजित् ।
दाह पित्तप्रदा हन्ति कफगुल्म कृमिव्रणान् ।।
चरके शाकवर्गे आसुरीपठयते ।

सर्षप

1. कटुपाकमचक्षुष्यं स्निग्धोष्णं बहुपित्तलम् ।
कृमिघ्नं सार्षपं तैलं, कण्डू कुष्ठापहलघु ।। सुश्रुतः "

कटूष्णं सार्षपंतैलं रक्तपित्त प्रदूषणम् ।
कफ शुक्रानिलहरं कण्डू कोठविनाशनम् ।। चरक ।।
सार्षपशाकं शाकानाम्" चरक शाकवर्ग" सूत्रस्थान 25
गौरसर्षपको अत्युष्णो रक्षोघ्न कफवातजित् ।
क्रिम्यामकण्डू कुष्ठघ्नः, श्रुतिशीर्षानिलार्तिजित् ।।
तद्वत् रक्तास्तु सिद्धार्थः, तिक्त स्निग्धोष्णककटुः ।। ध० नि०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

3. कुष्ठे–सर्षप करञ्ज कोषातकीनां तैलानि.कुष्ठेषु हितान्याहु" चरकः
अपस्मार उन्मादादिषु—नक्तमालक बीजानि तथा गौरसर्षपाः वस्तमूत्रेण पिष्ठाव गुडी छाया विशोषिता ।।
अञ्जनं हन्त्यपस्मारं, उन्मादञ्चैव दारुणम् ।। हारीत
दन्तरोगे—घर्षो लवण सर्षपे ।। हारीत

4. नातः परतरं किञ्चित् औषधं प्लीहशान्तये" काश्यप"

वरुण

1. वरुणः पादपःतिक्त त्रिपर्णो भ्रमरः प्रियः
बिल्वपत्रो वृतफलो, वर्हपुष्पकषायकः ।। शिवदत्तः "

2. वरुणः शीत वातघ्नः तिक्तो विद्रधिजन्तुजित् ।
तथा च कटु रुष्णश्च, रक्तःदोषहरः परः ।। ध० नि० ।।
वरुणः पित्तलो भेदी श्लेष्म कृच्छ्राश्यमारुतान् ।
निहन्ति गुल्म वातास्त्र कृमीश्चोष्णऽग्निदीपनः ।।
कषायो मधुरस्तिक्तः कटुकोरुक्षको लघुः ।। भा० प्र०

3. गण्डमालां निहन्त्याशु चिरकालानुवन्धिनीम्
जलेन क्वथितं पीतंमपक्व विद्रधि जयेत् ।। चक्रदत्त "
अश्यर्याम्ः पिवेद्वरुण मूलत्वक् क्वाथं तत्कल्क संयुक्तम् ।। वृन्द ।।

हिंस्रा

1. कंधारी दीपनी रुच्या, कटुरुष्णा तिक्तकामता ।

रक्तदोषं कफं वातं, ग्रन्थिरोग च नाशयेत् ।
स्नायुरोगं च शोफं च, नाशयेदिति कीर्तिता ।।
रक्तरोग कफ वातं, ग्रन्थिरोग च नाशयेत्। नि० र०

करीर

1. करीरोगूढपत्रो, मरुदेशेऽतिप्रसिद्धः कण्टकीवृक्षः, डल्हणः "

2. करीरः कटुकः तिक्तः स्वेद्येष्णोः भेदनस्मृतः ।
दुनमिकफवातामगर शोथव्रणप्रणुत् ।।
करीर कटुकोभेदी तीक्ष्णोष्ण कफवातजित् ।
व्रणशोष विषार्शोघ्नं, तत्पुष्पं कफवातजित् ।।

तिलपर्णी

1. अजगन्धा कटूष्णा स्याद्वात गुल्मोदरापहा ।
कर्णव्रणार्ति शूलघ्नी, कृमिघ्नी च ज्वरापहा ।। रा० नि०
तिलपर्णी रस्तैलं, टंकणं निम्बुकद्रुवम् ।
कटुष्णं कर्णयोर्देयं एतद्वा वेदनापहम् ।।

तुवरक

1. तुवरस्तु वरश्चोष्णो रसे पाके च तिक्तकः ।
कफव्रण कृमिमेह कुष्ठज्वर विनाशनः ।।
आनाहमर्श शोफञ्च, नाशयेदिति ते जगुः ।। नि० र०

पंचकर्म गुणातीतं श्रद्धावन्तं जिजीविषुम् ।
योगेनानेन मतिमान् साधयेत् कुष्ठिनं नरम् ।। सु० चि० अ० 13

प्राचीनामलक

1. प्राचीनामलकं रुच्यं, स्निग्धं गुरुगरापहम् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वातघ्नं पित्तकफहृत्तूष्णं गुरुसमीरजित् ।। मदनपाल "
पर्णामलकं मधुरं रुचिप्रदं गुरुचोष्णाम् ।
विषत्रिदोषशमनं कफतृष्णावातहरप्रोक्तम् ।। नि० र० "

विकङ्कत
1. विकङ्कतोऽम्लो मधुरो पाकेऽति मधुरोलघुः ।
दीपन कामला स्त्रघ्नः, पाचनः पित्तनाशनः ।। रा० नि० ।।
विकङ्कत फलं पक्कं मधुरं सर्वदोषजित् ।। भा० प्र०।।

लोणिका
1. लोणी रुक्षा गुरुः कट्वी वातश्लेष्महरी पटुः ।
अर्शोघ्नी दीपनी चाम्ला, मंदाग्निविषनाशिनी ।। भा० प्र०
शाकं गुरु च रुक्षं च, प्रायोविष्ठम्यजीर्यति ।
मधुरं शीतवीर्य च, पुरीषस्य च भेदनम् ।।
स्विन्नं निष्पीडितरसं, स्नेहास्यतत्प्रशस्यते ।। चरक, सू० 27
स्वादुपाकरसाः शीताः, कफघ्ना नातिपित्तलाः ।।
लवणानुरसा रुक्षाः, यक्षारा वातलाः सराः ।। सु० सू० अ० 46

नागकेशर
1. नागकेसर म्ल्त्योष्णां लघुतिक्तं कफापहम् ।
वस्तिवाता मयघ्नञ्च, कण्ठशीर्ष रुजापहम् ।। रा० नि०
केसरं विषविसर्प रक्तार्शो वमिकुष्ठहृत् ।
हृल्लासवामिदौर्गन्ध्य तृष्णापित्तवलासजित् ।। गदनिग्रहः

2. रक्तार्शःसु केसर नवनीत शर्कराभ्यासात्
अर्शांसि अपयान्ति रक्तानि ।। चरक चि० अ० 9

3. असृग्प्रदरे–तक्राशनरता सम्यग् समिवेन्नागकेशरम् ।। शोठलः ।।

4. रक्तातिसारे. सितया सह । नागकेसर चूर्ण वा रक्तसंग्रहणंपरम् ।। वंगसेन सुरपत्ति ।

पुन्नाग
1. सुश्रते एलादिगणे पुन्नागकेशरं पठयते ।।
पुन्नाग सुरपार्णिका सुगन्धिपुष्पयुक्ता दक्षिणाप्रथे सुरपतिनाम्ना प्रतीता ।। डल्हणः "

2. पुन्नागो मधुरः शीतः सुगन्धिः पित्तनाशकृत् ।। रा० नि० "

अम्लवेतस
1. अम्लवेतस मत्यम्लं, कषायोष्णं च वातजित् ।
कफार्शः श्रमगुल्मघ्नमरोचक हरं परम् ।। रा० नि०
रुक्षं विण्मूलदोषघ्नं प्लीहोदावर्तनाशनम् ।
हिक्कानाहरुचिश्वास कासाजीर्ण वमिप्रणुत् ।।
कफवातामय ध्वंसि, छागमांसद्रवत्वकृत् ।
चणकाम्ल गुणं ज्ञेयं, लोहसूचिद्रवत्वकृत् ।। "भा० प्र०"
अम्लवेतस भेदनीय दीपनीयानुलोमिक वातश्लेष्मिक प्रशमनानाम्" च० सू० अ० 25
हृद्यो महाकषाये वृक्षाम्लं पठयते" च० सू० अ० 4 "
वृक्षाम्लमम्लं कटुकं कषायं, सौष्णं कफार्शोघ्नमुदीरयन्ती ।
तृष्णासमीरोदर हृद्गदादिगुल्मातिसार व्रणदोषनाशी ।। रा० नि०

वृक्षाम्ल
1. रक्तार्शःसु, सकर्बुदारफबाम्लानाम् ।। चरक चि० 7
गुल्मे–गुल्मशमनाय वृक्षाम्ल स्वरस सैन्धव युक्तं प्रयुम्ञ्जीत ।। "वैद्यमनोरमा"

2. वृक्षाम्लं ग्रहि रुक्षोष्णं वातश्लेष्मणिशस्यते । चरके ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शाल

1. सुश्रुते शालसारादिगणे तथा लोध्रादिगणे, चरके वेदनास्थापनगणे आसव
   योनि सार वृक्षेषु, तथा कषायस्कन्धे च शालः पठयते।

2. शालःकषायों ग्राह्ययस्त्रगदग्ध सक्कफजिद्धियमः।
   कर्णरोग हरोरुक्षो विषहाव्रणशोधनः ।। कैoनिo "
   रालगुणा— रालः स्वादुः कषायश्च स्तम्भनो व्रणरोपणः—
   विपादी भूतहन्ता च, भग्नसन्धान कृन्मतः। धo निo "

सर्ज

1. सर्जकषायः व्रणजित् कफस्वेद मलक्रिमीन् ।
   व्रण विद्रधि वाधिर्य, योनिकर्णगदाञ्जयेत् ।। भाo प्रo

कार्पास

1. चरके (सूo अo 4) वृंहणीय महाकषाये भारद्वाजी तथा सुश्रुते (सूo अo 39) वातसंशमने वर्गे कार्पासी पष्ठ्यते ।

2 कार्पासी मधुराशीता स्तन्यापित्तकफापहा ।
   तृष्णादाह श्रम भ्रान्ति मूर्च्छाहृत् बलकरिणी ।।
   भारद्वाजी हिमा रुच्या व्रणशस्त्राक्षतापहा ।। राo निo
   कार्पास फल मत्युष्णं कषायं मधुरं गुरुः ।
   वातश्लेष्म हरं रुच्यं, विशेषेणास्थिवर्जितम् ।। क्षेमकुतूहल
   तत्कर्ण पिडिकानाद पूयस्त्राव विनाशनम् ।
   तद्वीजं श्लेष्म हरं वृष्यं, स्निग्धं स्तन्यविवर्धनम् ।। कैय्यदेव ।।

3. पित्तप्रदुष्ठान गंभीरान् दाहापाक प्रपीडितान् ।
   कार्पासी फल मिश्रेण, जयेत् शोधन सर्पिषा ।। सुश्रुतक्ति ।

लताकस्तूरिका

1. जाती कटुकयो फलम् तिक्तं कटुकफापहम् ।।
   लघुतृष्णापहंवक्र केल्ददौगन्धिनाशनम् ।
   लताकस्तूरिका सद्बच्छीता वस्तिविशोधिनी ।।
   लताकस्तूरिका तिक्ता स्वाद्वीवृष्या हिमालघुः ।
   चक्षुष्यादीपनी श्लेष्मतृणावस्त्यास्यरोगनुत्।। भा o प्रo

जपा

1. जपासंग्रहिणीकेश्या त्रिसन्ध्या कफवातजीत् । भाo प्रo
   जपा संग्रहिणी केश्या, रक्तप्रदरनाशिनी । राo माo
   जपापुष्पं लघु ग्रहि, तिक्तमंकेशविवर्धनम् ।।

2. हृद्या संग्रहिणी केश्या, कफमारुत जित्जपा ।। सिo भैo मo

पारीष

1. पारिशो दुर्जरः स्निग्धः कृमिशुक्रकफप्रदः ।
   फलेऽम्लो मधुरो मूले, कषायः स्वादुमञ्जकः ।। भाo प्रo
   पारिशो ऽश्वत्थको वृष्यः स्निग्ध श्लेष्मकृमिप्रदः ।। मo निo ।।

वनकार्पास

1 चरके वृंहणीय महाकषाये भारद्वाजी पष्ठ्यते ।। चo सूo अo 4 ।।
   भारद्वाजी हिमारुच्या, व्रणशस्त्रक्षतापहा ।। राo निo ।।
2 स्तन्यवर्धनार्थ वनकार्पासकीक्षूणां मूलंसौवीरकेण वा ।। चक्रदत्त ।।
   अपच्यां वनकार्पासजंमूलं तण्डुलैः सहयोजितम् ।। वंगसेन ।।

वला

1. चरके बृंहणीये, (वाष्स्यायनीनाम्ना) प्रजास्थापने (वाष्स्पुंष्पी नाम्ना)
   बल्ये च महाकषाये तथा मधुरस्कन्धे बलापठ्यते ।। चo सo अo 4 ।। पिo अo 7 ।।
   सुश्रुते वातसंशमनवर्गे वलापठ्यते ।। ह्यo सूo अo 38 ।।

2. बलासं ग्राहिकवल्या वार्तापित्तहराणां श्रेष्ठाः।। चo सूo अ o 25

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. बलास्निग्धा हिमास्वादु, वृष्या बल्यान्तिस्नित्रदोषनुत् ।
रक्तपित्तं क्षयं हन्ति, बलैजो वर्धयत्यापि ।। ध० नि० ।।
बलातिक्ता मधुरा पित्तातीसारनाशिनी ।
बलवीर्य प्रदापुष्ठिः कफरोग विशोधिनी ।। रा० नि० ।।
3. प्रदरं हन्तिबलाया मूलंदुग्धेन मधुयुतंपीतम् ।। चक्रदत्तः ।।
गर्भिणी शूले–गर्भिणी तु वलाक्वाथ सिद्धं पायं प्रागेपिवा ।। वैधमनोरमा ।।
वलाचतुष्ठयं शीतं मधुरं वलकान्तिकृत् स्निग्धं ग्राही समीरास्त्र पित्तास्त्रक्षतनाशनम् ।। भा० प्र०।।

अतिबला

1 .चरके वृंहणीये वल्ये महाकषाये तथा मधुर स्कन्धे अतिवला पष्ठ्यते ।।
सुश्रुते वातसंशमने मधरे चवर्गे आतिवला पष्यते ।।

2. तिक्ताकटुश्चातिवला वातघ्नी कृमिनाशिनी ।
दाह तृष्णा विषच्छर्दि क्लेदोपशमनी परा ।। रा० नि०
हन्यादतिवला मेहंयमसा सितया सह । भा० प्र०

शाल्मलि

1. चरके पुरीषविरजनीये महाकषाये शाल्मलिः शोणितास्थापने,
वेदनास्थापने गणे कषायस्कन्धे चमोचरसः पष्ठ्यते ।
सुश्रुते प्रियंगुवादिगणे मोचरसः पष्ठ्यते ।

2. शाल्मली पिच्छिलावृष्या वल्यामधुरसा तथा ।
कषायस्तद्रसो ग्राही, पुष्पंतद्वत्तथाफलम् ।। ध० नि० ।।
शाल्मलिः पिच्छिलोवृष्यो वल्योमधुरः शीतलः ।
कषायश्च लघुस्निग्धः शुक्रश्लेष्माविवर्धनः ।।
मोचरसस्तु कषायः कफवातहरो रसायॅनो योगात् ।। रा०नि०

गोरक्ष

1. गोरक्षी मधुरा ऽम्लाच, शिशिरा दाहपित्तनुत् ।
विस्फोट वान्त्यतीसार विषमज्वर नाशिनी ।। रा० नि० ।।

मुचुकुन्द

1. मुचुकुन्द कटुस्तिक्ताः कफकास विनाशनश्च कण्ठदोषहरः ।
त्वग्दोष शोफशमनो, व्रणपाभाविनाशनश्चैव ।। रा० नि०
मुचुकुन्दः शिरःपीडा पित्तास्त्रविषनाशनः ।। भा० प्र० ।।
2. शिरपीडायाम्–शिरोऽर्त्ति नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचुकन्दजम् ।। चक्रदत्तः "

आवर्तनी

1. आवर्तनी कषायश्च, शीतलाहृयतिसारहा ।
त्रिदोषोदरशूलघ्नी, कृमिजालविनाशिनी ।। नि० र० ।।

नागवला

1. गाङेगरुकी मधुराम्ला, कषायोष्णागुरुस्तथा ।
कटुस्तिक्ता च वातघ्नी व्रणपित्त विकारजित् ।। ध० मि०
मधुराम्ला नागवला कषायोष्णा गुरुस्तथा ।
कण्डूति कुष्ठ वातघ्नी व्रण पित्त विकारजित् ।। रा० नि०

1. गाण्ङेगरुकी फलरुक्षं, कषायं स्वादुवातलम् ।
लेखनं स्तम्भनंशीतं, विवन्धाध्मान कृद्र गुरु ।। गदनिग्रह

2 .रसायनयोगं विधिवत् क्षयार्तः क्षीरेणवा नागवला प्रयोगम् ।। सु० उ० त० 49
क्षये नागवलायास्तु घृतमाक्षिकमिश्रितम् ।। शोठल ।।
सद्योव्रणे गगेरुकी मूलरसैः जायते गतिवेदनः ।। शाग्णर्धर।।

धन्वन

1. धन्वन कफपित्तास्त्र कासजित् तुवरो लघुः । मदनपाल निघण्टु ।।
मधुर स कषायं च, शीतं पित्त कफापहम् । चरक सू० 29
स कषायं हिमं स्वादु, धान्वनं कफवातजित् ।। सुश्रुत सू० 46 ।।

परुषक

1. अत्यम्ल भीषन्मधुरं कषायानुरसंलघुः ।
वातघ्नं पित्त जननमामं विद्यान् परुषकम् ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तदेवपक्वं मधुरं, वातपित्त निर्वहणम् ।। सुश्रुत ।।
परुषकं कषायम्लं लघूष्णां ग्राहिपित्तलम् ।
रुक्षं मारुतजित् पक्कं स्वाद्म्लं शुक्रलं हितम् ।।
रोचन मधुरं पाके, विष्ठम्भि वृहणम्र ।। कै० नि० ।।

चञ्चुः

1. चञ्चुः शीता सरा रुच्या, स्वाद्दी दोषत्रयापहञ्चुद्द ।
धातुपुष्ठिकरीवल्या, मेध्या पिच्छिलास्मृत्ता ।। भा० प्र०
लघुपाके च जंतुघ्न, पिच्छिलों ब्रणिना हितः ।
कषायमधुरो ग्राही, चुञ्चुस्तेषांत्रिदोषहा ।। सू० सू० अ० 46 ।।

अतसी

1 वालघ्नं मधुरं तेषु क्षौम तैलं वलापहम् ।
कटुपाकमचक्षुष्यं, स्निग्धोष्णं गुरुपित्तलम् ।। सु० सू० अ० 46
आतस्यं मधुराम्लंतु, विपाके कटुकं तथा ।
उष्फष्णवीर्य हितं वाते, रक्तपित्तप्रकोपणम् ।। च० सू० अ० 29

गोक्षुर

1. चरके कृमिघ्ने, अनुवासनोपगे, मूत्रविरेचनीये, शोथहरे च महाकषाये च गोक्षुर पठयते च० सू० अ० 6
सुश्रते विदारीगन्धादिगणे वीरतर्वादौ लघुपंञ्चमूले, कण्टकपञ्चमूले, वाताश्मरीभेदने च
गणे गोशुरक पष्ठ्यते।। सु० सू० अ० 38 ।।
2. गोक्षुरो मूत्रकृच्छ्घ्नो वृष्यस्वादु समीरजित् ।
शूल हृदोगशमनो वृंहणों मेहनाशनः ।। ध० नि० ।।
गोक्षुरः शीतल स्वादुः वलकृद्बस्तिशोधनः ।
विपाके मधुरो वृष्यः पुष्ठिदश्चाश्मरीहरः ।।
प्रमेह श्वास कासार्शः कृच्छ्रहृद्रोगवातनुत् ।। भा० प्र०

3. गोक्षुरको मूत्रकृद्धानिलहराणाम्" चरक"
अश्मरीभेदनार्थ त्रिकण्टकस्य बीजानि चूर्णं माक्षिकसंयुक्तम्" सूश्रुतः ।।

धन्वयास

1. चरके अर्शोघ्ने, तृष्णानिग्रहणे च महाकषाये धन्वयासः पठयते" च० सू० अ० 4

2. दुरालभा स्वादुशीता तिक्तादाह विनाशिनी ।
विषमज्वर तृड्छर्दि मेह भ्रम विनाशिनी ।। ध० नि० ।।
तृड्छर्दि मेह गुल्मघ्नी, मोहरक्तरुजापहा ।
वात्तं पित्तं कफं कुष्ठं ज्वरं चैव विनाशयेत् ।। नि० र०

3. मूत्राघाते–रसं वा धन्वयासस्य" चि० अ० 11 वाग्भट्ट"
भ्रम रोगे पिवेद् दुरालभाववाथं सघृतं भ्रमशान्तये" चक्रदत्तः'

चाङ्गेरी

1. दीपनी चोष्णावीर्या च, ग्राहिणी कफ मारुते,
प्रशस्यते ऽम्लचाण्ड्गेरी, ग्रहण्यशौहिता च सा ।। च० सू० अ० 29
ग्रहण्यशौविकारघ्नी साम्लावातकफे हिता।
उष्णा किंचित्कषाया च, चाङ्गेरीचाग्निदीपनी ।। सु० सू० अ० 46,
चाङ्गेरी दीपनी रुच्या, रुक्षोष्णा कफवातनुत् ।
पित्तलाम्ला ग्रहण्यर्शः कुष्ठातीसारनाशिनी ।। भा० प्र० ।।

कर्मरङ्ग

1. कर्मरङ्ग हिमं ग्राहि, स्वादूम्लं कफवातहृत् । भा० प्र०
पक्वं तु मधुराम्लं स्याद्वलपुष्ठिरुचिप्रदम् ।। रा नि० ।।
कर्मारस्य फलं चाम्लं ग्राहयम्लं वातनाशनम् ।। नि० र० ।।

बीजपूरक

1. चरके हृघे छर्दिनिग्रहणे चमहाकषाये मातुलुङ्ग पठयते ।। च० सू० अ० 4 ।।
2. शूलेऽरुचौ विवन्धे च, मन्देऽग्नौ मद्यविप्लवे ।
हिक्काश्वासे च कासे च , वम्यांवर्चोगदेषु च ।।
वातश्लेष्मसमुत्येषु सर्वेष्वेवोपदिश्यते ।। च० सू० अ० 29

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दीपनं लघु संग्राहि गुल्मोर्शोघ्नं तु केशरम् ।
शूलाजीर्णविवन्धेषुं मन्दे ऽग्नौ कफमारुते ।।
अरुचौ च विशेषेण रसस्तस्योपदिश्यते ।। सु० सू० अ० 46 ।।

निम्बुक

1. रोचनोदीपनः तीक्ष्णः सुगन्धिमुखशोधनः ।
जम्वीरः कफवातघ्नः, कृमिघ्नो भुक्तपाचनः ।। सु० सू० अ० 29 ।।
निम्बूकफलं प्रथितमम्लरसं कटुष्णां गुल्मामवातहर अग्नि विवृद्धिकारि
चक्षुष्यमेतदथ कासकफार्ति कण्ठविच्छर्दि हारिपरिपक्वमतीवरुच्यम् ।। रा० नि० ।।

विल्व

1. चरके–अर्शोघ्ने, आस्थापनोपगे, अनुवासनोपगे, शोथघ्ने च
महाकषाये विल्वः पठयते ।। च० सू० अ० 4,
सुश्रुते वरुणादिगणे, अम्वष्ठादिगणे महापञ्चमूले च गणे विल्वः पठयते ।। सु० सू० अ० 38

2. विल्वंतु सांग्राहिक दीपनीय वातकफ प्रशमनानाम्" च० सू० अ० 25
विल्वंतु दुर्जर पक्वे दोषलं पूतिमारुतम् ।
स्निग्धोष्णां तीक्ष्णं तबादलं, दीपनं कफवातजित् ।।
विल्वपत्रं तु वातनुत् ।। चरक
2. कफानिलहरं तीक्ष्णं स्निग्धं संग्राही दीपनम् ।
कटुतिक्त कषायोष्णां वालं विल्वमुदाहृतम् ।।
विद्यात्तदेव सपक्वं मधुरानुरसं गुरु ।
विदाहि विष्ठम्भकरं, दोषकृत् पूतिमारुतम् ।। सु० सू० अ० 46 ।।
विल्वमूलं त्रिदोषघ्नं छर्दिघ्नंमधुरं लघु ।। ध० नि० ।।

कपित्थ

1. कपित्थमामं कण्ठघ्नं विषघ्नं ग्राहिवातलम् ।
मधुराम्लकषायत्वात्, सौगन्ध्याच्चरुचिप्रदम् ।।
परिपक्वं तु दोषघ्नं ग्राहि गुर्वपि । च० सू० अ० 29
आमं कपित्थमास्वर्य कफघ्नं ग्राहिवातलम् ।
कफानिलहरं पक्वं, मधुराम्लरसं गुरु : ।।
श्वास कासारुचिहरं, तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम् । सु० सू० अ० 46
कपित्थो मधुराम्लश्च कषायस्तिक्तशीतलः ।
वृष्यपित्तानिलं हन्ति, संग्राहीव्रणनाशनः रा० नि०

तेजवल

1. चरके सू० अ० 2 वि० अ० 8 शिरोविरेचनद्रव्येषु एवं तिक्तस्कन्ध द्रव्येषु तेजावती पष्ठ्यते"
2. तेजोवती कटुस्तिक्ता रुच्यादीपनयाचनी ।
उष्णा वात कफश्वास, कासहिध्मास्य रोगनुत् ।। कै० नि०
तुम्वरुः कटु तीक्ष्णोष्णाः, कफमारुतशूलजित् ।
अपतन्त्रोदराध्मान, कृमिघ्नोवह्निदीपनः ।। ध० नि० ।।

ईङ्गुदी

1. सुश्रुते शिरोविरेचनद्रव्येषु इण्ङगुदी मेषशृण्ङ्योस्त्वचः सु० सू० अ० 38

2. कृमिघ्नि मिङ्गुदीतैल मीषतिक्तं तथालघुः ।
कुष्ठामय कृमिहरं, द्यष्ठिशुक्रवलापहम् ।। स० सू० अ० 45
ऐङ्गुदं तिक्तमधुरं, स्निग्धोष्णा कफवातजित् । चरक ।।
इङ्गुदी मदगन्धास्यात्, कटूष्णाफेनिला लघुः ।
रसायनी हन्तिजन्तुवातामय कफव्रणान् ।। रा० नि० ।।
कृमि कुष्ठ विषश्वित्र शूलभूतग्रहव्रणान् ।। कै० नि० ।।

अरलु

1. निम्वाकारदलोविश्वफ् भल्लूकः पंक्तिपत्रकः ।
अरलु कफहृद्ग्राही, दीपनः कृमिकुष्ठहृत् ।
कटुकः शीतल तिक्तो वस्तिरोगहरपरः ।। नि० र०
श्योनाक युगलं तिक्तं, शीतलं च त्रिदोषजित् ।। रा० नि० "

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुग्गुलु

1. सुश्रुते एलादिगणे गुग्गुलु पठयते" सु० सू० अ० 38
2. सुगन्धिः सुलघुः सूक्ष्मस्तिक्ष्णोष्णा कटुको रसे ।
   कटुपाकः सरोह्यो, गुग्गुलुः स्निग्धः पिच्छिलः ।।
   सनवो वृहणों वृष्य, पुराणस्त्वपकर्षणः ।
   तैक्ष्ण्यौष्ठयात् कफवातघ्नः, सरत्वान्मलपित्तनुत् ।। सु० चि० अ० 5
   गुग्गुलु कटु तिक्तोष्णाः कफमारुत कासजित् ।
   कृमिवातोदर प्लीह शोथार्शोघ्नो रसायनः ।। रा० नि० ।।

वोल

1. बोलं तु कटु तिक्तोष्णां कषायं रक्तदोषनुत् ।
   कफ पित्तामयान् हन्ति, प्रदरादिरुजापहम् ।। रा० नि०
   बोलं रक्तहरं शीतं, मेध्यं दीपन पाचनम् ।
   मधुरं कटुकं तिक्तं, च ग्रहस्वेदत्रिदोषनुत् ।।
   ज्वरापस्मार कुष्ठघ्नं, गर्भाशय विशुद्धिकृत् ।। निघण्टुसंग्रह ।।
1. चरके पुरीषविरजनीये, महाकषाये एवं कषायस्कन्धे, शिरोविरेचन द्रव्येषु शल्लकी
   निर्यासश्च पष्ठ्यते ।। च० सू० अ० 4 विमान अ० 8
   सुश्रुते रोध्रदिगणे एलादिगणे च शल्लकी–कुन्दुरुकश्च पठयते ।। सु० सू० अ० 38, 162 ।।

शल्लकी

2. शल्लकी तिक्त मधुरा, कषायाग्राहिणी परा।
   कुष्ठास्त्रकफ, वातार्शो, व्रणदोषातिनाशिनी ।। रा० नि०
   तत्पुष्पं कफवातार्शः कुष्ठारोचकनाशनम् । कै० नि०
   कुन्दुरुः कटुकस्तिक्तो, वातश्लेष्मामयापह ।
   पाने लेपे च शिशिरः, प्रदरामयः शान्तिकृत् ।। ध० नि० ।।

निम्ब

1. चरके कण्डूघ्ने महाकषाये वमनद्रव्येषु तिक्तस्कन्धे च निम्ब पठयते ।। च० सू० अ० 4, विमान अ० 8 ।
   सुश्रुते– आरग्वधादौ, गुडूच्यादौ लाक्षादिगणे च निम्व पष्ठ्यते ।। सुश्रुत सू० अ० 46

2. कफ पित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विपच्यते । चरक"
   निम्वस्तिक्तरसः शीतो लघुः श्लेष्मास्त्र पित्तनुत् ।
   कण्डू कुष्ठव्रणान् हन्ति, लेपाहारादिशीलितः ।।
   अपक्वं पाचयेच्छोथं, व्रणं पक्वं विशोधयेत् । ध० नि० ।।
   फलतैलानि तीक्ष्णानि लघून्युष्णावीर्याणि कटुनिकटुविपाकानि सारक अनिलकफ कृमिकुष्ठ शिरोरोगा
   पहराणिचेति " सु० सू० अ० 45 ।
   निम्व वृक्षस्य पञ्चाण्ङ्ग रक्तदोषहरं मतम् ।
   पित्तं कण्डूं व्रणं दाहं, कुष्ठं चैव विनाशयेत् ।। शोठलः

महानिम्ब

1. सुश्रुते पिप्पल्पादिगणे महानिम्वफलं तथा अधोभागहरे वर्गे च रम्यकोद्रेका वकाईण इति
   लाके महानिम्व पष्ठ्यते ।। सु० सू० अ० 38

2. कफपित्त भ्रमच्छर्दि कुष्ठहल्लासरक्तजित् ।
   प्रमेह श्वासगुल्मार्शः मूषिका विषनाशनः ।। भा० प्र०
   महानिम्ब हिमोरुक्षः, तिक्तो ग्राहीकषायकः ।
   कफपित्त कृमिच्छार्दे, कुष्ठहल्लास रक्तजित् ।। ध० नि० ।।

रोहिणी

1. चरके बल्ये महाकषाये, सुश्रुते न्यग्रोधादि गणे च रोहिणी पष्ठ्यते" च० सू० अ० 4 सु० सू० अ० 38 ।।

2. मांसरोहा रसे पाके मधुरा तुवरा हिमाः ।
   भग्नस्नधान्नकृत् प्रोक्ता, तथैव व्रणरोपिणी ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रोहिणी युगलं शीतं कषायं कृमिनाशनम् ।
कण्ठशुद्धिकरं रुच्यं, वातदोष निषूदनम् ।। "रा० नि०"

ज्योतिष्मती

1. पक्वरक्त फला गुच्छा, पीत तैला च वर्तुला ।
पंक्ति पत्रा च रक्तबीजा ऽणुपुष्पा वनजास्मृताः ।। शिवदत्तः ।
काकुनिकेति लोके प्रसिद्धाः डल्हण"ः ।

2. चरके शिरोविरेचन एवं सुश्रुते अधोभागहरे एवं
शिरोविरेचनद्रव्येषु ज्योतिष्मती पठयते ।। च० सू० अ० 2, सु० सू० अ० 39

3. ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता, सराकफ समीरजित् ।
अत्युष्णावामनी तीक्ष्णा बन्हि बुद्धिस्मृतिप्रदा ।। ध० नि०
कटु ज्योतिष्मतीतैलं, तिक्तोष्णां वातनाशनम् ।
पित्तसंतापनं मेधा, प्रजावुद्धिविवर्धनम् ।। रा० नि० ।।

1. चरके हृद्ये महाकषाये कुबल, बदरे" हिक्कानिग्रहगणे बदरबीजम्
उदर्दप्रशमने, श्रमहरे स्वेदोपगे च बदरं विरेचनोपगे कुवलबदर कर्कन्धूनि पठयन्ते" चरक ।।
सुश्रुते आरग्वधादिगणे गोपघोन्टा, वातसंशमने बदर कोलपठयते ।। "सुश्रुत"

राजवदर

2. कर्कन्धु कोलबदरमामं पित्तकफापहम् ।
पक्वं पित्तानिलहरं समधुरं सरं ।।
पुरातनं तृड्शमनं श्रमघ्नं दीपनं लघु । सु० सू० अ० 39
सौबीरं बदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम् ।
वृहंणं पित्तदाहास्त्र क्षयतृष्णानिवारणम् ।। भा० प्र०
तस्यमञ्जा तुवरो मधुरोवीर्य वर्धनः ।
श्वासकास तृषादाह, छर्दिमारुतपित्तजित् ।। कै० नि०
बदरस्य पत्रलेपो ज्वरदाहविनाशनः ।
त्वचा विस्फोट शमनी, बीजं नेत्रामयापहम् ।। रा० नि०"

द्राक्षा

1. चरके सू० अ० 4 स्नेहापगे, विरेचनोपगे, कासहरे, ज्वरहरे, च गणे द्राक्षा पठ्यते । सुश्रुते (सु० सू० अ० 4) काकोल्यादिगणे, परुषकादिगणे, द्राक्षापठ्यतें।

2. तृष्णादाह ज्वरश्वास रक्तपित्त क्षतक्षयान् ।
वातपित्त मुदावर्तं स्वरभेदं मदात्ययम् ।।
तिक्तास्यतामास्यशोषं, कासं चाशुव्यपोहति ।
मृद्वीका वृंहणीवृष्या, मधुरास्निग्ध शीतला ।। च० सू० अ० 29
तेषां द्राक्षा सरास्वर्या मधुरास्निग्ध शीतला ।
रक्तपित्त ज्वरश्वास, तृष्णादाहक्षयापहाः ।। सु० सू० अ० 46
अम्लपित्तानिलं पाण्डुमेहार्शः क्रिमिनाशनम् ।। "नरहरिकृत राजनिघण्टु"

अस्थिश्रृंखला

1. वज्रवल्ली सरा रुक्षा, कृमिदुर्नामनाशिनी ।
दीपन्युष्णा विपाके ऽम्ला, स्वाद्वी वृष्या बलप्रदा ।।
अस्थिसंधान जननी, वातश्लेष्म हरा लघुः । कै० नि०"

अरिष्ठक

1. रीठाकरञ्जस्तिक्तोष्णाः, कटुः स्निग्धस्यश्च वातजित् ।
कफघ्नः कुष्ठ कण्डूतिविष विस्फोटनाशनः ।। रा० नि०
अरिष्ठ कटुकः पाके तीक्ष्णोष्णों लेखनोऽगुरुः ।
दोषत्रयहरो गर्भपातनो ग्रहशान्तिकृत् ।।
अर्धशीर्ष व्यथां हन्ति, वमनाद्विषानाशनः । "नि० स०"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कोशाम्र

1. कोशाम्रः कुष्ठशोथास्त्र पित्तव्रण कफापहः ।
   तत्फलं ग्राही वातघ्न, अम्लोष्णांगुरुपित्तलम् ।।
   पक्वन्तु दीपनं रुच्यं, लघूष्णां कफवातनुत् ।। भा० प्र० ।।

आम्र

1. चरके हृद्ये छर्दिनिग्रहणे पुरीष संग्रहणीये, मूत्रसंग्रहणीये,
   महाकषाये, तथा कषायस्कन्धे अम्लस्कन्धे च आम्र पठ्यते" "च० सू० अ० 4"
2. रक्तपित्तकरं बालमापूर्णं पित्तवर्धनम् ।
   पक्कमाम्रं जयेद्वायु मांसशुक्रवलप्रदम् ।। च० सू० अ० 27
   कषायानुरसं स्वादु वातघ्नं वृंहणं गुरुः ।
   पित्ताविरोधि संपक्कमाम्रं शुक्रविविर्धनम् ।। सु० सू० अ० 46
   आम्रत्वचा कषाया च, मूलं सौगन्धिताद्यशम् ।
   रुच्यं संग्राहि शिशिरं, पुष्पं रोचनदीपनम् ।। "रा० नि०"

आम्रातक

1. चरके सू० अ० 4 हृद्यनिग्रहगणे आम्रातक पठयते"
   आम्रातपादपो बिम्बफलोपम फलो ऽल्पकः ।
   जिङ्गिणी सद्यशपर्त्रो, गिरौभवति रेवते ।। कैय्यदेव"

2. आम्रात मम्लं वातघ्नं, गुरुष्णं रुचिकृत्सरम् ।
   पक्कन्तु तुवरं स्वादु रसे पाके हिमंस्मृतम् ।
   तर्पणं श्लेष्मलं स्निग्धं, वृष्यं विष्ठम्भि वृहणम् ।। भा० प्र० ।।

भल्लातक

1. चरके दीपनीये, कुष्ठघ्ने, मूत्रसंग्रहणीये च महाकषाये तथा सुश्रुते
   न्यग्रोघादौ, मुस्तादौ च गणे भल्लातकं पठयते । "च० सू० अ० 4" 'सु० सू० अ० 38"
2. भल्लातकानि तीक्ष्णानि पाकीन्यग्नि समानि च ।
   भवन्त्यमृतकल्पानि . प्रयुक्तानिमथाविधिः ।।
   कफजो नस रोगो ऽस्ति न विवन्धो ऽस्तिकश्चनः ।
   यं न भल्लातकं हन्यात् शीघ्रं मेधाग्नि वर्धनम् ।। "च० चि० अ० 1"
   भल्लातकः कषायोष्णाः शुक्रलो मधुरो लघुः ।
   वातश्लेष्मोदरानाह कुष्ठार्शो ग्रहणीगदान् ।।
   हन्ति गुल्म ज्वर श्वित्तं, वन्हिमांद्यकृमिव्रणान् ।
   तन्मञ्जा मधुरोवृष्यो वृंहणों वात पित्तहा ।। भा० प्र०

काकड़ासींगी

1. चरके हिक्कानिग्रहणे कासहरे च महाकषाये तथा सुश्रुते
   काकोल्यादिगणे कर्कटश्रृङ्गी पठ्यते ।। च० सू० अ० 4, सुश्रुत अ० 38

2. श्रृगङ्गी कषाया तिक्तोष्णा कफ वात क्षयज्वरान् ।
   श्वासोर्ध्व वाततृट्कास, हिक्कारुचिवमीन्न् हरेत् ।। "भा० प्र०"

3. श्रृगङ्गी कफानिला श्वास कास हिक्का ज्वरापहा ।। "शोठल"

समाकदाना

1. वातापहं तिन्तिडीकमामं पित्तवलासकृत् ।। सु० सू० अ० 46

प्रियाल

1. श्रमहरे उदर्दप्रशमने च महाकषाये तथा सुश्रुते न्यग्रोधादिगणे प्रियालः पठ्यते ।।

2. प्रियाल तैलं मधुरं गुरु श्लेष्माभिवर्धनम् ।
   हितमिच्छन्ति नात्यौष्णत्वात्, संयोगे कफपित्तयोः ।। च० सू० अ० 29
   वात पित्तहरं वृष्यं प्रियालं गुरु शीतलम् ।
   प्रियाल मञ्जा मधुरो वृष्य पित्तनिलापहः ।। सु० सू० अ० 46
   स्वाद्वम्लं मधुरं पाके, सुस्निग्धं शीतलं सरम् ।
   विष्ठम्भी वृंहणं वृष्यं, वल्यं श्लेष्माभिवर्धनम् ।।
   जयेन्मारुतपित्तास्त्र तृष्णादाह क्षतक्षयान् ।। कै० नि०

शिग्रु

1. चरके (सू० अ० 4) कृमिघ्ने स्वेदोपगे, शिरोविरेचनोपगे

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

च महाकषाये, हरितकवर्गे कटुकस्कन्धे च शिग्रुक–
मधुशिग्रुकौ च पठ्यते "तथा सुश्रुते वरुणादिगणे शिरोविरेचन वर्गे च शिग्रुः पठ्यते" सु० सू० अ० 38

2. शिग्रुः सरः कटु पाके तीक्ष्णोष्णो मधुरो लघुः ।
दीपनो रोचनो रुक्षः, क्षारस्तिक्तोविदाहकृत् ।।
संग्राहय शुक्रलो ह्यः, पित्तरक्तः प्रकोपणः ।
चक्षुष्यः कफ वातघ्नो, विद्रधि श्वयघु कृमीन् ।।
मेदोपची विष प्लीह गुल्मगण्ड व्रणान् हरेत् ।
शिग्रुवल्कलपत्रा, स्वरसः परमार्तिहृत् ।।
चक्षुष्यं शिग्रुजं वीजं, तीक्ष्णोष्णं विषनाशनम् । अवृष्यं कफवातघ्नं "भावप्रकाश"

अङ्कोल

1. अंकोलो ऽगुलिपत्रः स्यात्पादपो दृढमूलकः ।
शुभ्रपुष्पो ताम्रफलः, कंटकी वनवासी च ।। "शिवदत्त"

2. श्लेष्मलं गुरु विष्ठम्भि चाङ्कोट फलमग्निजित् । चरक० सू० 29"
अंकोल कटुक स्निग्धः विष लूतादिदोषनुत् ।
श्लेष्मलं गुरुविष्ठम्भि, चाङ्कोटफलमग्निजित् ।। रा० नि०

पलाश

1. पलाश पादपः सिद्धस्त्रिदलः शिशिरेक्षयः ।
कृष्णावृन्तो ज्वलद्रक्तपुष्पश्च तिक्तबीजकः ।
एकबीजामयता शिम्बी, त्रिपर्णश्च समिष्ठवान् ।।
2. सुश्रुते रोध्रादौ मुस्ककादौ,
अम्वष्ठादौ, न्यगोधादौ च गणे पलाशः पथ्यते ।। सु० सू० अ० 46
3. किंशुकं कफपित्तघ्नं "सुश्रुत"
क्षारश्रेष्ठः कृमिघ्नश्च, संग्राही दीपनः सरः ।
प्लीह गुल्म ग्रहण्यर्शो, वातश्लेष्म विनाशनः ।।
बीजं तु कटुकं स्निग्धंमुष्ण कृमिक्लासजित् ।। "ध० नि०"

अपराजिता

1. चरके श्वेतानाम्ना (श्वेतवुघ्ना) "गिरिकर्णी नाम्ना शिरोविरेचन
द्रव्येषु अपराजिता पठयते "च० वि० अ० 8 "सु० सू० अ० 38"
2. गिरिकर्णी द्वयं तिक्तं पित्तोपद्रव नाशनम् ।
चक्षुष्यं विषदोषघ्नं, त्रिदोष शमनं च तत् ।।
गिरकर्णी हिमातिक्ता पित्तोपद्रवनाशिनी ।
विषनेत्र विकारांश्च, हन्ति कुष्ठरुजापहा ।। ध० नि०

मुद्गपर्णी

1. चरके जीवनीये, शुक्रजनने च महाकषाये, मधुरस्कन्धे
तथा सुश्रुते विदारिगन्धादौ, काकोल्यादौ च गणे मुद्गपर्णी च पठ्यते ।।

2. अरण्यमुद्ग वल्ली स शिंबा पीतपुष्पका ।
मुद्गवल्याभ पर्णा या मुद्गपर्णीतिसा स्मृता ।। "शिवदत्त"
3. मुद्गपर्णी हिमास्वादु र्वात्तरक्त क्षयापहा ।
पित्तदाह ज्वरान्न हन्ति, चक्षुष्याकफशुक्रला ।। "राजवल्लभ नि०"

माषपर्णी

1. चरके जीवनीये, शुक्रजनने च महाकषाये मधुरस्कन्धे च० सू० अ० 4, वि० अ० 8, तथा सुश्रुते विदारिगन्धादौ, काकोल्यादौ च गणे माषपर्णी पठ्यते ।।

2. माषपर्णी हिमातिक्ता स्निग्धा शुक्रवलासकृत् ।
मधुराग्राहिणी शोथ, वातपित्त ज्वरास्त्रजित् ।। भा० प्र०
सहा द्वयं ज्ञेया विपाके मधुरा रसे च वलप्रदा पित्त निर्वहणाश्च" "सु० सू० अ० 46"

शालपर्णी

1. चरके (सू० अ० 4) बल्ये, स्नेहोपगे, श्वयथूहरे, अंगमर्दप्रशमने च
महाकषाये मधुरस्कन्धे, तथा सुश्रुते (सू० अ० 38) विदारीगन्धादौ
कनीयसी पञ्चमूले च शालपर्णी पष्ठयते ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. शालपर्णी रसे तिक्ता गुरूरुष्णा च वातजित् ।
विषमज्वर मेहार्स्शः शोथसंत्ताप नाशिनी।। "रा० नि०"

3. तिक्ताविषहरी स्वादुः क्षतश्वास कृमिप्रणुत् ।।
शोष दोष त्रयहरी, वृंहण्युक्ता रसायनी ।। "भा० प्र०"

पृश्निपर्णी

1. चरके (सू० अ० 4) सन्धानीये, श्वयथुहरे, अंगमर्दप्रशमने,
महाकषाये, मधुरस्कन्धे च पृश्निपर्णी पठ्यते"
सुश्रुते (सू० अ० 38) विदारिगन्धादौ, हरिद्रादौ,
कनीयसीपञ्चमूले च पृश्निपर्णी पठ्यते"

2. पृश्निपर्णी सांग्राहिक–वातहर–दीपनीय वृष्याणाम्" "च० सू० अ० 25"

पृश्निपर्णी त्रिदोषघ्नी, वृष्योष्णा. मधुरासरा,
हन्तिदाह ज्वर श्वास, रक्तात्तीसारतृड्वमी ।। "भा० प्र०"

गु ञ्जा

1. सुश्रुते (क० अ० 2) मूलविषेषु गुञ्जा पठ्यते ।।

2. गुञ्जावल्ली तु मधुरा, चिंचापत्री सशिंविका ।
बीजं कृष्णारुणंतस्या, जायते सर्वभूमिषु ।। "शिवदत्त"

3. गुञ्जासोष्णा रसेतिक्ता, कषायाकफपित्तहा ।
चक्षुस्या शुक्रलाकेश्या, त्वच्या रूच्यावलप्रदा ।।
इन्द्रलुप्रहरातीव्रा स विषा मदमोह कृत्।
हन्तिरक्षोग्रह विषं, कण्डूकुष्ठ विषकृमीन् ।। "कैय्य० नि०"

यष्ठिमधु

मूलं तु मधुरं तिक्तं, मुखशोष हरंपरम् ।
मुखपाक हरं पत्रं, सर्वश्वेताभवे शुभम् "नि० स०"

1. चरके (सू० अ० 4) जीवनीये, सन्धानीये, वर्ण्ये, कण्ठ्ये, कण्डूघ्ने,
स्नेहोपगे, वमनोपगे, आस्थापनोपगे, छर्दिनिग्रहणे, मूत्रविरजीये
शोणितास्थापने च महाकषाये तथा सुश्रुते काकोल्यादौ,
सारिवादौ, अञ्जनादौ च गणे मधुकं पठ्यते ।। "सू० सू० अ० 38"

2. रसायनार्थे" क्षीरेण यठीमधुकस्य चूर्णम्" "च० चि० अ० 1"
वाजीकरणार्थे" कर्षं मधुकस्य चूर्णस्य, घृत क्षौद्रसमन्वितम् ।
पयोऽनुपानं यी लिहयात् नित्य वेगः स नाभवेत् ।। "च० चि० अ० 2"
मधुयष्ठिः स्वादुरसा शीतपित्त विनाशिनी ।
वृष्या शोषक्षयहरा विषच्छर्दिविनाशिनी ।।
यष्ठिकायुगलंस्वादु तृष्णापित्तास्त्रजित् समम् ।। ध० नि०

कपिकच्छु

1. चरके (सू० अ० 4) बल्ये (ऋषभी नाम्ना) मधुरस्कन्धे (वि० अ० 8)
(ऋष्यप्रोक्तानाम्ना तथा सुश्रुते (सू० अ० 38) विदारिगन्धादौ
गणे, वातसंशमने (सु० सू० अ० 39) च वर्गे कपिकच्छुः
पठ्यते ।।

2. कपिकच्छुर्भृशं वृष्या, मधुरा वंहणी गुरूः ।
तिक्तावातहरी वल्या, वातपित्तास्त्रनाशिनी ।। "भा० प्र०"

काकाण्डोला ऽऽत्मगुप्तानां माषवत्फलमादिशेत् ।। "च० सू० अ० 29"

शिंशपा

1. चरके आसवयोनिसारवृक्षेषु (सू० अ० 25) कषायस्कन्धे (वि० अ० 8)
तथा सुश्रुते सालसारादौ, मुस्ककादौ च गणे शिंशपा पठ्यते ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. शिंशपा कृष्णसारा स्यातु, वृतपत्राअणुपुष्पका ।
शिम्बीफला गुच्छपुष्पा, तद्वत् कपिल शिंशपा।। शिवदत्त "
3. शिंशपा कटुका तिक्ता कषायादोष हारिणी ।
उष्णवीर्या हरेन्मेदः कुष्ठश्वित्र वमिकृमीन ।। भा० प्र०

बीजक– चरके (सू० अ० 4)
उदर्दप्रशमने सालसारादिगणे असन पठ्यते।
अष्ठाङ्गसग्रहे असनादिगणे बीजक पठ्यते।
बीजक कुष्ठ विपर्स श्वित्रमेह वमी कृमीन्।
हन्ति श्लेष्मास्त्त पित्तं च त्वच्यः केश्यो रसायनः।।

रक्तचन्दन

1. सुश्रुते (सु० सू० अ० 38) पटोलादौ, साखिादौ, प्रिय ङ्वादौ च गणे कुचन्दनं (रक्तचन्दन) इतिडल्हणः"

2. रक्तचन्दनमतीव शीतलं, तिक्तमीक्षणन् गदास्त्रदोषनुत् ।
भूत पित्तकफकास, ज्वरभ्रान्तिजन्तु वमिजित्तृषाहम् ।। "रा० नि०"

रक्तं शीतं गुरुस्वादु छर्दितृष्णास्त्रपित्तहृत् ।
तिक्तं नेत्रहितं वृष्यं, ज्वर व्रण विषापहम् "भा० प्र०"

तिनिश

1. सुश्रुते (सू० अ० 38) सालसारादिगणे तिनिश पठ्यते ।
चरके इन्द्रोक्त रसायनयोगे अस्यपाठः ।।

2. रक्तातिसारं, कुष्ठं च, मेहमेदव्रणं तथा ।
रक्तदोषं च पित्तं च, श्वित्र कुष्ठकृमीं स्तथा ।।
दाहं च पाण्डुरोगं च, नाशयेदितिकीर्तितः ।। "नि० र०"

करञ्ज

1. चरके विरेचन द्रव्येषु (सू० अ० 2) कण्डूघ्ने महाकषाये, (सू० अ० 4) कटुकस्कन्धे, तिक्तस्कन्धें च (वि० अ० 8) तथा सुश्रुते आरग्वधादिगणे, वरुणादिगणे, अर्कादिगणे, श्यामादिगणे शिरोविरेचने तथा श्लेष्मसंशमनवर्गे च करञ्ज पठ्यते ।। "सु० सू० अ० 39"
2. करञ्जश्चोष्णातिक्तस्यात्, कफपित्तास्त्रदोषजित्।
व्रणप्लीह कृमीनूहन्ति, भूतघ्नो योनिरोगहा ।। ध० नि०
करञ्ज कटुकस्तीक्ष्णो वीर्योष्णो योनिदोषहृत् ।
कुष्ठोदावर्त्तगुल्मार्शो, व्रण कृमिकफापहः ।।
तत्पत्रं कफवातार्शः कृमिशोफ हरं परमू ।
तत्फलं कफवातघ्नं मेहार्शः कृमिकुष्ठनुत् ।। भा० प्र०

नीली

1. चरके (सू० अ० 2) विरेचनद्रव्येषु तथा सुश्रुते (सू० अ० 39) अघो भाग हर द्रव्येषु नीलिनी पठ्यते"

2. नीलिका नीलपत्रास्याच्छर पुखदला च सा ।
वहुशिम्बा कालिका च, रंगपत्री च रञ्जनी ।। "शिवदत्त"

3. नीलिनी रेचनी तिक्ता, केश्यामोहभ्रमापहा ।
उष्ण हन्त्युदरप्लीह वातरक्त कफानिलानू ।।
आमवात मुदावर्त मदं च विषर्मुद्धतमू ।। भा० प्र०

अगस्त्य

1. वषागस्त्ययोः पुष्पाणि तिलानि कटुविपाकानि क्षयकासहराणि ।
आगस्त्यनातिशीतोष्णां नक्तान्धानां प्रशस्यते ।। "सु० सू० अ० 46"

2. सिद्धोऽगस्तिः पंक्तिपत्रो मृदुशिम्बी महारुहः,
अगस्त्यस्योदयं यावत् सपुष्पइव दृश्यते ।। "शिवदत्त"

3. अगस्त्यत्रं कटुकं सतिक्तं गुरुकृमिघ्नं विशदंकफघ्नम् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कण्डूहरं शोणितपित्तहारि स्यात्, सूक्ष्ममुष्णमधुरं. विषघ्ननम्
तत्पुष्य नातिशीतोष्णं कटुपाकं सत्तिक्तकम् ।
कषाय वातलं पित्तकफ नक्तान्ध्यनाशनम् ।। "कै० नि०"

जयन्ती

1. जयन्ती कफपित्तघ्नी कृमिशोथ व्रणप्रणुत् ।
मदगन्धवती तिक्ता, कटूष्णा कण्ठशोधिनी ।। "भा० प्र०"

यवास

1. यासः स्वादुः सरस्तिक्त स्तुवरः शीतलो लघुः ।
कफः मेदोमद भ्रान्ति, पित्तासृक्कुष्ठकासजित्
तृष्णाविसर्प वातास्त्र वमि ज्वरहरस्मृतः ।। "भा० प्र०"

कषाय मधुराशीता स तिक्ता यासशर्करा ।। "च० सू० अ० 29"

यवासशर्करा मधुरकषाया, तिक्तानुरसा श्लेष्महरी सरा च ।। "सु० सू० अ० 45"

कासे यवासाधूमपानेन कासो नश्यति तत्क्षणात् ।। "वैद्यामृत"

पारिभद्र

1. कर्णिकारस्तु पलाशपत्रः स्यात् स्वल्प कण्टकी ।
स शिम्बी रक्तकुसमो, भवेत् भूधरसंनिधौ ।। "शिवदत्तः"

2. पारिभद्रः कटूष्णाः स्यात् कफवातनिकृसन्तनः ।
अरोचकहरः पथ्योदीपनश्चापि कीर्तितः ।। "रा०नि०"

वाकुची

तत्पत्रं पित्तरोगघ्नं कर्णव्याधिविनाशनम् ।। "भा० प्र०"

1. क्षुपो बाकुचिकायाश्च, गोवारिसद्यशो भवेत् ।
नीलाऽरुणपुष्पो, गुच्छफलो, दुर्गन्धों, कृष्णबीजकः ।। "शिवदत्त"

2. बाकुची शीतला तिक्ता, श्लेष्मकुष्ठ कृमीन्जयेत् ।
रसायनी च कुष्ठघ्नी, मेधाग्निबलवर्द्धनी ।। "रा० नि०"

तत्फलं पित्तलंकुष्ठं, कफानिलहरं कटु ।
केश्यं त्वचं वामिश्वास, कासशोथाम पाण्डुनुत् ।। "भा० प्र०"

विदारी

1. विदारी मधुराशीता, गुरूः स्निग्धा ऽस्त्र पित्तजित् ।
ज्ञेया च कफकृत् पुष्ठि, बलवीर्य विवर्द्धनी ।। "रा० नि०"
वातपित्तप्रशमनी, वृष्या बल्या रसायनी।
विदारी वातपित्तघ्नी, वृष्या वल्या रसायनी ।। "रा० नि०"

कुलत्थ

1. कुलत्थः ताम्रबीजश्च, श्वेतबीजः सितेतरः । "शिवदत्त"

2. उष्णःकषायाः पाकेऽम्लाः कफशुक्रनिलापहाः ।
कुलत्थाः ग्राहिणः कासहिक्का श्वासार्शसांहिताः ।। "चरकः"
घ्नन्ति शुक्राश्मरी शुक्रं घष्ठिशोफंतथोदरम् ।। "वाग्भट्ट"
पीनस श्वास कासार्शो हिध्मा ऽऽनाहकफानिलान् ।।

मेथिका

1. मेथिका कटु रुष्णा च, रक्तपित्त प्रकोपणी ।
अरोचकहरा दीप्तिकरी वातप्रणाशिनी ।। "रा० नि०"
मेथिका दीपनी हृघा, वद्धविट् कृमिशुक्रनुत्
रूक्षोष्णां तत्फलं कासानिलश्लेष्म वमीञ्जयेत् ।। "क्षेमकुतूहलम्"

शणपुष्पी

1. शण स्त्वम्ल कषायश्च, मलगर्भास्त्रपातनः ।
वान्तिकृत् वात कफनुञ्ज्ञेय, तीव्रांगमर्दजित्।।
घण्टारवस्तु कटुको, वात्तिकृत् कफपित्तहृत् ।। "शोठल"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शरपुंखा
1. नीलिकाकृतिपत्रा च, प्रसिद्धा भूमिमण्डले ।
शिम्बीफला रक्तपुष्पा, नीलवर्णा महौषधी ।।
शरपुंखेति विख्याता, श्वेतपुष्पा क्वचित् भेवत् ।। शिवदत्तः

2. शरपुंखा कटूष्णाश्च, कृमिवात रुजापहाः ।
श्वेतात्वाशु गुणाढ्या स्यात्, प्रशस्ता च रसायने ।
शरपुंखा यकृतप्लीहगुल्म व्रणविषापहः ।
तिक्तः कषायः कासास्त्र श्वासज्वरहरो लघुः ।। "भा० प्र०"

पूतिकरञ्ज
1. चरके विरेचने प्रयोक्तव्यः पूतीकः "च० सू० अ० 1"
सुश्रुते अधोभागहर द्रव्येषु पूतिकपत्रंपठ्यते ।। सु० सू० अ० 39

2. स्त्रंसनं कटुकं पाके, लघुवात कफापहमू ।
शोथघ्न मुष्णवीर्यं च, पत्रं पूतिकरञ्जकम् "सु० सू० अ० 46"
कुवेराक्षं यकृत्प्लीहं वातघ्नं व्रणरोपणम् ।।
पूतिकरंजं पत्रं, लघु वात कफापहम् ।
भेदनं कटुकं पाके, वीर्योष्णं शोफनाशनम्।। शो० नि०

पत्तंग
1. पत्तंग मधुरंवर्ण्यं, तिक्तंपित्तकफापहम् । ध० नि०
पत्तंग मधुरं शीतं पित्तेश्लेष्म व्रणास्त्रनुत् ।। "भा० प्र०"

चक्षुष्या
1. आनाहमेदो गुदकील हिक्का, श्वासापह शोणितपित्तकृच्च ।
कफस्य हन्ता पवनामयघ्नों, विशेषतो वन्यकुलत्थउक्तः ।। "सु० सू० अ० 46"
कुलत्थिका कटुस्तिक्ता स्यादर्शः शूलनाशिनी ।
विवन्धाऽध्मानशमनी, चक्षुष्या व्रणरोपिणी ।। "रा० नि०"

आरग्वध
1. चरके (सू० अ० 2) विरेचन द्रव्येषु, च० स० अ० 4 कुष्ठघ्ने,
कण्डूघ्ने महाकषाये, तिक्तस्कन्चे तथा सुश्रुते (सू० अ० 38)
आरग्वधादौ, श्यामादौ च गणे अधोभागहर द्रव्येषु च आरग्वध पठ्यते ।

2. आरग्वधो रसे तिक्तो, गुरुरुव्णा क्रिमिशूलनुत् ।
कफोदर प्रमेहघ्नः, कृच्छ्रगुल्म त्रिदोषजित् ।। "ध० नि०"
आरग्वधोऽतिमधुरः शीतशूलापहारकः ।
ज्वर कण्डूकुष्ठ मेह कफविष्ठम्भ नाशनः ।। "रा० नि०"

चतुरङ्गलो मृदुविरेचनानां श्रेष्ठः" चरकः"

कासमर्द
1. सुश्रुते (सू० अ० 38) सुरसादिगणे कासमर्दः पठ्यते" चरके शाकवर्गे
हिक्का-श्वासनिवारणे च कासमर्द पठ्यते" च० चि० अ० 17

2. कासमर्दः सतिक्तोष्णो मधुरः कफवातजित् ।
अजीर्ण कास पित्तघ्नः, पाचनः कण्ठशोधनः ।। रा० नि०
दद्रुकिट्भि कुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात् ।। "चक्रदत्तः"

चक्रमर्द
1. सुश्रुते (सू० अ० 39) ऊर्ध्वभागहर द्रव्येषु प्रपुन्नाडा पठ्यते"

2. चर्कमर्दः शिंविफल पीतपुष्पो ऽगुल्मकः ।
वर्षाभवः पंक्तिपत्रो, दद्रुघ्नेति प्रकीर्तितः ।। शिवदत्तः"

3. चर्कमर्दः कटूष्ण स्यान्मेदोवातकफापहः।
दद्रुकण्डूहरः कान्तिसौकुमार्य करोमतः।। ध० नि०

कफापहं शाकयुक्तं वरुणप्रपुनाडयोः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रुक्षं लघु च शीतं च, वातपित्त प्रकोपणम् ।। "सु० सू० अ० 46"
दद्रौ—चक्रमर्दवीजंञ्च मूलकाम्बु प्रपेषित्तम."
दद्रुघ्नंलेपनं कुर्यात्" "वंगसेन"

कचनार

1. कोविदार—चरके (सू० अ० 4) वमनोपगे महाकषाये तथा
सुश्रुते (सू० अ० 39) उर्ध्वभागहरे गणे कषायवर्गे च कोविदार पठ्यते"

2. कोविदारः श्वेतपुष्पो सुशिम्बो युग्मपत्रकः ।
धठकाष्ठो रक्तसारः, पादपः पर्वति भवेत् ।। "शिवदत्त"

3. पुष्पाणि मधुराणि मधुर विपाकानि रक्तपित्त हराणिच। "सु० सू० अ० 48"
कोविदारस्य पुष्पं ग्राहि प्रशस्तं रक्तपित्तेविशेषतः च० सू० अ० 29
कोविदारः कषायस्तु संग्राही व्रणरोपणः ।
गण्डमाला गुदभ्रंशशमनः कुष्ठ केशहाः ।।ध० नि०।।

अश्मन्तक

सुश्रुतटीकाकार डल्हण ने अश्मत्रक – नामक द्रव्य से निम्न अर्थ किया है।
1. अन्तक कोविदार सदृश युग्मपत्रलता विशेष अश्मश्यन्तकमाचक्षते।।
2. अश्मत्तक अम्लोटक सदृश वृक्षः" सु० सू० अ० 22
3. यमलपत्रकः आसन्तइन्ततिलोके" सु० सू० अ० 45
4. अश्मत्तक अम्लोटकानुसारी" सु० क० अ० 5
चरक टीकाकार चक्रपाणी के मतानुसार—अश्मत्तक अम्ललोटः" इति" अश्मत्तक मालायु सघर्शोपत्रो वृक्षः" आदि कतिपय टीकाये मिलती हैं। जिससे यह स्पष्ट तथ्य नहीं निकलता है। मुख्यरूप से क्षीरी वृक्ष विशेष होने से यह Ficus की जाति विशेष की सम्भावना है। अश्मन्तक का प्रयोग मूर्वा के प्रसंग में भी उपलब्ध है। इन सभी द्रव्यों पर शोध कार्य चल रहा है।

अशोक

1. चरके (सू० अ० 4) वेदनास्थापने महाकषाये, कषायस्कन्धे
(च० वि० अ० 8) च सुश्रुते (सू० अ० 38) रोध्रदिगणे अशोकः पठ्यते ।

2. अशोक शीतल स्तिक्तोग्राही वर्ण्यः कषायकः ।
शोषापची तृषादाह कृमि शोथ विषास्त्रजित्।।
अशोकस्य त्वचा रक्तप्रदरस्य विनाशिनी।। शोढल"
ज्वरं च रक्तपित्ताशों मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
मेहशोफारुचिहरः, अशोकरिष्ठ संज्ञितः।। "भै० र०"

इमली

1. अम्लीकायाः फलं तस्मादल्पात्तरंगुणम् च० सू० अ० 29
अम्लिकायाः फलं त्वाममत्यम्लं लघुपित्तकृत् ।
पक्वं तु मधुराम्लं स्यात्भेदिविष्ठम्भवातजित्
चिञ्चापत्रं तु शोथघ्नं रक्तदोष व्यथापहम्
शुष्कत्वचाक्षारः शूलमन्दाग्निनाशनः ।। भा० प्र०

आवर्त्तिकी

1. आवर्तकी तिक्तशीता कषाया ग्रहिणी तथा ।
मुखरुकुष्ठकण्डूति जन्तुशूलव्रणापहा।।
तत्पुष्पं मधुमेहघ्नं चक्षुस्यं तृद्र बिनाशनम् ।। नि० र०

सनाय

1. रुक्षोष्णां शोधिनी वाठं, वातश्लेष्मविरोधिनी । सि० भै०
मार्कण्डिका कुष्ठहरी उर्ध्वाधः कायशोधिनी।
वातरुक् कृमिकासघ्नी, गुल्मोदर विनाशनी ।। "नि० र०"

बब्बूल

1. बब्बूलस्तु कषायोष्णः कफकासामयापहः ।
आमरक्तातिसारघ्नः, पित्तिदाहात्तिनाशनः रा० नि०

वब्बूलः कफनुद्ग्राही, कुष्ठकृमिविषापहः।
बब्बूलस्य फलंरुक्षं, विशदं स्तम्भनं गुरु।
कषायं मधुरं शीतं, लेखनं कफपित्तहृत्।। नि० र०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

खदिर

1. चरके (सू० अ० 4) कुष्ठघ्ने महाकषाये, कषायस्कन्धे (वि० अ० 8) च खदिरः पठ्यते । सुश्रुते सालसारादिगणे खदिरः पठ्यते।। सू० अ० 38

2. खदिरस्तु रसे तिक्तः शीतपित्तकफापहः ।
पाचनः कुष्ठ कासास्त्र, शोथकण्डूव्रणापहः ।। रा० नि०
खदिरः शीतलोदन्त्य कण्डू कासारुचिप्रणुत्।
तिक्तकषायो मेदोघ्नः, कृमिमेहज्वर व्रणान् ।।
श्वित्रशोथाम पित्तास्त्र पाण्डु कुष्ठकफान्हरेत्।। भा० प्र०

3. "खदिर कुष्ठघ्नानां श्रेष्ठमू" चरक:

इरिमेद

1.. इरिमेदः कषायोष्णो मुखदन्तगदास्त्रनुत्।
हन्ति कण्डू विषश्लेष्म कृमि कुष्ठग्रहव्रणान् ।। म० नि०

शिरीष

1. चरके (च० सू० अ० 4) विषघ्ने, वेदनास्थापने, च महाकषाये, शिरोविरेचनद्रव्येषु (शिरीषवीजं) कषायस्कन्धे (वि० अ०) तथा सुश्रुते (सु० सू० अ० 38) सालसारादिगणे शिरीषः पठ्यते"

2. शिरीषोविषघ्नांनां श्रेष्ठमू" चरक।
तिक्तोष्णों विषहा वर्ण्य स्त्रिदोषशमनोलघुः।
शिरीषः कुष्ठ कण्डूघ्नः त्वग्दोषश्वासकासहाः। ध० नि०

शमी

1. शमीफलं गुरुस्वादु रुक्षोष्णं केशनाशनम् । सुश्रुत
गुरुष्णांमधुरं रुक्षं केशघ्नं च शमीफलम् "चरक" ।
शमी तिक्त कटुःशीता कषाया रोचिनी लघुः।
कफ कास भ्रम श्वास, कुष्ठार्शकृमिज्जितश्वास्मृता ।।
तत्फलं पित्तलं रुक्षं, मेध्यं केशविनाशनम्।। भा० प्र०

वीरतरु

1. वेल्लंन्तरः कटूष्णश्च, कृच्छ्रघ्न संधिशूलनुत्।
वह्निदीप्तिकरः पथ्यो, वातामयविनाशनः ।। रा० नि०
मूत्राघातारमजित् ग्राही योनिमूत्रानिलार्तिजित् ।। भा० प्र०

लज्जालु

1. चरके (सू० अ० 4) संधानीये, पुरीषसंग्रहणीये, च महाकषाये, तथा सुश्रुते (सू० अ० 38) प्रियङ्गवादिगणे, अम्वष्ठादिगणे च (समङ्गनाम्ना) लज्जालु पठ्यते।

2. रक्तपादी शमीपत्रा स्पृक्का खदिरपत्रिका।
स्पर्शात् संकोचतांयाति, पुनश्चप्रसृताभ्वेत् ।। कैम्प० नि०

3. लज्जालुः शीतला तिक्ता, कषाया कफपित्त जित्।
रक्तपित्त भतीसारं, योनिरोगान् विनोशयेत्।। भा० प्र०

रक्तपादी कटुःशीता पीत्तातीसार नाशिनी।
शोफ दाह श्रम श्वास, व्रणकुष्ठ कफा स्त्रनुत ।। रा० नि०

पद्म

1. चरके (सू० अ० 4) वर्ण्ये, वेदनास्थापने, च महाकषाये तथा कषायस्कन्धे, सुश्रुते (सु० अ० 38) सारिवादौ, चन्दनादौ च गणे पदमक पठ्यते।।

2. ईषत्पद्मसुगन्धि स्यात्, पद्मकं रक्तवल्कलम्।
पद्मकाष्ठं नवं ग्राह्यं, रक्तपित्तं च वर्णतः ।। "शिवदत्तः"

3. पद्मकं शीतलं स्निग्धं कषायं रक्तपित्तनुत्।
गर्भ स्थैर्यकर प्रोक्तं, ज्वरछर्दि विषापहम्।।
मोहदाह ज्वर भ्रान्ति, कुष्ठविस्फोट शान्तिकृत्।। "ध० मि०"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बादाम

1. पित्तश्लेष्म कराण्याहुः स्निग्धोष्णानि गुरुणि च।
वृंहण्यान्य निलघ्नानि वल्यानि मधुराणि च।। सु० सू० अ० 46
वातादमञ्जा मधुरो वृष्यः, पित्तानिलापहः। भा० प्र०

गुलाब (तरुणी)

1. शतपत्री सरावृष्या, शीता हृधा च शुक्रला ।
लघ्वी च तुवरा स्वादुः सुरभिः ग्राहिणी मता।।
वर्ण्यातिक्ता च कट्वी, रुच्याचाग्नि प्रदीपनी। नि० र०

पाषाणभेद

1. चरके (सू० अ० 4) मूत्रविरेचनीये महाकाषाये तथा
सुश्रुते वीरतर्वादिगणे, वातसंशमन वर्गे च पठ्यते।। सु० स० अ० 38

2. पाषाणभेदकः शूलकृच्छ्र मेह त्रिदोषजित्।
हृद्रोग प्लीह गुल्मार्शः वास्तिशुद्धिकर परः।।
अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायों वस्तिशोधनः
योनिरागान् प्रमेहांश्च प्लीहशूल व्रणानि च ।। भा० प्र०

शिलारस (सिल्हक)

1. चरके वातव्याधौ वलातैल योगे तुरुष्कःपठ्यते, सुश्रुते
एलादिगणे च तुरुष्कः पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38

2. पक्यश्लेष्मा तक्ररसैस्तुल्य, स्निग्धः सुगंधिमान्।
वह्नौ ज्वलति निः शब्दः पिंङगल सिल्हकोमतः।। शिवदत्त

3. तुरुष्कः सुरभिस्तिक्तः कटु स्निग्धश्च कुष्ठजित्।
कफवाताश्मरी मूत्राघात श्वासज्वरार्ति जित्।। रा० नि०

सिल्हकः कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्ण शुक्रकान्तिकृत्
वृष्यः कण्ठयः स्वेद कुष्ठ ज्वरदाहाग्रहापहा।। भा० प्र०

तुरुस्क शल्लकीनाञ्च धूमाः कार्या विजानताः।। "सुश्रुत अ०"

हरीतकी

1. सुश्रुते परुषकादौ, त्रिफलायां अमालक्यादौ त्रिवृतादौ च
गणे हरीतकी पठ्यते" सु० सू० अ० 38
हरीतकी पथ्यानाम्" च० सू० अ० 25"

2. नीरजा वनजा चैव, पर्वतीया च सात्रिधा ।
यथोत्तरं पथ्यतोत्तमा, विज्ञेया त्रिविधा ऽभया।। कै० नि०

3. हरीतकी पञ्चरसा मुष्णमलवणांशिवाम्।
दोषानुलोमिनी लघ्वी विघाद्दीपन पाचिनीम्।।
आयुस्पां पौष्ठिकी धन्या वयसः स्थापनी पराम्।
सर्वदोष प्रशमनी वुद्दीन्द्रियवलप्रदाम्।
अर्शांसि ग्रहणी दोषं पुराण विषमज्वरम् ।
कासं प्रमेह मानाहं प्लीहानमुदरंनवम् ।। च० चि० अ० 1

त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठहरासरा।
चक्षुष्या दीपनी रूच्या, विषमज्वरनाशिनी।। भा० प्र०

बिभीतक

1 .चरके (सू० अ० अ०4) विरेचनोपगे, ज्वरहरे च महाकषाये तथा सुश्रुते मुस्तादिगणे, त्रिफलायां
च विभीतकं पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।

2. भेदनं लघु रुक्षोष्णं, वैस्वर्य क्रिमिनाशनम् ।
चक्षुष्यं स्वादु पाक्यांक्षं कषयं कफपित्ताजित् ।।
विभीतको मदकर : कफमारुतः नाशनः । सु० सू० अ० 46 ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरभेद कफोत्क्लेद पित्तरोगविनाशनम् । च० सू० अ० 29 ।।

विभीतकं स्वादुपाकं, कषायं कफ पित्तनुत् ।
उष्णवीर्य हिमस्पर्शं, भेदनं कासनाशनम् ।।
रुक्षं नेत्रहितं केश्यं, क्रिमिवैस्वर्यनाशनम् ।। आ० प्र० ।।

अर्जुन

1. चरके (सू०अ०4) उदर्दप्रशमने महाकषाये, कषायस्कन्धे तथा सुश्रुते सालसारादिगणे, न्यग्रोधादिगणे अर्जुन ।। इति पठ्यते । सु० सू० अ० 38 ।

2. ककुभः शीतलोहृद्यः, क्षत क्षय विषास्त्रत्रित् ।
मेदो मेह व्रणान् हन्तिः तुवर कफपित्तहृत् ।। भा० प्र० ।

अर्जुनस्य त्वचा सिध्दं क्षीरं योज्यं हृदयामये ।। चक्रदत्त ।

धव

1. चरके (वि0 अ0 8) कषायस्कन्धे धवः पठयते ।
सुश्रुते (सू0 अ0 38) सालसारदिगणे एवं मुस्ककादिगणे च धवः पठ्यते ।

2. धवो घठतरुः गौरः कषायो मधुर त्वचः ।
पाण्डुतरुः पीतफलो धवलश्ख भरोद्वह ।। (शिवदत्त)

3. धवः शीतः प्रमेहार्शः पाण्डु पित्तकफापहः ।
मधुर स्तुवरस्तस्य फल तु मधुरं मनाक् ।। भा0 प्र0
कुष्ठे खदिर धवश्च लेपः ।। चरकः ।।

लवंग

1. लवङ्ग कुसुमं हृद्यं, शीतलं पित्तनाशनम् ।
चक्षुष्यं विषहृद् वृष्यं, माङ्ल्यं मुर्द्धरोगहृत् । ध0 नि0
लवगं कटुकं तिक्तं लघुनेत्र हितं हिमम् ।
दीपनं पाचनं रुक्षं, कफ पित्तास्त्रनाशनम् ।।

पिपासायामामनुत्क्लेशे लवंगस्याम्बुशस्यते ।। शोठल:

जम्बू

1. चरके (सू0 अ0 4) छर्दिनिग्रहणे, पुरीषविरजनीये, मूत्रसंग्रहणीये च महाकषाये तथा सुश्रुते न्यग्रोधादिगणे जम्बू पठ्यते ।। सु0 स() अ0 38 ।।

2. जाम्वबं कफ पित्तघ्नं ग्राहिवातकरं परम् ।। चरक ।।
अत्यर्थ वातलं ग्राहि, जाम्वबं, कफपित्तजित् । सु0 सू0 अ0 46 ।।

जाम्वबं वातलं ग्राहि स्वादूम्लं कफवाताजित् । ध0 नि0 ।।

हिज्जल

1. चरके (सू0 अ0 2) विरेचन द्रब्येषु निचुल नाम्ना ।
वमनोपगे महाकषाये (सू0 अ0 4) विदुल नाम्ना तथा सुश्रुते उर्ध्वभागहर गणे हिज्जलः पठयते ।। सु0 सू0 अ0 39 ।।

2. हिज्जलः कफवातघ्नो रेचनो वामक स्तथा ।। सुश्रुत ।।

फलं समुद्रस्य कदूष्णकारी, वातापहं भूतनिरोधकारि ।
त्रिदोष दावानल दोषहारि कफामय भ्रान्तिविरोधकारि ।।

तदेव चार्जितं नेत्रे कामलां नाशयेत् ध्रुवम् ।। नि0 र0 ।।

धातकी

1. चरके (सू0 अ0 4) संघानीये, पुरीषसंग्रहणीये, मूत्रविरजनीये च महाकषाये तथा सुश्रुते प्रियङ्गवादौ, अम्बष्ठादौ च गणे धातकी पठ्यते । स() सू0 अ0 38 ।।

2. धातकी कटुका शीता मदकृत्तुवरालघुः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रवाहिकातिसारघ्नी, विसर्पव्रणनाशिनी ।। रा० नि०
धातकी कुसुमं शीतं रक्तपित्तात्तिसाराजित् ।। रौजवल्लभ ।।

मदयन्तिका (मेंहदी)

1. सुश्रुते (चि० अ० 9) महानीलिघृते, तथा अष्ठाङ्गहृदये (चि० अ० 2) रक्तपित्ते मदयन्तिका पठ्यते ।

2. रक्तरंगा दाहहन्त्री वान्तिकृत् श्लेष्मकुष्ठहा ।
बीजमस्याः ग्राहकन्तु शोथघ्नं च प्रकीर्तितम् ।।
भूतग्रहाणां दोषं तु ज्वरं चैव विनाशयेत् ।। नि० र० ।।

दाडिम

1. चरके (सू० अ० 4) हृद्ये, छर्दिनिग्रहणे च महाकषाये तथा सुश्रुते परुषकादिगणे दाडिमं पठयते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. द्विविधं तन्च्च विज्ञेयं मधुरं चाम्लमेव च ।। ध० नि० ।।

3. अम्लं कषाय मधुरं वातघ्नं ग्राहिदीपनम् ।
स्निग्धोष्णां दाडिमं हृद्यं, कफ पित्ताविरोधि च ।। च० सू० अ० 29 ।।

कषायानुरसं तेषां दाडिमं नातिपित्तलम् ।
दीपनीयं रुचिकरं हृद्यं वर्चो विवन्धनम् ।।
त्रिदोषघ्नं च मधुरम्लं वातकफापहम् ।। सु० सू० अ० 46 ।।

श्रृंङ्गाटकं

1. श्रृङ्गाटकं च गुरुविष्ठम्भि शीतलम् ।। च० सू० अ० 29 ।।

गुरु विष्ठम्भिशीतौ च, श्रृङ्गठक कशेरुकौ ।। सु० सू० अ० 46 ।।

2. श्रृङ्गाटकं हिमंस्वादु, गुरु वृष्यं प्रदीपनम् ।
ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मप्रदं, पित्तास्त्रदाहनुत् ।। भा० प्र० ।।

कुष्माण्ड

1. सक्षारं पवन कुष्माण्डं मधुराम्लं तथा लघुः ।
सृष्ठमूत्रपुरीषं च, सर्वदोष निवर्हणम् ।। च० सू० अ० 29 ।।

2. पित्तघ्नं तेषु कूष्माण्डं वालं मेध्यं कफापहम् । सु० सू० अ० 46 ।।

3. वृष्यं स्वादुतरं त्वरोचकहरंवल्यं च पित्तपहम् ।
कूष्माण्डं प्रवरं वदन्ति भिषजो वल्लीफलानांपुनः ।। रा० नि० ।।

इन्द्रवारुणी

1. चरके (स० अ० 1) षोडश मूलिनीषु (गवाक्षीनाम्ना) विरेचन द्रब्येषु (सू० अ० 2) च इन्द्रवारुणी पठ्यते ।।
सुश्रुते (सू० अ० 38) श्यामादिगणे, अधोभागहरद्रव्येषु गवाक्षी पठ्यते ।। सु० सू० अ० 39 ।।

2. इन्द्रवारुणिकाऽत्युष्णा, रेचनी कटुका तथा ।
कृमि श्लेष्म व्रणान् हन्ति, हन्तिसर्वोदराण्यपि ।। ध० नि० ।।

2. गवादनी द्वयं तिक्तं पाके कटु सरंलघु ।
वीर्योष्णां कामलापित्त कफप्लीहोदरापहम् ।।
श्वास कासापहं कुष्ठ गुल्मग्रन्थिव्रणाप्रणुत् ।
प्रमेह मूठगर्भाम गण्डामयविषापहम् ।। भा० प्र० नि० ।।

पटोल

1. चरके (सू० अ०4) तृप्तिघ्ने, तृष्णानिग्रहणे च महाकषाये तथा सुश्रुते आरग्वधादौ, पटोलादौ
च गणे पटोल पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. कफ पित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विपच्यते । च० सू० अ० 29 ।।
कफपित्त हरं व्रण्यमुष्णं तिक्तमवातलम् ।
पटोलं कटुकं पाके, वृष्यं रोचनदीपनम् ।। सु० सू० अ० 46 ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कटुतुम्बी

1. चरके (सू0 अ01) एकोनविंशति फलिनीषु, वमन द्रब्येषु च तथा सुश्रुते उर्ध्वभागहरगणे इक्ष्वाकुः पठ्यते ।। सु0 सू0 अ0 39 ।।

2. कासश्वास विषच्छर्दि ज्वरार्ते, कफकर्षिते ।
प्रताम्यति नरे चैव, वमनार्थतदिष्यते ।। च0 क0 अ0 3 ।।

तिक्ताअलाबुरहृद्या तु वामिनी वातपित्तजित् ।। सुश्रुत ।।

कटुतुम्बी कटुस्तीक्ष्णा वान्तिकृत् श्वासवातजित् ।
कासघ्नी शोधनी शोफ व्रणशूल विषापहाः ।। रा0 नि0 ।।

जीमूतक (देवदाली)

1. चरके (स0 अ0 1) एकोनविंशति फलिनीषु वमन द्रब्येषु । सू0 अ0 2 च जीमूतं पठ्यते ।
सुश्रुते ऊर्ध्वभागहरे, उभयतोभागहरे च गणे जीमूतकं पठ्यते ।। सु0 सू0 अ0 39 ।।

2. देवदाली तु तिक्तोष्णा, कटुः पाण्डुकफापहा ।
दुर्नामश्वास कासघ्नी, कामला शोथ नाशिनी ।। रा0 नि0 ।।

वामनी हन्ति गुदजकफ शोफाम कामला ।
ज्वर कासाऽरुचिश्वास हिध्मा पाण्डुक्षयकृमीन् ।। कै0 नि0 ।।

कोषातकी

1. चरके सू0 अ0 1) एकोनविंशाति फलिनीषू वमन द्रबयेषु च कृतवेघनं एवं धामार्गव पठ्यते ।
सुश्रुते उर्ध्वभागहरे उभयतोभागहरे चगणे कोशातकी एवं धामार्गव पठ्यते ।। सु0 सू0 अ0 39 ।।

2. गरे गुल्मोदरे कासे, वातेश्लेशमाशय स्थिते ।
कफे च कण्ठवक्रस्थे कफसंचयजेषु च ।।
रोगेस्वेषु प्रयोज्यं स्यात् स्थिराक्ष्च गुखश्च ये ।। च0 क0 अ0 29 ।।

कुष्ठ मेह ज्वर श्वास कासारुचिहराणिच । सु0 सू0 अ0 46 ।।

कारवेल्लक

1. चरके (वि0 अ0 8) तिक्तस्कन्धे तथा सुश्रुते शाकवर्गे कारवेल्लिका पठ्यते ।। सु0 सू0 अ0 46 ।।

2. कारवेल्लं सकटुकं, कटुपाकमवातलम् ।
दीपनं भेदनं तिक्तम वृस्यमहिमं लघु ।।
हृन्त्यरोचक पित्तास्त्र कफपाण्डुव्रणक्रीम् ।
श्वास कास प्रमेहाश्म कोठकुष्ठज्वरानपि ।। कै0 नि0 ।।

त्रपुस

1. चरके (सू0 अ0 1) एकोनिविंशति फलिनीषु त्रपुष पठ्यते ।
सुश्रुते आस्यापयोपगे, च त्रपुष पठ्यते ।।

2. त्रपुषं मूत्रलं तिक्तं वामकं कफपित्तजित् । शोठलः ।
तिक्त कर्कटिका प्रोक्ता, रसे पाके कटुस्मृताः ।
तिक्तामूत्रकरी वान्तिकारका, मूत्रकृच्छ्रहा ।। नि0 र0 ।।

बिम्बी

1. चरके (सू0 अ0 1) षोडश मूलिनीषु तथा सुश्रुते (सू0 अ0 39) उर्ध्वभागहर द्रब्येषु बिम्बी पठ्यते ।।

2. तुण्डिका कफ पित्तासृक्शोथ पाण्डु ज्वरापहा ।
श्वास कासापहं स्तन्यं, फलं वातकफापहम् ।। ध0 नि0 ।।
अरोचकास्त्र पित्तघ्नी, सदापथ्या च रोचनी ।
तिक्तं विम्बीफलं चामं, छर्दनं कफनाशनम् ।। रा0 नि0 ।।

शिबलिङ्गी

1. लिङ्गनी कटुरुषणा च, दुर्गन्धा च रसायनी ।
सर्वसिद्धकरादिब्या, वश्यारसनियामिनी ।। रा0 नि0 ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जीरक

1. चरके (सू० अ० 2) शिरोविरेचनद्रव्येषु, शूलप्रशमने च महाकषाये (सू० अ० 4) तथा सुश्रुते (सू० अ० 38) पिप्पल्यादिगणे जीरकं पठ्यते।

2. रोचनं दीपनं वात कफ दौर्गन्ध्यनाशनम्। च ० सू० अ० 29 ।
तीक्ष्णोष्णं कटुकं पाके रुच्यं पित्ताग्निवर्धनम्।
कटुश्लेष्मानिलहरं गन्धाढ्यं जीरकद्वयम् ।। सु० सू० अ० 46

जीरकं कटुकं रुक्षं वातहद्दीपनं परम् ।
गुल्माध्मानातिसारघ्नं ग्रहणी कृमिहृत्परम् ।। ध० नि०

3. विषमज्वरे अजाजी गुड संयुक्ता विषमज्वर नाशिनी ।
अग्निसादं जयेत्सम्यग् वातरोगांश्चनाशयेत् ।। चक्रदत्तः ।।

कृष्णजीरक

1. कारवी रोचनं दीपन वातकफ दौर्गन्ध्यनाशनम् ।
कारवी कृष्णजीरकम्" इति च० सू० अ० 21 ।

2. जरणा कटुरुष्णा च, कफ शोफ निकृन्तनी,
रुच्या जीर्ण ज्वरघ्नी च, चक्षुष्याग्रहिणी परा ।। ध० नि०

यवानी

1. चरके शीतप्रशमने महाकषाये भूतिकनाम्ना यवानी पठ्यते । च० सू० अ० 40

2. यवानी कटुतीक्ष्णोष्णा वातश्लेष्म द्विजामयान् ।
हन्तिगुल्मोदरंशूलं दीपयत्याशु चानलम् ।। ध० नि०
यवानी पाचनी रुच्या तीक्ष्णोष्णा कटुकालघुः ।
दीपनी च तथा तिक्ता पित्तला शूल शुक्रहृच्त् ।
वातश्लेष्मोदरानाह गुल्मप्लीह कृमिप्रणुत् ।। भा० प्र०

अजमोद

1. चरके (सू० अ० 4) दीपनीये, शूलप्रशमने च महाकषाये तथा पिप्पलादि गणे च अजमोदा पठ्यते । सु० सू० अ० 38 ।

2. अजमोदा तु शूलघ्नी तिक्तोष्णा कफ वातजित् ।
हिक्का ध्मानारुचीर्हन्ति कृमि जिद्वन्हिदीपनी ।। ध० नि०।

अजमोदा कटुरुष्णां रुक्षा कफ वात हारिणीरुचिकृत् ।
शूलाध्माना रोचक जठरामय नाशिनीचैव ।। रा० नि०"

शतपुष्पा (सोया)

1. चरके आस्थापनोपग एवं अनुवासनोपग महाकषाये शताहवा पठ्यते ।। च० सू० अ० 4 ।।

2. शताध्वा कटुका तिक्ता, स्निग्धोष्णा श्लेष्मवातजित् ।
ज्वरनेत्र गदान् हन्ति, वस्तिकर्मणि शस्यते ।। ध० नि० ।।

शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा, पित्तकृद्दीपनी कटुः ।
उष्णा ज्वरानिलश्लेष्म व्रणशूलाक्षिरोगनुत् ।। भा० प्र०

मिश्रेया

1. सुश्रुते आस्थापनयोगेषु मिशिः पठ्यते ।। सु० चि० अ० 38 ।।

2. तिक्ता स्वादुहिमावृष्या दुर्नामक्षयजिन्मिशि ।
क्षत क्षीण हितावल्या वातपित्तास्त्र दोषजित् ।। ध० नि०

मिश्रेया मधुरा स्निग्धा कटुः कफ हरापरा ।
वात पित्तोत्थ दोषघ्नी, प्लीहजन्तु विनाशिनी ।। रा० नि०
मिश्रेया तद्गुणाप्रोक्ता विशेषाद्योनिशूलनुत् ।
अग्निमांद्यहरी वद्धविट् कृमिशुक्रहृत् ।।
रुक्षोष्णा पाचनी कास वमिश्लेष्मानिलान् हरेत् ।। भा० प्र०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

धान्यक

1. चरके (सू० अ० 4) तृष्णानिग्रहणे, शीतप्रशमने च महाकषाये
   तथा सुश्रुते गुडूच्यादिगणे धान्यकं पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. आर्द्रा कुस्तुम्बरी कुर्यात्, स्वादुगन्ध्य हृद्यताम् ।
   सा शुष्का मधुरापाके स्निग्धा तृडदाहनाशिनी ।।
   दोषघ्नी कटुका किञ्चितिक्ता स्त्रोतोविशोधनी ।। सु० सू० अ० 46 ।।

   धान्यकं मधुरं शीतं कषायं पित्तनाशनम् ।
   ज्वरकास तृषाच्छर्दि, कफहृारि च दीपनम् ।। रा० नि०
   धान्यकं तुवरं स्निग्धम वृष्यं मूत्रलं लघुः ।
   तिक्तं कटुकमुष्णं च, दीपनं पाचनं स्मृत्तम् ।।
   ज्वरघ्नं रोचनं ग्राहि, स्वादुपाकि त्रिदोषनुत् ।। भा० प्र०

मण्डूकपर्णी

1. चरके (सू० अ० 4) वयः स्थापने महाकषाये तिक्तस्कन्धे च
   मण्डूकपर्णी पठयते । सुश्रुते तिक्तवर्गे मण्डूकपर्णी पठयते । सु० सू० अ० 42 ।।

2. रक्तपित्त हराण्याहुर्हृद्यानि सु लघूनि च ।
   कुष्ठमेह ज्वरश्वास कासारुचि हराणि च ।।
   कषायातु हिता पित्ते स्वादु पाक रसा हिमा । सु० सू० अ० 46

   मण्डुकपर्ण्या स्वरस प्रयोज्यः आयु प्रदान्यामयनाशनानि
   वलाग्निवर्ण स्वरवर्धनानि, मेध्यानि चैतानिरसायनानि ।। चरकः ।।

   व्राहम्यायुष्या हिमा मेध्या कषायातिक्तका लघुः ।
   स्वर्या स्मृतिप्रदा कुष्ठपाण्डु मेहास्त्रकासजित् ।। ध० नि०
   अपस्मारे–पयसा वा ब्राह्मीरसम् च० यि० 16 ।।
   उन्मादे–ब्राह्मी कुष्माण्डी स्वरसाः" चक्रदत्तः ।

हींग

1. चरके (सू० अ० 4) दीपनीये, संज्ञास्थापने, च महाकषाये
   तथा कटुकस्कन्धं हिगुङ्ग पष्यते, तथा सुश्रुते
   पिप्पल्यादौ, उषकादौ च गणे हिङ्गु पठ्यते " सु० सू० अ० 38 ।

2. हिङ्गु निर्यास छेदनीय दीपनी यानुलोमिक वात कफ प्रशमनानाम्" च० सू० 25"
   वातश्लेष्म विवन्धघ्नं कटूष्णां दीपनं लघु।
   हिङ्गु शूलप्रशमनं विद्यात् पाचनरोचनम्र ।। च० सू० अ० 27

   लघुष्णं पाचनं हिङ्गु दीपनं कफ वातजित् ।
   कटु स्निग्धं सरं तीक्ष्णं, शूलाजीर्ण विवन्धनुत् ।। सु० सू० 46 ।।

   हृद्यं हिगुङ्ग कटूष्णं च, कृमिवात कफापहम् ।
   विबन्धाध्मान शूलघ्नं, गुल्मोदर विनाशनम् ।

चोरक

1. सुश्रुते एलादिगणे चोरक पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।
   अष्ठागङ्गसंग्रहे एलादिगणे संज्ञास्थापने च चोरक पठ्यते ।।

2. चोरक मधुरतिक्त कटु पाके कटु लघुः ।
   तीक्ष्णो हृद्यो हिमोहन्ति, कुष्ठकण्डू कफानिलान् ।। भा० प्र०

1. चरके अर्शोघ्ने एवं अतिसारहर महाकाषाये गृञ्जनक पठ्यते ।।

गाजर (गर्जर)

2. रक्तातिसार शूलप्रवाहिका शोथनिग्रहणम्" च० यि० अ० 9 ।।
   गर्जरं मधुरं वृष्यं कषायं वातलं मतम् ।
   संग्राहि रक्तापित्तास्त्र, ग्रहणी कफ वातजित् ।। भा० प्र०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बीजं चोष्णं मतं चास्य, वृष्यं वै गर्भपात कृत् ।। रा० नि०

भूतकेशी

1. मांसी द्वयं कषायं च, वर्ण्य पित्तकफापहम् ।
रक्षोघ्नं च सुगन्धी स्यात्, वातघ्नं केश्यमुत्तमम् ।। रा० नि०

आकाश मांसी हिमा शोफ व्रण नाडीरुजापहा ।
लूतागर्दभ जालादि हारिणी, वर्णकारिणी ।। रा० नि०

नाडीहिंगु

1. नाडिहिंगु कटूष्णा च, कफ वातार्ति शान्तिकृत् ।
विष्ठाविवन्ध दोषघ्नी, आनाहामयहारिणी ।। रा० नि०
नाडिहिंगुस्तु कटुकस्तीक्ष्णो घ्राश्चापि दीपकः ।
कफ वातमलस्तम्भ मनोमोहाम नाशनः ।। नि० र०

मञ्जिष्ठा

1. चरके (सू० अ० 4) वर्ण्ये, विषघ्ने, ज्वरहरे च महाकषाये तथा सुश्रुते प्रियङ्ग्वादिगणे, पित्तसंशमने च गणे मञ्जिष्ठा
पठ्यते" सु० सू० अ० 38 ।

2. मञ्जिष्ठा मधुरा स्वादे कषायोष्णा गुरुस्तथा ।
कफोग्र व्रणमेहास्त्र विषनेत्रा मयाञ्जयेत् ।। ध० नि०
मञ्जिष्ठा तुवरा तिक्ता, वीर्योष्णा मधुरागुरुः ।
कर्णाक्षियोनिरोगनी, कफशोष विषापहाः ।
विसर्प मेहकुष्ठार्शो वर्ण रक्तातिसारजित् ।। कै० नि०

मदन

1. चरके (सू० अ० 1) एकोनविंशत्ति फलिनीषु वमन द्रव्येषु च मदनफलं पठ्यते, वमने आस्थापनोपगे
अनुवासनोपगे च मदनं पठयते ।। च० सू० अ० 25 ।।
सुश्रुते आरग्वधादौ, मुष्ककादो च गणे च मदनं पठ्यते' सु० सू० अ० 38 ।।

2. राठको वृतपत्रोऽथ कंटकी पर्वतादिषु ।
विटपी मदनं तस्य, फलं रेखाफलं स्मृतम् ।। शिवदत्त ।।

3. मदनोमधुरस्तिक्तो वीर्योष्णो लेखनोषणः ।
रुक्षोलघु प्रतिश्याम ज्वरविद्रधिकुष्ठहा ।।
गुल्मशोफ कफानाह व्रणहृद्धमनाग्रणिः ।। कै० नि०

वमनद्रव्याणां मदनफलानि श्रेष्ठतमः ।। च० क० अ० 1

प्रसारिणी

1. प्रसारिणी सुप्रसरा सारणी सरणी च सा ।
चारुपर्णी राजबला, भद्रपणी प्रतानिका ।। ध० नि० ।।
2. प्रसारिणी गुरुस्तिक्ता सरासन्धाकृन्मता ।
त्रिदोष शमनी वृष्या, तेजः कान्ति वलप्रदा ।। ध० नि०
वातव्याधौ क्वाथकल्क पयोभिर्वा वलादीनां पचेत् ।। चरक ।।
आमवाते–प्रसारण्याढक क्वाथे प्रस्थे गुडरसोनयोः ।। चक्रदत्तः ।।

कदम्ब

1. चरके शुक्रशोधन एवं वेदना स्थापन महाकषाये कदम्ब पठ्यते ।।
सुश्रुते न्यग्रोधादि एवं रोध्रादिगणं नीप पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38

2. कदम्वस्तु कषायः स्यात्, रसे शीतो गुणे ऽपि च ।
व्रणसंहणश्चापि कासदाह विषापहः ।। ध० नि०
कदम्वो मधुरः शीतः कषायो लवणो गुरुः ।
सरोविष्ठम्भ कृत् रुक्षः कफ स्तन्यानिलप्रदः ।। भा० प्र०

हरिद्रु

1. हारिद्रको महावृक्षः, कदंवाम फलौगिरौ ।
भवेद् वृत्रदलः पीतकाष्ठः श्रीमान् सुदारकः ।। शिवदत्तः

2. लघुः कफहरो वर्ण्यः, व्रणशोधन रोपणः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तिक्तो वल्यः कान्तिदश्च, त्वग्दोषांश्चविनाशयेत् ।। रा० नि०

जटामांसी

1. चरके संज्ञास्थापने, कण्डूघ्ने च महाकाषाये च जटामांसी पठ्यते । च० सू० अ० 4 ।।

2. सुरभिस्तु जटामांसी, कषाया कटुशीतला ।
कफ हृद्भूतदाहघ्नी, पित्तघ्नी मोदकान्तिकृत् ।। रा० नि०

मांसी तिक्ता कषाया च, मेध्याकान्ति वलप्रदाः ।
स्वाद्वी हिमात्रिदोषास्त्र दाहविसर्प कुष्ठनुत् ।। भा० प्र०

तगर

1. चरके (सू० अ० 4) शीतप्रशमने महाकषाये, तिक्तस्कन्धे च तथा
सुश्रुते एलादिगणे तगरं पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. तगरं स्यात् कषायोष्णं स्निग्धं दोषत्रयप्रणुत् ।
घक् शीर्ष विषदोषघ्नं भूतापस्मारनाशनम् ।। ध० नि०
तंगर कटुक तिक्त, कटुपाकं सरंलघु ।
स्निग्धोष्णां तुवरं भूतमदापस्मार नाशनम् ।। कै० नि० ।।
विषचक्षुः शिरोरोग रक्तदोषत्रयापहम् ।।

भृंगराज

1. चरके कास अधिकारे भृंगराज पठ्यते ।।

2. मार्कवः कटुतिक्तो रुक्षोष्णो ऽक्षि शिरोर्त्तिनुत् ।
कफ वातहरोदन्त्यः त्वच्यकेश्योरसायनः ।।
हन्तिकास कृमिश्वास कुष्ठशोफामपाण्डुता ।। कै० नि०
भृंगराज समारव्यातः तिक्तोष्णो रुक्ष एवं च ।
कफ शोफाम पाण्डुत्वग् हृद्रोगविषनाशमः ।। ध० नि०

कुष्ठ

1. चरके (सू० अ० 4) लेखनीये, शुक्रशोधने आस्थापनोपगे, च
महाकषाये तथा सुश्रुते एलादिगणे कुष्ठं पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।

2. कुष्ठं कटूष्णं तिक्तं स्यात्, कफमारुत कुष्ठजित् ।
विसर्प विषकण्डूतिखर्मूददुघ्न कान्तिकृत् ।। रा० नि०
कुष्ठं तिक्तं कटुस्वादु लघूष्णं शुक्रलं जयेत् ।
वातास्त्र विसर्प कुष्ठ कास कफानिलान् ।। कै० नि० ।।
कुष्ठं वातहराभ्यगोपयोगिनाम् ।। च० सू० अ० 25 ।।

पुष्करमूल

1. चरके (सू० अ० 4) श्वासहरे हिक्कानिग्रहणे च महाकषाये पुष्पकरमूलं पठ्यते ।।

2. पुष्पकरमूलं हिक्काश्वास कास पार्श्वशूलहराणाम् ।। च० सू० अ० 25
पुष्करं कटु तिक्तोष्णां, कफवात ज्वरापहम् ।
श्वासरोचक कासघ्नं, शोफघ्नं पाण्डुनाशनम् ।। रा० नि०

पौष्करं कटुकं तिक्तमुष्णं वातकफ ज्वरान् ।
हन्तिकासा रुचिश्वासान्, रुचिश्वासान् विशेषात् पार्श्वशूलनुत् ।। भा० प्र०

सहदेवी

1. सहदेवी दण्डोत्पला विषम ज्वरनाशिनी ।
सहदेवी द्विधा प्रोक्ता, श्वेता नीला च पुष्पतः ।।
द्वयं चैकान्तरं हन्ति, भक्षणात् धारणादपि ।
निद्राकरा घृताशीर्षे नीलासिध्मविनाशिनी ।। शोठल
सहदेवी शिफावव्द्वा श्वेतसूत्रेण कन्यया ।
निहन्ति दक्षिणेवाहौ, ज्वरभूतग्रहादिकान् ।। वैद्यमनोरमा ।।

अरण्यजीरक

1. वनजीरः कटुः शीतो व्रणहा ऽऽध्मान नाशनः । रा० नि०
अरण्य जीरकं चोष्णां, तुवरं कटुकं मतम्

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्तम्भ वातकफहं चैव, व्रणंचैव विनाशयेत् ।। नि० र०

दमनक

1. दमनस्तुवरस्तिक्तो, ह्यो वृष्यः सुगन्धिकः ।
ग्रहणात् विषकुष्ठास्त्र, क्लेदकण्डूत्रिदोषजित् ।। भा० प्र०

दमनः स्याद्रसे तिक्तो विषघ्नो भूतदोषनुत् ।
त्रिदोषशमनो हृद्यः, कण्डूकुष्ठापहस्मृतः ।। ध० नि०

रास्ना

1. रास्ना तु त्रिविधा प्रोक्ता, मूलंपत्रं तृणं तथा ।
अथ रास्ना भृंगपत्रा, पाषाणादो प्रजायते ।।
श्रेयो मूलदलौ श्रष्ठौ तृणरास्नातुमध्यमा ।। रा० नि०

2. रास्ना तिक्तोष्णा गुर्वीस्यात्, विषवातास्त्रकासजित् ।
शोफवातोदर श्लेष्मशमनी, आमस्यपाचनी ।। ध० नि०

रास्ना गुरुश्च तिक्तोष्णा, विषवातास्त्र कासजित् ।
शोफ कम्पोदर श्लेष्म शमनी पाचनी च सा ।। रा० नि०

शोथ श्वास समीरास्त्र, वातशूलोदरापहा ।
कासज्वर विषाशीति, वातिकामयसिघ्महृत् ।। भा० प्र०
रास्नावातहराणाम् ।। चरक सू0 35 ।।

गोरखमुण्डी

1. मुण्डितिका कटुः पाके वीर्योष्णामधुरालघुः ।
मेध्यागण्डापचीकृच्छ्र, कृमिपित्र्तार्तिपाण्डुनुत् ।। म० नि०

मुण्डिका कटुतिक्तास्यात्, अनिलास्त्रविनाशिनी ।
आमारुचिऽन्यपस्मार, गण्डश्लीक्षपदनाशिनी ।। ध० नि०

2. वातरक्ते मुण्डितिका चूर्ण मधुःसर्पि समायुतम् ।
छिन्नाक्वाथं पिवन् हन्ति, वातरक्तं सुदुस्तरम् ।। चक्रदत्तः
अपचीगण्डमालादौ अलम्बुषा स्वरसं पिवेत् ।।

क्षवक

1. चरके शिरोविरेचनोपग गणे, कटुकस्कन्धे एवं सुश्रुते सुरसादिगणे क्षवकः पठ्यते ।
छिक्कनी कटुका रुच्या तीक्ष्णोष्णा वह्निपित्तकृत् ।
वातरक्तहरीकुष्ठ, कृमिवात कफापहः । भा० प्र०

2. क्षुत्कारी श्वास कासास्टग्विषघ्नी वामनी मता । शोठल ।
क्षवकं कृमिलं तेषु, स्वादुपाकं स पिच्छलम् ।
विष्यन्दि वातलं नातिपित्तश्लेष्मकरं मतम् ।। सु० सू० अ० 46 ।

चित्रक

1. चरके (सू० अ० 4) लेखनीये भेदनीये, दीपनीये, अर्शोघ्ने, तृप्तिघ्ने,
शूलप्रशमने महाकषाये कटुकस्कन्धे च, तथा सुश्रुते आरग्वधादौ
वरुणादौ, मुष्ककादौ, पिप्पल्यादौ, आमल्यक्यादौ च गणे चित्रक पठ्यते सु० सू० अ० 38।

2. चित्रकोऽग्निसमयके कटुकः कफशोजित् ।
वातोदरार्शो ग्रहणी कृमि पाण्डु विनाशनः ।। ध० नि० ।
चित्रक वातश्लेष्म हराणि, कफ शोफहरो लघुः सुश्रुत ।।
चित्रकमूलं दीपनीय गुदशोफहराणाम् ।। चरक ।।
अतिसारे तक्रपित्वा स चित्रकम् ।।
ग्रहण्यां चित्रक क्वाथ कल्काभ्यां ग्रहणीघ्नं श्रृतं हविः ।। चक्रदत्तः

विडङ्ग

1. चरके (सू० अ० 2) शिरोविरेचन द्रव्येषु तथा (सू० अ० 4) तृप्तिघ्ने,
कृमिघ्ने, कुष्ठघ्ने च महाकषाये विडङ्ग पठयते ।। सुश्रेते सुरसादी, पिप्पल्यादी च गणे विडगङ्ग पथ्यते ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. विडङ्ग कृमिघ्नानां " च० सू० अ० 25 ।।
रुक्षोष्णां कटुकं पाके, लघु वात कफापहम् ।
ईषत्तिक्तं विषान् हन्ति, विडंगं कृमिनाशनम् ।। ध० नि०
विडंगं कटु रुक्षणा च, लघुर्वात कफार्तिनुत् ।
अग्निमांन्द्यारुचि भ्रान्ति. कृमिदोष विनाशिनी ।। रा० नि० ।।

3. कृमिकुष्ठे पानाहार विधाने प्रसेचने,
धूपने प्रदेहे च कृमिनाशनं विडङ्गम् च ।। "चरक"

1. वृंहणीयमहृद्यं च मधूक कुसुमं गुरुः ।
वातपित्तोपशमनं फलं तस्योपदिश्यते ।। सु० सू० अ० 46 ।

मधूक (महुआ)
वृंहणीय महृद्यं च, मधूक कुसुमं गुरुः।
वात पित्तोप शमनं, फलं तस्योप दिश्यते ।। सु० सू० अ० 46 ।।
मधूक पुष्पं मधुरं शीतलं गुरु वृंहणम् ।
बलशुक्रकरं प्रोक्त, वातपित्तविनाशनम् ।।
फलं शीतं गुरु स्वादु, शुक्रलं वातपित्तनुत् ।
अहृद्यं हन्ति तृष्णास्त्र, दाहश्वासक्षतक्षयान् ।। भा० प्र०

बकुल
1. चरके आसवयोनि फलवर्गेषु च बकुलपठ्यते, सुश्रुते कषायर्को वकुल पठ्यते ।
2. मधुरं च कषायं च, स्निग्धं संग्राहिबाकुलम् ।
स्थिरीकरं च दन्तानां, विशदं तत्फलं गुरु ।। ध० नि०
सुगन्धि विशदं हृद्यं बाकुलम् ।।
मधुरंञ्च कषायञ्च स्निग्धं संग्राहिबाकुलम् ।। सु० सू० अ० 46 ।।

चलदन्ते तु गण्डूषो बकुलत्वक् कृतो हितः ।। चक्रदत्त ।।

लोध्र
1. चरके (सू० अ० 4) संधानीये, पुरीषसंग्रहणीये, शोणितास्थापने, च महाकषाये तथा सुश्रुते लोध्रादौ, अम्बष्ठादौ, न्यग्रोधदौ च गणे रोध्र पठ्यते । सु० सू० अ० 38 ।।

2. लोध्रः शीतः कषायश्च, हन्तितृष्धाम रोचकम् ।
विषविध्वंसनप्रोक्तो रुक्षोग्राही कफापहः ।।
लोध्र युग्मं कषायं तु, शीतं वातकफास्त्रजित् ।
चक्षुष्यं विषहृत् तत्र विशिष्ठो वल्करोध्रकः ।। ध० नि० ।।
3. श्वेतप्रदरे– न्यग्रोधत्वक् कषायेण लोध्रकल्कं तथापिवेत् ।। चरकः ।।

तिन्दुक
1. चरके (सू० अ० 4) उदर्दप्रशमन महाकषाये तथा सुश्रुते न्यग्रोधादिगणे तिन्दुक पठ्यते ।

2. तिन्दुकं कफपित्तघ्नं कषायं मधुरं लघुः ।। चरक सू० अ० 21
स्यादामं तिन्दुकं ग्राहि वातलं शीतलं लघु ।
पक्वं पित्त प्रमेहास्त्र श्लेष्मघ्नं मधुरं गुरुः ।। भा० प्र०
3. सर्व अतिसारे तिन्दुक त्वचमाहाय काश्मरीपंत्रवेष्ठितम् । हारीत
अग्निदग्धे तिन्दुकस्य कषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् । शिशूनांहिक्कासु भावमिश्रः ।
जम्बुकतिन्दुकानाञ्च पुष्पाणि च फलानिच । घृतेनमधुना लीढ्वावंगसेनः ।।

पीलु
1. चरके शिरोविरेचन द्रव्येषु विरेचन द्रव्येषु च तथा विरेचनोपगे ज्वरहरे च महाकषाये, पीलु पठ्यते" सुश्रुते शिरोविरेचन द्रव्येषु पीलुः पुष्पं पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. रक्तपित्तहरः पीलुः व फल कटुविपाकी च ।
अर्शोघ्नं वस्तिशमनं सस्नेहं कफवातजित् ।।
पीलुजस्तु रसः स्वादुः गुल्मार्शोघ्नस्तु तीक्ष्णकः ।। ध० नि०
तीक्ष्णोष्णं कटुकं पीलु, सस्नेहं कफ वातजित् ।। सु० सू० अ० 46 ।।

जाति
1. चरके (सू० अ० 4) कुष्ठघ्ने, महाकषाये सुश्रुते पित्तनाशने च जाति–मल्लिका पठ्यते ।। सु० सू० अ० 46 ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. जातीयुगं तिक्तमुष्णं तुवरं लघुदोषजित् ।
शिरोऽक्षि मुखदन्तार्ति, विषकुष्ठानिलास्त्रजित् ।। भा० प्र०
पूतिकर्णे—जातीपत्र रसे तैले विपक्वं पूतिकर्णजित् ।। भा० प्र०

यूथिका

1. यूथिका युगलं स्वादु, शिशिरं शर्करार्तिनुत् ।
पित्तदाह तृषाहारि, नानात्वग् दोषनाशनम् ।।
सर्वासां यूथिकानां तु, रसवीर्यादिसाम्यता । रा० नि०
मधुरं तुवरं हृद्यं पित्रघ्नं कफवातलम् ।
व्रणास्त्र मुखदन्ताक्षि, शिरोरोगविषापहम् ।। भा० प्र०
मल्लिका कटुका तिक्ता, लघुष्णा शुक्रला हरेत् । कै० नि०

पारिजात

1. प्राजक्तः पारिजातश्च, हारश्रृङ्गरपुष्पकः ।
नाल कुंकुमको राग पुष्पी, च खरपत्रकः ।। नि० स०

2. तत्पत्रं पित्तरोगघ्नं, कर्णव्याधिविनाशनम् ।। भा० प्र० ।।

मुष्कक

1. सुश्रुते मुष्ककादिगणे च मोक्षक पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38

2. मोक्षकः कटुकस्तिक्तो, ग्राहयष्ण कफवातहृत् ।
विषमेदोगुल्मकण्डू, बस्तिरुक् कृमिशुक्रनुत् ।। भा० प्र०

3. क्षारश्रेष्ठः क्षारवृक्षो द्विविधः श्वेत कृष्णकः भा० प्र०

कुटज

1. चरके वमनद्रव्येषु (सू० अ० 2) तथा अर्शोघ्ने, कण्डूघ्ने, स्तन्यशोधने, आस्थापनोपगे च महाकषाये, (सू० अ० 4) कुटजः पठ्यते ।। सुश्रुते आरग्वधादो, पिप्पल्यादौ, (इन्द्रयव) हरिद्रादौ (कुटजवीज) वृहत्यादौ (कुटजफलं लाक्षादौ च गणे तथा उर्ध्व भागहर द्रव्युषु कुटजः पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. कुटजत्वक् श्लेष्मपित्त रक्तसंग्राहिको पशोषणानाम् ।। चरकः ।
कुटजः कटुको रुक्षो दीपनस्तुवरोहिमः ।
अर्शोऽतिसार पित्तास्त्र, कफ तृष्णामकुष्ठजित् ।। भा० प्र०
तत्पुष्पं शीतलं तिक्तं, कषायं लघुदीपनम् ।
वातलं कफ पित्तास्त्र कुष्ठातीसारजन्तुजित् ।। कै० नि०
शक्राहवाः कटुतीक्ष्णोष्णा स्त्रिदोषघ्नाश्च दीपनाः ।
रक्तार्शस्यितिसारं च घ्नन्ति शूलं कृमींस्तथा ।। ध० नि०
इन्द्रयव त्रिदोषघ्नः संग्राही शीतल कटुः ।
ज्वरातिसार रक्तार्शः कृमि विसर्प कुष्ठनुत् ।। भा० नि० ।।

3. सर्वातिसारान् श्योनाक कुटजत्वक् प्रयोगः शारगङ्र्धरः ।

सप्तपर्ण

1. चरके (सू० अ० 4) कुष्ठघ्ने, उदर्दप्रशमने, च महाकषाये तथा तिक्तस्कन्ध कषायस्कन्धे शिरोविरेचन द्रव्येषु च सपृपर्णः पठ्यते । सुश्रुते (सू० अ० 38) आरग्वधादौ, लाक्षादौ च गणे तथा अधोभाग द्रव्येषु सपृपर्ण (सपृच्छद क्षीरं) पठ्यते सु० सू० अ० 38 ।

2. सपृपर्णो गुच्छपुष्पो वहुत्वक् शाल्मलीच्छदः । शिवदत्त ।।

3. त्रिदोषशमनो हृद्यः सुरभिर्दीपन सरः ।
शूल गुल्मकृमीन् कुष्ठं, हन्तिशाल्मलिपत्रकः ।। ध० नि०
सपृपर्णो व्रणश्लेष्म वात कुष्ठास्त्र जन्तुजित् ।
दीपनः श्वास गुल्मघ्नः, स्निग्धोष्णा स्तुवरोसरः ।।
कुष्ठं जीर्णज्वरं श्वासं गुल्मं च ग्रहणीं तथा ।
प्रवाहिकां स रक्तां च, वातरक्तं विनाशयेत् ।। भा० प्र०

करवीर (कनेर)

1. चरके (सू० अ० 4) कुष्ठघ्ने महाकषाये, तिक्तस्कन्धे, च करवीरः पठयते तथा सुश्रुते लाक्षादिवर्गे शिरोविरेचन द्रव्येषु च करवीरः पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. करवीरः कटुस्तिक्तो वीर्ये चोष्णो ज्वरापहः ।
चक्षुष्य कुष्ठकण्डूघ्न, प्रलेयाद्विषमन्यथा ।। ध० नि० ।।
करवीर द्वयं तिक्तं कषायं कटुकं च तत् ।
व्रणलाघव कृन्नेत्र कोपकुष्ठव्रणापहम् ।।
वीर्योष्णां कृमिकण्डूघ्नं, भक्षितं विषवन्मतम् ।। भा० प्र० ।।

करमद्रक (करौंदा)

1. करमर्दद्वयं चाम्लं गुरुतृषापहम् ।
उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं, रक्तपित्तकफ प्रदम् ।। भा० प्र०
तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्तसमीरजित् ।

अर्क

1. चरके (सू० अ० 4) भेदनीये, स्वदोपगे वमनोपगे च महाकषाये तथा सुश्रुते अर्कादिगणे अधोभागहरे च गणे अर्कः पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।
2. क्षीरमर्कस्य विज्ञेयं, वमने स विरेचने । च० सू० अ० 1 ।
अर्कस्तिक्तो भवेदुष्णः शोधनः परमस्मृतः ।
कण्डूव्रणहरो हन्ति जन्तुसंतति मुद्धताम् ।। ध० नि०
अर्कद्वयं सरं वात कुष्ठ कण्डूविषव्रणान् ।
निहन्ति प्लीहगुल्मार्शः श्लेष्मोदर शकृत्क्रिमीन् ।।
क्षीरमर्कस्य तिक्तोष्णां स्निग्धं सलवणं लघु ।
कुष्ठगुल्मोदरहरं श्रेष्ठ मेतद्धिरेचनम् ।। भा० प्र०

सारिवा (अनन्तमुल)

1. चरके (सू० अ० 4) स्तन्यशोधने, पुरीषसंग्रहणीये, ज्वरहरे, दाहप्रशमने, च महाकषाये मधुरस्कन्धे गोपवल्ली नाम्ना तथा सुश्रुते विदारिगन्धादौ, सारिवादौ वल्लीपञ्चमूले च गणे सारिवा पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. सारिवा दाडिमीपत्रा श्वेतरेखांकितच्छदा ।
दुग्धगर्भा शिंविफला, तूलिनीकृष्णवल्लरी ।। शिवदत्तः

3. सारिवा द्वे तु मधुरे पित्तवातास्त्रनाशने ।
कण्डू कुष्ठज्वरहरे मेहदुर्गन्धिनाशने ।। ध० नि०
सारिवा युगलं स्वादु, स्निग्धं शुक्रकरं गुरु ।
अग्निमान्द्यारुचिश्वास कासामविषनाशनम् ।।
दोषत्रयास्त्रप्रदर ज्वरातीसार नाशनम् ।। भा० प्र०
छेदनं मूत्रकृत्वल्पं परं वृष्यं रसायनम् ।।
अनन्ता संग्राहक रक्तपित्त प्रशमनानाम् ।। च० अ० अ० 25

सारिवा कृष्ण

1. सारिवा जम्बूपत्रा दुग्धगर्भा वल्ली स्व नाम प्रसिद्धा कृष्णसारिवाः ।। डल्हणः ।

2. सारिवा द्वे मधुरे, कफवातास्त्रनाशने ।
कुष्ठ कण्डू ज्वरहरे, मेहदुर्गन्धिनाशने ।। ध० नि०

जीवन्ती

1. चरके (सू० अ० 4) जीवनीये महाकषाये, मधुरस्कन्धे तथा सुश्रुते काकोल्यादिगणे जीवन्ती पठ्यते । सु० सू० अ० 38 ।

2. चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी, जीवन्ती मधुरा हिमाः । ध० नि०
जीवन्ती मधुरा शीता, रक्तपित्त निलापहा ।
क्षय दाह ज्वरान् हन्ति, कफवीर्य विवर्धिनी ।। रा० नि०
जीवन्ती मधुरा शीता, सु स्निग्धा ग्राहिणी लघुः ।
चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी, बल्यावृष्या रसायनी ।। कै० नि० ।।

मेषश्रृगुङी

1. सुश्रुते वरुणादिगणे एवं सालसारादिगणे मेषश्रृगङी पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. मेषश्रृगुङी रसे तिक्ता, वातला श्वासकासहृत् ।
रुक्षापाके कटुः पित्रव्रण श्लेष्माक्षिशूलनुत् ।
मेषश्रृङ्गी फलंतिक्तं कुष्ठ मेहकफः प्रणुत ।। भा० प्र०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मूर्वा

1. चरके (सू० अ० 4) तृप्तिघ्ने, स्तन्यशोधन महाकषाये, वि० अ० 8) तिक्तस्कन्धे तथा सुश्रुते आरग्वधादिगणे, पटोलादिगणे एवं पित्तसंशमन वर्गे च मूर्वा पठ्यते । सु० सू० अ० 38 ।
2. मूर्वा सरागुरुः स्वादुस्तिक्ता पित्तास्रमेहनुत् ।
   त्रिदोष तृष्णाहृद्रोग कण्डू कुष्ठ ज्वरापहा ।।

कपीलु (कुचला)

1. कुपीलु शीतलं तिक्तं, वातलं मदकृल्लघु ।
   परं व्यथाहरं ग्राहि, कफ पित्तास्रनाशनम् ।। भा० प्र०
   कारस्करः कटूष्णश्च, तिक्तकुष्ठविनाशनः ।
   वातामयास्रकंडूति कफरमार्श व्रणापहः ।। रा० नि०

कतक (निर्मली)

1. कतकस्य फलं नेत्र्यं जलनिर्मल तारकम् ।
   वातश्लेष्महरं शीतं, मधुरं तुवरं गुरुः ।। भा० प्र० ।।

किराततिक्त

1. चरके (सू० अ० 1) स्तन्यशोधने, तृष्णानिग्रहणे च महाकषाये तथा तिक्तस्कन्धे च किराततिक्तः पठ्यते ।।
   सुश्रुते आरग्वधादि गणे किराततिक्त पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. किरातको रसे तिक्तः, सरः शीतो लघुस्तथा ।
   श्लेष्मपित्तास्र शोफार्शः कास तृष्णाज्वरापहः ।। ध० नि०
   किरातक सारको रुक्षः शीतलस्तिक्तको लघुः ।
   सन्निपात ज्वरश्वास, कफ पित्तास्रदाहनुत् ।।
   कास शोथ तृषाकुष्ठ ज्वर व्रण कृमिप्रणुत् ।। भा० प्र०

त्रायमाण

1. चरके (वि० अ० 8) तिक्तस्कन्धे तथा सुश्रुते लाक्षादिगणे च त्रयमाण पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।
2. त्रायन्ती कफ पित्तास्र गुल्मज्वरहरामता ।
   उष्णा कटुकषाया च सूतिकाशूलनाशिनी ।।
   रक्तपित्तभ्रमच्छर्दि विषघ्नी तिक्तवल्कला ।। ध० नि०
   त्रायन्ती तुवरातिक्ता सरापित्तकफापहा ।
   ज्वरहृद्रोग गुल्मार्शः भ्रमशूल विषप्रणुत् ।। भा० प्र० ।।

श्लेष्मातक

1. चरके (सू० अ० 4) विषघ्ने महाकषाये श्लेष्मातक पठ्यते ।।

2. मधुरस्तुवरस्तिक्तः केश्यश्च कफ पित्तहृत् ।
   फलमामं तु विष्ठाम्भि रुक्षपित्त कफास्रजित् ।।
   तत्पक्वं मधुरं स्निग्धं, श्लेष्मलं शीतलं गुरुः ।। भा० प्र०

अधःपुष्पी

1. अधः पुष्पी च चक्षुष्या, मूढगर्भापकर्षिणी ।। शोठलः ।।

गाजवान (गोजिह्वा)

1. गोजिह्वा तुवरा तिक्ता स्वादुपाक रसा हिमा ।
   वातला ग्राहिणी हृद्या, कफ पित्त हरालघुः ।। कै० नि०

त्रिवृत

1. चरके (सू० अ० 4) भेदनीये महाकषाये तथा सुश्रुते श्यामादिगणे अधोभागहरे च गणे त्रिवृता पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. त्रिवृता कटुरुष्णा च, कृमिश्लेष्मोदरज्वरान् ।
   शोफ पाण्डवामय प्लीहान्, हन्ति श्रेष्ठाः विरेचने ।। ध० नि०
   त्रिवृदुष्णा कटुस्तिक्ता रुक्षा स्वाद्वी विरेचनी ।
   कषाया कटुका पाके, वातला कफ पित्तहा ।। कै० नि०
   मूलं तु द्विविधं तस्याः श्यामं चारुणमेव च ।
   तयोर्मुख्यतरं विद्ध मूलं यदरुणप्रभम् ।।
   सुकुमारे शिशौ वृद्धे मृदुकोष्ठे च तच्छुभम् ।। च० क० अ० 1 ।।
   त्रिवृत सुख विरेचनानाम् ।। चरक ।।

वृद्धदारुक

1. सुश्रुते अधोभागहरे गणे छत्रलान्त्री पठ्यते ।। सु० सू० अ० 39 ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. त्रिकोणकाण्डा सु वहुप्रताना फलेषुपीता कुसुमेषु रक्ता ।
पत्रैः स दुग्धैः मृदूरोमवद्भि, ताम्बूलतुल्यैर्धनमूलकन्दैः ।। अष्ठागङ्संग्रह

3. वृद्दारुः कटुतिक्तः कषायोष्णे रसायनम् ।
शुक्रायुर्वलमेधाग्नि स्वरकान्तिकरसरः ।।
शोथामवात वातास्त्र व्रणमेह कफापहः ।। कै० नि०

शंखपुष्पी

1. कल्क प्रयोज्यः खलु शंखङ्पुष्पाः ।।
मेध्याविशेषेण च शङ्खपुष्पी च.अ. 1

2. शखङ्पुष्पी सरामेध्या वृष्याभानसरोगहृत् ।
रसायनी कषायोष्णा, स्मृतिकान्ति वलप्रदाः ।।
दोषापस्मार भूताश्री, कुष्ठ कृमिविषप्रणुत् । भा० प्र०
शंखपुष्पी सरास्वर्या, कटुस्तिक्ता रसायनी ।
अनुष्णा वर्णमेधग्निवलायुः कान्तिदाहरेत् ।। कै० नि०

कृष्णबीज

1. रेचनं श्यामबीजं स्याच्छोथोर विनाशनम् ।
ज्वरे पुरीष सगे च, दारुणे शिरसोगदे ।।
उदावर्ते तथा ऽऽनाहे वुधैरेतत्प्रयुज्यते ।। आ० नि० ।

आखुकर्णी

1. आखुकर्णी कटुस्तिक्ता कषाया शीतलालघुः ।
विपाके कटुका, मूत्रकफामय कृमिप्रणुत् ।।
रसवन्धकरी नेत्र्या रसायनी अथशूलनुत् ।
ज्वरं कृमिं व्रणं चाखुविषं चैव विनाशयेत् ।। नि० र०
गर्भप्रदयोगे मूषिकर्णी पठ्यते ।। गदनिग्रह ।।

आकाशवल्ली

1. आकाशवल्ली कटुका मधुरा पित्तनाशिनी ।
वृष्यारसायनी वल्या, दिब्यौषधिः परास्मृता ।। रा० नि० ।।

कण्टकारी

1. चरके (सू० अ० 4) कण्ठ्ये, हिक्कानिग्रहणे, कासहरे, शोथहरे, शीतप्रशमने, अगङ्मर्दप्रशमने च महाकषाये तथा सुश्रुते बृहत्यादिगणे वरु णदिगणे, लघुपञ्चमूले च गणे कण्टकारी पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. कण्टकारी सरातिक्ता कटुका दीपनी लघु : ।
रुक्षोष्णा पाचनी कास श्वासज्वर कफानिलान् ।।
निहन्ती पीनसं पार्श्व पीडाकृमिहृदयामयान् ।
तस्याफल कटु रसे पाके च कटुकंचवेत् ।।
शुक्रस्य रेचन भेदि तिक्तं पित्ताग्निकृल्लघु ।
हन्यात् कफमरुत्कण्डू कासभेद : कृमिज्वरान् ।।

बृहती

1. चरके (सू० अ० 4) कण्ठये, हिक्कानिग्रहणे, शोथहरे, अङ्गमर्दप्रशमने च महाकषाये तथा सुश्रुते बृहत्यादिगणे, लघुपञ्चमूले च गणे बृहती पठ्यते । सु० सू० अ० 38 ।।

2. बृहती कटुका तिक्ता, सौष्णावात कफापहा ।
दीपनी पाचनी हृद्या, ग्राहिणी ज्वरकुष्ठनुत् ।
श्वासास्यमलवैरस्य कासारोचक शूलनुत् ।। कै० नि० ।।

काकमाची

1. चरके तिक्तस्कन्धे काकमाची पठ्यते । च० वि० अ० 8 ।।

2. त्रिदोष शमनी वृष्या काकमाची रसायनी ।
नात्युष्णाशीतवीर्या च भेदनी कुष्ठनाशिनी । च० सू अ० 27 ।।

ईषतिक्तं त्रिदोषघ्नं शाकं कटु सतीनजम् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नात्युष्णा शीतं कुष्ठघ्न काकमाच्यास्तु तद्विषम् सु० सू० अ० 46 ।।
काकमाची कटुस्तिक्ता सरोष्णा कफनाशिनी ।
शूलार्शः शोफदोषघ्नी, कुष्ठकण्डूतिहारिणी ।। रा० नि० ।।

अवश्वगन्धा

1. चरके (सू० अ० 4) बृहणीये, वल्ये च महाकषाये तथा (वि० अ० 8) मधुरस्कन्धे अश्वगन्धा पठ्यते ।।

2. अश्वगन्धा ऽ निलश्लेष्म शोथ श्वित्रक्षयापहा ।
बल्यारसायनी तिक्ता, कषायोष्णाऽतिशुक्रला ।। भा० प्र० ।।
अश्वगन्धा कषायोष्णा, तिक्ता वृष्यारसायनम् ।
वलपुष्ठिप्रदाहन्ति, कफकासानिलव्रणान् ।।
शोफ कण्डूविषश्वित्र कृमिश्वास क्षतक्षयान् ।। कै० नि० ।।

धतूर

1. धतूरः कटुरुष्णाश्च क्रान्तिकारी व्रणार्तिनुत् ।
त्वग्दोषखर्जूर कण्डूति, ज्वरहारी भ्रमप्रदः ।। ध० नि० ।।
धत्तूरो मदमूर्च्छाकृत् कफघ्नो वन्हिपित्तकृत् ।। रा० व० नि० ।।
धुस्तरो मदवर्णाग्नि वातकृज्ज्वरकुष्ठनुत् ।
कषायोमधुरस्तिक्तो यूकालिक्षविनाशक ।। भा० प्र० ।।

पारषीक

1. पारसीकयवानी तु यवानी सद्यशी गुण ।
विशेषात्पाचनीरुच्या ग्राहिणीमादिनीगुरुः ।। भा० प्र० ।।

2. यवानी चतुर्विधा यमानी, वनयमानी, पारसीक एवं अजमोदा भेदेन च ।।

ताम्रपर्ण

1. तमाखू पित्तलक्षीक्ष्णा श्चोष्णो वस्तिविशोधनः ।
मदकृद्भ्रादामकस्तित्तक्तो द्यष्ठिमान्धकरः सरः ।।
वामक कटुकरुच्यों वातस्यानुविलोयकः ।
कफ कास श्वासकोष्ठ वातकृमीञ्जयेत् ।। भा० नि०
हिक्काकफं कंठरोगं वातं गुल्मं च पीनसम् ।
ल्पीहांजंतुश्चामशूलं उदरस्थंरुजं जयेत् ।। नि० र०

कटुवीरा

1. कटुवीरा ऽग्गिजननी वलासघ्नी च दाहिनी ।
हन्त्यजीर्ण विसूचीञ्च व्रणं ल्किन्नं सुदारुणम् ।
तन्द्रामोहं प्रलापंच, स्वरभेदमरोचकम् ।।
नरं लुप्तधरं क्षीणं सन्निपाता निपीडितम् ।। आत्रेय संहिता ।।

कुटकी

1. चरके (सू० अ० 4) लेखनीये, भेदनीये, स्तन्यशोधने च महाकषाये ।
तिक्तस्कन्धे च, तथा सुश्रुते पिप्पल्यादिगणे, पटोलादिगणे ।
मुस्तादिगणे च कटुरोहिणी पठ्यते । सु० सू० अ० 38 ।।

2. कवद्धी तु कटुका पाके तिक्ता रुक्षाहिमालघुः ।
भेदनी दीपनी हृद्या, कफपित्तज्वरापहाः ।।
प्रमेह श्वास कासास्त्र दाहकुष्ठ कृमिप्रणुत् ।। भा० प्र०

ब्राहमी

1. चरके (सू० अ० 4) वयःस्थापने महाकषाये, तिक्तस्कन्धे च मण्डूकपर्णी पठ्यते तथा सुश्रुते तिक्तवर्गे मण्डूकपर्णी पठ्यते ।।

2. मण्डूकपर्ण्याः स्वर सः प्रयोज्यः । आयुः प्रदान्यामयनाशनानिः ।
बलाग्निवर्ण स्वरवर्धनानि, मेध्यानि चैतानिरसायनानि ।। च० चि० अ० 1 ।।

ब्राह्मी हिमासरातिक्ता लघुर्मेध्या च शीतला ।
कषायामधुरा स्वादुपाका युष्या रसायनी ।।
स्वर्या स्मृतिप्रदा कुष्ठपाण्डुमेहास्त्रकासजित् ।। भा० प्र०

श्योनाक

1. चरके (सू०अ० 4) अनुवासनोपगे, पुरीषसंग्रहणीये, शोथहरे, शीतप्रशमने च महाकषाये तथा कषायस्कन्धे श्योनाकपठ्यते । सुश्रुते अम्बठादौ, बृहत्यञ्चमूले च गणे श्योनाकः पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. टिण्टुकः शिशिरस्तिक्तों बस्तिरोगहरः परः ।
पित्तश्लेष्माभवातातिसार कासारूचीर्जयेत् ।। ध. नि.

श्योनाक कटुकः पाके कषायस्तिक्तकोहिमः ।
संग्राही दीपनः कास श्लेष्मापित्तामवातजित् कै. नि."

वमनद्रव्याणां मदनफलानि श्रेष्ठतम ।। च० क० 9

प्रसारिणी

1. प्रसारिणी सुप्रसरा सारणी सरणी च सा ।
चारुपर्णी राजबला, भद्रपर्णी प्रतानिका ।। ध० नि० ।।

2. प्रसारिणी गुरुस्तिक्ता सरासन्धान्कृन्मता ।
त्तिदोष शमनी वृष्या, तेजः कान्तिवलप्रदा ।। ध० नि० ।।

वातव्याधौ क्वाथकल्क पयोभिर्वा वलादीयं षचेत् ।। चरक ।।

आमवाते–प्रक्ष्यरण्या 7 कक्वाथे प्रस्ये गुडरसोनयोः ।। चनुदत्त ।।

कदम्ब

2. कदम्वस्तु कषायः स्यात् रसे श्रीतो गुणे ङपि च ।
व्रणसंहणश्चापि कासदाह विषापहः ।। ध० नि० ।।

कदम्वो मधुरः शीतः कषायो लवणो गुरुः ।
सरोविष्ठम्भ कृत रुक्षः स्तन्यानिलप्रदः ।। भा० प्र०

1 .चरके शुकुशोधन एवं वेदनास्थापन महाकषाये कदम्प पष्यते ।
सुश्रुते न्यग्रोधादि एवं रोघ्रादिगणे नीच पस्यते ।।
सु० सु० अ० 38

हारीद्र

1. हारिद्रको महावृक्षः, कदंवामफलौगिरौ ।
भवद्दे वृत्तदलः पीतकोष्ठः श्रीमान् सुदारकः ।। शिवदत्तः ।।

2. लघुः कफहरो वर्ण्यः व्रणशोधन रोपणः ।
तिक्तो वल्यः कान्तिदश्च, त्वग्दोषांश्चविनाशयेत् ।। रा० नि० ।।

जटामांसी

2. सुरभिस्तु जरामांसी, कषाया कटुशीतला ।
कफ हयदूत दाहघ्नी, पित्तघ्नी मोदकान्तिकृत् ।। रा० मि० ।।

मांसी तिक्ता कषाया च, मेध्याकात्तिवलप्रदाः ।
स्वाछी हिमात्तिदोषास्त्त दाहविसर्ण कुष्ठनुत् ।। भा० प्र० ।।

1. चरके संज्ञास्थापने, कण्डूघ्ने च महाकषाये च जटामांसी पस्यते । च० स० अ० 8 ।

त़गर

1. चरके (सू० अ ० 8) शीतप्रशमने महाकषोय, तिक्तस्कन्धे च तथा सुश्रते एलादिगणे तगरं पस्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. तगरं स्यात् कषायोष्णां स्निग्धं दोषत्तयप्रणुत् ।
ध्याक् शीर्ष विषदोषघ्नं भूतापस्मार नाशनम् ।। ध० नि० ।।

तगरं कटुके तिक्त, कटुपाकं सरं लघु ।
स्निग्घोष्णं तुवरं भूतमदायस्मारनाशनम् ।। कै० नि० ।।
विषचक्षुः शिरोरोग रक्त दोष त्तयापहम् ।।

भृंगराज

1. चरके कास अधिकारे मृंगराज पस्यते ।।

2. मार्कवः कटु तिक्तो रुक्षोष्णो ङसि शिरोर्त्तिनुत् ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कफ वातहरोदत्यः त्वचकेश्ग्णे रसायनः ।।
हन्तिकास कृमिश्वास कुष्ठशोफाम पाण्डुता ।। कै० नि० ।।

भृंगराज समाख्यातः तिक्तोष्णो रुक्षएवच ।
कफ शोफाम पाण्डुत्वग् ह्यद्रोगविषनाशनः ।। ध० नि० ।।

कुष्ठ

1. चरके (सू० अ० 4) लेखनीये, शुक्रशोधने आस्यापनापगे, च महाकषाये तथा सुश्रुते एकलादिगणे कुष्ठ पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

पुष्करमूल

1. चरके (सू0 अ0 4) श्वासहरे हिक्फानिग्रहणे च महाकषाये पुष्करमूल पस्यते ।।

2. पुष्करमूलं हिक्काश्वास कास पार्श्वशूलहराणाम् ।। च० सू० अ० 25 ।।

पुष्पकरं कटु तिक्तोष्णां, कफवात ज्वारापहम् ।
श्वासारोचक कासघ्नं, शोफघ्न पाण्डुनाशनम् ।। रा० नि० ।।

पोष्करं कटुक तिक्ताग्रष्णा वातकफ ज्वरान् ।
हन्तिका सारुचिश्वासान्, विशेषत् पार्श्वशूलनुत् ।। भा० प्र० ।।

सहदेवी

1. सहदेवी दण्डोत्पला विषम ज्वर नाशिनी ।
सहदेवी छिधा प्रोक्ता, श्वेता नीला च पुष्पतः ।।

छयं चैकान्तरं हन्ति, भक्षणात् धारणादपि ।
निद्राकारा घृताशीर्षे नीलासिघ्मविनाशिनी ।। शोठल ।।

सहदेवी शिफा वछा श्वेतसत्रोण कन्यया ।
निहन्ति दक्षिणेवाहौ, ज्वर भूतग्रहादिकान् ।। वैद्यमनोरमा ।।

अरण्यजीरक

1. वनजीरः कटुः शीतो व्रणहा ध्मान नाशनः । रा० नि० ।

अरण्य जीरकं चोष्णा, तुवरंकटुकं मलम् ।
स्तम्भ वातकफहं चैन, व्रणंचैव विनाशयेत् ।। नि० र० ।।

दमन

1. दमनस्तुवरस्तिक्तो, ह्मघोवृष्यः सुगन्धकः ।
ग्रहणात् विष कुष्ठास्त्रा, कणेदकाण्डू त्रिदोषजित् ।। भा० प्र० ।।

दमनः स्याद्रसे तिक्तो विषघ्नो भूतदोषनुत् ।
त्रिदोषशमनो ह्मघः कण्डू कुष्ठापहस्मृत ।। ध० नि० ।।

रास्ना

1. रास्ना तु त्रिविधा प्रक्ता, मूलपत्रं तृणं तथा ।
अथ रास्ना भृंगपत्रा, पाषाणादौ प्रजायते ।।
श्रेयो मूलदलौ श्रष्ठौ तृणरास्नातुमध्यमा ।। रा० नि० ।।

2. रास्ना तिक्तोष्णा गुर्वोस्मात् विषवतास्त्रकासजित् ।
शोफवातोदर श्लेस्मशमनी, आमस्यपाचनी ।। ध० नि० ।।

रास्ना गुरुश्च तिक्तोष्णा, विषवातास्त्र कासजित् ।
शोफ कम्पोदर श्लेक शमनी पाचनी च सा ।। रा० नि० ।।

शोथ श्वास समीरास्त्र, वातशूलोदरापहा ।
कासज्वर विषशीति, वातिकामयासिध्महृत ।। भा० प्र० रास्नावातहराणाम् ।। चरक सू० 35 ।।

1. मुण्डितिका कटुः पाके वीर्योष्णामधु रालघुः ।
मेध्यागण्डापची कृच्छ, कृमिपित्तार्तिपाण्डुनुत ।। रा० नि० ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुण्डिका कटुतिक्रतास्मात्, अनिलास्त्राविनाशिनी ।
आमारुचिघ्न्यपस्मार, गण्डश जी स्पदनाशिनी ।। ध० नि० ।।

2. वात रक्ते मुण्डिलिका चूर्ण मधुः सार्ये समायुतम् ।
छिन्नाक्वाथं पिवन् हन्ति, वातरक्तंसदु स्वरस ।। चक्रदत्त : अपचीगण्डमावादौ अवम्बुषा स्वरसं पिवेत् ।।

2. क्षुत्कारी श्वास कासास्कृविषघ्नी वामनी मता । शोठल ।

क्षवकं कृमिल तेषु, स्वादुपाकं स पिच्छजम् ।
विष्यन्दि वालणं नातिपित्तश्लेष्मकरं मतम् ।। सु० सू० अ० 46 ।।

1. चरके शिरोविरेचनोपग गणे, कटुकस्कन्धे एवं सुश्रुते सुरसादिगणे क्षवकः पस्यते ।

2. छिक्कनी कटुका रुच्या तीक्ष्णोष्णा वछिपित्तकृत ।
वातरक्तहरी कुष्ठ, कृमिवात कफापहः ।। भा० प्र० ।।

2. चित्रको ग्निसमयाके टुककः कफ शोफजित् ।
वातोदरार्शी ग्रहणी कृमि पाण्डु विनाशनः ।। ध० नि० ।

चित्रक वातश्लेष्म हराणि, कफ शोफ हरी लघुः ।। सुश्रत ।।

चित्रक मूत्रं दीपनयी गुदशोफहराणाम् ।। चरक ।।

अतिसारे त्वुं पित्वा सचित्रकम् ।।

ग्रहण्यां चित्रक क्वाम कल्काम्पां ग्रहणीघ्न श्रृत हवि ।। चक्रदत्त ।।

1. चरके (सू0 अ0 16) लेखनीये, भेदनीये, दीपनीये, अर्शोघ्ने, तृपिघ्ने, शूणप्रशमने महाकषाये कटुकस्कन्धे च, तथा सुश्रुते आरग्वधादो वरुणाद मुष्कफादौ, पिप्पल्पादौ, आमलपादौ च गणे चित्रक पस्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

1. चरके (सू0 अ0 2) शिरोविरेचन ड्व्येषु तथा (सू० अ० 16) तृपिघ्ने, कृमिघ्ने, कुष्ठघ्ने च महाकषाये विडङ्ग पस्यते सुश्रते सुरसादौ, पिप्ल्पादौ च गणे विडग पठ्यते ।।

2. विडङ्ग कृमिघ्नानां ।। च0 सू0 अ0 25 ।।

रुक्षोष्णां कटुकं पाके, लघु वात कफापहम् ।
ईषत्तिक्तं विषान् हन्ति, विडंगं कृमिनाशनम् ।। ध0 नि0 ।।

विडंगा कटु रुष्णा च, लघुर्वात कफार्तिनुत् ।
अग्निमान्धारुचि भ्रान्ति कृमिदोष विनाशिनी ।। रा0 नि0 ।।

3. कृमिकुष्ठे पानाहार विधाने प्रसेचने ।
धूपने प्रदेहे च कृमिनाशन विङ्ग् च ।। चरक ।।

1. चरके आसवयोनि फलवर्गेषु च बकुलपस्यते, सुश्रुते कषायर्को वकुल पस्यते ।

2. मधुरं च कषायं च, स्निग्धं संग्रहिबाकुलम् ।
स्थिरीकरं च दन्तानां, विशदं तत्फलं गुरु ।। ध0 नि0
सुगन्धि विशदं ह्यं बाकुलम् ।।
मधुरंञ्च कषायञ्च स्निग्धं संग्रहिबाकुलम् ।। सु0 सू0 अ0 46 ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चलदन्ते तु गण्डूषो बकुलत्वक् कृतो हितः ।। चक्रदन्त"

1. चरके (सू० अ० 4) संघानीये, पुरीषसंग्रहणी ये, शोणितस्थापने च महाकषाये तथा सुश्रुते लोधादौ, अम्बष्ठादा, न्यग्रोधादौ च गणे रोध्र पुष्प । सु० सू० अ० 38 ।।

2. लोध्रः शीतः कषायश्च, हन्तितृष्णाम रोचक् ।
विषविध्वंसनप्रोक्तो सक्षोग्राही कफायः ।।
लोध्र युग्मं कषायं तु, शीतं वातकफास्त्रजित्।
चक्षुष्य विषहृत् तत्र विशिष्ठो वल्करोध्रकः ।। ध० नि० ।।

3. श्वेतप्रदरे– न्यग्रोधत्वक् कषायेण लोध्रकल्कं तथा पिवेत् ।। चरक"

2. तिन्दुकं कफपित्रघ्नं कषायं मधुरं लघुः ।। चरक सू० अ० 29

स्यादामं तिन्दुकं ग्राहि वातलं शीतलं लघु ।
पक्वं पित्त प्रमेहास्त्र श्लेष्मघ्नं मधुरे गुरुः ।। भा० प्र०

3. सर्व अतिसारे तिन्दुक त्वचमाहृत्य काश्मरीपत्रवेठितम् । हरित
अग्निदग्धे तिश्रदुकस्म कषायैर्वर्ग धृतमिश्रैः प्रलेपयेत् । भावमिश्र ।।
शिशूनांहिक्कासु–
जम्बुकतिन्दुकामाञ्च पुष्पाणि च ृानिच ।
धृतेन मधुना लीठ्वा ..,....वंगसेन ।।

1. चरके शिरोविरेचन द्रव्येषु विरेचनद्रव्येषु च तथा विरेचनोयगे ज्वरहरे च महाकषाये पीलु पष्यते " सुश्रुते शिरोविरेचनप द्रव्येषु पीलुः पुष्पं पठ्यते ।। सु० सू० अ० 39 ।।

2. रक्तपित्तहरः पीलुः फलं कटुविपाकी च।
अर्शोघ्नं वस्तिशमनं सस्नेहं कफवातजित् ।।
पीलुजस्तु रसः स्वादुः गुल्मार्शोघ्नस्तु तीक्ष्णकः ।। ध० मि०

तीक्ष्णोष्णं कटुकं पीलु, सस्नेहं कफवातजित् ।। सु० सू० अ० 46 ।।

2. जातीयुगं तिक्तमुष्णं तुवरं लघुदोषजित् ।
शिरोदक्षि मुखदन्तार्ति, विषकुष्ठानिलास्त्रजित् ।। भा० प्र०
पूतिकर्णे–जातीपत्र रसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ।।भा० प्र०

1. चरके–(सू० अ० 4) कुष्ठघ्ने, महाकषाये सुश्रुते पित्तनाशने च जाति–मल्लिका पठ्यते ।। सु० अ० 46।

मल्लिका कटुका तिक्ता, लघूष्ण शुकुला हरेत् ।

1. यूथिका युगलं स्वादु, शिशिरं शर्करार्तिनुत् ।
पित्तदाह सृषाहारि, नानात्वग् दोषनाशमम् ।।
सर्वासां यूथिकानां तु, रसवीर्यादिसाम्यता । रा० नि०
मधुरं तुवरं हृद्यं पित्त्घ्नं कफवातलम् ।
व्रणास्त्र मुखदन्तासि, शिरोरोगविषापहम् ।। भा०प्र०

1. प्राजक्तः पारिजातश्च, हारश्रृङ्गरपुष्पकः ।
नालकुंकुमको रागपुष्पी, च खरपत्रकः नि० स०

2. तत्पत्रं पित्तरोगघ्नं, कर्णव्याधिविनाशनम् ।। भा० प्र०"

1. सुश्रुते मुष्ककादिगणे च मोक्षक पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. मोक्षकः कटुकस्तिक्तो, ग्राह्युष्ण कफवातहृत् ।

3. क्षारश्रेष्ठः क्षारवृक्षो छिविधः श्वेत कृष्णकः ।। भा० प्र०

1. चरके वमनद्रव्येषु (सू०अ० 2) तथा अर्शोघ्ने, कण्डूघ्ने, स्तन्यशोधने ।
आस्थापनोपगे च महाकषाये, (सू०अ04) कुटजः पष्यते ।। सुश्रुते–
आरग्वधादौ, पिप्पल्याठौ, (इन्द्रयव) हरिद्रादौ (कुटजवीज) वृहत्यादौ
(कुटजफल) लाक्षादौ चगणे तथा उर्ध्वभागहर द्रव्येषु कुटजः पष्यते।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. कुटजत्वक् श्लेष्मपित्त रक्त संग्राहिकोपशोषणानाम् ।। चरक ।
कुटजः कटुको रुक्षो दीपनस्तुवरोहिमः ।
अर्शो अतिसार पित्तस्त्र, कफ तृष्णामकुष्ठाजित् ।। भा० प्र०

तत्पुष्पं शीतलं तिक्तं, कषायं, कषायं लघुदीपन् ।
वातलं कफ पित्तस्त्र कुष्ठातीसारजन्तुजित ।। कै० नि० ।

शक्राहवाः कटुतीक्ष्णोष्ण स्तिदोषघ्नाश्च दीपनाः ।
स्क्तार्शास्यतिसारं च घ्नन्ति शूलं कृमीस्तथा ।। ध० नि० ।

इन्द्रयव त्रिदोषघ्नंः संग्राही शीतल कटुः
ज्वणतिसारं रक्तार्शः कृमिविसर्प कुष्ठनुत।। म० नि० ।।

3. सर्वातिसारान्र श्योनाक कुटजत्वक् प्रयोगः शारङ्धर! ।

1. चरके (सू०अ० 4) कुष्ठघ्ने, उदर्दप्रशमने, च महाकषाये तथा तिक्तास्कन्ध कषायस्कन्धे शिरोविरेचन द्रव्येषु च सपृपर्णः पस्यते । सुश्रुते (सू०अ० 38) आएवधादौ, लक्षादौ च गणे तथा अघोभागद्रव्येषु सपूर्ण–(सपृच्छद क्षीर) पस्यते सु०सू०अ039

2. सपृपर्णो गुच्छपुष्पो वहुत्वक् शाल्मलीच्छदः । शिवदत्त ।।

3. त्रिदोषशमनो ह्यः सुरभिर्दीपन सनः ।
शूलगुल्मकृमीन् कुश्ठं, हन्तिशाल्मलिपत्रकः ।। ध० नि०
सपृपर्णो व्रणश्लेष्मः स्निगघोष्णास्तुवरोसरः ।।

कुष्ठं जीर्णज्वरं श्वासं गुल्मु च ग्रहणी तथा ।
प्रवाहिकां स रक्तां च, वातरक्तं विनाशयेत् ।। भा० प्र०

मुख्ययोगः– सपृपर्णसत्वादिवटी, सपृच्छदादिक्वाथ, मलेरिया संहारवटी ।

1. चरके (सू०अ04) कुष्ठघ्ने महाकषाये, तिक्तस्कन्धे, च करवीरः पष्यते तथा सुश्रुते लाक्षादिवर्गे शिरोविरेचन द्रव्येषु च करवीरः पष्यते ।। सु०सू०अ० 38 ।।

2. करवरीः कटुस्तिक्तो वीर्ये चगेष्णो ज्वरायः ।
चक्षुष्य कुष्ठकण्डूघ्न, प्रलेयाद्विषमन्यथा ।। ध०नि० ।।

करवीरछयं तिक्तं कषायं कटुकं च तत् ।
व्रणलाघव कृन्नेत्र कोपकुष्ठव्रणापहम् ।।
वीर्योष्ण कृमिकण्डूघ्नं, भक्षितं विषवन्मतम् ।। भा० प्रा० ।।

1. करमर्दछयं चाम्लं गुरुतृषायहम् ।
उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं, रक्तपित्तकृप्रदम् ।। भा० प्र०
तत्पक्वं मधुरं रुच्यं, लघुपित्तसमीरजित् ।।

1. चरके (सू० अ० 4) भेदनीये, स्वेदोपगे वमनोपगे च महाकषाये तथा सुश्रुते अर्कादिगणे अघोभागहरे च गणे अर्कः पष्यते।। सु० सू० अ० 39 ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. क्षीरमर्कस्य विज्ञेयं, वमने स विरेचने । च० सू० अ० 1 ।

अर्कस्तिक्तो भवेदुष्णः शोधनः परमस्मृतः ।
कण्डूव्रणहरो हन्ति जन्तुसंतति मुद्धताम्र ।। ध० नि०
अर्कछय सरं वात कुष्ठ कण्डूविषप्रणान् ।
निहन्ति प्लीहगुल्मार्शः श्लेष्मोदर शकृत्क्रिमीन ।।
क्षीरमर्कस्य तिक्तोष्णां स्निग्धं सलवणं लघु ।
कुष्ठगुल्मोदरहरं श्रेष्ठ मेलद्धिरेचनम् ।। भा० प्र० ।।

1. चरके (सू०अ० 4) स्तन्यशोधने, पुरीषसंग्रहणीये, ज्वरहरे, दाहप्रशमने, च महाकषाये मधुरस्कन्धे गोपवल्ली नाम्ना तथा सुश्रुते विदारिगन्धादौ, सारिवादौ वल्लीपञ्चमूले च गणे सारिवा पठ्यते सु०सू०अ० 38 ।।

2. साारिवा दाडिमीपत्रा श्वेतरेखांकितच्छदा ।
दुग्धगर्भा शिंविफला, तूलिनीकृष्णावल्लरी ।। शिवदत्तः

3. सारिवा छे तु मधुरे पित्तवातास्त्रनाशने ।
कण्डूकुष्ठ ज्वरहरे मेहदुर्गन्धि नाशने ।। ध०नि० ।

सारिवा युगले स्वादु, स्निग्धं शुक्रकरं गुरु ।
अग्निमतान्धारुचिश्वास कासामविषनामनम् ।।
दोषत्रमास्त्र प्रदर ज्वरातीसार नाशनम् ।। भा० प्र०

छेदनं मूत्रकृत्वल्मं परं वृष्यं रसायनम् ।।
अनन्त संग्राहक रक्त पित्त प्रशमनानाम् ।। च० अ० अ० 25

1. सारिवा जम्बूपत्रा दुग्धगर्भा वल्ली स्वनाम प्रसिद्द कृष्णसारिवाः ।। डल्हण ।

2. सारिवा द्वे मधुरे क फवातास्त्रनाशने ।
कुष्ठकण्डू ज्वरहरे, मेहदुर्गन्धिनाशने ।। ध० नि०

1. चरके (सू० अ०अ० 4) जीवतीये महाकषाये, मधुरस्कन्धे तथा सुश्रुते काकोल्यादिगणे जीवन्ती पठ्यते [सु० सू० अ० 38

2. चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी, जीवन्ती मधुराहिम । ध० नि०

जीवन्ती मधुराशीता, रक्तायिन्तनिलापहा ।
क्षयदाह ज्वरान् हन्ति, कफवीर्य विवर्धिनी ।। रा०नि०

जीवन्ती मधुरा शीता, श्सु स्निग्धा ग्राहिणीलघुः ।
चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी, बल्यावृष्या रसायनी ।। कै० नि० ।।

रुक्षापाके कुटुः पित्रव्रण श्लेष्माक्षिशूलनुत् ।
मेषश्रृङ्गी फलंनिक्तं कुष्ठमेहकफः प्रणुत ।। भा० प्र०

1. सुश्रुते वरुणादिगणे एवं साल सारादिगणे मेष श्रृङ्गी पस्यते ।। सू० सू० अ० 39 ।।

2. मेषश्रृङ्गी रसे तिक्ता वातला श्वासकासहृत् ।

1. चरके (सू०अ० 4) तृपिघ्ने स्तन्यशोधन महाषाये, (वि०अ० 8) तिक्त– स्कन्धे तथा सुश्रुते आरग्वधादिगणे, मटोलादिगणे एवं पित्त संशमन वगे च मूर्वा पठ्यते । सु० सू० अ० 38 ।

2. मूर्वा सरागुरुः स्वादुस्तिक्ता पित्तस्त्रमेहनुत् ।
त्रिदोषतृष्णा हृद्रोग कण्डूकुष्ठ ज्वरापहा ।।

1. कुपीलु शीतिलं तिक्तं, वातलं मदकृल्लघु ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परं व्यथाहरं ग्राहि, कफ पित्तास्त्रनाशनम् ।। भा० प्र० ।

कारस्करः कटूष्णश्च, तिक्तकुष्ठविनाशनः ।
वातामयास्त्र कंडूति कफरमार्श व्रणामह ।। रा० नि० ।

1. कतकस्य फलं नेत्र्यं जलनिर्मल तारकम् ।
वातश्लेष्महरं शीतं, मधुरं तुवरं गुरुः ।। भा० प्र० ।।

1. चरके (सु० अ० 1) स्तन्यशोधने, तृष्णानिग्रहणे च महाकषाये तथा तिक्तस्कन्धे च किशततिक्तः पथ्यते ।। सुश्रुते आरग्वधादि गणे किराततिक्त पथ्यते ।। सु० सू०अ० 38 ।।

2. किरातको रसे तिक्तः सरः, सरः शीतो लघुस्तथा ।
श्लेष्मपित्तस्त्र शोफार्शः कास तृष्णा ज्वरायहः ।। ध०नि० ।।

किरातक सारको रुक्षः शीतलस्तिक्तको लघुः ।
सन्निपात ज्वरश्वास, कफ पित्तसत्र दाहनुत् ।।
कास शोथ तृषाकुष्ठ ज्वर व्रण कृमिप्रणुत ।। भा० प्र० ।।

1. चरके वि० अ० 8) तिक्तस्कन्धे तथा सुश्रुते लाक्षादिगणे च त्रायमाणपथ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. त्रायन्ती कफपित्तस्त्र गुल्मज्वरहरामता ।
उष्ण कटुकषाया च सूतिकाशूल नाशिनी ।।
रक्तापित्तश्रमच्छार्दि विषघ्नी तिक्तवल्कला ।। ध०नि०

त्रायन्ती तुवरातिक्ता सरापित्तकफापहा ।
ज्वरहृद्रोग गुल्मार्शः भ्रमशूल विषप्रणुत् ।। भा० प्रा०

1. चरके (सू० अ० 4) विषघ्ने महाकषाये श्लेस्मातक पस्यते ।।

2. मधुर स्तुवरस्तिक्तः केश्यश्च कफपित्तहृत् ।
फलमामं श्तु विष्ठाम्मि संक्षंपित्त कफास्त्राजित् ।।
सत्पक्कं मधुरं स्निग्धं, श्लेष्मलं शीतलं गुरु : ।। भा० प्र० ।।

अधः पुस्पी च चक्षुस्या, मूठगर्भापकर्षिणी ।। शो०ढलः ।

1. गोजिहवा तुवरा तिक्ता स्वादुपाक रसा हिमा ।
वातला ग्रहिणी हृद्या, कफपित्त हरालघु ।। कै० नि०

1. चरके (सू०अ० 4) भेदनीये महाकषाये तथा सुश्रुते श्यामादिगणे अधोभागहरे च गणे त्रिवृता पथ्यते ।। सू०सू०अ० 38

2. त्रिवृता कदुरुष्णा च, कृमिश्लेष्मोदरज्वरान् ।
शोफ पाण्डवामय प्लीहान् हन्ति श्रेष्ठा विरेचने ।। ध० नि०

त्रिवृदुषा कटुस्तिक्ता रुक्षा स्वाद्वीविरेचनी ।
कषाया कटु का पाके, वातला कफ पित्रहा ।। कै० नि०

मूलं तु द्विविधं तस्याः श्यामं चारुणमेव च ।
तयोर्मुख्यतरं विद्दिमूलं यदरुणप्रभम् ।।
सुकुमारे शिशो वृद्दे मृदुकोष्ठे च तुच्छुभम् ।। च० क० अ० 9 ।।
त्रिवत सुख विरेचनानाम्" चरक ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1. सुश्रुते अघोभग हरे गणे दत्रलान्ती पस्यतेग ।। सु० सू० अ० 37)

2. लिकाणकाण्डा सु वहुप्रताना फलेषुपीता कुसुमेषु रक्ता,
पत्रैः स दुग्धैः मृदुरोमवद्धि, ताम्बूल तुल्यैर्धनमूलकन्दैः ।। अष्ठाङ्गसंगह ।।

3. वृद्दारुः कटुतिक्त : कषायोष्णो रसापनम् ।
शुकापुर्वलमे घग्नि स्वरकान्ति करसरः ।।
शोथामवात वातास्त्र व्रणमेह कफापहः ।। कै० नि० ।।

1. कल्क प्रयोज्यः खलु शंङ्खपुष्प्याः ।।
मेध्या विशेषण च शङ्खपुश्पी ।। च० चि० अ० 9 ।।

2. शङ्खपुष्पी सरामेध्या वृष्या मानसरोगह्यत् ।
रसायनी कषायोष्णा, स्मृतिकान्ति वलप्रदाः ।।
दोषापस्मार भूताश्री, कुष्ठ कृमिविषप्रणुत् ।।भा० प्र० ।।

शंखपुष्पी सरास्वर्या, कटुस्तिक्ता रसायनी ।
अनुष्णा वर्ण मेथाग्नि वलायुः कात्रिदा हरेत् ।। कै० नि० ।।

1. रेचनं श्यामबीजं स्याच्छोथोरविनाशनम् ।
ज्वरे पुरीष संगे ख दासणे शिरसो गदे ।।
उदावर्ते तथा दनाहे वुधैरेतत् प्रयुज्यते ।। आ० वि० ।।

1. आशुकर्णी कटुस्तिक्ता कषाया शीतलालघुः ।
विपाके कटुका मूत्रकफामय कृमिप्रणुत् ।
ज्वरं कृमि व्रणं चाखुविषं चैव विनाशपेत् ।। मि० र० ।।
गर्भप्रदयोग मूषिकर्णी पस्यते ।। गदभिग्रह ।।

2. आकाशवल्ली कटुका मधुरा पित्तनाशिनी ।
वृष्यारसायनी वल्या, दिब्यौषधिः परास्मृताः ।। रा० नि० ।।

1. चरके (सू० अ० 4) कण्स्ये, हिक्कानिग्रहणे, कासहरे, शोथहरे, शीतप्रशमने, अङ्गमर्दप्रशमने च ? महाकषाये तथा सुश्रुते बृहत्यादिगणे वरुणादिगणे, लघुपश्चमले च गणे कारी पष्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

1. चरके (सू० अ० 4) कण्ठये, हिक्कानिग्रहणे, शोथहरे, अङ्गमर्दप्रशमने च महाकषाये तथा सुश्रुते वृहत्यादिगणे, लघुपश्चमूले च गणे वृहती पस्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2 कण्टकारी सरातिक्ता कटुका दीपनी लघुः ।
रूपक्षेष्णा पाचनी कास श्वासज्वर कफानिलान् ।।
निहन्ती पीनसं पार्श्व पीडाकृमिह्रदयामयान् ।
तस्याफल कटुरसे पाके च कटुकंचवेत् ।।
शुकुस्यं रेचनं भेदि तिक्तं पित्तम्निकृल्लघु ।
हन्यात् कफमरूत्कण्डू कासमेदः कृमिज्वरान् ।।

1 चरके (सू. अ. 4) कठष्ये, हिक्कानिग्रहणे, शोथहरे, अङ्गमर्द प्रशमने च महाकषाये तथा सुश्रुते वृहत्यादिगणे, लघुपञ्चमूले च गणे वृहतीपष्यते । सु. सू. अ. ।।

2 बृहती कटुका तिक्ता, सौष्ण वात कफापहा ।
दीपनी पाचनी ह्या, ग्रहिणी ज्वरकुष्ठनुत् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

श्वासास्यमलवैरस्य कासारोचक शूलनुत् ।। कै. मि. "

1 चरके तिक्त स्कन्धे काकमाची पठ्यते च. वि. अ. 8"

2 त्रिदोषशमनी वृष्या काकमाची रसायनी ।
नात्युष्णशीतवीर्या च भेदनी कुष्ठनाशिनी । च. सू. अ. 27
ईषत्तिक्तं त्रिदोषघ्नं शकं कटु सतीनजम् ।
नात्युष्ण शीतं कुष्ठघ्नं काकमाच्यास्तु त द्विधम् सु. सू. अ. 46
काकमाची कटुस्तिक्ता सरोष्ण कफ नाशिनी ।
शूलार्शः शोफदोषघ्नी, कुष्ठकण्डुतिहारिणी ।। रा. नि.

1 चरके (सू. अ. 4) वृहणीये, वल्ये च महाकषाये तथा (वि. अ. 8)
मधुरस्कन्धे अश्वगन्धा पठ्यते ।।

2 अश्वगन्धाऽनिलश्लेष्म शोथ श्वित्रक्षयापहा ।
बल्यारसायनी तिक्ता, कषायोष्णऽतिशुक्रला ।। भा. प्र. "

अश्वगन्धा कषायोष्ण, तिक्ता वृष्यारसायनम् ।
वलपुष्ठिप्रदाहन्ति, कफकासनिलव्रणान् ।।
शोफ कण्डू विषश्वित्र कृमिश्वास क्षत्तक्षयान् ।। कै. नि. "

1 धत्तरः कटुरूष्णश्च कान्तिकारी व्रणार्तिनुत् ।
त्वग्दोष खर्जूर कण्डूति, ज्वरहारी भ्रमप्रदः ।। ध. नि.

धत्तरो मदमूर्च्छाकृत् कफघ्नो वह्निपित्तकृत् ।।
रा. व. नि. ।।

धुस्तूरो मदवर्णाग्नि वातकृज्ज्वरकुष्ठनुत् ।
कषायोमधुरस्तिक्तो यूकालिक्षाविनाशक ।। भा. प्र.

1 पारसीकयवानी तु भवानी सद्यशी गुणः ।
विशेषात्पाचनीरुच्या ग्रहिणीमादिनीगुरूः ।। भा. प्र.

2 यवानी चतुर्विधा यमानी, वनयमानी, पारसीक एवं अजमोदा भेदेन च ।।

1 कटुवीराऽग्मिजननी बलासघ्नी च दाहिनी ।
हन्तयजीर्णं विसूचीञ्च व्रणं ल्किन्नं सुदारूणम् ।
तन्डामोहंप्रलायं ख्र स्वरभेदमरोचकम् ।।
नरं लुपृधरं शीणं सन्निपाता निपीडितम् ।।
"आत्रेय संहिता "

1 चरके (सू. अ. 4) लेखनीये, भेदनीये, रत्तन्पशोघने च महाकषाये ।
तिक्तस्कन्धे च, तथा सुश्रुते पिप्पल्यादिगणे, पटोलादिगणे ।
मुस्तादिगणे च कटुरोहिणी पठ्यते । सु. सू. अ. 38 ।।

2 कवटी तु कटुका पाके तिक्ता रूक्षहिमालघुः ।
भेदनी दीपनी हृद्या, कफपित्तज्वरापहा ः ।।
प्रमेह श्वास कासास्त्र दाहकुष्ठ कृमिप्रणुन् ।।
भा. प्र.

श्योनाक

1 चरके (सू. अ. 4) अनुवासनोपगे, पुरीषसंग्रहणीये, शोथहरे, शीतप्रशमने च महाकषाये तथा कषायस्कन्धे श्योनाकपठ्यते ।
सुश्रुते अम्बठादौ, बृहत्यञ्चमूले च गणे श्योनाकः पठयते ।।
सु. सू. अ. 38 ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2 टिण्टुकः शिशिरस्तिक्तो बस्तिरोगहरः परः ।
पित्तश्लेष्माभवातातिसार कासारूचीजयित् ।। ध. नि.

श्योनाक कटुकः पाके कषायस्तिक्तकोहिमः ।
संग्राही दीपनः कास श्लेष्मापित्तामवातजित् कै. नि. "

पाटला

1 चरके (सू. अ. 4) शोथहरे महाकषाये, तथा सुश्रुते आरग्वधादौ, महत्पञ्चम् ले गणे पाटला पठ्यते ।। सू. सू. अ. 38 ।

2 पाटलाऽरूचिशोथास्त्र श्वासतृड् छर्दि नाशिनी ।
नात्युष्णं तुवरं स्वादु, तत्पुष्पं कफवातनुत् ।।
पित्तातिसारदाहघ्नं फलं हिक्कास्त्रपित्तनुत् ।। ध० नि.

पाटला तुवराऽनुष्णा तिक्तादोषत्रयापहा
अरूचिश्वास शोथार्थ छर्दि हिध्मातृषापहा ।। कै० नि०

पुष्पं कषायं मधुरं हिमंहृद्य कफास्त्रनुत् ।। भा० प्र०

रोहीतक

1 रोहतको रोहितको रोहीदाडिमपुष्पकः ।
रोहीतक प्लीहघाती श्च्योरक्तमप्रसाधनः ।। भा० प्र०

तिल

1 स्निग्धोष्णो मधुरस्तिक्तः कषायकटुकस्तिलः ।
त्वच्यः केश्यश्च बल्यश्च, वातघ्नः कफ पित्तकृत् ।। च० सू० 26"

ईषत्कषायोमधुरः सतिक्तसांग्राहिकः पित्तकरस्तथोष्णः ।
तिलोविपाके मधुरोबलिष्ठ, स्निग्धोव्रणालेपनएवपथ्यः ।।
दन्त्योऽग्निजननोऽल्यमूत्रस्त्वच्योडथ केश्योऽनिलहागुरुश्च ।।
तिलेषु सर्वे ष्वसितः प्रधानो मध्यसिताहीनताराष्तयान्येः ।। सु० सू० अ० 46

बृ.गोक्षुर

1 शर्कराश्मरी मेहेषु, कृच्छ्रेषु प्रदरेऽपिच ।
रसायनप्रयोगेषु, महानेवगुणोत्तमः ।। शिवदत्तः"

आटरुषक

1 वृषपुष्पं......कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विपच्यते ।। च० सू० अ० 29 ।।

वृषागस्त्ययोपुष्पाणि तिक्तानि कटुविपाकानि क्षयकासापहानि च ।। सु० सू० अ० 46"

वासातिक्ता कटुःशीता, कासघ्नी रक्तपित्तजित् ।
कामलाकफपित्तास्त्र, ज्वर श्वास क्षयापहाः ।। रा० नि०

इक्षुरक

1 चरके शुक्रशोधन महाकषाये इक्षुरकः पठ्यते ।। च० सू० अ० 4 "

2 कोकिलाक्षस्तु मधुरः शीतःपित्ताश्मरिप्रणुत् ।
बृष्यकफहरो बल्यो, रूच्यसंतर्पण परः ।। रा० नि०

इक्षुरः शीतलोबृष्यो, मधुरः पिच्छलस्तथा ।
तिक्तोवातामशोफाश्म तृष्णारूचिनिलास्त्रजित् ।। "भा० प्र० "

निर्गुण्डी

1 चरके (सू० अ० 4) विषघ्ने, क्रिमिघ्ने च महाकषाये तथा सुश्रुते सुरसादिगणे निर्गुण्डी पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2 निर्गुण्डी कटुतिक्तोष्ण कृमिकुष्ठज्वरापहा ।
वातश्लेष्मप्रशमनी, प्लीहगुल्मापचीहरेत् ।। ध० नि० "

सिन्दुवारः कटुस्तिक्तः, कफवातक्षयपहः ।
कुष्ठ कण्डूतिशमनः शूलहृत्कासिसिद्धिदः ।।
कटूष्णानील निर्गुण्डी तिक्तारूक्षाऽस्त्र कासजित् । रा० नि०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रियङ्गु

1 चरके (सू० अ० 4) पुरीषसंग्रहणीये, मूत्रविरजनीये च गणे तथा सुश्रुते अज्जनादिगणे, प्रियङ्गवादिगणे च प्रियङ्गु पठ्यते ।।
सु० सू० अ० 38 "

गन्धप्रियङ्गु शोणित्तपित्तातियोगप्रशमनानाम् ।। च० सू० अ० 25 "

2 प्रियङ्गु शीतलातिक्ता मोहदाहविनाशिनी ।
ज्वर वान्तिहरा रक्तमुद्रितं च प्रशानयेत् ।। ध० नि ०

प्रिङ्गुः शितला तिक्ता दाह्यपितास्त्र दोषजित् ।
वाग्भ्रान्ति ज्वरहरा, वक्त्रजाड्यविनाशिनी ।। रा० नि ०

अग्निमन्थ

1 चरके (सू० अ० 4) अनुवासनोपगे, शोथहरे, शीतप्रशमने, च महाकषाये, तथा सुश्रुते वरूणादौ, वीरतर्वादौ, महत्पञ्चमूले च गणे तथा वातसंशमन च वर्गे अग्निमन्थः पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 "

तर्कारी कटुका तिक्ता, तयोष्णाऽनिलपाण्डुनुत् ।
शोथश्लेष्माग्निमाघामविवन्धाश्चविनाशयेत् ।। ध० नि०

तर्कारी कटुका तिक्ता, तुवरामधुराऽग्निदा ।
वीर्योष्ण हरतेवात कफश्वयथुपाण्डुताः ।।
अग्निमन्थो गुणौस्त द्वद्विशेषात्वातशोथहा ।। कै० नि०

भार्गी

अग्निमन्थःश्वयथुनुत्, कफवातहृत् "भा० प्र०"

1 सुश्रुते पिप्पल्यादिगणे भाङ्र्गी पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38

2 भाङ्र्गी तु कटु तिक्तोष्ण, कासश्वास विनाशिनी ।
शोफव्रण कृमिघ्नी च, दाहज्वर निवारिणी ।। रा० नि०

भार्गी रूक्षा कटुस्तिक्ता, रूच्योष्णम पाचिनीलघुः ।
दीपनी तुवरा गुल्म रक्तजिन्नाशयेद्ध्रुबम् ।।
शोथकास कफ श्वास पीनसज्वर मारूतान् ।। भा० प्र.०

गम्भारी

1 चरके (सू० अ० 4) विरेचनोपगे, दाहप्रशमने श्वयथुहरे च महाकषाये तथा सुश्रुते महत्पञ्चमूले, सारिवादिगणे च काश्मरीपठ्यते ।
"सु० सू० अ० 38"

काश्मरी कटुकातिक्ता गुरूष्ण कफ शोथनुत् ।
त्रिदोषविष दाहर्ति ज्वर तृष्णास्त्रदोषजित् ।। रा० नि०

श्रीपर्णी मधुरा तिक्ता, वीर्योष्णा तुवरागुरूः ।
दीपनी पाचिनी मेघ्या, भेदनी भ्रमशोषजित् ।।
दोष तृष्णाम शूलार्शो विषदाह ज्वरापहाः ।। कै० नि०

शाक

1 सुश्रुते सालसारादिगणे शाकः पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38

2 शाकः कषायः शिशिरो रक्तपित्तप्रस्यदनः ।
कुष्ठश्लेष्मानिलहरो गर्भसंघानस्यैर्थकृत् ।।
शाकपुष्पं प्रमेहघ्नं रूक्षं तुवरक्तिकम् ।
कफ पित्तहर बातकोपनं विशदं लघु ।। कै० नि ०

तुलसी

1 सुश्रुते सुरसादिगणे सुरसा पठ्यते" सु० सू० अ० 38 चरके सूत्रस्थाने च सुरसा पठ्यते ।

2 हिक्का कास विषश्वास पार्श्वशूल विनाशनः ।
पित्तकृत् पार्श्वशूलघ्नः सुरसः पूतिगन्धहा ।। च० सू० अ० 29

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कफानिल विषश्वास, कासदौर्गन्ध्य नाशनः ।
पित्तकृत् पार्श्वशूलघ्नः, सुरससमुदाहृतः ।। सु० सू० अ० 46"
तुलसी लघु रूष्णा च रूक्षा कफविनाशिनी ।
कृमिदोषं निहन्त्येषा, रूचिकृद्वह्निदीपनी ।। ध० नि०

तुलसी कटुका तिक्ता, हृद्योष्णदाहपित्तकृत ।
दीपनी कुष्ठ कृचछास्त्र पार्श्वरूक्कफवातजित् ।। "भा. प्र."

पूतिह्न (पोदीना)

1 पूतिहा कटु रूष्णाश्च, रोचनो दीपनस्तथा ।
हन्तिवातं कफंशूलं, बम्याध्मान कृमींस्तथा ।। नि० र.०"

द्रोणपुष्पी

1 चरके सू० अ० 29 एवं सुश्रुते च शाकवर्गे कुतुम्बक नाम्ना द्रोणपुष्पी पठ्यते । सु० सू० अ० 46 ।

द्रोणपुष्पी कटुः सोष्ण रुच्यावात कफापहा ।
अग्निमांद्यहर चैव, कामलाज्वरहारिणी ।। रा० नि०

पुनर्नवा

1 चरके (सू० अ०) स्वेदोपगे, अनुवासनोपगे, कासहरे, वयःस्थापने च महाकषाये तथा सुश्रुते खिदारिगन्धादौ च गणे पुनर्नवा पठ्यते ।। सु० सू० अ. 38
अपरा श्वेता पुनर्नवा इति कथ्यते ।।

2 पुनर्नवा भवेदुष्ण, तिक्ता रूक्षाकफापहा ।
स शोथपाण्डुहृद्रोग, कासोरः क्षतशूलनुत् ।। ध० नि०

रक्तापुनर्नवा तिक्ता सारिणी शोफनाशिनी ।
रक्तप्रदर दोषघ्नी, पाण्डुपित्तविमार्दिनी ।। "रा० नि०"

अपामार्ग

1 चरके (सू० अ० 4) शिरोविरेचन द्रब्युषु, कृमिघ्ने, शिरोविरेचनोपगे ।
वमनोपगे च महाकषाये, तथा सुश्रुते अर्कादिगणे अपामार्गपठ्यते ।। सु० सू० अ० 38

2 अपामार्गस्तु तिक्तोष्णः, कटुकः कफनाशनः ।
अर्शः कण्डू दरामघ्नो रक्त हृद्ग्राहि वान्ति कृत् ।। ध० नि०

अपामार्ग कटुस्तिक्तस्तीक्ष्णो दीपनः सरः ।
पाचनो रोचनश्छर्दि कफ भेदो निलापहः ।।
निहन्तीशूल हिघ्मार्शो दद्रूकण्डू दरापची ।। कै० नि०

चुक्र

1 चुक्रं स्यादम्लपत्रंतु लघूष्णं वातगुल्मनुत् ।
रुचिकृद्दीपनं पथ्य भीषत्पित्तकरं मतम् ।। रा० नि०

1 नाकुली तुबरा तिक्ता कटुकोष्णा विनाशयेत् ।
भोगिलूता व्रश्चिकाखु विषज्वर कृमिव्रणान् ।। भा० प्र०

ईश्वरी

2 धूम्रपत्रा रसे तिक्त शोथघ्नी कृमिनाशिनी ।
उष्ण कासहरा चैव, रुच्या दीपन कारिणी ।। रा० नि०

वास्तूक

1 दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्र वलप्रदम् ।
सरं प्लीहास्य पित्तार्शः, कृमिदोष त्रयापहम् ।। भा० प्र० "

पिप्पली

1 चरके (सू० अ० 2) शिरोविरेचन द्रब्येषु, वमनद्रब्येषु, तथा (सू० अ० 4) दीपनीये, तृप्तिघ्ने, हिक्का निग्रहणे, कासहरे, शूलप्रमशने च महाकषाये पिप्पली पठ्यते । सुश्रुते (सू० अ० 38) पिप्पाल्यादिगणे, तथा ऊर्ध्वभागहरे, शिरोविरेचने च गणे पिप्पली पठ्यते । सू० सू० अ 38 ।

2 श्लेष्मला मधुराचाद्रा, गुर्वीस्निग्धा च पिप्पली ।
सा शुष्का कफ वातघ्नी, कटूष्णा वृष्यसंप्रता ।। च० सू० अ० 29 ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तेषा गुर्वी स्वादुशीला पिप्पाल्याद्राकफावहा ।

शुष्का कफनिलघ्नी सा, वृष्या पित्तविरोधिनी ।। सु० स० अ० 46 ।।
पिप्पली मूलं दीपनीय पाचनीयानाह प्रशमनानाम् ।। च० सू० अ० 25 "

पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादु पाका रसायनी ।
अनुष्णा कटुका स्निग्धा, वातश्लेष्म हरी लघुः ।।
पिप्पली पाचिनी हन्ति, वातश्लेष्मोदर ज्वारान् ।
कुष्ठः प्रमेह गुल्मार्शः प्लीह शूलाम पारुतान् ।। भा० प्र०
आनाह प्लीह गुल्मघ्नं कृमिश्वास क्षयापहम् ।।

मरिच

1 चरके (सू० अ० 2) शिरोवरेचन द्रव्येषु, तथा (सू० अ० 4) दीपनीये, कृमिघ्ने, शूलप्रशमने च महाकषाये मरिचं पठ्यते । सुश्रुते पिप्पल्पादिगणे, त्र्यूषणगणे च मरिचे पठ्यते ।। सू० सू० अ० 38 ।।
2 मरिचं कटु तीक्ष्णोष्णं लघु श्लेष्मविनाशनम् ।
समीर कृमिहृद्रोहरं च रुचिकारकम् ।। च० सू० अ० 29 ।

कंकोल

1 कङ्कोल कटु तीक्ष्णोष्णं वक्र जाड्यहरंपरम् ।
दीपनं पाचनं रुच्यं कफवात निकृन्तनमू ।। रा० नि०

कङ्कोल्लकं कटुतिक्त कफापहम् ।
लघु तृष्णापहं वृष्यं, वक्रदौर्गन्ध्यनाशनम् ।। सु० स० अ० 46

चव्य

2 भवेच्चव्यं तु चविका कथिता सा तथोषणा ।
कणामूलगंणं चव्यं विशेषागुदजापहम् ।। भा० प्र०

नागवल्ली

1. ताम्बूल पत्रं तीक्ष्णेष्णं कटु पित्तप्रकोपणम् ।
सुगन्धिविशदं स्वर्य तिक्तं वातकफापहम्
स्त्रंसनं कटुकं पाके, कषायं वह्निदीपनम्।
वक्रकण्डू भलक्लेद दौर्गन्ध्यादि विनाशनम् ।। सु०स०अ० 46

नागवल्ली कटुस्तीक्ष तिक्ता पीनसवातजित् ।
कफ कासहरा रुच्या, दाहकृद्दीपनी परा ।। रा० नि०

जातीफल

1. जाती कोषोऽयम् – तिक्तां कटु कफापहम् ।
लघु तृष्णापहं वक्रक्लेद दौर्गिन्ध्यनाशनम्।। सु०सु०अ० 46

जातीफलं कषायोष्णां, कटु कष्ठामयार्तिजित् ।
बातातिसार मेहघ्नं, लघृ वृष्यं च दीपनम् ।। ध०नि०

जातीपत्रं लघुःस्वादुः कटूष्णा रुचिवर्णकृत् ।
कफ कास बमिश्वास, तृष्णाकृमि विषापहाः ।। भा०प०

कर्पूर

1. कर्पूरं कटु तिक्तं च, मधुरं शिशिरं विदुः ।
तृण्मेदो विषदोषघ्नं चक्षुष्यं मदकारकम् ।। ध० नि०

चीनकः कटुकस्तिक्तो, हृद्यः शीतकफापहः ।
कण्ठ दोषहरो मेध्यः, पाचनः कृमिनाशनः ।। रा० नि०

कर्पूरो मधुरस्तिक्तः, सुरभिः शीतलो लघुः।
चक्षुष्यो लेखनो वृष्यः, कफमेदो विषापहः ।।
दाहतृष्णास्य वेरस्य, मलदोर्गन्ध्यनाशनः ।। कै०नि०

त्वक् (दालचीनी)

1. सुश्रुत्ते एलादिगणे त्वक् पत्रकं पठ्यते ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कण्ठवक्ररुजोहन्ति, कृमिहृद्बस्ति शोधनम् ।। ध० नि०

त्वचं लघूष्णां कटुकं स्वादुत्तिक्तं च रुक्षकम् ।
पित्तलं कफवातघ्नं, कण्डुवामारुचिनाशनम् ।।
हृद्रोगवस्तिबात्तार्शः कृमिपीनसकासजित् ।। भा०प्र०

तेजपत्र

1. सुश्रुते एलादिगणे त्वक् पत्रकं च पठ्यते ।।

2. पत्रकं मधुरं किञ्चित्तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलंलघु।
निहन्ति कफवातार्शो हृल्लात्सारुचिपीनसान् ।। भा० प्र०

वन्दाक

1. चरके (स०अ० 4) मूत्रविरेचनीये महाकषाये तथा सुश्रुते
वीरतर्वादिगणे वृक्षादनी पठ्यते ।। सु० सू०अ० 38 ।

2. वृक्षादनी हिमातिक्ता कषाया मधुरा रसे ।
अश्मरी कफवातास्त्त रक्षो व्रणविषापहा ।। कै०नि० ।।

मङ्गल्य कफवातास्तत्र रक्षोव्रण विषापहः ।। भा० प्र०

अगुरु

1. चरके (सु०अ० 4) श्वासहरे, शीतप्रशमने, च महाकषाये ।
तिक्तस्कन्धे, शिरोविरेचन द्रव्येषु अगुरू पठ्यते ।।

सुश्रुते एलादिगणे सालासारादिगणे तथा श्लेष्म संशमने च अगुरु पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 39 ।

2. अगुरु – सारस्नेहातिक्त कटुकषाया दुष्ठव्रण शोधनाः
कृमि कफ कुष्ठा निलहराश्च ।। सु० सू० अ० 45

अगुरुष्णां कटु त्वच्यं, तिक्तं तीक्ष्णं च पित्तलम् ।
लघुकर्णाक्षिरोगघ्नं, शीतवातकफ प्रणुत् ।।
कृष्णां गुणाधिकं तत्तु लोहवद्धांरिमंजत्ति ।। भा० प्र०

चन्दन

1. चरके (सु० अ० 4) वर्ण्ये, कण्डूघ्ने, विषघ्ने, तृष्णानिग्रहणे, दाहप्रशमने, अङ्गमर्दप्रशमने च महाकषाये, तथा तिक्तस्कन्धे,
च तथा सुश्रुते सालसारादौ, पटोलादौ सारिवादौ, प्रियङ्गवादौ गुडूच्यादौ च गणे तथा पित्तसंशमनवर्गे च चन्दनं पठ्यते ।। ।। सु० सु०
अ० 38 ।।

2. श्रीखण्डं शीतलं स्वादु तिक्तं पित्त विनाशनम्।
रक्तप्रसादनं वृष्य, अन्तर्दाहापहारकम् ।।
पित्तास्त्र विषतृड्दाह कृमिघ्नं गुरुसक्षणम् ।। ध० नि०

भद्रश्रियं हिमातिक्तं, हृद्यमाह्लादनकंलघु ।
वर्ण्य पलासपित्तघ्नं दाहतृष्णाविषप्रणुत् ।। कै० नि०

चन्दनं दुर्गन्धहर दाहनिर्वापण लेपननाम् ।। च० सु० अ० 25

एरण्ड

1. चरके (स० अ० 4) भेदनीये, स्वेदोपगे, अङ्गमर्दप्रशमने च गणे तथा मधुरस्कन्धे, सुश्रुते (सु०अ० 38) विदारिगन्धादौगणे तथा अधोभागहरे च
गणे वातसंशमने च वर्गे च एरण्ड पठ्यते सु० स० अ० 39 ।

एरण्ड तैलं मधुरं गुरु श्लेष्माभिवर्धनम् ।
वातासृग्गुल्म हृदोग जीर्णज्वर हरं परम् ।। च० सू ०अ० 29 1

एरण्ड तैलं मधुरंमुष्णां तीक्ष्णं कटु–कषायानुरसं सूक्ष्मं स्त्रोतो विशोधनं त्वचं वृष्, मधुरविपाकं, वयः स्थापनं योनिशुक्र विशोधनं आरोग्यमेधा
कान्तिस्मृति बलकरं वातकफमधो भाग दोषहरं च ।। सु०स०अ० 45 ।

कफ पित्तानिलश्वास कास ब्रध्नाश्मनाशनः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कफ पित्तानिलश्वास कास ब्रध्नाश्मनाशनः ।
गुल्मप्लिपहोदरानाह कटिवस्ति शिरोरुजि ।
महेज्वराम वातास्त्र शूलशोथेषु शस्यत्ते ।। कै० नि० ।।

दन्ती

1. चरके (सू० अ० 1) षोडश मूलिनीषु दन्ती, द्रवन्ती, नागदन्ती" विरेचन द्रव्येषु तथा एकादश मूलासवेषु च दन्ती पठ्यतें" सू० अ० 25 ।। सुश्रुते श्यामादिगणे दन्ती पुत्रश्रेणी नाम्ना तथा विरेचनवर्गे दन्ती, द्रवन्ती पठ्यते ।। सु0 सू0 अ0 38, 39 ।

2. दन्ती द्रवन्तिका चोष्णा कटुपाकरसा लघुः ।
विकाशिनी सरातीक्ष्णा दीपनी पाचनी हरेत् ।।

कफपित्तोदरानाह शोथूल गुदाङ्कुरान् ।
विदाह कण्डूकुष्णास्त्र प्लीह गुल्माश्मरीकृमीन् ।। कै० नि० ।।

दन्ती, द्रवन्ती स्नेहास्तिक्त कटुकषाया अधोभागदोहषहरा ।
कृमि कुष्ठ कफानिलहरा दुष्ठशोधनाश्च ।। सु० सू० अ० 45 ।।

नागदन्ती कटुस्तिक्ता रुक्षावातकफा पहा।
गुल्मशूलो दर व्याधि, कुष्ठदोष निकृत्तनी ।। रा० नि० ।।

जयपाल

1. जैपालः कटु रुष्णाश्च कृमिहारि विरेचनः ।
दीपनः कफ वातघ्नो जलोदर विनाशनः ।। रा० नि० ।।

आमलकी

1. चरके (सू० अ०4) विरेचनोपगे, वायःस्थापने च महाकषाये, तथा सुश्रुते परुषकादौ, त्रिफलादिगणे च आमलकं पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. अम्ल स मधुरं तिक्तं कषायं कटुकं सरम् ।
चक्षुष्यं सर्वदोषघ्नं वृष्यमामलकी फलम् ।।

हन्ति वाले तदम्लत्वात्, पितं माधुर्य शैत्यतः ।
कफं रुक्ष कषापत्वात्, फलेभ्यो ङभ्याधिकं च तत् ।। सु० सू० अ० 6)

विद्यादामलके सर्वान् रसान् लवणवर्जितान् ।। चरक ।।

भूम्यामलकी

1. चरके (सू० अ० 5) कासहरे, श्वासहरे च महाकषाये तामलकी पक्ष्यते ।

2. भूधात्री तु कषायाऽम्ल पित्तमेह विनाशिनी ।
शिशिरा मूलरोगार्ति शमनी दाहनाशिनी ।। रा० नि०।।

तामलकी हिमातिक्ता, कषाया मधुरा लघुः ।
रोचनी पाण्डुपित्तास्त्र, कफ कुष्ठ विषापहा ।।
जेयचछ्वास तृषादाह हिध्याकास क्षतक्षयान् ।। कै० नि० ।।

स्नुही

1. सुश्रुते श्यामादिगणे तथा अधोभागहरे गणे स्नुक् महावृक्षञ्च ।। सु० सु० अ० 39 1

1. स्नुक्पयस्तीव्र विरेचनानाम् "च० सू० अ० 25" विद्यात् स्नुघहीक्षीरं विरेचने" ।। च० सू० अ० 9)

विरेचनां सर्वेषां सुधा तीक्ष्णतमा मता ।
संघातं हिमिनत्याशु दोषाणां कष्ठविभ्रमा ।।

तस्यान्नेषा मृदौ कोष्ठे, प्रयोक्तव्य कदाचनः ।
पाण्डुरोगादरे गुल्मे कुष्ठे दूषीविषादिति ।
श्वयथौ मधुमेहे च दोषविभ्रात्त चेतसि ।। च० क० अ० 10 ।।

कम्पिल्लक

1. चरके (सू० अ० 2) विरेचन द्रव्येषु तथा सुश्रुते श्यामादिगणे, विरेचन दुव्येषु च कम्पिल्लक पठ्यते । सु० सू० अ० 38 ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुल्मोदर विवन्धाघ्म, श्लेंष्म कृमि विनाशनः ।।ध० नि० ।।

पुत्रन्जीव

1. पुत्त्रजीवों गुरुर्वृष्यो, गर्भदः श्लेष्मवात ह्वत ।
सृष्ठ मूत्रमलो रुक्षो, हिमाः पटुः कटुः ।। भा० प्र० ।।

1. दुग्धिकोष्णा गुरुरुक्षा वातला गर्भकारिणी ।
स्वादुक्षीरा कटुस्त्तिक्ता, सृष्ठमूत्रामलापहा ।।
स्वादुविष्ठम्भनी वृष्या, कफ कुष्ठ कृमिप्रणुत् ।। भा० प्र० ।।

सातला

1. चरके विरेचन द्रब्येषु तथा सुश्रते श्यामादिगणे, उभयतोभागहर द्रब्येषु सपृला पठ्यते । सु० सू० अ० 38 ।।

2. सातला कटुका पाके वातला शीतला लघुः ।
तिक्ता शोथ कफानाह, पित्तोवर्तरक्तजित् ।। भा० प्र० ।।

वट

1. चरके सू० अ० 4) मूत्रसंग्रहणीये महाकषाये, कषायस्कन्धे (वि० अ० 4) च तथा सुश्रुते न्यग्रोघादौ च गणे वट पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. वटः शीत कषाय श्च स्तम्भनोरुक्षणात्मकः ।
तथा तृष्णाच्छर्दि मूर्च्छारक्तपित्त विनाशनः ।। ध० नि० ।।

उदुम्बर

वटः शीतो गुरुर्ग्राही कफपित्त व्रणापहः ।
वर्ण्यो विसर्प दाहघ्न, कषायायोनिदोषहृत् ।। भा० प्र० ।।

1. चरके (सु० अ० 4) मूत्रसंग्रहणीय महाकषाये, कषायस्कन्धे तथा सुश्रुते न्यग्रोघदिगणे उदुम्बर पठ्यते ।। सुअ सू० 38 ।।

2. उदुम्बरोहिमो रुक्षः कषायो मधुरोगुरुः ।
भग्नसन्धान कृद्वर्ण्यो, व्रणशोधन रोपणः ।। कै० नि० ।।

औदुम्बरं कषायंस्यात्, पक्वंतु मधुरं हिमम् ।
कृमिकृत् पित्तरक्तघ्नं, मूर्च्छा दाहतृषापहम् ।। ध० नि० ।।

औदुम्बरं फलमतीव हिमं सुपक्वं,
पित्तपहंच मधुरं श्रमशोफहारी ।
आमं कषायं मतिदीपन रोचनं च ।
मांसस्य वृद्धिकर मस्त्रविकार हारिः ।।

काकोदुम्बर

1. मलयु स्तम्भ कृत्तिक्ता शीतला तुवरा जयेत् ।
कफ पित्त व्रण श्वित्र, कुष्ठ पाण्डवर्शकामला ।। भा० प्र० ।।

1. चरके (सू० अअ 4) मूत्रसंग्रहणीये, .महाकषाये, कषायस्कन्धे (वि0 अ0) तथा सुश्रुते न्यग्रेघादिगणे अश्वत्थपस्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

अश्वत्थ

2. अश्वस्थः शीतलो रुक्षः कषायो दुर्जरोगुरु : ।
व्रणापित्त कपास्त्रघ्नो, वर्ण्यो योनिविशोधनः ।। कै० नि० ।।

अश्वत्थफलमुलत्वक् शुङ्गासिद्धपयोनरः ।
पित्वा सशर्करा क्षौद्रं कुलिङ्ग द्रव हृष्याति ।। सु० चि० अ० 36 ।।

पलक्ष

1 .चरके (सू० अ० 4) मूत्रसंग्रहणीये महाकषाये, कषायस्कन्धे (वि० अ० 4) तथा सुश्रुते न्यग्रोघदिगणे प्लक्षः पठ्यते ।। सु० सू० ध० 38 ।।

2. प्लक्षः कषायः शिशिरो व्रणयोनिगदापहः ।
दाह पित्त कफामघ्नः शोयहारक्तपित्तहृत्।।
रक्तदोषहरो मूर्च्छा, प्रलापभ्रम नाशनः ।। भा० प्र० ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तूत

1. तूदस्य फलं तु स्वादु वलवर्णाग्निवुष्द्धिकृत ।
   तूदं तु मधुराम्लं स्याद्वाततपित्तहरं सरम् ।।
   दाहप्रशमनं वृष्य, कषायं कफ नाशनम् ।। ध० नि० ।।

   तूदं गुरु सरंसाम्लमामं तदुक्तपित्तलम् ।
   उष्ण पक्वं तु मधुरं शीतं पित्तनिलापहम् ।। कै० नि० ।।

विजया

1. भंगा तु दीपनी रुच्या ग्रहिणी पाचनी लघुः ।
   निद्रा पित्तप्रदोष्ण च, कामदा कफ वातजित् ।। शो० नि० ।।

करञ्जी

1. करज्जी स्तम्भनी तिक्ता, तुवरा कटु पाकिनी ।
   वीर्योष्ण वमि पित्तार्शः, कृमि कुष्ठ प्रमेहजित् ।। भा० प्र० ।।

लकुच

1. आमं लकुच मुष्णां च, गुरुविष्ठम्भकृत्तथा ।
   मधुरज्च तथाङ्म्लञ्च दोषत्रितय रक्तकृत ।।

   सुपक्वं तत्तु मधुरम्लं च, चानिलपित्तह्रत् ।
   कफ वह्निकरं रुच्य, बृष्यं विष्ठम्भकञ्चतत् ।। भा० प्र० ।।

अक्षोट

1. अक्षोडो मधुरो बल्यः स्निग्धोष्णो वात पित्तजित् ।
   रक्तदोष प्रशमनः शीतल कफ कोपनः ।। रा० नि० ।।

कटफल

1. चरके (सू० अ० 4) सन्धानीये, शुक्रशोधने, वेदनास्थापने, च महाकषाये तथा सुश्रुते लोध्रादौ सुरसादौ च गणे कटःफल पठ्पते ।।

2. कटः फलः कटुरुष्णाश्च कास, श्वास ज्वरापहः ।
   प्रतिश्यायहरो रुच्यों, मुखरोग शमः प्रदः ।। रा० नि० ।।

भूर्ज

1. भूर्जः कटु कषायोष्णो भूतरक्षा करः परः ।
   त्रिदोष शमनो पथ्यों दुष्ठ कौटिल्य नाशनः ।।
   पित्त रक्त रुजां हन्ति, मन्त्र कार्येषु सिद्धिदः ।। रा० नि० ।।

देवदारु

1. चरके (सू० अ० 8) स्तन्यशोधने, अनुवासना पगे, च महाकषाये तथा कटुकस्कन्धे देवदारु पठ्यते ।
   सुश्रुते वातसंशमनवर्गे भद्रदारु नाम्ना देवदारु पठ्यते ।। सु० सू० अ० 37 ।।

2. देवदारु लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं कटु पाकि च ।
   विबन्धाध्मानशोथाम तन्द्राहिक्कास्त्र जित् ।। भा० प्र० ।।

   देवदारु स्नेहातिक्त कटु कषाया दुष्ठव्रणशोधनाः कृमि
   कफ कुष्ठानिलहराश्च ।। सु० सू० अ० 45 ।।

सरल (चीड़)

1. चरके (सू० अ० 4) पुरीष विरजनीये गणे तथा सुश्रुते एलादिगणे श्रीवेष्ठक पठ्यते ।। सु० सू० अ० 38 ।।

2. सरलः कटु तिक्तोष्णः कफ वाताविनाशनः ।
   त्वग् दोष शोथकण्डूतिव्रिणघ्नः, कोष्ठशुदिद्धद ।। रा० नि० ।।
   दुष्ठव्रण शोधनाः कृमि कफ कुष्ठनिलहराश्च ।। सु० सू० अ० 45 ।।

तालीस

1. सुश्रुते शिरोविरेचन द्रव्येषु तालीसपत्र पठ्यते ।। सु० सू० अ० 39 ।।

2. तालीसं श्वासकासघ्नं, श्लेष्म वातजित् ।
   मुखरोग हरं ह्यद्यं ध. नि. ।।

   तालीसपत्रं तिक्तोष्णं मधुरं कफ वातनुत् ।
   कास हिक्का क्षयश्वास, छर्दिदोष विनाशकृत् ।। रा ० नि० ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तालीसं तिक्त कटुकं, कृमिवातकफापहम् ।। कै० नि० ।।

हपुषा (हाउवेर)

1. हपुषा तुबरा तिक्ता कटूष्णा दीपनी गुरुः ।
ग्रहणी शूल गुल्मार्शो वातपित्तोदरापहा ।। कै० नि० ।।

हपुषा कटु तिक्तोष्णा गुरुर्वातवलासजित् । रा० नि० ।

हरिद्रा

1. चरके (सू० अ० 2) लेखनीये कुष्ठघ्ने, कण्डूघ्ने विषघ्ने च महाकषाये, तिक्तस्कन्धे एवं शिरोविरेचन द्रव्येषु तथा सुश्रुते हरिद्रादौ मुस्तादौ, च गणे श्लेष्मसंशमनवर्गे च हरिद्रा पठ्यते । सु० सू० अ० 38 ।।

2. हरिद्रा तु रसे तिक्ता, रुक्षोष्णा विषकुष्ठनुत् ।
मेहकण्डू व्रणान् हन्ति देहवर्णविशोधनी ।।
विशोधनी कृमिहरा पीनसारुचिनाशिनी ।। ध० नि० ।।

निशा तिक्ता कटूरुक्षा वर्ण्योष्णा कफपित्तहा ।
पाण्डु व्रणापचीमेह त्वग् दोष विषशोथजित् ।। कै० मि० ।।

आम्रगन्धा हरिद्रा

1. आम्रगंन्धि हरिद्रा या सा शीता वातला मता ।
पित्तहृन्मधुरा तिक्ता, सर्वकण्डूविनाशिनी ।। भा० प्र० ।।

कर्चूर

1. रोचनो दीपनो हृद्यः सुगन्धि स्त्वग्विवर्जितः ।
कर्चूरः कफवातघ्नः, श्वासहिक्कार्श संहिताः ।। च० स० 23
कर्चूर कटुतिक्तोष्णों रुच्यो वात संजित् ।
दीपन प्लीह गुल्मार्शः शमन कुष्ठ कासहाः ।। ध० नि०

शटी

1. चरके हिक्का निग्रहणे, श्वासहरे च महाकषाये शटी पठ्यते ।। च० सू० अ० 4 ।।

2. शटी स्यात् कटु तीष्णो, सन्निपातज्वरापहा ।
कफास्त्र व्रणकासघ्नी वक्त्रशुद्धिविशोधनी ।। ध० नि० ।।
छर्दिकास व्रण श्वास शूल हिध्माज्वरापहा ।। कै० नि० ।।

शटी तिक्ता कटुस्तीक्ष्णा, कषायाग्रहिणी लघुः ।
अनुष्णमुख वैरस्य, मलदौर्गन्ध्य नाशिनी ।। कै० नि० ।।

एला छोटी

1. चरके (सू० अ० 2) शिरोविरेचन द्रव्येषु (सू० अ० 4) श्वासहरे, अङ्गमर्दप्रशमने, च महाकषाये तथा कटुकस्कन्धे च एला पठ्यते । सुश्रुते एलादिगणे एलोपठ्यते ।। सु० अ० 38 ।।

2. सूक्ष्मैला कटुकापाके, रसे पित्ताग्नि कृल्लघुः ।
रुक्षोष्णा रोचनीश्वास कासास्त्र पित्तहा ।।
हन्तिहृल्लास तृड़ कण्डू शिरोवस्तुस्त्यास्य रुग्वमी ।। कै० नि० ।।

एलावड़ी

1. एलाछयं शीतलतिक्त मुक्तं सुगन्धि पित्तर्ति कफापहारि ।
करोति ह्यद्रोग भलार्तिवस्ति पुंस्त्वघ्न मत्रास्थविरा गुणास्या ।। नरहरिः ।।

1. कुलत्रजः कटुतीक्ष्णोष्णो दीपनो मुखदोषहृत् । रा० नि० ।

सुगन्धा ऽप्युग्रगन्धा च विशेषात् कफवातनुत् ।
स्वरत्वकरी रुच्या, ह्यत्कण्ठ मुखशोधिनी ।। भा० प्र० ।।

1. केमुकं कटुके पाके, तिक्तं ग्राहि हिमं लघु ।
दीपनं पाचनं ह्यधं, कुष्ठ कास प्रेमह्यास्त्र नाशन वातल कटु ।। भा० प्र० ।।

शुण्ठी

1. चरके (सू० अ० 4) दीपनीये, शूलप्रशमने च महाकषाये श्रृङ्गवेरं पठ्यते, सुश्रुतेपिप्पल्यादिगणे, त्रिकटुकादिगणे च श्रृङ्गवेरं पठ्यते ।।
सु0 सू0 अ0 38 ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. नागरं कफ वातघ्नं विपाके मधुरं कटु ।
वृष्योष्ण रोचनं ह्यद्यं, सस्नेह लघु दीपनम् ।।

कफानिलहरं स्वर्य विवन्धानाहशूलजित् ।
कटूष्णां रोचनं ह्यद्यं, वृष्यंचैवाद्रकंस्मृतम ।। सु० सू० अ० 46 ।।

रोचनं, दीपनं वृष्यमाद्रक विश्वमेषजम् ।
वातश्लेष्मविवन्धेषु रसस्तस्योपदिश्यते ।। च० सू० अ० 29 ।।

कदली

1. कदल्यास्तु फलं स्वादु, कषायं नातिशीतलम् ।
रक्तपित्तहरं रुच्यं वृष्यं, कफ करं गुरु ।। ध० नि० ।।

कन्दस्तु वातलो रुक्षः, शीतोऽसृग् कृमिकुष्ठनुत् ।। ध० नि० पक्वं स्वादु हिमं पाके स्वादु वृष्यञ्च बृहंणम् ।।भा. प्र.।।

कुङ्कुम (केशर)

1 चरके (सू० अ० 4) शोणितस्थायने महाकषाये, रुधिरनामना तथा सुश्रुते एलादिगणे कुकुङ्म पठ्यते । सु० सू० आ० 38 ।

2 काश्मीर देशजे क्षेत्रे, कुंकुमं यद्भवेद्धित्तत् ।
सूक्ष्मकशरमारक्तं पद्भ्गन्धितदुत्तमम् ।।
बाह्लीकदेश संजात्तं, कंकुमं पाण्डुर मतम् ।
केतकी गन्ध युक्तं तन्मध्यमं सूक्ष्मकेशरम् ।। भा० प्र०

कुकुङ्मं कटुकं तित्क्मुष्णं ष्लेष्मसमीरजित् ।
व्रण घ्र्ष्ठि शिरोरोग विषहृत् कामकान्तिदम् ।।
त्तिक्तं वमिहरं वर्ण्यं ब्यङ्गदोषत्रयापहम् ध० नि०

तालमूली

1 मुशली मधुरा बृष्याा वीर्योष्णा बृंहणीगुरु : ।
तिक्त्तरसायनी हन्तिः, गुदजान्यनिलं तथा ।। भा० नि०

वाराही

1 वाराहकन्द श्लेष्मघ्नः, कटुको रसपाकतः ।
मेह कुष्ठ कृमिहरो, बल्यो वृष्यो रसायनः ।। सु० सू० अ० 46

वाराही तु रसे स्वाद्वी, तिक्तापाके पुनः कटु : ।। भा. प्र.

1 कृमिकुष्ठ किलासघ्नो वात्तघ्नो गुल्मनाशन : ।
स्निग्ध श्चोष्णश्च वृष्यश्च, लशुनः कटुको गुरु : ।। "च० अ० सू० 29"

वृष्यश्च मेघा स्वरवर्ण चक्षुभग्नास्थि सन्धानकरो रसोन : ।
हृद्रोग जीर्णज्वर कुक्षिशूलविवन्ध गुल्मारुचिकासशोषान् ।
दुर्नाम कुष्ठाानल सादजन्तु समीरण श्वासकफांश्चहन्ति ।। सु० सू० अ० 46 ।।

पलाण्डु

1 श्लेष्मघ्नो मारूतघ्नश्च, पलाण्डुर्न च पित्तनुत् ।
आहारयोगी वल्यश्च गुरुवृष्योऽथ रोचनः ।। च० सू० अ० 27
नात्युष्णवीर्योऽनिलहा कटुश्च,
तीक्ष्णोऽगुरु नातिकफावहश्च ।
बलावहः पित्तकरोऽय किञ्चित्,
पलाण्डु रग्निं परिवर्धयेत्तु ।। सु० सू० अ० 46"

कुमारी

1 कुमारीभेदनी तिक्ता शीतानेत्र्या रसायनी,
मधुरावृंहणी बल्या, वृष्या वाताविषप्रणुत् ।।
गुल्म प्लीहयकृद्धि कफज्वरहरी हरेत् ।
गुन्थ्यानि दग्घ विस्फोट, पित्तरक्तत्वगामयान् ।। भा० प्र०

शतावरी

1 चरके (सू० अ० 4) बल्ये, वयः स्थापने च महाकषाये अतिरसा नाम्ना, मधुरस्कन्धे (वि० अ० 8) तथा सुश्रुते (सू० अ० 39)
विदारी गन्धादौ, कण्टकपञ्चमूले गणे, पित्तप्रशमन वर्गे च

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1 चरके (यू० अ० 4) बल्ये, वयः स्थापने च महाकषाये अतिरसा नाम्ना, मधुरस्कन्धे (वि० अ० 8) तथा सुश्रुते (सू० अ० 39) विदारी गन्धादौ, कण्टकपञ्चमूले गणे, पित्तप्रशमन वर्गे च
शतावरी पठ्यते " सु० सू० अ० 29

2 शतावरी हिमातिक्ता खाद्वी गुर्वी रसायनी ।
सु स्निग्धा शुक्रलाबल्या स्तन्य मेदोऽग्निपुष्दिा ।।
चक्षुष्या वातपित्तास्त्र, गुल्मातीसारशोथाजित् ।। कै० नि० ।।

वात पित्तहरी वृष्या, स्वादुत्तिक्ताा शतावरी ।
महती चैव हृद्या च, मेध्याग्निवलवर्धिनी ।।
ग्रहण्यर्शी विकारघ्नी, वृष्याशीता रसायनी ।
कफ पित्तहरा स्तिक्ता स्तस्या एवाङ्कुराःस्मृता ।। "सु० सू० अ० 46"

लाङ्गली

1 लाङ्गली कटुरूष्णा च, कफवात विनाशिनी ।
तिक्ता सरा च श्वयथु गर्भशल्य व्रणापहा ।। ध० नि०
लाङ्गली कटुका तिक्ता सक्षारा पित्तलासरा ।
तीक्ष्णोष्ण गर्भहालघ्वी, बस्तिशूल निवर्हणी ।
बलासकुष्ठ शोफार्शो व्रणजन्तुविनाशिनी ।। कै० नि०

श्वेतमूशली

1 मूसली मधुरा शीता वृष्यापुष्टिवलप्रदा ।
पिच्छिला कफदापित्त दाहश्रमहरापरा ।।
मूसली स्याद् द्विधा प्रोक्ता श्वेतायापरसंज्ञका ।
श्वेतास्वल्पगुणोपेता, अपरा च रसायनी ।। रा० नि०

उशवा (द्वीपान्तरवचा)

1 द्वीपान्तरवचा किञ्चित्तिक्तोष्ण वह्निदीपिकृत् ।
विवन्धाध्मान शूलघ्नी, शकृन्मूत्र विशोधनी ।।
वातव्याधीनपस्मार मुन्माद तनुवेदनाम् ।
व्यपोहति विशेषेण, फिरङ्गमयनाशिनी ।। भा० प्र०

कोलकन्द

1 कोलकन्द कटुश्चोष्णो कृमिकास कफापहः ।
उत्क्लेश वान्तिजननो, हृद्यः श्वास निवारणः ।।

नारिकेल

1 बृहणस्निग्ध शीतानि, बल्यानि मधुराणि च ।
नालिकेलं गुरु स्निग्धं पित्तघ्नं स्वादु शीतलम् ।
बलमांसप्रदं हृद्यं, वृंहणं वस्तिशोधनम् ।। "सुश्रुत"
स्निग्धं स्वादु हिमं हृद्यं दीपने वस्तिशोधनम् ।
वृष्यं पित्तपिपासाघ्नं नलिकेरोदकं गुरुः । "सु० सू० अ० 45"

ताल

1 सुश्रुते सालसारादिगणे तालः पठ्यते" सु० सू० अ० 38

2 बृहणस्निग्ध शीतानि बल्यानि मधुराणि च। चरक"
फलं स्वादुरसं तेषां, तालजं गुरुपित्ताजित् ।

2 तद्बीजं स्वादुपाकं च, मूत्रलं वातपित्तजित् ।
फलं स्वादु रसे पाके, तालजं गुरु पित्तजित् ।
तद्बीजं स्वादुपाके च, मूलंस्यात्तद्रक्तपित्तजिर ।। ध० नि०

खर्जूर

1 मधुरं बृंहणं बल्यं खर्जूरं गुरुशीतलम् ।
क्षमेऽभिघाते दाहे च, वातपित्ते च तद्धित्तम् ।। च सू अ० 29

1 क्षतक्षयापहं हृद्यं शीतलंतर्पणं गुरुः ।
रसे पाके च मधुरं, खार्जुरं रक्तपित्तनुत् ।।
खर्जूरिका वृक्षतोमं मदपित्त करं परम् ।
वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं वल शुकृकृत् ।। कै० नि०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पूग

1 कफ पित्त हरं रूक्षं वक्रक्लेदमलायहम् ।
कषायमीसन्मधुरं किञ्चित्पूगफलंसरम् ।। सु० सू० अ० 46

पूंगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफापित्त जित् ।
मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम् ।। भा० प्र०

केतकी

1 केतकी कटुका पाके, लघु तिक्ता कफापहा । ध० नि०

केतकी कुसुमं वर्ण्यं, केशदौर्गन्ध्यनाशनम् ।
तस्य स्तनोऽत्तिशिशिरः, कटुः पित्तगदापहः ।। रा० नि०

वचा

1 चरके (सू० अ० 2) विरेचन द्रब्येषु, (सू० अ० 4) लेखनीये,
अर्शोघ्ने, तृप्तिघ्ने, आस्थापनोपगे, शीतप्रशमने, संज्ञास्थापने च महाकषाये,
तथा (वि० अ० 8) तिक्तस्कन्धे, शिरोविरेचन द्रव्येषु च वचा पठ्यते ।।
सुश्रुते (सू० अ० 38) पिप्पल्यादौ, वचादौ, मुस्तादौ च गणे
तथ्य उर्ध्वभागहरे चवर्गे वचा पठ्यते ।। सु० सू० अ० 39

2 वामनी कटु तिक्तोष्ण, वातश्लेष्म रुजापहा ।
कण्ठ्या मेध्या च, कृमिह्यद्धिवधाध्मान शूलनुत् ।। ध० नि०

वचा तिक्ता कटुः पाके, कटु रुष्णामपाचनी ।
दीपनी वामनीमेध्या, जीवनी वाक्स्वरप्रदा ।।
हन्त्युन्मादमपस्मार रक्षोजन्तु कफानिलान् ।। कै० नि० ।

सूरण

1 सूरणो गुदकीलहा "सुश्रुतः"
सूरणों कटुको रूच्यो, दीपनः पाचनस्तया ।
कृमिदोषहरो वातशूल गुल्मार्शनुत् ।।
श्वासं कासं च प्लीहानं निवारयति सेवितः ।। ध० नि० "

गजपिप्पली

1 चरके हस्तिपिप्पली, गजकणा इति नाम्ना पठ्यते ।।
गजकृष्ण कटुर्वात ष्लेष्म हृद्वह्निवर्धिनी ।
उष्ण निहन्त्यतीसारं श्वासकठामयकृमीन् ।। आ० प्र०

मानकन्द

1 मानकं स्वादुशीतं च, गुरु चापि प्रकीर्तितम् । सु० सू० अ० 46

कासालु रुग्रऽ कण्डूत्ति वातष्लेष्मामयापहः ।
अरोचक हरः स्वादुःपथ्यो दीपन पाचनः ।। "रा० नि० "

मुस्ता

1 चरके (सू० अ० 2 लेखनीये, तृप्तिघ्ने, कण्डूघ्ने, स्तन्यशोधने,
तृष्णनिग्रहणे च महाकषाये, तथा सुश्रुते वचादौ ।
मुस्तादिगणे मुस्ता पठ्यते "सु० सू० अ० 38"

2 मुस्तातिक्तकषाय ऽतिशिशिरा, ष्लेष्मरक्तजित् ।
पित्तज्वरातिसारघ्नी, तृष्णाकृमिविनाशिनी ।।
भस्द्रमुस्ता कषाया च तिक्तशीता च पाचिनी ।
पित्तज्वर कफघ्नी च, ज्ञेया संग्रहणी च सा ।। "रा० नि० "

कशेरुक

1 कसेरूः ध्दिविधं त्तन्तु, महाद्राञ्कसेरुकम् ।
मुस्ताकृति लघु स्याद्यत्ताध्चिोठामितिस्मृतः ।। भावा मिश्र ।

कसेरूकद्वयं शीतं मधुरं तुवरं गुरुः ।
पित्तशोणित दाहघ्नं नयनामयनाशनम् ।।
ग्राहि शुक्रानिल ष्लेष्मारूचि स्तन्यकरंस्मृतम् ।। भा० प्र०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उशीर

कसेरूकस्य पुष्यं तु, पित्तघ्ननं कामलापहम् ।। कै० नि०

1 चरके (सू० अ० 4) वर्ण्ये, स्तन्यजनने, छर्दिनिग्रहणे,
दाहप्रशमने च महाकषाये तथा तिक्तस्कन्धे, उशीरं पठ्यते ।।
सुश्रुते सारिवादिगणे, पित्तसंशमनवर्गे च उशीरं पठ्यते । सु० सू० अ० 39

2 उशीरं शीतलंरुक्षं, स्वादु तिक्तं हिमंलघु ।
पाचनं स्तम्भनं हन्ति, शोषदाहमदज्वरान् ।।
तृष्णास्त्र विषदौर्गन्ध्य, कृच्छ्रकुष्ठवमिव्रणान् ।। कै० नि०

उशीरं शीतलंतिक्तं दाहश्रम हरंपरम् ।
पित्तज्वरार्तिशमनं, जलसौगन्ध्यदायकम् ।। रा० नि० "

वंश

1 वंशस्तु शीतलः स्वादु, कषायोवस्तिशोधनः ।
छेदनः कफ पित्तास्त्र कुष्ठ शोथव्रणापह : ।। कै० नि०

वेणो करीरा गुरवः, कफ मारूत कोपनाः ।
रूक्षा वेणुयवा ज्ञेया, वीर्योष्णाः कटुपाकिनः ।।
वद्धमूत्राः कफहराः, कषाया वातकोपनाः ।। सु० सु० अ० 46

रूक्षः कषायानुरसो मधुरः कफ पित्तहा ।
मेदः कृमि विषघ्नश्च, बल्योवेणु यवोस्मृतः ।। च० सू० अ 29

कुश

1 चरके (सू० अ० 4) स्तन्यजनने, मूत्रविरेचनीये, च महाकषाये,
तथा मधुरस्कन्धे, तथा सुश्रुते तृणपञ्चमूल गणे
दर्भकुशौ पठ्यते ।। सु. सू. अ. 38 ।

2 दर्भः स्निग्धो हिमः स्वादुः, कषायाः कफपित्तहाः ।
विसर्पदाह कृच्छ्राश्म तृष्णावस्तिविकारनुत् ।। कै.० नि०

दर्भ द्वय त्रिदोषघ्नं, मधुरं तुवरंहिमम् ।
मूत्रकृच्छाश्मरी तृष्णा वस्तिरुग्प्रदरास्त्रजित् ।। भा० प्र०

काश

1 कासः स्यान्मधुर तिक्तः स्वादुपाको हिमः सरः ।
मूत्रकृच्छाश्मरीदाहा, स्त्रक्षयपित्तरोगजित् ।। आ० प्र०

2 काशस्तु तर्पणः शीतो गौल्यो रूचिकरोस्मृतः ।
बलकृन्मधुरोवृष्यः स्तिक्त पाके मधुः स्मृतः । शा० नि०

शर

1 दाहतृष्णविसपस्त्रि मूत्रकृच्छ्राक्षिरोगजित् ।
दोषत्रहरे वृष्यं, मेखलासूपयुज्यते ।। भा० नि० ।।

इक्षु

1 इक्षवो मधुरा मधुराविपाका गुरवः शीताः स्निग्धा, वल्या ।
वृष्या मूत्रला रक्तपित्तप्रशमना कृमिकराश्चेति ।। सु० सू० अ० 45

वृष्यः शीतः सरस्निग्धो वृंहणो मधुरो रसः । चरक :

दूर्वा

1 चरके (सू० अ० 4) वर्ण्ये, छर्दिनिग्रहणे, दाहप्रशमने च
महाकषाये तथा सुश्रुते सारिवादिगणे, पित्तसंशमन बर्गे
च दूर्वा पठ्यते । सु० सू० अ० 39

2 दूर्वा हिमातिक्ता मधुरा तुवराहरेत् ।
कफ पित्तास्त्र विसर्प, तृष्णादाहत्वगमयान् । भा० प्र०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रोहिष

1 चरके (सू० अ० 4) स्तन्यजनने महाकषाये कतृणं पठ्यते ।।

2 कतृणं श्वासकासघ्नं हृद्रोगशमनं परम् ।
विसूच्याजीर्ण शूल कफकण्डू वातास्त्रनाशनम् "ध० नि०"

हंसराज

1 चरके (सू० आ० 4) कण्ये महाकषाये, मधुरस्कन्धे, तथा सुश्रुते
विदारिगन्धादौगणे हंसपदीपठ्यते । सु० सू० 38 ।।

2 हंसपादी हिमा गुर्वी, रोपणीदहन्ति शोणितम् ।
दाहातिसार वीसर्प लूताशोथाविष व्रणान् ।। कै० नि०"
हंसपादी कटूष्णोस्याद्विषभूतविनाशिनी ।
भ्रान्त्यपस्मार दोषघ्नी, विज्ञेया च रसायनी ।। आ० प्र०

शैलेय

1 शैलेयं शीतलं हृद्यं, कफपित्तहरं लघु ।
कण्डू कुष्ठाश्मरी दाहविषहृद् गुद्रक्तहृत् ।।
आ० प्र०

शैलेयं शिशिरंतिक्तं सुगन्धि कफपित्ताजित् ।
दाहतृष्णा वमिश्वास, व्रणदोष विनाशनम् ।। कै. नि.

छत्रक

सर्वे संस्वेदजाः शीता दोषकाः पिच्छिलाश्च ते ।
गुरुश्छर्द्यतिसार ज्वरश्लेष्मादयप्रदाः ।। भा० प्र०

कंकूष्ठ

1 कंकुष्ठं रेचनं तिक्तमुष्णं व्रर्णविशोधनम् ।
कफं शोफोदरानाह गुल्माध्मानाह कृमिप्रणुत् ।। कै० नि०

कंकुष्ठं तिक्त कटुकं वीर्ये चोष्णं प्रकीर्तितम् ।
गुल्मोदावर्त शूलघ्नं, रसरञ्जं व्रणापहम् ।। ध. नि.
हेमदुग्धा हिमावती कंकुष्ठ ।। "अष्ठाङ्गहृदय"

हिमवत् पादशिखरे कंकुष्ठमुपजायते
हिमाचलैक देशेतु कंकुष्ठमुपजायते ।। आयुर्वेदप्रकाश

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जागंमद्रव्याणा सामान्यपरिचय सहितं गुणकर्म ज्ञानम्।

खण्ड-3

जांगम द्रव्यों में विशेषकर औषध उपयोगी द्रव्यों का इस प्रकरण में समावेश किया हैं। मुख्य रुप से इसमें कस्तूरी गोरोचन, मधु, पित्त, वसा, श्रृंग, नख, खुर, कीट आदि द्रव्य विशेष हैं। सामान्य भाषा में जांगम उसे कहते हैं। जो स्वयं गति करता हैं एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच सकता हैं उसे जंगम या चर कहते है । यथा मनुष्य पशु, पक्षी प्राणी आदि।

यथा– मधूनि गोरसाः पित्तं, वसामञ्जासृगामिषम्।
विण्मूत्रचर्मरेतों ऽस्थिस्नायु त्रृंगःनखाःखुरा।।
जंगमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशलोमानि रोचनाः।
च० सू० अ० 1 ।।

औद्‌भिज द्रव्यों की अपेक्षा जांगमद्रब्य शारिरिक धातुओं मे मिल जाने के कारण उनकी विशेष वृद्धि करते हैं। ये द्रव्य शरीर को धारण करने वाले पदार्थो जिस पदार्थ का क्षय हुआ हो उस पदार्थ की पूर्ति के लिये उसी पदार्थ के समान गुण वाले अन्य द्रव्य का सेवन करने से उस धातु की पूर्ति होती हैं। इस कार्य में जांगंम द्रव्य विशेष रुप से प्रभाव कारी होते हैं जिनका चिकित्सा में उपयोग होता है । संहिता ग्रन्थों में प्रायः सभी प्राणियों के विभिन्न व्याधियों में चिकित्सा हेतु विस्तृत वर्णन मिलता हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में भी विभिन्न हार्मोन्स, ऐन्जाईम्स् एंव रक्तदान नेत्रदान आदि के रूप में प्राणिज द्रव्यों का प्रचूर प्रयोग होता हैं।

कस्तूरी

द्रव्यनाम .... संस्कृत ....कस्तूरी, मृगभद, मृगनाभि।
हिन्दी ....कस्तूरी, नाफा,
अंग्रेजीण......... Musk.
लैटिन ....**Moschus moschuiferous**

कस्तूरी मृग का सामान्य परिचय

कस्तूरी मृग हिरन की जातियों में से है । यह बहुत सुन्दर सुहावना मृग होता हैं इसके सींग एंव पूछ नहीं होता हैं। मृग करीब 45 से० मी० ऊंचा होता हैं। इस मृग के जवड़े से दो लम्बें दांत बाहर को निकले रहते हैं। इसका मूंह काला, पैर पतले तथा संशकित जानवर हैं। बाल श्वेताभ धूसरवर्ण वर्ण के मुलायम मोटे एंव बहुत घने होते हैं। कस्तूरी मृगचर्म बहुत सुन्दर कुछ थोड़ा चिन्तित होता हें। नरमृग में ही कस्तूरी पाई जाती हैं। इसकी किगेन्द्रिय के मणि भाग को ढगने वाले चमड़े के प्रवर्धन से बनी हुई एक थेली होती हें। इसमें मृगभद एकत्रित होता हें। इसी शुष्कमद को कस्तूरी कहते हैं जोकि तीव्र सुगन्धी वाला होता हें। चर्मकोष को कस्तूरी का नाफा कहते है। यह थैली नाभि के पास एंव शिश्नावरण के मध्य में स्थित रहती हैं। इसके अग्रभाग में केशयुक्त छोटा छिद्र होता हैं। इसी थैली में नरमृग के युवावस्था में यह स्त्राव एकत्रित होता रहता हैं जोकि तरल के रुप में होता हैं। रात्री समय इसमें उग्र एंव अधिक सुगन्ध आती हैं। कामातुर एंव युवा हिरन की कस्तूरी श्रेष्ठ मानी जाती हैं। युवा कस्तूरी मृग का नाफा 25 ग्राम के वजन तक का होता हैं। मादा मृग में कस्तूरी नहीं पाई जाती हैं।

प्राप्ति स्थानः-

यह मृग हिमालय के वर्फीले घाटियों विशेष कर 3000 मीटर की ऊंचाई से लेकर 3,900 मीटर की ऊंचाई तक उत्तराखण्ड में केदारनाथ, बद्रीनाथ, मदमहेश्वर, भागीरथी घाटी, हर की दून, हिमाचल प्रदेश, बड़ा भंगाल, डोडरक्वार, किन्नौर, पांगी, चम्बाघाटी, आसाम, जम्मूकश्मीर, सिक्किम, नैपाल, भूटान, तिब्बत, कुमायूं पिथौरागढ़ आदि पहाड़ियों पर पाया जाता हैं। यह मृग प्रायः वर्फ के साथ-साथ रहता हैं। जनवरी-फरवरी में अधिक हिमपात होने पर निचली घाटियों में आ जाता हैं तथा मई, जून में वर्फ के पिघलने पर यह उपर हिमालय के उंचे पर्वतश्रृंगों पर चला जाता है । पहाड़ी गुफाओं पर यह अपना निवास बनाता हें। हिमालय की सुगन्धीत घास तृणघास को खाता हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कस्तूरी के भेदः–

आचार्य भावमिश्र ने तीन प्रकारों का निर्देश किया हैं। 1 कामरुपीय, 2 नैपाली, 3 काश्मीरी, कामरुपीय कस्तूरी श्रेष्ठ, नैपाली मध्यम एंव काश्मीरी–हीन गुणों वाली मानी गई हैं।

व्यापारिक द्यष्ठी से भी कस्तूरी 3 प्रकार की होती है ।
1. रुस की कस्तूरी – इसमें गन्ध कम होती हैं ।
2. आसाम की कस्तूरी – यह अच्छी किस्म की एंव तीव्र गन्ध वाली होती हैं ।
3. चीन की कस्तूरी – यह कस्तूरी तिब्बत से चीन को जाती हैं ।

उत्तम कस्तूरी रक्ताभ श्याम वर्ण की बड़े दाने वाली तीक्ष्ण गन्ध की, स्वाद में तिक्त एवं मुलायम होती हें। इसकी गन्ध स्थायी होती हैं। तीन सौ गुना पानी में घोलने पर भी इसकी गन्ध सदा बनी रहती हैं किसी भी अन्य लशुन, हींग के गन्ध में यह अपना प्राकृतिक गन्ध नहीं छोड़ती हैं।

आजकल कस्तूरी के नाम पर व्यापारी बहुत धोखा एंव चकमा करते हैं। इसकी सही पहिचान बिना अनुभव के काफी कठिन हैं। कुछ सामान्य पहिचान निम्न हैं।

1. कस्तूरी के दानों को जल में डालने पर यदि दाने अपने प्राकृति अवस्था में ही रहते हैं तो असली हो सकती हैं विलय होने पर नकली । वर्ण में भी कोई परिवर्तन नहीं आना चाहिये।
2. जो कस्तूरी आग पर रखने पर जले नहीं बल्कि उससे धीरे–धीरे चमड़े की गन्ध आए वह उत्तम होती हैं।
3. असली कस्तूरी मुलायम होती हैं मिलावट होने पर वह कठोर होती हैं।
4. तागे के साथ हींग मिलाकर कस्तूरी के नाफा से वेध कर बाहर निकालते हैं। यदि हींग अपनी गन्ध छोड़ देवे तो असली कस्तुरी हैं। अन्यथा मिलावट की सम्भावना अधिक हैं।

कृत्रिम कस्तूरी पीताभ श्वेतरंग की खेदार होती हैं। कुछ विशेष प्राणियों एवं वनस्पतियों के विशिष्ठ कस्तूरीसद्यशगन्ध से नकली कस्तूरी बनाई जाती है।

कस्तूरी के गुण–

इस–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, इस–तिक्त, कटु विपाक वीर्य–उष्ण, कर्म–कफ वात शामक, दीपन, हृद्य, श्वासहर, वाजीकर, ज्वरघ्न एवं विष्यघ्न है।

यह सुषुम्नाशीर्ष के लिए तीव्र उत्तेजक एवं मूर्च्छा में बहुत उपयोगी है । इससे रक्तप्रवाह में वृद्धि होती है। यह मू त्रेन्द्रिय एवं श्वास केन्द्र के लिये उत्तेजक है। वातव्याधि तें यह ज्यादा प्रभावशाली है। यह रक्त के श्वेताणुओं को बढ़ाता है।

आमयिकप्रयोग–

हृदयावसाद, सन्निपातज्वर, आन्त्रिकज्वर, श्वसनकज्वर, शीर्षसौषुम्नज्वर, शीतांगसन्निपात, प्रलाप सन्यास, मूर्च्छा, उन्माद, अपस्मार, अपतन्त्रक आक्षेप, पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात, सामान्यदौर्वल्य, वीर्य विकार आदि रोगों में उपयोगी है।

मुख्ययोग :–

(वृ) कस्तूरी भैरवरस, कस्तूरीस्तम्भनवटी, मृगमदासव, हिंगुकर्पूरवटी, केशरादिवटी, चतुर्भुजरस, सूचिकभरणरस, बालवटी, शक्तिसंजीवनलेह, हृदयपौष्ठिकचूर्ण ।

मात्रा – 26 मिलीग्राम से 125 मिलिग्राम ।

1– कस्तूरिका रसे तिक्ता कटुः श्लेष्म निलापहा ।
उष्णा बल्या तथा वृष्णा, शीतदौर्गन्ध्य नाशिनी ।।
कामातुरे च तरुणे कस्तूरी बहुलपरिमला भवति ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2 – गोरोचन

द्रव्यनाम...............संस्कृत ....गोरोचन, गोपित्त, रोचना, गौरी।
हिन्दी ....गोलोचन, गोपित्त,
लैटिन ....Serpent Stone

स्वरूपपरिचय

यह गाय या बैल के पित्ताशय में होने वाली नीबू एवं सुपारी के आकार का गोलाई लिये हुए त्रिकोणाकार, एवं सुगन्धित द्रव्य है । यह स्वाद में तिक्त होता है । जीवित गाय या बैल के पित्ताशय से गोरोचन निकालते हैं। गोरोचन बाहर से कुछ मटमैला, पीताभ एवं धूसरित होता है। अन्दर से यह चमकीले पीले रंग का होता है ।

पहिचान

शुद्ध गोरोचन को तोड़ने पर अन्दर से चमकदार पीतवर्ण एवं प्याज के समान परतदार होता है। ये पर्त्ते सूक्ष्मदर्शक यंत्र से भलिभांति देखे जा सकते हैं। नकली गोरोचन में यह नहीं मिलता है। आजकल बाजार में नकली गोरोचन अधिक मिलता है।

प्राप्तिस्थान

गोरोचन का संग्रह विशेषकर गोरखपुर एवं नैपाल आदि स्थानों से किया जाता है।

गुणकर्म 1

गुण–लघु, रुक्ष, रस–तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–वातकफशामक, पित्तसारक, मेध्य संज्ञाप्रबोधन, लेखन, शोथहर, दीपन–अनुलोमन, पित्तसारक, आर्तवजन, मूत्रल, अश्मरीनाशक, कटुपौष्ठिक, यह वाजीकारक, ग्रहवाधा एवं भूतविद्या आदि में उपयोगी है। अपस्मार में स्थायी लाभ के लिये बड़ी मात्रा में प्रयोग करते हैं।

आमयिकप्रयोग

यह कफज्वर, कामला, पाण्डु, पित्त की न्यूनता, उन्माद, अपस्मार, अपतन्त्रक, आक्षेप रोमान्तिका, मसूरिका, अतिसार, विषविकार, अश्मरी, वालशोष, क्षय, आदि में उपयोगी है। यूनानिमतानुसार गोरोचन दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क श्वयथूविलयन, वातहर, श्वीत्र एवं अर्श में उपयोगी है।

मुख्ययोत्र

मृतसंजीवनअगद, सिक्तेक्ष्वाकुतैल, हिंगुलादिगुटिका, मुक्तादिवटी, शीतलशामकवटी, मात्रा – 125 से 500 मि0 ग्राम।

3 – मृगश्रृङ्ग

द्रव्यनाम................ संस्कृत...................श्रृङ्ग, शम्बर,
हिन्दी................बारहसिंगा, सांभर।

स्वरूपपरिचय :

यह बारहसिंगा का श्रृङ्ग विशेष द्रव्य है। श्रृङ्ग भी नरव के तरह ही त्वचा का रुपान्तर है। यह सांभर हिरण प्रसिद्ध मृग है। इस हिरण के शृङ्ग काफी लम्बे एवं कई भागों में विभक्त होते हैं। ये भाग इस हिरण के आयु के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अनुसार ही निकलते हैं। सबसे बड़ी आयु वाले हिरण के श्रृङ्ग अधिक होते हैं। वजनी, स्थूल, छिद्ररहित, श्रृङ्ग श्रेष्ठ माना जाता है।

प्राप्तिस्थान :

यह हिरण भारत के सभी प्रदेशों उत्तरप्रदेश, हिमालय की निचली घाटियों एवं तराई भागों, मध्यप्रदेश, बिहार, गुजरात, आसाम, सिक्किम, नैपाल आदि स्थानों में पाया जाता है।

गुणकर्म 1

गुण–स्निग्ध, रस–मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–उष्ण, कर्म–वातकफ शामक, दीपन, वेदनास्थापन, हृद्य, शीणित–स्थापन, आमदोषनाशक, लेखन एवं कासघ्न।

आमयिकप्रयोग –

वाह्यपार्श्वशूल, फूफुसावरणशोथ, न्युमोनियाँ, (श्वसनकज्वर) उरस्तोय, उन्माद, मूर्च्छा, एकांगशोथ हृच्छूल, जीर्णज्वर–प्रतिश्याय, संधिशूल, कटिशूल, अस्थिभग्नाप्रदाहवेदना, वालशोष, फक्वरोग, आदि रोगों में उपयोगी है ।

रासायनिकसंगठन

श्रृङ्ग में मुख्य रुप से कैल्सियम फास्फेट, मैग्नेशियम कार्बोनेट, एवं लौह आदि तत्व पाये जाते हैं।

मुख्ययोग–

विषाणभस्म, क्षयकेशरीरस, श्वासरोगान्तकवटी, हृदयरोगनाशिनीवटी, शूलगजकेशरीरस मधुमालतीवसन्त, कासामृत, श्वासकासान्तन्क रस, रजः प्रवर्तकयोग,

4 अग्निजार (अंबर)

द्रव्यनाम...............संस्कृत.................अगिनजार, तुन्दामय।
हिन्दी..................अम्बर
लैटिन..................Ambergris

स्वरूपपरिचय

यह एक कैथलाट या स्पर्महवेल नामक मछली द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह अम्बर एक विशेष प्रकार के वनस्पति के भक्षण से आन्त्र में एक विकार जन्य ग्रन्थि है। आन्त्र में इस वनस्पति के पहुँचने पर विभिन्न प्रकार के आन्त्ररस इसके चारों तरफ एकत्रित होते हैं, तथा मछली धीरे–धीरे दुर्बल होकर मर जाती है। यह आन्त्र में संचित गांठ जल में अविलेय इस मछली के उदर के फटकर समुद्र में तैरती रहती है। इसी ग्रन्थी को अम्बर कहते हैं। मछुवे लोग इस मछली का शिकार कर आन्त्र से भी इसे निकालते हैं। ताजे अम्बर में विष्ठा के समान गंध आती है। विशेष उष्णाताप पर पिघलाने पर यह द्रव हो जाता है। यह जल में अविलेय है ईथर, मद्यसार में घुलनशील है। इसमें 85% की मात्रा में श्वेतकण के रुप में अम्बरीन पाया जाता है। यह बाहर से श्यामवर्ण लिये एवं भीतर से श्यामरंग लिये हुये सफेद रंग का तथा कुछ खश–खश के दाने के सदृश सूक्ष्मरचना वाज कुछ सुगन्धी लिये होता है। बाजार में प्रायः कृत्रिम मत्स्यपित्त अम्बर के नाम से मिलता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान

यह हिन्द महासागर में श्रीलंका, निकोबार द्वीप, लक्षद्वीप, जंजीवार, तथा अफ्रीका के लामू–मोम्वासा आदि समुद्रीयतटों में पाया जाता है ।

गुणधर्म 1

गुण–लघु, रुक्ष, रस–कटु, वीर्य–उष्ण, विपाक–कटु, प्रभाव–आक्षेप–शमन, वाजीकरण, उत्तेजक, कर्म–कफवात–शामक, त्रिदोषघ्न, मस्तिष्क एवं नाड़ीमण्डल पर प्रभावी होने के कारण आक्षेप–हर है। हृघ, दीपन, पाचन, मानसिक विकारों में उपयोगी।

आमयिक प्रयोग

1– यह आक्षेप प्रधान वात्तरोगों में उपयोगी, सन्निपात एवं शीतजन्य रोगों को दूर करता है।
2– मस्तिष्कदौर्वल्य, पक्षाघात, धनुर्वात, उन्माद, अपस्मार, आदि में उपयोगी।
3– उदरशूल, ग्रहणीरोग, श्लैष्मिकज्वर, प्रलाप मसूरिका एवं बालरोगों में उपयोगी है।
4– नपुंसकता एवं ध्वजभंग आदि कत्तिपय वाजीकर योगों में इसका उपयोग किया जाता है ।

शुद्धअम्बर .... मात्रा 1र. 3 र०

मुख्ययोग – व्राह्मीवटी, लोकेश्वररस, मदनकान्तागुटिका।

बक्तव्य :–

रसशास्त्र के कतिपय ग्रन्थों ने नक्र विशेष समुद्रीय जन्तु के जरायु को अम्बर लिखा है वस्तुतः यह मत्स्यविशेष के आन्त्र में संचिंत आन्त्ररसों का स्त्रावमय ग्रन्थि है । राजानिघणुकार ने इसे तुन्दामय कहा है । अर्थात् यह उदर सम्बन्धी विशेष स्त्राव जन्य व्याधि रूप ग्रन्थि है । जिसे अम्बर कहते हैं ।

5 मुक्ता (मोती)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... मुक्ता, मौक्तिक, शुक्तिज ।
हिन्दी .... मोती ।
लैटिन .... **Margarita**

परिचय :—

मोती मुक्ताशुक्ति से बनते हैं जोकि प्रसिद्ध महा रत्न है । सागर के तल में एक विशेष प्रकार का कीट बड़ी–बड़ी सीपों के अन्दर मोती बनाते हैं । इन सीपों के अन्दर जो कीट रहता है उसकी वाहय त्वचा से एक प्रकार का स्त्राव निकलता है । इस स्त्राव के द्वारा प्याज के समान अनेक स्तरों से युक्त श्वेत पारदर्शक बड़े–बड़े मोतियाँ तैपार होती हैं । यह जन्तु अपृष्ठवंशी कहलाता है । प्रकार एवं स्थान भेद से यह कई किस्म का होता है । समुद्र में पैदा होने वाले सीप, तालाब या छोटे जलाशयों में पैदा होने वाले सीप । समुद्र में पैदा होने वाली सीप दो किस्म की होती है । एक सीप स्वातिनक्षत्र जल की बूंद को ग्रहणकर मोती बनाती है तथा दूसरी प्रकार की सीप साधारण होती है । साधारण सीप से शुक्ति भस्म तैयार की जाती है । इसे मुक्तगृह भी कहते हैं । श्वेतवर्ण की चमकीली, बजनदार, छिद्ररहित एवं स्पर्श में स्निग्ध मोती श्रेष्ठ होती हैं । अपारदर्शक, धूसर वर्ण की मोती हीन गुण मानी जाती है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राप्तिस्थान :—

यह मोती फारस, ईरान की खाड़ी, श्रीलंका, रामेश्वरम्, आदि समुद्रीयवर्ती क्षेत्रों में पाई जाती है । वर्तमान समय में जांपान आदि देशों में मोती का कीड़ा कल्चरकर मोतियाँ बनाई जाती हैं ।

गुणकर्म :—(1)

गुज–लघु, रुक्ष, रस–मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, त्रिदोषशामक, मस्तिष्कनाड़ीबल्य, चक्षुष्य, संग्राही, दाहशमन, रक्तपित्तशामक, हृद्य, आयुष्य, विषघ्न, वाजीकरण, एवं वल्य है ।

आमयिक प्रयोग :—

यह सर्वाङ्गदाह, अम्लपित्त, अग्निमांघ, रक्तचाप, भ्रम, मूर्च्छा, हृद्दौर्वल्य, श्वास, क्षतजकास, सन्निपातज्वर, प्रलाप, अन्त्रिकज्वर, श्वेत एवं रक्त प्रदर में उपयोगी है ।

शुक्तिभस्म उदर एवं आन्त्र के विकारों में विशेष उपयोगी है । यह उदरवात, उदरशूल गुल्म, अग्निवैषम्य में लाभ करता है ।

रासायनिक संगठन :—

मोती में कैल्सियम कार्बोनेट, एल्म्युमियम आक्साइड, कैल्सियम फास्फेट, मेग्नीजआक्साइड, अम्ल आदि तत्व पाये जाते हैं ।

मुख्ययोग :—

मुक्तापञ्चामृत, प्रवालपञ्चामृत, वसन्तकुसुमाकर, कामदुधारस, त्रैलोक्यचिन्तामणी, बृहद्धातचिन्तामणि, जहरमोहरायाकूती । चैतन्योदयरस, चिन्तामणिरस, हिक्कान्तकरस, महाकल्याणवटी, श्वासकास चिन्तामणि, मृगांकरस ।

नोट :— मोती के बाह्य कोष्ठ को सीप या मुक्ताशुक्ति कहते हैं । इसे साधारण जलाशयों एवं समुद्र में पाया जाता है । जिसका कि चिकित्सा प्रयोग होता है । इस सीप से भस्म तयार की जाती है इसे शुक्ति भस्म कहते हैं । मुक्ता की अपेक्षा इसमें हीन गुण होते हैं । मुक्ता के कई भेद होते हैं जिसमें शंखमौक्तिक, गजमोक्तिक, शूकरमुक्ता, सर्पजमौक्तिक, ये मोतियाँ विभिन्न प्राणियों के शरीर के विभिन्न अवयवों से प्राप्त की जाती है । इन मोतियों के अलग–अलग प्रभाव है । मत्स्य मौक्तिक दर्दुरमौक्तिक, वेणुमौक्तिक, शुक्ति मौक्तिक ।

6 प्रवाल

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... विद्रुम, प्रवाल, रक्ताङ्गम् ।
हिन्दी .... मुंगा, प्रवाल ।
लैटिन .... **Corallium rubrum**

परिचय :—

यह समुद्र में रहने वाला लालवर्ण के कीट विशेष द्रव्य है । इस कीट को एथाजोन पोलिप्स कहते हैं जोकि समुद्र में पाया जाता है । ये जन्तु आकृति में गोल तथा बीच में छिद्र युक्त होते हैं, आकार अंगूठी सदृश एवं बहुपादी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

होते हैं । स्त्री जाति के जन्तु एक समय लाखों की संख्या में अण्डे देता है । शनैः-शनैः ये अण्डे पूर्णजन्तु बनकर समुद्रतल में किसी अनुकूल स्थान में एक दूसरे के पैरों से गुथे रहते हैं । धीरे-धीरे ये कीट वृक्ष के आकार का रुप लेते रहते हैं । ये जन्तु समुद्रीय जल से अपना पोषण लेते हैं, नीचे भाग के जन्तु पहिले मरते हैं उपर के भाग में नवीन जन्तु पैदा होते रहते हैं । यह क्रम काफी समय तक चलता रहता है । समुद्र में द्वीपाकार रचना वन जाती है । इसको प्रवालद्वीप कहते हैं । प्राचीन संस्कृत सांहित्य में इसे विद्रुम सम्भवतः औद्भिज् द्रव्य मानने के कारण कहा गया होगा । वास्तव में समुद्र में वृक्षाकार द्रव्य प्राणिज द्रव्य होने के कारण ऐसा उल्लेख होगा। यथा – "बालार्क किरणा रक्ता सागरसलिलोद्भवा लतायस्ति" यह एक कठिन प्राणिज, पार्थिव द्रव्य विशेष है जिसके स्पष्टतया दो भाग होते हैं उपर के पतले शाखा वाले भाग को प्रवालशाखा एवं स्पञ्जनुमा वाले भाग को प्रवालमूल कहते हैं । विम्वी फल सघश रक्तवर्ण के गोल, मसृण, छिद्ररहित्, अबक्र, स्पर्श में चिकना, ठोस एवं सप्तगुण युक्त प्रवाल श्रेष्ठ माना जाता है । कसौटी पर घीसने पर जो प्रवाल अपनी कांसि एवं वर्ण को न छोड़े उसे उत्तम कहा गया है ।

प्राप्ति स्थान :—

यह यूरोप एवं अफ्रीका के भूमध्य सागर, इटली के समीप का उत्तरी समुद्र, वर्मा के दक्षिणी समुद्र एवं आस्ट्रेलिया के उत्तर में प्रवाल की सैकड़ों मील लम्बी चौड़ी चट्टानें पाई जाती हैं । ईटली के भूमध्य सागर की प्रवाल श्रेष्ठ रक्त वर्ण की होती है । लम्बी मीलों दूर की पक्तियाँ होने से इन स्थानों को प्रवाल द्वीप कहते हैं ।

गुणधर्म :— (1)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–मधुर, किंचितअम्ल, वीर्य–शीत, विपाक–मधुर, दीपन, पाचक, सारक, रक्तरोधक, त्रिदोष नाशक, चक्षुष्य, वीर्यवर्धक, सम, क्षय, कास, रक्तपित्त, रात्रिस्वेद, मस्तिष्कवल्य, भूतवाधा एवं नेत्ररोगों में उपयोगी है ।

मधु के साथ मूत्रकृच्छ्र, हृदयरोग, वातव्याधि में यह लाभ करता है । अपस्मार के रोगी के गले में बांधने से यह लाभ करता है । जीर्णप्रतिश्याय, कास, रक्तार्श, प्रमेह, अश्मरी, प्रदर आदि रोगों में प्रवालभस्म एवं प्रवालपिष्ठी उपयोगी है ।

क्षय, बालरोग, जीर्णज्वर, रक्तपित्त रक्तप्रदर में अनुपान भेद से देने पर विशेष लाभ करता है ।

मुख्ययोग :—

प्रवालपञ्चामृत, मुक्तापञ्चामृत, रक्तपित्तहररस, रसराजरस, वसन्तकुसमाकर, चन्द्रकलारस पित्तान्तकरस, क्षुधाषटकयोग ।

रासायनिक संगठन :—

प्रवाल में केल्सियम, मेगनेशियम, कार्बोनेट, सिलिका आदि तत्व पाये जाते है ।

7 शंख

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... शंड्ख, कम्बु ।
हिन्दी .... शंख ।
अग्रेजी .... **conch**

परिचय :—

यह समुद्रीय कीट का कठोर अस्थिमय खोल है । यह गोलाकार, वृहदाकार, बड़ा, स्निग्ध, सूक्ष्ममुख, छिद्ररहित, श्वेतवर्ण एवं भार में गुरु लक्षणों वाला उत्तम शंख माना जाता है । इस के शास्त्रकारों ने दक्षिणावर्त एवं वामावर्त दो

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भेद माने हैं । दक्षिणावर्त शंख दुष्प्राप्य एवं श्रेष्ठ गुणों वाला होता है । वामावर्त शंख प्रायः सर्वत्र सुलभ एवं चिकित्सा में प्रयुक्त होता है ।

प्राप्तिस्थान :—

यह प्रायः समुद्रीय तटों में प्रायः जामनगर, वंङ्गाल की खाड़ी, आदि स्थानों पर विशेष रुप से पाया जाता है ।

गुणधर्म :— (1)

गुण–लघु, तीक्ष्ण, रुक्ष, रस–कटु, वीर्भ–उष्ण, वातकफ शामक, त्वच्य, दीपन–ग्राही, शूलघ्न, गुल्मघ्न, आमयिक प्रयोग में यह अग्निमांघ, अजीर्ण, अतिसार ग्रहणी, शूल, गुल्म, उदररोग, अम्लपित्त, यकृत पील्हावद्धि, कास, श्वास, हिक्का, आमवात में उपयोगी है । वाह्य प्रयोग में नेत्रव्रण, शुक्ल, तिमिर, पोथकी, अर्म, में शंखनाभि को जल के साथ लेप या भस्म मधु में मिलाकर लगाते हैं । आम्यन्तर प्रयोग हेतु शंख भस्म का व्यवहार होता है ।

मुख्ययोग :—

प्रवालपञ्चामृत, मुक्तापञ्चामृत, लोकनाथरस, शंखद्राव, शंखवटी, चन्द्रोदयावर्ती ।

8 शम्बूक (घोंघा)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... शम्बूक, शूद्रशंख ।
हिन्दी .... घोंघा ।
अंग्रेजी .... **small conch**

परिचय :—

यह जलाशीय एवं समुद्री कीट का खोल है । यह घोंघा पानी से निकलकर सूखी जमीन पर भी घूमता हुआ पाया जाता है । इसकी आकृति शंख से कुछ मिलती सी होती हे । इसके खोल की भी भस्म तैयार की जाती है । यह प्राणि शाकहारी स्वभाव का है जोकि अनियमित व्यावर्तित चूने के बने वाह्य आवरण से ढका रहता है । कवच के चौड़े मुख पर एक ढक्कन होता है । शिर पर दो नेत्र तथा दो स्पर्शक युगल होते हैं । इसका पैर चपटा, एवं मांसल होता है ।

गुणधर्म :—

गुण–लघु, रुक्ष, रस –कषाय, विपाक–कटु, वीर्य – शीत, पित्त कफ शामक, दीपन, पाचन, ग्राही – शूलहर, ज्वरघ्न, शोथहर है । आमयिक प्रयोग में यह बाह्य कण्डू, पिड़िका, दद्रु ग्रन्थिशोथ में जल के साथ पीस कर लेप करते हैं । आम्यन्तर प्रयोग में यह अग्निमांघ, अजीर्ण, अतिसार, आध्मान, ग्रहणी, शूल, आदि विकारों में प्रयोग किया जाता है ।

रासायनिक संगठन :—

इसमें केल्सियम कार्बोनेट, मेग्नेशियम आक्साइड, अम्ल विलेय एवं जल विलेय द्रव्य पाये जाते हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोग :—

शम्बूकादिवटी, शम्बूकभस्म, शम्बूकाघतैल,

9 मुक्ताशुक्ति (शुक्ति)

इस द्रव्य का वर्णन मुक्ता (मोती) के प्रसं ङ्ग में कर दिया गया है । यह समुद्री मोती वाले कीट विशेष का खोल है । इसी कठोर खोल को मुक्ताशुक्ति या सीप कहते हैं इसका भस्म चिकित्सा में प्रयुक्त होता है । शुक्ति भस्म के गुण मुक्ता से मिलते हैं । देखिये मुक्ता ।

10 कपर्दिका (कौड़ी)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... कपर्दिका, वराटिका ।
हिन्दी .... कौड़ी ।
लैटिन .... **cyproea moneta**

स्वरुप :—

कौड़ी समुद्रीय एवं जलाशयीय छोटे कीड़ों का खोल है । यह – खोल छोटा, मध्यम एवं बड़े आकार का कीट के स्वरुप के अनुसार होता है । कौड़ी छोटी सफेद, पीली और लाल रंग की मानी जाती है । इसमें पीली दीर्घवृन्तवाली, ग्रन्थियुक्त एवं वजनदार कौड़ी की भस्म श्रेष्ठ मानी जाती है । भस्म बनाने से पूर्व कौड़ी को कांजी एवं नींबू के स्वरस में शोधन करते हैं ।

गुणधर्म :— (1)

गुण–लघु, तीक्ष्ण, रुक्ष, रस–कटु, विपाक–कटु कर्म–वात–कफ शामक, त्वच्य, दीपन, पाचन, ग्राही, शूलघ्न, एवं गुल्म नाशक है ।

आमयिक प्रयोग :—

कपर्दिका भस्म अजीर्ण, छर्दि, अग्निमांध, अतिसार, ग्रहणी, परिणामशूल, शूल, शुल्म, उदररोग, अम्लपित्त, यकृत प्लीहावृद्धि, कास – श्वास, हिक्का, एवं आमवात आदि व्याधियों में उपयोगी है । वाह्य प्रयोग में यह नेत्र व्रण, तिमिर, पोथकी, अर्म, आदि में घिसकर लेप मधु में मिलाकर अंजन के रुप में प्रयोग करते हैं ।

वक्तव्य :—

अम्लपित्त में आमलकी चूर्ण के साथ, गुल्म, शूल, अग्निमांघ में त्रिकटु, यवसार, हिंगुचूर्ण के साथ, अतिसार एवं संग्रहणी में निम्बुस्वरस के साथ प्रयोग करते हैं ।

मुख्ययोग :—

मुक्तापञ्चामृत, प्रवालपञ्चामृत, लोकनाथ-रस, शंखद्राव, शंखवटी, चन्द्रोदयावर्ती ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

11 गंधमार्जार (खट्टाशी)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... गंधमार्जार ।
हिन्दी .... खट्टाशी ।
अरवी .... जुन्दवेदस्तर ।
लेटिन .... **custorium**

स्वरुप :—

यह हरिण जाति विशेष ऊदविलाव प्राणी की त्वचा विहीन दो वृषण ग्रन्थियाँ हैं । ये वृषण 62 से 75 मिलि0 मी0 दीर्घ, गहरे, भूरे, श्यामवर्ण की पीताभ रक्त एवं तीव्र सुगन्धित होते हैं । गंध मार्जर रक्त, पीत, कृष्ण वर्ण भेद से तीन प्रकार का होता है ।

प्राप्तिस्थान :—

यह हिरणजाति का प्राणी उत्तरी भारत, यूरोप, उत्तरी अमेरिका, आदि स्थानों के वन्य क्षेत्रों में पाया जाता है ।

गुणकर्म :— (1)

गुण–लघु, रुक्ष, रस–कटु, तिक्त, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–वात–कफशामक, वेदनास्थापन, नाड़ीवल्य, आक्षेपशमन, शोथहर, शीतप्रशमन, मूत्रल, आर्तवजनन, एवं विषघ्न है ।

आमयिकपयोग :—

नाड़ीदौर्वल्य, अर्दित, अपस्मार, योषापस्मार, अपतन्त्रक, श्वास–कास, पक्षाघात, कुकरकास, सन्निपात, मूत्राघात, नष्ठार्त्तव, ध्वजमंग एवं नपुंसकता में उपयोगी है ।

12 इन्द्रगोप (बीरबहुटी)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... इन्द्रगोप, इन्दूवधू ।
हिन्दी .... वीरवहूटी ।
लैटिन .... **Mutella Oceidentalis**

स्वरुप :—

वीरवहूटी वर्षा ऋतु में रेतली एवं नमदार स्थानों पर रक्तवर्ण का एवं मखमल के समान नरम एवं रेगने वाला कीड़ा है । सूखने पर यह केसरिया रंग का हो जाता है । स्पर्श करने पर संकुचित होने से इसे इन्द्रवधू कहते हैं । वर्षाकालीन कीड़ा होने से इन्दुगोप कहते हैं ।

गुणकर्म :—

गुण–रुक्ष, रस–तिक्त, कषाय, विपाक–कटु वीर्य – उष्ण, कर्म – वातकफ शामक, नाड़ीबल्य आक्षेपशमन, संकोचक, श्वासकासहर, ज्वरघ्न, वाजीकर, आम्यन्तरिक प्रयोग में यह पक्षाघात, आर्दित, सन्धिवात, अपतन्त्रक, आक्षेप, मसूरिका, ज्वर, ध्वजभंग, शीघ्रपतन, क्लैव्य एवं एवं बालशोष में उपयोगी है । वाहय प्रयोग में भी ध्वजवभंग, में लिङ्गेन्द्रिम पर इसका लेप किया जातां है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

13 कर्कटक

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... कर्कटक, कुलीर ।
हिन्दी .... केकड़ा ।
लैटिन .... **Seillaserrata**

स्वरुप :—

यह समुद्र, नदियों, झरनों एवं कीचड़ में पाये जाने वाला जान्तव है । इसका शरीर दो भागों में विभक्त, अग्र भाग – शिरोवश एवं पिछला भाग उदर कहलाता है । शिरोवस पूर्ण रुप से कवच से आवृत रहता है । इसमें 5 उपांग होते हैं । वर्ण भेद से यह कृष्ण एवं श्वेत दो प्रकार का होता है ।

गुणकर्म रु. (1)

गुण–स्निग्ध, गुरु, रस–मधुर, विपाक–मधुर, वीर्य–शीत, कर्म–वातपित शामक, कफवर्धक, बल्य, वृंहण संन्धानीय, रक्तपित्तशामक, अनुलोमन, मृदुरेचन, मूत्रल, है । आभ्यन्तरिक प्रयोग में जीर्णकास, क्षयजकास, राजयक्ष्मा, आन्त्रक्षय, अस्थिक्षय, अस्थिमज्जाशोथ, रक्तपित्त, वातरक्त, वालशोष एवं शुक्रदौर्वल्य में विशेष उपयोगी है ।

मुख्ययोग – कर्कटकभस्म ।

14 कच्छप (कछुआ)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... कच्छप, कूर्म, गूढ़पाद ।
हिन्दी .... कछुआ ।

स्वरुप :—

यह सुपरिचित जलचर अण्डज प्राणी है, यह चतुस्पाद युक्त एवं कठिन आवरण से ढका रहता है । शरीर मृदु और कोमल होता है आवरण बहुत कठोर होता है । भुजायें चपटी, पतवार सघश एवं पूंछ छोटी होती है । इसमें नासिकारन्ध्र एक होता है । कच्छप के पृष्ठभाग को पृष्ठवर्म कहते हैं । चिकित्सा में इसी भाग का प्रयोग होता है ।

गुणकर्म :—

गुण–स्निग्ध, रस–मधुर, विपाक–मधुर वीर्य–शीत, वातपित्त शामक, श्लेष्मवर्धक, वृंहण बल्य, रक्तपित्तशामक, क्षयहर, शोणितस्थापन, राजयाक्ष्मा बालशोष, फक्वरोग, अस्थिक्षय–एवं कैल्सियम अभाव जन्य विकारों में कच्छपभस्म उपयोगी है ।

15 नख

द्रव्यनाम...................... संस्कृत .... नख, नंखी, व्याघुनख ।
हिन्दी .... नख ।
लैटिन .... **Helixarpera**

स्वरुप :—

यह नख की आकृती वाला समुद्रीय जन्तु के मुख का वाहय आवरण है । यह जन्तु शक्ति वर्ग का है । यह गहरे भूरे रंग का, अपारदर्शक, नखाकृतिसघश, अनेक पटलों वाला एवं कठोर होता है । इसको जलाने पर चर्मवत् दुर्गन्ध आती है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुणधर्म :—

गुण–लघु, रुक्ष, रस–कटु, मधुर, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कर्म–वात–कफशामक, वर्ण्य, शोथहर, आक्षेपशमन, दीपन, अनुलोमन, यकृतदुत्तेजक, कुष्ठघ्न, विषघ्न, मूत्रल, शुक्रल एवं आर्तवजनन है ।

आम्यन्तरिक प्रयोग में यह अग्निमांध उदावर्त, रक्तविकार, वातरक्त, कुष्ठ, उन्माद, अपस्मार, आक्षेप, मूत्रकृच्छ्र, गर्भाशयशोथ एवं नस्ष्ठार्तव में उपयोगी है । वाहयप्रयोग में यह व्रण, शोथ, व्यंग में लेप के रुप में प्रयोग किया जाता है।

मुख्ययोग :—

शैलेयकादितैल, अमृततादितैल, शतपुष्पादितैल, घूम्रपानवर्ती आदि कतिपय तैलकल्पनाओं में इसका प्रयोग किया जाता है ।

16 भूनाग (केंचुवा)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... भूनाग, गण्डूपद ।
हिन्दी .... केंचवा ।
लैटिन .... **Pheretima postturne**

स्वरुप :—

केंचवा प्रायः वर्षाऋतु में नमदार एवं गन्दे स्थानों में पर पाया जाता है । यह उभयलिंड्गी प्राणी है जोकि लम्बाई में 20 से. मी. तक, वलयाकार, रक्ताभवर्ण का एवं मसृण होता है । वाहय त्वचा स्निग्ध, मृदु एवं श्वेत नीलाभ रक्त होती है । प्रायः वर्षा काल में यह सर्वत्र पाया जाता हे ।

गुणकर्म :—

गुण–स्निग्ध, रस–अम्ल, लवण, विपाक–उष्ण, शोथहर, मूत्रजनन, अश्मरीनाशक, बलय, शोषहर, एवं वाजीकर है । आम्यन्तरिक प्रयोग में यह शौथ मूत्रघात, मूत्रकृच्छ, अश्मरी, क्षय, शोष, वालशोष आदि में उपयोगी है । वाहय प्रयोग में इससे सिद्ध तैल का प्रयोग वातव्याधि, आमवात, बालशोष, में अभ्यड्ग किया जता है । यूनानी हकीम अपनी चिकित्सा में विशेष रुप से प्रयोग करते हैं । महर्षि चरक ने राजयक्ष्मा के रोगी को केंचुए को आहार के रुप में देने का निर्देश किया है ।

रासायनिक संगठन :—

इसमें मुख्यरुप से ताम्र पाया जाता है जोकि सत्व पातन विधि से पृथक किया जा सकता है ।

17 पित्तपंचक

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... पित्त, मायु ।
हिन्दी .... पित्त ।
अंग्रेजी .... **Bile**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गण :—

महर्षि चरक ने पित्तपञ्चक का उल्लेख कटुकस्कन्ध में किया है । मुख्य रुप से जंगली सुअर, बकरी, मयूर, रोहूमच्छली, बिल्ली भैंसा आदि के यकृत के पित्त कोष में संचित होने वाला द्रव्य विशेष है जिसे पित्त पञ्चक कहते हैं। कुछ ग्रन्थकारों में मछली, घोड़ा, गाय, मनुष्य एवं मयूर के पित्त को पित्तपञ्चक माना है ।

गुणकर्म :—

गुण–तीक्ष्ण, सर, द्रव, स्निग्ध, रस–कटु, विपाक–कटु वीर्य–उष्ण, कर्म–वातकफ शामक, पित्तवर्धक, पित्त निःस्सारक, जीवाणु नाशक, मृदुरेचक, कटुपौष्ठिक, मूत्रण, विषघ्न है । आमयिक प्रयोग में यह उन्माद, अपस्मार, अर्श, कुष्ठ, अजीर्ण, अग्निमांघ, ग्रहणी, शूल एवं कष्ठार्त्तव में उपयोगी है । वाह्य प्रयोग में उन्माद, अपस्मार एवं वालग्रह में पित्तञ्चक से साधित तैल का अञ्जन, नस्य एवं अभ्य ङ्ग करते हैं ।

मुख्ययोग :—

मृतसंजीवन अगद, मांस्यादिलेप, ऋषभागद, ज्वरनागमयूरं चूर्ण ।

18 कोश (आवरेशम)

द्रव्यनाम......................	संस्कृत	कोश ।
	हिन्दी	रेशम का कोया ।
	अरबी	आवरेशम ।
	अंग्रेजी	**Silk pod**

स्वरुप :—

यह रेशम के कीड़ा का बाह्य आवरण का कोश है । इसका भोजन शहतूत की पत्तियों पर निर्भर करता है । इस कीट की आकृति तितली के समान होती है । यह लगभग 25 मी0 मी0 लम्बा तथा भूरे वर्ण का होता है । यह कीट शिर, वक्ष एवं उदर तीन भागों में विभक्त होता है । इस कीड़े के मुख से एक लार निकलता है जोकि तार के समान होता है । यह तार से अपना कोश सा बना लेता है । जिसमें स्वयं यह कीट आवृत हो जाता है । यह नलिकाकार कोश रेशम की ग्रन्थियाँ बनाती है । इन ग्रन्थियों से एक तरल द्रव्य निकलता है जो वायु के सम्पर्क से शीघ्र रेशम के सूत्र में परिवर्तित हो जाता है जिसे रेशम का कोया या कोश कहते हैं ।

यह कोश पीताभ श्वेत, हल्का अण्डाकार दोनों भागें पर नुकीला, वाह्यस्तर चर्मवत् एवं उपर रेशम की सूत्रों की गुच्छाकृति रचना होती है ।

गुणधर्म :—

रस–मधुर, गुण–रुक्ष, विपाक–कटु, चक्षुष्य, दीपन, मस्तिष्कवल्य शामक, हृद्य, श्वासकासहर, यकृदुत्तेजक, पौष्ठिक ।

आमयिक प्रयोग :—

रेशम का कोया जलाकर सघोव्रण पर लेपन करने से रक्तस्त्राव बन्द हो जाता है एवं व्रण का शीघ्र रोपण होता है । इसका भस्म नेत्रकण्डू, नेत्रव्रण एवं नेत्रस्त्राव में अंजन के रुप में प्रयोग किया जाता है । आभ्यन्तरिक प्रयोग

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में यह हृदय दौर्वल्य, नाड़ीदौर्वल्य, उन्माद एवं सन्निपातज्वर में प्रयोग किया जाता है । यूनानी चिकित्सा में आवरेशम का विशेष रुप से उपयोग होता है ।

19 मधु (शहद)

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... मधु, क्षौद्र, माक्षिक, पुष्परसोद्‌मव, मक्षिकावान्त ।
हिन्दी .... मधु, शहद ।
अंग्रेजी .... **Honey**

मधुमक्खी का सामान्य परिचय :—

घरेलू पालतु सभी मक्खियाँ एक प्रकार की होती हैं । परन्तु एक मधुमक्खी के छत्ते में तीन प्रकार की मक्खियाँ पाई जाती हैं ।

1 – सबसे बड़ी मधुमक्खी को रानी मक्खी कहते हैं ।
2 – इससे छोटी मधुमक्खी नुकीला न होकर चौड़ा होता है नर मक्खी कहते हैं ।
3 – जो सबसे छोटी मधुमक्खी होती है उसे कमेरी या मजदूर मक्खी कहते हैं ।

रानीमक्खी :— प्रत्येक छत्ते में रानी मक्खी होती है जैसे–जैसे छत्ते में कोष्ठ तैयार होते जाते हैं वे घूम–घूम कर प्रत्येक कोष्ठ में अण्डे देती जाती है । यह क्रम कई महीने चलता है । प्रत्येक मौसम में रानी मक्खी लगभग 100000 अण्डे देती है ।

नरमक्खी :— एक छत्ते में लगभग 200 नरमक्खियाँ होती हैं । जो कोई न काम करके आलस्य में पड़ी रहती हैं । परन्तु इनके बिना रानी मक्खी अण्डे नहीं दे सकते, इसलिये इनका रहना अनिवार्य है ।

कमेरीमक्खी :— एक छत्ते में कमेरी मक्खियों की संख्या 60,000 तक होती है । छत्ते का सारा कार्य कमेरी मक्खियाँ करती हैं । ये कमेरी मक्खियाँ फूलों से पराग एकत्र करती हैं यह उनका आहार है । कुछ कमेरी मक्खियाँ फूलों का मकरन्द (रस) अपने पेट में भर लाती हैं तथा छत्ते के कोष्ठ में उलट देती है फिर अपने पैरों से पंखा करके उसी से मधु बनाती है । कुछ कमेरी मक्खियाँ छत्ता बनाने तथा उसकी मरम्मत का कार्य करती हैं । इनके शरीर के निचले भाग में मोम की थैलियाँ होती हैं । जिसे अपने पैरों से खुरच कर कोष्ठ की दीवारों में लगाती हैं । कुछ कमेरी मक्खियाँ चौकीदारी का कार्य करती हैं । ये अपने बाहरी शत्रु से रक्षा के लिये उनसे युद्ध करती हैं ।

मधुमक्खी का जीवन चक्र :— मधुमक्खी के जीवन चक्र को चार भागों में बांटा जा सकता है । 1 अण्डा, 2 जातक, 3 कोशित, 4 मधुमक्खी।

मधु के भेदः एवं वर्णन :—:

यह एक प्रसिद्ध मीठा पदार्थ है । जिसको अनेक प्रकार की मधुमक्खियाँ अनेक प्रकार के फूलों का रस संग्रह करके अपने छत्तों में रखती हैं । इसके छत्तों के कोषों में मधु संग्रह की जाती हैं जिनमें कुछ छोटे–छोटे अण्डे भी होते हैं । छत्तों को निचोड़कर शहद निकाली जाती हैं । छत्तों को पकाकर मोम तैयार किया जाता है । मोम को संस्कृत में मधूच्छिष्ठ एवं अंग्रेजी में wax कहते हैं ।

भेदः 1 माक्षिक 2 भ्रामर, 3 क्षौद्र, 4 पौत्तिक 5 छात्र, 6 आर्घ्य, 7 औद्दालक, 8 दाल ।

1 – माक्षिकमधु – पिंग वर्ण वाली जो बड़ी मधुमक्खियाँ होती हैं, उनके द्वारा उत्पन्न किये गये मधु तैलवर्ण वाला मधु को मासिक कहते हैं । इसका शहद स्वाद में कुछ कड़वा होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2 – **भ्रामरमधु** – भ्रामरमधु भौरों से बनता है । ये भ्रमर घने जंगलों तथा अन्धेरे में रहते हैं । इनके दंश विष से आदमी मर भी सकता है । यह मधु श्वेत वर्ण का होता हैं जोकि पार्वत्य प्रदेशों में मिलता है ।

3 – **क्षौद्रमधु** : यह मधु घर में पालने वाली शहद की मक्खी से बनता है । इस मक्खी को आजकल स्थान–स्थान पर पालकर शहद तैयार किया जाता है । यह मधु लाल रंग का होता है ।

4 – **पौत्तिकमधु** – यह मधु बड़ी शहद की मक्खियाँ बनाती हैं इनके काटने से बड़े चकते शरीर पर पड़ जाते हैं । पहाड़ों की तलेटियों या कम उँचे पहाड़ों पर प्रायः शहद बनाती हैं । इनका शहद पीला होता है । जंगली कोल भिल्ल आदि लोग इसे पौत्तिक मधु कहते हैं ।

5 – **छात्रमधु** – यह प्रायः हिमालय के जंगलों कपिल एवं पीतवर्ण की मक्खियाँ होती हैं । ये छत्ते की आकार का घर बनाती हैं ।

6 – **आर्ध्यमधुः**– महुवे के वृक्ष से जो गोंद बनता है उसे आर्घ्य कहते हैं । मालवादेश वासी इसे श्वेत्तक कहते हैं । कुछ लोग भौरों के समान आकार पीले रंग की तथा तीक्ष्ण मुख वाली जो मधु मक्खियाँ होती हैं उन्हें आर्घ्य कहते हैं ।

7 – **औद्दालकमधु** – यह प्रायः करके बाल्मीक के अन्दर रहने वाले कपिलवर्ण के छोटे–छोटे कीड़े होते हैं एवं थोड़ी मात्रा में मधु बनाते हैं उन्हें उद्दालक कहते हैं ।

8 – **दालमधु** : फूलों से टपककर जो पुष्परस पत्तों पर गिरता है तथा मधुर अम्ल एवं कषाय रस युक्त होता है उसे दालमधु कहते हैं ।

उत्पत्ति एवं प्राप्ति स्थान :—

शहद मधुमक्खी नामक कीट के छत्ते से प्राप्त होती है । ये मधुमक्खियाँ फूलों के रसों को चूसकर अपने छत्ते में उलट देती हैं । साधारणतया मधु हर जगह प्राप्त होता है । ये मधुमक्खियाँ पुराने खण्डहरों के छत्तों, दीवारों, पेड़ों की डाली, बागों एवं वनों के पेड़ों पर बहुतायत से इनके छत्तें पाये जाते हैं । घरों में पालतू मधुमक्खी हेतु लकड़ियों के बक्से (कोटर) बनाये जाते हैं । यह मैदानी भागों के जंगलों से लेकर पहाड़ी प्रदेशों तक मधुमक्खी के कीट पाये जाते हैं ।

गुण :— (2)

मधु मधुर, कषायानुरस, रुक्ष, लघु, शीतल, दीपन, लेखन, वल्य, संन्धानकर, चक्षुष्य, खर, हृघ, वाजीकर शोधन, रोपण, प्रसाधन, शरीर के सूक्ष्म भागों तक पहुँचने वाला, मेघाकर, विशद, रोचन, त्रिदोषहर, परमयोगवाही, तथा मेदोरोग, प्रमेह, श्वास, कास, अतिसार, वमन, तृषा, शोष, रक्तपित्त कृमि, दाह, और क्षत को दूर करने वाला है । माक्षिक मधु सभी मधुओं में श्रेष्ठ नेत्ररोगों में उपयोगी लघु, कामला, अर्श, क्षत, श्वास, कास और क्षय को नष्ट करता है । नया मधु पुष्ठिकारक, किञ्चित्‌कफकारक तथा सारक होता है । पुराना मधु ग्राही, रुक्ष, लेखन गुण विशिष्ठ, मेदा रोगोपयोगी होता है ।

एक वर्ष तक रखे हुये मधु को पुरातन मधु कहा जाता है ।

रोगानुसार मधु के प्रयोग :—

1 मधु में अनेक प्रकार के उपयोगी तत्व विटामिन, ग्लुकोज, एण्टिबायोटिकतत्व, आदिविद्यमान होने के कारण यह योगवाही माना जाता है । यही कारण है कि औषध के अनुपान में मधु की विशेष उपादेयता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(1) अग्निदग्ध व्रण में मोमश्रित मधु पंख से लगाने पर काम करता है ।

(2) कुचले के विष में मधु – मिश्री एवं धृत उपयोगी होता है ।

(3) बिच्छु के दंश स्थान पर मधु का लेप उपयोगी होता है ।

(4) भेद रोग में मधु प्रातःकाल गरम पानी के साथ प्रयोग करें ।

(5) उदररोगों में बढ़ी हुई अम्लता में मधु उपयोगी है ।

(6) दाह, तृषा में जल में घोल कर मधु देने से लाभ होता है,

(7) हिंसक जानवरों के काटने पर विष को दूर करने के लिये पानी के साथ मधु मिलाकर दें ।

(8) चोट लगे हुये स्थान पर हल्दी, चूना एवं मधु मिलाकर लगाने पर वेदना शान्त होती है एवं व्रण जल्दी ठीक हो जाता है ।

(9) कटे हुये स्थान पर कपड़े पर शहद रखकर जलन नष्ट हो जाती है । व्रण का रोहण करता है ।

मधु का हानिकारक प्रभाव

(1) मधु में घी समान मात्रा में मिलाने पर उसमें विष उत्पन्न हो जाता है ।

(2) मधु के साथ मूली, कटहल का सेवन आहार विरुद्ध है ।

(3) अधिक गर्म दूध एवं अधिक गर्म पानी में मधु डालकर नहीं पीना चाहिये ।

(4) मांस, मछली और मकोय का मधु के साथ मिश्रण हानिकारक है ।

(5) मधु का प्रयोग तेज धूप चलने पर तथा पसीना आने के बाद नहीं करना चाहिये ।

(6) मधु हृदय रोग की एक उपयोगी औषधि है । जब हृदय गति शिथिल हो जाय तो मधु के प्रयोग से शक्ति मिलती है । हृदयगति तीव्र हो जाती है । मधु आतों को बल देता है । मधु वात तथा कफ प्रकृति मनुष्यों के लिये सर्वोत्तम औषध है । यह शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति प्रदान करता है । मधु जितना पुराना होता है उतना अधिक गुणकारी माना जाता हे ।

आधुनिक वैज्ञानिक भी मधु को पौष्टिक मानते हैं । इसमें विटामिन तथा प्रोटीन पाई जाती है । एक किलो में लगभग 3000 कैलोरी गर्मी होती है । इसमें पाये जाने वाले खनिज तत्व एवं शर्करा सुपाच्य होती है । तथा रक्त में घुल कर मिल जाते हैं । रक्त में लाल रंग का हिमाग्लोबीन आसानी से आक्सीजन के साथ मिल जाता है । मधु में लोहा काफी मात्रा में पाया जाता हे ।

रासायनिक संगठनः :—

मधु में शर्करा के अतिरिक्त लोहा, तांबा, चूना, फास्फोरस, पोटेशियम, गंधक, मैग्नीज़ आदि खनिज पाये जाते हैं। साधारणतया मधु की रचना में तीन तत्व मुख्य रुप से पाये जाते हैं ।

1 फ्रक्टोज 50% प्रतिशत तक

2 ग्लुकोज 38% पतिशत तक

3 पानी 20% पतिशत तक ।

इसके अतिरिक्त विटामिन, प्रोटीन, अम्ल, खनिज, रंगपदार्थ एवं कैरोटीन होते हैं । निकोटिकअम्ल एवं फोलिकअम्ल विशेषतया पाये जाते हैं ।

मधु के शास्त्रीय योग :—

मध्वरिष्ठ, मधुकासव, क्षौद्रादिपान, मधुगण्डूष, गण्डमालाहर योग ।

मधु शोधन विधि :—

एक जल भरे हुये पात्र के बीच में शहद भरा हुआ पात्र रखकर जल को उतना गरम करें कि शहद पतला हो जाय । बाद में उसे नीचे उतारकर छान लें । हिमालय की पहाड़ियों का मधु श्वेतवर्ण का अन्य स्थानों का पिलाई या ललाई लिये हुये श्वेत वर्ण का होता है । परिक्षा – मधु के बर्तन में मक्खी डूब जाय एवं पुन निकल कर उड़ जाये तो मधु असली है एवं मक्खी मर जाय तो उसे नकली समझना चाहिये ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सिक्थ (मोम के) गुण :– मोम मधुर, कटु, स्निग्ध, भूतघ्न, (मधुच्छिष्ठ) वृण रोपण एवं मरे हुये अंग का रोपण करने वाला, मग्न अस्थि का संधान करने वाला एवं कण्डूनाशक होता है । गुण–स्निग्ध, रस–मधुर, वीर्य–शीत, विपाक–मधुर, वातपित्तहर, व्रणरोपक, कुष्ठ विसर्म में उपयोगी । व्रणधूपन, विपादिकाहरमलहम, मदनादिप्रलेप, उपदंशहर धूम आदि योग मोम से संचार किये जाते हैं ।

तैल – पञ्चगुणतैल, पार्श्वशूलहरमलहम, वातशूलान्तकमरहम श्वेतमरहम विशेष उपयोगी हैं ।

20 मयूर (मोर)

द्रव्यनाम........................संस्कृत ....मयूर, चन्द्रकी, शिखि, मयूरपिच्छ, शिखण्डी, मेघराव, कलापी ।
हिन्दी ....मोर ।

सामान्यपरिचय :— मोर भारत का राष्ट्रीय पक्षी है, इस की गणना देश के सुन्दर पक्षियों में की जाती है । मोर वर्षाकाल में घनगर्जन से प्रसन्न होकर अपनी केका वाणी बोलते हैं । पंख फैल कर बहुत सुन्दर रुप से नृत्य करते हैं । कालिदास ने अपने संस्कृत साहित्य में मोर का विशेष उल्लेख किया है ।

नर मोर पूंछ के बिना 40 से 46" तक तथा मादा 38" लम्बी होती है । नर मोर मादा दोनों के सिरों पर छोटे परों की एक सुन्दर कलगी या शिखा होती है । इसी कारण इसे शिखि कहते हैं । नर की शिखा मादा की कलगी से बड़ी होती है ।

मोर के शरीर में कई रंगों का अदभुत नयनानन्दकारी संमिश्रण होता है । यह पक्षी अपने सुन्दर चमकीले, स्निग्ध, नयनरम्य पंखों के कारण आकर्षक एवं मनमोहक होते हैं । आकर्षक एवं विशिष्ठ गुणों वाला होने से मोर सरस्वती देवी का वाहन माना जाता है तथा भगवान कृष्ण के मुकुट का प्रमुख आकर्षण के लिये प्रयोग में लाते हैं । धार्मिक स्थानों में पूजा आदि में मोरपंखी का व्यवहार होता है ।

प्राप्तिस्थान :— मोर भारत में प्रायः सभी प्रान्तों में पाया जाता है । हिमालय की पर्वत मालाओं 5 हजार फीट की ऊँचाई तक यह सर्वत्र पाया जाता हे । गांवों के समीप, खेतों के आस–पास के वनों में मोर पाये जाते हैं । प्रायः यह पेड़ों पर निवास करता है ।

मयूरपिच्छ के गुण धर्म :— (1)

गुण–लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रक्ष–तिक्त, कषाय, वीर्य–उष्ण, विपाक–कटु। यह वातकफ शामक है । प्रकुपित उर्ध्वगतवायु का शमनकर्त्ता, छर्दि, हिक्का और कास नाशक है ।

मयूपिच्छ भस्म को पीपल के चूर्ण के साथ मिलाकर शहद के साथ चाटने से कास, हिक्का, और श्वास नष्ट होता हे । मयूरपंख में ताम्र खनिज पाया जाता हे । प्रयोज्यअंग मयूरपिच्छ भस्म 250 मि. ग्राम0 500 मि0 ग्राम ।

योग – हिक्काहरयोग, शिखिबर्हादिधूमागद । मयूराघ्यघृत ।

21 मूत्र

मूत्र के भाषापरक पर्याय :—संस्कृत .... मूत्र, मेहनं, पुस्त्रवणं, स्त्रवणम्
हिन्दी..................... पेशाब, मूत्र
अंग्रेजी.................... Urine

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परिचय :—

आयुर्वेदीय चिकित्सा में मुख्यतया गाय, बकरी, भेड़, भैस, हाथी, ऊंट एवं गधा इन आठ प्राणियों के मूत्र का विधान है। इसके अतिरिक्त नरमूत्र का प्रयोग का भी आजकल विशेष परिचलन है। इनमें गाय, बकरी, भैस एवं भेड़ इन चार का स्त्री लिंग का मूत्र एवं हाथी, घोड़ा, गधा और ऊंट इन चार पुलिंग का मूत्र उपयोग का विधान है। इन आठों मूत्रों को मूत्राष्ठक कहते हैं।

मूत्र का स्वरूप :— प्राकृत मूत्र लोहित, पीत वर्ण का होता है इसमें यूरोविलनन, यूरोएरिथ्रिन तथा यूरोक्रोम पाया जाता है। यह पारदर्शक होता है। विकृत अवस्था में अनकों लवणों, खनिजों एवं अम्लता की अधिकता पाई जाती है। यूरिया के विघटन से मूत्र में अमोनियाँ की गन्ध आती है। मूत्र की अम्लता प्रातः काल सर्वाधिक होती है। भोजन के कुछ घण्टों बाद मूत्र उदासी या क्षारीय हो जाता है।

गुणधर्म :.(1)

गुण–लधु, रुक्ष, तीक्ष्ण, रस–कटु, लवण, विपाक–कटु, वीर्य–उष्ण, कफवात शामक, तथा पित्त संशोधन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक एवं कृमिघ्न ।

शोथहर, वेदना स्थापन, विषघ्न एवं लेखन है। हृध, रक्तशोधक, रक्तवर्धक, तथा शोथहर है। आर्तवजनन एवं कुष्ठघ्न हैं। आठों प्राणियों के मूत्र का चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। अलग–अलग से भी गुणों का उल्लेख किया गया है। इन सभी में गाय का मूत्र श्रेष्ठ है।

1. गाय का मूत्र :– (2) कृमि, त्वचा के रोग एवं कण्डु नाशक माना गया है। सुश्रुत मतानुसार गोमूत्र कटु, तीक्ष्ण एवं उष्ण होता है। क्षारयुक्त होने से वातवर्धक नहीं होता है। यह लघु, अग्निदीपक, मेध्य, पित्तजनक एवं कफवातशामक होता है। मूत्र, गुल्म, उदररोग में उपयोगी। कण्डू, नेत्ररोग, मुखरोग, पाण्डु एवं रक्तविकारों में उपयोगी है। शास्त्र में जहाँ पर केवल मूत्र शब्द का उल्लेख ही वहाँ पर गोमूत्र लेना चाहिये।.

2. बकरी का मूत्र :– (3) कषाय एवं मधुर रस युक्त सुश्रुत ने इसे कास, श्वास, शोफ कामला एवं पाण्डु रोग हर माना है। यह कटु एवं तिक्तरसयुक्त होता है। कुछ वायु को कुपित करता है। कर्णशूल एवं मलावरोध में यह हितकर माना गया है।

3. भेड़ का मूत्र :– तिक्त रस युक्त, स्निग्ध, पित्तविरोधी, अर्थात् पित्त वर्धक नहीं होता है। यह कास, पील्हा वृद्धि , उदररोग, श्वास, शोष एवं विवन्ध में हितकारी है।

4. भैंस का मूत्र :– यह अर्श, नासार्श, शोफ एवं उदररोगों में उपयोगी है।

5. हस्तिमूत्र :– लवणरसयुक्त, कृमि, कुष्ठ, विवन्ध, वद्धमूत्र, कफरोग एवं अर्श में उपयोगी माना गया है।

6. उष्ट्रमूत्र :– तिक्तरसयुक्त, श्वास, कास एवं अर्श रोग नाशक है। ऊंटनी का मूत्र कुष्ठ, उदररोग, उन्माद, वातविकार, मूत्र शोध एवं कृमिरोग में उपयोगी है।

7. अश्वमूत्र :– तिक्त एवं कटुरस युक्त होता है। यह कुष्ठ, व्रण तथा विष दोष नाशक है। इसके अतिरिक्त यह कृमिरोग एवं दद्रु में उपयोगी है।

8. खरमूत्र (गधा) :– अपस्मार उन्माद तथा ग्रहदोषनाशक सुश्रुत मतानुसार यह उन्मादादि चित्त विकारों में उपयोगी है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

9. मनुष्य का मूत्र :– (5) नर का मूत्र गरविष नाशक पामानाशक, तीक्ष्ण, क्षारीय एवं लवण रस वाला होता है। यह सर्प विष में पिलाया जाता है।

गोमूत्र के औषधोपयोग :– विषों एवं खनिजों के शोधन एवं मारण हेतु गोमुत्र का प्रयोग किया जाता है।

2. उदररोगहरमूत्रवर्ति, पानीयसार, सर्पविषहर, क्षारागद, करवीराद्यतैल वृश्चिक विषारियोग, उन्मादहर नस्य, विल्वादि तैल पाण्डुहरमूत्र योग, गोमूत्रदिसार, जंगल में चरने वाली बकरी के $2\frac{1}{2}$ तोले गोमूत्र में अरण्यजीरक 3 ग्राम पीसकर गोमूत्र में मिलाकर एवं उसे छानकर पीने से राजयक्ष्मा में लाभ होता है।

22 समुद्रफेन

द्रव्यनामण्...................... संस्कृत .... समुद्रफेन, फेन, हिण्डीर ।
हिन्दी .... समुद्रफेन ।
लैटिन ....**Sepial offilinalis**

परिचय :—

समुद्रफेन समुद्रीजीव मसीमत्स्य का अस्थिमञ्जर या कवच है। जो कुछ समय बाद विशेष आकृति का हो जाता है और समुद्र के पानी से तैरता हुआ किनारे आ लगता है। बाजार में समुद्रफन के टुकड़े 1 से 3 चोड़े 5 से 100 लम्बे होते हैं। समुद्रफेन लम्बा, चपटा, आयाताकार, अण्डाकार एवं सफेदी लिये भगुंर होता है। इसकी वाह्यसतह कई परतों की बनी हुई होती है। भीतरी सतह कठोर, सुषिर एवं आसानी से टूटने वाली होती है। यह स्वाद में फीका एवं क्षारीय होता है।

गुणधर्म :— (1)

गुण–रुक्ष, लघु, रस–कषाय, वीर्य–शीत, विपाक–कटु, कफपित्त शामक होता है।

पाचनसंस्थानपर – दीपन, पाचन एवं अनुलोमन है। रक्तवह संस्थान– रक्तपित्तशामक, लेखन स्तम्भन एवं शोथहर है।

आमयिक प्रयोग :—

कर्णपाक, कर्णस्त्राव, नेत्ररोग, विष, गुल्म, प्लीहा एवं रक्तपित्त में उपयोगी हे।

रासायनिक संगठन :—

कैल्सियमकाबौनेट 80 से 85% पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कैल्सियम फासफेट, कैल्सियम सलफेट और सिलिका आदिपदार्थ पाये जाते हैं।

समुद्रफेन शोधन :– उपर का कवच निकाल कर नीम्बू के रस की भावना देकर सुखा लेने से शुद्ध हो जाता है।

मुख्ययोग :—

अर्धनारीनटेश्वर रस, कर्णबिन्दु, समुद्रफेनादिवर्ती कर्णशूलहर योग, पोथकीहर अञ्जन, शांखाद्यञ्जन आदि कतिपय योग बनाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

23 जलवर्गः

मनुष्य के जीवन में जल का विशेष स्थान है। (1) यही कारण है कि जल को जीवन कहा है। शरीर में जलीयांश का अभाव होने पर मृत्यु हो जाती है। दूषित जल से कतिपय सक्रांमक रोग महामारी के रूप में फैल जाते हैं। जोकि जनपदोध्वंस का कारण बनते हैं। जल का चिकित्सा शास्त्र में विशेष महत्व है। शुद्ध जल जीवन देने वाला, धातुवर्धक, तर्पण, (तृप्तिकारक) हृध (हृदय के लिए प्रिय) हलदि (प्रसन्नताकारक) बुद्धिप्रवोधन, (वृद्धि में पटुता उत्पन्न करते वाला) तनु (स्वच्छ) अब्यक्त्तरस शीतल, एवं पवित्र माना गया है। यह जल प्रथम सूर्य की किरणों द्वारा आकाश में खींचा जाता है और आकाश से जल नीचे गिरता है जोकि क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा एवं वायु से स्पर्श करता हुआ पृथ्वी पर गिरता है। पृथ्वी पर पानी के वाष्प होने के दो महास्त्रोत हैं, समुद्र एवं नदी, इनसे पानी वाष्प होकर आकाश से निम्न चार रूपों में पृथ्वी पर गिरता है। (2)

1. धार– (वर्षा के रूप में।)
2. कार– (ओले के रुप में।)
3. तौषार– (ओस के रूप में।)
4. हिम– (वर्फ के रूप में।)

इनमें धार का जल श्रेष्ठ माना गया है। गाङ्गेय एवं सामुद्र भेद से दो प्रकार का माना जाता है।

जल के भेद :– गाङ्गेय जल स्थान भेद से आठ प्रकार का होता है।

(1) कौपजल (कुयें से उत्पन्न) (2) सारस (बड़े तालाबों में उत्पन्न) (3) ताडाग (छोटे तालाबों से उत्पन्न) (4) चोण्डय (पर्वत एवं भूमि फोड़कर निकाला जल) (5) प्रस्त्रवण (झरने का पानी) (6) औद्भिज (चस्मे का जल) (7) वापी इनमें खात (खोदकर निकाला हुआ) घौत (झरने का पानी, शिलापृष्ठ से बहता हुआ पानी, दिव्य उदक माना जाता है। इसके अतिरिक्त मिट्टी के पात्र में स्थित अविकृत जल श्रेष्ठ समझा जाता है।

देश भेद से जल के गुण :– उषर भूमि वाला जल लवण रस वाला एवं क्षारीय होता है। जिस भूमि में जलीयतत्व की अधिकता होती है उस भूमि का जल मधुर, पार्थिवतत्व की अधिकता वाला जल लवण अम्लरसयुक्त, तेजतत्व की अधिकता वाला रस तिक्त, कटु, वायु तत्व की अधिकता वाला जल कषायप्रधान एवं आकाशतत्व की अधिकता वाला जल अव्यक्तरसवाला समान गुणकारी होता है। काली–सफ़ेद–भूमि में सूर्य एवं वायु से तडित जल पवित्र होता है।

गुण :– कुयें का जल सारस एवं क्षारीय होता है। बड़े तालाबों का जल अग्निदीपक, अल्पवातकारक, स्वादु वं लघु होता है। तालाब का जल गुरु और वात्तकारक होता है। पर्वत भूमि से उत्पन्न जल पित्तकारक, झरने का जल दोष नाशक, औद्भिज् जल पित्त नाशक, मधुर, वापी का जल–मधुर एवं लघु होता है। आनूप देश में स्थित भूमि का जल गुरु, जाङ्गुलभूमि का जल लघु, एवं पार्वत्य भूमि का जल विशेष रुप से लघु होता है।

विन्ध्याचल से बहने वाली नदियों का जल कुष्ठ, पाण्डु शिरोरोगों में उपयोगी है। बंगाल, मालवा, कोकंण से बहने वाली नदियों का जल अर्श आदि रोगों मं उपयोगी एवं हिमालय से बहने वाली नदियों का जल सबसे पथ्यकारक एवं पवित्र माना जाता है।

ओषध अनुपान में जल का महत्त्व (3) पानी सब प्राणियों का प्राण है। सम्पूर्ण संसार जल मय है। पानी के न मिलने से मुख की शुष्कता, अङ्गों में पीड़ा, मृत्यु भी हो जाती है। पानी के बिना न तो स्वस्थ्य व्यक्ति का और न तो रुग्ण व्यक्ति का ही जीवन टिक सकता है। औषध में उबला हुआ, औषधयुक्त, आम कच्चा उष्ण (कोषा गरम) शीत जल का विधान है। पानी गरम करने पर भी विपाक में मधुर एवं वीर्य में शीत रहता है। गरम पानी थोड़ी मात्रा में लघु होता है। ज्वर की तीव्र अवस्था में दिया हुआ शीतल जल प्यास को अधिक बढ़ाने वाला होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कोष्णजल के गुण :– कफ द्वारा जठराग्नि को नष्ठ होने से न पचा हुआ अन्न और विष्ठब्ध (वाताजीर्ण) में प्यास न होने पर भी गरम जल इतनी मात्रा में पीना चाहिये जिसे अन्न का क्लेदन मात्र हो जाये। गरम जल के कारण आहार आमाशय से मुक्त होता है। आमाशय में अन्न को रोकने वाल कफ एवं वायु है। गरम जल कफ एवं वायु दोनों को शान्त करता है। इनके शान्त होने से आहार स्वतन्त्र हो जाता है। गरम जल को थोड़ी मात्रा में पीना चाहिये।

जलपानविधि :– (4) भोजन के समय अधिक जल पीने से अन्न नहीं पचता है और एक दम कुछ भी जल न पीने से अन्न नहीं पचता है। अग्नि दीप्त करने हेतु थोड़ा–थोड़ा जल बार–बार पीना चाहिये। पार्श्वशूल, प्रतिश्याय, वातरोग, गलग्रह आदि रोगों में शीतल जल का पान नहीं करना चाहिये। मूर्च्छा, पित्त सम्बन्धी रोग, विष, रक्तविकार, मदात्यय, श्रम रोग, रक्तपित आदि रोगों में शीतल जल पथ्य है।

नारियल का जल :– नारियल का जल स्निग्ध, स्वाद, वृष्य शीतल, लधु, पित्तनाशक, अग्निदीपक एवं वस्तिशोधक होता है।

शुद्धिजल के गुण :– जो जल गन्धरहित हो तथा जिसका रस पूर्ण रूप से मालुम पड़ता हो, शीतल, प्यास को शान्त करने वाला, स्वच्छ, लधु, एवं हृघ हो वह जल श्रेष्ठ माना जाता है।

दूषित जल :– जो जल पिच्छिल, कृमियुक्त, पत्ते, सेवार कीचड़ से खराब हो गया हो, विकृतवर्ण का हो, दुर्गन्ध युक्त हो गया हो वह हितकारी नहीं होता है। जिस जल में सूर्य एवं चन्द्रमा की किरणें न पड़ती हों, स्पर्श करने से खुजली होने लगे, वर्षात का जल दूषित भूमि में स्थित हो ऐसे दूषित जल का सर्वथा त्याग करना चाहिये। दूषित जल के पीने से कृमि, उदररोग, यकृतविकार अग्निमांध, जीर्णज्वर, रक्तविकार, खुजली एवं गलगण्ड जैसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

दूषित जलशोधन विधि :– वालु मिट्टी के धड़ों में रखकर, निर्मली या फिटकरी डालकर जल का शोधन किया जाता है। पोटास का सान्द्रघोल से जल का शोधन करना चाहिये। आजकल आयोडीन मिश्रित लवणों द्वारा जल फील्डर कर पीने योग्य बनाया जाता है उबालकर कपड़े से छान कर सुराई में रखा हुआ दूषित जल पीने योग्य बनाया जा सकता है।

24 दुग्धवर्ग (क्षीर)

दुग्ध के नाम :– दुग्ध, क्षीर, पयः, स्तन्य ।
हिन्दी..............दूध ।
अंग्रेजी.............**Milk**

दुग्ध का सामान्य परिचय : (1) दुग्ध एक प्रसिद्ध प्राणिज पदार्थ है। गाय, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ी, गदही, हथनी, ऊंटनी और नारी इन के दुग्ध को क्षीराष्ठक कहते है। प्रायः सभी दुग्ध मधुर रस, मधुर विपाक स्निग्ध ओज के लिए हितकारी, धातुवर्धक, वातपित्त नाशक, वृष्य, कफवर्धक, गुरु एवं शीतल होते हैं। प्रायः से अभिप्राय यह है कि बकरी कर दूध लधु, भेड़ का दूध गरम, धोड़ी का दूध उष्ण तथा अम्ल लवण युक्त होता है। दूध जीवनीय द्रव्यों में श्रेष्ठ माना गया है।

दुग्ध का सामान्य गुणधर्म :– सामान्यतया दुग्ध वाल, वृद्ध और क्षतक्षीणों की धातुओं का वर्धक है। दुग्ध व्यवाय और ब्यायाम के कारण दुर्बल हुये व्यक्तियों के लिए परम पथ्य है। दुग्ध को आचार्य काश्यप ने अमृतोसम, सर्वोषधोसार, जरायुजानां जीवनं, बालकों के लिये सात्म्य आदि लिखा है। दुग्ध गुणों में गुरु, स्निग्ध, मृदु, पिच्छिल, रस में मधुर विपाक में मधुर, एवं वीर्य में शीत होता है। दुग्ध बल्य, वृष्ण, वाजीकर, रसायन, मेध्य, अस्थिसंधानक, आस्थापन में हितकर, वयःस्थापक, आयुष्य, जीवन, वृहण, वमनोपग एवं विरेचक होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आधुनिक वैज्ञानिकों ने विशलेषण के द्धारा भिन्न–भिन्न प्रकार के दुग्धों में अलग–अलग तत्वों को निशिचत किया है। जिसकी अलग से सारिणी दी जा रही है। सर्वप्रथम क्षीराष्ठक दुग्धों के गुणों का अलग–अलग उल्लेख किया गया है। ।

मातृदुग्ध के गुण :– (2) माता का दुग्ध जीवन देने वाला, वृंहण करने वाला, सात्म्य, स्नेहन, स्निग्ध, शीतल, स्थैर्य्यकर, चक्षुष्य, बलवर्धक, लघु, पाचन, रोचक होता है। यह शीतवीर्य, लघु, मधुररस, कषाय अनुरस युक्त होता है.

1 गाय का दुग्ध :– (3) गाय का दुग्ध मधुर, शीतल, मृदु, स्निग्ध, पिच्छिल, जीवनीय, रसायन, पथ्य, कान्तिदायक, प्रज्ञाप्रदायक, पुष्ठिकारक, वीर्यवर्धक, स्तन्यकृत् एवं दोष धातु मल नाशक होता है गाय का दुग्ध जीर्णज्वर श्रमहर, श्वास, कास, मूत्रकृष्छ्र एवं रक्तपित्त नाशक है।

गोदुग्ध माता के दुग्ध की अपेक्षा रस एवं पाक में मधुर, शीतवीर्य तथा सारक होता है। यह वातपित्तजन्य विकारों एवं रक्तपित्त में उपयोगी है। ओज को बढ़ाता है। काली गाय का दूध बातनाशक माना गया है पीली गाय का दूध पित्त एवं वात में लाभकर, सफेद गाय का दूध श्लेस्मल एवं भारी होता है। लाल या चित्रित गाय का दूध वातहर होता है।

2 अजादुग्ध के गुण :– बकरियाँ प्रायः कटु, तिक्त पदार्थों का अधिक सेवन करती हैं। उनका दुग्ध लघु, दोषहर, वृहणं, शीतल, संग्राही, बल्य, और बातानुलोमन होता है। बकरी का दुग्ध सभी रोगों में पथ्य है। इसमें दीपन गुण विशेष मिलता है। लघु बकरी का दुग्ध क्षत एवं क्षीण व्यक्तियों के लिये श्रेष्ठ है।

3 भैंस का दुग्ध :– (महिष) भैंस का दुग्ध गुरु, स्निग्ध दाहनाशक एवं गाय के गुणों से कम गुणों वाला होता है। यह निद्राकारक, अग्निनाशक, मूत्रकृष्छ्र, जीर्णज्वर रक्तपित में उपयोगी है। इसका दुग्ध प्रायः अभिष्यन्दि वृष्य, एवं शुक्रल होता है। छोटे बच्चों के लिये यह भारी एवं कठिनाई से पचने वाला होता है।

4–5 घोड़ी एवं गदही का दुग्ध :– दोनों का दुग्ध समान गुणों वाला होता है। इनका दुग्ध अम्लता एवं लवणता लिये उष्णवीर्य होता है। यह शाखागत बातविकारों में उपयोगी है। गर्दभ दुग्ध वात श्वासनाशक, दीपन होता है।

6 भेड़ का दुग्ध :– भेड़ का दुग्ध लवण तथा मधुर रसयुक्त, स्निग्ध, उष्ण, अश्मरी नाशक, गुरु होता है। हृ दय के लिये अपहय है। बातरोगों में भेड़ का दुग्ध पथ्य माना गया है।

7 ऊंटनी का दुग्ध :– लघु, मधुर, तथा लवणरसयुक्त, अग्निदीपक, सारक, कृमि, कुष्ठ, शोथ एवं उदर विकारों में उपयोगी है। सुश्रुत ने ऊंटनी का दुग्ध शोथ, गुल्म, कृमि, अर्श, कुष्ठ एवं विषनाशक माना है।

8 हथनी का दुग्ध :– हस्तिनी का दुग्ध मधुर, वृष्य, अनुरस में कषाय, गुरु, स्निग्ध, नेत्रों के लिये हितकारी एवं बलवर्धक होता है।

धारोष्ण दुग्ध के गुण :– गाय का धारोष्ण दुग्ध बलकारक, लघु, शीतल एवं अग्निदीपक तथ त्रिदोषनाशक होता है। गाय एवं भैंस के दुग्ध को छोड़कर शेष सभी के कच्चे दुग्ध अभिष्यन्दि, गुरु, कफ तथा आम की बढ़ज़ने वाला होता है। मातृदुग्ध कच्चा हितकर है। सामान्यतय गाय का औटाया हुआ दुग्ध कफ तथा वातानशक होता है। बिना जल छोड़े हुये दुग्ध को जितना अधिक औटाया जायेगा उतना ही अधिक वह उत्तरोत्तर गुरु, स्निग्ध, एवं वीर्यवर्धक होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दुग्ध के विकृत रुप :–

(1) **पीयूष** – तत्काल ब्याई हुई गाय भैंस आदि के दूध को पीयूष कहते हैं।

(2) **किलाट** – बिगड़े हुये दुध को औटाते–औटाते गाढ़ा करते पिंडाकार बना लिया जाये तो उसे किलाटक कहते हैं।

(3) **क्षीरशाक** – जो दूध बिना औटाये ही कच्चा फट जाय उसे क्षीरशाक कहते हैं।

(4) **तक्रपिण्ड** – जो दूध, दही, अथवा तक्र के संयोग से फट जाये तथा वरुत से बांधकर लटका दिया जाये पानी का भाग निकल जाये उसे तक्रपिण्ड (पनीर) कहते हैं।

(5) **मोरट** – तक्रपिण्ड के प्रकार भेद को मोरट कहते हैं।

गुण :– उपरोक्त दुग्ध के विकृत स्वरुप वीर्यवर्द्धक, वंहण, बल को बढ़ाने वाले, गुरु, कफकारक, हृदय को हितकर, बात तथा पित्तनाशक, एवं अग्नि को दीपृ करने वाले होते हैं।

शुद्ध दुग्ध के गुण :– जो दुग्ध वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श में प्राकृतिक हो, जलयुक्त पात्र में डालने पर अपनी प्रकृति के कारण मिल जावें वह दुग्ध शुद्ध कहा जाता है। दुग्ध को कांच के बर्तन में डालने पर वह अपार दर्शक श्वेतवर्ण का होना चाहिये। लैक्टोमीटर द्वारा दूध की शुद्धता मापनी चाहिये।

अशुद्ध दुग्ध :– निम्न लक्षणों वाला दुग्ध अशुद्ध समझना चाहिये वात के कारण विरसता, फेनसंघात, और रुक्षता, पित्त के कारण विवर्णता, दौर्गन्ध, कफदोष के कारण तथा अतिस्निग्न्धता, गुरुता आदि लक्ष्ण पाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त विवर्णत्व विगन्धत्व, विरसता, पिच्छिलता, गौरव आदि विकृतियाँ अशुद्ध दुग्ध में मिलती हैं।

दुग्ध के कर्म :– दोषकर्म– वात पित्त शामक एवं कफ वर्धक, स्नेहन, सन्धानीय एवं बलवर्धक होता है। नाड़ी संस्थान पर–यह मेघ्य, निन्द्राजनक और नाड़ीवल्य माना गया है। पाचन संस्थान पर–यह स्नेहन, अनुलोमन एवं मृदुरेचन का कार्य करता है। इसी तरह दुग्ध हृध, शोथहर, शुक्रजनन, शुक्ररेचन, कर्मस्थापन, एवं स्तन्यजनन का कार्य करता है। यह मूत्रल, वर्ण्य, ज्वरघ्न एवं दाहप्रश्न है। दुग्ध विशेषकर ओजोवधर्क माना गया है।

दुग्ध से निर्मित पदार्थ :– (1) मावा, पनीर, दधि, मख्क्न, तक्र, धृत आदि पदार्थ दूध से तैयार किये जाते हैं।

दधि के भेद एवं गुण :– (1) रस भेद से दधि पाचं प्रकार का होता है। मन्द, स्वादु, स्वादु–अम्ल, अम्ल, अत्यम्ल, सामान्यतया दधि रस में अम्ल, कषाय, गुरु, स्निग्घ गुणों वाला उष्णवीर्य एवं अम्लविपाकी होता है । दही रुचिकर, अग्निदीपक, वृष्य, वल्य, विपाक में अम्ल, वातशामक, मंगलकारक होता है । पीनस, प्रतिश्याय, अतिसार शीतज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र तथा कृशता में दही लाभकारी माना गया है । गाय, बकरी, भैंस, ऊँटनी आदि जानवरों की दही भिन्न गुणों वाली होती है ।

दही का रासायनिक संगठन :— सामान्यतया दही में प्रोटीन, स्नेहांश कैल्सियम, फास्फोरस, लौह, विटामित ए एवं रिवोफ्लोविन आदि तत्त्व पाये जाते हैं । शक्कर मिला हुआ दही श्रेष्ठ माना जाता है । यह तृषा, पित्त, रक्तविकार तथा दाह को नष्ट करता है ।

दही के कर्म एवं प्रभाव :— दोषकर्मः– वातशामक, एवं कफपित्तवर्धक, निद्राजनन, दीपन, रोचन, अनुलोभन एवं ग्राही है । दही आन्त्र में मल की सड़न को रोकता है । प्रतिदिन दही सेवन करने से आन्त्रस्थ जीवाणू एवं विष नष्ट

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

होकर वृद्धावस्था देर से आती है । पाचनसंस्थान के अनेक रोग मन्दाग्नि, संग्रहणी, अरुचि आदि में दही या तक्र विशेष लाभकारी है ।

2- तक्र (छाछ)

तक्र के नाम.:—संस्कृत............................तक्र, मथि, घोल, उदश्वित
हिन्दी...............................मट्ठा, छाछ
अंग्रेजी.............................बटर मिल्क

परिचयः- दही में चौथाई जल मिलाकर मथने से जो द्रव्य पदार्थ तैयार होता है उसे तक्र कहते हैं । बिना जल मिलाये मलाई रहित दही को मथने पर जो द्रव्य तैयार होता है वह मथित कहलाता है । दही में आधा जल देकर जो द्रव्य तैयार किया जाता है उसे उद्श्वित कहते हैं । गरम दूध में खटाई डालने पर जो ठोस भाग नीचे बैठता है उसे कूर्चिका छोना कहते हैं । आचार्य सुश्रुत ने तक्र को अम्ल वर्ग में उल्लेख किया है ।

तक्र के गुण धर्म (1) :— गुण-लघु, रुक्ष, रस-मधुर, अम्ल, कषाय, वीर्य-त्रिदोषहर, रोचन, दीपन, अनुलोमन, ग्राही एवं उदरस्थ कृमियों में उपयोगी है । तक्र-शोथहर, मूत्रल, ज्वरघ्न एवं विषघ्न माना गया है ।

तक्र का रासायनिक संगठन :— तक्र में प्रोभूजिन, स्नेहांश, कार्बोज, कैल्सियम, फासफोरस, लौह एवं विटामिन ए. पाया जाता है ।

तक्र के योग :- तक्रारिष्ठ, तक्रतुम्बीकादिकल्प तक्रासव, तक्रधाराकल्प, आदि कतिपय तक्र के चिकित्सायोगों का उल्लेख है । ग्रहणी चिकित्सा में तक्रकल्प का विशेष उल्लेख मिलता है । तक्रारिष्ठ अग्निदीपन, शोथ, अर्श, कृमि एवं उदर रोगों में उपादेय है । आधुनिक एलोपौथी चिकित्सा में भी तक्र का प्रयोग किया जाता है ।

(3) नवनीत (मक्खन)

नवनीत के नाम संस्कृत.............................नवनीत, नवनीतक, सरज,
हिन्दी..............................माखन, मक्खन, नौनी नवनी,
अंग्रेजी.............................Butter

परिचय :- दही या दुग्ध को मथकर जो स्नेहांश तैयार किया जाता है उसे नवनीत कहते हैं । नवनीत श्वेतवर्ण का मृदु, और स्निग्ध होता है । दही को मथकर जो स्नेहांश निकलता है उसे माखन एवं दूध को मथकर जो स्नेहांश निकलता है उसे क्रीम कहते हैं ।

गुणकर्म :- गुण-लघु, स्निग्ध, रस-मधुर, कषाय, ईषद अम्ल, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, माखन वृष्य कान्तिकारक, शीतल, बलवर्धक, अग्निदीपक, संग्राही, रक्तविकार, वातविकार, क्षयरोग, अर्श एवं कास में उपयोगी है । दही से ताजा निकला हुआ मक्खन पचने में हल्का, शरीर को सुकुमार बनाने वाला, रस में मधुर, कषाय एवं कुछ अम्ल, मेधावर्धक, अग्निदीपक, हृदय के लिये हितकारी पित्त एवं वातनाशक होता है । यह वृद्धावस्था जन्य शोष, अर्श, अर्दितनाशक, वृंहण, एवं वल्य माना गया है ।

गाय का माखनः- कान्तिकारक, वृष्य, जीवनीय, अग्निदीपक, हृद्य, वातपित्त, रक्तविकार, क्षय, कास आदि को नष्ट करने वाला होता है ।

भैंस का माखन :- वातकफ कारक, गुरु एवं दाह एवं पित्तनाशक होता है । क्रीम अधिक शीतल, शरीर का सुकुमार बनाने वाला, नेत्रों के लिये हितकारी, तथा रसायन है ।

सामान्यतया नवनीत के निम्न गुर्म-कर्म हैं । यथा :—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1– दोषकर्म – वातपित्त शामक,
2– त्वग्ससंथान – दाहप्रशम एवं व्रणरोपक ।
3– नाड़ीसंस्थान – नाड़ीवल्य, मेघ्य ।
4'– पाचनसंस्थान – दीपन, अनुलोमन ग्राही, ।
5– रक्तवहसंस्थान – हृद्य और शोणितस्थापन ।
6– प्रजननसंस्थान – कफ निस्सारक ।
7– मूत्रवहसंस्थान – मूत्रल ।
8– नेत्र – चक्षुष्य

रासायनिक संगठनः– नवनीत में प्रोभूजिन, 9.05% स्नेहांश 81.5% कार्बोज 3.3% कैल्सियम .12% फासफोरस 0.09% प्रतिशत, लौह, विटामिन ए, निकोटिनिक एसिड, रीवोफ्लेमिन, विटामिन–सी आदि तत्त्व पाये जाते हैं ।

नवनीत के मुख्ययोग :– नवनीतावलेह भ० प्र० ज्वराधिकार, रक्तार्श अजानोनीयोग, च० चि० अ. 14।। नवनीत तिलादिअर्शहरयोग, च० चि० अ. 14।। आदि नवनीत के कतिपय योगों का उल्लेख मिलता है ।

(4) घृत (घी)

घृत के नाम :—संस्कृत............................घृत, आज्य, सर्पिष, हविस,
हिन्दी..............................घी,
अंग्रेजी.............................क्लौरीफाइड बटर

परिचयः– माखन को अग्नि के ताप पर पिघला कर जो पीताभ श्वेतवर्ण का स्नेहांश होता है उसे घृत कहते हैं । गाय, बकरी, भैंस, ऊँटनी, हस्तिनी, घोड़ी, और नारी इन आठ प्राणियों के घृत का उपयोग किया जाता है ।

घृत के गुणधर्म (1):— रस में मधुर, वीर्य-शीत, विपाक-मधुर, गुण-स्निग्ध, वातापित्तशामक, दाहप्रशमन स्नेहन, रक्षोघ्न, विषघ्न, व्रणरोपक, त्वक्दोषहर है । नाड़ीसंस्थान में मेघ्य, नाड़ीबलदायक, पाचनसंस्थान में स्नेहन, दीपन, अनुलोमन, रक्तवहसंस्थान में हृघ, शोथहर, एवं शोणितस्थापक, प्रजननसंस्थान में बृष्य, गर्भस्थापक, तथा गर्भ वृद्धिकर है । घृत ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, चक्षुष्य वृष्य, वृंहण एवं रसायन माना गया है । आयुर्वेद में पुराण घृत का विशेष उल्लेख है । यह त्रिदोषशामक, मूर्च्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, अपस्मारनाशक है । आठों प्राणियों के घृत में समान गुणधर्मों के साथ-साथ उनके अलग-अलग विशिष्ठ गुण सुश्रुत एवं भावप्रकाश आदि ग्रन्थकारों ने उल्लेख किए हैं

रासायनिक संगठन :–घृत में प्रोटीन, कार्बोज, कैल्सियम, लौह, विटामिन, निकोटैनिक एसिड, रिवोफ्लेवीन, विटामिन सी आदि तत्त्व पाये जाते हैं ।

घृत के योग :– शतधौतघृत, नासाशोषहरघृतयोग, द्राक्षाघृत, त्रिफलाघृत, ब्राह्मीघृत, पञ्चगव्यंघृत, आदि घृत के कतिपय योगों का चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है ।

मांसवर्ग

मांस के नाम :—संस्कृत............................मांस, आमिषा पिशित,
हिन्दी..............................मांस, गोश्त,
अंग्रेजी............................मीटर, Meat

मांस शरीर का एक मुख्य पार्थिव धातु है । यह छोटे-छोटे सूत्रों का बना होता है । मांस रक्तकणों के कारण रक्तवर्ण का नजर आता है । जांगल एवं आनूप भेद से कई प्रकार का मांस होता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मांस के भेद :–

1-जांगल मांस, 2-आनूपमांस

जांगलमांस मांस के निम्न कई प्रकार के भेद होते हैं । यथा-जांगाल, विलस्थ, गुहाशय, पर्णमृग, विष्किर, प्रदुद, प्रसह, ग्राम्य, ।

आनूपमांस भी कूलेचर, पल्व, कोशस्थ, पादो, मत्स आदि भेद से कई प्रकार के होते हैं । सामान्यतय अष्ठ्ांगसंग्रहकार ने मृगवर्ग, हरिण, एण कुरंग, ऋष्य, गोकर्ण, मृगमातृका, कालपुच्छक, चांरुष्क, वरपोत, कराल, कृतमाल आदि प्रकार भेद से 19 मृगमांसों का उल्लेख किया है ।

विष्किरखर्ग– में बटेर, वर्तीक, कपीञ्जल, उपचक्र, चकोर, कुरवाहु, वर्तक, वर्तिका आदि भेद से 21 किस्मों के खाने वाले मांसों का उल्लेख किया है ।

प्रतुद (जो चोंच से चोट करते है) :—शतपत्र, भृंगराज, कोयष्ठी, जीवजीवक, हारीत, कृशगृह, दुन्दुभी, कोयल, कुलिगक, चिरीटी, जटी, पारावत, अंगारचूडक, आदि प्रकार भेद से 34 प्रकार के प्रतुद पक्षी हैं ।

प्रसह :– (खींचकर खाने से) मृग और पक्षी, गाय, गधा, खच्चर, ऊँट घोड़ा, चीता, रीछ, बन्दर चूहा, लोमड़ी, गीदड़, कौआ, कुत्ता, गीध आदि जाति में मृग, पक्षी प्रतुद कहलाते हैं ।

महामृग :—माहिष, भैंस, हरिण, बराह, हाथी, चमरगाय, आदि जान्तव महामृग कहलाते हैं ।

जलचारी :– पानी में विचरने वाले जान्तव हंस, सारस कादम्ब, बगुला, कारण्डव पल्व, मृणालकण्ठ, चवका, बलका, रक्तशीर्षक, उन्क्रोश पुण्डरीकाक्ष, शरारी, काकतुण्ड, क्रोञ्च, घनाराव, नन्दीमुख आदि जलचारी पक्षी हैं ।

मत्स्यवर्ग :– रोहित, पाठीन, कूर्म, कर्कट, उद्‌विलाव, शम्बूक, छोटी मछली, वर्मि, चन्द्रिका, नक्र, मर्कर (मगर) राजी, चिलचिम आदि जलचारी प्राणी मांस मत्स्यवर्ग में आते हैं ।

मांस के सामान्य गुण :—प्रायः आनूप, एवं जांगल मांस-गुरु, स्निग्ध, रस में मधुर, कषाय, वीर्य में उष्ण, विपाक में मधुर, वातपित्तशामक एवं कफवर्धक होते हैं । ये स्नेहन स्वेदन, कुष्ठघ्न तथा ब्राणसंधानीय होते हैं । नाड़ीसंस्थान में नाड़ीवल्य, प्रजन संस्थान में वृष्य और क्षीरजनन होते हैं । विशेष रूप से मांसवर्धक, वृंहण एवं तर्पण में सर्वश्रेष्ठ माना गया है ।

जंगल मांस मधुर, कषाय रसयुक्त, रुक्ष, बलवर्धक, वीर्यवर्धक, अग्निदीपक, दोषशामक, मूकता, भिनभिनापन, तोतलापन, अर्दित, बहिरापन, अरुचि, प्रमेह, मुख में होने वाले विकार श्लीष्पद, गलगण्ड आदि विकारों में उपयोगी है ।

मछली के सामान्य गुण :– मछलियाँ कफ पित्तकारक अतिशय वातनाशक होती हैं । चिलचिम मत्स्य सबसे निकृष्ठ माना गया है ।

खरगोश का मांस :– लघु, 6 रसों वाला, संग्राही, रुक्ष, शीत, विपाक में कटु, एवं अग्निवर्धक माना गया है । तीतर का मांस श्रेष्ठ माना गया है । यह मेधा अग्नि, बल एवं शुक्र को बढ़ाने वाला होता है । संग्राही, बलकारक, वातप्रधान, सन्नीपातनाशक है । कुक्कुट मांस बृष्य, चक्षुष्य तथा बलकारक होता है सुअर का मांस भैंस के मांस के समान है । यह गुरु, स्निग्ध, नींदलाने वाला, शुक्रल तथा बल पैदा करता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बकरी का मांस :- न तो बहुत शीतल है न तो बहुत स्निग्ध है । शरीर के धातुओं के समान गुण होने के कारण बकरी का मांस अभिष्यन्दी न होकर वृहण का कार्य करता है । बकरी के मांस से विपरीत गुणों वाला भेड़ का मांस होता है ।

प्रशस्तमांस के लक्षण (1) :—तुरन्त मारा हुआ, युवा, स्नायुअस्थि से साफ किया हुआ और दुर्गन्ध रहित मांस श्रेष्ठ माना गया है । एण, कुरंग, हरिण और शश इनका मांस मृगवर्ग में श्रेष्ठ माना जाता है । लाव, कपिञ्जल तीतर ओर चकोर आदि का मांस विखरकर खानेवाले विष्किर वर्ग के पक्षियों में श्रेष्ठ है । श्वावित् एवं गोधा का मांस बिकलों में रहने वाले जान्तवों के मांस में श्रेष्ठ है । हंस जलचारी वर्ग में श्रेष्ठ है । न्यंकु महामृगों में श्रेष्ठ है । रोहित, कछुवा और बर्त्मी जलज वर्ग में श्रेष्ठ है । इन सब में से एणादि में एण, लावादि में लाव, श्यावित् में गोधा, गीध ओर शेर में शेर का मांस श्रेष्ठ है ।

त्याज्यमांस (2) :—अतिमेदुर, रोग, विष या पानी से मरे हुये, स्वयंमृत, धुयें से मरे हुये, अफारा से मरे हुये, रोगी एवं कृश पशु का मांस नहीं खाना चाहिये । गाय, मेंढक, रीछ, कांणकपोत इनका मांस निन्दित माना गया है ।

मांस के उपयोग में आवश्यक सावधानियाँः :—

(1) वृद्ध बकरे का मांस वायु को उत्पन्न करने वाला तथा रुक्ष होता है ।

(2) रोग से पीड़ित मरे हुये बकरे का मांस वातकारक एवं रुक्ष होता है ।

(3) तत्काल मारे गये जीवों का मांस अमृत के समान व्याधिनाशक, आयुप्रस्थापक, वृंहण तथा हितकारक होता है । बासी मांस का सेवन व्याधिजनन होने से सेवन नहीं करना चाहिये ।

(4) स्वयं मरे हुये जीवों का मांस बलक्षयकारक, भारी एवं अतिसार करने वाला होता है ।

(5) सर्प से काटे हुये, विष खाकर मरे हुये, जल में डूबकर, रोग से पीड़ित, सड़ा-गला दुर्बल जीवों का मांस सेवन करने से मृत्यु हो सकती है ।

(6) छोटी मछलियाँ स्वादिष्ठ, त्रिदोषनाशक, विपाक में मधुर रुचिकारक, कास तथा वातनाशक होती है ।

(7) सरोवर की मछलियाँ मधुर रस युक्त, स्निग्ध, बलवर्धक, एवं वातनाशक होती हैं ।

(8) नदी की मछलियाँ वृंहण, गुरु, वातघ्न, रक्तपित प्रकोपक, वीर्यवर्धक, उष्ण होती हैं ।

मांस का चिकित्सा में उपयोग :-

मयूराद्यघृत शिरोरोग, अर्दित, कर्णनासिका तथा गले के रोगों में उपयोगी होता है ।

मूषिकादिघृत :— कर्कटमांस सर्पि अजकाजातहर गोमांस योग, नेत्ररोगहर अञ्जन, तिमिररोगहर, स्कन्दापस्मारघ्न वस्तियोग, हिक्काहर कपोतादिमांस रस, महानारायण तैल, मूषकतैल, शम्बूकतैल, गर्भधानकर योग, बृष्यरस, बृष्यचटकमांसरस, आदि कतिपय योगों का उल्लेख आयुर्वेद में है ।

यकृतमांस :- प्राणियों के मांस में यकृतप्रदेश का मांस श्रेष्ठ होता है । जहां मांस का विधान हो वहां पर बकरी के यकृत मांस का प्रयोग करना चाहिये । यकृत मांस पाण्डुरोग एवं रक्ताल्पता में उत्तम आहार माना जाता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रक्त :- रुधिर, लेहित, शोणित यह शरीर में स्थित रक्तवर्ण का प्रसिद्ध धातु है। रक्तधातु का शरीर में महत्त्वपूर्ण स्थान है जीवरक्त में अनेकों महत्त्वपूर्ण घटक होते है। रक्तकण W.B.C. श्वेतकण R.B.C. रक्तचक्रिकायें, लौह हिमोग्लोबीन, आदि कतिपय रञ्जक पदार्थ होते हैं। रक्त शरीर को जीवित रखने का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त रोगी के रक्तक्षय की दशा में रक्त का चिकित्सा में भी उपयोग किया जाता है। आपत्कालीन दशा में जब रोगी मरणान्मुख हो रक्त ही जीवनदान देता है।

रक्त में पाञ्च भौत्तिक तत्त्व पृथ्वी, आकाश, वायु, जल और अग्नि होती है। शरीर में 3.4 भाग लौह का पाया जाता है। लौह का अधिक भाग रक्त में पाया जाता है। रक्त गुणों में लघु, स्निग्ध, रस में मधुर, लवण, वीर्य उष्ण एवं विपाक मधुर होता है। रक्त कफवातशामक एवंत्तिवर्धक होता है। हृद्य,, शोणितस्थापन एवं आर्तवजनन आदि कर्मों वाला होता है।

रक्त का चिकित्सा प्र्रेप्रयोग :— सद्योव्रण में एवं शरीर से रक्तस्त्राव अधिक हो जाने पर रक्त की कमी होने पर ग्रुप के आधार पर रक्त दिया जाता है। लड़ाई व झगड़ों में चोट लग जाने से या शिरायें कट जाने से मनुष्य के जीवन की रक्षा हेतु रक्त दिया जाता है।

आयुर्वेद चिकित्सा में वमन के अतियोग, रक्तपित्त रोग में, रक्तार्शजनित दुर्बलता में, उरःक्षत रोग में आदि कतिपय रक्तक्षय की अवस्था में वस्ति के रूप में तथा कतिपय जान्तव मृगों के रक्तपान का विधान आयुर्वेद में मिलता है।

आहारोपयोगी लवण, तैल एवं धान्यवर्ग

लवणवर्ग

इस वर्ग में औषधोपयोगी लवणों का सामान्य गुण धर्मों एवं प्राप्ति स्थान के विषय में सामान्य जानकारी दी गई है।

1. सैन्धवलवणः-

संस्कृतनाम.......................... सैन्धव, शितशिव, पाणिमन्थ, सिन्धुज
हिन्दी नाम..........................सैंधा नमक, लाहोरी नमक,
लें०................................Sodii chloridum
अंग्रेजी...............................Rock Salt

परिचय :- यह चमकीला, पत्थर सदृश खान से निकलने वाला, यह सभी लवणों में से श्रेष्ठ माना जाता है। यह वर्ण में श्वेत तथा रक्ताभश्वेत रंग का होता है।

प्राप्ति स्थान :— यह सिन्ध, पाकिस्तान से प्राप्त किया जाता है।

गुण-कर्म :- गुरु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, रस-लवण, विपाक-मधुर, वीर्य-शीत एवं त्रिदोषशामक है। वा ह्यकर्म में वेदनास्थापक एवं शोथहर है। पाचन संस्थान में यह क्लेदन, रोचन, पाचन एवं भेदन का कार्य करता है। अतिमात्रा में प्रयोग करने पर शोथजनन एवं वामक है। रक्तवह संस्थान में यह हृद्य है। अधिक मात्रा में प्रयुक्त करने पर रक्तप्रकोपक है। श्वसन संस्थान में यह छेदन एवं कफःनिस्सारक का कार्य करता है। सामान्यतया मूत्रल, चक्षुष्य त्वचा में स्वेदजन, और ज्वरघ्न है। रासायनिक संगठन के आधार पर यह सोडियम क्लोराईड है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुख्ययोग :—लवणभास्करचूर्ण, हिंग्वाष्ठकचूर्ण, सैन्धवाद्यतैल, स्वादिष्टपाचकचूर्ण, पंचषकारचूर्ण, वैश्वारनरचूर्ण, सैन्धवादिनस्य ।

2. सामुद्रलवण

संस्कृत नाम..........................सामुद्र, सागरज, वाशिर,
हिन्दी नाम...........................समुद्रीनमक, समुद्रीनोन ।
अंग्रेजी..............................Salt, Sodimuras

परिचय :– समुद्र के खारे पानी से तैयार किये नमक को समुद्रनमक कहते हैं । समुद्र के किनारे पर छोटे-2 गढ़े बनाये जाते हैं जिनमें समुंद्र का जल धीरे-धीरे भरता है । सूर्य की गर्मी से उसका जलीयांश सूखने लगता है । धीरे-धीरे नमक जमने लगता है एवं उसे अलग निकाल लिया जाता है । समुद्री नमक के साथ पोटेशियम क्लोराईड, मेगनेशियम क्लोराईड, मेग्नेशियम सल्फेट आदि द्रव्य पाये जाते हैं । इनको भिन्न पद्धतियों से अलग किया जाता है ।

प्राप्तिस्थान :—

गुजरात, काठियावाड़, बम्बई आदि स्थानों में यह नमक तैयार किया जाता है ।

गुण-धर्म :—(1) गुरु, रस-तिक्त, मधुर, विपाक-मधुर, वीर्य-उष्ण, वातशामक, व्रणहर, चर्मविकारनाशक, दीपन, भेदन, अविदाही, नाड़ीवल्य एवं प्रतिश्याय शामक है ।

समुद्रीनमक में आयोडीन रहने के कारण गलगण्ड आदि रोगों में उपयोगी है । यह पाण्डु, आमाशयिकव्रण, प्रतिश्याय, शोथ आदि में उपयोग किया जाता है ।

योग :— लवणभास्करचूर्ण, पाचनसुधावटी, सामुद्रलवणयोग, चित्रकादिवटी, लशुनादिवटी ।

3. विड्लवण

द्रव्यनाम ....संस्कृत नाम........................चुलिकाल्लवण, नवसार, किट्टसार
हिन्दी ....नृसादर, नवसार,
अंग्रेजी...........................Sol Ammonik.

परिचय :— इसकी उत्पत्ति विभिन्न प्राणियों की विष्ठा से होती है । इसलिये इसे विड्लवण कहते हैं, इसमें करीर एवं पीलू वृक्ष का काष्ठक्षार भी मिलाया जाता है । उर्ध्वपातन विधि से नरसार के रूप में प्राप्त किया जाता है । पंजाब के कुछ प्रदेशों से प्राप्त होने वाली विशेष मिट्टी को पानी में जल में उड़ा देते हैं और नौसादर प्राप्त करते हैं ।

यह अमोनियम क्लोराइड के रूप में साफ दानेदार चूर्ण रूप में बन्द डब्बों में प्राप्त होता है । यह अत्यन्त उपयोगी द्रव्य है चिकित्सा में इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है ।

गुण धर्म :— लघु, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, रस-लवण, विपाक मधुर, वीर्य उष्ण, प्रभाव पित्तदोषहर, कर्म-तीक्ष्ण, लेखन, वातशमन नाड़ीवल्य, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, बमनकारक, पित्तसारक, कफनिस्सारक, आर्तवजनन, मूत्रल, स्वेदजनन, एवं ज्वरघ्न है । यह जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला गुल्म पील्हा रोगों में उपयोगी है । यह गरीष्ठ भोजन को अतिशीघ्र पचाने वाला द्रव्य है ।

मुख्ययोग :—

विड्लवणादिवटी, प्लीहान्तकक्षार चूर्ण ।
शंखद्राव, शिरःशूलहर योग ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

4. सौवर्चललवण

द्रव्यनाम ....संस्कृत नाम......................सौवर्चल, रुचक, अक्षयाक, मन्थपाक
हिन्दी ....काला नमक, सोंचर नमक,
अंग्रेजी..........................Black Salt
ले...............................unapua sodium chorlide.

परिचय :—यह काले रंग का विशिष्ठ गन्धयुक्त लवण है, जो कि प्राकृतिक रूप से पाया जाता है । प्राकृतिक रूप से यह नमक पंजाब की पहाड़ियों से प्राप्त किया जाता है । कृत्रिमरूप से भी इसे तैयार किया जाता है । कृत्रिम सोंचरनमक सब्जीखारी को जल में घोलकर तथा उसके साथ सामान्य नमक मिलाकर तैयार किया जाता है ।

गुण धर्म :— गुण-लघु, विशद, सूक्ष्म, स्निग्ध, रस-लवण, कटु, विपाक-मधुर, वीर्य-उष्ण, कफवातहर है । दीपन, पाचन, रोचन, भेदन, अनुलोमन, उद्गारशोधन, एवं शूलघ्न है ।

मुख्ययोग :— सौवर्चलादिगुटिका, रसोनवटी ।

5. औद्भिजलवण

द्रव्यनाम ....संस्कृत नाम......................औद्भिजलवण, पांशुलवण, काचलवण,
हिन्दी ....खारीजोन, रेह का नमक ।
अंग्रेजी............................Sodium carbonate

परिचय :— यह नमक क्षारीय रेह मिट्टी से तैयार किया जाता है । जांगल देश की खारी रेह वाली भूमि में यह लवण पाया जाता है । इसी को सब्जीमिट्टी या सज्जीक्षार कहते हैं ।

प्राप्तिस्थान :— यह ऊसर भूमि में होता है । यह रहे प्रायः उत्तरप्रदेश, पंजाब, बिहार, बंगाल आदि प्रान्तों की जमीन से प्राप्त किया जाता है ।

गुण धर्म :—(1) गुरु, स्निग्ध, रस-तिक्त, कटु, क्षार, विपाक-मधुर, वीर्य-शीत, यह वातशामक, रोचन, दीपन, पाचन, एवं कफस्थापक है ।

मुख्ययोग :— अग्निमुखरस, विशालादिक्षार
स तिक्त कटुकं क्षारं तीक्ष्णमुत्क्लोदिचौद्भिजम्

6.साम्भरलवण

द्रव्यनाम...................... संस्कृतनाम........................साम्भर, रोमक, शाकम्भरीय लवण,
हिन्दी ....साम्भरनोन

परिचय :– राजस्थान की प्रसिद्ध सांभर झील के जल से यह लवण तैयार किया जाता है । इसमें सोडियमकार्बोनेट, सोडियमसल्फेट तथा अल्पमात्रा में आयोडीन आदि लवण पाये जाते हैं ।

गुण धर्म :— लघु, सूक्ष्म, रस-कटु, विपाककटु, वीर्य-तीक्ष्ण, उष्ण, वातहर एवं पित्तजनक है । दीपन, पाचन, भेदन, ...प्रवर्तक, मलप्रवर्तक, भेदक एवं नाड़ीवल्य है ।

मुख्ययोग :— नागेश्वररस, क्षारादिउपवाह,

सामान्यतया लवणों के प्रयोग में सैन्धवलवण श्रेष्ठ माना जाता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ऋद्धि–वृद्धि

1. ऋद्धि–वृद्धिश्च कन्दौ द्वौ भवतः चले ।
श्वेतलोभान्वितः कन्दौ, लताजातः सरन्ध्रकः ।।
तुलग्रन्थिसमा ऋद्धि, वामावर्त फला च सा ।
वृद्धिश्च दक्षिणावर्ता, फलाप्रोक्ता महर्षिभिः ।। भा. प.

अभावद्रव्याणि

मेदा–महामेदा स्थाने शतावरी, काकोली क्षीर काकोली स्थाने अश्वगन्धा,
जीवक–ऋषभक स्थाने विदारी, ऋद्धि–वृद्धि स्थाने वाराही ।

तैलवर्ग

आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र में विभिन्न प्रकार के औद्‌भिजद्रब्यों के तैलों का उल्लेख उपलब्ध है । रोगों के अनुसार अभ्यङ्ग पञ्चकर्म के पूवकर्मो हेतु एवं आम्यन्तर प्रयोग तथा औषधि साधित तैलों का उलेख है । जिसमें पञ्चगुणतैल, महानारायण तैल, विषगर्भ तैल, विल्वतैल, षडबिन्दुतैल, अणूतैल, बत्नाघृततैल, तैलधारा आदि तैलों का उल्लेख मिलता है ।

सामान्यतया इस वर्ग में तिल तैल, सर्षपतैल, एरण्डतैल, तुवरकतैल कुसुम्भतैल, आदि तैलों का उल्लेख किया गया है । इन तैलों में से तिल तैल सबसे श्रेष्ठ माना गया है । यह व्यवायी, त्वग्दोषकारक, सूक्ष्म, नेत्रों के लिये अहितकारी, उष्ण, मल को बांधने वाला कृमिनाशक एवं औषध साधित तैल सभी रोगों को नष्ठ करने वाले होते हैं । तैल आहार में लेने से त्वग्दोषकारक एवं अचक्षुष्य है । यही कारण है कि बंगाल, मद्रास, गुजरात में जहां तैल खाते है वहां त्वचा के अधिक रोगी होते है । तैल अभ्यंड्ग से कृश पुरुष को वलबान करता है ।

तिल तैल के गुण :—

गुरु, स्थिरता तथा वलकारक, वर्ण को उत्तम करने वाला, सारक, वृष्य, विकासी, विशद, पाक में मधुर सूक्ष्म गुणयुक्त, कफनाशक एवं उष्णवीर्य होता है । यह मल को बांधने वाला, गर्भाशय का शोधन करने वाला, अग्निदीपक, बुद्धिदायक, मेधा के लिये हितकर, व्यवायी गुण वाला है । भिद् जाने से गिरजाने से घाव हो जाने से आदि कार्यो के लिये यह उपयोगी है । वस्ति कर्म, नस्यकर्म, कान, नाक एवं अवगाहन में यह श्रेष्ठ माना जाता है । तैल जितना पुनाना होता है उतना ही अधिक गुणकारी माना जाता है ।

2 सर्षप तैल के गुणः–

सरसों का तैल अग्निदीपक रस तथा विपाक में कटु रस युक्त लघु, लेखन, वीर्य में उष्ण, तीष्ण, पित्त तथा रक्त को दूषित करने वाला, कफ, मेद, कण्डू, श्वेत आदि रोगों को नष्ठ करने वाला होता है । राई का तैल भी सर्षप तैल सद्यश गुणों वाला होता है ।

दीपनं सार्षपं तैलं कटुपाक रसं लघुः ।
लेखनं स्पर्श वीर्योष्णं, तीश्णंपित्तास्त्रदूषकम् ।।
कफमेदो ऽ निलार्शोघ्नं शिरःकर्णमयापहम्।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एरण्ड तैल के गुणः

एरण्डतैल तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निदीपक, पिच्छिल गुण युक्त, त्वचा के लिये हितकर, विरेचक, योनि तथा शुक्र को शोधन करने वाला होता है । यह विषमज्वर, हृदयरोग, उदर सम्बन्धी रोग, आनाह, गुल्म, अष्ठीला, कटीग्रह, वातरक्त, मलबन्ध एवं शोथ आदि को नष्ठ करता है ।

एरण्ड तैल तीक्ष्णोष्णां दीपनं पिच्छिलं गुरु ।
वृष्यं त्वच्मं वयः स्थापि मेधाकान्तिवलप्रदम् ।।
कषायानुरसं सूक्ष्मं योनिशुक्र विशोधनम् ।
विस्त्रं स्वादु रसे पाके, सतिक्तं कटुकं रसम् ।।
विषमज्वर हृद्रोग पृष्ठग्रहयादिशुलनुत् ।
हन्तिवातोदरानहा गुल्माष्ठीलाकटिग्रहान् ।।
"भावप्रकाश"

अतसीतैल

आग्नेयगुणोंवाला, सिन्ध, उष्ण, कफ तथा पित्तकारक, विपाक में कटु, नेत्रों के लिये अहितकर, वातनाशक, मलकारक मधुररसयुक्त, त्वचागत दोष को दूर करने वाला, एवं नस्य कर्म में उपयोगी पाना जाता है ।

अतसी तैलमाग्नेयं स्निग्धोष्णां कफपित्तकृत् ।

कटुपाकमचक्षुष्यं, वल्यं वातहरं गुरुः ।।

बस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये कर्णस्य पूरणै ।

अनुपानविधौ चापि, प्रयोज्यं बातशान्तये ।।
"भावप्रकाशः"

कुसुम्भतैलः

अम्लरसयुक्त, उष्ण, गुरु, विदाही, नेत्रों के लिये अहितकर बलकारक रक्तपित्त तथा कफकारक है ।

तुवरीतैलः

तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, ग्राही, रक्तविकार को दूर करने वाला कण्डू, कुष्ठ, कोठ, कृमि एवं भेद सम्बन्धी दोषों को नष्ट करने वाला होता है । इसी प्रकार तारपीन तैल वातनाशक व्रणों का शोधन काने वाला होता है ।

वसा–मज्जा

वसा एवं मज्जा वातनाशक, पित्त और कफवर्धक, प्राणी के मांस के समान गुणकारी होते हैं । भेद के गुण भी वसा एवं मज्जा के समान होते हैं ।

वसा मज्जा च वातघ्नौ, बलपित्त कफप्रदौ ।

मांसानुरस्वरूपौच, विधान्मेदोपि ताविव ।।

शुद्धमांसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्थूलास्थिषु विशेषेण, मज्जा स्त्वम्यन्तराश्रितः ।।

अथेतरेषु सर्वेषु, सरक्तं भेद उच्चते ।। सु० शा० अ० 4

धान्यवर्गः

इस वर्ग में दैनिक आहारोपयोगी अन्न के किस्मों का उलेख किया गया है । इस वर्ग में तृणकुल की, शिम्बीकुल की वनस्पति द्रब्यों का वर्गीकरण है । जिनमें शालिधान्य, ब्रीहिधान्य, शुक्धान्य, शिम्बीधान्य, क्षुद्रधान्य आदि वर्ग है । शालिधान्यों में रक्तशालि, क्स्मिों का विशेष प्रचलन है ।

शालिभेदः

रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगन्धक, कर्दमकश दीर्घशूक, काग्चनक, हायन, लोघ्रपुष्पक आदि स्थान भेद से शालि (चावल) अनेक प्रकार के होते है ।

सभी शालियों में रक्तशालि श्रेष्ठ होता है । यह वल्य, वर्ण्य, त्रिदोष नाशक होता है ।

शालिधान्यों के सामान्य गुणः— मधुर विपाक, मधुररस, स्निग्ध, वृष्य, मल को बांधने वाले एवे मल को कम करने वाले होते हैं ये कषाय अनुरस वाले, लघु मूत्रल एवं शीत होते हैं ।

ब्रीहिधान्यः–

जो चावल (धान) वर्षाऋतु में पैदा होते है उन्हें ब्रीही धान्य कहते हैं । ब्रीहिधान्य आकृति एवं वर्ण भेद से कई पाटल, कुक्टुटाण्डक, शालामुख, एवं जंतुमुख से पाये जाते हैं । ब्रीहि धान्यों में षष्ठिक धान्य 60 दिनों में पक कर तैयार होता हैं । इसको खेत में सीधा वोया जाता है । ये मोटे चावल होते है । सांठी गुणों में मधुर, शीतल, लघु, एवं वात पित्त को शमन करने वाले होते हैं ।

ब्रीहि धान्यों के सामान्य गुणः–

सामान्यतया पाक में मधुर, शीतवीर्य, किन्चित अभिस्पन्दि, मल को बांधनें वाले, होते हैं । साठी धान्यों में षष्ठिक, प्रमोदक श्रेष्ठ है । नये चांवल की अपेक्षा पुराना चावल सुपाच्य होता है । परीक्षणों से देखा गया है कि नये चावलों की पचन क्षमता पुराने की अपेक्षा आधी से कम होती है । पकाने पर नये चावलों का भात चिपचिपा एवं गोला सा होता हैं । पुराना चावल पकाने पर बहुत अच्छा बनता है । चावलों को साफ करने की विधि के अनुसार उनके पोषक तत्वों में भिन्नता पाई जाती है । धान को उबालकर भुजिया चावल तैयार किये जाते हैं । ओखली में कुटे हुये चावल मिल के साफ किये हुये चावलों की अपेक्षा अधिक गुणकारी होते हैं । चावल की धोवन दाहशामक, ज्वर एवं अन्तप्रदाह में उपयोगी मानी जाती है । वनस्पतिशास्त्र के आधार पर इसे **Oryza statva Linn** कहते हैं ।

शुकधान्यः–

शूकधान्य वर्ग में कुंगु, कुंगनी, कोद्रव, (कोदा) जूर्णाह्व गर्मूटी, चूर्णपोदिका, श्यामाक (सांवा) तोयश्यामक, हस्तिश्यामाक, शिशिर, उत्कर, दारुनीवार, मधूलिका, वेणुपर्णा, यव, (जौ) गोधूम (गेहूँ) आदि धान्य आते हैं । उपरोक्त धान्यों में से यव (जौ) एवं गोधूम (गेहूँ) के गुणधर्मों का उल्लेख यहां किया जा रहा है ।

द्रव्यनाम ....संस्कृत नाम........................यव, शूकधान्य,
हिन्दी ....जौ, जो,
लैटिन.............................**Hordeum vulgare Linn.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुल..ग्रेमिनी-यवकुल (Gramineae)

स्वरूप परिचय :— यह एक वर्षायु तलोत्थ तृण जाति का पौधा है । पर्ण-रेखाकार, भालाकार, श्वेताभ, हरित, पुष्य शूक युक्त (बाजीदार) होते हैं । इसके कई प्रकार पाये जाते हैं । स्थान भेद से जौ की कई किस्में पाई जाती हैं । हिमालय सेत्त के बर्फीले ऊँचें पहाड़ों विशेषकर तिब्बत के सीमान्त क्षेत्रों में इसकी किस्मों की खेती की जाती हैं । भारतीय धान्यों में रुक्षण एवं कर्षण में यव (जौ) का विशेष महत्व है । हिमालय क्षेत्र में बसने वाले सीमान्त लोग यव को भूनकर कर इसके सत्तू के रूप में प्रयोग करते हैं । गेहूँ के साथ मिलाकर आटे के रूप में प्रयोग होता है । हवन याज्ञिक कर्मो में जौं को श्रेष्ठ माना जाता है ।

गुण धर्मः—

जौ कषाय मधुर रस युक्त, विपाक में कटु, शीतल, लेखन, रस, मेघा तथा जठराग्नि को बड़ाने वाला, स्वर को उत्तम करने वाला, बलकारक, शरीर के वर्ण को स्थिर करने वाला, चर्म, भेद, पीनस, श्वास, कास आदि रोगों में तथ्य है ।

यव : कषायो मधुरः शीतलों लेखनों मृदुः ।

व्रणेषु तिलवत्पथ्यों रुक्षो मेघाग्नि वर्धनः ।।

कटु पाको डनभिष्यन्दी, स्वर्यो वलकरोगुरुः ।

पीनस श्वासकासोरुस्तम्भकण्ठत्वगामयायान् ।।

द्रव्यनाम...................... संस्कृत...........................गोधूम, सुमन,
हिन्दी ....गेहूँ
तेलगू.............................गोदमेलु
लैटिन...................................*Triticum sativum* (Graminace)

स्वरूप परिचयः–

गेहूँ की खेती प्रायः भारत के सभी प्रान्तों में की जाती है । दक्षिण भारत में यह बहुत कम पाया जाता है । इसके पौधे जौ सद्यश एक वर्षायु होते हैं । भारत में इसकी शूकयुक्त एवं शूक विहीन 3-4 किस्मों की जातियाँ पाई जाती है । खानें में कड़े दाने व्राला तथा स्टार्च के लिये मुलायम गेहूँ काम में लाया जाता है ।

गेहूँ में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, ताम्र, मैंगनीज एवं मैगनेश्यिम् आदि खनिज पाये जाते हैं ।

गुण धर्म :—

यह मधुर, शीतल, गुरु, कफप्रद, वीर्यजनक, बलकारक, स्निग्ध, सन्धानकर, रुचिकारक एवं वात पित्त नाशक होता है । नवीन गेहूँ की अपेक्षा पुराना गेहूँ अधिक गुणकारी होता है ।

यथाः–

वृष्यः शीतो गुरुः स्निग्धो, जीवनो वात पित्तहा ।

सन्धानकारी मधुरो, गोधूम स्थैर्यकृत्सरः ।।

पथ्या नन्दी मुखी शीता, कषाया मधुरा लघुः ।। (अ० संग्रह)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शिम्बीधान्य वर्ग

इस वर्ग में फलिनी धान्यों विशेष कर दालें आती हैं । सभी शिम्बी (फली) वाले धान्यों का अन्न में समावेश किया गया है । अधिकतर इन धान्यों की खेती की जाती हैं । कुछ जंगली स्वयंजात शिम्बी वर्ग के भी धान्य हैं जिनका संक्षिप्त वर्गीकरण यहाँ पर किया गया है । इनका औषधि रूप में भी पथ्य के लिये एवं वाहय प्रयोगों में उपयोग किया जाता है । मुग्द, मंगल्य (मसूरभेद) बनमुङ्ग (वनमूंग) मोठ, मसूर, चवल, राजमा, आठकी (अरहर) चणक (चने) कुलत्थ, निष्पाप, माष आदि शिम्बी धान्य अन्न वर्ग में आते हैं । प्रायः सभी शिम्बी धान्य मधुर, कषायरस युक्त, रुक्ष विपाक में कटुरस युक्त, वातजनक, कफ तथा पित्तनाशक मूत्र तथा कफ को बांधने वाले और शीतल होते है । इन धान्यों में मुंग एवं मसूर की छोड़कर शेष सभी धान्य अफारा को उत्पन्न करने वाले होते हैं ।

मुग्द (मूंग) के सामान्य गुण :—Phaseolus aureus Roxb.

मूंग की भी भारत में खेती की जाती हैं । श्याम, हरी, पीली तथा सफेद रंगभेदों से मूंग कई प्रकार की होती हैं । हरी एवं श्याम वर्ण की मूंग लघु होती हैं । मूंग की दाल स्वादिष्ठ, रुक्ष, लघु, ग्राही, कफ तथा पित्तनाशक, शीतल किंचित वायु कारक, नेत्र के लिये हितकर तथा ज्वर नाशक होती है । मूंग सभी दालों में से श्रेष्ठ मानी जाती हैं ।

मुग्दो रुक्षो लघुग्राहि, कफपित्तहरो हिम :– ।

स्वादुरल्पानिलो नेत्र्यो, ज्वरघ्नो वनजस्तथा ।।

मुग्दो बहुविधः श्यामो, हरितः पीतक स्तथा ।

श्वेतो रक्तश्च तेषान्तु पूर्वः पूर्वो लघुः स्मृतः (भावप्रकाश)

भाष (उड़द) के गुण Phaseolus mungo Linn.

उड़द की राजभाष एवं राजभाष भेद से दो किस्में माई जाती है । भावप्रकाश ने महाभाष को बड़े किस्म को लोबिया माना है । उड़द की दाल मधुर रसयुक्त, स्निगध, रुचिकारक, वातनाशक, वलकारक, शुक्रजनन, मूत्र तथा को भेदन करने वाला, एवं दुग्ध वर्धक है । उड़द के लड्डू नाड़ी संस्थान के लिये वल्य माने जाते हैं ।

भाषो गुरु स्वादुपाक : स्निग्धों रुच्यों ऽ निलापह : ।

स्त्रंसनं स्तर्पणों वल्य : शुक्रलों वृहणं पर : ।।

कफपित कराभाषाः कफ पित्तकरं दधि : ।

कफ पित्तकरामतृस्या, वृन्ताकं कफपित्तकृत ।। (भावप्रकाश) :

मसूर की दाल :— Ervum lens Linn. (Leguminosae)

विपाक में मधुर, ग्राही, शीतल, लघु, वातकारक, रुक्ष एवं कफ पित्त, रक्तविकार तथा ज्वरनाशक होती है । इसमें प्रोटीन कार्बोहाइड्रेट, स्नेह आदि तत्व पाये जाते हैं ।

समस्त भारत के उष्ण प्रदेशों में इसकी खेती की जाती है । बीज चपटे भूरे रंग के होते हैं ।

मसूरो मधुरः पाके, संग्राही शीतलों लघुः ।

कफ पित्तास्त्रजिद्रूक्षो, वातलो ज्वरनाशन ।। भा० प्र०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आढकी (अरहर) की दाल :—Cajuns indicus (Leguminosea)

अरहड़ की प्रायः सभी प्रान्तों में खेती की जाती है । इसकी कई किस्में भारत में उगाई जाती हैं । भारत में अरहड़ की दाल का अधिक उपयोग किया जाता है । यह कषाय मधुर रसयुक्त, रुक्ष, शीतल, लघु, ग्राही, वातजनक, शरीर के वर्ण को उत्तम करने वाली, एवं पित्त, कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाली है । अरहर की दाल में प्रोटीन, स्नेह, कार्बोहाइड्रेट, खटिक, फास्फोरस, विटामिन ए" तथा बी ।" पाया जाता है । इसके पत्ते तथा दाल को पीस कर गरम करके स्तन पर दूध बन्द करने के लिये बांधा जाता है । अरहर की दाल के लेप से शोथ कम होता है ।

आढकी तुवरा रुक्षा, मधुरा शीतला लघु : ।
ग्राहिणी वातजननी, वर्ण्या पित्तकफास्त्रजित् ।। भा० प्र०

चणक (चने) की दाल :—Cicer arietinum Linn. (Leguminas)

भारत में चने की खेती प्रायः सभी प्रान्तों में की जाती है । चने का एक वर्षायु शाकीय पादप होता है । घोड़ों के लिये चने के प्रयोग का प्राचीन साहित्य में विशेष उल्लेख पाया जाता है । आजकल चने की दाल भोजन सामग्री में विशेष लोकप्रिय है । चने के वेशन से पकोड़े, मिठाई, आदि कई किस्मों की खाद्य सामग्री तैयार की जाती है । भुने हुये चने के भिन्न गुण होते हैं । गीला भुना हुआ चना बलदायक तथा रुचिकारक होता है । सूखा भूना हुआ चना रुक्ष वात तथा कुष्ठ को कुपित करने वाला होता है । उवाला हुआ चना पित्त तथा कफ नाशक होता है । भिगोया हुआ चना कषायरसयुक्त, अत्यन्तकोमल, रुचिकारक, शीतल, वातजनक, ग्राही, लघु, पित्त, शुक्र तथा कफ को नष्ट करने वाला होता है । सामान्यतया तथा कषाय रस युक्त शीतल, रुक्ष, लघु, विष्ठम्भी, वातकारक, पित्त, रक्तविकार क़फ तथा ज्वर नाशक है ।

चणकः शीतलो रुक्षः, पित्त रक्त कफापहः ।
लघुः कषायो विष्ठम्भी, वातलोज्वर नाशनः ।।
"भावप्रकाश"

कलाय (मटर) की दाल :— Pisum sativum L.

मटर का एकवर्षायु शाकीय पादप होता है । मटर की प्रायः सभी प्रान्तों में खेती की जाती है । यह मधुर रस युक्त विपाक में मधुर रुक्ष तथा शीतल होता है । दालों के साथ-साथ इसका उल्लेख शाकवर्ग में भी आता है । परिपक्व बीजों के तैल में लैङ्गिक हारमोन विरोधी गुण पाया जाता है । इस तैल से पौरुष हारमोन निष्क्रिय हो जाते हैं ।

कलायो मधुरः स्वादुः , पाके रुक्षश्च शीतलः ।।
(भा ० प्र०)

कुलत्थ (कुलथी) दाल के गुण:— Dolichos leiblorus L.

कुलथी की भी प्रायः भारत में खेती की जाती है । इसका एकवर्षायु मृदु शाकीय पादप होता है । बीज उष्ण, मूत्रल, बात कफनाशक, मेदहर एवं अश्मरीनाशन है । क्वाथ का प्रयोग अश्मरी, श्वास, कास, एवं श्वेतप्रदर में किया जाता है । बीजों में प्रोटीन, खनिज, कार्बोहाइड्रेट, फास्फोरस, निकोटिनिक विटामिन ए" यूरेटस् आदि तत्व पाये जाते हैं ।

कुलत्थ : कटुक : पाके, कषायः पित्तरक्तकृत् ।
लघु विदाही वीर्योष्ण ;, श्वास, कास कफानिलान् ।।
हन्ति हिक्का ऽश्मरी शुक्र दाहानाहान् सपीनसान् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वेद संग्राहको मेदो ज्वर क्रिमिहर : सर : ।।
भा० प्रकाश ।।

त्रिपुट (खेसारी) दाल :—Lathyrus sativus L.

खेसारी दाल की उत्तर भारत में प्रायः खेती की जाती है । इसकी दाल मधुर, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, रुचिकारक, ग्राही, शीतल होती है । इसके अधिक सेवन करने से पंगु, खञ्ज (लंगड़ा) आदि विकार हो जाते हैं । इसके बीजों में एक विषैला पदार्थ पाया जाता है । जिसके कारण ऐसा होता है । बीजों के तैल में तीव्र हानिकारक विरेचक तत्व पाये जाते हैं । इसकी दाल के अधिक सेवन से लकवा रोग हो जाता है ।

त्रिपुटः मधुरस्तिक्त स्तुवरो रुक्षणोमृशम् ।
कफ पित्तहरो रुच्योः, ग्राहकः शीतलस्तथा ।।
खञ्जपंगुत्व कारी वातातिकोपनः ।।भा. प्रकाशः ।।

क्षुद्रधान्यों के सामान्य गुण :—

आयुर्वेद में कुधान्य द्रव्यों का वर्गीकरण क्षुद्रधान्यों में किया गया है । इसका उल्लेख पूर्व शूक धान्यों में भी किया गया है । संक्षिप्त गुण एवं वानस्पतिक नामों की जानकारी यहाँ पर दी जा रही है । प्रायः सभी शुद्रधान्य किञ्चित उष्ण कषाय तथा मधुररस युक्त, लघु, लेखन, विपाक में कटु, रुक्ष, क्लेद को सुखाने वाले, वातकारक मल को बांधने वाले तथा कफ नाशक होते हैं । क्षुद्रधान्यों में कंगु, चीनाक, श्यामाक, कोद्रव, नीवार यावनाल, गवेधुक, वंशयव का उल्लेख किया गया है ।

कङ्गु, प्रियंङ्गु:— Setaria italica Boew (Gramineae)

काली, लाल, सफेद तथा पीली भेद से कङ्गु चार प्रकार की होती है ।
चीनाक, (चीना) : Panicum miliaceum Linn. (Gramineae)
श्यामाक (सामां) : Echinochloa frumentacea Link.
कोद्रव (कोदों) : Paspahum scroleiculatum Linn.
गवेधुक (कसई) : Coix lachrymajobei Linn.
नीवार (तीनी) : Hygroryza aristata Nees.
यावनाल (जुआर) : Sorghnum vulgare Pers.

प्रायः सभी धान्य एक वर्ष से पुराने हो तो पथ्य होते हैं । क्योंकि वे लघु गुणों वाले होते हैं । किन्तु गेहूँ, तिल, उड़द ये नवीन अवस्था में गुणकारी होते हैं ।

5

द्रव्यों का क्रियात्मक द्रव्यपरिचय परीक्षा (फारमेकोग्नोसी)

क्रियात्मक विवरण में केवल मात्र औषध द्रव्य दिखा देना पर्याप्त नहीं है क्योंकि इस प्रकार एक दो बार द्रव्य को देखने से छात्रों को सन्तोष नहीं होता और ना ही छात्र याद रख सकते हैं ।

औषध द्रव्य विक्रेता द्रव्यों के त्वक् (छाल) मूल, पत्र, काण्ड, बीज आदि में अनेक प्रकार की मिलावट करते हैं या अभाव द्रव्य तथा प्रतिनिधि द्रव्यों के रूप में विक्रय करते हैं । ऐसी दशा में कौन-सा द्रव्य शुद्ध है कौन सी-मिलावट हैं इसको क्रियात्मक अध्ययन करे बिना जानना सम्भव नहीं है ।

एक बार के दर्शन से ही द्रव्य का ज्ञान नहीं हो पाता है । इसलिये छात्र को रचनात्मक ज्ञान का अध्ययन द्रव्यों के क्रियात्मक ज्ञान (फ़ारमेकोग्नासी) के द्वारा कराना आवश्यक है । आजकल शीलाजीत मधु, हिंग आदि शास्त्रीय

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्रव्यों के पहिचान के लक्षण नकली मिलावट वाले द्रव्यों की पहिचान करने में सही उतरते हैं तथा सरलता से नकली द्रव्यों के परीक्षा द्वारा असली मनवाया जा सकता है । अतः द्रव्यों की अन्तःरचना व बाह्य रचना का सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों द्वारा पहिचान एवं रासायनिक परीक्षा द्वारा, रसों द्वारा, परीक्षा कर द्रव्य का ज्ञान होना चाहिये । आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्तों के अनुरुप भी रस, गुण, वीर्य विपाक, प्रभाव एवं पञ्च महाभूतों के संगठनों के आधार पर भी शोधकार्य कर द्रव्यों की पहिचान का प्रयास भी नितान्त आवश्यक है ।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में द्रव्यों की पहिचान आधुनिक तकनिकियों द्वारा किया जाता है । जिसका क्रियात्मक ज्ञान होना आवश्यक है । आयुर्वेद में द्रव्य गुण परिचय हेतु क्रियात्मक शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य है । द्रव्यों की बा ह्य आकृति का ज्ञान छेदन करके, भीतरी बनावट (रचना) का ज्ञान करना, उसके रस, वर्ण, विलेयता, गन्ध, शब्द आदि विधियों द्वारा द्रव्य की पहिचान की जाती है । द्रव्य का प्राकृतिक वर्ण चूर्ण करके उसका वर्ण, संस्कारित करने पर द्रव्य वर्ण, तोड़कर भीतर का वर्ण, जल, घृत एवं तेल में पका कर उसका वर्ण, सुरा या ज्वाला में डालकर वर्ण का ज्ञान करके देखा जाता है । रस परिज्ञान के लिये द्रव्य को जीभ में रखकर प्रत्यक्षीकरण किया जाता है । द्रव्यों के प्राकृतिक गन्ध का ज्ञान नासिका द्वारा सूंघ कर, आग में जलाकर घिस कर प्रत्य प्रत्यक्ष किया जाता है । द्रव्यों की मूर्त रूप परीक्षा गुणों का स्पर्श करके उष्ण, शीत, रुक्ष, खर, कठिन, स्निग्ध, मृदु आदि द्रव्यों के भौतिक गुणों का ज्ञान किया जाता है । आधुनिक विज्ञान के आधार पर यह सब फारमेकोग्नोसी कहलाती है । इस परिच्छेद में छात्रों के सामान्य ज्ञान हेतु कुछ चिकित्सोपयोगी द्रव्यों की सूक्ष्म रचना के रेखाचित्रों के साथ द्रव्य परिचय दिया जा रहा है ।

द्रव्य परिचय द्रव्य गुण शास्त्र का प्रधान अंग है । इसमें द्रव्य के अंङ्कुरण होने से लेकर उसके बीज पाक की अवस्था का ज्ञान, प्राप्तिस्थान, प्रयोज्यअंग एवं गुण धर्मों की जानकारी दी जाती है । आंगे चलकर यह द्रव्य गुण विज्ञान अध्ययन एवं गुणकर्मों के आधार पर कई भागों में विभक्त किया जाता है । यथा—द्रव्यपरिचयविज्ञान, द्रव्यगुणविज्ञान, द्रव्यप्रभावविज्ञान, देश विज्ञान, औषध संग्रह व संरक्षण विज्ञान, औषधिसंस्कार विज्ञान, मात्राविज्ञान एवं औषधिप्रयोगविज्ञान । आधुनिक भाषा में इन सबको ड्रग रिसर्च कहते हैं ।

इस परिच्छेद में मुख्य रूप से गडूची काण्ड, कुटजत्वक्, वत्सनाभमूल, कण्टकारी, अश्वगन्धा, वरूणत्वक् गम्भारीत्वक् आदि द्रव्यों के प्रयोज्य अंगों के रचना का विवरण दिया जा रहा है ।

काण्ड परीक्षा :

विधिः— शुष्क काण्ड वाले द्रव्यों की परीक्षा करने से पूर्व उनको 12 घण्टे से पूर्व जल में भिगो कर रखना चाहिये। जब द्रव्य अच्छी तरह से भीग जाय तब उसको रचना अध्ययन हेतु लम्ब एवं अनुच्छेद की दिशा में सूक्ष्म दर्शक मात्र में परीक्षण हेतु काटना चाहिये। काण्ड को चौड़ाई की दिशा में छेद (section) करने पर उसमें तीन स्तर दिखाई पड़ते हैं जोकि निम्न हैं:

(1) **त्वगीयस्तर:**— यह दो भागों में विभक्त दिखाई पड़ता है । प्रथम सबसे ऊपर पतला भूरे रंग का स्तर दिखाई देता है । यह सरलता से पृथक हो जाता है । वर्ण में यह धूसर एवं स्पर्श में रूक्ष होता है ।

(2) **भीतरीत्वगीयस्तर:**— यह हरे वर्ण का काण्ड से घट संसक्त होता है । देखने में स्निग्ध एवं मृदु होता है ।

तृतीय भाग:— यह स्तर कई भागों में विभक्त होता है, जोकि चक्राकार दिखाई पड़ता है । इस भाग में 18 से 20 चक्रांग पाये जाते हैं । ऊपर का भाग कुछ वृत्ताकार मोटा और नीचे का भाग पतला और संकीर्ण होता है । इसमें बहुत से सूक्ष्म छिद्र होते हैं । केन्द्रीय भाग सब भागों से मिलने से घना हो जाता है । त्वगीय स्तर को सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा ऊतकों को भिन्न—भिन्न रचनाओं द्वारा पहिचाना जा सकता है ।

रस:— परीक्षा में मधुर, अम्ल, कटु तिक्त, कषाय इस रसों का ज्ञान चख कर किया जाता है विषैले द्रव्यों को जिह्वा पर नहीं रखना चाहिये ।

गन्ध परिज्ञान:— आद्र, मृदुगंध, शुष्क मृदु गन्ध, अग्नि पर जलाने पर मृदु गन्ध ।

स्पर्श परीक्षा:— स्पर्श में कठिन, खर, स्निग्ध का ज्ञान किया जाता है ।

शब्द परीक्षा:— अभंगुर, आद्र, जलने पर चट—चट शब्द करता है । शुष्क शब्द रहित जलता है । आदि विधियों द्वारा काण्ड, त्वक् की परीक्षा करनी चाहिये ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुडूची (TINOSPORA CORDIFOLIA)

I

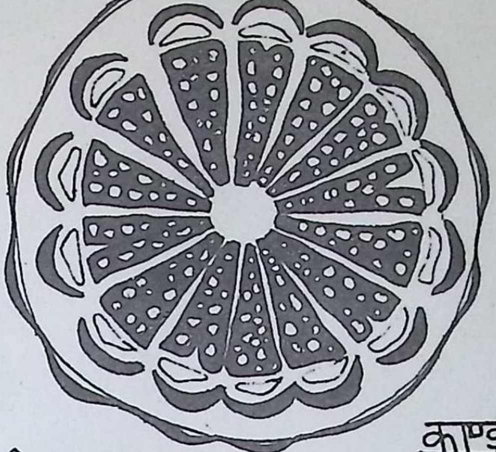

काण्ड का अनुप्रस्थच्छेद (T.S)

2

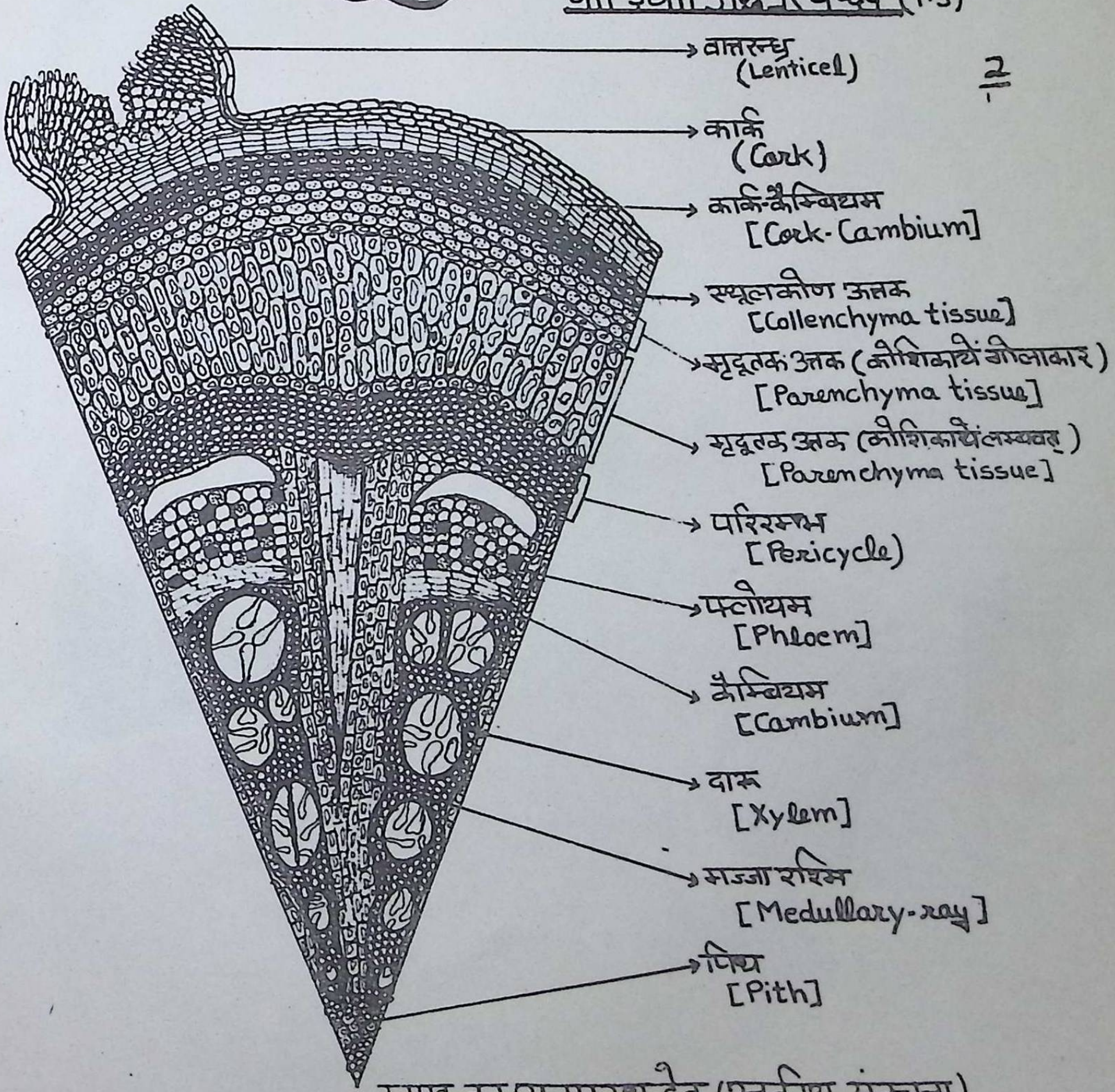

काण्ड का अनुप्रस्थच्छेद (आन्तरिक संरचना)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

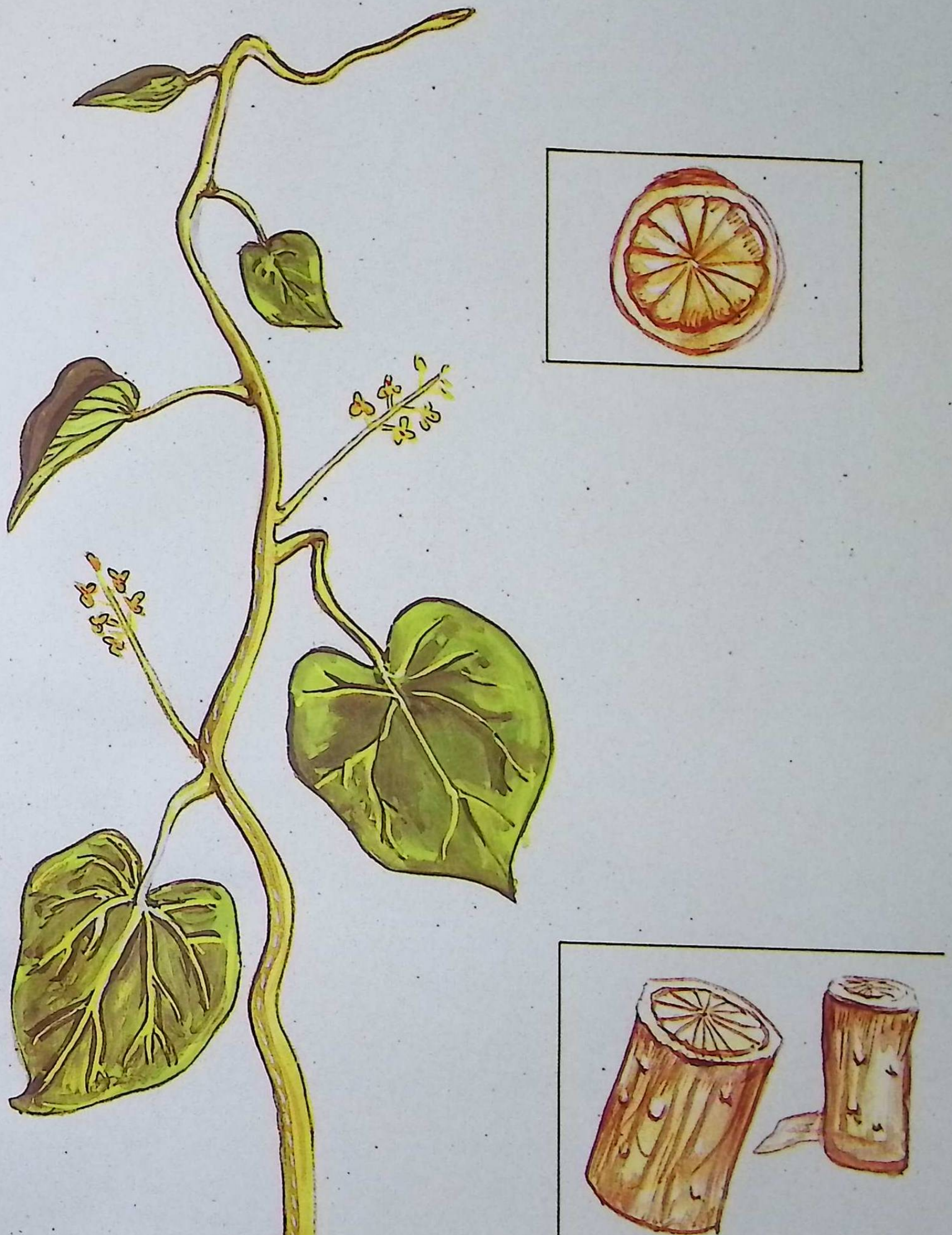

गुडूची

देखिये विवरण पृ. सं. - ५९३

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुडूची (गिलोय)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... अमृता, गुडूची, चक्राङ्गी, छिन्नरुहा, वल्ली, मण्डली, कुण्डली ।
हिन्दी .... गुर्च, गिलोय ।
वनस्पतिक नाम.........**Tinospora cordifolia Miers.**
कुल N.O. गुडूचीकुल Menisper maceae

प्रयोज्यअंग :— काण्ड, गुडूचीसत्व ।

आकृतिक विज्ञान (वानस्पतिक स्वरूप)

बाह्यपरीक्षा

लता–बहुवर्षायु, आरोहिणी, काण्ड–हरिताभ, मांसल, काटने पर अनुप्रस्थ व्यच्छेद का अन्तर्भाग–चक्राकार, बाह्यत्वक् पतली परतदार, स्पर्श में मसृण कुछ उभार युक्त, शुष्क होने पर रुक्ष, कटे हुये भाग श्वेताभ, चिन्हयुक्त चक्राकार होते हैं। बाजार में काण्ड के शुष्क टुकड़े आकृति में बेलनाकार, मोटाई व्यास में एक इ न्च तक होता है ।

काण्ड की पहिचान (बा ह्य परीक्षा)

गिलोय के ताजे काण्ड की छाल (Bark) हरे रंग की तथा गुदेदार स्टार्च लिये हुये होती हैं । काण्ड को चखने पर तिक्त कषाय रस युक्त होता है । काण्ड को पानी में मसलने पर स्निग्ध मसृण स्त्राव–सा निकलता है । काण्ड के स्टार्च वाले भाग को गुडूचीसत्व कहते हैं । काण्ड का बाह्य स्तर (Epidermis) हल्के एवं भूरे रंग का होता है तथा कागज की भांति पतले पर्तो वाला होता है । काण्ड के ऊपरी भाग पर छोटे–छोटे गठीले उत्तेघ (Warty prominences) पाये जाते हैं । लम्बे काण्ड पर कहीं–कहीं सूत्राकार आगन्तुक जड़ें पाई जाती हैं । काण्ड के शुष्क होने पर यह सिकुड़ जाता है । काण्ड में श्वसनरन्ध्र के चिन्ह (Lento cels) एवं Trasverse markinges अनुप्रस्थ दिशा में चिन्ह पाये जाते हैं ।

स्वाद:— चखने पर तिक्त कषाय रस युक्त एवं गन्धहीन होता है तथा इसमें कोई विशेष गन्ध नहीं पाई जाती है।

रासायनिक परीक्षण :— गिलोय काण्ड निस्सृत क्वाथ या घोल में आयोडीन का घोल डालने पर वह गहरा नील वर्ण का हो जाता है जोकि स्टार्च की उपस्थिति का परिचायक है । अन्य विजातीय सेन्द्रिय द्रव्य भी पाये जाते हैं।

अनुलम्बच्छेद में इसकी रचना का ज्ञान चित्र द्वारा जाना जा सकता है । जिसमें क्रमशः त्वगीयभाग, काष्ठभाग, जलीय भाग, पैरीनकाईमा, मृद्ु उतक, पित्त, जाईलम आदि की पहिचान की जाती है ।

अनुलम्बच्छेद (T.S.) आकार की रचना काण्ड के अनुलम्बछेद (T.S.) के बाहरी भित्ती के चारों तरफ lenti cels होते हैं, एवं काण्ड की बाहरी परत में घने ऊत्तक Tissue पाये जाते है । ये ऊत्तक वर्ण में भूरे रंग के दिखाई देते हैं । भित्तियों की बाहरी परत में Cork cele दिखाई देते हैं । आन्तरिक भाग स्थूलकोण उत्तक कोलनकाइमेटस एवं मृदुतक । पैरेन्काइमा आदि उत्तक वल्ककूट (Cortex) में होते हैं । इसके साथ क्रमशः Vasular bundles भी अनुच्छेद में दिखाई देते हैं । ये सभी Vascular bundels चक्राकार समूह रूप में होते हैं । इसी कारण गुडूची को कुण्डली, मण्डली, चक्राङ्गी कहा गया है । देखिये अनुप्रस्थच्छेद चित्र संख्या 1 में ।

काण्ड का अनुप्रस्थच्छेद (ऊतकीय संरचना) Tranvesvers section of the stem) :—

काण्ड के अनुप्रस्थच्छेद को सूक्ष्म दर्शक यन्त्र पर देखने से कार्क दिखाई देता है जोकि बाह्य ऊतक (Tissue) है जोकि 5 या 6 सतह को लिये हुये होते हैं । यह कार्क कार्टेक्स से जुड़ा रहता है । कार्टेक्स में वातरन्ध्र (Lentocels) होते हैं । चित्र न. 2 के आन्तरिक रचना के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि गुडूची काण्ड की रचना में

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कार्क कैम्बियम (Cork-cabium) स्थूलकोण ऊतक (Collenchyma) मृदूतक ऊतक (Parenchyma tissue) लम्बवत् एवं गोलाकार कोशिकायें दिखाई देती हैं । काण्ड में मण्डलीय परिरम्भ (Pericycle) फ्लोयम, (Phloem) कैम्बियम (Cambium) दारू Xylem] मज्ज रश्मि (Meduleary ray) एवं पिथ Pith आदि रचनायें पाई जाती हैं ।

उपरोक्त कोशिकाओं की आकृति एवं रचना को सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा देखकर गुडूची के काण्ड की पहिचान की जा सकती है । यदि मिलावट वाला काण्ड का T.S. देखा जाय तो उपरोक्त कोशिकाओं के आकार एवं रचना में भिन्नता देखने से स्पष्ट हो जाती है ।

गुडूची सत्व का सूक्ष्म दर्शकयन्त्र द्वारा परीक्षण

आयुर्वेद में निम्ब वृक्ष पर आवृत गिलोय के सत्व का विशेष गुणकारी उल्लेख है । गिलोय जिन वृक्षों पर आवृत होती हैं । उस पर अवलम्बन होने से आन्तरिक रचना में भी परिवर्तन होता है । गुडूची सत्व में प्रायः स्टार्च पाया जाता है । यदि गिलोय सत्व नीम वृक्ष पर आवृत गिलोय काण्ड से तैयार की गई है तो उसका स्वाद तिक्त होता है । सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (माईक्रोस्कोप) में देखने से Starch-grains लम्बे आकार के large size चपटे flattened, अण्डाकार, Ovoid, अनियमित रूप से Triangular, कुछ गोलाकार roundish और किनारों से narrow होते हैं । बारीक कणों में hilum की रचना देखी जाती है । ये स्टार्च ग्रेन आकार में 8 से 68 υ × 4 से 38 υ होते हैं ।

कण्टकारी (कंटेली छोटी)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... कण्टकारी, क्षुद्रा, व्याघ्री, दुःस्पर्शा ।
हिन्दी .... कटेरी छोटी, कंटाई
लैटिनण.................Solanum Zanthocarpum Schl.
कुल N.O. . कण्टकारी कुल (Solanaceae)
प्रयोज्यअंग .... मूल, पञ्चाङ्ग ।

आकृतिक विज्ञान (वनस्पतिक स्वरूप)

यह दशमूल घटक द्रव्यों के लघुपञ्चमूल द्रव्यों में से है । काण्ड–जमीन पर परिसृत, कण्टकित, पत्र, काण्ड एवं फलों पर तीक्ष्णाग्र प्रचुर कण्टक होते हैं । प्रधान काण्ड छोटा, मूल से अनेक शाखीय, diffue , बहुवर्षायु । पत्र–सूक्ष्मरोमावृत, हरिताभ पुष्प, चमकीले, बैंगनीरंग लिये हुये, फल–पकने पर पीत वर्ण के चितले रंग का धारीदार, बीज चपटे भटे के बीज की तरह । मूल छोटी, पतली श्वेताभ वर्ण की । शुष्क पञ्चाङ्ग को देखने पर समस्त काण्ड पीताभ तीक्ष्ण कांटों वाला, 2" सेन्टीमीटर तक लम्बे, मूल–पीताभ भूरे रंग की, काष्ठमय ।

स्वाद

चखने पर कषाय रसयुक्त, गन्धहीन होता है ।

काण्ड का अनुप्रस्थच्छेद ऊतकीय संरचना (T.S. of the Stem)

काण्ड के अनुप्रस्थच्छेद को सूक्ष्मदर्शक यन्त्र पर देखने से Epidernis की cicular outline से घिरी हुई होती है, इसी में हरे रंग के अंगूठी सदृश चक्रिका में हरित ऊतक (Chlorenchyma) दिखाई देते हैं । यदि काण्ड के अनुप्रस्थच्छेद रचना केन्द्र का अध्ययन किया जाय तो इसमें क्रमशः निम्न विशेषतायें माईक्रस्कोव से दिखाई देती हैं । चित्र संख्या 3 C के आन्तरिक रचना में ऊतकों के आकारिकी से यह स्पष्ट होता है कि कण्टकारी के काण्ड की वाह्य त्वचा (Epidermis) में ऊत्तकों की परत एवं उपत्वचा Cutocle होती है तथा क्रमशः स्थूलकोण ऊतक (Chlorenchyma) हरित ऊंतक (Collenchyma) मृदूतक उतक (Parenchyma) परिरम्भ (Pericycle) फ्लोयम (Phloem) कैम्बियम

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(Cabmium) दारू (Xylem) मज्जारश्मि (Medullary-ray) अन्तरादारू फ्लोयम (Intraxylary-phloem) पिथ (Pith) आदि संरचना ऊतकों की भिन्न-भिन्न आकारों, परिमाणों एवं संख्याओं में दिखाई देती है ।

कण्टकारी जड़ की अनुप्रस्थकार (T.S. of Solanum Zanthocrpum Root)

कण्टकारी मूल की आन्तरिक रचना में ऊतकों की आकारिक स्वरूप में बल्ककूट Cortex की दीवार में मोटे एवं चपटे कोशिकाओं की भित्ति दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त घ्रढ़ ऊतक Scleren chyma फ्लोयम Phloem] कैमिबयम Cambium] मज्जरिश्म (Medullary-Ray) दारू Zylem आदि आकारिकी रचनाओं का ज्ञान होता है । देखिये चित्र संख्या 3 सी में । काण्ड में अंतरादारू फ्लोयम (Intraxylasy pholem) मृदूतक ऊतक Parenchyma एवं घ्रढ़ ऊत्तक sclerenchyma, के ऊत्तक समूह रूप में एवं अंगूठी के आकार में दिखाई देते हैं । मूल में कोर्क एवं कैम्बियम स्पष्ट रूप से अनुपस्थित होते हैं तथा घष्ठ ऊतक कोशिकायें Cortical क्षेत्र में दिखाई देती हैं । मज्जारश्मि Medullary-ray कहीं-कहीं Peripheral cortical कोशिकाओं के साथ दिखाई देती है एवं इसी के साथ कुछ स्टार्च होता है । इन रचनाओं के आकारिक स्वरूपों के आधार पर कण्टकारी में की जाने वाली मिलावटों को आसानी से पहिचाना जा सकता है ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कंटकारी [SOLANUM XANTHOCARPUM] 3 C

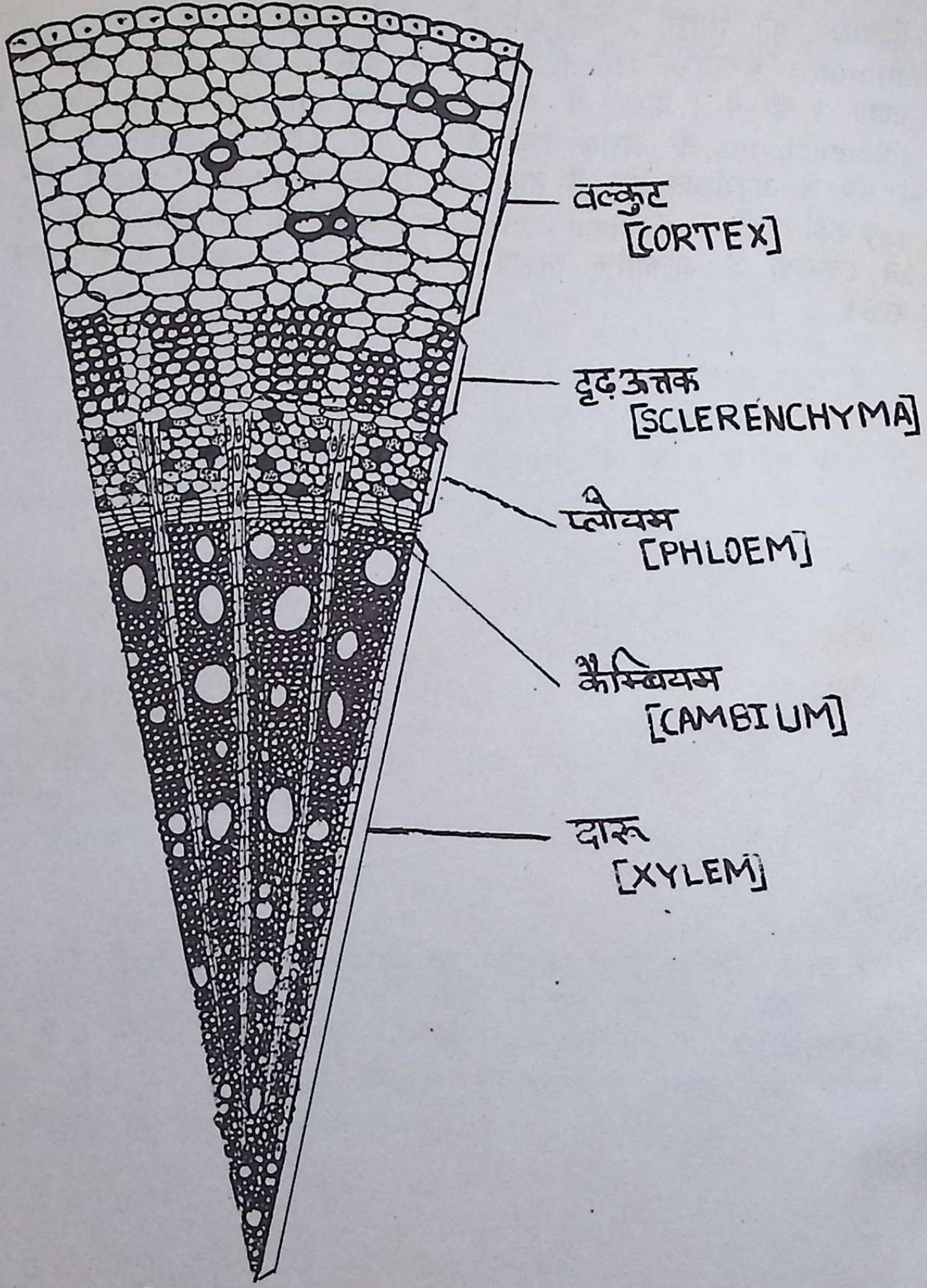

जड़ की अनुप्रस्थ काट [T.S.]

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

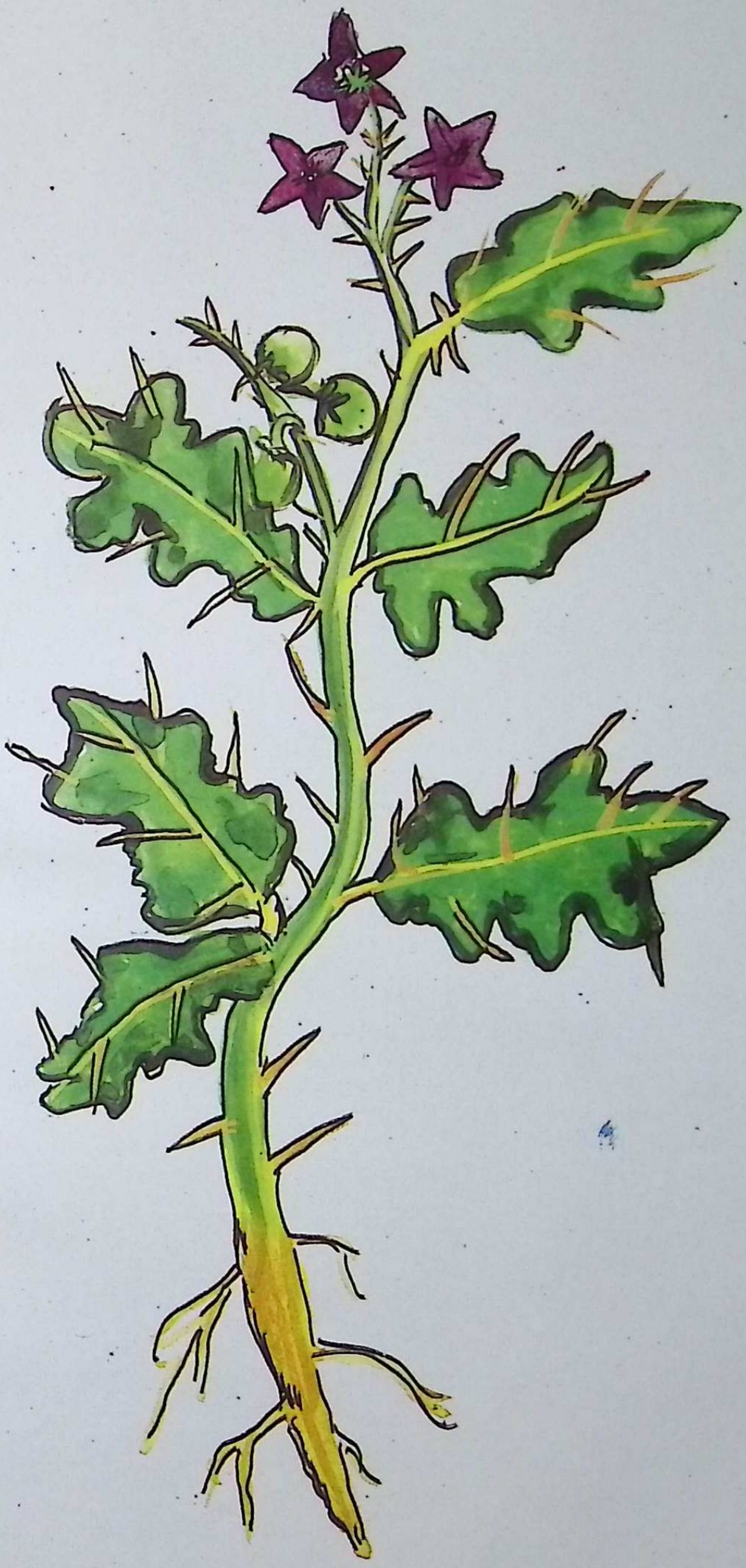

कण्टकारी

देखिये विवरण पृ. सं. - 4९8

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कण्टकारी [SOLANUM XANTHOCRPUM]

3B

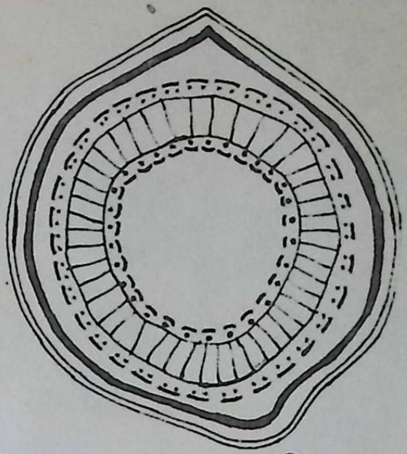

काण्ड़ का अनुप्रस्थच्छेद (T.S)

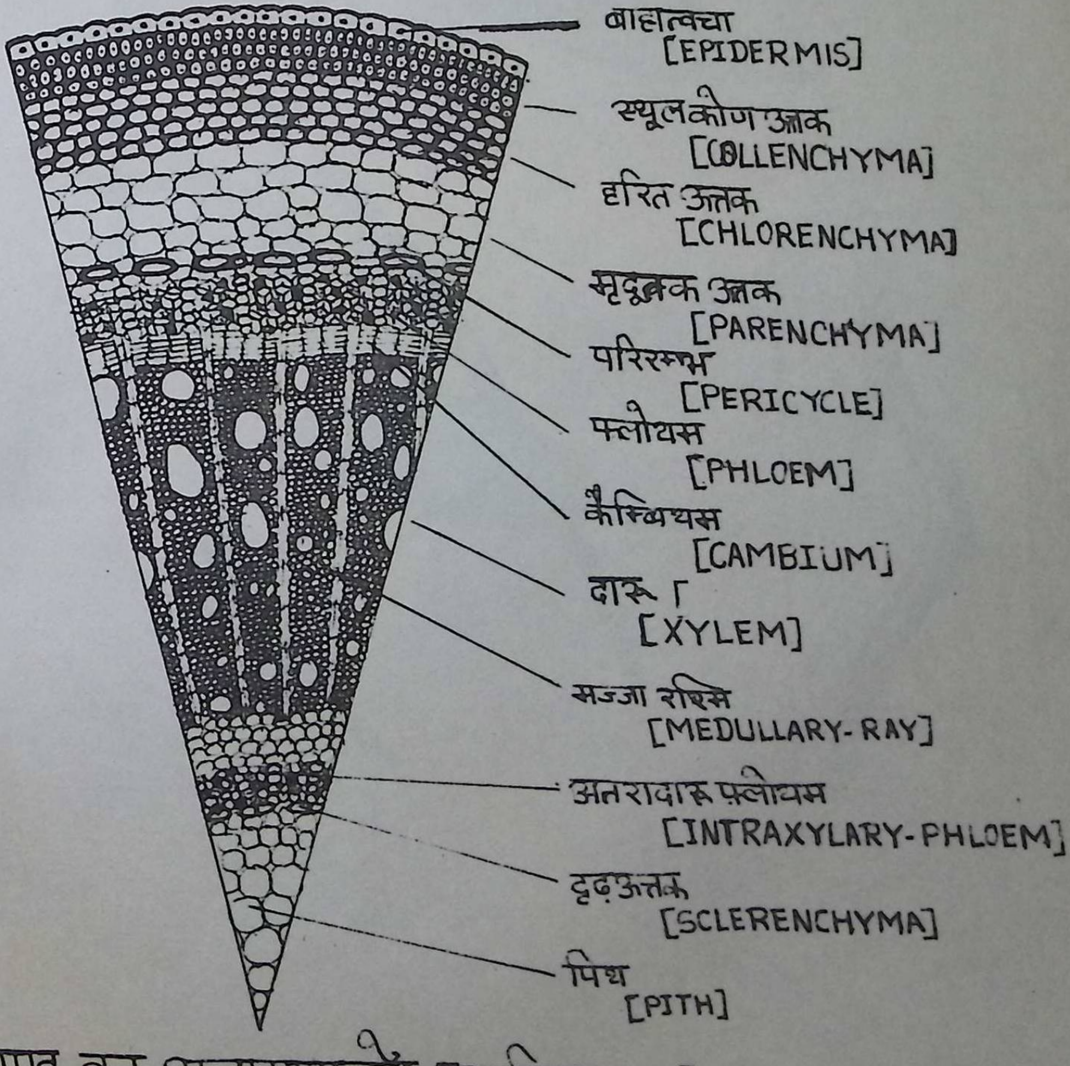

काण्ड़ का अनुप्रस्थच्छेद [आकीय रचना]

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

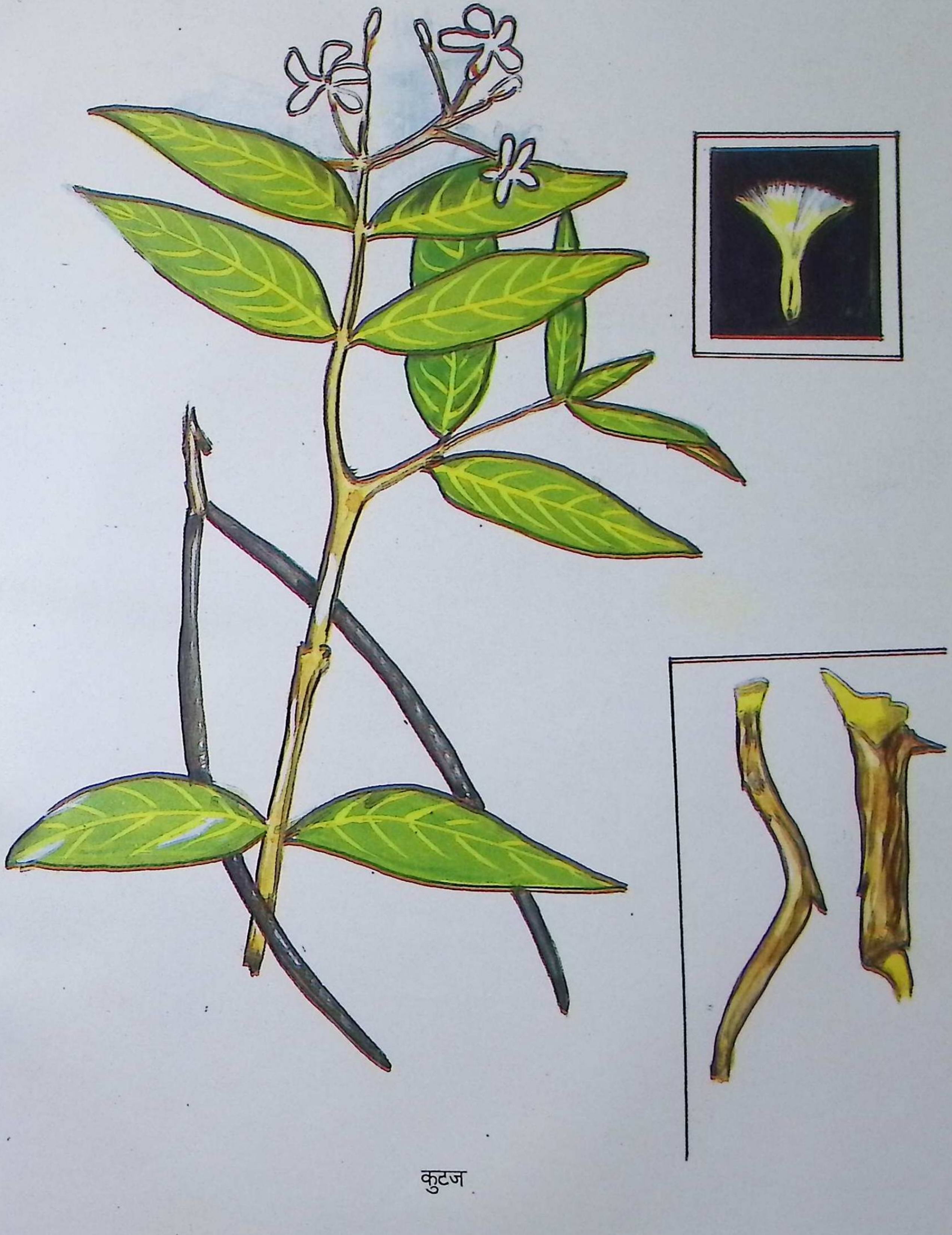

कुटज

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुटज (कूड़ा छाल)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... कुटज, वत्सक, गिरिमल्लिका, कलिङ्गक, यवफल, मल्लिका पुष्प ।
हिन्दी .... कूड़ा, कुरया
लैटिन ....**Holarrhena antidysenterica wall.**
कुल N.O, कुटजकुल, (Apocynaceae)

आकृतिक विज्ञान (वानस्पति स्वरूप)

कुट्ज एवं कौट शब्द से अभिप्राय है कि यह पहाड़ी एवं निचली तलहटियों में विशेष रूप से पाया जाता है । गिरिमल्लिका एवं मल्लिका पुष्प से अभिप्राय है कि कुट्ज के पुष्प चमेली के पुष्पों के सद्यश होते हैं ।

यवफल से अभिप्राय है कि कुटज के बीज यव के बीज सद्यश ।

कुटजकाण्डत्वक् एवं मूलत्वक् की बाह्य पहिचान (External Morphology of Bark)
कुट्ज छाल बाहर से कार्क या भूरे रंग की, तथा अन्दर से पीताभ भूरे रंग की, बाहरी तल पर लम्बाई के रुख में झुर्रियाँ पड़ी होती हैं । अनुप्रस्थ दिशा में देखने पर छाल में दरारें-सी दिखाई देती हैं । तोड़ने पर छाल भंगुरता से टूटती है । इसमें एक हल्की मधुर गंध होती है । स्वाद में छाल अत्यन्त तिक्त होती है । मूलत्वक् रेखाकार (Linear) एवं बेलनाकार Cylindrical, रंग में भूरे वर्ण के 1 से लेकर 2.8 सेन्टीमीटर तक होती है । त्वक् के बाह्य कोर्की भाग में लम्बवत् कटक रेखा-सी दिखाई देती है ।

मूलत्वक् का अनुप्रस्थच्छेद (ऊतकीय संरचना) (T.S. of Root Bark)
त्वचा की आन्तरिक रचना में अन्तर वृक्ष की अवस्था, प्रकृति एवं आयु अनुसार कुछ परिवर्तन दिखाई देता है। मध्यम आकार के वृक्ष के मूलत्वक् की अनुच्छेद रचना (T.S.) के बाह्य सतह पर (Corktissue) होते हैं । तुलना में 8 से 12 परत वाले लम्बे elongated चपटे होते हैं । इसके बाद कोर्क कैम्बियम में आयाताकार कोशिकायें rectangular cells होते हैं । वल्क कूट (Cortex) को (Cork Cambium) का कुछ भाग घेरे हुये दिखाई देता हैं । शेषभाग में ring के आकार का Cortex होता है । इनमें लम्बवत् मृदूतक कोशिकायें दिखाई देती हैं । इसी प्रकार आगे केन्द्र की ओर देखें तो (Phlome) , कैम्बियम (Cambium)] द्वितीयक दारू (Secondary xylem]) प्राथमिक दारू (Primary Xylum) एवं मज्जरश्मि (Medullary-ray) दिखाई देती है । Xylem tissue केन्द्र में होते हैं । वल्ककूट में घठ कोशिकायें होती हैं । T.S. आयोडीन के घोल में रञ्जन करने पर dark-blue दिखाई देता हैं। देखिये चित्र संख्या 4 । छाल की आन्तरिक रचना के आधार पर इसमें की जाने वाली मिलावट को पहिचाना जा सकता हैं।

बृहती (बड़ी कटेली)

द्रव्यनाम .... संस्कृत .... बृहती, स्थूलभण्टाकी, सिंही, कण्टकी, वृन्ताकी ।
हिन्दी .... बड़ी कटेली ।
लैटिन .... **Solanum indicum Linn.**
कुल N.O. कण्टकारी कुल Solanaceal

आकृतिकविज्ञान (वानस्पतिक स्वरूप)

बहुशाखीय गुल्मक 50 से0 मी0 से 2 मीटर ऊँचा, काण्ड, पत्र, कण्टकित, पर्ण लट्वाकार, आयताकार, खण्डित तटवाले अधःपृष्ठ रोमश, उपरीतल तारकार रोमों वाला, पुष्प बैंगनी रंग के, फल-मांसल, बीज चपटे बहुसंख्यकीय, फल पकने पर पीत वर्ण के । मूल-भूरे रंग का, काष्ठमय ।
स्वाद चखने पर कषाययुक्त, गन्धहीन,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुटज [HOLARRHENA ANTIDYSENTERICA]

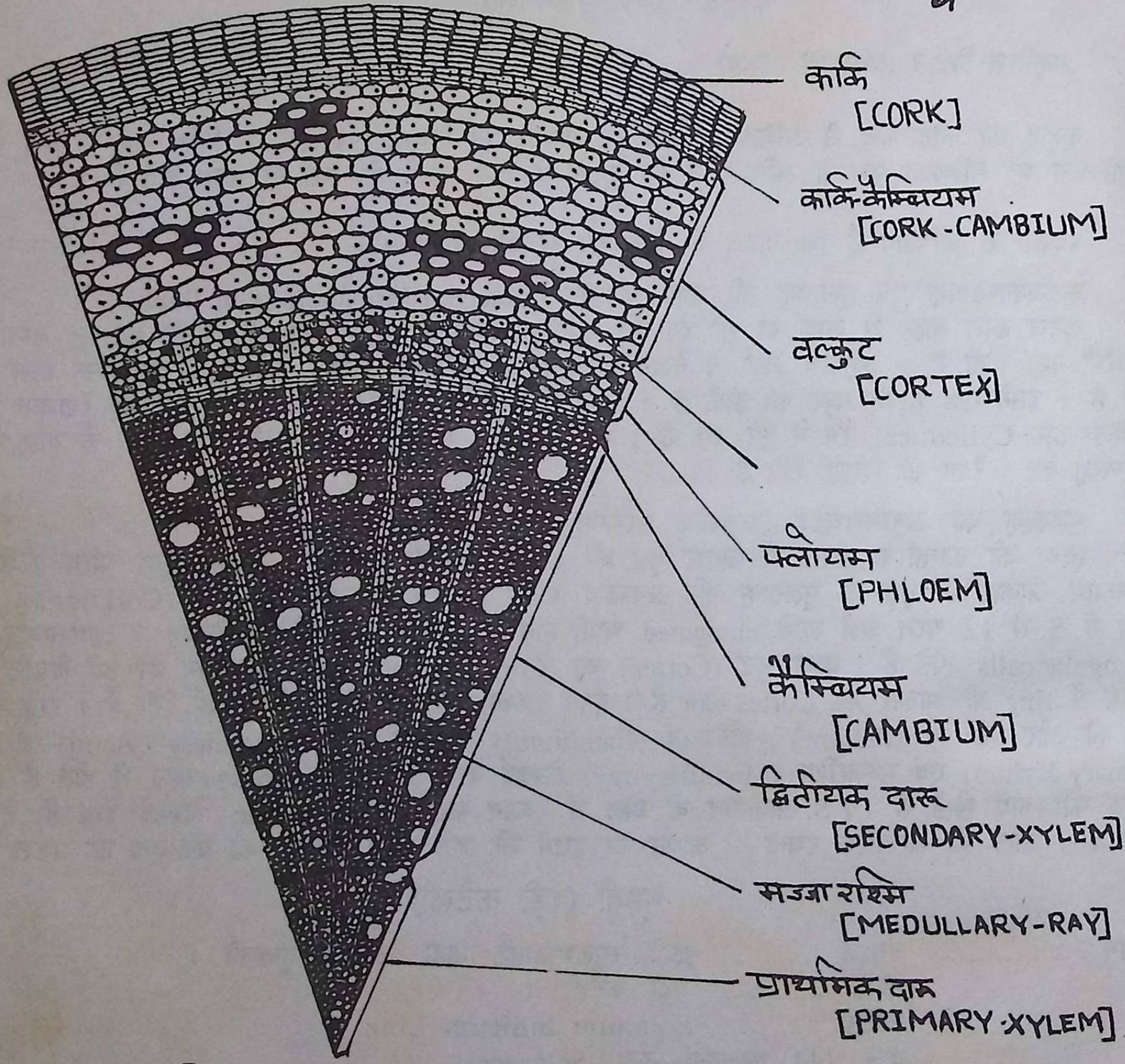

जड़ की अनुप्रस्थ काट [T.S.]

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बृहती

देखिये विवरण पृ. सं. - 502

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बृहती [SOLANUM INDICUM] 5

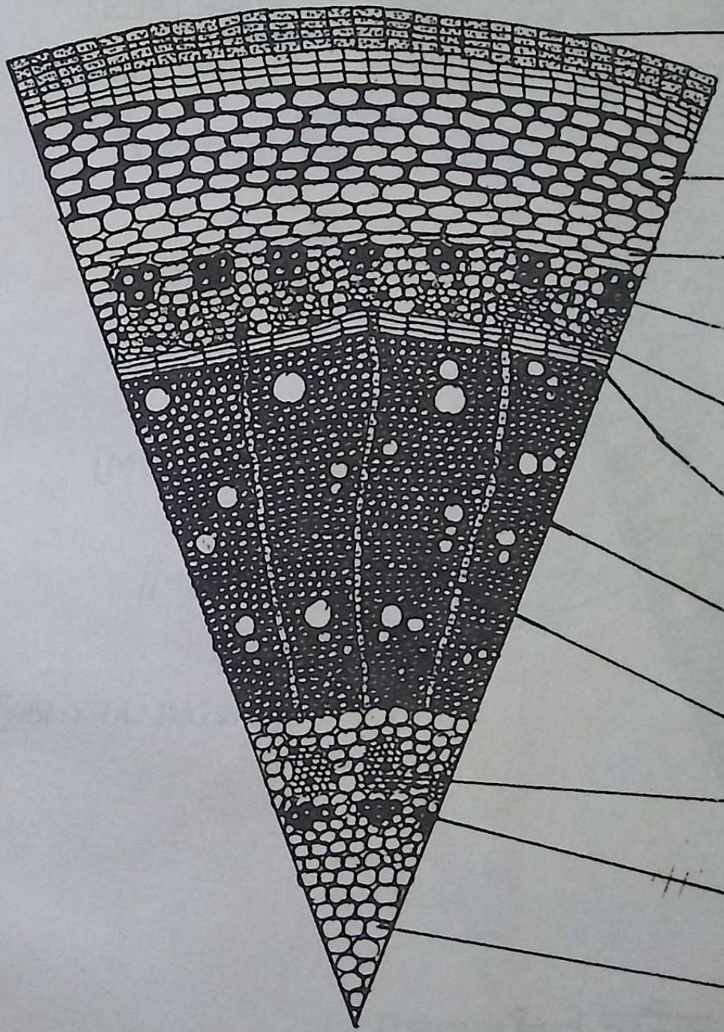

काण्ड का अनुप्रस्थच्छेद [ऊतकीय रचना]

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वरूण [CRATAEVA RELIGIOSA]

6

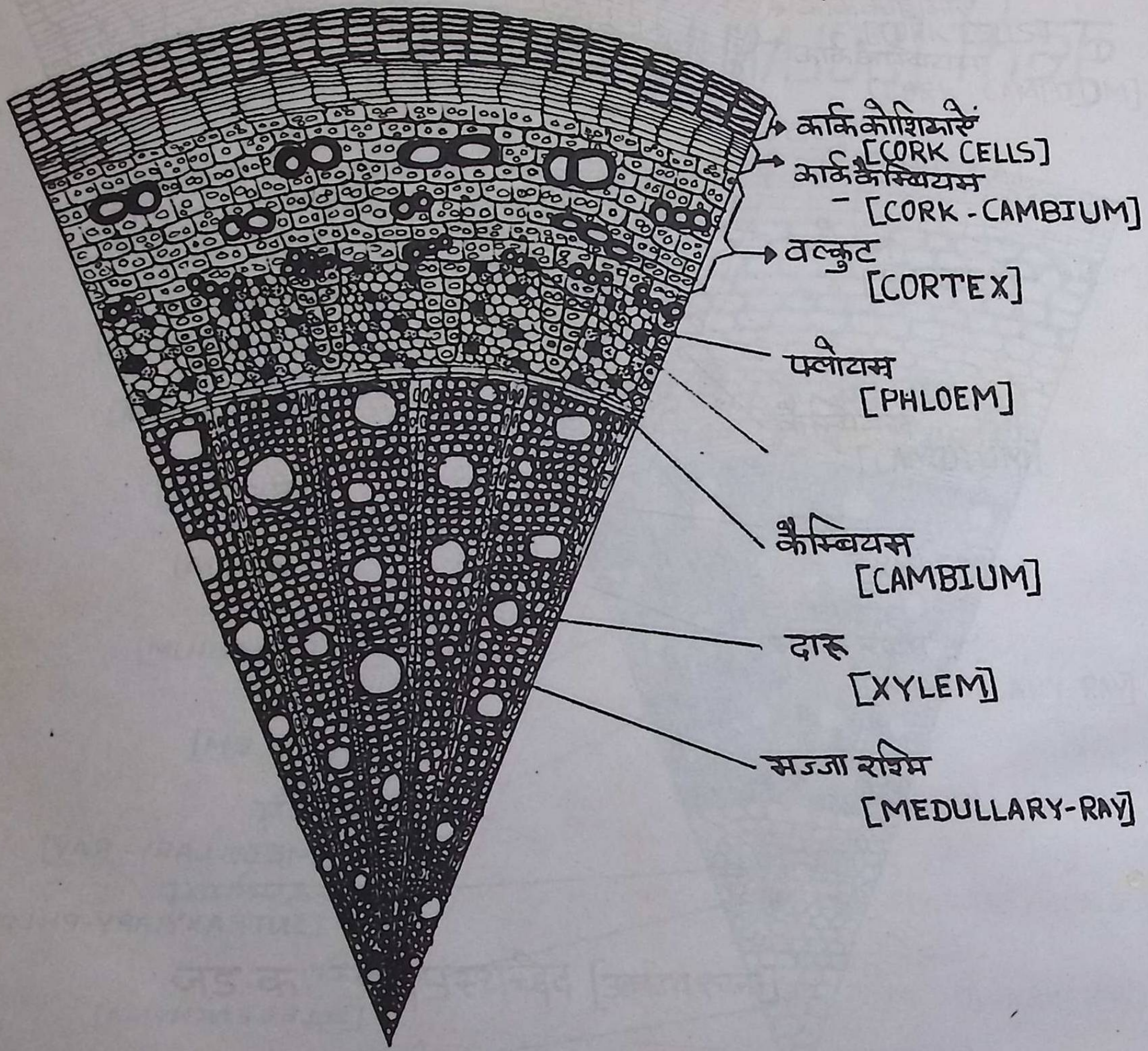

जड़ का अनुप्रस्थच्छेद [अन्तीय रचना]

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वरुण

देखिये विवरण पृ. सं. - 509

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अश्वगंधा [WITHANIA SOMNIFERA]

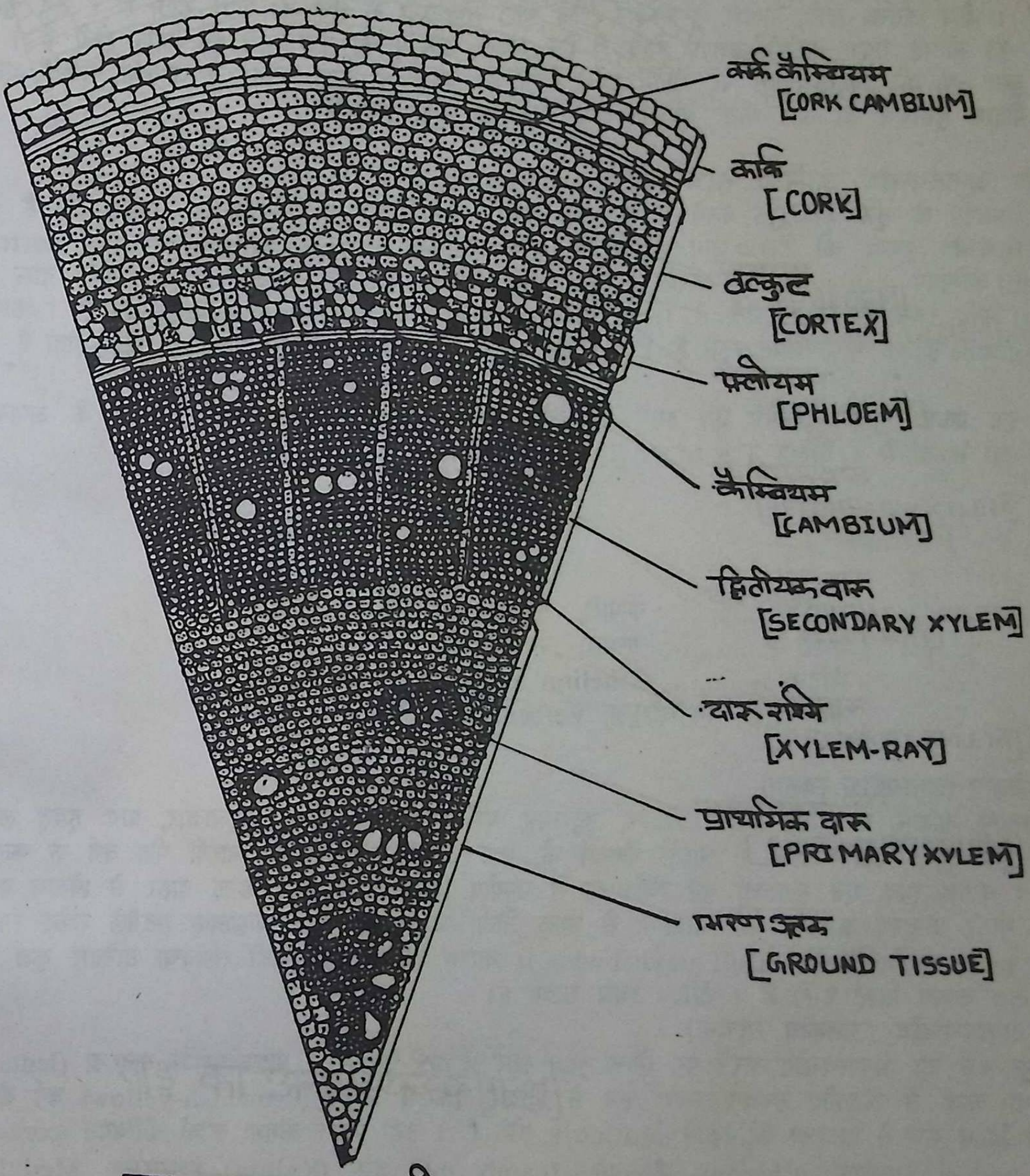

जड़ का अनुप्रस्थच्छेद [T.S.]

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आकृतिकविज्ञान (वानस्पतिक स्वरूप)

तलोल्थ गुल्मक, 1.5 से 1.8 मीटर लम्बा, बहुशाखीय काण्ड श्वेतरोमावृत पर्ण, लट्वाकार, अग्र की ओर क्रमशः चौड़े, पत्रतट अखण्डित होते हैं । ताजे पौधे को मसलकर सूंघने पर घोड़े के मूत्र की भांति गंध आती है । पुष्प–हरिताभ, बैंगनी आभा लिये हुये, पत्र कोणोद्भूत, गुच्छों में, फल–मांसल, मटराकार, मसृण पकने पर लाल रंग के होते हैं । बीज असंख्य छोटे, पीताभ, वृक्काकार, बीज चोल मधुमक्खी के छत्ते की भांति होता है । जड़ कुछ शंक्वाकार, पेन्सिल की मोटाई सदृश नागोरी असंगंध होती हैं एवं जंगली असगंध की जड़ मूली की भांति होती है । बाह्यतल पर हल्के, धूसर वर्ण की, किन्तु तोड़ने पर भीतर सफेद होती हैं। स्वाद में तिक्त बाजार से उपलब्ध नागोरी असंध बाहर से हल्का पीताभ धूसरवर्ण का ओर भीतर से श्वेत तथा तोड़ने पर भंगुर होता है ।

जड़ का अनुप्रस्थच्छेद ऊतकीय संरचना (T.S. of the Root)

असगंध के मूल का T.S. करने पर सर्वप्रथम बाहरी किनारों पर कार्क कोशिकायें दिखाई देती हैं । इसी तरह इस अनुप्रस्थच्छेद रचना को देखा जाय तो क्रमशः कार्क कैम्बियम (cork-cambium) वल्ककुट (cortex) फलोयम (Phloem) कैम्पियम (canbium) द्वितीयकदारू (Secondary Xylem) दारूरश्मि, (Xylem-ray) प्राथमिक दारू (Primary Xylem) आदि रचना में दिखाई देती हैं । काटैक्स में Vaslar एवं ground tissue दिखाई देते हैं । काफी संख्या में Starch grains मृदुतक में उपस्थित रहते हैं । T.S. को Iodine के घोल में डालने पर dark-blue होता हैं ।

इस प्रकार नागोरी असगंध एवं इसमें की जाने वाली मिलावट को आभ्यन्तरिक रचना के अध्ययन करने से पहिचाना जा सकता है । देखिये T.S. of the Root. चित्र संख्या 7 ।

गम्भारी (गंभार)

द्रव्यनामण................. संस्कृत .... गम्भारी, भद्रपर्णी, काश्मरी, पीतरोहिणी ।
हिन्दी .... गम्भार, गंभारी ।
लैटिन .... **Gmelina arborea Roxb.**
कुल N.O. निर्गुण्डीकुल, Verbenaceae

आकृतिकविज्ञान (वानस्पतिक स्वरूप)

मध्यम आकार का वृक्ष, शाखायें श्वेताभ, मृदुरोमश, पर्ण–रूपरेखा में चौड़ी, लट्वाकार, प्रायः हृद्वत् लम्बाग्र, सवृन्त, अभिमुख, पुष्प–सगुच्छ अग्रमञ्जरियों में नांरगी पीतवर्ण के, फल–अण्डाकार पकने पर नारंगी पीत वर्ण के फलमञ्जा स्वाद में मधुर । काण्ड त्वक् एवं मूलत्वक् का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है । छाल बाहर से श्वेताभ वर्ण की छाल अपेक्षाकृत मोटी, केन्द्रस्थ काष्ठीय भाग आसानी से पृथक् किया जा सकता है । बाह्यत्वक् मटमैले सफेद रंग का (Rind or outer bark) खाकीस्तरीसफेद (Dull greyish white)। काण्ड छाल काफी माटी उपत्वचा दानेदार कुछ सुगन्धित एवं स्वाद में कुछ कषाय तिक्त होती हैं । देखिये चित्र संख्या 8।

जड़ का अनुप्रस्थच्छेद (ऊतकीय संरचना)

मूलत्वक् का अनुप्रस्थच्छेद करने पर निम्न मुख्य स्तर दिखाई देते हैं । बाह्यत्वचा में वातरन्ध्र (lenticels) दिखाई देते हैं तथा कार्क में ऊतकीय संरचना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है जोकि (Brownish-yellow) वर्ण के होते हैं । Cork में विशेष रूप से वातरन्ध्र कोशिकायें lenticels, होते हैं । इसी प्रकार क्रमशः कोर्क कैम्बियम (cork-cambium) वल्ककूट (cortex), फ्लोयम (Phleom), कैम्बियम (cambium) दारू (Xylum), मञ्जारश्मि Medullary-ray, घटकोशिकायें (stone cells) आदि संरचना दिखाई देती है । मूलत्वक् के आभ्यन्तरिक भाग में starch grains अधिक दिखाई देती है । देखिये आभ्यन्तरिक संरचना चित्र संख्या 9 ।

टिप्पणी

बाजार में गम्भारी के छाल से कई किस्मों की छालों का मिलावट किया जाता है । T.S. करने पर शास्त्रीय छाल को आसानी से पहिचाना जा सकता है । रस, गंध, स्पर्श एवं शब्द परीक्षा से भी इसकी पहिचान की जानी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गम्भारी [GMELINA ARBOREA] T. S.

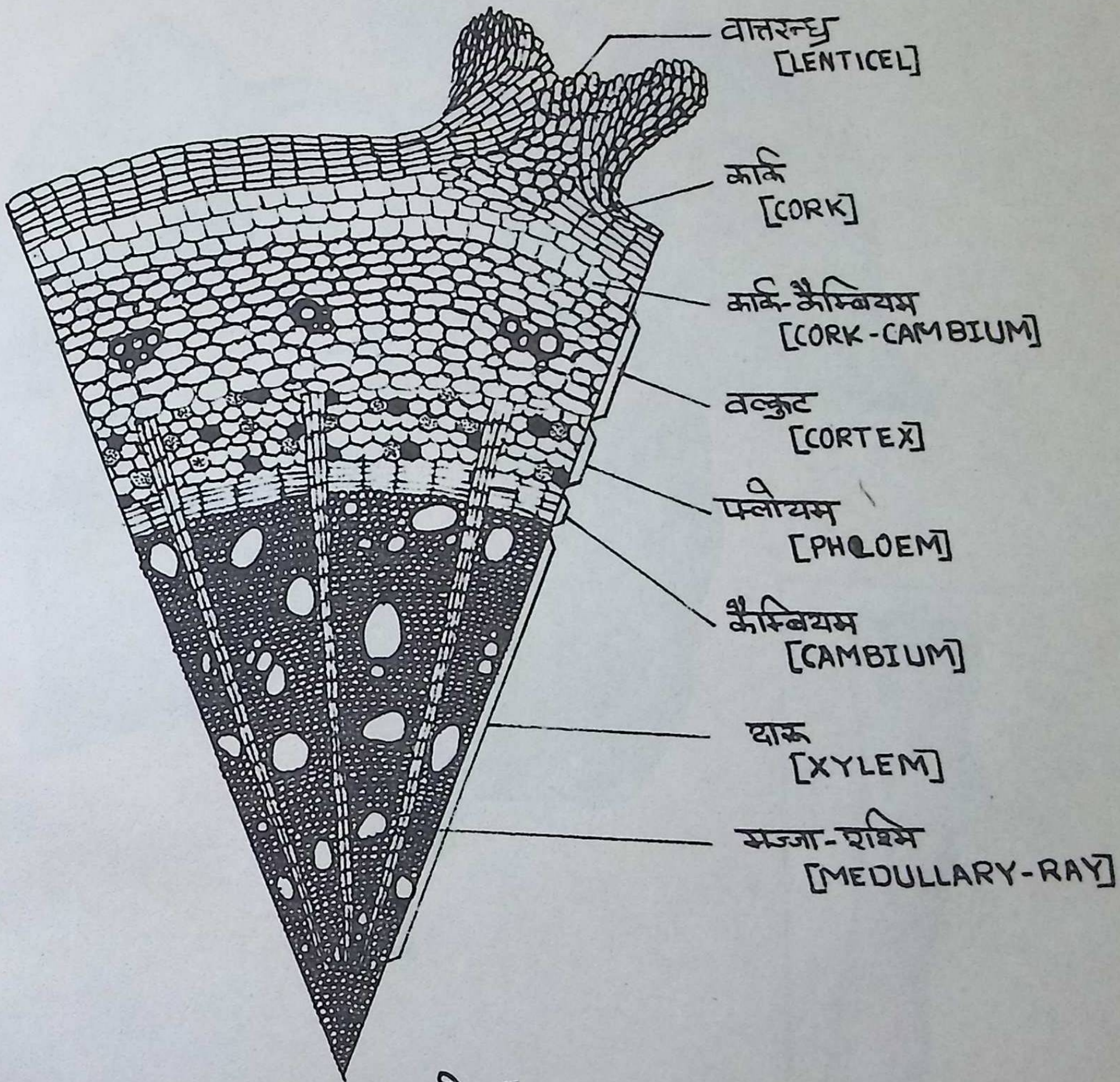

जड़ का अनुप्रस्थच्छेद [T.S.]

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

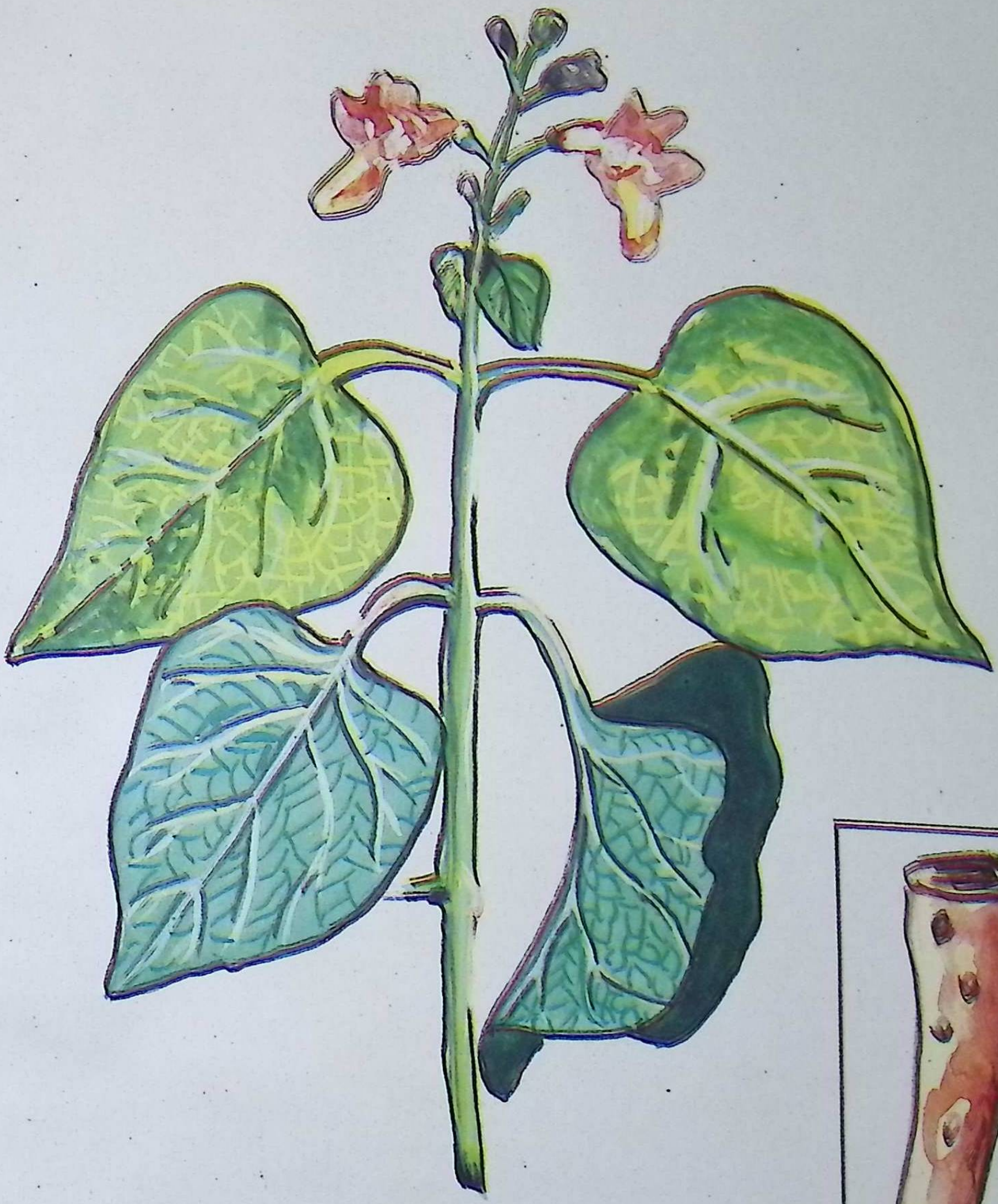

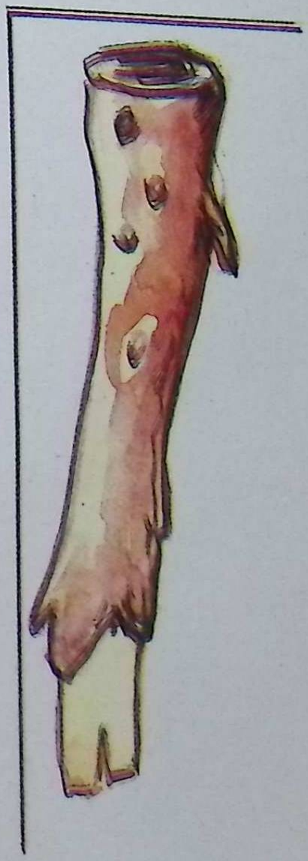

गम्भारी

देखिये विवरण पृ. सं. - 507

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

काण्ड का अनुप्रस्थच्छेद ऊतकीय संरचना (T.S. of the Stem)

काण्ड का अनुच्छेद रचना का अध्ययन सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा करने पर सर्वप्रथम बेलनाकार 3–4 सतह कोर्क कोशिकाओं की दिखाई देती हैं । कार्क कोशिकाओं की मोटी भित्ती होती हैं तथा आकृति में समकोणिक (rectangular) स्पर्शरेखीय होते हैं । कोर्टेक्स (cortex) में स्थूलकोण ऊतक (collenchyma) एवं मृदूतक ऊतक Parenchyma दिखाई देते हैं । स्थूलकोण ऊतक 5 से 6 परत की अण्डाकार कोशिकायें दिखाई देती हैं । मृदूतक में भी पैरन्काइमेटस कोशिकायें होती हैं । इस प्रकार आगे केन्द्र की ओर देखें तो क्रमशः परिरम्भ (Paricycle) फ्लोयम (Phloem) कैम्बियम (Cambium दारु (Xyleum) मज्जरश्मि (Medullary-ray) अन्तदासक फ्लोयम (Intra Xylary-phloem) घढ़ऊतकी (Sclerenchyma) एवं पिथ (Pith) दिखाई देता है । काण्ड में विशेष रूप से अन्तदारूफ्लोयम (intra xylary-phloem) पाया जाता हैं । देखिये चित्र संख्या 5।

टिप्पणी

बड़ी कटेली की कई जातियाँ आजकल बाजार में बृहती के नाम से बिकती हैं । मुख्य रूप से (**Solanum torvum, Solanum melongana**) आदि किस्में बृहती (बड़ी कटेली) के नाम से उपलब्ध हैं ।

वरुण (वरना)

द्रव्यनाम............. संस्कृत .... वरुण, त्रिपर्ण, विल्वपत्र, वृतफल ।
हिन्दी .... वरना, वरूण ।
लैटिन .... **Crataeva religiosa** Forest.
कुल N.O. वरुणकुल Capparidaceae.

आकृतिकविज्ञान (वानस्पतिक स्वरूप)

मध्यम आकार का वृक्ष, पर्ण–त्रिपत्रक (Trifoliate) सवृन्त, लट्वाकार, भालाकार, चर्मिल, पुष्प–समशिख, नम्य, गुच्छाकार मञ्जरियों में श्वेताभ पीतवर्ण के, सुगन्धित, फल–लम्बे, गोल नीबू के आकार का पकने पर लाल रंग का होता है । काण्डत्वक्–मोटी खाकी स्तरी रंग की, बाह्यत्वचा अनुप्रस्थ दिशा में फटी हुई या दरार युक्त (fissured) त्वचा के बाह्य स्तर (Epidermis) के नीचे का स्तर हरे रंग का सफेद होता है । छाल आसानी से टूट जाती है । अश्म कोशिकायें (Stone cells) पीले बिन्दुओं के रूप में दिखाई देती हैं । स्वाद– में छाल चखने पर तिक्त–सी होती हैं ।

जड़ का अनुप्रस्थच्छेद ऊतकीय संरचना (T.S. of the Root)

सूक्ष्मदर्शक यन्त्र पर मूल त्वक् के अनुप्रस्थच्छेद करने पर निम्न रचनाओं के अध्ययन से वरुण छाल की पहिचान की जा सकती हैं । सर्वप्रथम कोर्क कोशिकायें (cork cells) दिखाई देती हैं जोकि पीताभ वर्ण की समरेखीय 8 से 15 धारियों में तथा मोटी भित्ती (Thick walled) होती हैं । इसके बाद कार्क कैम्बियम (corke cambium) की पतली समकोणिक पतली कोशिकायें दिखाई देती हैं । इसी तरह क्रमशः वल्ककूट (Cortex) फ्लोयम (Phlome) कैम्बियम, (cambium) दारू (Xylum) मञ्जरश्मि Medullary-ray आदि संरचनायें मूलत्वक् के अनुप्रच्छेद करने पर दिखाई देती हैं । विशेष रूप से ग्यढ़ कोशिकायें (stone cells) वल्ककूट क्षेत्र में अनियमित रूप से दिखाई देती हैं । मञ्जरश्मि आकृति में (nerrow) कोटेक्स में बहुत संख्या में (Starch grains) दिखाई देते हैं । मञ्जारश्मि की रचना विशेष किस्म की आकृति में दिखाई देती हैं । इस प्रकार से वरुण की शास्त्रीय मूलत्वक् या काण्डत्वक् का आम्यन्तरिक रचना के अध्ययन किया जा सकता हैं । इस रचना के आधार पर वरुण छाल में की जाने वाली मिलावट को पहिचाना जा सकता हैं । देखिये चित्र संख्या 6 ।

अश्वगंधा (असगंध)

द्रव्यनाम............... संस्कृत .... अश्वगन्धा, हयाह्वया, बलदा ।
हिन्दी .... असगंध ।
लैटिन .... **Withania somnifera Dunal.**
कुल N.O. कण्टकारी कुल Solanaceae.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चाहिये। मधुर तिक्त प्रधान द्रव्य पार्थिव कहलाते हैं । अतः द्रव्यों के पाञ्च भौतिक गुणों का भी अध्ययन का भी ध्यान रखना आवश्यक है ।

पिप्पली (पीपल छोटी)

द्रव्यनाम.................. संस्कृत .... पिप्पली, मागधी, वैदेही, कणा , तीक्ष्णतण्डुला, ऊषणा, उपकुल्या, शौण्डी ।
हिन्दी .... पींपल, पिप्पली ।
लैटिन .... **Piper longum** Linn.
कुल N.O. Piperaceae.

आकृतिकविज्ञान (वानस्पतिक स्वरूप)

आरोही, विसर्पी एवं भूशायी परिसृत गुल्मक, शाखायें कोमल, मृदुरोमश, किञ्चित गन्धवाली । काण्ड रूपरेखा में बेलनाकार, पर्वो पर अपेक्षाकृत अधिक मोटे, पर्ण–सवृन्त, हृद्व,त् प्रायः लट्वाकार या वृताकार, काण्ड–संसक्त, रूपरेखा में आयताकार, अण्डाकार फलकमल की ओर किंचित हृदयाकार । पुष्प एकलिंग और कोणपुष्पक, फल रूपरेखा में लम्बगोल और शुण्डाकार तथा देखने में कच्चे फल शहतूत सदृश, कृष्णाभ धूसर वर्ण के । बाजार में छोटी बड़ी भेद से दो प्रकार की पीपल पाई जाती हैं । बड़ी पीपल सिंगापुर, लंका, जंजीवार आदि देशों से आयातित होती है जिसे **Piper officinirum** कहते हैं । Piper के मूल के भी कई प्रजातियों का संग्रह पिप्पलामूल एवं चव्य के नाम से किया जाता है । पिप्पलामूल पिप्पली की लता की जड़ होती है । जड़ें ग्रन्थिल, कड़ी, श्यामतालिये हुये खाकस्तरी होती है । मूल को तोड़ने पर अन्दर से सफेद निकलती है । स्वाद में पिप्पली की तरह कड़वाहट लिये हुये तीक्ष्ण एवं चरपरा होता है । देखिये चित्र संख्या–10 ।

जड़ का अनुप्रस्थच्छेद ऊतकीय रचना (T.S. of the Root)

सूक्ष्मदर्शक यन्त्र पर पिप्पली मूल के अनुप्रस्थच्छेद रचना को यदि देखा जाये तो विभिन्न प्रकार के ऊतकों एवं कोशिकायें क्रमशः दिखाई देती हैं । जोकि क्रमशः कार्क (Cork) तैल कणिकायें (oil globuel) मोटी कोशिकाभित्ति (Thickwalled cell) वल्ककूट (Cortex) अन्तः त्वचा (Endodermis), दृढकोशिका (Stone cell) फ्लोयम (Phloem) मञ्जारश्मि (Medullary-ray)] दास Xylum पिथ Pith आदि संरचनायें पिप्पली मूल के T.S. में देखी जा सकती है । इस प्रकार विभिन्न आकार के कोशिकाओं के अध्ययन करने पर पिप्पलीमूल में की जाने वाली मिलावट पहिचानी जा सकती है । देखिये चित्र संख्या 11 ।

औषधार्थ उपयोगी यन्त्रों की परीक्षा एवं पहिचान

औषध उपयोग के लिये जितने भी पत्र बाजार में उपलब्ध होते हैं। वे पूर्ण नहीं होते हैं । उनमें मिलावट की काफी सम्भावना रहती है । ये पत्र खण्डित, चूर्ण के रूप में या विकृत रूप में पाये जाते हैं । शुष्क पत्तियों को पानी में भिगोकर उनकी परीक्षा करनी चाहिये । सूक्ष्मदर्शकयंत्र द्वारा या रासायनिक परीक्षण द्वारा परीक्षा करनी चाहिये । पर्ण की परीक्षा करते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है । यथा —

(1) पत्र–सवृन्त है या अवृन्त ।

(2) पत्र की रचना आकार, लम्बाई, चौड़ाई शिरान्यास आदि की रचना ।

(3) पत्र की धार–दन्तुर, सामान्य, कण्टकित कोणीय । अभिमुख है या नहीं ।

(4) इसके अतिरिक्त पत्राग्र, पत्रआधार, पृष्ठ–रोमश है । श्लक्ष्ण एवं ग्रन्थियुक्त है या नहीं ।

(5) वर्ण, गन्ध, रस शब्द आदि का ज्ञान कर पत्र की पहिचान की जानी चाहिये ।

(6) सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा पत्रों का शिराविन्यास क्रम, लोमश, अलोमश, ग्रन्थियुक्त एवं तैल बिन्दुओं युक्त है या नहीं, यह यन्त्र द्वारा देखकर पहिचान की जानी चाहिये ।

पत्र की चूर्ण, क्वाथ, तैल, घृत आदि में पका कर उसके वर्णो गन्धों एवं रसों की पहिचान की जाती है ।

(7) **विलेयता:**— पत्र स्वरस जल, तैल, घृत में घुलनशील है या नहीं ।

(8) **रसपरीक्षा:**— मधुर, तिक्त, कषाय आदि रसों का ज्ञान जिह्वा में रख कर देखना चाहिये ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पिप्पली [PIPER LONGUM]

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पिप्पली [PIPER LONGUM]

11

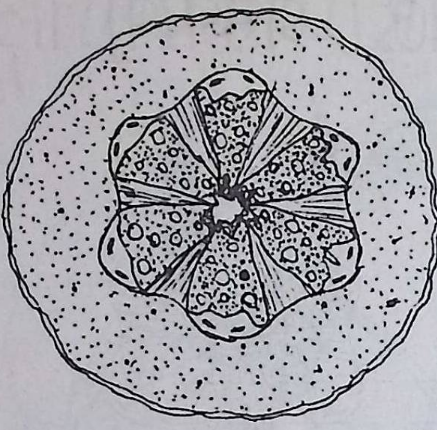

जड़ का अनुप्रस्थच्छेद [T.S.]

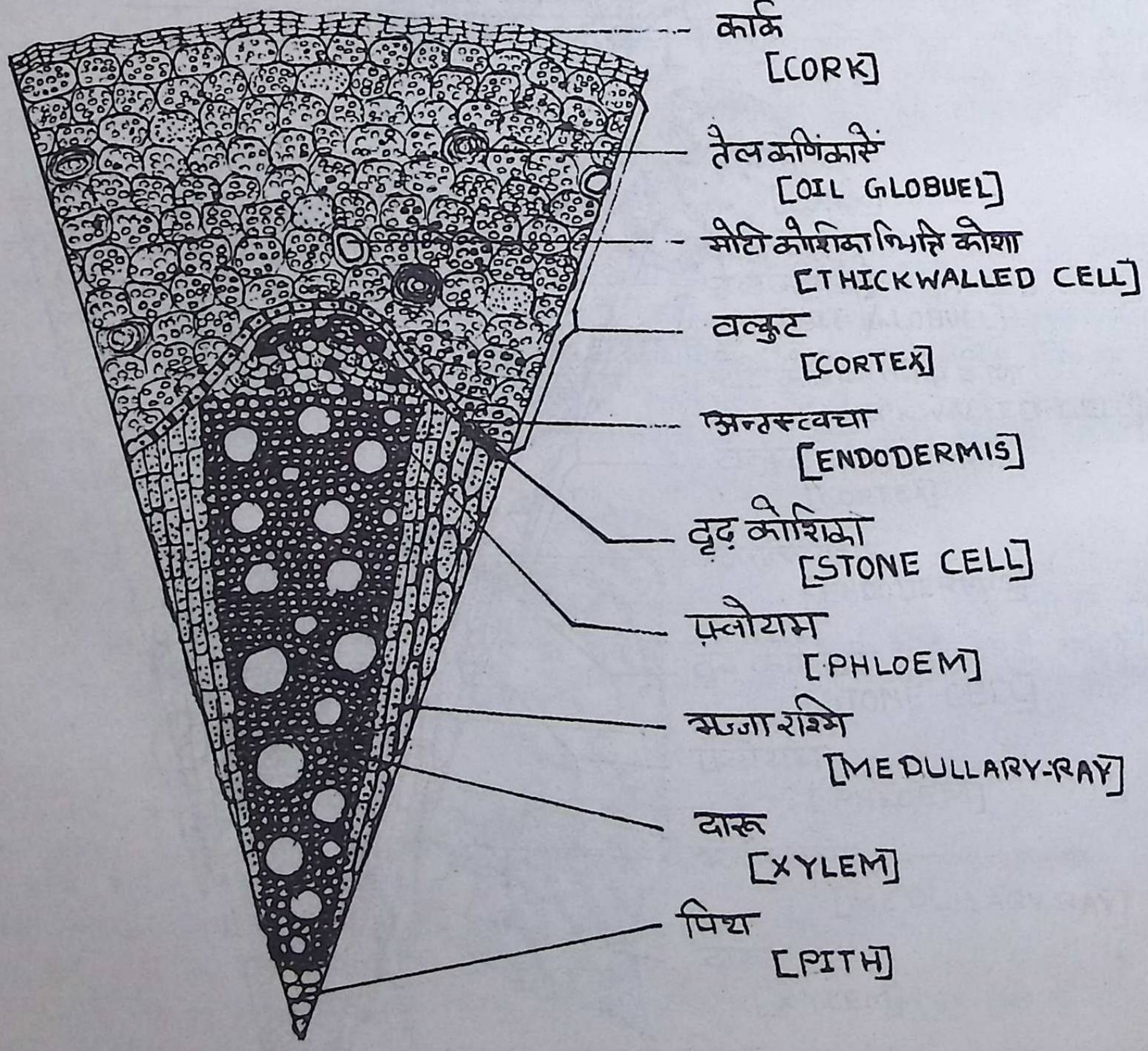

जड़ का अनुप्रस्थच्छेद [आकीय रचना]

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शरपुंखा [TEPHROSIA PURPUREA] /2

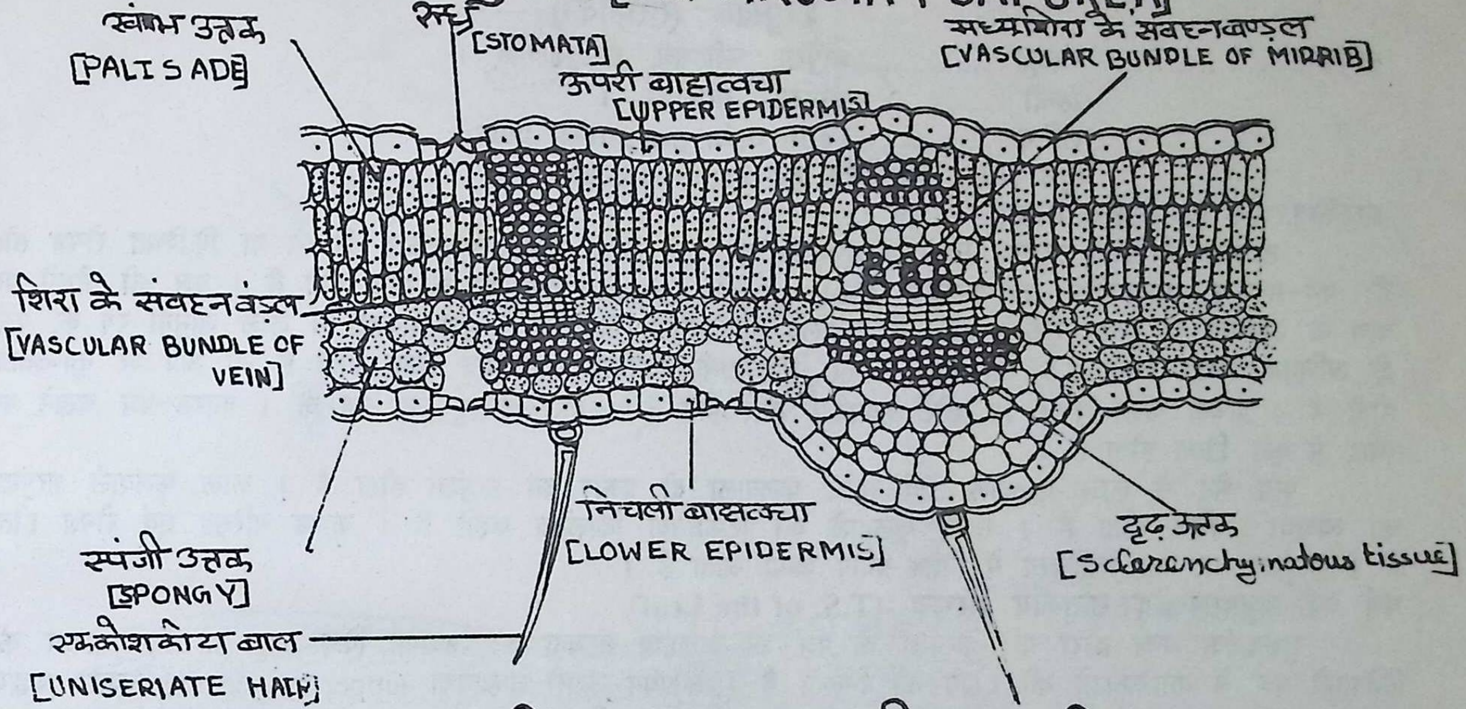

पत्ती का अनुप्रस्थच्छेद [उत्तकीय रचना]

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(9) स्पर्शपरीक्षा में मृदु, श्लक्ष्ण, स्निग्ध , लघु आदि का ज्ञान करना चाहिये ।

(10) शब्दपरीक्षा में पत्रों को मरोड़ने पर करकराहट, जलाने पर चरचाहट आदि शब्दों का ज्ञान करना चाहिये । इसके अतिरिक्त ज्वलनशील होने पर गन्ध का परिज्ञान करना चाहिये ।

(11) रासायनिक परीक्षण करने पर विलेयता, घुलनशीलता एवं अवक्षेपों द्वारा परीक्षा करनी चाहिये ।

(12) मधुर, तिक्त रसों के प्रधानता के आधार पर पञ्चमहाभूतों का परिज्ञान करना चाहिये ।

शरपुंखा (सरफोंका)

द्रव्यनाम.................. संस्कृत .... शरपुंखा, प्लीहशत्रु, नीलवृक्षाकृति ।
हिन्दी .... शुरपुंखा, सरफोंका ।
लैटिन .... **Tephrosia purpurea** pers.
कुल N.O. अपराजिता कुल Papilionaceae.

आकृतिकरचना (वानस्पतिक स्वरूप)

शरपुंखा के प्रायः तलोत्थ Erect बहुशाखी क्षुप होते हैं । काण्ड बेलनाकार, चिकने या किञ्चित रोमश होते हैं। पर्ण–सपत्रक, आयताकार, प्रतिभालाकार (oblong-oblancestate) नताग्र या लोमशाग्र होते हैं । पत्र को तोड़ने पर बाण के अग्रभाग के समान नुकीले टूटते हैं इसीलिये इसे शरपुंखा कहते हैं । पुष्प–मञ्जरी में लाल जामुनी रंग के, पत्रों के अभिमुख स्थित, फली 2.5 से0 मी0 5 से0 मी0 लम्बी, किंचित चपटी एवं रोमश होती है जो अग्र पर कुष्ठिताग्र होती है । प्रत्येक फली में 4–10 छोटे वृकाकार बीज होते हैं । बीज–छिदल, पीले रंग के । काण्ड–पत्र चखने पर स्वाद में कुछ तिक्त होता है ।

पुष्प भेद से लाल फूलवाला एवं सफेद फूलवाला दो प्रकार का शरपुंखा होता है । लाल फूलवाले शरपुंखा का व्यवहार अधिक होता है । सफेद फूलवाले को टिफ्रोसिया विल्लोसा कहते हैं । काण्ड परिसृत एवं रोमश होता है । शरपुंखा क्षार का चिकित्सा में विशेष प्रयोग किया जाता है ।

पर्ण का अनुप्रस्थच्छेद ऊतकीय संरचना (T.S. of the Leaf)

सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा यदि शरपुंखा के पत्र की ऊतकीय संरचना का अध्ययन किया जाय तो निम्न प्रकार की विशेषतायें पत्र में कोशिकाओं की देखने को मिलती हैं । सर्वप्रथम ऊपरी वाह्यत्वचा (upper epidermis) निचली बाह्य त्वचा Lower epidermis, रन्ध्र stomata खम्बऊतक palisade, स्पञ्जीऊतक spongy, दृढऊतक Sclerenchymatious tissue, मध्यशिरा के संवहनमण्डल Vascular bundle of mid-rib शिरा के संवहनमण्डल Vascular bundle of vein आदि विभिन्न प्रकार की रचना पर्ण में देखी जाती है । पर्ण के दोनों पृष्ठों पर Stomata दिखाई देते हैं । अधःपृष्ठ पर Uniseriate hairs दिखाई देते हैं । पत्र के vasuclar bundles के चारों तरफ दृढ ऊतक दिखाई देते हैं । देखिये चित्र संख्या 12 ।

कर्कटश्रृङ्गी (काकड़ासींगी)

द्रव्यनाम.................. संस्कृत .... कर्कटश्रृङ्गी, विषाणिका, कुलीर , अजश्रृङ्गी, कर्कटाख्या, श्रृङ्गी ।
हिन्दी .... काकड़ासींगी, कंकड़सिंगी ।
लैटिन .... **Pistacia integerrima** Stew.
कुल N.O. आम्रादिककुल Anacardiaceae.

आकृतिकरचना (वानस्पतिक स्वरूप)

मध्यम आकार का वृक्ष, पर्ण–एकान्तर क्रम से, अयुग्म पक्षाकार, अभिमुख क्रम से, किञ्चितसनाल, रूपरेखा में भालाकार, सरलधार वाले एवं मसृण, पुष्प–छोटे, एकलिंगी, मञ्जरियों में । शाखाओं पर लम्बे 2 श्रृङ्ग सदृश कृमिगृह (Galls) लगते हैं जो हैमिप्टेरुस (Hemipterus) नामक कीड़ों के बनाये होते हैं । इस कृमिगृह (Galls) का कर्कटश्रृङ्गी के नाम से चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है ।

बाजारों में उपलब्ध काकड़ासिंगी पोली, हल्की, अनियताकार, वाली, बकरी के सींग के समान नोकदार, कालापन लिये हुये लाल रंग की होती है । तोड़ने पर अन्दर से श्वेत वर्ण का राख सदृश चूर्ण गिरता है । ये कणपुंज प्रायः कृमियों के दिखाई देते हैं । स्वाद में यह कुछ कड़वी–सी होती हैं । इसमें तारपीन–सी हल्की गंध आती हैं । देखिये चित्र संख्या –13 ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्कट शृंगी [PISTACIA INTEGERRIMA]

14

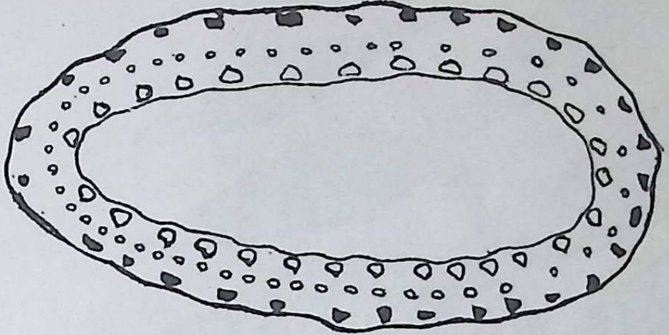

कृमिकूट का अनुप्रस्थच्छेद [T.S.]

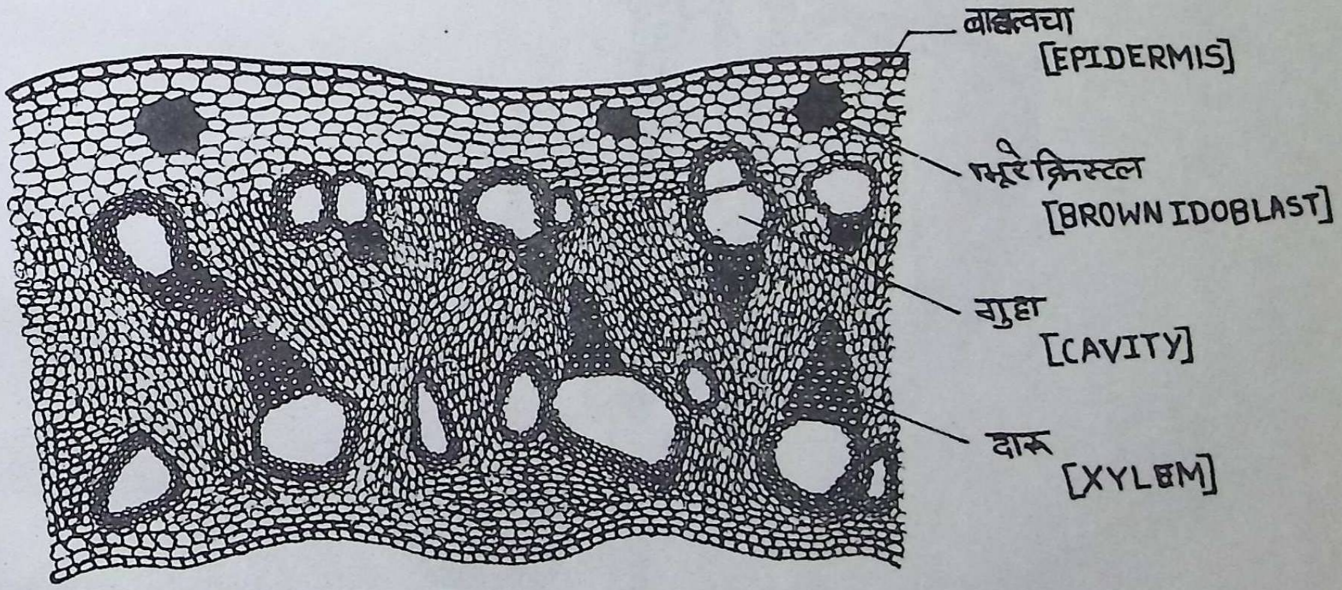

कृमिकूट का अनुप्रस्थच्छेद [T.S.]

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

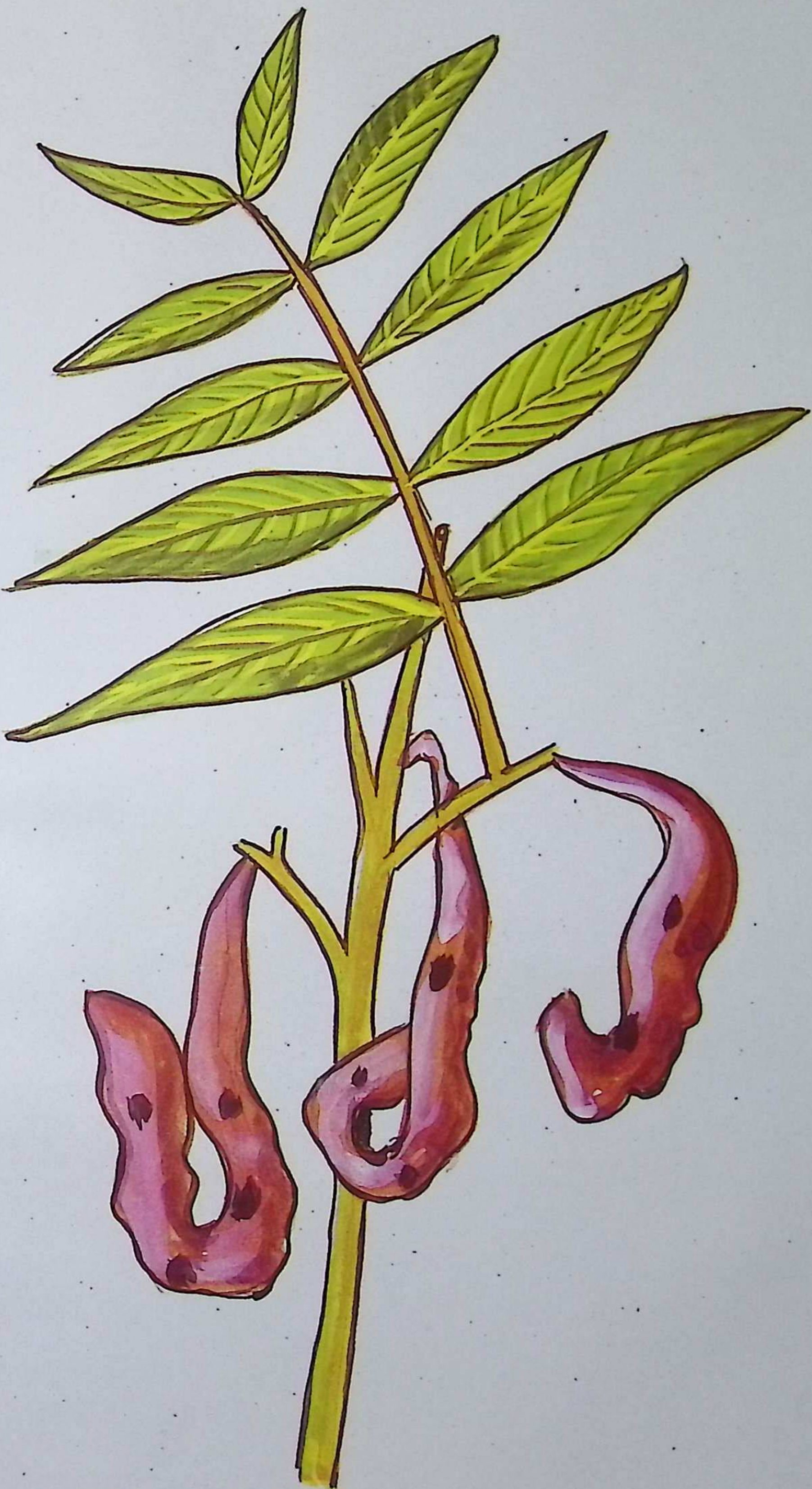

कर्कटश्रृङ्गी

देखिये विवरण पृ. सं. - 515

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कृमिकूट अनुप्रस्थच्छेद (T.S. of the Galls)

कृमिगृह Galls की यदि अनुप्रस्थच्छेद रचना का अध्ययन किया जाय तो कृमिगृह के बाह्यत्वचा Epidermis में cubical epidermal कोशिकायें दिखाई देती हैं । अन्य भाग में मृदूतक कोशिकायें Parenchymatous cells से घिरी होती हैं । इसी के साथ भूरे रंग के क्रिस्टिल Brown idioblast दिखाई देते हैं, जोकि बाह्यत्वचा में होते हैं कृमिगृह Galls के गुहा Cavity में काफी मात्रा में tannin पाया जाता है जिसे फेरिकक्लोराइड के घोल में डालकर भी पहिचाना जा सकता है । दारू xylem मृदूतकों के कोशिकाओं के मध्य में दिखाई देता हैं । इस प्रकार से काकड़सिंगी की पहिचान T.S. करने पर की जा सकती है । बाजार में अन्य वृक्षों के कृमिगृह Galls भी काकड़ासिंगी के नाम से विक्रय किये जाते हैं । देखिये चित्र संख्या 14 में ।

हिंगु (हींग)

द्रव्यनाम............... संस्कृत .... हिंगु, रामठ, वाल्हीक ।
हिन्दी .... हींग, हिंग ।
लैटिन .... **Ferula narthex Boiss.**
Ferula foctida Bunge.
कुल N.O. शतपुष्पाकुल umbelliferae.

आकृतिकरचना (वानस्पतिक स्वरूप)

मध्यम आकार मृदु काण्डीय गुल्मक, पर्ण कोमल, रोमश, संयुक्त 2–4 पक्षयुक्त होते हैं । पत्रधार काण्ड संसक्त, पुष्प–छोटे–छोटे तथा पीले रंग के होते हैं, जोकि संयुक्त छत्रकों compounds umbels, में होते हैं । जड़ एवं काण्ड तीव्र गन्ध युक्त होता है । इसके पौध वालतीस्तान, अफगानिस्तान, में विशेष पाये जाते हैं ।

हींग के पौध मूल स्थान से चीरा लगाकर प्राप्त राल युक्त गोंद हींग (Oleo gum-resion) है। हींग के पौध की जड़ कन्दाकार गाजर सदृश होती है । यूनानी हकीम फलों का भी अन्जुदान के नाम से चिकित्सा में उपयोग करते हैं । फारसी हींग के पौधे की जड़ें कन्दवत् मोटी होती हैं । हींग के पौधे 4–5 वर्ष के आयु के होने पर पौधे से हींग संग्रह की जा सकती है । पौधों के पुष्प काल के समय मार्च अप्रैल मास में जड़ों के पास की मिट्टी साफ कर जड़ के तने वाले भाग पर चीरा लगा दिया जाता है । इस चीरा वाले भाग से दूध सदृश सफेद गाठातरल निकलने लगता है । इस स्त्राव को खुरच कर एकत्रित किया जाता है । इसी तरल स्त्राव को गोंद हींग या (Oleo-gun-resion) कहते हैं ।

हींग की परीक्षा

बाजार में हींग दो रूपों में मिलती है । अश्रुवत् लम्बगोल, चपटे दानों में जो मटमैले पीताभ वर्ण के होते हैं । 2 ढेलों के रूप में जिसमें अश्रुवत् दाने परस्पर चिपके होते हैं । कभी–कभी हींग राल की तरह जमे हुये पेस्ट की तरह मिलती है । हींग का ताजा कटा हुआ तल पीताभ वर्ण का पारभासी अथवा सफेद तथा अपारदर्शक एवं तोड़ने पर चमकदार होता है । फारस से हींग चमड़े के थैलों में बांधकर भेजी जाती हैं । उष्णता एवं दवाब के कारण यह हींग अर्धद्रव के रूप में मिलती हैं । इसी को हीरा हींग के नाम से जाना जाता हैं ।

परीक्षण

1. ताजे टूटे हुये हींग के टुकडों पर एक बूंद गन्धक का तेजाब डालने पर लाल रंग का दिखाई देता हैं । इस सल्फ्युरिक एसिड को पानी से पक्षालन करने पर इसका वर्ण बैंगनी रंग का हो जाता हैं । हींग के ताजे कटे हुये तल पर नाइट्रिक एसिड 5% डालने से उसका रंग हरा हो जाता हैं ।
2. पानी में इसको घोलने पर यह दुधिया रंग का हो जाता हैं ।
3. तैल व घृत में डालने पर वह श्वेत वर्ण का हो जाता हैं ।
4. हींग को जलाने पर उसके राख से भी हींग की गन्ध आती हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

5. इसका रस तीक्ष्णता लिये हुये कटु व तिक्त होता हैं ।

6. **गन्ध** तीव्र स्थायी रहने वाला उग्र, अहृद्यगंध विशेषतः रसोन गंधी होता हैं ।

7. **विलेयता** जल में पूर्ण रूप से घुल जाता हैं। अल्कोहल में आंशिक रूप से घुलता हैं। यह तैल एवं घृत में भी घुलनशील हैं।

8. **संगठन** इसमें सुगंधित उड़नशील तैल 7 से 17% प्रतिशत एवं निर्यास में राल जातीय पदार्थ विशेष रूप से पाया जाता हैं ।

प्रतिनिधी द्रव्य एवं मिलावट

बाजारों में कई प्रकार की नकली व बनावटी हींग लाल, पीले, सफेद रंग में मिलती हैं । व्यापारी नकली हींग बनाने के लिये बबूल का गोंद एवं आटा आदि अपद्रव्य मिलाकर उसमें जरा लाल रंग देकर हींग तैयार करते हैं । इसमें रसोन सी गंध आती हैं । जल में घुलाने पर यह दुधिया रंग का हो जाता हैं । कन्धारी हींग प्रायः रक्ताभ वर्ण का होता हैं । इसमें भी तत्स्थानीय लाल मिट्टी की मिलावट होती हैं । हींग में जवाशीर एवं अन्य कतिपय सुगन्धित राल (रैजिन) की मिलावट की जाती हैं । इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुये हींग की परीक्षा करनी चाहिये । शास्त्रीय प्रामाणिक हींग के नमूनों से मिलाकर इसकी पहिचान की जानी चाहिये । मूल स्वरूप वाले हींग के नमूने देख बिना भौतिक स्वरूप का ज्ञान नहीं किया जा सकता हैं । अतः मूल स्त्रोतों से इसका संग्रह कर बाजारों में उपलब्ध हींग को पहिचाना जा सकता हैं ।

गुग्गुलु (गूगल)

द्रव्यनाम................ संस्कृत .... गुग्गुलु, कौशिक, पुरः पलकुङ्ष, महिषाक्ष ।
हिन्दी .... गूगल, गुग्गुल ।
लैटिन .... **Commiphora wightie** Bhandari SY- C. roxburghie Engl.
कुल N.O. गुग्गुल्वादिवर्ग Burseraceae.

आकृतिकरचना (वानस्पतिक स्वरूप)

मध्यम आकार का झाड़ीनुमा वृक्ष, शाखाग्र नुकीले, पर्ण–सपत्रक, चिकने, चमकदार, अभिलट्वाकार, दन्तुर, पत्रक प्रायः विनाल, छोटे वृक्ष पर लगे होते हैं । पुष्प–प्रायः वृन्तरहित एकलिंगी, पुष्प गुच्छों में निकलते हैं । काण्ड हरिताभ वर्ण का शल्क मय एवं शाखा पर चीरा लगाने से सुगन्धित निर्यास (Gum-resin) निकलता हैं । इसका वर्ण पीला, स्वर्णाम, कणसमूह में पूरित होता हैं । कभी–कभी मिट्टी मिले हुये निर्यास बाजार में मिलता हैं । इसमें पेड़ की त्वचा लकड़ी एवं कंकड़ मिले होते हैं । झाड़ करने पर यह गोंद फूलकर दुग्धाम हो जाता हैं । यह राल जातीय अनियमित कणों का संगठित पदार्थ हैं ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निर्यास की परीक्षा

बाजार में गूगल की कई किस्में मिलती हैं जिसमें कण गूगल और भैंसा गूगल (महिषाक्ष) हैं । कणागूगल मारवाड़ से आता हैं और उसके ललाई लिये हुये पीले रंग के गोल दाने होते हैं । यह भैंसा गूगल से नरम होता हैं । भैंसा गूगल का रंग हरापन लिये हुये पीला होता हैं । यह सिन्ध कच्छ आदि स्थानों में होता हैं । उत्तम गूगल चमकीला, चिपकने वाला, नरम, मधुरगंधी, कुछ पीला कुछ तिक्त होता हैं । इसे पानी में डालने पर शीघ्र घुल जाता हैं । गरम जल में डालने पर दूध के समान घोल तथा अग्नि पर जलाने से जलता हैं एवं धूप में रखने से पिघल जाता हैं उसे श्रेष्ठ समझना चाहिये । इसके अतिरिक्त निम्न परीक्षायें भी की जा सकती हैं ।

1. गूगल निर्यास दग्ध करने पर श्वेत व कृष्णावर्ण का एवं तोड़ने पर पीतारूण वर्ण का होता हैं ।

2. क्वाथ में डालने पर दुग्धवत् श्वेत, वृक्ष में श्यामवर्ण का होता हैं । उष्णजल एवं घृत, तैल में घुलनशील हैं ।

3. सुगन्ध युक्त गंध एवं हृद्य होता हैं । आग में रखने पर प्रथम यह पीघलता हैं पश्चात् धूम गहरे श्वेतवर्ण का देता हैं, पुनः ज्वलित हो जाता हैं ।

4. रक्त में यह तिक्त–कटुरस युक्त, जिह्वा पर रखने से चिमचिमायन प्रकट करता हैं । ज्वलनकाल में चिरचिराहट पैदा करता हैं ।

भौतिक

गुण यह प्रायशः तिक्त, कटु और कुछ कषाय होने से यह आग्नेय गुणों वाला हैं ।

मधु (शहद)

द्रव्यनाम................ संस्कृत .... मधु, क्षौद्र, माक्षिक ।
हिन्दी .... शहद ।
अंग्रेजी .... **Honey.**

मधु की पहिचान

यह एक प्रसिद्ध मीठा पदार्थ हैं जिसको अनेक प्रकार की मधुमक्खियों एवं अनेक प्रकार के फूलों के मकरन्द से संग्रह कर मधुमक्खी तैयार करती हैं । इस मधु का संग्रह ये मधुमक्खियाँ छत्तों को तैयार कर उसमें रखती हैं । छत्ते में से शहद निचोड़ने के बाद उस छत्ते को पानी में पका कर छान लेने से मोम तैयार होता हैं । मधु स्वाद में मधुर एवं गाढ़ा द्रव होता हैं ।

मधु का स्वरूप

आकृति में यह गाढ़ा चिकना, अर्धपारदर्शक, ताजा रखने पर पीतवर्ण का व गरम करने पर लाल वर्ण का हो जाता हैं । काफी समय तक रखने पर शर्करा नीचे बैठ जाती हैं । मधुमक्खी के प्रकार भेद से मधु कई किस्म का होता हैं । पुष्पों के मकरन्द पर भी मधु के स्वाद एवं गुणों में भिन्नता पाई जाती है ।

स्वाद

अतिमधुर एवं कुछ विशिष्ट स्वाद का ।

आपेक्षिक गुरूतव

एक से अधिक होता हैं ।

घुलनशीलता

जल एवं अलकोहल में सर्वाश में घुल जाता हैं ।

संगठन

मधुमक्खी के किस्मों एवं देश भेद से इसके संगठन में भिन्नता देखी गई हैं तथापि निम्न तत्व इसमें पाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(1) डेक्स्ट्रोज 30 से 40 प्रतिशत
(2) लेब्यूलोज 35 से 40 प्रतिशत
(3) जल 15 से 20 प्रतिशत
(4) सुक्रोज थोड़ा डेक्सट्रिन, अन्य सुगन्धित द्रव्य व मोम तथा परागकण पाये जाते हैं ।

रासायनिक परीक्षण

सर्वप्रथम परखनली में 1 ग्राम मधु एवं चार भाग जल मिलाकर सर्वांश घुल जाये तो इसमें फ्लेहलिंग का द्रव डाल दें । पुनः इस स्प्रिट लैम्प पर गरम करें तो इसका रंग बदल जाये तो मधु अच्छी समझें ।

हिमालय की पहाड़ियों का मधु श्वेत वर्ण का अन्य क्षेत्रों का मधु पिलाई या लिलाई लिये हुये श्वेत वर्ण का होता हैं । मधु पुराना होने पर दानेदार और कभी-कभी मिश्री के समान हो जाता हैं, इसी मधु को मधुशर्करा कहते हैं।

यदि मक्खी शहद में डूब जाये और पुनः जीवित निकल जावे तो शुद्ध मधु समझना चाहिये । आजकल नकली मधु से भी यह परीक्षण सफल देखा गया हैं । जिसमें सावधानी रखनी जरूरी हैं ।

सदिग्ध द्रव्याणां सामान्य परिचय

इस प्रसंग में छात्रों के ज्ञानवर्धन हेतु द्रव्यगुण शास्त्र की सन्दिग्ध वनौषधियों के असली, नकली पहिचान एवं प्रतिनिधि द्रव्यों के उपयोग के सन्दर्भ में जानकारी दी जा रही हैं। जैसा कि सर्वविदित हैं कि प्राचीन काल में द्रव्यों के अध्ययन हेतु गुरु शिष्य परम्परा का विशेष महत्त्व या शास्त्रअध्ययन, वनभ्रमण का विशेष महत्त्व था किसी भी नवीन द्रव्य के निश्चित करने हेतु उसके आयुर्वेदिक सिद्धान्तों के आधार पर प्रयोगात्मक परीक्षण, पाञ्चभौतिक संगठन, रस, गुण, वीर्य, विपाक, एवं प्रभाव का निर्धारण किया जाता रहा हैं। परन्तु कतिपय कालक्रम के कारण इस परीक्षण विधि का श्रृंखलाबद्ध क्रम हट गया, एवं परिणामस्वरुप कतिपय कारणों से द्रव्य की पहिचान एवं गुण धर्मो का विश्लेषण भी संदिग्ध हो गया। परिणामस्वरुप आज संहिताओं, निघुण्टुओं के वर्णित अनेक द्रव्य संदिग्ध कोटि में आ गये। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता हैं कि निम्न कारणों से द्रव्यों में सन्दिग्धता बढ़ी हैं।

(1) द्रव्य परिचय विज्ञान के समुचित अध्ययन का अभाव ।
(2) द्रव्यों के क्रय-विक्रय में समुचित प्रबन्ध का अभाव ।
(3) प्रतिनिधि द्रव्यों के ग्रहण करने में चिकित्सकों का मनमानापन।
(4) भिन्न स्थानिक बाजारों में उपलब्ध द्रव्यों में भिन्नता।
(5) चिकित्सकों में उदासीनता, एवं अनुसन्धान प्रकृति के अभाव से द्रव्यों में संदिग्धता बढ़ती जा रही है।
(6) संहिताओं एवं टीकाकारों में मतभेद होने के कारण द्रव्यों के अनेकार्थ होने से संदिग्ध हो गये हैं ।

अतः द्रव्यों को एकरुपता एवं सन्दिग्धता के निवारण हेतु द्रव्यात्मकरुपता संदिग्ता, एवं पर्यात्मक, नामा, संदिग्धता तथा अनेकार्थ बोधक द्रव्यों के विवादग्रस्तता के निवारण हेतु पयार्यवाची शब्दों का ज्ञान करना जरुरी हैं।

अनेकार्थ नामों की उपस्थिति, एक ही औषधि के लिए भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में औषध द्रव्यों का प्रयोग, तथा एक क्षेत्र में दूसरी वनस्पति का अभाव होने के कारण द्रव्यों में संदिग्धता बढ़ गई हैं। संदिग्ध द्रव्यों के निर्णय हेतु भारत सरकार ने कई विशेषज्ञ समितियों का गठन किया । इसमें संदिग्ध द्रव्यों के निर्णय हेतु कई सुझाव दिये गए। इसी आधार पर निम्न आधारों पर द्रव्यों का निर्णय किया जाता हैं।

1. आयुर्वेदिक ग्रन्थों में वर्णित द्रव्यों का वानस्पतिक स्वरुप, गुणधर्म एवं आमयिक प्रयोग का अध्ययन।

2. संहिताग्रन्थों एवं निघण्टुग्रन्थों के टीकाकारों द्वारा द्रव्यों के सन्दर्भ में व्यक्त किये गये विचारों का अध्ययन।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

3. अनेकार्थ पर्यायों का द्रव्य के रोगानुसार प्रयोग एवं प्रसंग के आधार पर निर्णय करना।

4. स्थानिक परम्परागत नामों का गुण धर्मों का अध्ययन।

5. वनेचर, गोपाल, योगी, आदिवासियों में प्रचलित द्रव्यों का अध्ययन।

6. वनस्पतिशास्त्र के अर्वाचीन ग्रन्थों तथा सम्बन्ध साहित्य का अध्ययन।

7. द्रव्यपरिचयात्मक, गुणकर्मपरिचयात्मक परीक्षण एवं आतुरीय परीक्षणों द्वारा संदिग्ध द्रव्यों का अध्ययन।

8. द्रव्यों का पाञ्च भौतिकता, रस, गुण, वीर्य, विपाक प्रभाव प्रयोगात्मक परीक्षण एवं अध्ययन द्वारा द्रव्यों का निर्णय करना।

9. चरक विमान अध्याय 889 में वर्णित द्रव्यों के पहिचान एवं गुणधर्मों का अध्ययन कर द्रव्यों की स्वरुप एवं गुणधर्मों का अध्ययन करना मुख्य हैं। संक्षिप्त रूप से छात्रों के जानकारी हेतु इस प्रसंग में द्रव्यों के पहिचान की विधि दी जा रही हैं। यथा—

(1) इदमेवं प्रकृति :– (द्रव्याकृति विज्ञान)

द्रव्य के प्रकति विज्ञान का अध्ययन

नाम, रूप, जाति, रचना आदि का वाह्य आभ्यन्तर कोशिकाओं एवं ऊतकों का ज्ञान। देखिये गुडूची, कुटज, गम्भारी आदि द्रव्यों के सूक्षम रचना आकृति परिचय में।

2– एवं गुण एवं प्रभावम् (गुण प्रभाव विज्ञान)

इसमें द्रव्य के गुण एवं प्रभाव का अध्ययन किया जाता हैं। द्रव्यों के गुण धर्मों के परीक्षण हैतु गुरु, लघु आदि गुर्वादि बीस गणों के निर्धारण की दिशा में चेष्टा की जानी चाहिये। आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान के आधार पर द्रव्यों के पाञ्च भौतिकता, एवं पञ्चज्ञानेन्द्रियों द्वारा रुप, रस. गन्ध, शब्द स्पर्श द्वारा परीक्षा करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त पार्थिव आग्नेय, तैजस, वायवीय आदि पाञ्चमहाभूत विशेष द्रव्यों के गुणधर्मों का अध्ययन कर द्रव्यों का निर्णय किया जाता है।

3– अस्मिन्देशेजातम (देश विज्ञान)

द्रव्यों के जांगल आनूप, एवं भौगोलिक घण्ष्ठी में उसकी स्थिति, ऊँचाई, तापक्रम, आद्रता, आर्द देश भेद से द्रव्यों का अध्ययन किया जाता हैं।

4– अस्मिन् ऋतौ एवं गृहीतं एवं निहितम् (संग्रह और संरक्षण)।

किस द्रव्य को किस काल में संग्रह किया जाना चाहिये इसका ज्ञान होना आवश्यक हैं। संहिता ग्रन्थों में मूल, त्वक्, काण्ड, दुग्ध आदि प्रयोज्य अंगों के आधार पर भिन्न–भिन्न ऋतुओं में द्रव्यों के संग्रह का अध्ययन। द्रव्यों के संग्रह करने के उपरान्त संरक्षण विधि की जानकारी द्रव्यों की सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका में। कृमि, कीट, फफूंदी आदि से किस प्रकार द्रव्यों की सुरक्षा की जानी चाहिये इसका ज्ञान होना आवश्यक हैं। सर्वीर्यता निर्धारण हेतु रासायनिक एंव जैविक परीक्षणों द्वारा द्रव्यों के वीर्य (पोटेन्सी) जाननी चाहिये।

5– औषधि उत्पादन एवं वनौषधिवाटिका–

संदिग्ध एवं औषधि उपयोगी वनोषद्रव्यों का भूमि, देश एवं प्रकृति के आधार पर खेती की जानी चाहिये। द्रव्यों के पहिचान हैतु शास्त्रीय आधार पर उपयोगी द्रव्यों को एक स्थान पर संग्रह कर वनौषधि उद्यान लगाना चाहिये। ऐसा करने पर भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त द्रव्यों के पहिचान एवं आकृति, स्वरूप आदि की जानकारी प्राप्त की जा सकती हैं, तथा संदिग्ध द्रव्यों के निर्णय करने में सरलता होती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

6– नामरुपपरिचय

वनौषध द्रव्यों के परिचय एवं संदिग्ध द्रव्यों के निर्णय हेतु उनके नाम रुप का ज्ञान होना आवशयक है। प्रत्येक अंग के परिचय हेतु संहिताग्रन्थों एवं निघुण्टग्रन्थों में अलग–अलग कतिपय स्वरूपबोधक, गुणबोधक, देशबोधक, स्थान एवं काल बोधक प्रर्यायों का उल्लेख है। देश व भाषाभेद से एक ही द्रवय के कई नाम मिलते हैं। प्रान्त भेद से उन स्थानों के लोग उसी स्थानिक नाम से उन द्रव्यों को पहिचानते हैं नामरुप परिचय हेतु पूर्व प्रसंग में भी उल्लेख किया गया है कि स्थानिक परम्परागत नाम एवं परम्परागत् प्रयोग द्रव्यों की पहिचान तथा संदिग्ध द्रव्यों के निर्णय करने में विशेष सहायक होते हैं। यथा–

(1) मूल जाति वाले आदिवासी, वनेचर एवं जंगली लोगों, तापस, एवं गोपालों की सहायता से द्रव्यों के स्थानिक परम्परानामों का संकलन, एवं अपभ्रंश शब्दों का शास्त्रीय द्रव्यों के शब्दिक व्युत्पत्ति के आधार पर मिलान किया जाता हैं। स्थानिक आदिवासी लोग द्रव्यों के स्वरुप एवं स्थानिक आमियक प्रयोगों से पूर्णपरचित हैं।

2– एक ही नाम वाले तुल्य संज्ञा वाले द्रव्यों के शास्त्रों में जहां प्रयोग किया गया हो वहां पर ग्रन्थ के प्रसंग एवं रोगाधिकार को देखकर निर्णय किया जाना चाहिये।

३– निघण्टुकारों ने द्रव्यों के पर्याय, स्वभाव, उपमा, देशभेद, वीर्य एवं कर्म के आधार पर दिया हैं यथा– गुङ्ची के पर्यायों में लता, अमृतवल्ली, छिन्नाद्भवा, कन्दोद्भवा, छिन्ना, रोहिणी, अमृता चक्रांगी, कुण्डली, नामों का उल्लेख द्रव्यों के आकृतिबोधक, स्वरुपबोधक, एवं गुण बोधाक के आधार पर दिया गया है। शास्त्रकारों ने वर्ण, गन्ध, रस एवं जान्तव एवं मानव के विभिन्न अवयवों के आकार एवं गुणों के आधार पर ही द्रव्यों का नामकरण किया गया है। आधुनिकि विधि में फारमे कोग्नासी (भेषजपरिचय) की सहायता से शास्त्रीय द्रव्यों की पहिचान की जाती है। जिसमें द्रव्यों के वाहय तथा आम्यन्तरिक रचना का ज्ञान किया जता है। आकृतिक अध्ययन द्वारा द्रव्यों के पहिचान में सहायता मिलती है। सभी द्रव्यों के पहिचान हेतु शुष्कपादपाश्रय एवं संग्रहालय की व्यवस्था की जानी चाहिये। जिसके अध्ययन से निर्जीत एवं संदिग्ध द्रव्य पहिचाने जाते हैं। उदाहरणस्वरुप अष्टवर्ग–आदि संदिग्ध द्रव्यों की पहिचान यहाँ पर दी जा रही है।

अष्ठवर्ग

जीवननीय, वल्य एवं रसायन कर्म में उपयोगी आठ मूलकन्द प्रधान द्रव्यों को अष्ठवर्ग कहते है। जिसमें जीवकऋषमक, मेदा–महामेद, काकोली–क्षीरकाकोली एवं ऋद्धि–वृद्धि ये आठ द्रव्य प्रधान रुप से हैं। आयुर्वेद चिकित्सा में अष्ठवर्ग का उपयोग जीवनीय, रसायन, बल्य, शुक्रल स्तन्यजनन के रूप में किया जाता हैं। इस समय अष्ठवर्ग के नाम से कतिपय प्रतिनिधि एवं शास्त्रीय द्रव्यों का उपयोग किया जा रहा हैं। जिनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार से हैं।

अष्ठवर्ग के पयार्यवाची नाम

1. जीवक– कूर्चकाकार :– अर्थात्मूल कूची के आकार के सद्यश होता हैं।
मधुरक :– कन्द मधुर रस प्रधान होता हैं।
ह्रस्वांङ्ग :– यह शाकीय क्षुप होता हैं।
दीर्धायु :– आयु को बढ़ाने वाला द्रव्य विशेष हैं
जीवक :– जीवन को देने वाला विशिष्ठ द्रव्य हैं।

2. ऋषभक– वृषश्रृगंवत् :– मूलकन्द वैल से श्रृंग्ङ सद्यश आकृति वाला होता है।
लशुनकन्द :– कन्द लशुन सद्यश आकार में होते हैं।
निस्सार :– कन्द सूखने पर साररहित होते हैं।
सुक्ष्मपत्रक :– पर्ण सुक्ष्म होते हैं।

3. काकोली– शीतपाकी :– शीतगुणप्रधान विशेष द्रव्य होने से इसे शीतपाकी कहते हैं।
पयस्या :– मूलकन्द दुग्ध सद्यश आकृतिवाला होता हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वायसोलिका :- अर्थात् काक चंचु सद्यश कृष्णवर्ण का होता हैं।

4. क्षीरकाकोली- शुक्ला :- कन्द वर्ण में श्वेत होता है।
क्षीरिणी :- कन्द को तोड़ने पर दुग्ध सद्यश स्त्राव निकलता है।
वयस्या :- आयु को बढ़ाने वाला द्रव्य विशेष हाने से इसे वयस्या कहते हैं।
वीरा :- वृष्य प्रधान द्रव्य विशेष होने के कारण इसे वीरा कहते हैं।

5. मेदा- शुभ्रकन्द :- कन्द श्वेत वर्ण प्रधान होता हैं।
नखच्छेद्यी :- नखों से आसानी से काटने वाला होता हैं।
बसुच्छिद्रा :- कन्द पोला होता हैं।
मेदा :- कन्द मेदा धातु सद्यश एवं गन्ध वाला होता हैं।

6. महामेदा- महामेदा :- कन्द मेदा धातु सद्यश एवं गन्धवाला होता हैं।
पाण्डुरा :- कन्द पाण्डुवर्ण विशेष होता हैं।
बसुच्छिद्रा :- कन्द कुछ अन्दर से पोला होता हैं।

7. ऋद्धि- वामावर्ता :- पुष्प क्रम बायें भाग की दिशा में खिलते हैं।
वृष्या :- (बल्य विशेष द्रव्य)
तुलग्रन्थिसमाकन्द :- (कर्पास की ग्रन्थि सदृश आकृति एवं वर्ण वाला)
प्राणदा :- (आयु को देने वाला)

8. वृद्धि- दक्षिणावर्ता :- पुष्प या फल दाहिने और मुड़ा हुआ।
हिमाद्रिजा :- हिमालय में पैदा होने वाले द्रव्य ।

तालिका न० 2

संस्कृत नाम एवं नैसर्गिक कुल		फैमली	लैटिन नाम
1. जीवक—	मुञ्जात कादि वर्ग	Orchidaceae	Microstyl is Wallichi Lindil
2. ऋषभक—	"	Orchidaceae	Microstytis muscifera R. Alpina
3. काकोली—	आर्द्रक कुल	Zingiberacae	Roscoea Procera
4. क्षीर—	काकोली रसोन कुल	Liliaceac	Lilium Polyphyllum
5. मेदा रसोन—	कुल रसोन कुल	Liliaceac	Polygonatum Vertecillatum
6. महामेदा—	रसोन कुल	Liliaceac	Polygonatum Cirricifolium
7. ऋद्धि—	मुञ्ज़ातकादि वर्ग	Orchidaceac	Hebenaria Intermedia
8. वृद्धि—	मुञ्जातकादि वर्ग	Orchidaceac	Habenaria Sp.

तालिका न० 3

ग्रन्थोक्त	वर्ग
1. चरक संहिता	जीवनीय गण, शुक्रजनन गण, स्नेहोप गण, च्यवनप्राश आदि
2. सुश्रुत संहिता	काकोल्यादि गण विदारिगन्धादि गण,
3. अष्टांहृदय	जीवनीय गण, विदरिगण, दुग्धवर्द्धक द्रव्य।
4. भाव प्रकाश निघण्टु	हरितक्यादि वर्ग।
5. अमरकोष	वनौषधि वर्ग (द्वितीय कांड)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

18. जीवक – ऋषभक का स्वरूप

द्रव्यनाम ....संस्कृत .... जीवक, ऋषभक
हिन्दी .... जीवक
लैटिन .... Microstyl is Wallichii

यह हिमालय में उपलब्ध एक वर्षायु शाकीय वनस्पति हैं। लम्बाई में यह क्षुप 6" से 10" तक होता हैं पर्ण मसण अण्डाकार एवं लम्बाग्र होते हैं। यह प्रायः मूलोद्भव 2 से 4 तक की संख्या में अवृन्त पाये जाते हैं। पुष्प एक दण्ड़ में छोटे–छोटे पीताभ नारंगी वर्ण के होते हैं। भौमिक काण्ड वृषश्रृङ्ग सदृश, परतदार एवं हरितवर्ण के होते हैं। जिनका कि औषधि में प्रयोग होता हैं। लम्बाई में ये भौमिक कन्द सदृश कांड़ 2" से 3" लम्बे होते हैं। चकरौता देहरादून के औषधि विक्रेता इसी मूल को जीवक, ऋषभक के नाम से विक्रय करते हैं। वनस्पति शास्त्र के आधार पर इस के आकार सदृश कतिपय प्रजातियां हिमालय प्रदेश में पाई जाती हैं।

प्राप्तिस्थान

यह उत्तराखण्ड हिमालय में 1.500 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2.800 मीटर की ऊँचाई तक, चकारौता, मंसूरी एवं केदारखण्ड (नाथ) आदि घाटियों में सुलभ हैं।

पुष्पकाल .... मई, जून।
प्रयोज्य अंश .... भौमिककाण्ड (कन्द)
औषधि संग्रह काल .... जुलाई, अगस्त।

भौमिक काण्ड की वाह्य रचना अध्ययन– (मैक्रीस्कोपिक स्टेडी)

जीवक ऋषभक के मूलकन्द 2–3 तक लम्बे मसृण होते हैं। मूल के निचले भाग में पतले–पतले कूची सदृश जड़ें होती हैं। प्राकृतावस्था वें यह हरित वर्ण एवं रेखाकार हैं। वाह्य परत कुछ श्वेताभ् होती हैं। मूल का जड़ की तरफ वाला भाग मोटा एवं उपरी भाग पतला होता हैं। सूखने पर यह सारहीन हो जाता हैं। मूल स्वादरहित लुवावदार एवं कुछ चिकना होता हैं। इस मूल का गहन अध्यन–चण्डीगढ़ में प्रारम्भ किया गया हैं।

सारांश :– यद्यपि आर्युर्वेदिक सहिंताओं में जीवक ऋषभक दोनों भिन्न द्रव्य स्वीकार किये है।, लेकिन बाजार में आजकल (Microstylis Wallichii) का भौमिक काण्ड ही जीवक ऋषभक के नाम से मिलते हैं। शास्त्रों में वर्णित रचना के अनुसार काफी साम्यता मिलती है। आधुनिक मटेरिया मेडिका या ग्लोसरी आफ इन्डियन पलान्टस में इन द्रव्यों का ही उल्लेख नहीं मिलता हैं। यह लेखक के पहली बार नाम रुप परिचय का परिश्रम हैं। मेरी धारण है कि हिमालय में उपलब्ध इन केन्द्रों में से ही अष्टवर्ग हैं। पहिचान के अभाव से शास्त्रकारों ने जीवक ऋषभक का प्रतिनिधि विदारीकन्द माना हैं जो कि गुण धर्मो में वल्य, स्तन्य एवं रसायन हैं।

काकोली

द्रव्यनाम................. संस्कृत .... काकोली, पयस्या, पीवरी,, शीतपाकी,
लैटिन .... Roscaea 'Procera'. R. Alpina Wall.

स्वभाव

यह हिमालय में उपलब्ध एक वर्षीय शाकीय वनस्पति हैं। काण्ड़ 6" से 12" तक लम्बा मृदुरोमिल, पर्ण 3 से 6 की संख्या में आयताकार दीर्घायित, पुष्प गुलाबी एवं श्वेत वर्ण के होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मूल

शतावरी मूल के समान गुच्छों में चार या पांच की संख्या में, मूल कन्द का बाह्य भाग कृष्णाभ, तोड़ने पर श्वेत वर्ण का हो जाता हैं।

प्राप्तिस्थानः– यह उत्तरी हिमालय के प्रायः 1500 मीटर की ऊंचाई से लेकर 2700 मीटर की ऊंचाई तक उत्तराखण्ड, गढ़वाल, शिमला, सोलन, आदि नमदार स्थानों पर सुलभ है।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त
फलकाल...................... सितम्बर
प्रयोज्यअंश..................... भौमिक काण्ड (कन्द)
प्रयोज्यांग........................ मूल।
औषधि संग्रहकाल............. सितम्बरी

मूल की बाह्य रचना का अध्ययन – (कैक्रोस्कोपिकल स्टेडी)

मूल कन्द 1" से लेकर 2" तक लम्बे एवं मूसली सदृश बेलनाकार होते हैं। वाह्य वर्ण कृष्णाभ्र तोड़ने पर अन्दर का भाग कुछ पीताभ् श्वेत एवं भंगुर होता हैं। कच्ची अवस्था में कन्द गुच्छों में एवं सूखने पर अलग हो जाते हैं। स्वाद में यह मधुर अनुरस वाला होता हैं। कभी–कभी स्थानिक व्यापारी इस मूल को क्षीरकाकोली के नाम से भी विक्रय करते हैं।

क्षीर–काकोली

द्रव्यनाम................ संस्कृत .... पयस्या क्षीर विदारी ।
लैटिन .... Lilium Polyphllum D. Don.

स्वभाव

यह हिमालय में उपलब्ध एक वर्षायु शाकीय वनस्पति ह`। मूलकन्द बहुवर्षायु, काण्ड़ 8 इंच से लेकर एक फुट तक लम्बा होता हैं। पर्ण अवृन्त दीर्घायत, भालाकार होते हैं। पुष्प गुलाबी पीताभ वर्ण के अलग–अलग खिलते हैं । मूल कन्द प्याज के कन्द सदृश रक्ताभ श्वेत वर्ण का छिलकेदार होता हैं। आग में भूनने पर ये कन्द स्वादिष्ट, एवं मधुर होते हैं। इन्ही कन्दों का औषधि में प्रयोग किया जाता हैं। कभी–कभी इन कन्दों के साथ Fritillaria Royleri Hook के मूलकन्द भी क्षीर काकोली के नाम से विक्रय होते हैं।

पुष्पकाल ....अगस्त, सितम्बर,।
प्रयोज्यांग .... मूलकन्द।
औषधि संग्रहकाल .... अगस्त, सितम्बर।

औषधि स्रंगहं करने की विधि

वनौषधि संग्रहकर्त्ता मूल कन्दों को उष्ण जल में उबाल देते हैं। फिर इन कन्दों को धूप में सुखा कर रख लेते हैं। इस प्रक़ार इनका जलियांश नष्ट हो जाता हैं, तथा यह सड़न से बच जाता हैं।

प्राप्तिस्थान

उत्तराखण्ड़ हिमालय में यह 2700 मीटर की ऊंचाई से लेकर 36.00 मीटर की ऊंचाई तक प्रायः भागीरथी घाटी, भिलंगना घाटी, क़ेदारनाथ घाटी आदि स्थानों में घासदार ढलानों में सुलभ हैं। आजकल क्षीर काकोली का संग्रह नेपाल से किया जाता हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मूल कन्द की वाह्य रचना एवं पहिचानः— देखने पर ये कन्द छोटे–छोटे प्याज कन्द सदृश होते हैं। वर्ण श्वेत एवं कुछ धूसर वर्ण का परतदार, अलग–अलग छिलके निकल जाते हैं। स्पर्श में कठोर एवं पानी में उबला हुआ कन्द कुछ पीताभ वर्ण का होता हैं। मुख में रखने पर कुछ चिपचिपा एवं मधुर होता हैं। निघण्टु ग्रन्थों में एवं सहिंता ग्रन्थों के कतिपय स्थलों पर क्षीर काकोली का उल्लेख मिलता।

मेदा–महामेदा

द्रव्यनाम................ संस्कृत .... महोमेदा, मेदा।
स्थानिक ....सालममिश्री, देवरीगांलः
लैटिन .... Polygonatum Verticillatum, Ali Polygonatum Cirricifolium Royte..

स्वरुप

यह हिमालय में उपलब्ध काण्ड एक–वर्षायु मूल बहुवर्षायु आरोही क्षुप हैं। आरोही क्षुप काण्ड मृदु एवं 4–5 फिट तक लम्बा होता हैं। पर्ण अवृन्त दीर्घायत भालाकार एवं तीक्ष्णग्रण होते हैं। पुष्प श्वेत वर्ण के फल मांसल, पकने पर रक्तवर्ण के होते हैं। मूल आर्द्रक कन्द सदृश श्वेत वर्ण के एवं सूखने पर मेदोधातु सदृश होते हैं। स्वाद में मधुर एवं कुछ कच्चा कन्द कषैला होता हैं। औषध उपयोग में उपर्युक्त दोनों जातियों का संग्रह मेदा–महामेदा के नाम से किया जाता हैं। Polygonatum Cirricifolium में यह अंतर हैं कि इस के अग्र भाग के पर्ण मुड़े हुए धुमावदार होते हैं।

पुष्पकाल .... जूल, जूलाई,
प्रयोज्यांग .... मूल कन्द,
औषध संग्रहकालण.................. अगस्त से अक्टुबर,

प्राप्तिस्थान :– यह उत्तराखण्ड़ हिमालय में 1500 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3600 मीटर की ऊंचाई तक प्रायः भिलंगना घाटी (टिहरी गढ़वाल) भागीरथी घाटी (उत्तरकाशी), चमोली, जोशीमठ, चकरौता, देववन, मंसूरी, शिमला आदि स्थानों पर सुलभ हैं।

मूल कन्द की वाह्य रचना एवं विवरण :– (मैक्रस्क्रोपिकल स्टेडी)— मेदा–महामेदा के कन्द आर्द्रककन्द सदृश (Rhizoknative) होता हैं । आर्द्र अवस्था में ये कन्द श्वेत वर्ण के होते हैं। शुष्कावस्था में पाण्डु वर्ण के चपटे कुछ चमकीले एवं मसृण होते हैं।

शुष्क अवस्था में ये कन्द मधुर होते हैं। पानी में छोड़ने पर यह चिपचिपा एवं कुछ चिकना होता हैं। बाजार में दोनों जातियां मिश्रित रूप मेदा एवं महामेदा के रूप में हरिद्वार, देहरादून की फार्मेसियों में सुलभ हैं। व्यापारिक दृष्टि से इस मूलिका का काफी मात्रा में इन घाटियों से संग्रह किया जाता है।

निघण्टु ग्रन्थों एवं संहिताग्रन्थों के कतिपय स्थानों पर मेदा–महामेदा का उल्लेख मिलता हैं।

इस प्रकार कतिपय स्थल महामेदा एवं मेदा के आमयिक प्रयोग के संहिताग्रन्थों में उपलब्ध हैं, जोकि विस्तारमय से यहां पर देना स्म्भव नहीं हैं।

ऋद्धि–वृद्धि

द्रव्यनाम................ संस्कृत .... ऋद्धि–वृद्धि
लैटिन ....Habenaria Intermedia D. Don Habenaria Sp.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरूप :– यह हिमालय में उपलब्ध एक वर्षायु शाकीय पौधा हैं। कन्द द्वीवर्षायु, काण्ड 8 इंच से 1 फूट तक लम्बा तलोत्थ होता हैं। पर्ण अवृन्त क्रमानुसार एवं दीर्घायत होते हैं। पुष्प खिलने पर श्वेत वर्ण एवं कुछ हरिताभ होते हैं।

मलू :– कन्दिल, द्विवर्षायु, अण्डाकार, मसृण एवं मृदुरोमिल होता हैं। हिमालय की घाटियों में इस की कतिपय जातियां पाई जाती हैं जिन्हें कि वनौषधि संग्रहकर्त्ता एकत्रित करते हैं।

पुष्पकाल .... जुलाई, अगस्त,
प्रयोज्यांग .... मूलकन्द
औषधि संग्रहकाल .... सितम्बर, अक्टुबर

व्यापारी लोग आर्द्र मूलकंदों को सर्वप्रथम पानी में उबाल देते हैं और उसके बाद सुखा कर बाजारों में विक्रय करते हैं। ऐसा करने पर इन कन्दों का जलियाश शीघ्र नष्ट हो जाता हैं एवं सड़ने से बचाया जा सकता हैं।

प्राप्तिस्थान :– यह उत्तरी हिमालय में 1800 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2700 मीटर की ऊँचाई तक प्रायः घासदार ढलानों में सर्वत्र सुलभ है। उत्तराखण्ड गढ़वाल में भिलंगना घाटी (टिहरी गढ़वाल) जमुनोत्री, केदारनाथ, चकरौता, मंसूरी, शिमला, चम्बा, आदि स्थानों पर सुलभ हैं। इस समय नेपाल में इस द्रव्य का काफी मात्रा में संग्रह किया जाता हैं।

मूलकन्द की वाह्य रचना :– (मैक्रोस्कोपिकल स्टेड) :– मूलकंद कठोर एवं वेलनाकार गांठ के सदृश होता हैं। रंग कुछ धूसर एवं कृष्णाभ होता हैं। शुष्कावस्था में कठोर एवं ठोस होते हैं। लम्बाई में 1 से 1" इंच लम्बे एवं कुछ गांठदार होते हैं। प्राकृत अवस्था में कुछ श्वेत वर्ण के एवं गरम पानी में डालने पर यह कुछ काले रंग का हो जाता हैं यही कारण हैं कि बाजार में यह कन्द कृष्णाभ वर्ण के मिलते हैं। तोड़ने पर मूलकंद का आभ्यान्तिरक भाग कुछ चमकीला एवं श्वेताभ वर्ण का होता हैं। स्वाद में यह कुछ कषैला होता हैं।

निघण्टु एवं सहिताग्रन्थों के कतिपय स्थलों पर ऋद्धि–वृद्धि का वर्णन मिलता हैं। यथा :–

चरक ने ऋद्धि–वृद्धि का निर्देश जीवनीय गण स्नेहोपग गण, जीवन्त्याघनुवासन, च्यवनप्राश आदि कतिपय स्थलों पर किया हैं। विस्तारमय से यहां पर सभी आमयिक प्रयोग देना सम्भव नहीं हैं।

आजकल अष्टवर्ग के द्रव्य आसानी से उपलब्ध नहीं होते हैं तथा शास्त्रीय निर्णय भी अभी तक पूर्णरुपेण स्वीकार नहीं किया हैं। यह तभी सम्भव हैं जब कि शोघ करने के जो कतिपय आधार हैं, उस पर उपर्युक्त द्रव्यों की पहचान की जा सके।

निघण्टु ग्रन्थों में अष्टवर्ग के प्रतिनिधि द्रव्यों की तालिका भी पाठकों की सुविधा हैतु नीचे दी जा रही है।

1. अष्टवर्ग के प्रतिनिधि द्रव्य

संख्या	शास्त्रीय नाम	प्रतिनिधि द्रव्य	लैटिन नाम
1.	जीवक–ऋषभक	विदारी कन्द	Pueraria tuberosa Dc.
2.	काकोली–क्षीरकाकोली	अश्वंगधा	Withania Somnfera Dunal.
3.	मेदा–महामेदा	शतावरी	Asparagus recemosus willd.
4.	ऋद्धि वृद्धि	वाराहीकन्द	Dioscorea bulbifera.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

या

1.	जीवक	वहमन सफेद	Centaurea behen Lin
2.	ऋषभक	बहमन लाल	
3.	मेदा	सालम मिश्री	Eulpohia Campestris.
4.	महामेदा	शकाकुल	Polygonatum Sp.
5.	काकोली	काली मुसली	Curculigo Orchiodes
6.	क्षीरकाकोली	श्वेत मुसली	Choeorophytum Orundinaceum
7.	ऋद्धि	चिड़िया कन्द	Asparagus
8.	वृद्धि	सालमपञ्जा	Orchis Latifolia Linn.

उपयुर्क्त द्रव्यों का प्रयोग आजकल अष्टवर्ग के अभाव में फार्मेसी करती हैं। प्रतिनिधि द्रव्यों का उल्लेख भी निघण्टु ग्रन्थों में किया हैं।

कंकुष्ट एवं स्वर्णक्षीरी

वैद्य समुदाय में कंकुष्ट के सम्बन्ध में भ्रान्ति चल रही हैं। यद्यपि संहिताकाल में यह निर्विवाद था, लेकिन प्रयोग अत्यन्त विरल मिलता हैं। चरक संहिता में इन का उल्लेख नहीं हैं। सुश्रुत सहिंता में केवल एक स्थान पर उल्लेख मिलता हैं। अष्टांग संग्रह एवं हृदय में भी उल्लेख मिलता हैं।

इसकी गणना रसशास्त्रीय ग्रन्थों में उपरस के अन्तर्गत की गई हैं, और प्रायः मध्यकालीन रसशास्त्र के ग्रन्थों से यह भ्रमविशेष पल्लवित हुआ हैं, जहां कतिपय प्राणिज द्रव्यों में भी कंकुष्ट की परिकल्पना दृष्टिगोचर होती हैं।

इस प्रकार देश भेद से काल भेद से कंकुष्ट के स्थान पर निम्न द्रव्य प्रयोग में आते रहे हैं।

1. सद्योजातदन्तिमल।
2. सद्योजात अश्व का नाभिनाल।
3. सद्योजात अश्वमल
4. मुद्दार श्रृंग (मुर्दा संग) Litharge Pb o Plumbimo hoxidum (Leadoxid)
5. उसोर रेवन्द
6. रेवन्द चीनी मूल (Rheum emodi)
7. हिमावती निर्यास (स्वर्ण–क्षीरी) Euphorbia thompsonia
8. कंकुष्ट (Gamboge)

इस भ्रान्ति का कारण एक ही प्रतीत होता हैं कि यह दुर्लभ वनौषधि थी, और भारतीय भू भाग के पश्चिमोत्तर प्रदेश में इस के कुछ वृक्ष उपलब्ध होते हैं। विशेषतः इस का आयात बाहर श्याम (Combodia) से होता था, इसलिए इसके स्वरूप एवं आकृति को देखकर भिन्न लोगों ने विभिन्न परिकल्पना कर डाली थी। उसी प्रकार की भ्रान्तियां परवर्ती टीकाकारों ने भी लिख डाली हैं, जिससे यह और संदिग्ध हो गया हैं। सम्प्रति इसके शास्त्रीय स्वरुप एवं प्रकृति का विचार की भ्रान्ति के निराकरण का प्रयास अपेक्षित हैं।

प्रभ्रम तीन मान्यतायें तो नितान्त भ्रममूलक हैं जो कि कंकुष्ट के वाह्य आकार एवं वर्ण को ध्यान में रख कर गर्भगत मल यदि शुष्क हो जायेंगा तो प्रायः श्याम पीताभ होगा और उस के स्थूलता के आधार पर वृहदाकार पशु के गर्भमल की परिकल्पना साकार हुई होगी। तीसरी परिकल्पना भी अश्व की नाभिनाल की भ्रमवश प्रचलित हो गई होगी, जो कि मात्र भ्रान्ति होने से किञ्चित भी विचाराहं नहीं हैं।

अतः विशेष रूप से मृददारश्रृंग (मुर्दासङ्ग) तथा उसारे रेवन्द किवां कंकुष्ट के सम्बन्ध में संदिग्धता विचारणीय हैं। इसी प्रसंग में रेवन्द चीनी मूल तथा स्वर्णक्षीरी (हिमावती) निर्यास भी स्पष्ट हो जाना चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अधिकांश प्राचीन निघण्टुओं में प्रायशः वनौषधि श्रेणी में ही यह वर्णित हैं। जैसे :-

आचार्य हैमचन्द्र के निघण्टु शेष में – वृक्षकाण्ड

मदन पाल निघण्टु में – अभयादि वर्ग
धनवन्तरी निघण्टु में – चंन्दनादि वर्ग

मदन विनोद में तो कंकुष्ट एवं स्वर्ण क्षीरी का एक साथ ही ऊपर नीचे पाठ है। कतिपय निघण्टु में जैसे :-

राजनिघण्टु में स्वर्णादि वर्ग।
भावप्रकाश निघण्टु में धात्वादि वर्ग।
शालिग्राम निघण्टु में धातुपधातु वर्ग।

इसके गुणांधिक्य के कारण तथा रस (पारद) का उपकारक या सहायक होने से उपरस में गणना हो जाने से उस उपरस के वर्णन अनुरोध से उन वर्गों में उल्लेख हो गया है। प्रतीत होता है।

कंकुष्ट के शास्त्रीय पर्याय :-

कंकुष्टम्–	कुष्ट रोग में कम् सुखदायक होने से
कालकुष्टम्–	कुष्ट रोग निवारण में काल (अन्तक) के समान उपयोगी।
काककुष्टम्–	काशमीरज औषधि विशेष कुष्ट के स्थान पर मिश्रित कर बेचने से।
विरङ्गंम्–	विशिष्ट रंग (रञ्जक) होने से।.
रङ्दायकम्–	विशिष्ट राग प्रदायक होने से।
रेचकम्–	विरेचक कारक होने।
पुलकम्–	पुलहम, हलका फलका होने से।
हासम्–	अपेक्षाकृत भार में कम होने से।
शोधनम्–	वमन–विरेचन द्वारा दोष शोधक होने से।

कालपालकम् :- काल निश्चित अवधि 10 वर्ष की काल मर्यादा के बाद ही वृक्ष से संग्रहीत होने में, अथवा 10 वर्ष तक निर्विकार वीर्य होने से काकपालकम् –नीलवर्ण का वृक्ष हाने से काक पक्षि रक्षक का विशेष हाने से तथा काक अपना धोसंला बनाता है।

कोकाकुलम् :- ककि गैतो धातु से ओणादिक कालन प्रत्यय करके कङ्गल शब्द निष्पन्न होता है, अतः शोधक होने से गति कारक ।

वराङ्म् :- स्वर्णवत् श्रेष्ठ परिवर्ण का होने से ।

कालवालुकम् :- उचित काल 10 वर्ष पर परिपक्व होने से बालुका के समान निर्यास कण उपलब्ध होने, से उससे कम या अधिक काल में उत्कृष्ट कण उपलब्ध होने से।

मलस्म्भूतम् मल धारणे (धातु) (भ्वादि) से पचापच कर के मल शब्द निषपन्न होता है। अतः वांस के खोखला में कुछ काल धारण करने से यह बनता है। यह प्रकट करता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कोलवालुकम् :– कालोभेलक उत्सङ्केडकपाल्यां चियकेकिरी, इस हैमकोष के आधार पर चित्रकारी में उपयोगी वालुकावत् सूक्षम कण विशेष रुप से चूर्ण होने पर।

कुञ्जवालुकम् :– कुजि अव्यक्त शब्दे (भ्वादि) धातु से बहुलकात्

निष्पन्न कुञ्ज शब्द। इस के भंगुर होने से भङ्ग काल में कुछ शब्द विशेष हो कर बालुका (चूर्ण) रुप में परिणित होने से–प्रकट करता है।

स्वर्णक्षीरी, हैमवती, तीक्ष्ण दुग्धिका,–अष्टाङ्ग निघण्टु में स्वर्णक्षीरी के पर्याय में कंकुण्ट का उल्लेख है। अतः इसकी प्रकृति का आभास मिलता है।

प्रायः सभी प्रदर्शित प्रयायों का स्पष्ठीकरण कंकुष्ट के सन्दर्भ में सार्थ है। यद्यपि कुछ पर्याय जो नाटकीय वर्ग विन्यास की उपयोगिता को प्रदर्शित करते हैं। इस के आधार पर मुर्दासंक को नाटकीय वर्ण विन्यास के उपयोगी होने से उसमें भी सार्थक हो सकते हैं। यद्यपि कंकुष्ठ के भी रंजक द्रव्य विशेष इसे भी वह कार्य सम्भव होने, तथा इसके गुण कर्म में भी वर्ण कारक होने से कंकुष्ट के अर्थ में विशेष सार्थक है।

रस हृदय तत्र के नवम् द्वादश एवं अष्टादश अध्यायों में पारद संस्कार प्रकरण में कंकुष्ठ का उपयोग वर्णित है। टीकाकार ने उस का अर्थ विरंग किया है। यद्यपि विरंग का अर्थ वि=विकृत वगं=रांगां रंग किया जाता है और मुर्दासंक को वंग का विकृत रुप (Oxide) मानकर कंकुष्ट का पयार्य किया जाना माना जा सकता है। वस्तुतः मुर्दासंक नाग का यौगिक है। फिर भी त्रिवंग के अन्तर्गत बंग, यशद एवं नाग का समावेश होने से एक वंग के सदृश गुण कर्म वाला होने से एक दूसरे के स्थान पर नाम चल सकता है। इसे उत्कृष्ट रसबन्धकारक कहा गया है तथा पारद बन्धन में मुर्दासंक के उपयोगी होने से उसे कंकुष्ट मानना चाहिए। इस के समर्थन में कहद्रसराजसुन्दर में एक प्राचीन रससिद्ध ? भलुकि का नामोल्लेखक कर विरंग को वंग के उपधातुः का उल्लेख कविराज भूदेव, मुखोपाध्याय ने अपने जलरस जलनिधि नामक ग्रन्थ में किया है अपन्यस्त होता है। इसी आधार पर अनेक वंगीय कोषकारों ने अपने कोष में पर्वतीय मृतिका विशेष रुप से उल्लेख किया है।

लेकिन इसमें वंग का अस्थित्व न होने से यह वंग का विकृत रुप नहीं है। अतः साहचर्य के आधार पर नामकरण का आधार न होने से एवं भालुकि के प्रसिद्ध रस सिद्ध न हो कर शल्यविद होने से तथा अनेक बनौषधियां भी उत्कृष्ट रसबन्धकारक होती है। कंकुष्ट में भी रसबन्ध की क्षमता के अधार पर उसका उपरस में परिगणन किया है। रसोपकल्पन में सहायक द्रव्यों को उपरस कहते हैं। एवं इसमें प्राणिज (अम्बर) एवं वनस्पति कम्पील्लक आदि का समावेश किया है अनेक दिव्यौषधियों का तो उसी के लिए विशेष उल्लेख है। उतः इस युक्ति में कंकुष्ट के वनस्पतिक (Gambodge) होने का निराकरण सम्भव नहीं है।

उत्पत्ति स्थान :– प्रायः सभी आयुर्वेदीय ग्रन्थों में हिमालय बतलाया गया है। सम्प्रति इस जाति के कुछ वृक्ष पश्चिमोत्तर हिमालय, सिक्किम, नैपाल में 1100 से 1300 की फिट की ऊंचाई पर उपलब्ध होते हैं। यह (Garcinia Marella) प्रजाति है।

विशेषतः यह श्याम के कम्ब्रोज प्रदेश में इसकी विशेष प्रजाति (Garcinia Hanburyi) से प्राप्त किया जाता है और इसके वृक्ष जब (10) वर्ष के हो जाते हैं जब इन के स्कन्ध भाग में चीरा लगा कर बांस का फीफी काट कर लगा दिया जाता है। जिससे उस का राल मिश्रित निर्यास संग्रहीत होता है जिसे कुछ काल तक उसी में रहने देते हैं। सूख जाने पर आंच पर गरम करते हैं जिस से बांस चटक कर अलग हो जाता है, और कंकुष्ट पृथक कर निर्यात किया जाता है, और वहीं से भारत आता है। कम्बोज से आने के कारण ही इस का नाम कम्बोजिया या अपभ्रंश गम्बोजिया रुप हुआ है।

उत्तत्ति स्थान के दृष्टि से भी मुर्दासंग कंकुष्ठ नहीं हो सकता है क्योंकि कि रसग्रन्थों में भी जहां कंकुष्ट की उत्पत्ति हिमालय पर वर्णित हैं वहीं मुर्दासंग की उत्पत्ति गुर्जर देश आबू की पर्व श्रेणियों में वर्णित है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रकार :– भाव प्रकाश में – रक्तकाल अण्डव दो भेद प्रदर्शित किये गये हैं। इन में प्रथम पीताभ्र गुरु और स्निग्ध प्रतीत होता है। दूसरा श्याम पीत और लघु होता है। रस ग्रन्थों में नलिकाकार और रेणुक भेद दिया है। राजनिघण्टु में तो त्वार रंजन वर्ण का भी उल्लेख है। अन्ययनलिका द्रेण्काण और रेणुक तीन भेद दिये हैं क्रमशः ये श्यामपीत, पीतवर्ण और श्याम वर्ण के होते हैं। एक जगह इसक रक्तवर्ण होने का निर्देश है। लेकिन वहां पर मूंगा के वर्ण का उल्लेख है एवं मूंगा ईषद् रक्तवर्ण या रक्ताभपीत भी अपलब्ध होता है।

इस के प्रकारों के आधार पर प्रायः कंकुष्ठ को मुर्दासंक मानेने वाले युक्ति देते हैं कि कंकुष्ट प्रायः एक ही वर्ण का होता है। लेकिन मुर्दासंक में नाम (Lead) के योगिक होने से प्रायः निर्दिष्ठ सभी वर्ण सम्भव है। भार की दृष्टि से गुरु एवं लघु तथा मृदु एवं कठोर भेद कंकुष्ट में स्पष्ठतः प्रतीत नहीं होते लेकिनं मुर्दासंक में पीला वाला चिकना एवं भारी होता है तथा श्यामाभ कठोर एवं हलका होता है। स्वरुप की दृष्टि से नलिकाकार के आकर का एवं रेणुक धूली के समान होना चाहिए। संभव है कंकुष्ट को बांस के खोरखेल में संग्रहीत होने से उसके नली के आकार का हो जाता है, इस लिए नलिक भेद हो सकता है किन्तु रेणुक भेद धूली के समान उस के निर्णय के मिश्रित रुप होने से पिण्डाकार हो सकता है। रेणुक धूली के आकार होना संभव नहीं है, अपितु मूर्दासंक में उसके चूर्ण रुप में धूली का आकार संभव है।

नलिकाकार भेद भी :– वाह्यय रचना नलिकाकार न हो कर उसके तोड़ने पर संभवतः शालाकायें सी प्रतीत होती है। वातावरण में अधिक देर तक रखने पर वह विलुप्त हो जाता है। लेकिन सद्यः छूटे हुए परत में वह स्पष्ट प्रतीत होता है, और उन्हीं आन्तरिक शालका सदृश (ब्तलवजंस) मणीभीय रचना सादृश्य आधार पर नलिकाकार भेद भी मुर्दासंग में संगत होता है आर्युविद प्रकाश में यह सजीव वर्णन मिलता है क्योंकि मुर्दासंक में सूक्ष्म नलिकाओं के साथ लम्बी नलिका सी दिखती है जो लम्बे छिद्रों के समान प्रतीत होती हैं।

परन्तु यह कल्पना मात्र है। वस्तुतः कंकुष्ठ सग्रह के आधार एवं अग्नि सम्पर्क से निष्कासन में अग्नि के तस्तम् सयोंग से एवं सग्रंह काल की मर्यादा के आधार पर वर्ण में भेद मिलना संभव है। तथा सूखने पर बीच में बालकोषों के कारण उसमें सच्छिद्रता भी मिल सकती है। रह गई रेणुकाकार की बात यह भी यदि उपेचित रुप में जमीन पर गिर जायेगा तब उसके निर्यास अंश का भूमि में शोषण होने से अधिकांश राल भाग ही रह जायेगा जो धूली के समान ही होगा, और गुणों में भी न्यून होगा।

संप्रति यह गोल लम्बा 2.5 समि0 व्यास का वेलनाकार ठोर भंगुर खोखला टुकड़ा मिलता है। वर्ण रक्तभ्राूपीत या भूरापन लिए हुए नारंग वर्ण का होता है। चूर्ण हरिद्रा वर्ण का होता है। इसके उपरी सतह पर बांस के अन्दर की धारियों के निशान दिखाई पड़ते हैं। प्रायः 10 वर्ष तक इसमें वीर्य रहता है। इसे Pipe Fambodge कहते हैं।

दूसरा भेद जो पिण्डाकार होता है उसे बांस Gambgoge कहते हैं। रस के सम्बन्ध में भी इसे तिक्त कहा गया है। जो कि कंकुष्ट में स्पष्टतः प्रर्याय माना है, लेकिन मुर्दासंग में किसी भी रस की प्रतीति स्पष्टतः न होने से इसे कंकुष्ट मानना ठीक नहीं है। परन्तु कुछ लोग रस परिज्ञान को अनुमान गम्य मान कर जिस प्रकार स्वर्ण आदि कठिन धातुओं में परीक्षण एवं गुण कर्म के आधार पर अनुमेय रस की परिकल्पना होती है, ठीक उसी प्रकार मुर्दासंक में कटु–तिक्त रस की परिकल्पना मानते हैं। लेकिन यह समीचीन नहीं है क्यों कि मुर्दासंक सीस का यौगिक है और आचार्य वगभट्ट ने सीस का लवण स्कन्ध में वर्ण किया है। लवण स्कन्ध में वर्णित गुण कर्म स्तम्भ, संघात एवं वंध आदि नितान्त कटु–तिक्त, रस के कर्म के विपरीत है, जो मुर्दासंक में मिलते हैं, परन्तु कंकुष्ट (Gambodge) में नहीं मिलते हैं। अतः रस के आधार पर मुर्दासंक को कंकुष्ट मानना युक्ति संगत नहीं है। सत्वाकर्षण के सन्दर्भ में भी प्रायः सर्वत्र इसके सत्वरुप होने से सत्वाकर्षण का निषेघ मिलता है। परन्तु रस कामधेनु में रस के सत्वपातन का भी उल्लेख है। मुर्दासंक का सत्वपातन संभव होने से इस उल्लेख के आधार पर मुर्दासंक ही कंकुष्ट है–युक्ति दी जाती है। लेकिन यह उल्लेख रसकामधेनु का है जो कि एक संग्रह ग्रंथ है। संभव है संग्रह कर्त्ता ने यह विधि स्वयं बिना विचार किये–गैरिक के समान वर्ण साम्य के आधार पर तद्वत सत्वपातन का उल्लेख भी कर दिया हो अतः भ्रामक है।

वस्तुतः यह सत्वरुप अर्थात् राल एवं निर्यास का शुष्क रुप है और इस का प्रचलित नाम उसारे–रेवन्द–रेवन्द का उसार (सत्) है इस लिए इसके सत्वरुप होने से इसका सत्वपातन संभव नहीं है। यद्यपि उपरस में गणना होने से कतिपय

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उपरसों के समान इसके भी सत्वपातन की शंका स्वभाविक है। तथापि इसके वनस्पति एवं सत्वस्वरुप का होने से सत्वपातन एवं वानस्पति दृष्टि से भी सत्व निष्कासन भी संभव नहीं है। अतः यह शंका निर्मूल है सहिंता ग्रंथो केवल सुश्रुत सहिंता के सूत्र स्थान 28 वें अध्याय में वर्णनीय द्रव्यों का निर्देश करते हुए कंकुष्ट का वर्णन उपलब्ध होता है।

"ध्यामकुंड्क मकंड्कुष्टसवर्णः पित्तकोपतः"
सु० सू० 28/12

"यहां पर कंकुष्ट की व्याख्या में कंकुष्ट स्वर्णक्षीरी निर्यासः" लिख कर डल्हण ने पीतवर्ण सादृश्य के आधार पर कंकुण्ट को वानस्पतिक होने का उल्लेख किया है। लेकिन कुछ वैद्य उक्त उक्ति को डल्हण की उक्ति न मानते हुए तत्कालीन प्रचलित मत विशेष का उल्लेख मानते हैं। एवं तर्क देते हैं कि डल्हण इसे अन्यों का मत मानते हैं। अतः उन का अभिष्ट नहीं है। अतः सम्पूर्ण डल्हण का मूलपाठ इस प्रकार है :- केचित्

"श्यामाकुँकुमकुंकुष्ठसवर्णाः पिन्तकोपतः"।
"न दहयन्ते न चुष्यन्ते भिषक् तान् परिवर्जयेत्"।।

"इति पांठ पठन्ति व्याख्यानयन्ति च ण्यामा प्रियङ्गु कंकुष्ठ स्वर्णक्षीरी निर्यासः स च निवन्धेसु न द्यष्यते यत्र तु द्यष्य तत्र गुङ्गुलिका प्रवाहः तस्मात्पूर्वः
पाठो न्याय्यः।" (सु० सू० 28/12 पर डल्हण)।

यहां पर केचित से अन्य मत से उद्धरण मात्र से डल्हण का अभिमत कंकुष्ट को स्वर्ण् क्षीरी निर्यास मानना युक्तिसंगत नहीं है।

कतिपय अन्य स्थलों पर भी कंकुष्ट को स्वर्ण क्षीरी मानने में डल्हण की अरुचि प्रतीत होती है :-

1- "कनकक्षीरीहिंड्गु वचातिविषा" सु० सू० 11/10
"कनकक्षीरी सुवर्णक्षीरी कुङकुष्टमित्यन्ये" (डल्हण)

2- स्वर्णक्षीरी चेति सु० सू० 38/29
"सुर्वणक्षीरी-अनन्तासदृश्ययवा, कुङकुष्टमित्यपरे/ (डल्हण)।

उपर्युक्त स्थलों पर यदि स्वर्णक्षीरी का निर्यास ही कंकुष्ट डल्हण को अभिष्ट होता तो अन्ये या अपरे पद से कंकुष्ट का उल्लेख कर अपनी अरुचि न प्रदर्शित करते।

परन्तु इससे इतना स्पष्ट है कि डल्हण काल में भी एक समुदाय था, जो कि कंकुष्ट को स्वर्णक्षीरी का निर्यास मानता था। स्वर्णक्षीरी भी प्रचलित भड़भाड़ उस काल में ग्राह्यय थी तथा कतिपय अन्य स्थलों पर डल्हण ने भी स्वर्णक्षीरी का अर्थ कंकुष्ट बिना किसी विप्रतिपत्ति के ग्रहण किया है। जैसे

1- "कासीस काञ्चनक्षीयौ वर्गः शोधन इष्यते"
सु० चि० 40/-

2- हैमक्षीरी व्याधिघातः शिरीषः।
सु० चि० ।

3- दन्तीद्रवन्तीमरिचकनका हृयवासकैः
सु० सू० 44/49

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इन उल्लेखों से डल्हणं की एकान्ततः विप्रतिपत्ति सुवर्णक्षीरी निर्यास मानने में नहीं कर लें। इतना अवश्य है कि स्वर्णक्षीरी दो प्रकार की होती है। एक अनन्तमूल सदृश पत्र वाली हिमावती और दूसरी कंकुष्ट, इस लिए जहाँ अन्ये या अपरे पद से व्यावृत्ति किये हैं। वहां पर उनको स्वर्णक्षीरी प्रथम प्रकार का हिमावती अभिष्ट है, लेकिन दूसरी स्वर्णक्षीरी कंकुष्ट ही है, यह डल्हण को अभिष्ट प्रतीत होता है।

सश्रुत सहिंता में त्रिवृतादि विरेचनगुण में तिल्वकपूर्वाणां मूलारिन सु0 सू0 39/4 उल्लेख है। यहां पर स्वर्णक्षीरी तिल्वक से पूर्व में पठित है, इस लिए इसका मूल लेने का प्राविधान सुश्रुत को अभिष्ट है एवं मूलरालीय होने से कंकुष्ट वानस्पतिक द्रव्य ही है।

पैत्तिक व्रणों के वर्ण निर्देश प्रकरण की व्याख्या प्रसंग में केचित् पद से श्याम के स्थान पर श्यामा पाठ करने वालों के प्रति डल्हण की अरुचि प्रदर्शित होती है, न कि कंकुष्ठ के स्वर्णक्षीरी निर्यास अर्थ के प्रति यदि ऐसा होता तो अन्यत्र स्वयं उसका वही अर्थ न करते।

अष्टाङ्गहृदय के प्राचीन व्याख्याता हैमाद्रि ने अपनी व्याख्या में हैमदुग्धा का अत्यन्त सजीव वनर्ण दिया है।

हैमदुग्धा हिमावती कंकुष्ट प्रकति

अ0 ह00 सू0 15/ पर हेमाद्री इससे कंकुष्ट की उत्पत्ति हिमावती (स्वर्णक्षीरी विशेष) से सिद्ध होती है।

अरुणदत्त ने भी स्वर्णक्षीरी को कंकुष्ठ माना है। शाङ्धर सहिंता के मध्यम खण्ड 11/72 में कंकुष्ठ का उल्लेख है, इसकी व्याख्या में आढमल्ल ने दीपिका टीका में कंकु स्वर्णक्षीरी "अस्म भेदः" चोक इति प्रसिद्धः । लिखा है। तथा काशीराम वैद्य ने गुढार्थदीपिका टीका में "कंकुष्टः चोक निर्यासः" लिखा है। अमरकोष के व्याख्याकार श्री भानुजी दीक्षित ने अपनी सुधा व्याख्या में स्वर्णक्षीरी " के पर्यायों की व्याख्या करते हुए एक तथान्तर का वचन उद्धृत किया है।

स्वर्ण वर्ण पयस्तस्या हिमवद्भूमिस्म्भवा।
सा नागजिहिकाकारा तन्मूलं वणिजौषधम्।

इस में स्वर्ण वर्ण दुग्ध, हिमालय प्रदेश में उत्पत्ति, नागजिहि्का=मनःशिला के समान आकार एवं इस का मूल व्यावसायिक द्यष्टि से उपयोगि वर्णित है। इन सब आधार पर दुग्ध एवं मूल युक्त हिमालय प्रदेश में उपलब्ध होने वाली वानस्पति औषधि ही सिद्ध होती है। व्यावसायिक दृष्टि से मूल की उपयोगिता से संभव है।–

हिमावती मूल सुदूर काश्मीर में उत्पन्न होने के कारण विक्रय होता रहा होगा। आज भी इसका व्यावसाय काश्मीर सरकार करती है। अथवा उस काल में यूनानी औषधियों का पदार्पण हो जाने से रेवन्द चीनी मूल के लिए जो कि कुछ अंश के समान गुण कर्म युक्त है, इस का व्यावसाय बाहर से आकर होता रहा होगा। सम्प्रति इसी मूल भी काश्मीरी सरकार विक्रय करती है।

विवेचन :– मृछ्दारश्रृङ्ग उपर्युक्त शास्त्रीय दृष्टिकोण के आधार पर विशेष रुप से यह पीतवर्ण का तीव्र विरेचक द्रव्य है, जिसकी यव प्रमाण (40 मि0 ग्राम) मात्रा से विरेचन होता है। एवं अन्य कफवातजन्य व्याधियों में बहुलता से अन्तः प्रयुक्त होता है। मुर्दासंक का गुण कर्म स्तम्भन होने से इससे नितान्त भिन्न है, इस का अन्तः प्रयोग प्राचीन एवं आर्वचीन दृष्टिकोण से प्रायः निषिद्ध है। कतिपय रसग्रन्थों में कंकुष्ठ एवं मृदारश्रृंग दोनों का प्रयोग मिलता है। जिसमें इसकी उत्पत्ति गुजरात एवं आबू की पर्वत श्रेणियों में बतलाई गई है। सम्प्रति यह कृत्रिम विधि से भी बनाया जाता है। इन सभी दृष्टियों से विचार करने पर मुर्दासंग को कंकुष्ठ मानना कदापि युक्तिसंगत नहीं है।

उसारे रेवन्द :– (रेवन्द चीनी Rhum Emodi) का उसार (सत्) यह अर्थ प्रकट करता है। आज इस प्रकार को कोई सत् व्यावसायिक रुप में उपबल्ध नहीं होता है। रेवन्द चीनी मूल में रेचक गुण है। लेकिन कंकुष्ठ की अपेक्षा कम

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है सम्भव है उस काल में भी इससे सत् निकाला जाता रहा हो, और कंकुष्ठ (Gamboge) के समान गुण होने से बाहर से आयात होने के कारण प्रकृति का ठीक ज्ञान न होने के कारण इस Gamboge को भी उसारे रेवन्द कहा जाने लगा हो। रेवन्द चीनी में पीतवर्ण दुग्ध नहीं होता है। इस लिए शास्त्रीय उद्धरणों के आधार पर इसे कंकुष्ठ

नहीं माना जा सकता है जिन विद्वान वैद्यों ने इसका उल्लेख किया है वह लोक प्रचलन एवं कंकुण्ठ का बाजारु नाम (Gamboge) उसारे रेवन्द होने के कारण भ्रमवंश कर दिया है। वस्तुतः उन का तात्पर्य इसी Gamboge से ही है।

रेवन्दचीनी–मूल :– यह भी रेचक होती है लेकिन Gamboge के समान तीव्र विरेचक नहीं होती है। इसका स्वरुप भी इषत्पीताभ् सूखने पर होता है। यह बाहर से युनानी चिकित्सकों के साथ भारत में आई है। निघण्टुओं में अन्य कहीं इस का उल्लेख भी नहीं है। न इसमें स्वर्ण वर्ण का दुग्ध ही होता है। जहां पर मूल वाणिज्य व्यसवसायिक का उल्लेख है–सम्भव है बाहर से व्यवसायिक तौर पर आने के कारण और गुण कर्म में कुछ साम्य होने से भ्रमवंश उल्लेख कर दिया होगा। अतः यह कंकुष्ठ Gamboge का प्रतिनिधि हो सकता है। वस्तुतः कंकुष्ठ नहीं है।

स्वर्णक्षीरी (हिमावती) निर्यास

स्वर्णक्षीरी में रेचक गुण वर्णित है, और डल्हण की ग्राह्य स्वर्णक्षीरी अन्नतमूल सदृश पत्रवाली हिमावती (हियावली या हिरवी) भी रेचक होती है। एवं इसके मूल का रस भी लगने पर पीतवर्ण का होता है। बाहर भी निकलने पर कुछ काल हवा लगने पर पीला हो जाता है। इसको सुखा कर कंकुष्ठ बनाया जाता रहा होगा। हेमाद्रि ने इसे ही कंकुष्ठ प्राकृतिक माना है। भावप्रकाश ने स्वर्णक्षीरी मूल को चोक संज्ञा से कहा है। तथा शार्डधर के व्याख्यात काशीराम वैद्य ने चोक निर्यास कंकुष्ठ को लिखा है। डल्हण ने भी अपरेया अन्ये पद से जिन लोगों के मत का उल्लेख किया है वह लोग भी इसी स्वर्णक्षीरी निर्यास को कंकुष्ठ मानते रहे होंगें । अतः इस विविचन एवं गुण साम्य के आधार पर यह भी उस काल में कंकुष्ठ रहा होगा। परन्तु आजकल इस का इस तरह निर्यास व्यावसायिक रुप में उपलब्ध नहीं होता है। डल्हण ने इस का अन्ये पद से व्यावर्तन किया है। इस लिए इसके मूल का व्यावसायिक महत्व एवं सम्प्रति भी काश्मीर सरकार द्वारा व्यवसाय प्रयुक्त वाणिजौषध मूल तथा चोक हो सकती है। अतः वस्तुतः कंकुष्ठ नहीं है।

निष्कर्ष :– स्वर्णक्षीरी दो प्रकार की होती है क्योंकि सुश्रुत ने काञ्चनक्षीर्यौ द्विवचनान्त प्रयोग किया है। डल्हण ने उसका एक प्रकार कंकुष्ठ, दूसरा–पीतवर्ण दुग्धा, यवाकार फूलवाली एवं तिक्त रस युक्त हिमावती (हिपालवी, हिरवी) को स्वीकार किया है। शार्ङधर के व्याख्याता आठ्यमल ने भी कंकुष्ठ को स्वणक्षीरी माना है, तथा उस का भेद (प्रकारान्तर) चोक लिखा है। सम्भवतः यही हिमावती)चोक) मूल है जिसे भाव प्रकाश ने स्वर्णक्षीरी मूल बतलाया है। इस लिए उपर्युक्त शास्त्रीय उद्धरणों का सामञ्जस्य स्थापित करते हुए सिद्धान्त रुप में पीत वर्ण दुग्ध होने से स्वर्णक्षीरी वृक्ष विशेष तमाल या तापिच्छ (Garcinia Morella Jesruss) को ही भारतीय कंकुष्ठ मानना चाहिए।

वानस्पति वर्णन :– भारतीय कंकुष्ठ (Gomboge) Guttiferace के वर्ग Garciniamorella एक गुजराती में तमाल वृक्ष, बंगला–तमालगाक्छ, तेलगु–पसुवुवेर्ष, तमिल–पुमक्की, कर्नाटक–जादिगेहुली और इंग्लिस में (Indian Gamboge tree) कहा जाता है इस के वृक्ष बंगाल के पूर्वी भाग, खासिया पहाड़ एवं पश्चिमी घाट में उत्तर कनारा के दक्षिण में ट्रावन्कोर तथ्सा लगभग 22,00 से 3,000 फिट की ऊंचाई तक पायें जाते है। विदेशों में –लंका, मलक्का, सिंगापुर, श्याम देश में भी मिलते हैं।

आकार में वृक्ष छोटा एवं सदा हरित रहता है, शाखायें फली हुई एवं नवीन शाखायें कुछ चतुष्कोण सी होती है। पत्रदण्ड़ 6 मिमि0 लम्बा होता है, पत्ते 8 से मी0 से 12 से मी0 लम्बे, 4 सेमी0 से 7 सेमी0 चौड़े एवं दोनों सिरों पर क्रमशः संकुचित होते है पुष्प एकलिंगी पत्र कोणों में आते हैं। पुष्प हेमपुष्प बाह्य कोष के चार दल स्थाई, पुष्पाभ्यन्तर कोष के चार दल, पुंकेशर 25 से 40 एक ही गुच्छे में, पुंकेशर के सभी तन्तु एक में मिल चतुष्कोण स्तम्भाकार रुप में हो जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इन में स्त्री पुष्प अपेक्षाकृत पुंपुष्प से बड़ा होता है। यह एकाकी पथ कोणोद्भूत, पुष्प दण्ड से रहित (अवृन्त) इसमे 18 से 20 पृष्ठ पुंकेशर गर्भाशय के चारों तरफ घेरे रहते है। गर्भाश्य चार कोष्ठ वाला होता है। पुष्प वाह्यय कोष पुष्प दल के साथ नित्य संयुक्त रहते है। फल गोलाकार लगभग 2 सेमी0 व्यास के एवं चार खण्डो से युक्त होता है। बीज भी प्रायः संख्या में चार गहरे भूरे या काले रंग के अण्डाकार या कुछ वृक्काकार होते हैं।

भारतीय कंकुष्ठ (Gombage) इसी तमाल वृक्ष की छाल में धाव करने से एक पीले रंग का तरल लाल सदृश पदार्थ होता है। जो सूखने पर पीले भूरे रंग के टुकड़ों में प्राप्त होता है। इस का स्वाद कुछ कटु सा होता है।

भारत में यह अपने यहां के वृक्षों से अत्यन्त मात्रा में संग्रहीत होता है। यहां के बाजारों में उपलब्ध होने वाला कंकुष्ठ (Gamboge) श्याम देश के कम्वोडिया नाम प्रान्त में आयात होता है।

यह उस देश में होने वाली इस की प्रजाति Garciniahanburgi (Hook) में संग्रह किया जाता है। संग्रह के लिए प्रायः दस वर्ष पुराने वृक्ष की छाल वर्षा ऋतु में कुन्तल (Spiral) चीरा लगाते हैं। एवं नीचे उसी के साथ (इससे उसका स्त्राव बांस में स्त्रवित होता रहै) बांस के नीचे की तरफ गांठदार एवं ऊपर से गांठ कटे हुए बांस के खोखले में पलट कर एक मास तक रखते हैं जिससे यह जम जाता है । बाद में इन खोखलों को गरम करते हैं जिससे बांस चटक कर अलग हो जाता है । भीतर से लगभग 2 से0 मी0 बेलनाकार रक्ताभपीत् धूसराभ नांरगी रंग का टुकड़ा प्राप्त होता है । जिस की ऊपरी सतह पर बांस के अन्दर की धारियों के निशान स्पष्ट दिखाई देते हैं । कभी-कभी सूखने की विशेष स्थिति के कारण यह अन्दर से पीला होता है । इसके गोल, लम्बे, गैस या खोखले भगुंर टुकडे मिलते हैं । इसे ग्रोरगनवा भी कहते हैं ।

यद्यपि भारत के बाजार में उसे उसारे-रेवन्द कहा जाता है । लेकिन वस्तुतः यह रेवन्द (रेवन्दचीनी Rheum emodi) का उसार (सत्) नहीं है-इसी भ्रांतिवश कतिपय वैद्यो ने भी इसे उसारे-रेवन्द लिखा है जिसका अब निराकरण होना उपेक्षित है ।

सम्मिश्रण :— यद्यपि भारतीय कंकुष्ठ (Gamboge) रेश्यामदेश के आयातित कंकुष्ठ के स्वरूप घटक एवं गुण कर्म में समान होता है और एक दूसरे के स्थान पर बिना किसी हिचकिचाहट के प्रयोग किया जा सकता है । फिर भी आजकल इस (Garcinia) की अन्य प्रजाति से भी इसी तरह के राल मिश्रित स्त्राव निकले हैं जिन कुछ का वर्ण उत्कृष्ट पीला भी होता है । कुछ का हीन होता है तथा कुछ का वर्ण श्वेताभ भूरा होता है उनमें अन्य रजंक द्रव्यों का प्रयोग कर वर्ण सामञ्जस्य स्थापित कर देते हैं और इसके साथ सम्मिश्रित कर व्यवसाय करते हैं ।

व्यवहार में असली कंकुष्ठ की भार वृद्धि के लिए भी गेहूँ या चावल का मैदा, बालू एवं अन्य वनस्पतिक द्रव्यों के चूर्ण मिला देते हैं । इसलिए इनके घटकों का विशेष अध्ययन एवं परीक्षण अपेक्षित है ।

कंकुष्ठ (Gamboge) का चमकीला पीला रंग होने से तलीय रंजक (water coloun) में एवं धातु की चित्रकारी के लिए स्वर्णिम सुरासार (Golden spirit) बनाने में इसका प्रयोग होता है । वर्मा एवं बौद्ध माधुवों के रेशम के चोले रंगने के काम में आता है ।

थाइलैंड़ में काले कागज पर सुनहरे अक्षर लिखने की स्याही विशेष के लिए भी उपयोग में आता है ।

गुण – तीक्ष्ण, कक्ष
रस – कटु
विपाक – कटु
वीर्य – ऊष्ण

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्म एवं प्रयोग :—

दीपन कर्म :— कटु, तिक्त, ऊष्ण एवं तीक्ष्ण होने से कफ का ऊष्ण वीर्य होने के कारण वात का शमन करता है एवं पित्तविरेचक है ।

पाचन संस्थान :— तीव्र विरेचक है अतः इसके प्रयोग से पतले पानी के समान दस्त आते हैं । यह क्रिया सम्भवतः इसके घटक राल में स्थित अम्ल के कारण होती है जोकि क्षर के साथ मिलकर शीघ्र विलियनशील, यौगिक के रूप में परिणित हो जाता है । आँव में विशेष रूप से क्रियाशील होता है जिसमें आंव की ग्रन्थियाँ उत्तेजित होते हैं एवं प्रतिहारिणी शिरा का अवरोध को दूर कर पित्त का स्त्राव बढ़ाता है एवं तीक्ष्णता के कारण पतला दस्त होता है ।

इसकी क्रिया इन्द्रायण colycynth (Citrullus colocynthis shard) के समान होती हैं ।

इसके अतिरिक्त यह कृमिघ्न उत्तम है एवं कृमि निस्सारक उदर शूल गुल्म, आनाह एवं आध्मान नाशक है । जीर्ण विवन्ध में भी लाभ होता है । जलोदर में भी इसका प्रयोग लाभप्रद है । इसके प्रयोग से उदर में अधिक पीड़ा होती है (मरोड़) । इसलिए अन्य विरेचक औषधियों के योग एवं कुछ वातानुलोमक सुगन्धित द्रव्यों के साथ प्रयोग करना चाहिए । अतिसार में भी अहिफेन एवं खत्मी या गुलाब के फूल के साथ प्रयोग करने से दूषित मल निकल जाता है। बाद में रोगी को लाभ होता है ।

रक्तवह संस्थान :— हृदय एवं यकृत के विकृति के कारण होने वाले सर्वाङ्ग शोथ एवं जलोदर में लाभ होता है । इसके प्रयोग से हृदय को बल मिलता है । एक विरेचन से जलीयांश निःसारण होकर रोगी को आराम मिलता है। इससे यकृत की क्रिया मै सुधार होता है एवं पित्त विरेचक होने से यकृत के विष का भी निर्हर हो जाता है । जिससे उत्कृष्ट रक्त निर्माण में सहयोग मिलता है ।

रक्तभाराधिक्य :— में यदि शीघ्र विरेचन कराने की आवश्कता हो तो इसका प्रयोग लाभप्रद होता है ।

वातनाड़ी संस्थान मस्तिष्कावरण शोथ में (cerobrospinal fluid) का तनाव कम करने के लिए यह विरेचक होने से लाभप्रद होता है । अन्य वातव्याधि जैसे आमवात गृध्रसी, अर्दित, आक्षेप, अपस्मार, पक्षवध आदि चिरकालीन व्याधियौ में इसके प्रयोग से कोष्ठ शुद्धि होकर वातिक शूल को भी शान्त करता है ।

श्वसनसंस्थान :— कफघ्न एवं कफनिःस्सारक है इसलिए श्वास कास आदि कुज विकारों में इसके प्रयोग से कफ मल के साथ बाहर निकल जाता है जिससे लाभ होता है । विशेष कर बालकों के श्वास प्रधान ज्वर (Broncho Peneumonia) में इसकी बड़ी मात्रा देने से वमन के साथ बहुत सा कफ निकल जाता है और स्थिति में सुधार होता है, बालकों के ज्वर, श्वास'कस एवं मलाष्टम्भ में एलुआ, डिकामाली और सौवार्चल लवण मिला कर अल्प मात्रा में देने से शीघ्र लाभ होता है ।

मूत्रवह संस्थान :— मूत्रजनन है लेकिन तीव्र विरेचक तथा मरोड़ पैदा करने वाला होने से इस कार्य के लिए प्रायः प्रयुक्त नहीं होता है । ज्वरघ्न है ।

द्रव्यों के नाम के आधार पर उपयोगी औषध योगों की तालिका

वत्सनाभ :— आनन्द भैर रस–संजीवनी वटी, म० विषगर्म्भ तेल ।

अतिविषा :— महासुदर्शन चूर्ण, अमृतारिष्ट, रसपीपरी–म० योगराज गुग्गुल–चन्द्रप्रभावटी–गंगाधर चूर्ण–बालचतुर्भद्र चूर्ण–वत्सकादि क्वाथ ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गुडूची :— अमृतारिष्ट–दशमूलारिष्ट–संजीवनीवटी–पथ्यादिक्वाथ चित्रकहरीतिकी–चन्द्रप्रभावटी–सर्वज्वर हर लौह–गंधक–रसायन–कैशौर गुग्गुलु ।

पाठा :— सारीवाद्यारिष्ट–चन्दनासव–विडंगासव–सोमनाथ रस–महा०–योगरागुगुल–प्रदरारिलौह–पुष्पानुगचूर्ण ।

दारूहरिद्रा :— खदिराष्टि– अश्वगंधारिष्ट– अशोकारिष्ट– कुमार्यासव– रक्तशोधकवटी– हरिद्राखण्ड– चन्द्रप्रभावटी– जात्यादितैल–पुनर्नवामण्डूर–म० नारायण तैल ।

वरूण :— म0 मंजिष्ठाद्यारिष्ट–कांचनार गुग्गुलु वरुणादिक्वाथ ।

तुवरक :— श्री गोपाल तैल–मंजन ।

नागकेशर :— द्राक्षासव–लवणभास्कर चूर्ण–च्यवनप्राश–पुष्यानुग्चूर्ण–अश्वगंधारिष्ट–दशमूलारिष्ट–सुपारीपाक–प्रद्ररनाशकचूर्ण ।

शाल :— महामंजिष्ठाद्यारिष्ट ।

बला :— वलारिष्ट–म0 चन्दनादि तैल–च्यवनप्राश–मन्मथरस–पुनर्नवा–अरिष्ट–महानारायणतैल ।

मोचरस :— चन्दनासव–अभयारिष्ट–प्रदरारिलौह–कुटजावलेह–पुष्पानुकू चूर्ण–चन्दनादिचूर्ण–सौभाग्यशुष्ठी पाक ।

शाल्मली :— पत्रंगासव–बोलबद्ध रस–कोमधेनुरस–सुन्दरीकल्प–चन्द्रकलावटी ।

गोक्षुर (गोखरू) :— दशमूलारिष्ट–दशमूलक्वाथ, दशमूलतैल–अभयारिष्ट–अमृतारिष्ट च्यवनप्राश–गोक्षुरादि गुगुल–म0 नारायण तैल–महामाषतैल

अहिफेन :— अहिफेनासव ।

नागवला :— नागवलारसायन ।

चागेरी :— चाङ्गेरीघृत ।

निम्बुक :— यकृद्धारि लौह ।

विल्व :— दशमूलारिष्ट–दशमूल तैल–अमृतारिष्ट–च्यवनप्राश–महानारायण तैल–महायोग तैल–धान्यपंचक क्वाथ–पुष्पानुकचूर्ण–वत्सकादि क्वाथ ।

तेजबल :— वाहुशांलगुड़

गुग्गुलु :— योगराज गुग्गुल–कांचनार गुग्गुल–आरोग्यवर्धिनीवटी–चंद्रप्रभा वटी–कैशोरगुग्गुल–पुनर्नवादिगुग्गुलु–त्रिफला गुगुलु–'गोक्षरादि, गुग्गुलु ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निम्ब (नीम) :— शंख पुष्पी तैल–ज्वरसंहाररस–महामरिच्यादि तैल–अर्शोघ्नवटी–पथ्यदि क्वाथ–महासुदर्शन चूर्ण–महामंजिष्ठाद्यारिष्ट–पुनर्नवादि क्वाथ–रक्तशोधकवटी ।

जयोतिष्मति :— मल्लतैल–मरिच्यादि तैल ।

कर्कटश्रृङ्गी :— बालचतुभद्रचूर्ण–दशमूलारिष्ट–च्यवनप्राश–कासवटी–कण्टकार्यवलेह रसपीपरीरस–देवदार्वादिकाढा–दन्तोदभेद
(काकडासिंगी) गदान्तक रस ।

भल्लातक :— संजीवनीवटी–कांकायन वटी–अर्श–पुनर्नवादि गुगुलु–बाहुथालगुड

शिग्रु :— वरुणशिग्रुक्वाथ

पलास :— कृमिकुठार रस–महानारायण तैल–जन्मघुटी ।

अपराजिता :— गर्भपाल रस–स्वर्णमकरध्वज–कुमार्यासव ।

मधुयष्ठी :— कासवटी–एलादिवटी–अश्वगंधारिष्ट–पुष्यानुकूचूर्ण–गुलबनसादि क्वाथ–श्वासचिन्तामणि–दशमूलारिष्ट–मधुयष्ठयादि चूर्ण ।

सैरेयक (पियवास):— महारास्नादि क्वाथ ।

शालपर्णी :— च्यवनप्राश–दशमूलारिष्ट–दशमूलतैल–अमृतारिष्ट–चित्रकहरीतकी–महामाषतैल–महानाराण तेल ।

पृष्ठपर्णी :— च्यवनप्राश–दशमूलारिष्ट–दशमूलतैल–अमृतारिष्ट–चित्रकहरीतकी–महामाषतैल–महानाराण तेल ।

लताकरंज :— महासुदर्शन चूर्ण–जात्यदि तैल–महामंजिष्ठाघारिष्ट–कृमिमकुठार रस–महामरिच्यादि तैल ।

कपिकच्छु :—

मन्मथरस–धातुपौष्टिकचूर्ण–शतावर्यादिचूर्ण–कस्तुरीभैरवरस–मूसलीपाक–अगस्तहरीतकी–एलादिचूर्ण–सोमराजीतैल ।

बाकुची :— खदिरारिष्ट–महामंजिष्ठाघारिष्ट–सोमराजीतैल ।

कांचनार :— कांचनार गुग्गुल–चन्दनासव–उशीरासव–विड़ंगासव ।

अशोक :— देवदावाघारिष्ट–महामरिच्यादि तैल–दशांगलेप–कशीसादिधृत, अशोकारिष्ठ ।

आरग्वध :— रास्नादि क्वाथ–जन्मघुटी–रास्नादिमूल–महामरिच्यादि तैल महामंजिष्ठाघारिष्ठ–सोमराजी तैल ।

खदिर :— खदिराष्टि–दशमूलारिष्ट–पत्रंगासव–महामरिच्यादि तैल महामंजिष्ठाघारिष्ट–सुन्दरीकल्प–खदिरादिवटी ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हरीतकी :— त्रिफलाचूर्ण–त्रिफलघृत–आरोग्यवर्धिनीवटी–योगराज गुगुल गंधकरसायन–रक्तशोधकवटी–त्रिफलागुगुल चन्द्रप्रभावटी–चित्रकहरीतकी–संजीवनीवटी ।

विभीतक :— त्रिफलाचूर्ण–त्रिफलाघृत–ओग्यवर्धिनीवटी–योगराज गुगुल–गंधकरसायन–रक्तशोधकवटी–त्रिफलागुगुल–कासवटी–लवंगादिवटी–चन्द्रप्रभावटी ।

अर्जुन :— अर्जुनारिष्ट–अर्जुन धृत–अश्वगंधारिष्ट–प्रभाकरवटी–सारिवादिवटी–पुष्पानुकचूर्ण ।

लवङ्ग (लौंग) :— लवंगादिवटी–अविपत्तिकरचूर्ण–द्राक्षासव–द्राक्षारिष्ट–दशमूल अरिष्ट–कासवटी–सुपारीपाक–वबूलारिष्ट–खदिरारिष्ट ।

जम्बु (जामुन) :— मधुमेहरियोग–उशीरासव–पुष्पानुकचूर्ण–चन्दनादिचूर्ण ।

दाडिम :— कासवटी–मुस्तादिरस–पीयूषवल्लीरस–कृमिकुठाररस–मरिच्यादिवटी–विल्वादितैल–सोमराजीतैल–महाशंख–चन्द्रकलारस ।

धातकी :— पुष्पानुकचूर्ण–दशमूलारिष्ट–अश्वगंधारिष्ट–द्राक्षासव–अर्जुनारिष्ट–अशोकारिष्ट ।

इन्द्रवारूणी :— अभयारिष्ट–महामंजिष्ठारिष्ट–लोध्रासव–नारायणचूर्ण–सप्तविंशति गुगुलु, वाहुशालगुडं ।

पटोल :— पुनर्नवादिक्वाथ–चन्दनासव–अरविन्दासव–उशीरासव–अम्लपित्तक्वाथ ।

मण्डूकपर्णी :— (ब्राह्मी) ब्राह्मीतैल, ब्राह्मीघृत, ब्राह्मीरसायन, ब्राह्मयोग ।

हिङ्गु :— हिंगवष्टकचूर्ण–चित्रकादिवटी–गैसान्तक वटी–शंखवटी–लशुनादिवटी ।

शतपुष्पा (सोया) :— रजः प्रवर्तनीवटी– एरण्डपाक महालाक्षा दितैल–महामाषतैल–वृ० सैंधवादि तैल सौभाग्यशुष्ठी पाक ।

मिश्रेया (सौंफ) :— पंचषकार चूर्ण–अभयारिष्ट–जन्मघूटी–कुमार्यासव–नारायण चूर्ण–एरण्डपाक–सारस्वतारिष्ट पाक–शतपुष्पादिचूर्ण ।

धान्यक (धनियाँ) :— धान्यपंचक काढा–लवणभास्कर चूर्ण–अभयारिष्ट–सुपारीपाक–कुमार्यासव–चन्द्रप्रभावटी ।

अजमोद :— योगराज गुगुलु–नारायणचूर्ण–कृमिमुदगर रस–सारस्वतचूर्ण ।

अजवाहन (यवानी) :— हिगवाष्टकचूर्ण–लोहासव–चित्रकादिवटी–गैसान्तकवटी–योगराज गुगुल–नारायणचूर्ण–अग्नितुण्डीवटी–अग्निसंदीपन–महाशंखवटी–शूलवर्ज़िनीवटी ।

जीरक (श्वेत) :— जीरकाघरिष्ट–अग्निमुखचूर्ण–लवणभास्करचूर्ण–हिंगवाष्टकचूर्ण अमृतारिष्ट–लशुनादिवटी–क्षुधाकारीवटी–अशोकारिष्ट ।

कालाजीरा :— हिंगवाष्टकचूर्ण–लवणभास्करचूर्ण–दशमूलारिष्ट–अशोकारिष्ट–नमकसुलेमानीचूर्ण–योगराजगूगल–गर्भपालरस–नारायणचूर्ण । जीरक (कृष्ण)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गंधप्रसारणी :— प्रसारणी तैल–महानारायण तैल–महामांषतैल–बलारिष्ट ।

जटामांसी :— दशमूलारिष्ट–अरिविन्दासव–पीपल्यासव–ब्राहमीवटी–दिमागपौष्टिक रसायन–लवंगादिचूर्ण–दशांगलेप ।

भृंगराज :— भृंगराजसव–महाभृंगराजतैल–गंधकरसायन–षड़बिन्दुतैल–अश्वकंचुकीरस सूतशेखररस–आनन्दभैरव रस ।

पुष्करमूल :— दशमूलारिष्ट–महासुर्दशनचूर्ण–नारायणचूर्ण ।

कुष्ठ (कूठ) :— कुष्ठादिचूर्ण, सोमचूर्ण
दशमूलारिष्ट–सारिवाधारिष्ट–कुमार्यासव–च्यवनप्राश–पुनर्नवामण्डूर–महासुर्दशनचूर्ण–महामंजिष्ठाघारिष्ट – नारायणचूर्ण।

चित्रक :— गैसान्तकवटी, चितकादिवटी, दशमूलारिष्ट, यकृतप्लीहारि लौह, कुममार्यासव, द्राक्षासव, लोहासव, चित्रकहरीतकी, अश्वगंधारिष्ट ।

विडंग :— विडंगसव–लौहासव–कुममार्यासव–जन्मघूटी–दशमूलारिष्ट–नारायणचूर्ण, अविपत्तिकरचूर्ण–संजीवनीवटी–अग्नितुण्डीवटी–चन्द्रप्रभावटी ।

लोध्र :— लोध्रसव–सुन्दरीकल्प–दशमूलारिष्ट–प्रदररीपुरस–गंगाधररस–पुष्यानुकूचूर्ण काशीसादि तैल–इरिमेदादितैल ।

कुटज :— कुटजारिष्ट–विडंगासव–महामंजिष्ठाघारिष्ट–गंगारस–पीयूषबल्लीरस–प्रदरारि लौह–महासुदर्शचूर्ण ।

सप्तपर्ण :— अमृतारिष्ट–महामरिच्यदि तैल विषम ज्वर हरयोग ।

सर्पगन्धा :— दिमागदोषहरी–ब्रेनटेव, सर्पगन्धाघनवटी, सर्पगन्धाचूर्ण ।

कबरे :— काशीसादि तैल–मरिच्यादि तैल ।

अर्कद्वय :— महाविषगर्भ तैल–अग्निवर्धक वटी ।

सारिवाद्वय :— सारिवाघारिष्ट–दशमूलारिष्ट–पत्रंगासव–सारिवादि वटी–रक्तशोधकवटी–चन्द्रकलारस–अश्वगंधारिष्ट ।

कुपीलु (कुचला) :—अग्नितुण्डीवटी–विषमुष्ट्यादिवटी–महाविषेगर्भतैल ।

चिरायता :— सुदर्शनचूर्ण–चंद्रप्रावटी–चन्दनासव–सर्वज्वरहर लौह–पथ्यादिक्वाथ–लोध्रासव ।

शंखपुष्पी :— शंखपुष्पी तैल–ब्राहमीवटी–ब्राहमीधृत–सारस्वतचूर्ण–दिमागपौष्टिकरसायन ब्रेनटेव ।

त्रिवृत्त :— अविपत्तिकरचूर्ण–धातुपौष्टिकचूर्ण–अश्वगंधारिष्ट–पुनर्नवामण्डूर–दशमूलारिष्ट–नारायणचूर्ण–अभयारिष्ट–चंद्रप्रभावटी–योगराज गुगुलु ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कण्टकारी :— कण्टकारी अवलेह–कासघृत– दशमूलारिष्ट–अमृतारिष्ट–च्यवनप्राश ।

काली मिर्च :— मरिच्यादिवटी–हिंगवाष्टकचूर्ण–लशूनादिवटी–आनन्दभैरवरस–शंखवटी
लवंगादिवटी–त्रिभुवनकीर्तिरस–अग्निमुखचूर्ण ।

पिप्पली :— संजीवनीवटी–द्राक्षसव–कासवटी–च्यवनप्राश–आनन्दभैरव–शंखवटी–कनकासव–चन्द्रप्रभावटी–लवण भास्करचूर्ण ।

जायफल :— दशमूलारिष्ट–द्राक्षासव–शूलवर्जिनीवटी–आनन्दभैरव –सुपारीपाक
मकरध्वजगुटिका–रसपीपरी–पूर्णचन्द्ररस–कर्पूरादिवटी ।

जावित्री :— कफकर्तरीरस–पीयूषबल्लीरस–खदिरादिवटी–महासुदर्शनचूर्ण–मूसलीपाक–ब्राहमीवटी ।

दालचीनी :— दशमूलारिष्ट–अश्वगंधारिष्ट–लवणभास्करचूर्ण–महासुदर्शनवटी–षडबिन्दू
गंधकरसायन–पीयूषबल्लीरस–ब्राहमीवटी ।

कर्पूर :—

कर्पूरादिवटी–खदिरादिवटी–कासवटी–महानारायणतैल–मकरध्वजगुटिका–लक्ष्मीविलासरस–कस्तूर भैरवरस–वृकचन्दनादिवटी।

अगरू :— च्यवनप्राश–महानारायण तैल–शंखपुष्पीतैल–इरिमेदादितैल–लवंगादिचूर्ण ।

चन्दन :— चन्दनादिवटी–चन्दनासव–सादिवाघारिष्ट–दशमूलारिष्ट
अश्वगंधाआरिष्ट–अशोकारिष्ट–च्यवनप्राश–सुपारीपाक–चन्द्रप्रभावटी–बसन्तकुसुमाकर–
चन्द्रकला रस ।

दन्ती :— यकृतप्लीहारि लौह–अभयारिष्ट–दैवदाद्यारिष्ट–कुमायाञ्चव–अर्शुठाररस–चन्द्रप्रभावटी–महाशंखवटी ।

आमलकी (आंवला):— त्रिफला चूर्ण–त्रिफलघृ
त–योगराजगुग्लु–आरोग्यवर्धनीवटी–रक्तशोधकवटी–चित्रकहरीतकी–च्यवनप्राश–त्रिफला
गुग्ल–कैशोरगुग्लु ।

उदुम्बर, गूलर— मधुमेहारियोग–उशीरासव–कर्पूरादिवटी ।

भांग :— गंगाधर चूर्ण=लाई चूर्ण–जातिफलादिचूर्ण ।

देवदारु :— देवदार्वादिकाढ़ा–देवदार्दाद्यरिष्ट–दशमूलारिष्ट–खदिरारिष्ट–मुमार्यासव–कपकर्तरासव–कफुठाररस ।

वृहती :— दशमूलारिष्ट–अमृतारिष्ट–च्यवनप्राश–दशमूल तैल ।

अश्वगंधा :— अश्वगंधारिष्ट–बलारिष्ट–अश्वगंधादिघृत–फलकल्याणघृत–अश्वगंधादिचूर्ण धातुपौष्टिक
चूर्ण–शतावर्यादिचूर्ण–स्वर्णमकरध्वज–रसराजरस ।

धतुरा :— कनकासव–म० विषगर्भतैल–त्रिभुवनकीर्ति रस–कफकुठाररस–जयमंगलरस ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पारसीक :— पवानी–सुपारीपाक–मुस्तादिरस–अमृतभल्लातकपाक–मल्लतैल ।

कुटकी :— आरोग्यवर्धनी वटी–रक्तशोधकवटी–योगराजगुगुल–पुनर्नवामण्डूर–कुमार्यासव–सारिवाद्यारिष्ट–म0 सुदर्शन चूर्ण–सर्वज्वरहर लौह ।

ब्राहमी :— सारस्वतारिष्ट–ब्राहमीघृत–ब्राहमीतैल–स्वर्णमकरध्वज–सोमनाथरस–स्मृतिसागररस–सारस्वत चूर्ण–उन्मादगजकेशरी रस ।

श्योनाक :— दशमूलारिष्ट–दशमूल तैल–अमृ तारिष्ट–च्यवनप्राश–महानारायणतैल–महामांषतैल–शिरःशूलदिवजरस–चित्रकहरीतकी ।

वासा :— वासारिष्ट–पुनर्नवारिष्ट–अशोकारिष्ट–वासावलेह–जन्मघूटी–च्यवनप्राश–प्रदररिपुरस–गुलवनप्सदि क्वाथ–वसन्तकुसुमाकर–कासामृत ।

पाटला :— दशमूलारिष्ठ, दशमूल, च्यवनप्राश

निर्गुण्डी :— निर्गुण्डीतैल

अग्निमन्थ :— दशमूलारिष्ट–अमृतारिष्ट–च्यवनप्राश–महामांषतैल–म0नारायणतैल–श्रीगोपाल तैल ।

भारंगी :— दशमूलारिष्ट–योगराज गुगुल–कनकासव–महासुदर्शनचूर्ण–महाचन्दनादि तैल–महामंजिष्टाद्यारिष्ट ।

गंभारी :— चन्दनासव–च्यवनप्राश–उशीरासव–अरविन्दासव–दशमूलारिष्ट–अमृतारिष्ट–कुटजारिष्ट ।

तुलसी :— ज्वरसंहारकरस–त्रिभुवनकीर्तिरस–नष्ठपुष्पान्तकरस–मुक्तापंचामृत–कासामृत ।

द्रोणपुष्पी :— बालरोगान्तक रस ।

पुनर्नवा :— पुनर्नवारिष्ट–पुनर्नवादिक्वाथ– पुनर्नवामण्डूर–पुनर्नवागुगुल–च्यवनप्राश– दशमूलारिष्ट– कुमार्यासव– म0नारायणतैल– सुधानिधिरस ।

अपामार्ग :— कफकर्तरीरस–सौभाग्यवटी–अगस्तहरितकी ।

तुलसीपत्र :— तालीसादि चूर्ण–लवण भास्करचूर्ण–ब्योवादिवटी –कनाकासव–सुपारीपाक– नष्टपुष्पान्तकरस– म0सुदर्शनचूर्ण–एलादिचूर्ण ।

हरिद्रा :— हरिद्राखण्ड–दशमूलारिष्ट–अश्वगंधारिष्ट–कुमार्यासव–पुनर्नवामण्डूर–म0सुदर्शनचूर्ण–एरण्ड तैल–चन्द्रप्रभावटी–बसन्तकुसुमाकररस–दशांगलेप ।

शुण्ठी :— सौभाग्यशुण्ठी पाक–लवण भास्करचूर्ण–हिंगवाष्टकचूर्ण–चित्रकादिवटी अविपत्तिकरचूर्ण– ब्योषादिवटी–योगराजगुगुल–पुनर्नवादिगुगुल–आनन्दभैरव ज्वरसंजीवनीवटी ।

लघुएला :— (इलायची) (छोटी) एलादिवटी–सारिवाद्यारिष्ट–चन्द्रप्रभावटी–गर्भपालरस–सितोपलादिचूर्ण–तालिसादिचूर्ण ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एला :— दशमूलारिष्ट–द्राक्षासव–कफकर्तेरी रस–गंधकरसायन–लवण भास्करचूर्ण–महानारायणतैल–सारिवाद्यारिष्ट ।

(इलायची बड़ी)

रसोन (लहसून) :— लशूनादिवटी–रसोनतैल ।

धृतकुमारी :— कुमार्यासव ।

शतावरी :— शतावर्यादिचूर्ण–धातुपौष्टिकचूर्ण–सुपारीपाक–लक्ष्मीविलास (ना) वृ0 विषगर्भ तैल–म0नारायण तैल–बसन्तकुसुमाकर रस–सारस्वता आरिष्ट–कलकल्याण धृत ।

बचा :— अश्वगंधारिष्ट–योगराजगुगुल–संजीवनीवटी–म०शंखवटी–व्राहमीवटी–सारस्वत–उन्मादगजकेशरी रस–स्मृतिसागर रस–चन्द्रप्रभावटी ।

मुस्ता :— दशमूलारिष्ट–मुस्तारिष्ट–अश्वगंधारिष्ट–च्यवनप्राश–बालचतुर्भद्रचूर्ण–अविपत्तिकरचूर्ण–मुस्तादिरस–चन्द्रप्रभावटी–अशोकारिष्ट–नवायसलौह–म०सुदर्शनचूर्ण ।

उशीर :— दशमूलारिष्ट–सर्वज्वरहरलौह–धान्यपांचककाढ़ा–सारिवाद्यारिष्ट–सारस्वतारिष्ट–दशांगलेप–महामंजिष्ठाद्यारिष्ट–महासुर्दशनचूर्ण–लवंगादिचूर्ण–महानारायण तैल ।

मदन पाल निघण्टु में – अभयादि वर्ग
धनवन्तरी निघण्टु में – चन्दनादि वर्ग
शोढल में – चन्दानि वर्ग

मदन विनोद में तो कंकुष्ट एवं स्वर्ण क्षीरी का एक साथ ही ऊपर नीचे पाठ है। कतिपय निघण्टु में जैसे :–

राजनिघण्टु में स्वर्णादि वर्ग।
भावप्रकाश निघण्टु में धात्वादि वर्ग।
शालिग्राम निघण्टु में धातुपधातु वर्ग।

इसके गुणाधिक्य के कारण तथा रस (पारद) का उपकारक या सहायक होने से उपरस में गणना हो जाने से उस उपरस के वर्णन अनुरोध से उन वर्गों में उल्लेख हो गया है। प्रतीत होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कस्तुरी

1 कस्तूरिका रसे तिक्ता कटुः श्लेष्म निलापहा ।
उष्ण बल्या तथा वृष्या, शीतदौगन्ध्यि नाशिनी ।।

कामातुरे च तरूणे कस्तूरी बहुलपरिमला भवति ।।

गोरोचन

1 गोरोचना रसे तिक्ता उष्णवीर्या च पाचनी ।
हन्तिवातं कफं पाण्डु, कामला श्वित्रमेव च ।।

मृडगश्रृङ्ग

1 उष्णं समधुरास्निग्धं गत्वा श्रङ्ग प्रकीर्त्तितम् ।
तस्याद्धातोपसृटष्ठे तु हितं तद्वसेवने ।। सुश्रुत "

1 पुट प्रदग्धं हरिणस्य श्रृङ्ग घृतेनगब्येन निपीयमानम्
हृत्पार्श्व शूलार्ति मयोहति ।। (ग. नि.)

अग्निजार

1 अग्निजार स्त्रिदोषघ्नो धनुर्वातादिवातनुत् ।
वर्धनो रसवीर्यस्य दीपनो जारणस्तथाः ।। "र० चू० अ० 11"

मुक्तिा (मोती)

1 मौक्तिकं स मधुरं सु शीतलं द्यष्ठिरोगशमनंविषापहम् ।
राजयक्ष्म परिकोपनाशनं, क्षीणवीर्य बलपुष्ठिवर्धनम् ।। रा० नि०

2 मुक्ता शुक्तिः कटुस्निग्ध, श्वासहृदयरोगहारिणी ।
शूल प्रथमनी रूच्या, मधुरादीपनी परा ।।

जल शुक्तिः कटु स्निग्ध दीपनी गुल्मशूलनुत् ।
विषदोषहरीरूच्या पाचनीवलदायनी ।।

प्रवाल

1 प्रवालमधुरं साम्लं कफपित्तादिदोषनुत् ।
वीर्य कांति करं स्त्रीणां धृते मङ्गलदायकम् ।। अ० ह० अ० 13

प्रवालकं सरं शीत क्षयकास त्रिदोषनुत् ।। श० नि०

प्रवालं सुमृत्तं क्षारं मधुरं लघुशीतलम् ।
दीपनं पाचनं चैव द्यष्ठिरोग निषूदनम् ।
त्रिदोष शमनं बल्यं, विशेषात् कफ वातनुत् ।
क्षयकास हरं चैव, रक्तपित्त प्रणाशनम् ।।
स्वेदातिनिर्गमहरं शत्रिस्वेदहरं परम् ।
विषघ्नं भूतशमनं वीर्यं वर्णविवर्धनम् ।। "र० त०'

शंख

शङ्खश्शीतः कटुः पाके वीर्य चोष्णः प्रकीर्त्तित्तः ।
परिणामादि शूलघ्नः चक्षुष्यो रक्तपित्ताजित् ।। ध० नि० "

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शङ्ख क्षारो हिमो ग्राही ग्रहणीरोगनाशनः ।
नेत्रपुष्प हरोवर्ण्यः तारूण्यपिटिका प्रणुत् ।। भा० प्र० ”

कपर्दिका

1 कपर्दः कटुतिक्तोष्णः, कर्णशूल व्रणापहः ।
गुल्म शूलामयघ्नश्च, नेत्रदोष निकृन्तनः ।। ध० नि०

परिणाभादिशूलघ्नी ग्रहणी क्षयनाशिनी ।
कटूष्ण दीपनी वृष्णा, नेत्रा वातकफपहा ।। ‘ र० च० ”

गंधमार्जार

1 गन्धमार्जारवीर्यतु, वीर्यकृत् कफावातनुत् ।
कण्डु कुष्ठहरनेक्ष्यं, सुगन्ध स्वेदगन्धनुत् ।। भा० प्र०

कर्कटक

1 कर्कटोवृंहणो वृष्यः, शीतलोऽसृटगादापहः । ध० नि०

कृष्ण कर्कटकस्तेषां, वल्य कोष्णोऽनिलापहः ।
शुक्लः सन्धान कृत्सृष्ठ विण्मूत्रोऽनिलपित्तहा ।। सुश्रुत ।।

मधु

1 माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पैन्तिकं छात्रमित्यपि ।
आर्घ्य मौद्दालकं दाल मित्यष्ठौ मधुजातयः ।।

2 मधु तु मधुरं, कषयानुरसं रूक्षमनग्निदीपनं वर्ण्यं स्वर्यं लघु सुकुमार लेखनं, हृद्यं वाजीकरणं, शौधनं, रोपणं, चक्षुष्य प्रसादन, सूक्ष्ममार्गानुसारि, पित्तश्लेम भेदो मेह श्वासकासातिसार च्छर्दितृष्णा हिक्काप्रशमन हलादि त्रिदोषशमनं च तल्लुघुत्वात् कफघ्नं, पैच्छिल्यान्माधुर्यात् कषायभावाञ्च वातपित्तघ्नम् । वृंहणीयं मधुनव, नाति श्लेष्महरं सरम, मेदः स्यौल्यापहं ग्राहि पुराणभतिलेखनम् ।। नानाद्रव्यात्मकत्वाच्य योगवाहिपरंमधुः ।। सु. सू. अ. 45 ।।

नवंमधु भवेतू पुष्पै नातिश्लेष्महरं सरम् ।
पुराणं ग्राहकं रूक्षं, मेदोघ्न मतिलेखनम् ।।
मधुनः शर्करायाश्च गुड़ स्यापिविशेषतः ।
एकसंवत्सरेऽतीते पुराणत्वं स्मृते वुधैः ।। भावप्रकाश
चक्षुष्यं छेदि तृट्श्लेष्म विष हिध्मा ङस्त्र पित्तनुत् ।
कुष्ठमेह कृमिच्छर्दि श्वासकासातिसारजित् ।।
व्रणशोघन सन्धान रोपणं वातले मधु ः ।
मधुरं कटुकं पाके, तन्तुल्यामधुशर्करा ।।
अ० स० सू० 6192

मयूर

1 शिखिपिच्छ भस्म कृष्णाचूर्णं मधुमिश्रितं महुर्लीठम् ।
हिक्कां हरतिप्रवलां श्वासं चैवातिदुस्तरे छर्दिम् ।। योग

मयूरपादनालं वा दग्ध्वा क्षौद्र घृतान्वितम् ।
चूर्णं लिहञ्जयेत् कांसं हिक्काफाश्वासं च दारूणम् ।। च० चि० अ० 1 ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मूत्र

मूत्रं गोऽजाविमहिषी गजाश्वोष्ट्रखरोद्‌भवम् ।
पित्तले रूक्षतीक्ष्णोष्णं लवणानुरसं कटु ।
कृमिश्श्वेफोदरानाह शूलयपाण्डु कफानिलान् ।।
गुल्मा रुचि विषश्वित्र कुष्ठाशांसिजयेल्लघु ।
विरेका स्थापनालेप स्वेदादिषु च पूजितमू ।।
दीपनं पाचने भेदि, तेषु गोमूत्रमुत्तममू ।।

गोऽजाविम हिषीणान्तु स्त्रीणांमूत्रप्रशस्यते अ० स० अ० 67143
खरोषोभ नराश्वानां पुसां मूत्रहितं स्मृत्तम् ।।

2 गव्यं समधुरं किञ्चिद्धोष्णं कृमिकुष्ठनुत् ।
कण्डू च शमयेत् पीते, सम्यग्दोषोदरेहित्तम् ।।
गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं पित्तलं कफ्वातनुत् ।
शूलगुल्मोदरानाह विरेकास्थापवादिषु ।। सु० सू० अ० 45

3 कासश्वासापहं शोफ कामलापाण्डु रोगनुत् ।
कटु तिक्तान्वितं छाग भीषान्मारूत कोपनम् ।। अ० सू० अ० 6-144

4 कास प्लीहोदरंश्वास, शोषवर्चोग्रहेहित्तम् ।
स क्षारं तिक्तं कटुकमुष्णां वातघ्नमाविकम् ।। सुश्रुत ।।

5 नर मूत्रं गरं हन्ति, सेवितं बलद्रसायनम् ।
रक्तपामाहरं तीक्ष्णं, सक्षार लवणं स्मृतम् ।। भा० प्र०

मानुषंच विषापहम् ।। सुश्रुत स० आ० 45/228

समुद्रफेन

1 समुद्रफेनः शिशिरः कर्णपाक निवारणः ।
लेखनो नेत्ररोगाणं हितोविषविनाशनः ।।
चक्षुष्यो रक्तपित्तघ्नो, गुल्मपिल्हरस्मृतः । ध० नि०

समुद्रफेनश्चक्षुष्योः लेखनः श्वीतलस्तथा ।
कषायो विषपित्तघ्नः, कर्णरूक्कफहृल्लघुः ।। भा० प्र० नि० ।।

जलवर्ग

1 जीवनं तर्पण हृद्यं ह्लादिबुद्धिप्रवोधनम् ।
तन्वव्यक्तरसंमृष्ठं, शीतं लघ्वमृतोपमम् ।। अ. स. सू.

2 आन्तरिक्षं चतुर्विधम् । तद्यथा धारं, कारं,
तौषारं हैममिति, तेषाधारंप्रवघानं, लघुत्वात्,
तत्पन द्विविधे गाङ्गं – सामुद्रं च ।। सुश्रुत स० 45-7

3 पानीयं प्राणिनां प्राणा विश्वमेव चत्तन्मयम् ।
केवलं सौषधं पक्कमाममुष्ण हितं चतत् ।
समीक्ष्य मात्रयामुक्त ममृतं विषमन्यथाः ।। अ० स० सू० 6-32

4 अत्यम्बु पानान्न पिपच्यतेऽन्नं निरम्बुपानाच्चसएवदोषः ।

तस्मान्नरोवह्नि विवर्धनाय मुहु र्मुहुर्वारिपिवेद भूरि ।। " भा० प्र० मि० "

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्षीरवर्ग

1 गव्यं माहिषमाजंच, कारभंस्त्रेणमाविकम् ।
ऐभमैकशफ्चेति, क्षीरमष्ठविधं स्मृतम् ।।
स्वादुपाकरसं स्निग्ध, भोजस्यं धातुवर्धनम् ।
वात वित्त हरं वृष्यं, श्लेष्मलं गुरू शीतलम् ।। अ० स० सू० 6/52

क्षीरं जीवनीयानां श्रेष्ठत्तमः ।। च० सू० अ० 25 ।

2 जीवनं वृंहणं तर्पणं चाक्षिशूलनुत् । च० सू० अ० 27/221

नार्यास्तु मधुरं, चक्षुष्यं वलवर्धनम् ।। सु० सू० अ० 45 ।
मानुषं वातपित्तासृगमिधाताक्षिरोगजित् ।
तर्पणाश्चोतनैर्नस्यैः ।। अ० सू० ऊ० 6

3 प्रायः पयोऽत्र, गब्वयंतु जीवनीयं रसायनम् ।
क्षतक्षीणहिते मेध्यं, वर्ण्यं स्तन्यकरं सरम् ।।
जीर्णज्वरे मूत्रकृच्छे स्क्तपित्तं च नाश्येत् ।। अ० स.० सू.0 ऊ० 6/55

दधि

1. अम्लेन वातं मधुरेण पित्तं कफं कषायेण
निहन्ति सद्यः ।। भा० प्रा० ।।
पाके अम्लमुष्ण वातघ्नं, मंगल्यं वृहणं दधि ।।
पीन से चातिसारे च शीतके, विषम ज्वरे ।
अरुचौ मूत्रकृच्छ्रे च कार्शेदधिशस्यते ।। च० सू० अ० 27 ।।

नवनीत

1. शस्तं धी स्मृति मेधाग्नि वलायुः शुक्रचक्षुषाम् ।।
बालवृद्ध प्रजाकान्ति सौकुमार्यस्वरार्थिनाम् ।।

क्षतक्षीण परीसर्प शस्त्रग्निलपितात्मानाम् ।
वातपित्त विषोन्माद शोषालक्ष्मी ज्वरापहम् ।।

स्नेहानामुत्तम् शीतं वयसः स्थापनं परम् ।। अ० सू0 हृ० अ० 5 ।।

घृत

शस्तं घी स्मृति मेधाग्नि वलायु शुक्रचक्षुषाम

रक्त

1. अतिनिःस्त्रुत रक्तों वा क्षौद्र युक्तं पिवेदसृक् ।
यकृद्वाभक्षये दाजमांम पित्तसमायुतमं ।। सु ० उ० अ० 45 ।।

मृगाज़ाविवराहसृगुद ध्म्लफल सर्पिषा । अरस्का पिवेत् ।। च० वि० अ० उ० 30।।

सैन्धवलवण

1. सैन्धव तत्र स स्वादुः वृष्यं हृद्यं त्रिदोषनुत् ।
लघ्व नुष्णं द्यशः पथ्य भविदाहृयग्निदीपनम् ।। अ. स.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सामुद्रलवण

1. विपाके स्वादु सामुद्रं गुरु श्लेष्म विवर्धनम् ।। अ० स०

विडलवण

1. ऊर्ध्वाधः कफवातानुलोमन दीपन विडम् ।
विवन्धानाह विष्ठम्भ, शुलगौरवनाशनम् उ० स०

सौवर्चल लवण

1. लघु सौवर्चलहृद्यं, सुगन्ध्यु, द्गारशोधनम् ।
कटुपाकं बिवन्धघ्नं, दीपनीयं रुचिप्रदम्" उ० स०

लवणानां प्रयोगेतु सैन्धवादिप्रयोजयेत् ।।

तिलतैल

1. तिलतैलं गुरुस्यैर्य वलवर्ण करे सरम् ।

वृष्यं विकाशि विशदं, मधुरं रसपाकयों ः।।

सूक्ष्म कषायानुरस तिक्तं वातकफापहम् ।

वीर्योष्णं हिमं स्पर्शे वृंहणं रक्त पित्त कृत् ।। भावप्रकाश ः

तैले पक्वमपक्कं का चितस्थायिगुणाधिकम् ।।

धान्य ः— स्वादुपाक रसा ः स्निगधा, वृष्या बध्दाल्पवर्चस ः ।

कषायानुरसाः पथ्या, लघवो मूत्रला हिमा ।। (अ० स०)

अष्ठवर्ग

जीवक–ऋषभक

1. जीवकर्षभकौ ज्ञेयो हिमाद्रीशिखरोद्भवौ।
रसोनकन्दवत्, कन्दौ निस्सारोसूक्ष्मपत्रकौ ।।
जीवक कूर्चकाकार ः ऋषभौ वृषश्रृंगवत् ।
जीवकर्षभकौवल्यौ, शीतौशुक्रकफफिप्रदौ ।। भावप्रकाश

काकोली–क्षीरकाकोली

1. यत्रस्यात् क्षीरकाकोली काकोली तत्र जायते ।
पीवरीः सद्यश कन्द स क्षीर प्रियगन्धवत् ।।
यथास्यात् क्षीरकाकोली, काकोल्यपि तथाभवेत् ।। भा. नि.

मेदा–महामेदा

1. मेदा महामेदोडभिधा कन्दो मोरंगादौ प्रजायते ।
शुक्लाद्रक निभः कन्दो लताजातः स पाण्डुरः ।।
मेदा युग्म गुरुस्वादु वृष्यस्तन्यं कफापहम् ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कंकुष्ठ

1 कंकुण्ठं तिक्तकटुकं वीर्ये चोष्णं प्रकीर्तितम् ।
गुल्मोदावर्त शूलघ्नं रसरञ्जं व्रणापहम् ।।
—धनवन्तरी निघण्टुः

2 कटुंक कफवातघ्नं रेचकं व्रणशूलहृत् ।
—राजनिघण्टुः

3 ककुष्ठं रेचनं तिक्तगुष्णं वर्णविशोधनम् ।
कफशोफोदरानाहगुल्माध्मानकृमिप्रपणुत्
—कैयदेव निघण्टुः

4 कंकुष्ठं रेचनं तिक्तं कटूष्णं वर्णकारकम् ।
कृमिशोथोदरध्मानगुल्मानहिकफाहृतम् ।।
—भाव प्रकाशः

5 कंकुष्ठं पित्तकृद् भेदि विवन्धकफगुल्मनुत् ।
कंकुष्ठो भेदनस्तीक्ष्णः कुष्ठगुल्मोदरादिजित् ।।
कंकुष्ठको बिरेकीस्यात् कटुरुष्णश्च भेदकः ।
गुल्मोदावर्तहरसतिक्तो जन्तुव्रणापहाः ।।
—गदनिग्रह (शोढल निघण्टुः)

6' रसे रसायने श्रष्ठं निःसत्वं बहुवैकृतम् ।
कंकुष्ठं तिक्त कटुकं वीर्योष्णं चतिरेचनम्
—रसरत्नसमुच्यम्

7 कंकुष्ठं तिक्तकटुकं वीर्योष्णं चातिरेचनम् ।
व्रणोदावर्तशूलर्तिगुल्मप्लीहगुदर्तिनुत ।।
—रसेन्द्र चूड़ामणि

8 कंकुष्ठं रेचनं तिक्तं कटूष्णं वर्णकारकम् ।
कृमिदोषोदराध्मानगुल्मानाह कफापहम् ।।
—आयुर्वेद प्रकाशः

9 कंकुष्ठं तिक्तकटुकं वीर्योष्णं चतिरेचनम् ।
नाशयेदामवातञ्च रेचयेत् क्षणमायतः ।।
व्रणोदावर्त शूलार्तिगुल्मपुलीहगुदर्तिनुत् ।
कंकुष्ठं नाशयेद्धीघ्रं कणेदर जलोदरम् ।।
—रसेन्द्र पुराण

10 वब्बूलमुलिकाक्वाथं जीरसौ भाग्यसंयुतम् ।
कंकुष्ठ विषनायायः भूयोभूय पिवेन्नरः ।।
—रसेन्द्र चूड़ामणि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम में स्वीकृत

बैद्यनाथ प्रकाशनः

			मूल्य
१.	अभिनव शारीरम्	श्री दामोदर शर्मा गौड	२००.००
२.	आयुर्वेदीय पञ्चकर्म विज्ञान	वैद्य हरिदास श्रीधर कस्तूरे	४५.००
३.	आयुर्वेदीय क्रियाशारीर	वैद्य रणजित राय देशाई	७०.००
४.	पदार्थ विज्ञान	डा. रामरक्ष पाठक	१८.००
५.	प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्यगुणविज्ञानम्	डा. मायाराम उनियाल	१००.००

आलोच्यग्रन्थः (रेफरेन्सबुक)

१.	अष्टाङ्गसंग्रह की वनौषधियाँ एवं वर्गीकरण	डा. मायाराम उनियाल	१५.००
२.	आयुर्वेदीय व्याधिविज्ञान पूर्वार्ध	यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य	१५.००
३.	आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान उत्तरार्ध	यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य	३०.००
४.	आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान	वैद्य रणजित राय देशाई	२४.००
५.	आयुर्वेदीय हितोपदेश	वैद्य रणजित राय देशाई	२४.००
६.	चरक सुश्रुत के दार्शनिक विषय का अध्ययन	डा. ज्योतिर्मित्र	६०.००
७.	द्रव्यगुण विज्ञान पूर्वार्ध	वैद्य यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य	२०.००
८.	द्रव्यगुण विज्ञान उत्तरार्ध	वैद्य यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य	३०.००
९.	द्रव्यगुणऔषध विज्ञान शास्त्र	आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी	४०.००
१०.	नेत्रचिकित्सा विज्ञान	डा. वी. एल. मुंजे	२०.००
११.	मानस रोग विज्ञान	डा. बालकृष्ण अमरजी पाठक	२०.००

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

८. कालिदास के साहित्य में वनस्पतियाँ, श्री बैधनाथ आ० भवन लि०, पटना ।

९. लद्दाख हिमालय की वन सम्पदा एवं तिब्बती चिकित्सा प्रणाली (डाबर) द्वारा प्रकाशित एवं भारत सरकार स्वास्थ्य-मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत ।

१०. सिक्किम हिमालय की सम्पदा (अंग्रेजी) परिषद् द्वारा प्रकाशित ।

११. फलोरा ऑफ गढ़वाल हिमालय (अंग्रेजी) श्री बैधनाथ आयुर्वेद भवन लि०, नागपुर द्वारा प्रकाशित। महामहिम उपराष्ट्रपति डा० शंकर दयाल शर्मा जी द्वारा विमोचन ।

१२. कतिपय राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठियों में शोध-पत्र प्रस्तुत एवं वनौषधियों पर प्रदर्शनियों का आयोज़न ।

१३. आइ०एम०पी०सी०एल० मोहान (रामनगर) के औषधि निर्माण कम्पनी के प्रबन्ध निदेशक के पद का लगभग एक वर्ष का अतिरिक्त कार्यभार सम्पादित ।

१४. विदेश यात्रा– श्रीलंका, ब्राजील, सिंगापुर बैंकाक, नेपाल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection